भाग ६८,
संख्या १, २, ३

संवत् २००५,
अक्टूबर, नवम्बर, दिसम्बर १९४८

वार्षिक मूल्य ३) ]

[ एक संख्या का मूल्य ।)

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

प्रधान सम्पादक

श्री रामचरण मेहरोत्रा

विशेष सम्पादक

डाक्टर सत्यप्रकाश — डाक्टर विशंभरनाथ श्रीवास्तव

डाक्टर गोरखप्रसाद — डाक्टर ब्रजकिशोर मालवीय

प्रयाग की

# विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

## परिषद् का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

## परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उपसभापति एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमंत्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे, जिन के द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

## सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिये वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशन में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित, परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों, विवरणों इत्यादि के बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उन का प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन-चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य-वृन्द समझे जायेंगे।

## विषय-सूची

# ❦ विज्ञान ❦

**विज्ञान-परिषद्, प्रयाग का मुख्य-पत्र**

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

**भाग ६८ ] सम्वत् २००५ अक्टूबर-नवम्बर-दिसम्बर १९४८ [ संख्या १-२-३**


# सृष्टि का आधार सूक्ष्म कण


[ लेखकः—श्री० कुलदीप चन्द्र चड्ढा एम० एस० सी० ]


जब आदिम मानव के भौतिक चक्षु खुले तो उसने देखा अपने चारों ओर एक वृहद् विश्व का वितान! विचित्र प्रकार के पदार्थ, विभिन्न रूप रंग, आकार, परिमाण और स्वभाव की वस्तुएँ उसकी नयन ज्योति का शुभागमन करने लगीं।

मानव विस्मित सा हो गया। उसकी बौद्धिक आंख खुली और वह सोचने लगा—"यह सब क्या समस्या है? कैसी है यह सृष्टि?......और फिर इसमें, मुझ मानव को क्यों कर धकेल दिया गया?.......मैं क्या हूँ? मेरा आदर्श क्या है—लक्ष्य क्या है?"

इस प्रकार की जिज्ञासा ने मानवीय मस्तिष्क पर अधिकार कर लिया, और वह लगा इन समस्याओं को सुलझाने!

ज्यों-ज्यों मानव का बौद्धिक विकास होता गया, उसकी जिज्ञासा की आंशिक पूर्ति होती गई। पर साथ ही साथ उसकी जिज्ञासा में विस्तार भी होता गया। उसके विस्मय का प्रवेश, विभिन्न समस्याओं के सूक्ष्मतर पक्षों में होने लगा। पदार्थ के वाह्य रूप से परिचित हो कर ही मानव सन्तुष्ट न रह सका। वह अब पदार्थ के आन्तरिक रूप, उसकी बनावट—के विषय में कुछ जानना चाहता था।

अपने इस प्रयास में मानव को कल्पना और तर्क, दोनों का आश्रय लेना पड़ा; और तज्जात धारणाओं को अनुभव की कसौटी पर कसना पड़ा। सृष्टि के प्रारम्भ से आधुनिक युग तक वही धारणाएं जीवित रह सकीं जो इस कसौटी पर पूरी उतरीं।

अपनी धारणाओं के सत्यासत्य का निर्णय करने के लिए, केवल प्रकृतिगत अनुभवों तक ही सीमित न रह कर, मानव ने, कृत्रिम साधनों से ऐसी परिस्थितियों का निर्माण किया, जिनमें निरीक्षण शीघ्रतर किया जा सके। यह कला "प्रयोग" ( Experiment ) के नाम से प्रसिद्ध है, और आज के विज्ञान का सबल आधार है।

पुरातन काल में यह कला, निस्सन्देह अज्ञात—या कम से कम, अप्रसिद्ध—थी। मानव को, मुख्यतया, प्राकृतिक घटनाओं पर ही आश्रित रहना पड़ता था।

इसी प्रकार की एक घटना थी पदार्थ का टूटना। मानव ने देखा कि पदार्थ टूट सकता है—भंजन-शील है। भग्न खण्ड भी तो एक पदार्थ है—वह भी टूट सकता है। इस प्रभंजित पदार्थ का भग्नावशेष भी एक पदार्थ है और वह भी टूट सकता है.......इस प्रकार जहाँ तक तो मानव की चाक्षुषता जा सकती थी, मानव ने देखा कि पदार्थ भंजन-शील है—टूटता ही चला जाता है।

पर मानवीय चाक्षुषता से परे भी इस भंजनशीलता का कोई अन्त है अथवा नहीं?

यहाँ प्राचीन दार्शनिकों में मतभेद पैदा हो गया। एक विद्वद्वर्ग का विचार था कि यह क्रिया अनवरत रूप से चली जायगी और इसका अन्त नहीं होगा। पर अन्य विद्वानों का मत था कि एक विशेष सूक्ष्मता के पश्चात् पदार्थ का टूटना असंभव है। चाहे हमारे पास उसे प्रभंजित करने के पर्याप्त साधन भी हों, तो भी हम उसे तोड़ नहीं सकते। इस अवस्था में पदार्थ का जो स्वरूप होगा, उसे विशेष महत्त्व दिया गया।

बहुमत, निस्सन्देह, दूसरे विचार के पक्ष में था। पर इस विचार के मौलिक सिद्धान्त से सहमत होते हुए भी, पदार्थ के अन्त्य रूप के विषय में विभिन्न विद्वानों के मत भिन्न-भिन्न थे।

इस प्रकार, आज से ठीक २५०० वर्ष पूर्व युनान के एक प्रमुख दार्शनिक, थैलेज (Thales) ने इस विचार का प्रचार किया कि पदार्थ का अन्त्य रूप जल है। जल कणों की ही विभिन्न संख्याएं, विरलता और घनिष्टता, विभिन्न पदार्थों का सृजन करती हैं।

तद्विपरीत, एरिस्टॉटल (aristotle) तथा अन्य दार्शनिकों का विचार था कि सृष्टि के मूलभूत तत्व चार हैं: अग्नि, वायु, जल और पृथ्वी।

आज की धारणा के निकटतम विचार का प्रचार डेमोक्रिटस (Democritus) ने किया। उनका मत था कि संसार गतिशील अणुओं—अकाट्य कणों—के मेल से बना है।

अन्त के दो विचारों के अनुरूप धारणाओं का भारत में भी प्रचार हुआ। हमारे परम्परागत ग्रन्थों में भौतिक संसार का आधार चार के स्थान पर पाँच तत्वों को माना गया है—"अनल, अनिल, जल, गगन, रसा" अर्थात् उपर्युक्त चार तत्वों के अतिरिक्त "आकाश" को पांचवां तत्व माना गया है। और डेमोक्रिटस के समान भारत में वैशेषिक के रचयिता कणाद मुनि कणवाद का समर्थन करते रहे हैं।

पर, चाहे आज के वैज्ञानिक कणवाद में विश्वास रखते हैं, उनके इस विश्वास का आधार प्राचीन काल में प्रचलित धारणाएं नहीं। इस विश्वास का आधार वही प्रयोग की कला है जिसका हम ऊपर उल्लेख कर आए हैं।

अतएव, चाहे कणवाद एक बार दार्शनिकों की दृष्टि में जंच गया, फिर भी मध्यकालीन युग में इसका लोप प्रायः हो चुका था। इसका पुनर्स्थापन, १७ वीं शताब्दी में राबर्ट बॉयल और १८ वीं शताब्दी में जॉहन डाल्टन ने किया। इनकी धारणाओं के अनुसार, पदार्थ दो प्रकार के हैं; मौलिक पदार्थ या तत्व, और यौगिक पदार्थ (Elements and compounds)। यौगिक पदार्थों का निर्माण तत्वों के योग से होने के कारण ही ये दो नाम चुने गए हैं।

इस प्रकार, पदार्थों को दो प्रकार की कक्षा में बांट कर उनके अन्तिम अकाट्य कणों को अणु (Atom) और मौलिकणु—अथवा मौलिक-कण—(Molecule) का नाम दिया गया। ये दोनों कण, तत्वों और यौगिक पदार्थों की ईंटें हैं। परिमाण में, स्वाभाविक ही है, कि एक मौलिकणु, अणु से बड़ा हो। और एक मौलिकणु भी इतना सूक्ष्म है कि एक गिरह लम्बाई को घेरने के लिए, जल के (जो कि एक यौगिक पदार्थ है) लगभग ३० करोड़ मौलिकणु चाहिए। इससे साधारण अणु के परिमाण का भी अनुमान लग सकता है।

बॉयल और डॉल्टन के पश्चात्, पदार्थ विज्ञान में अन्य भी अनेक प्रकार के परिवर्धन हुए, यहाँ तक कि

पिछली शताब्दी के प्रारम्भ में प्राउट ने अणु विज्ञान का एक अत्यन्त महत्व पूर्ण सिद्धान्त प्रकाशित किया। उनका विचार था कि उदजन ( Hydrogen ) का अणु ही वास्तव में मौलिक अणु है; शेष प्रत्येक तत्व के अणुओं का निर्माण उदजन अणुओं की विभिन्न संख्याओं के समन्वय से होता है। इस मन्तव्य का सीधा निष्कर्ष यह था कि प्रत्येक तत्व के अणु का भार, उदजन के अणुभार ( Atomic weight ) का पूर्णगुणक है। अनेक तत्वों के अणुभारों का माप इस सिद्धान्त का समर्थक सिद्ध हुआ। पर क्लोरीन आदि तत्व ऐसे भी थे जो सिद्धान्त के विपक्ष में थे। अत: विभिन्न अणुओं के भारों में परस्पर अनुपात को आकस्मिक संयोग कह कर टाल दिया गया। परिणाम स्वरूप प्राउट के सिद्धान्त का विलोप हो गया।

पर वर्तमान शताब्दि के प्रारंभ में जब समस्थों का आविष्कार हुआ तब विज्ञों को ज्ञात हुआ कि वास्तव में प्राउट का सिद्धान्त अशुद्ध न था। सर जे० जे० टामसन और प्रो० आस्टन ने अपने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया कि किसी तत्व के सभी अणुओं का भार बराबर नहीं होता वरन् एक तत्व के अणु दो, तीन···या अधिक वर्गों से संबद्ध होते हैं। अणु-तालिका ( Atomic Table ) में एक ही स्थान पर होने से इन्हें समस्थ ( Isotope ) पुकारा जाता है। प्रत्येक समस्थ का अणुभार, उदजन अणु का पूर्ण गुणक होता है। पर प्राकृतिक पदार्थों में प्रत्येक प्रकार के समस्थ होंगे। इसलिए स्वाभाविक ही है कि पदार्थ का औसत अणुभार उदजन अणुभार का पूर्ण गुणक न हो।

इस प्रकार टामसन और आस्टन के प्रयोगों से फिर इस विचार को पुष्टि मिली कि उदजन अणुओं की विभिन्न संख्याएँ ही प्रत्येक प्रकार के तत्वों का निर्माण करती हैं।

पर इस निर्णय पर पहुँचने से पूर्व वैज्ञानिकों का एक और नए कण से परिचय हो गया। इसका सृजन विरल वायव्यों में विद्युत् संचार से, भौतिक पदार्थों पर प्रकाश-आघात से तथा उन्हें अत्यन्त तप्त करने से होता था। प्रयोगों ने सिद्ध किया कि यह कण नितान्त अल्पभार है, इसका आवेश ऋणात्मक है और परिणाम में अत्यन्त कम। अतएव इस कण का आवेश, आवेश की सूक्ष्मतम इकाई माना गया, और इसका नाम पड़ा, ऋणाणु (Electron)।

जिस सुगमता से ऋणाणु का पदार्थ से वियोग हो सकता है उसके आधार पर विज्ञों ने निश्चित किया, कि ऋणाणु की विद्यमानता अणु के कलेवर के बाह्य भाग में ही होगी। रश्मि-विश्लेषण, एक्सकिरणों आदि के अध्ययन ने इस विचार की केवल पुष्टि ही नहीं की, वरन् इनकी स्थिति का सूक्ष्मतर ज्ञान दिया। इनसे प्रकट हुआ कि ऋणाणु किसी केन्द्रीय कण के चारों ओर वृत्ताकार तथा वलयाकार परिधियों में परिक्रमण करते हैं।

एक समूचा अणु वैद्युतिक दृष्टि से निरपेक्ष है; और क्योंकि अणु के बाह्य भाग में कुछ ऋणाणु विद्यमान हैं, जो ऋणात्मक हैं, केन्द्रीय कण धनात्मक होना चाहिए। तथाच् ऋणाणु अत्यन्त हल्का है—इसकी मात्रा उदजन अणु के भार का केवल $\frac{१}{१८४०}$ वां अंश है—अतएव केन्द्रीय कण एक भारी कण होगा। अणु के केन्द्र-अथवा नाभि-में स्थिति होने से इस कण को नाभिक (Nucleus) पुकारा जाता है।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में ही, बैकेरल (Bacqueral), श्रीमती और प्रो० क्यूरी आदि ने अपने प्रयोगों द्वारा अनुभव किया कि अणु-तालिका के अन्तिम सदस्यों का निरन्तर, स्वतः विघटन (Disintegration) हो रहा है। इन अणुओं से, कुछ कण और किरणें, रश्मि रूपेण निकलते रहते हैं। आविष्कर्ताओं के पास यह दिखाने के पर्याप्त कारण थे कि यह सक्रियता नाभिकीय कृति है, अतएव प्रकट ही था कि उपर्युक्त कण और किरणें नाभिक से निकलती हैं।

उपर्युक्त क्रिया को रश्मिकरण (Radio activity) कहा जाता है। जिन पदार्थों में यह सक्रियता वर्तमान है, उन्हें रश्मिकर (Radio active) कहा जाता है। इन पदार्थों से, वृहद् वेग से निकलने वाले कणों को तीन वर्गों में विभक्त किया गया है—अल्फा कण, बीटा कण और गामा किरणें।

इस स्थान पर अणु तालिका के विषय में, कुछ कहना आवश्यक होगा। इस तालिका का प्रारम्भ उदजन से होता है। तत्व पदार्थों में से यह सबसे हल्का है। उदजन से प्रारंभ करके हम क्रमशः अधिकतर भारी तत्वों को स्थान देते हैं। इस प्रकार, स्थूलतया, अणु तालिका की व्यवस्था, अणुओं के भारों के आधार पर की जाती है।

उदजन के पश्चात् हैमजन (Helium) की बारी आती है। हैमजन अणु का भार उदजन अणु के भार से चार गुना होता है। तत्पश्चात् क्रमशः बढ़ते बढ़ते हम यूरेनियम (Uranium)* पर पहुँचते हैं। इसका अणु किसी भी अन्य अणु से अधिक भारी है। अतएव यह अणु तालिका का अन्तिम गणक है।

इस प्रकार उदजन से युरेनियम तक कुल ९२ अणु हैं—या होने चाहिए, क्योंकि अभी हमारा परिचय केवल ९० प्रकार के पदार्थों से ही हो पाया है।

ऊपर हम प्रकट कर आए हैं कि अणु तालिका का क्रम निर्धारित करने में अणु-भार एक स्थूल लक्षण है। पर तालिका के अन्त्य तथा आधुनिक क्रम का आधार रश्मि-विश्लेषण का ज्ञान है। इस ज्ञान ने हम पर प्रकट किया है कि विभिन्न अणुओं में वाह्य (परिधि-गत) ऋणाणुओं की संख्या उदजन से युरेनियम तक क्रमशः बढ़ती जाती है। उदजन के नाभिक के चारों ओर घूमने के लिए केवल एक ऋणाणु व्यवस्थित है। हैमजन की परिक्रमा के लिए दो ऋणाणु नियुक्त हैं। ये ऋणाणु संख्या में क्रमशः (एक एक करके) बढ़ते जाते हैं, यहाँ तक कि युरेनियम-नाभिक की परिक्रमा ९२ ऋणाणु करते हैं।

हम ऊपर कह आए हैं कि वैद्युतिक रूप में, एक अणु निरपेक्ष है। ऋणाणुओं के ऋणात्मक आवेश का निराकरण करने के लिए, नाभिक में, धनात्मक आवेश होता है। विभिन्न अणुओं से ऋणाणुओं की विभिन्न, लेकिन निश्चित, संख्याएं सम्बद्ध होने के कारण, नाभिक का धनात्मक आवेश भी एक निश्चित परिमाण का होना चाहिए—और है भी।

इस सम्बन्ध में, प्रारंभिक अनुसन्धानकर्ताओं ने, यह कल्पना की कि नाभिक का निर्माण, धनात्मक आवेश के किन्हीं मौलिक कणों से होता है। इन कणों का भार लगभग उदजन के अणु-भार के बराबर, और आवेश, ऋणाणु के आवेश के बराबर (पर स्वभाव में प्रतिकूल अर्थात् धनात्मक) कल्पित किया गया। और इस प्रकार के कण को नाम मिला परमाणु (Proton) का।

कहना न होगा कि जो गुण परमाणु के विषय में निर्धारित किए गए, वे उदजन के नाभिक में विद्यमान हैं। उदजन की परिधि में केवल एक ऋणाणु है और उसके ऋणात्मक आवेश का निराकरण करने के लिए, उसके नाभिक में, ऋणाणु-आवेश के बराबर, धनात्मक आवेश होना चाहिए। और क्योंकि ऋणाणु का भार अत्यन्त क्षुद्र और नगण्य है, उदजन-नाभिक का भार; लगभग उदजन अणु-भार के ही बराबर है।

ठीक यही परिभाषा हमने 'परमाणु' को दी। अतएव उदजन-नाभिक ही परमाणु है।

हैमजन के अणु का भार-अथवा, यदि ऋणाणुओं के नगण्य भार के उपेक्षित कर दें, तो हैमजन नाभिक का भार-चार परमाणुओं के तुल्य होगा। अतएव इस विचारानुसार हैमजन के नाभिक में ४ परमाणु हैं।

कार्बन की अणु-संख्या (Atomic Number) ६ है और अणुभार १२। ओषजन की अणु संख्या ८ है और अणु भार १६। अतएव कार्बन और ओषजन के नाभिकों में क्रमशः १२ और १६ परमाणु होने चाहिए। और क्योंकि परिधिगत ऋणाणुओं की संख्या पदार्थ की अणु-संख्या के बराबर होती है अतएव ऋणाणु संख्या में क्रमशः ६ और ८ होंगे।

पर इसके अनुसार तो हम एक नई उलझन में फंस गए होते। उदाहरणतया, कार्बन में ६ ऋणाणु होंगे और १२ परमाणु। और क्योंकि ऋणाणु का आवेश परमाणु के आवेश के तुल्य होता है, कार्बन के अणु में धनात्मक आवेश का बाहुल्य होना चाहिए, जहाँ कि वास्तव में

*हिन्दी में इसे कभी कभी 'पिनाकम्' भी लिखा जाता है।

एक कर्बन-अणु निरपेक्ष होता है। इस उलझन से बचने के लिए कल्पना की गई कि परिधिगत ऋणानुओं के अतिरिक्त, नाभिक में भी कुछ ऋणानु होते हैं। कुल मिला कर, ऋणानुओं की संख्या, परमाणुओं की संख्या के तुल्य कल्पित की गई जिससे सारा अणु निरपेक्ष हो।

इस दृष्टिकोण के अनुसार, कुछ अणुओं की बनावट हम निम्नवर्ती तालिका द्वारा प्रकट करते हैं।

कुछ सैद्धान्तिक विज्ञों ने गणित की विषम प्रणालियों, परिपाटियों और साम्यों के प्रयोग से यह सिद्ध किया कि नाभिक में ऋणानु का रहना असंभव है। परन्तु यही सुझाव तो वैज्ञानिक को कुछ प्रकाश दे रहा था जिसके सहारे वह क्रमशः अणु-संसार की समस्या को कुछ कुछ समझने लगा था। अब वैज्ञानिक उसी प्रकाश को कैसे बुझा देता?

| अणु (पदार्थ) | अणु संख्या | अणुभार | परमाणुओं की संख्या | ऋणानुओं की संख्या | |
|---|---|---|---|---|---|
| | | | | परिधि में | नाभिक में |
| उदजन | १ | १ | १ | १ | ० |
| हैमजन | २ | ४ | ४ | २ | २ |
| कार्बन | ६ | १२ | १२ | ६ | ६ |
| ओषजन | ८ | १६ | १६ | ८ | ८ |
| युरेनियम (समस्थ १) | ९२ | २३५ | २३५ | ९२ | १४३ |
| ,, (समस्थ २) | ९२ | २३८ | २३८ | ९२ | १४६ |
| ,, (समस्थ ३) | ९२ | २३४ | २३४ | ९२ | १४२ |

—अब आइए हम रश्मिकरण की चर्चा को फिर जारी करें। हम कह रहे थे कि रश्मिकर पदार्थों से तीन प्रकार के पदार्थ निकलते हैं। अल्फा-कणों के निरीक्षण से, इनमें हैमजन (हीलियम) के नाभिक के लक्षण पाए गए। बीटा-कणों की ऋणानुओं से समानता पाई गई और गामा-किरणों को एक्स-किरणों का ही एक विशिष्ट रूप माना गया।

इस प्रकार, पदार्थ की बनावट का सूक्ष्म-विश्लेषण और रश्मिकरण का ज्ञान, दोनों ने सिद्ध किया कि परिधि-ऋणानुओं के अतिरिक्त, नाभिक में भी ऋणानु हैं।

पर जिस सिद्धान्त का दो प्राकृतिक क्रियाओं ने समर्थन किया, वह भी अधिक देर जीवित न रह सका।

इस समस्या में व्यस्त, जब वैज्ञानिक अपना सिर खुजला रहे थे, एक नई दिशा में उन्हें प्रकाश की एक रेखा दीख पड़ी। यह प्रकाश की रेखा थी; बैथे और बैकर (Bethe & Becker) का प्रयोग जो १९३० में सम्पन्न हुआ। इन विज्ञों ने बोरॉन (Boron) बैरिलियम (Beryllium) सरीखे, अल्प भार अणुओं पर, रश्मिकर पदार्थों से निकले अल्फा कणों से प्रहार किया। भारी अणुओं पर ऐसे प्रयोग पहले ही किए जा चुके थे, और आघात के पश्चात् प्रहारित पदार्थ में से, परमाणु, अल्फा-कण आदि परिचित कण निकलते देखे जा चुके थे पर प्रस्तावित प्रयोग में, आघात के पश्चात् एक विचित्र कण ने दर्शन दिए। यह एक आवेश-हीन कण था जिसका भार परमाणु-भार के तुल्य था।

निस्सन्देह एक नए कण का अविष्कार हुआ, जिसका वैज्ञानिक-क्षेत्रों ने, सहर्ष स्वागत किया। निरावेश होने से,इस कण का नाम नयाणु (Neutron) रखा गया।

नयाणु के स्वागत का कारण स्पष्ट है—इसके आविष्कार के एक ही वर्ष पूर्व हाइटलर और हाइजनवर्ग (Heitler & Heizenberg) ने फिर दर्शाया कि नाभिक की परमाणु-ऋणाणु योग के आधार पर खींची गई रूप-रेखा अपर्य्याप्त है। तद्विपरीत, उनके विचारानुसार नाभिक में उपस्थित कणों की संख्या—उनका स्वभाव चाहे कुछ ही हो—अब तक वैकल्पित परमाणुओं की संख्या के बराबर होनी चाहिए थी। अर्थात् कार्बन के नाभिक में केवल १२ कण होंगे, न कि १८ (१२ परमाणु व ६ ऋणाणु, जैसा प्रथम तालिका में प्रकट किया गया है)।

वास्तव में बैथे और बैकर के प्रयोग का परिणाम नयाणु का अविष्कार न था; केवल इससे एक नए कण की विद्यमानता की आशंका मिली, जिसकी वैद्युतिक निरपेक्षता में तो संशय न था, पर अन्यथा इसका स्वभाव न जाना जा सका। १९३१ में डिराक व पाउली (Dirac & Pauli) ने इस कण के लक्षणों के विषय में, सैद्धान्तिक आधार पर, भविष्यवाणी की। १९३२ में चाडविक (Chadwick) ने प्रयोग द्वारा सिद्ध किया कि नव-आविष्कृत कण के लक्षण वैकल्पित कण के समान हैं। ये कण नाभिक से निकलते देखे गए। अब समस्या थी इन्हें नाभिक के रेखाचित्र में यथार्थ स्थान पर स्थापित करना।

पर यह कोई कठिन समस्या न थी। हम ऋणाणु को नाभिक से निकालना चाहते थे। तो क्या नयाणु उनके रिक्त स्थान में पदार्पण नहीं कर सकेंगे?

अवश्य, पर उन्हें विशेष व्यवस्था में रहना पड़ेगा।

नाभिकीय कणों—अथवा नाभिकणों से केवल यही वाँछित है कि,

(१) उनका सामूहिक आवेश धनात्मक हो, और परिमाण में परिधि-गत ऋणाणुओं के सामूहिक ऋणात्मक आवेश के तुल्य हो।

(२) उनकी सामूहिक मात्रा (mass) पदार्थ के अणुभार के लगभग हो।

इन शर्तों को हमें परमाणुओं और नयाणुओं की सहायता से पूरा करना है। प्रथम आवश्यकता की पूर्ति नाभिक के परमाणुओं की संख्या, परिधि-ऋणाणुओं की संख्या के तुल्य निर्धारित करने मात्र से हो जाती है। अतएव कार्बन के नाभिक में केवल ६ परमाणु होंगे, पूर्व कल्पित १२ नहीं।

दूसरी आवश्यकता को पूरा करने के लिए परमाणुओं और नयाणुओं की सामूहिक संख्या, पदार्थ के अणुभार के तुल्य होनी चाहिए। कार्बन का अणुभार १२ है, अतएव उसके नाभिक में १२ कण होने चाहिए। अतएव नयाणुओं की संख्या १२—६ = ६ होगी।

इसे हम एक दूसरे उदाहरण द्वारा अधिक स्पष्ट करेंगे। एलूमीनियम का अणु भार २७ है और इसकी अणुसंख्या १३। अतएव :—

(क) इसकी परिधि में १३ ऋणाणु होंगे,

(ख) नाभिक में, तदनुसार, १३ परमाणु होंगे, और

(ग) नाभिकीय नयाणुओं की संख्या, २७-१३ = १४ होगी।

इस प्रकार, अणु का निर्माण, ऋणाणु, परमाणु और नयाणु नामक तीन कणों के आधार पर होता है।

अमेरिका के एक विज्ञ, एण्डरसन (Anderson) ने, इसी काल में, एक और कण से परिचय प्राप्त किया। इसका साक्षात्कार उन्हें विल्सन वाष्पागार (Wilson Cloud Chamber) नामक यन्त्र में हुआ, जब कि ये विश्व किरणों (Cosmic Rays) के विषय में पर्यवेक्षण ले रहे थे। मज़े की बात यह है कि १९३१ में—अर्थात् इस कण के प्रथम साक्षात्कार से एक वर्ष पूर्व—डिराक ने इसकी सत्ता की भविष्यवाणी की थी।

यह नया कण ऋणाणु का सहोदर सा था। इसकी मात्रा ऋणाणु की मात्रा के तुल्य थी। इसका आवेश धनात्मक था और परिमाण में ऋणाणु के आवेश के तुल्य। यह कण धनाणु (Positron) कहलाया।

विज्ञान में कोई नई खोज सदा सर्वदा वांछनीय और स्वागत-पात्र होती है। पर जब हम उसे विज्ञान के मानचित्र में यथा-स्थान स्थापित कर देते हैं और मानचित्र का पुनः सूक्ष्म निरीक्षण करते हैं तो हमारे सम्मुख अनेक

विचित्र उलझने आ खड़ी होतीं हैं। नाभिक में नयाणु का प्रवेश एक सुखद घटना थी। पर इसने एक नई समस्या को जन्म दिया।

हम ऊपर कह चुके हैं कि रश्मिकरण के दौरान नाभिक से बींटा-कणों के रूप में, ऋणानु निकलते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि नाभिक में तो केवल परमाणु और नयाणु उपस्थित हैं, फिर ऋणानुओं की विस्मृति कैसे होती है? "नाभावो विद्यते सतः" के सर्वमान्य सिद्धान्त के यह विरुद्ध आशय था।

अब इस समस्या को सुलझाने के लिये वैज्ञानिक लोग लगे अटकल लड़ाने। अनेक नए सिद्धान्तों का जन्म हुआ। उन सब के विस्तार में न पड़ कर हम केवल उस विचार का उल्लेख करेंगे जो भावी कठिनाइओं से टक्कर खाने योग्य दृढ़ता रखता था।

इस विचार के सूत्रधार, एक जापानी विज्ञ युकावा थे। उनकी धारणा थी कि नाभिक में, परमाणु और नयाणु की स्वतंत्र सत्ता नहीं। नाभिक का आन्तरिक भाग अत्यन्त उत्पातमय है, जिसमें परमाणु और नयाणु निरन्तर एक दूसरे का रूप धारण करते रहते हैं। इस परिवर्तन का आधार एक कण है जो नयाणु से परमाणु में, और परमाणु से नयाणु में जाता रहता है।

विद्युत् विज्ञान का यह सामान्य सिद्धान्त है कि समस्वभाव आवेश परस्पर निराकरण करते हैं। हमारे नाभिक के चित्र में केवल परमाणु ही आवेशित कण है। सभी परमाणुओं में समान प्रकार का (धनात्मक) आवेश होने के कारण, परस्पर अपकर्षण होगा। तदनुसार नाभिक अस्थिर होगा। पर युकावा ने सिद्ध किया कि इस अपकर्षण का निराकरण करने के लिए नाभिक में एक अन्य बल (Force) भी क्रियाशील है। इस बल की उत्पत्ति, पूर्वकथित कण के, परमाणुओं और नयाणुओं के बीच निरन्तर विनिमय से होती है। इस बल को, इसलिए, विनिमय बल (Exchange Force) कहा जाता है।

युकावा एक कदम आगे गया। उसने प्रस्तावित किया कि परस्पर विनिमय के दौरान में, संभव है, कभी यह विनिमय कण नाभिक से निकल भागे। "यदि मेरा सुझाव ठीक है," युकावा ने कहा," "तो हमें अपने प्रयोगों में, इस विनिमय-कण से परिचय मिलना चाहिए। इस घटना की सम्भावना कम नहीं। पर आज तक पार्थिव विज्ञ इस कण का दर्शन नहीं कर सके। इसलिए, हो सकता है, मेरा सिद्धान्त गलत हो!"

यह उद्गार केवल युकावा की आडम्बर हीनता और नम्रता के उज्ज्वल उदाहरण हैं। पर उसके सिद्धान्त की दृढ़ता सिद्ध होने में भी अधिक देर न लगी। १९३७ में एण्डरसन ने, विश्वकिरणों के ही पर्यवेक्षणों के दौरान, इस कण का भी साक्षात्कार किया।

मात्रा (Mass) में यह कण लगभग १८० ऋणानुओं के तुल्य है, अर्थात् परमाणु का लगभग दशमांश। युकावा के सिद्धान्त के अनुसार, और एण्डरसन तथा अन्य विज्ञों के पर्यवेक्षणों के अनुसार भी यह कण धनात्मक तथा ऋणात्मक दोनों प्रकार का हो सकता है, तथा आवेश हीन भी। युकावा द्वारा प्रस्तावित कण को युकोन आदि अनेक नाम मिल चुके हैं, पर अब यह मध्याणु (Mesotron) कहलाता है, क्योंकि मात्रा के लिहाज से यह परमाणु और ऋणानु के मध्य स्थित है।

यह मध्याणु एक विचित्र कण है। यह अत्यन्त अल्प जीवी है। $२ \times १०^{-६}$ सैकेंड के अन्दर इसका क्षय हो जाता है—क्षय कहिए अथवा विघटन, क्योंकि वास्तव में इसके क्षय होने पर दो कण वृहत् वेग से निकलते हैं। इनमें से एक तो ऋणानु या धनानु होता है, दूसरा इसी परिमाण का आवेश हीन कण जो निस्राणु (Neutrino) कहलाता है। रश्मिकरण के दौरान, वास्तव में, एक मध्याणु, नाभिक से निकल भागता है। पर क्षणोत्तर में, यह मध्याणु, ऋणानु (या धनानु) और निस्राणु में विघटित हो जाता है। आवेश हीनता और नगण्य मात्रा के कारण निस्राण तो प्रायः अलक्षित ही रहता है, पर दूसरा कण, बीटा कण के रूप में दर्शन देता है। इस प्रकार युकावा का सिद्धान्त रश्मिकरण की एक उलझन को बड़ी उत्तम रीति से सुलझाता है। यदि हम नाभिकीय-विज्ञान के सूक्ष्म पक्षों पर भी प्रकाश डालें तो प्रकट होगा कि युकावा के इस नए कण, मध्याणु, ने अनेक अन्य प्रश्नों का भी बड़ा सरल और मनोरंजक उत्तर दिया है।

पर समस्त समस्याओं को हल करने वाला यह कण स्वयं एक विचित्र समस्या है। हमारे भौतिक संसार के नियन्त्रण में यह कण विशेष हस्तक्षेप करता है। अतएव वैज्ञानिक इसके विषय में अपनी जानकारी बढ़ाने में बड़े उत्सुक हैं। पर आध्यात्मिकता में, जिस प्रकार ईश्वर के स्वरूप को जानने के इच्छुक दार्शनिक अन्त में इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि उसे कोई नहीं जान सकता, १२ वर्ष के निरन्तर अनुसन्धान के पश्चात् आज विज्ञों की भी मध्याणु के विषय में कुछ ऐसी ही धारणा है। मध्याणुओं की क्रियाओं और चेष्टाओं को नियमबद्ध करने के लगभग सभी प्रयत्न असफल गये हैं।

सिद्धान्त तो सिद्धान्त, नए नए प्रयोग भी वैज्ञानिकों को उलझन में डाल रहे हैं। कुछ काल पूर्व, प्रयोग शालाओं में, साइक्लोट्रोन के निकट मध्याणुओं के समान कण देखे गए जो मात्रा में छोटे थे। उस समय यह प्रश्न उठा, क्या मध्याणु विभिन्न भारों के हैं?

अभी हाल ही में, आकिएलिनि व पावेल (Occhiallini & Powell) ने विश्व किरणों के ही परीक्षण के दौरान एक ऐसे मध्याणु को लक्षित किया है, जिसकी मात्रा ऋणाणु भार के १८० गुणा के स्थान पर ३१० गुणा है। ऐसे कणों का लारेंस (Lawrence) ने भी, साइक्लोट्रोन के निकट, साक्षात्कार किया है। ये कण 'वृहत् मध्याणु' पुकारे जाते हैं और, धनात्मक तथा ऋणात्मक दोनों श्रेणियों से सम्बद्ध हैं।

पिछले ही वर्ष १९४७ में, डा० ब्लैकट (Blackett) (जिन्हें इसी वर्ष भौतिकी में नोबेल पुरस्कार मिला है) की प्रयोगशाला में रोचैस्टर और बटलर (Rochester & Butler) ने एक ऐसे कण का साक्षात्कार किया जो परमाणु का आधा है। अर्थात् उसकी मात्रा ९०० ऋणाणुओं के तुल्य है। यह कण धनात्मक तथा ऋणात्मक स्वभाव के अतिरिक्त आवेशहीन भी होता है। इसे भी स्वतंत्र नाम की आवश्यकता है पर अभी तो यह "अति वृहद् मध्याणु" ही कहलाता है।

'वृहद् मध्याणु' और 'अति वृहद् मध्याणु' ने मध्याणुओं की गाथा को और भी रोचक, मनोरंजक लेकिन जटिल बना दिया है। जब तक विज्ञ लोग इनसे उलझते हैं, हम नाभिक-विज्ञान के एक अन्य पक्ष का अवलोकन करते हैं।

विज्ञान केवल नियमबद्ध ज्ञान है। अतएव वैज्ञानिक प्रकृति के अध्ययन में सदा नियन्त्रण की खोज में रहते हैं, प्रत्येक क्रिया एक नियम विशेष की शृंखला होनी चाहिए और प्रत्येक कण एक नियमबद्ध परिवार का सदस्य होना चाहिए।

पूर्व कथित कणों को नियमबद्ध करने के लिए हम तीन कक्षाएँ बनाते हैं:

(i) ऋणाणु कक्षा
(ii) मध्याणु कक्षा
(iii) परमाणु कक्षा

ऋणाणु कक्षा में ऋणाणु (Electron) धनाणु (Positron) और निरणु (Neutrino), तीनों प्रकार के कण—ऋणात्मक व धनात्मक आवेश के, और आवेश हीन—विद्यमान हैं। मध्याणु भी तीनों प्रकार के लक्षित किये जा चुके हैं। पर अन्तिम कक्षा, परमाणु कक्षा में, केवल धनात्मक और निरावेश कण ही मिलते हैं। यह नियम हीनता विज्ञों को अखरती है—ऋणात्मक परमाणु अनुपस्थित क्यों हैं?

नियम पूरता के लिए विज्ञ इनकी संभावना के सिद्धान्त बना रहे हैं। आयरिश गणितज्ञ मैक्कानल (Meconnell) ने गणित की प्रणालियों के आधार पर सिद्धान्त रखा है कि प्रत्येक १०००० परमाणुओं में ६ ऋणात्मक होते हैं।

तथाच एक डच विज्ञ, नील्ज आर्ले (Niels Arley) ने भी ऋणात्मक परमाणुओं की विद्यमानता में विश्वास प्रकट किया है। उनका विचार है कि प्राथमिक (Primary) विश्व किरणों में, + त्मक और — त्मक दोनों प्रकार के परमाणु विद्यमान हैं और संख्या में समान। एक दो प्रयोग शालाओं में उनकी सत्ता भी लक्षित की गई है। पर अभी उनकी सत्ता निर्णीत नहीं।

आगामी युग में वैज्ञानिक और दार्शनिक, प्रकृति के इन कणों के स्वभाव, सत्ता, और महत्व के विषय में क्या-क्या धारणाएँ बनाते हैं, यह भविष्य के कथानक बताएँगे।

# आकाश-गंगा

[ लेखकः—उदित नारायणसिंह एम० ए० ]

मानवता के प्रथम उन्मेष से ही मनुष्य अनन्त आकाश के अन्तराल को अनवरत प्रकाशित करने वाले सहस्रों नक्षत्र समूहों और तारिकाओं को आश्चर्य और कुतूहल के साथ देखता आ रहा है। सृष्टि के इस अद्भुत चमत्कार की मीमान्सा अपनी कल्पना और बुद्धि के अनुसार उसने भिन्न-भिन्न प्रकार से की है। कवियों को इन झिलमिल तारों ने सौन्दर्य बोध का अमर सन्देश दिया है। दार्शनिकों ने नक्षत्र-लोक की व्यापकता के आधार पर विराट् की चिरन्तन कल्पना की है—जीवन संग्राम के पराभूत, विपन्न और असहाय नर-नारियों ने अपने 'भाग्य-चक्र के नियन्ता' इन 'दिव्य-शक्तियों' की ओर कातर दृष्टि से देख देख अपने अचिन्त्य विषाद का अन्तिम विसर्जन करने की चेष्टा की है और ज्योतिर्विदों ने रात-रात भर जाग कर इनकी गति का सूक्ष्म निरीक्षण करते हुए इनकी जीवन यात्रा के अज्ञात मार्ग को जानने का प्रयत्न किया है। किन्तु नक्षत्र-लोक के रहस्योद्घाटन में वास्तविक सफलता कुछ अंश तक आधुनिक विज्ञान को ही मिली है।

सूर्य तथा उसके चारों ओर घूमने वाले ग्रहों की गति विधि के विषय में प्राचीन काल से ही बहुत सी बातें ज्ञात हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि सौर मण्डल के ग्रह पृथ्वी से अपेक्षाकृत कम दूरी पर स्थित होने के कारण नक्षत्रों की पृष्ठ-भूमि में स्थान परिवर्तन करते हुए देखे जा सकते हैं। इस तरह कुछ वर्षों के लगातार निरीक्षण के बाद उनकी गति के विषय में प्रमुख बातें मालूम होती गईं। भूगोल का साधारण विद्यार्थी भी अब यह जानने लगा है कि सभी ग्रह अपनी अपनी अवधि के अनुसार सूर्य के चारों ओर चक्कर काटा करते हैं। पर अपने ग्रहों की इस अवधि दौड़ से घिरा हुआ हमारा सूर्य आकाश में किसी विशिष्ट स्थान पर निर्विकार रूप से स्थिर है, अथवा वह भी ग्रह-समूहों को साथ लिए नियति के किसी व्यापक विधान से विवश हो इस विस्तृत ब्रह्माण्ड में निरन्तर भ्रमण कर रहा है—इन प्रश्नों का उचित उत्तर बहुत दिनों तक नहीं मालूम था और आज भी शायद सर्व-साधारण को नहीं ज्ञात है। फिर तो आकाश की अटल गहराई में झिलमिलाते हुए तारों और नक्षत्रों के विषय में—पचासों वर्षों तक देखने पर भी जिनमें किसी प्रकार की गति का भान सरलता पूर्वक नहीं हो पाता और जिनकी दूरी पृथ्वी से सूर्य की दूरी से सहस्रों गुनी अधिक है—यदि हम लोगों को बहुत काल तक कुछ नहीं मालूम था तो उस पर आश्चर्य नहीं। और आज भी अच्छी दुरबीनों के सहारे उनका निरीक्षण करके हम जो कुछ जान सके हैं वह बहुत ही थोड़ा है—नगण्य जैसा। वस्तुतः उनके विषय में हमारा जो भी ज्ञान है वह रश्मि-विश्लेषण के आश्चर्य-जनक सिद्धान्तों की सहायता के कारण है और ये सिद्धान्त इस विश्व में नियति के अद्भुत व्यापारों का जिस विश्वास के साथ रहस्योद्घाटन कर रहे हैं उससे हमारे वर्तमान ज्योतिष शास्त्र को एक नई गति मिली है। तो सूर्य-लोक के बाहर स्थित तारों और नक्षत्र-समूहों के रश्मि-विश्लेषण से जो सबसे प्रमुख बात मालूम हुई वह यह कि सौर-मण्डल की कोई स्वतन्त्र-योजना तथा व्यवस्था नहीं है वरन् यह भी असंख्य तारों के एक विकराल संघटन का एक भाग है। तारों के इस अपूर्व संघटन को जिसमें हमारा सौर मण्डल भी सम्मिलित है—आकाश-गंगा कहा जाता है!

अँधेरी रात में आकाश को दो भागों में बांटती हुई धुँधले बादलों की ध्वस्त शृंखला जैसी एक आलोक-धारा किसी भी व्यक्ति का ध्यान अपने आप आकर्षित कर लेती है। प्रथम दृष्टि में ऐसा ज्ञात होता है कि एक दुग्ध-धवल धूमिल आभा आकाश के एक छोर से दूसरे छोर तक वह उठी हो। शायद यही कारण है कि हमारे पूर्व पुरुषों ने इस छायापथ को आकाश-गंगा का नाम दे दिया। यह आकाश-गंगा ब्रह्माण्ड की मेखला जैसी संसार को घेरती हुई आकाश में प्रायः उत्तर से दक्षिण तक फैली

रहती है और सालभर रात के किसी समय देखी जा सकती है। ध्यान से देखने पर मनोरम आभा के बीच छोटे २ बहुत से तारे एक दूसरे से मिले हुए चमकते मालूम होते हैं और यदि दुरबीन की सहायता से इसका निरीक्षण किया जाय तो इसमें असंख्य तारे समूहों में और अलग अलग दिखाई पड़ेंगे। पर आकाश-गंगा की वास्तविक रूपरेखा क्या है इसका निर्माण कब और कैसे हुआ तथा विश्व में इसका क्या स्थान और महत्व है एवं हमारे सूर्य-मंडल का इससे क्या सम्बन्ध है—इन प्रश्नों पर विचार करने के लिए हमें देश और काल के माप की इकाइयों का एक दूसरा रूप निर्धारित करना आवश्यक है।

विश्व में सबसे अधिक तीव्र वेग से प्रकाश-रश्मियाँ चलती हैं। इनकी गति प्रति सेकन्ड करीब १ लाख ८६ हजार मील है। सापेक्षावाद के सिद्धान्त ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि संसार के किसी भी भौतिक पदार्थ की गति किसी भी प्रकार प्रकाश-रश्मियों की इस गति से तीव्र-तर नहीं हो सकती। तो इस गति से लगातार एक साल चलकर जितनी दूरी तय की जा सकती है, उस दूरी को इकाई मान कर उसे एक प्रकाश-वर्ष कहते हैं। तारे एक दूसरे से इतनी दूर हैं कि दूरी नापने की साधारण इकाइयों में उनकी दूरी आँकना बहुत ही असुविधा जनक होता है और इसीलिए ज्योतिविंद प्रकाश-वर्ष की इकाई का प्रयोग करते हैं। पुराने समय से नक्षत्रों को उनकी चमक के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में विभाजित किया गया है। सबसे चमकीले करीब बीस तारे प्रथम श्रेणी में रखे गये हैं, उनसे थोड़े कम चमकीले-तारे द्वितीय श्रेणी में और इसी प्रकार किसी यन्त्र की सहायता के बिना केवल आँख से दिखाई दे सकने वाले तारों में जो सबसे कम चमकीले हैं उन्हें छठवीं श्रेणी में रखा गया है। यह विभाजन केवल तारों की वाह्य प्रभा के आधार पर किया गया है। इससे उनके आकार का कोई सम्बन्ध नहीं।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, हमारी आकाश गंगा नक्षत्रों की एक नीहारिका है। सहस्रों तारे, समूहों में तथा अलग अलग इस नीहारिका में बिखरे पड़े हैं। हमारा सूर्य भी अपने ग्रहों के साथ इसी नक्षत्र-लोक में सम्मिलित है। आधुनिक गवेषण के परिणाम स्वरूप हमें आकाश गंगा के आकार प्रकार तथा इसके भीतर केन्द्रित और बिखरी हुई द्रव्यराशि के परिमाण के विषय में काफी विश्वसनीय बातें ज्ञात हैं। यह नीहारिका बहुत फैली हुई तथा विस्तृत है और इसकी बनावट बीच में कुछ उभरी हुई और बाहर की ओर चिपटी सी है।

इसका व्यास करीब १ लाख प्रकाश वर्ष के बराबर है। इसके केन्द्र से करीब ३० हजार प्रकाश वर्ष की दूरी पर सूर्य स्थित है। सूर्य के भीतर जितनी द्रव्य-मात्रा है उससे करीब २० अरब गुनी अधिक द्रव्य-मात्रा आकाश गंगा में है। आकाश गंगा का केन्द्र धनु-राशि के नक्षत्र समूह की दिशा में है, और सम्पूर्ण आकाश गंगा अपने केन्द्र के चारों ओर कुम्हार के चक्के की तरह तीव्र गति से घूमती रहती है। यदि आकाश गंगा इस प्रकार घूमती न रहती तो उसका इस तरह विस्तृत होना शायद सम्भव न होता क्योंकि तब इसके बाहर के हिस्से इसके साथ जुट कर न रह सकते। आकाश-गंगा की आधी द्रव्य-मात्रा केन्द्रीय भाग में सम्मिलित है और बाहरी हिस्सा अपेक्षाकृत पतला तथा क्षीण होता गया है। हमारा सूर्य इसी पतले हिस्से की ओर स्थित है और इस भाग की प्रभा बाहर से देखने पर एक छठवीं श्रेणी के तारे के आलोक के बराबर प्रतीत होती है। आकाशगंगा के सभी भाग इसके केन्द्र के चारों ओर चक्कर काटते रहते हैं लेकिन वह घूमना किसी ठोस पहिये के घूमने की तरह नहीं होता। वस्तुतः केन्द्र के पास का हिस्सा दूर वाले हिस्से से अधिक तीव्रता के साथ घूमता रहता है और ज्यों ज्यों केन्द्र से बाहर की ओर बढ़ते जायँ घूमने की गति कम होती जाती है। केन्द्र के चारों ओर सूर्य के घूमने की गति १५० मील प्रति सेकण्ड है। हमारा सूर्य अपने आश्रित ग्रहों के साथ आकाश गंगा के केन्द्र के चारों ओर जितने समय में एक चक्कर पूरा करता है उसे हम एक ब्रह्म-वर्ष कहते हैं। एक ब्रह्मवर्ष बीस करोड़ साधारण वर्षों के बराबर होता है।

## आकाश गंगा की बनावट

आकाश गंगा के भीतर क्या होता है? चक्र की तरह निरन्तर घूमती हुई इस नीहारिका के अन्तराल में क्या

क्या वस्तुएँ हैं और उनमें परस्पर क्या सम्बंध है—इन मनोरंजक प्रश्नों पर भी काफी प्रकाश आधुनिक विज्ञान ने डाला है। हम पहले इसके भीतर पड़े हुये तारों और नक्षत्र समूहों के विषय में विचार करेंगे। हमारा सूर्य आकाश गंगा के केन्द्र से इतना दूर है कि हम लोग भली भाँति इस नीहारिका के अन्तः प्रदेश का निरीक्षण नहीं कर सकते। सूर्य से प्रायः दस हजार प्रकाश वर्ष की दूरी तक के नक्षत्र लोक का अनुसंधान कुछ सफलता के साथ हो सका है। आकाश गंगा में अलग अलग अकेले तारे भी बिखरे पड़े हैं और जगह जगह कई तारों का समूह भी बन गया है। एक समुदाय के सभी तारे हमेशा साथ साथ रहते हैं और समानान्तर एक ही गति से चलते हैं। इन नक्षत्रों की बनावट तथा उनका आकार-प्रकार प्रायः हमारे सूर्य के ही समान है। पर इसका यह अर्थ नहीं कि सभी तारे सूर्य के बराबर ही हैं। कितने दैत्याकार तारे तो सूर्य से भी शत-गुने अधिक बड़े हैं। पर इन तारों के असाधारण तापक्रम, उनके प्रकाश तथा उनके भीतर भरी हुई भयंकर शक्ति के विषय में हम आसानी से अनुमान कर सकते हैं, यदि अपने सूर्य की आन्तरिक बनावट का हमें कुछ ज्ञान हो। इसलिये सूर्य के विषय में कुछ ज्ञातव्य बातें हम यहाँ संक्षिप्त रूप से दे देते है। सूर्य हमारी पृथ्वी से करीब दस लाख गुना बड़ा है। सूर्य की सतह का तापक्रम ६००० से० ग्रे० है और वह तापक्रम सूर्य के अन्तः प्रदेश में क्रमशः बढ़ता ही गया है यहाँ तक कि उसके केन्द्रीय भाग का तापक्रम २ करोड़ अंश से० ग्रे० है। सूर्य के प्रकाश और उसकी गर्मी के कारण ही पृथ्वी पर मनुष्य जीवन सम्भव है इसलिये हमारे लिये प्राण शक्ति के इस महान उद्गम के विषय में जानने का कुतूहल होना बहुत ही स्वाभाविक है। सूर्य के भीतर इतना भीषण तापक्रम किस प्रकार सम्भव हो सका—उस-की इस भयंकर गर्मी का कारण क्या है तथा दिन रात प्रकाश के रूप में उसकी अपार शक्ति के शून्य में बिखरने का क्रम कब से प्रारम्भ हुआ और कब तक चलता रहेगा—ये बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न हैं और इनकी मीमांसा में विज्ञान को पर्याप्त सफलता भी मिली है। सूर्य के जन्म का भी इतिहास है और उसकी अवश्यम्भावी मृत्यु की भविष्यवाणी ज्योतिषियों ने की है। पर ये प्रश्न प्रस्तुत लेख के विषय नहीं हैं। यहाँ इस ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है कि यह अनुमान कि सूर्य के भीतर किसी प्रकार के रासायनिक ईंधन के जलने के क्रम में यह प्रचण्ड गर्मी उत्पन्न हुई, सर्वथा मिथ्या है। यह तो परमाणु के केन्द्र में निहित प्रचण्ड शक्ति (जिसके सिद्धान्त के आधार पर ऐटम बम का निर्माण हुआ है) का चमत्कार है। इतने अधिक तापक्रम में किसी भी द्रव्य के परमाणु के केन्द्रक अलग होकर भयंकर गति से इधर उधर दौड़ने लगेंगे। सूर्य के भीतर हाइड्रोजन और कार्बन के केन्द्रक अपनी उद्भ्रान्त दौड़ में एक दूसरे से टकराते रहते हैं और उसकी प्रतिक्रिया अन्य परमाणु की अपार शक्ति ही सूर्य को गरम तथा प्रकाशित करती रहती है। यही क्रम अन्य तारों के भी प्रकाश का कारण है। इसे इस प्रकार समझ लिया जाय कि इन तारों में प्रत्येक के भीतर कोटि कोटि परमाणु बमों का विस्फोट निरन्तर एक साथ ही हो रहा है। ये तारे अपने चारों ओर बहुत ही गरम वायुमण्डल से घिरे हुये हैं पर उनके वायुमण्डल की उष्णता उनके केन्द्रीय भाग की अपेक्षा काफी कम है। तारों के भीतर के द्रव्य का अधिकांश तो हमारी पृथ्वी पर ही पाये जाने वाले पदार्थ हैं जैसे हाइड्रोजन, जो करीब करीब सभी तारों में पायी जाती है, हीलियम, लोहा, केल्शियम, इत्यादि। पर वे उसी रूप में वहाँ नहीं है जिस रूप में पृथ्वी पर। इनके अतिरिक्त कुछ तारों के भीतर ऐसे तत्त्वों के वर्तमान होने का आभास मिलता है जिन्हें हम पृथ्वी पर नहीं पाते। मृगशीर्ष नक्षत्र के तारों में कुछ इस प्रकार के तत्व हैं।

आकाश-गंगा में स्थित नक्षत्रों को कई श्रेणी में उनकी सतह के तापक्रम के आधार पर विभाजित किया गया है। इन विभागों के नामकरण अंग्रेजी वर्णमाला A, B, C, O, M, आदि के आधार पर किया है। सबसे गरम तारे O विभाग के हैं। इनका तापक्रम १,००,००० से० ग्रे० तक होता है। B—विभाग के तारे भी काफी गरम होते हैं। इनका तापमान २५,००० तक होता है। इनमें हीलियम और हाइड्रोजन गैस होती है। A तारों

का तापक्रम कम होता है तथा इनमें हाइड्रोजन बहुत कम और हीलियम अत्याधिक होता है। हमारा सूर्य G विभाग का तारा है जिसमें कैल्शियम, लोहा और मैग्नेशियम पाये जाते हैं। भिन्न भिन्न श्रेणियों के तारों की आकाश-गंगा के भीतर घूमने की गति और पथ में भी अन्तर है। B तारे केन्द्र के चारों ओर करीब करीब वृत्ताकार पथ पर घूमते हैं। A तारे प्रायः एक समूह में घूमते हैं और बौनी तारिकायें प्रायः सभी दिशाओं में तीव्रगति से घूमती रहती हैं। इससे यह अनुमान करना कि जितने ही बड़े तारे हों उतना ही वृत्ताकार उनका पथ होगा ठीक नहीं, क्योंकि M समूह के तारे जिनका वजन हमारे सूर्य से पाँच गुना अधिक है, विचित्र ढंग से इधर उधर घूमा करते हैं। विभिन्न प्रकार के तारों की गति की इस विषमता तथा स्वतन्त्रता से यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि आकाश-गंगा अपने वर्तमान रूप में दस हजार ब्रह्मवर्षों से कम समय से ही है क्योंकि अधिक समय से यदि यह नक्षत्र-लोक इसी प्रकार घूमता रहता तो तारों की गति-शक्ति के परस्पर आदान प्रदान से उनकी गति की स्वतन्त्रता बहुत कुछ नष्ट हो जाती।

आकाश-गंगा की रूपरेखा, इसकी आन्तरिक बनावट अथवा इसके भीतर स्थित-नक्षत्र समूहों में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। पहले तो विभिन्न नक्षत्र अपनी स्वतन्त्र गति के अनुसार अपना स्थान बदलते रहते हैं। उनकी गति में प्रति सेकण्ड एक मील का अन्तर भी दस लाख वर्ष में उन्हें एक दूसरे से ५ प्रकाश वर्षों की दूरी पर अलग कर देगा। इस प्रकार पहले के तारक समूह विनष्ट हो सकते हैं, नये फिर से बन सकते हैं और सम्पूर्ण निहारिका के सर्पिल रूप में असाधारण परिवर्तन हो सकते हैं। यह जानने पर कि आकाश-गंगा के तारे स्थान परिवर्तन करते रहते हैं यह सहज प्रश्न उठता है कि किसी तारा के हमारे सूर्य के समीप आकर इसकी गति तथा मार्ग में प्रचुर परिवर्तन करने की क्या सम्भावना है? तारों की गति के विषय में हमारा जो ज्ञान है उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि किसी तारा के सूर्य के इतना समीप आजाने की जितना 'नेपच्यून'* है बहुत कम सम्भावना है। शायद १० ब्रह्मवर्षों में एक बार ऐसा हो! और ऐसे होने पर सारे सौर-मण्डल पर कोई विशेष प्रभाव भी नहीं पड़ेगा। अपने ग्रहों के साथ सूर्य निरापद अपनी यात्रा करता रहेगा। उसकी गति की दिशा में अधिक से अधिक २० अंश का अन्तर आ सकता है। आकाश-गंगा के जिस भाग में सूर्य स्थित है उसमें तारे एक दूसरे से इतने दूर हैं कि किसी तारे का हमारे सूर्य से आकर भिड़ जाना बहुत ही असम्भव है। शायद ही २० पद्म वर्षों में अथवा एक अरब ब्रह्म वर्षों में एक बार ऐसा हो। हमारी पृथ्वी पर प्राणि-संहार कदाचित् उसके पहले ही सूर्य के तापक्रम में थोड़ा अन्तर हो जाने के कारण सम्भव हो सकेगा।

यह तो हुई विभिन्न तारों की एक दूसरे की गति पर प्रभाव डालने की बात। अब इस प्रश्न पर विचार करना आवश्यक है कि आकाश गंगा के अन्तर्गत जो नक्षत्र-समूह हैं उनके संघटन में भी किसी प्रकार परिवर्तन होता है कि नहीं। सूर्य के समीप के नक्षत्र पुँजों का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि आकाश गंगा का केन्द्रक तारों को अपनी ओर खींचता रहता है। अतः जो तारक-समूह केन्द्रक के समीप होते हैं उन पर यह आकर्षण अधिक प्रबल होता है। यदि किसी तारा पर उसके समुदाय के आकर्षण से केन्द्रक का आकर्षण प्रबल हुआ तो वह अपने समूह से अलग चला जायगा और परिणाम-स्वरूप उस समूह में और भी परिवर्तन हो सकते हैं। कालान्तर में ऐसा भी हो सकता है कि निहारिका के केन्द्रक का आकर्षण अपने ही से किसी तारक-समूह में विच्छेद न पैदा कर सके पर अकस्मात् किसी बड़े नक्षत्र के पास आ जाने से उस तारक समूह के दो एक तारों की समानान्तर गति में परिवर्तन हो जाय और वे एक दूसरे के विपरीत चलने लगें। इस दशा में केन्द्रक

*नेपच्यून सूर्य के चारों ओर घूमने वाला एक ग्रह है। अन्य ग्रहों की अपेक्षा यह सूर्य से अधिक दूरी पर स्थित है। सूर्य से इसकी दूरी पृथ्वी की दूरी से ३० गुना अधिक है। इसका अनुसंधान १८४६ ई० में हुआ था।

की शक्ति प्रबल पड़कर उनमें विच्छेद पैदा कर सकती है।

सूर्य के समीप आकाश गंगा में बहुत से नक्षत्र-समूह हैं, जैसे कृत्तिका, वृष राशि आदि। वृषराशि का नक्षत्र पुंज तो सूर्य के इतने निकट है कि हम लोगों को उसके प्रमुख तारों की गति तथा इस समुदाय में स्थित नक्षत्रों की पूरी संख्या के विषय में निश्चित जानकारी है। इसका सब से घना भाग सूर्य से १३० प्रकाश वर्ष की दूरी पर है और इसमें अधिक से अधिक १६० तारे हैं जो इसके केन्द्र से १५ प्रकाश-वर्ष की दूरी के भीतर ही स्थित हैं। वृष राशि के नक्षत्रों के विषय में तो हम भविष्य वाणी कर सकते हैं कि कम से कम १० ब्रह्म वर्ष तक इस प्रकार के विच्छेद से वे सर्वथा सुरक्षित हैं। कृत्तिका नक्षत्र का घनत्व वृष से दस गुना अधिक है और इस नक्षत्र के ध्वस्त होने के लिये बहुत अधिक समय की आवश्यकता होगी।

आकाश गङ्गा के भीतर तारिकाओं, नक्षत्र समूहों के अतिरिक्त जो स्थान बचता है उसमें, गैसें, धूलिकण तथा कई प्रकार के नेबुला हैं। सूर्य के आसपास—जिस भाग के विषय में हमें और भागों की अपेक्षा अधिक ज्ञान है—तो इस नीहारिका की द्रव्य मात्रा में आधे से अधिक ये ही धूलि-कण और गैसें हैं।

## आकाश-गंगा को बने कितने दिन हुये ?

हमें इसका बिल्कुल ज्ञान नहीं है कि आज से करीब २० ब्रह्म वर्ष पूर्व जब कि हमारी पृथ्वी का निर्माण हुआ इस नीहारिका का क्या रूप था अथवा जब भूमण्डल पर सर्वप्रथम जीवन की स्थापना हुई उस समय ही इसकी क्या अवस्था थी। परन्तु जिस गति से नक्षत्र समूहों का विनाश होता रहता है उसे ध्यान में रखते हुये और इस बात का विचार करके कि A समूह के प्रायः सभी तरह के तारे प्रत्येक नक्षत्र पुञ्ज में पाये जाते हैं यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि आकाश-गंगा अपने इस रूप में अधिक से अधिक ५० ब्रह्म वर्षों (अर्थात् १० अरब वर्ष) से है। और यह तो स्पष्ट ही है कि हमारी पृथ्वी के निर्माण के पहले ही आकाश गंगा बनी होगी। भूगर्भ शास्त्र के सिद्धान्तों से कुछ विशिष्ट द्रव्यों के क्षय का अध्ययन करने के बाद यह ज्ञात होता है कि हमारी पृथ्वी का निर्माण आज से करीब ३ अरब वर्ष पूर्व हुआ। यदि हम यह मानते हैं कि आकाश गंगा की अवस्था १० अरब वर्ष अथवा इसके आस पास है तो प्रश्न उठता है कि इस नीहारिका के तारे क्या इतने समय से इसी प्रकार चमकते हुये आकाश को सतत प्रकाशित कर रहे हैं। कितने ऐसे दैत्याकार तारे आजकल आकाश में बहुत ही प्रचण्ड गति से प्रकाश बिखेरते रहते हैं कि इस गति से वे यदि २ करोड़ वर्षों से पहले अपनी शक्ति का अपव्यय करते होते तो अब तक सम्पूर्ण रूप से समाप्त हो चुके होते। तो जब तक हम इस बात को नहीं मानते कि आकाश गंगा में नये तारे कालान्तर में उत्पन्न होते रहते हैं हमें यही मानना पड़ेगा कि हमारी नीहारिका शायद ही ३ अरब वर्ष से अधिक पुरानी हो। और अधिकांश ज्योतिर्विद नक्षत्रों के क्रमिक निर्माण के मत के सर्वथा विरोधी हैं। स्टाकहोम के प्रसिद्ध ज्योतिर्विद लिंडब्लाड तथा यशस्वी भारतीय ज्योतिर्विद (जो अमेरिका में रहते हैं) चन्द्रशेखर की गवेषणाओं द्वारा हमें आशा है कि, निकट भविष्य में ही हम लोग इस प्रश्न का एक निश्चित समाधान पा जायँगे कि हमारी आकाश-गंगा कितनी पुरानी है।

# कार्य्य-कारणवाद

[ लेखक—डा० सत्यप्रकाश ]

दार्शनिक ऊहापोह में सब से जटिल सिद्धान्त कार्य्य-कारणवाद का है। कार्य्यकारण सम्बन्ध की व्याख्या का ही नाम दर्शन-शास्त्र या अन्वीक्षिकी है और आधुनिक विज्ञान भी कार्य्यकारण की परम्परा निर्धारित करने का एक रूप है। दृश्यमान जगत् की अनेक घटनाओं का सामञ्जस्य कार्य्य-कारण सम्बन्ध के आधार पर करने की ही चेष्टा की जाती है। कार्य्य-कारण की परम्परा के अध्ययन ने ही अनेक प्रकार के अद्वैतवादों को एवं शून्यवाद, त्रैतवाद, प्रकृतिवाद, परमाणुवाद, संशयवाद, अनिश्चयतावाद, अज्ञेयवाद आदि अनेक वादों को जन्म दिया है। ये सब वाद निर्विवाद कई बातों में एक मत हैं—(१) मनुष्य का यह स्वाभाविक अधिकार है कि दृश्यमान घटनाओं की व्याख्या करे। (२) मनुष्य में इतनी सामर्थ्य है कि चाहे वह पूर्ण व्याख्या में सफल न हो, पर वह इसका प्रयास अवश्य कर सकता है। (३) पारमार्थिक तल पर न सही, पर व्यावहारिक तल पर दृश्यमान घटनाओं का होना और सब का न सही पर कुछ का तो कार्य्य-कारण सम्बन्ध में आबद्ध होना एक परम सत्य है। (४) जो मस्तिष्क अथवा जो अनुभूति परम अद्वैत तक हमको ले जाती है, उसी ने तो संशयवाद, शून्यवाद, प्रकृतिवाद आदि सब वादों को जन्म दिया है, अतः कोई एक वाद तो सर्वथा सत्य हो और दूसरे वादों में कुछ भी सचाई न हो, यह संभव नहीं है। (५) ज्ञान का समस्त प्रसार कार्य्यकारण की व्याख्या के आधार पर ही हुआ है। हम कार्य्यकारण के अविच्छिन्न सम्बन्ध को कितना ही अमान्य क्यों न समझें, पर हमारी यह अमान्यता भी तो कार्य्यकारण संबन्ध के प्रयास का एक फल है।

अतः यह स्पष्ट है कि कार्य्यकारणवाद संसार के समस्त वादों का आधार है। आप लोगों को कोई संशय न हो, इस लिये मैं आरम्भ में ही एक चेतावनी दे देता हूँ। जिस प्रकार हम आज भी निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि अमुकवाद सर्वथा सत्य अथवा अमुकवाद सर्वथा मिथ्या है, उसी प्रकार कार्य्य कारण में क्या संबन्ध है, इस विषय में भी हम किसी एक वाद का प्रतिपादन नहीं कर सकते। यदि आप यह आशा रखते हों कि मैं आज आप के समक्ष किसी अकाट्यावाद का प्रतिपादन करूँगा, या कर सकूंगा तो यह मेरी अयोग्यता सूचक दोष नहीं है, प्रत्युत इस प्रकार की आशा रखना आपका ही एक दोष होगा। मेरी तो यही आकांक्षा है कि मृगतृष्णा की भाँति आप मुझसे अधिक आशा न रक्खें। कार्य्यकारण की व्याख्या समस्त विश्व की व्याख्या है, पर यह भी सन्दिग्ध है कि इस विश्व की कोई एक व्याख्या है भी या नहीं, और यदि कोई एक व्याख्या हो भी तो क्या वह मर्त्य द्वारा अवगत भी हो सकती है या नहीं। इस सम्बन्ध में जो कुछ प्रयास हुये हैं उनकी एक झाँकी आपके समक्ष रक्खूँगा। झाँकी देख कर दर्शक की तृप्ति आज तक तो जगत् में हुई नहीं, झाँकी का उद्देश्य है कौतूहल की वृद्धि। मैं आपके इस कौतूहल को कुछ बढ़ाने का प्रयत्न करूँगा। सत्य की अनुभूति के लिये तर्क-संगत व्याख्या या न्याय-युक्त परिभाषा की नितान्त आवश्यकता नहीं होती। तर्क तो पढ़े लिखों का—दार्शनिक या अन्वीक्षकों का, एक व्यायाम है। गो, अश्व, हस्ति आदि की अनुभूति शिशु और अशिक्षित सभी को होती है यद्यपि वे इन पदार्थों की तार्किक व्याख्या या परिभाषा नहीं कर सकते। व्याख्या करने की क्षमता अधिक न होने के कारण दार्शनिकों ने गो आदि की अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दोष-रहित जो परिभाषायें की हैं वे केवल उपहासास्पद हैं;—उपहासास्पद नहीं तो कम से कम अव्यवहार्य तो अवश्य हैं, कोई भी शिशु सास्ना देख कर गाय को पहिचान नहीं करता, और इस दार्शनिक परिभाषा से अपरिचित रहने पर भी गाय के पहिचानने में वह कभी भूल नहीं करता।

फिर भी परिभाषायें देना तार्किकों का जन्मसिद्ध अधिकार रहा है। जब से विज्ञान युग का आरम्भ हुआ है तब से परिभाषायें देने की परिपाटी कुछ कम हो गयी है, पर अनेक घटनाओं को सामान्य रूप में व्यक्त करने की परिपाटी अधिक बढ़ गयी है। प्रत्येक जाति की घटना के लिये गणित का एक बीज-सूत्र उपस्थित करने का प्रयत्न किया जाता है।

कार्य्यकारण संबंध स्थापित करने की प्रवृत्ति दो विशेष उद्देश्यों से हुई—एक तो दृश्यमान जगत् की सीधी सी व्याख्या करनी थी, और दूसरे, हमें जीवन में कभी सुख और कभी दुःख (मोक्ष और बन्ध) मिलता है—इस वैषम्य की भी व्याख्या करनी थी। ये दोनों व्याख्यायें परम आवश्यक थीं। जगत् के परिवर्त्तनशील दृश्यों के कार्य्य-कारण रूप अध्ययन से हमें बहुत से ऐसे नियमों का पता चला जिनको व्यवहार में लाकर विज्ञान ने संसार की काया ही आज पलट दी है। सुख और दुःख की व्याख्या ने जीवन के लक्ष्य को निर्धारित किया, फलतः धर्म, अधर्म, पुण्य और फल की स्थापना की।

## वैशेषिक में कार्य्य-कारण भाव

वैशेषिक के आचार्य कणाद ने अपने शास्त्र में कार्य्यकारण संबन्ध की विशेष व्याख्या की है। उनके निर्णीत ६ पदार्थों में से एक का नाम समवाय है—धर्म विशेष प्रसूताद् द्रव्यगुण कर्म सामान्य विशेष समवायानां पदार्थानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम् ॥१,१,४॥ समवाय शब्द वैशेषिक दर्शन में विशद अर्थ रखता है—परत्वापरत्वयोः परत्वा परत्वभावोऽणुत्व महत्वाभ्यां व्याख्यातः ॥७।२। २३॥ कर्मभिः कर्माणि गुणैर्गुणाः । ७।२।२४॥ (७।१। १५)॥ इहेदमिति यतः कार्य्यकारणयोः समवायः ॥७।२।२५॥

वस्तुतः समवाय वह अविच्छिन्न नित्य सम्बन्ध है जो (१) अंगी और इसके विभिन्न अंगों में, (२) कर्म और इसके समस्त प्रेरकों में, (३) गुण और गुणी में, (४) समष्टि और व्यक्ति में (अर्थात् पुत्र और पिता में, सूत्र और पट में, या १ और आधे में) और इतना ही नहीं, (५) कार्य्य और कारण में होता है। कार्य्य और कारण के बीच में समवाय द्वारा ही 'इह इदम्' का संबन्ध स्थापित होता है। जिस प्रकार गुण, कर्म और द्रव्य में 'सत्ता' भिन्न है (१।२।८) उसी प्रकार समवाय भी द्रव्य और गुण से भिन्न है; (द्रव्यत्व गुणत्व प्रतिषेधो भावेन व्याख्यातः—७।२।२६) और जिस प्रकार सत्ता में एकत्व और नित्यत्व है, उसी प्रकार समवाय भी एक और नित्य है (७।२।२७)।

वैशेषिक के आचार्य ने 'समवाय' शब्द के आश्रय पर कार्य्य-कारण की सारी उलझन को दूर कर दिया है। शब्द बहुत सुन्दर है, कार्य्यकारण संबंध की अनुभूति की व्यञ्जना भी इस शब्द से हो जाती है, पर एक प्रश्न रह जाता है। क्या समवाय सर्वथा एक है—अंगी और अंग में, समष्टि और व्यक्ति में अथवा गुणी और गुण में जो सम्बन्ध है, वही कार्य्य और कारण में है? इन सब द्वित्वों में कोई संबंध है तो अवश्य, पर उस संबंध की अनिर्वचनीयता ही सब में सामान्य है तो क्या अनिर्वचनीय संबंध का नाम ही "समवाय" है? अनिर्वचनीयता संबंधी अपनी अज्ञता को छिपाने के लिये तो कहीं इस शब्द का प्रयोग नहीं किया जा रहा? मेरी अपनी धारणा यह है कि बहुत से संबंध हैं जिन्हें हम तर्क के आधार पर व्यक्त तो नहीं कर सकते, पर अपनी अनुभूति से जिनमें हमारी आस्था होती है। एक और एक मिलकर दो होते हैं, पर दो में एक का अथवा एक में दो का कोई गुण है या नहीं यह बात हम निश्चय पूर्वक कैसे कह सकते हैं, पर व्यावहारिक सारे कार्य्य एक और दो के पारस्परिक संबंध पर निर्भर हैं। १-१ आम मिलकर दो आम हो जाते हैं, और दो आमों को व्यवहार में हम १-१ करके दो व्यक्तियों में बाँट सकते हैं—पर एक-एक ही है दो नहीं हो सकता, और दो-दो ही है, एक नहीं बन सकता, इस कथन में भी एक सत्यता है। एक-एक आम मिलाकर दो आम बन सकते हैं, पर एक-एक संख्या मिलकर दो नहीं होती। यदि संख्यायें परस्पर में जुड़ सकती होतीं तो एक आम और एक केला मिलकर दो आम या दो केले बन जाते। अतः एक और दो परस्पर भिन्न होते हुये भी व्यवहार के लिये सुगम हैं और यह सुगमता हमारी अनुभूति द्वारा निश्चित होती है। इसी का नाम

समवाय है। शून्य के समान आकार वाले निरवयवी अणुत्व से महत्व कभी उत्पन्न हो ही नहीं सकता, पर फिर भी महत्व का आधार अणुत्व ही है। अणुत्व से महत्व जब उत्पन्न होता है तो अणुत्व का नाश नहीं हो जाता—जब तक अणु की स्थिति है, अणुत्व का नाश हो ही कैसे सकता है, पर फिर महत्व का आविर्भाव कहाँ से हुआ? यह भी आश्चर्य्य की बात है कि महत्व से जब अणुत्व बनता है तब तो महत्व का नाश होना प्रतीत होता है, पर अणुत्व से महत्व बनते समय अणुत्व का नाश नहीं होता। सेना में तो सिपाही का अपना निजी अस्तित्व है, पर क्या सिपाही में भी सेना का अस्तित्व है, यह बात सन्दिग्ध है। यदि सिपाही में सेना का नितान्त अभाव होता और फिर भी सिपाहियों से सेना बन जाती, तो अनेक काष्ठों से बने काष्ठ पुंज को भी सेना क्यों नहीं कहते, क्योंकि काष्ठ में भी तो सेना का अभाव है जैसा कि सैनिक में सेना का अभाव था? पर यह सभी मानेंगे कि सैनिक में जिस प्रकार सेना का अभाव है, ठीक उसी प्रकार का सेना का अभाव काष्ठ में नहीं है? तो क्या अभाव भी कई प्रकार के हो सकते हैं? भाव में भेद होना तो समझ में आता है, पर अभाव अर्थात् जो है ही नहीं, उसमें भेद कैसे? इस तर्क में भी कुछ सत्यता है। पर ये सब अव्यवहार्य्य तर्क अनुभूति के विरुद्ध हैं। अनुभूति तो यह कहती है कि न तो अणुत्व में महत्व का अभाव है और न महत्व में अणुत्व का, न समष्टि में व्यक्ति का और न व्यक्ति में समष्टि का। भावाभाव की इस अनिर्वचनीयता का नाम ही समवाय है।

कार्य्य और कारण के संबंध में वैशेषिक में कई सूत्र आये हैं जो समस्त दार्शनिक जगत् में अति प्रचलित हैं--

१—कारण भावात् कार्य्य भावः ॥४।१।३॥ कारण के भाव में कार्य्य का भी भाव होता है।

२—न तु कार्य्याभावात् कारणाभावः (१।२।२)—परन्तु कार्य्य के अभाव में कारण का अभाव नहीं होता।

३—कारणाऽभावात् कार्य्याभावः (१।२।१)—परन्तु कारण के अभाव में कार्य्य का अभाव हो जाता है।

४—कारण गुण पूर्वकः कार्य्य गुणो दृष्टः (२।१।२४)—कारण में जो गुण पूर्व से रहते हैं वे ही कार्य्य में दिखायी पड़ते हैं।

कणाद ने तीन प्रकार के कारणों की स्थापना की है—समवायि कारण, असमवायि कारण और निमित्त कारण। आचार्य का कहना है कि कार्य्य समवाय द्रव्य में होने से द्रव्य में ही उपादान-कारणता है।—कारणमिति द्रव्ये, कार्य्य समवायात्। १०।२।१॥ कारण में समवेत होने के कारण कर्म भी कारण हो जाते हैं—कारणे समवायात्कर्माणि (१०।२।३)॥ संयोग भी इसी प्रकार कारण बन जाता है—कारणसमवायात् संयोगः पटस्य। १०।२।५॥ इत्यादि। इन सब में द्रव्य तो समवायि कारण है, जो कार्य्य कारण दोनों में ही व्याप्त रहता है। संयोग असमवायि कारण है—जैसे पट और सूत्र का संयोग संबंध। जिस अग्नि से पदार्थ पकाये जाते हैं, और पदार्थों में रंगादि गुणों का आविर्भाव होता है उसे निमित्त कारण माना है—संयुक्त समवायादग्नेर्वैशेषिकम् ॥१०।२।७॥

## आधुनिक विचार

आजकल के पाश्चात्य आचार्यों ने भी कार्य्य-कारण संबंध पर बहुत कुछ विचार किया है। मिल ने कारण की परिभाषा निम्न प्रकार की है—

If two or more instances of the phenomenon under investigation have only one circumstance in common, the circumstances in which alone all the instances agree is the cause (or effect) of the given phenomenon."

इसे उदाहरण में इस प्रकार समझा जा सकता है। सोने के कई आभूषणों में सोना ही समान है, इसलिये सोना आभूषणों का कारण है। चोट लगने पर पत्थर,

काँच, ईंट आदि सभी पदार्थ टूट जाते हैं। चोट लगाना इन सब में सामान्य होने के कारण पदार्थों के टूटने का कारण है। मिल आगे फिर कहते हैं कि

"If an instance in which the phenomenon occurs and an instance in which it does not occur agree in all circumstances but one, the circumstance in which alone the instances differ is the cause or effect or an indispensable part of the cause of the phenomenon."

दो द्रव पदार्थ हैं, देखने में दोनों जल से हैं, दोनों में रस है, द्रवता है, पर एक फीका है, एक मीठा। शर्बत मीठापन में साधारण जल से भिन्न है, मीठापन शर्करा के संयोग से आया है। यह शर्करा ही शर्बत का कारण है और शर्बत शर्करा का कार्य है। भिन्नता की पहिचान ने यहाँ कारण और कार्य का निश्चय किया।

वैशेषिक के सूत्रों के समान ही पाश्चात्य विद्वान् कार्य-कारण संबंध इस प्रकार स्थापित करते हैं—

1. Nothing is the cause of the phenomenon in the absence of which it nevertheless occurs.

जिसके अभाव में भी कोई घटना हो जाय, वह उस घटना का कारण कभी नहीं हो सकता। न तु कारणः यस्याभावे कार्य्यः।

2. Nothing is the cause of the phenomenon in the presence of which it nevertheless fails to occurs.

न तु कारणः यस्य भावे न हि कार्य्यः।

3. Nothing is the cause of a phenomenon which varies when it is constant or is consant when varies or varies in no more proportionate manner with it.



अर्थात् कार्य्यः कारणानुपाती, वह कारण नहीं है जिसके स्थिर रहने पर कार्य में कमी या वृद्धि हो, अथवा जिसमें वृद्धि होने पर कार्य में वृद्धि न हो अथवा कार्य्य-वृद्धि कारण-वृद्धि की समानुपाती न हो।

4. Nothing is the cause of one phenomenon which is known to be the cause of a different phenomenon.

इतर-कार्य्यस्य कारणः न तु कारणः

संसार में जितने नियमों का आविष्कार हुआ है, उनमें सबसे मुख कार्य-कारणवाद का सिद्धान्त है। कार्य कारणवाद का आधार उच्चकोटि की आस्तिकता है। आस्तिकता की आस्था ने इस भाव को जन्म दिया है कि संसार में प्रत्येक घटना नियमपूर्वक होती है। नियम-पूर्वकता का अर्थ ही है कि प्रत्येक कार्य का कोई कारण है। यदि वही कारण पूर्ण परिस्थितियों सहित उपस्थित कर दिया जाय तो वही कार्य्य घटित हो जायगा। इस कारण के आधार पर मनुष्य कार्य्य को इच्छानुसार घटित कर सकता है।

ग्रीस के प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू ने चित्रकार की रचना के उदाहरण में समस्त विश्व—परिवर्तनशील जगत्—की व्याख्या की है। प्लैटो के समान वह भी यह मानता था कि प्रत्येक रूप नित्य है, पर प्लेटो रूप की स्थिति द्रव्य (matter) से बाहर मानता था, पर अरस्तू रूप को द्रव्य में ही निहित मानता है। द्रव्य और रूप दोनों साथ साथ नित्य हैं और एक स्थानिक हैं। द्रव्य में स्वतः गति होती है, और रूप का आविर्भाव होता है। चित्रकार के मस्तिष्क में चित्र की समस्त आयोजना होती है, वह अपने पट पर हाथ की गति से चेष्टा करता है। इस चेष्टा में उसकी आयोजना मार्ग प्रदर्शन का काम करती है, और फलतः वह चित्र खींचने में सफल हो जाता है। चित्र खींचने के इस व्यापार में चार बातें हुईं—(१) विचार या रूप (चित्र की समस्त आयोजना जो इसके मस्तिष्क में है)—इसे रूप-कारण कहते हैं। (२) उपादान कारण-चित्र पट रंगादि। (३) निमित्त कारण या गतिप्रद कारण अर्थात् वह चेतना जिससे

चित्रकार के हाथ को गति मिली, और आयोजना के अनुकूल हाथ चले। (४) उद्दिष्ट अथवा अन्तिम कारण जिस उद्देश्य से चित्र बनाया गया। अरस्तू के ये चार कारण दयानन्द के तीन कारणों के समान हैं—(१) निमित्त कारण—चित्रकार, (२) उपादान कारण—चित्रपट, रंगादि, और (३) साधारण कारण—लेखनी आदि अथवा उद्देश्यादि।

स्पिनोज़ा के शब्दों में कार्य-कारण शृंखला का नाम ही सृष्टि है। सृष्टि की प्रत्येक वर्त्तमान घटना किसी पूर्व घटना का कार्य है, और यह घटना किसी न किसी आगत घटना का कारण है। घटनाओं का यह चक्र निरन्तर चल रहा है और इसी को सृष्टि कहते हैं। गणित के समान इसमें कोई आयोजना काम नहीं कर रही है, क्योंकि आयोजना विचारधारा के आश्रित रहती है और निष्काम ब्रह्म में विचार की कल्पना करना उसे साधारण श्रेणी के व्यक्ति के तुल्य कर देना है। और अद्वैतवादियों के समान स्पिनोज़ा भी यही मानता था कि सृष्टि और ब्रह्म एक ही हैं, अथवा यह कहना कि सृष्टि में ही ब्रह्म और ब्रह्म में ही सृष्टि है—दोनों दो समानान्तर रेखाओं के समान-हैं—काल और देश में दोनों का अखण्डित समानान्तर प्रवाह है।

यूरोप के प्रसिद्ध दार्शनिक जॉन लौक (१६३२-१७०४) ने यह धारणा उपस्थित की कि जिससे किसी घटना, विचार या पदार्थ का आदि हो उसे कारण कहते हैं (आदि कारकं कारणम्) और जिसका किसीसे आदि हो उसे कार्य्य कहते हैं। डेविड ह्यूम ने एक बात बड़े मजे की कही है। किसी भी कार्य्य का कारण जानने के लिये हमें पूर्वानुभव की आवश्यकता होती है। जिसने गर्मी से पिघलते हुये मोम को कभी देखा ही नहीं, वह पिघले हुये मोम का कारण कैसे जान सकेगा! यदि आदम सर्व प्रथम व्यक्ति था, और उसे किसी भी घटना का पूर्वानुभव न था तो वह किसी कार्य्य के कारण की व्याख्या नहीं कर सकता था, अतः कार्य्य कारणवाद का आधार पूर्वानुभव वाद पर निर्भर है। इस अनुभव के आधार पर ही मनुष्य को यह विश्वास हो जाता है कि अमुक घटना बिना अमुक कारण के नहीं घटी होगी। पर ह्यूम की इस प्रकार की व्याख्या कार्य्य-कारण के बीच में स्थित सूत्र को तिरस्कृत करती सी प्रतीत होती है।

## परिणामवाद

योग और सांख्य के आचार्य परिणामवाद में विश्वास करते हैं। परिणामवाद का सुन्दर विवेचन योग सूत्र—एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्था परिणामा व्याख्याताः (विभूतिपाद—१३) के भाष्य में व्यास मुनि ने किया है। परिणाम क्या है—

अवस्थितस्य द्रव्यस्य पूर्व धर्म्म निवृत्तौ धर्म्मान्तरोत्पत्तिः परिणाम इति।

उपस्थित द्रव्य का पूर्वधर्म को त्याग कर किसी एक धर्म को ग्रहण करना परिणाम है। परिणाम के तीन भेद हैं—धर्म्म परिणाम, लक्षण परिणाम और अवस्था परिणाम। ऊपर जो परिभाषा दी गयी है, वह केवल धर्म-परिणाम की है। लक्षण का अर्थ काल है। काल परिवर्त्तन का नाम लक्षण परिणाम है। इसके द्वारा भविष्य की घटना वर्त्तमान बनकर शीघ्र भूत बन जाती है। किसी भी पदार्थ के धर्म में काल की अपेक्षा से जो परिणाम होते हैं वे लक्षण परिणाम कहलायेंगे—(यह ठीक है कि परिणाम तो पदार्थ के धर्म में ही होगा)। वर्त्तमानगत द्रव्य (मान लीजिये गाय) में बाल्य, कौमार्य्य, यौवन, वार्धक्य आदि अवस्थाओं से संबंध रखने वाले परिणाम को अवस्था परिणाम कहते हैं।

परिणामवाद में विश्वास रखनेवाले व्यक्ति सत्कार्य्य-वाद में विश्वास करते हैं। अर्थात् उनकी निष्ठा है कि कारण में कार्य्य पहले से ही अवस्थित रहता है, क्योंकि यदि कारण में कार्य्य की स्थिति न रहती, तो कार्य्य आता ही कहाँ से। कार्य्य भी कारण के समान भावरूप है। सत्कार्य्यवाद के संबंध में सांख्य के निम्न सूत्र प्रसिद्ध ही हैं—

१—कारणभावाच्च—(१,११८)—उत्पत्तेः प्रागपि कार्य्यस्य कारणाभेदः श्रूयते। तस्माच्च सत्कार्य सिद्धया नासदुत्पाद इत्यर्थः। अर्थात् उत्पत्ति से पूर्व कार्य्य और कारण अभेद रूप रहते हैं।

२—सर्वत्र सर्वदा सर्वासिम्भवात् । (१,११६)

उपादानानियमे च सर्वत्र सर्वदा सर्वं सम्भवेदित्याशयः । यदि कार्य्य कारण में अवस्थित न होता तो सब चीज़ों से सर्वदा सर्वत्र सब चीज़ें बन जातीं ।

३—शक्तस्य शक्य करणात् । (१,११७)

कार्यशक्तिमत्त्वमेवोपादान कारणत्वम् । अन्यस्य दुर्वचत्वात्, लाघवाच्च । केवल शक्त कारणों से ही कार्य्य की उत्पत्ति होने से सत्कार्य्यवाद सिद्ध है ।

४—उपादाननियमात् (१ । ११५)

उपादान कारण का अर्थ ही यह है कि कार्य्य कारण में उत्पत्ति से पूर्व स्थित हो ।

५—नाशः कारणलयः (१ १२१) ॥

कार्य्य का सर्वथाभाव नहीं होता । कारण में लय हो जाने का ही दूसरा नाम नाश है । लीङ् श्लेषणे इत्यनुशासनाल्लयः सूक्ष्मतया कारणेष्वविभागः । स एवातीताख्यो नाश इत्युच्यत इत्यर्थः ।

६—पारम्पर्यतोऽन्वेषण बीजाङ्कुरवत् ॥ १ । १२२॥

बीज और अंकुर के समान कार्य्य कारण की परम्परा नित्य है ।

शंकराचार्य ने युक्तेः शब्दान्तराच्च (२ । १ । १८) के भाष्य में असत्कार्यवाद का अच्छा खंडन किया है—

(१) दधिघट रुच कार्य्यार्थिभिः प्रतिनियतानि कारणानि क्षीर मृत्तिकासुवर्णादीन्युपादीयमानानि लोके दृश्यते । न हि दध्यर्थिभिर्मृत्तिकोपादीयते घटार्थिभिः क्षीरं तदसत्कार्य वादे नोपपद्येत । अविशिष्टे हि प्रागुत्पत्तेः सर्वस्य सर्वत्रा सत्त्वे कस्मात्क्षीरादेव दध्युत्पद्यते न मृत्तिकायाः मृत्तिकाया एव च घट उत्पद्यते न क्षीरात् ॥

(२) समवाय कल्पनायामपि समवायस्य समवायिभिः सम्बन्धेऽभ्युपगम्यमाने तस्य तस्यान्यान्यः सम्बन्धः कल्पयितव्य इत्यनवस्थाप्रसङ्गः ॥

पहली युक्ति में मिट्टी से घड़ा ही बनता है, दूध से नहीं आदि तो सांख्य के समान ही है । दूसरी युक्ति में कुछ विशेषता है—यदि कार्य्य और कारण अलग अलग हैं; और दोनों का समवाय द्वारा परस्पर संबन्ध होता है, तो बताओ समवाय और कारण, और समवाय और कार्य्य को भी जोड़ने के लिये दूसरे समवायों की कल्पना करनी पड़ेगी । इस क्रम को आगे बढ़ाने पर अनवस्था दोष उत्पन्न होगा । इसलिये असत्कार्य्यवाद माननीय नहीं है । कार्य्य पूर्व से ही कारण में निहित है ।

वस्तुतः प्रत्येक कार्य्य उपादानत्व की दृष्टि से कारण में निहित है । विभिन्न कारण द्वारा द्रव्य के धर्म में परिवर्त्तन होता है । कारणरूप प्रकृति का एकमात्र गुण उपादानत्व है । उसके उपादानत्व का अर्थ ही यह है कि वह चेतन पुरुष की चेतना के आधार पर विकृति में परिणत हो सकती है । मूल प्रकृति अदृष्ट अगोचर और अनुमानगत है । परिणाम के अनन्तर इससे विकृति का आविर्भाव होता है । प्रत्येक कारणत्व भी अनुमान गत है, प्रत्यक्षगत नहीं, दूध से दही बनता है । प्रत्यक्ष दूध भी कार्य्य है, प्रत्यक्ष दही भी कार्य्य, फिर जिस भाव में दूध को दही का कारण कहते हैं, उसमें कारण दूध अनुमानगत है । जब तक दही बनता नहीं, दूध कारण नहीं कहलायेगा । दही बनजाने पर कारण दूध तिरोभूत हो जायगा । कारण दूध को स्थापना केवल अनुमान के सहारे की जा सकती है । भूत काल की घटना बनने के अनन्तर ही दूध की कारणता की प्रतीति अनुमानतः होती है ।

## विवर्त्तवाद

विवर्त्तवाद का संबंध शांकारिक बेदान्त से है, व्यवहारिक जगत् में तो कम से कम शंकर भी यथार्थवादी है, और इस लिये उसे भी तो दृश्य मान जगत् की घटनाओं की व्याख्या करनी पड़ती है । संसार में परिवर्त्तनों की प्रतीति होती है, यह तो एक सत्य है जिसकी अवहेलना नहीं की जा सकती । पर शंकर व्यावहारिक जगत् को जिस प्रकार की सत्यता प्रदान करता है वह वैशेषिक और सांख्य से भिन्न है । इस नितान्त भिन्नता के अनुसार ही कार्य-कारण की भावना भी शंकर की दूसरी ही है, वैशेषिक में कारण परमाणु नित्य हैं और सांख्य में कारण प्रकृति नित्य है । वैशेषिक में उपादानत्व की दृष्टि से कार्य भी नित्य है, केवल धर्म नाशवान् है, सांख्य में प्रकृति नित्य होने के कारण प्रकृति से विकसित सब पदार्थ भी उतने ही अविनाशी सत्य और नित्य हैं—नाश का अर्थ तो केवल

कारण में लय हो जाना है, न कि सत्ता की दृष्टि से अभाव हो जाना। वेदान्त में केवल ब्रह्म ही को सत्य प्रतिपादित किया गया है, अध्यारोप से व्यवहारिक दृश्यों की भ्रान्ति उत्पन्न होती है। जलाशय एकरस का जल ही जैसे सत्य पदार्थ है, यद्यपि तरंगें, फेन, और बुद्बुद् उड़ते हुये प्रतीत होते हैं पर जलसे पृथक् उनकी कोई निजी सत्ता नहीं इसी प्रकार की दृश्यमान जगत् की स्थिति है। अप्पय दीक्षित ने सिद्धान्त लेश में यह लिखा है कि संक्षेप-शारीरक के आचार्य के अनुयायी 'जन्माद्यस्य यतः' सूत्र के आधार पर शुद्ध ब्रह्म को ही जगत का कारण मानते हैं, जब आकाश की ब्रह्म से उत्पत्ति होती है—आत्मना आकाशस्सम्भूतः—तो यहाँ शुद्ध ब्रह्म ही आकाश का उपादान कारण है। विवरण के अनुयायी ब्रह्म के माया से प्रभावित ईश्वर रूप को जगत् का कारण मानते हैं। वे अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् (१।१।२०) सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात् (१।२।१) आदि सूत्रों में ब्रह्म के ईश्वर-रूप की व्याख्या मानते हैं। कुछ और वेदान्ती जगत् को माया का परिणाम मानते हैं। माया ईश्वर में अधिष्ठित रहती है और ईश्वर ही उपादान कारण है। यह व्याख्या तो व्यावहारिक जगत् की है, पर प्रत्येक के अन्तःकरण आदि का कारण ईश्वराश्रित माया और जीवाश्रित अविद्या दोनों हैं। उपादान कारणत्व जीवाश्रित अविद्या में है। इस प्रकार के विचारवान व्यक्ति माया और अविद्या को परस्पर भिन्न समझते हैं। पदार्थतत्व निर्णय में ब्रह्म और माया (अथवा अविद्या) को साथै साथ जगत् का कारण माना है। विवर्त्त मानता के आधार पर ब्रह्म कारण है, और परिणाम मानता द्वारा अविद्या जगत् का कारण है। प्रकाशानन्द केवल माया को व्यावहारिक जगत् का कारण मानता है। इस प्रकार वेदान्तियों के अनेक सम्प्रदाय जगत् की अनेक प्रकार से व्याख्या करते हैं।

शंकर के सिद्धान्त को समझने के लिये उसके "आरम्भाधिकरणम्" प्रकरण (२।१।१४-२०)को पढ़ना चाहिये जिसमें निम्न सूत्रों की व्याख्या विशेष महत्व की है—

१ तदनन्यत्वमारम्भण शब्दादिभ्य ॥१४॥
२ भावे चोपलब्धे ॥१५॥
३ सत्त्वाच्चावरस्य ॥१४॥
४ युक्तेः शब्दान्तराच्च ॥१८॥
५ पटवच्च ॥१९॥
६ यथा च प्राणादि ॥२०॥

यहाँ इतना स्थान नहीं कि हम इन सब की व्याख्या कर सकें।

## वर्त्तमान सम्भावनावाद

कार्य्यकारण सिद्धान्त में वैज्ञानिकों की आरम्भ में निष्ठा रही है। कार्य्य कारण की शृंखला की खोज करना ही विज्ञान का ध्येय रहा है। रसायन, भौतिक विज्ञान और विकासवाद सब का उद्देश्य कारण कार्य्य संबंध की पुष्टि करना है। पर गत तीस वर्षों से वैज्ञानिक जगत् ने गणना करने के एक नये तन्त्र का उपयोग किया है, जिसे संभावनावाद कहते हैं। किसी भी घटना के कारण का न भी पता हो, फिर भी यह हिसाब लगाकर कि उसके होने की सम्भावना क्या है हमें यथार्थता से उस घटना की भविष्यत्ता का अनुमान लगा सकते हैं। सम्भावनाओं का हिसाब लगाने के निश्चित नियम हैं, और इनके उपयोग से लगभग सभी वे परिणाम सिद्ध किये जा सकते हैं, जिनके लिये पहले कार्य्य कारणवाद का आश्रय लेना पड़ता था।

पर सम्भावनावाद कार्य्य कारणवाद का खंडन नहीं करता है। मैक्स प्लांक ने इस संभावनावाद पर अच्छा प्रकाश डाला है। सम्भावनावाद की सम्भावनायें भी तभी सम्भव हैं जब कार्य्य-कारण संबंध सत्य माना जाय।

# ऋणाणु (Electron)

*लेखक :—प्रो० बसन्तलाल एम० एस-सी०, महाराणा कालेज, उदयपुर*

## भूमिका

ऋणाणु (Electron) की ५० वीं वर्ष गांठ के अवसर पर मैंने अँग्रेजी में अपने कालेज की भौतिक-विज्ञान समिति की पत्रिका के लिये यह निबन्ध लिखा था। मेरे मित्रों ने और विशेष कर प्रो० बी० स्वामीनाथन एम० एस० सी० ( लन्दन ) तथा कालेज के तत्कालीन प्रिंसिपल और आगरा विश्व विद्यालय के भूतपूर्व वाइस-चान्सलर डाक्टर पी० बसु एम० ए०, पी० एच० डी०, डी० लिट् ने उस निबन्ध को बहुत ही पसन्द किया। इसके बाद देश में स्वतंत्रता के आगमन ने मुझे उक्त निबन्ध का हिन्दी में अनुवाद करने को प्रेरित किया।

ऋणाणु ( Electron ) ने अपने ५० वर्ष के जीवन में भौतिक विज्ञान के सिद्धान्तों में तो महान् क्रान्ति की ही है, लेकिन साथ ही में मानवी सभ्यता और संस्कृति को काफी मात्रा में प्रभावित किया है। सिनेमा, रेडियो, टेलीविजन, तथा परमाणु बम जैसे महत्वपूर्ण आविष्कारों का सूत्रपात ऋणाणु से ही होता है। जीवन की व्यावहारिक आवश्यकताओं में ऋणाणु-नलिकाओं ( Electron-tubes ) का इतना अधिक उपयोग होने लगा है कि वे आधुनिक सभ्यता का एक मुख्य अंग बन गई हैं। ऋणाणु के आविष्कार की सबसे बड़ी देन विचार के क्षेत्र में है। यह आविष्कार हमें विज्ञान के उस रूप का दर्शन कराता है जहाँ वह अपने भौतिक जामे को छोड़कर आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रवेश करता हुआ प्रतीत होता है।

प्रस्तुत निबन्ध में ऋणाणु की इस महान् मान्यता के विकास की उसके ऐतिहासिक क्रम में सैद्धान्तिक रूप-रेखा उपस्थित की गई है। अँग्रेजी में हमें बहुत सुन्दर और गम्भीर वैज्ञानिक साहित्य मिलता है, लेकिन हिन्दी में इस प्रकार के साहित्य का एक प्रकार से अभाव ही है। प्रस्तुत निबन्ध लेखक का इसी दिशा में एक साधारण सा प्रयास है।

---

### ऋणाणु, आधुनिक पदार्थ-विज्ञान की आधारशिला

ऋणाणु के आविष्कार के साथ वैज्ञानिक विचार-धारा के इतिहास में एक महत्व-पूर्ण युग का श्रीगणेश होता है। इस आविष्कार द्वारा अनुप्राणित-प्रयोगात्मक और सैद्धान्तिक अनुसंधानों ने आज के वैज्ञानिक के भौतिक-विश्व संबन्धी दृष्टिकोण को पूर्णतः बदल दिया है। यही नहीं, इस आविष्कार के फल-स्वरूप हमको प्राकृतिक घटनाओं की वैज्ञानिक व्याख्या की मूल भूत प्रणालियों और सिद्धान्तों में महत्वपूर्ण संशोधन करने के लिये विवश होना पड़ा है। इस महान् वैज्ञानिक क्रान्ति को समझने के लिये हमको नवीन पदार्थ-विज्ञान के मूल स्वर ऋणाणु पर अपनी अंगुली डालनी चाहिये।

### न्यूटन का गतिशास्त्र और डाल्टन का ठोस परमाणु

प्राकृतिक घटनाओं को व्यवस्थित रूप में समझने का प्रारम्भ न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त तथा उसके गतिशास्त्र के साथ होता है। न्यूटन ने गतिशास्त्र का उपयोग ज्योतिःपिण्डों की चाल की व्याख्या करने में किया। गतिशास्त्र (Dynamics) को बृहत् विश्व (Macroscopic Universe) के पदार्थों की प्रत्येक प्रकार की गति को गणित समीकरणों का रूप देने में अभूत पूर्व सफलता हासिल हुई। इन समीकरणों द्वारा गतिमान पदार्थों की गति सम्बन्धी वर्तमान अवस्था को ही निर्धारित नहीं किया जा सकता था किन्तु उनकी आगामी अवस्था के बारे में भी पूर्ण शुद्धता के साथ भविष्यवाणी की जा सकती थी। तब क्या न्यूटन की गति सम्बन्धी मान्यताओं का उपयोग सूक्ष्म विश्व (Microscopic Universe) के पदार्थों (अणु, परमाणु आदि) की गति की व्याख्या करने में हो सकता था? डाल्टन के परमाणुवाद ने, जिसके अनुसार द्रव्य परमाणुओं का संगठन मात्र है, यह सुझाव उपस्थित किया कि प्रत्येक प्राकृतिक घटना की व्याख्या परमाणुओं की गति और उनकी अन्तर-क्रिया (inter-action) के आधार पर की जा सकती है। न्यूटन के गतिशास्त्र के उसूलों के आधार पर परमाणुओं की गति को गणित के सूत्रों की शकल में उपस्थित करने का सफल प्रयत्न किया गया। परमाणविक गति की इस गणित व्यवस्था को "गैसीय पदार्थों की काइनेटिक थिओरी" के नाम से पुकारा जाता है। राबर्ट ब्राउन ने सूक्ष्मातिसूक्ष्म दर्शक (Ultra-microscope) द्वारा घोलों (Solutions) में लटके हुए द्रव्यकीय सूक्ष्म कणों को बड़ी तेजी के साथ नृत्य करते हुए देखा। इस गति को ब्राऊनीय गति (Brownian Movement) कहते हैं। विश्लेषण करने पर मालूम होता है कि इस प्रकार की गति घोल के अणुओं के तीव्र कम्पन द्वारा पैदा होती हैं। इस प्रकार निरीक्षण की गई ब्राउनीय गति इस बात का प्रमाण है कि प्रत्येक द्रव्यकीय परमाणु एक प्रकार के सतत ताण्डवनृत्य में संलग्न है। काइनेटिक थिओरी की पुष्टि में ब्राउनीय गति एक जबर्दस्त प्रयोगात्मक दलील थी। रसायन शास्त्र के क्षेत्र में भी डाल्टन का परमाणुवाद एक आधार-शिला सिद्ध हुआ। इस प्रकार १९ वीं शताब्दी के पदार्थ विज्ञान-वेत्ताओं का यह दृढ़ विश्वास था कि जहाँ तक द्रव्य की रचना (Constitution) का सम्बन्ध है, डाल्टन का परमाणुवाद अन्तिम वस्तु है और आगे के वैज्ञानिक अनुसधान केवल साधारण ब्यौरों (details) को स्पष्ट करने तक ही सीमित रहेंगे। वे यह अनुमान नहीं कर सके कि उनकी कल्पना का अविभाज्य ठोस परमाणु एक दिन रहस्यों का अद्भुत भण्डार सिद्ध होगा।

### वैद्युतीय-परमाणुकता (Atomicity in Electricity)

जिस समय डाल्टन के परमाणु सम्बन्धी विचार धीरे-धीरे सिद्धान्त का रूप धारण कर रहे थे, विद्युत सम्बन्धी एक समानान्तर परमाणुवाद सामने उग रहा था। विद्युत-युक्त पदार्थों के व्यवहार और गुणों के अध्ययन के आधार पर फ्रैंकलिन ने अपना विद्युत सम्बन्धी एक द्रवीय सिद्धान्त (One fluid theory) उपस्थित किया। इस सिद्धान्त के अनुसार विद्युत एक प्रकार का द्रव है। जब किसी पदार्थ में इस द्रव की अत्यधिक मात्रा होती है तो हम उस पदार्थ को धनात्मक विद्युत युक्त कहते हैं। इसी प्रकार इस द्रव का अत्यधिक मात्रा में अभाव उस पदार्थ को ऋणात्मक विद्युत युक्त बना देता है। इस प्रकार फ्रैंकलिन के एक द्रवीय सिद्धान्त में विद्युतकीय परमाणुवाद के बीज मौजूद थे। लेकिन फ्रैंकलिन को स्वप्न में भी ख्याल नहीं था कि एक दिन इस द्रव के मूलभूत परमाणु (Elementary Atom) को अलग करके उसका अध्ययन संभव हो सकेगा। उसके लिये यह केवल शुद्ध कल्पना की वस्तु थी। विद्युत की पारमाणुक रचना सम्बन्धी प्रथम प्रयोगात्मक साक्षी फैरेडे के विद्युत विश्लेषण (Electrolysis) के नियमों के आविष्कार के रूप में प्रगट हुई। फैरेडे ने यह बताया कि जब किसी घोल के अन्दर विद्युत् का प्रवाह कराया जाता

है तो सारे एक बन्धक (Univalent) परमाणु विद्युत की समान मात्रा को लेकर गतिमान होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक द्विबन्धक (Bivalent) परमाणु उससे दूनी विद्युत की मात्रा को लेकर चलता है। घोल की शक्ति का परमाणुओं द्वारा प्रेक्षित विद्युत की मात्रा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यद्यपि ये परिणाम काफी महत्वपूर्ण और चकाचौंध उत्पन्न करने वाले थे, लेकिन फैरेडे के मस्तिष्क में विद्युत की पारमाणुक रचना की बात कभी नहीं आई, बल्कि उसका ख्याल था कि प्रत्येक वैद्युत-घटना (Electric Phenomenon) उस तनाव (Strain) का परिणाम है जो विद्युताविष्ट (Electrified) पदार्थ को अवकाश देने वाले माध्यम में पैदा होता है। अभी तक विद्युत युक्त पदार्थों में विद्युतकीय आवेश (Electrical Charge) जैसी वस्तु के निवास की कल्पना की जाती थी। यह आवेश (Charge) दूर स्थित अन्य विद्युतकीय आवेशों के आकर्षण और विकर्षण की शक्ति को प्रभावित करता हुआ कल्पित किया गया था। फैरेडे को "दूरी पर के प्रभाव" (Action at a distance) के सिद्धान्त से अत्यन्त अरुचि थी उसका विश्वास था कि दो विद्युत-आवेशों की पारस्परिक आकर्षण की क्रिया में उनको अवकाश देने वाला माध्यम महत्वपूर्ण भाग लेता है। इस माध्यम को ईथर के नाम से निक्षेपित किया गया। फैरेडे को यह मानना पड़ा कि विद्युतकीय शक्तियों का एक स्थान से दूसरे स्थान तक प्रेक्षण 'ईथर' (Ether) द्वारा ही होता है। आगे चलकर इन्हीं विचारों को मैक्सवेल (Maxwell) ने अपने वैद्युत-चुम्बकीय सिद्धान्त (Electro-magnetic theory) के रूप में गणित का जामा पहिनाया। सन् १८६७ में हर्ट्ज ने प्रयोगात्मक रूप में यह सिद्ध किया कि "ईथर में विद्युतकीय शक्तियों का संचालन तरंगों के रूप में होता है। और यह तरंगें आकाश में प्रकाश के वेग के साथ चलती है। प्रकाश का वेग प्रति सैकिण्ड १८६००० मील है। हर्ट्ज द्वारा उपस्थित प्रयोगात्मक साक्षी फैरेडे की विद्युत्तोपन्न तैजस तनाव (Ether-strain) सम्बन्धी धारणा की पूर्ण विजय थी। इस प्रकार जो कुछ सिद्ध किया गया वह यह नहीं था कि विद्युत-माध्यम के तनाव की अवस्था है, बल्कि यह कि जब कभी किसी पदार्थ पर विद्युत आवेश प्रगट होता है तो उस पदार्थ के चारों ओर का माध्यम ऐसी शक्तियों का स्थान बन जाता है जिनका प्रेक्षण उसमें होकर होता है।

इस प्रकार विद्युत का "तनाव सिद्धान्त" उसके पारमाणविक सिद्धान्त का विरोधी नहीं था फिर भी उसने लोगों के हृदय में यह गलत धारणा पैदा कर दी कि विद्युत पारमाणविक न होकर एक अटूट सत्ता है (Continuous entity) है। (Johnston Stoney) जोन्स्टन स्टोनी ने सन् १८७६ में केवल विद्युत के पारमाणविक सिद्धान्त का ही प्रतिपादन नहीं किया, बल्कि वे कुछ आगे भी बड़े। उन्होंने मूलभूत-आवेश का मूल्य निर्धारित करने की कोशिश की। मूलभूत विद्युत-आवेश के स्टोनी द्वारा निर्धारित मूल्य और आधुनिकप्रयोग वेत्ताओं द्वारा निर्धारित मूल्य में विशेष अन्तर नहीं है। विद्युत की इस प्राकृतिक इकाई को उन्होंने "इलैक्ट्रोन" नाम से निक्षेपित किया? उन्होंने इस शब्द का प्रयोग विद्युत के मूल परिमाण-(Elementary Quantity) को प्रदर्शित करने के लिये किया। इस मूल परिमाण के द्रव्यमान (Mass) और जड़त्वमान (Inertia) की उन्होंने कल्पना नहीं की। परमाणु के उदासीन व्यवहार की व्याख्या करने के लिये उन्होंने यह सुझाव उपस्थित किया कि प्रत्येक परमाणु में एक धनात्मक और एक ऋणात्मक "इलैक्ट्रोन" होता है।

## विद्युत के स्वभाव के प्रकटीकरण का आरम्भ

जब कि विद्युत के स्वभाव को समझने के उक्त प्रयत्न किये जा रहे थे, कुछ महत्वपूर्ण आविष्कारों का एक वर्ग इस समस्या पर नवीन प्रकाश डालता हुआ प्रतीत हुआ। सन् १८८७ में 'प्रकाश-विद्युत प्रभाव' (Photo-Electric-Effect) सन् १८६२ में एक्स-किरण तथा सन् १८६६ में "रश्मि-उत्सर्ग" (Radio-activity) के आविष्कार ने पदार्थ विज्ञान वेत्ता को विद्युतकीय घटनाओं को समझने के लिये एक नवीन दृष्टिकोण प्रदान किया।

निम्न पंक्तियों में हम यह समझने की कोशिश करेंगे कि उक्त आविष्कारों ने किस प्रकार ऋणाणु के आविष्कार में महत्वपूर्ण पथ प्रदर्शन किया—

प्रकाश-विद्युत प्रभाव (Photo-electric effect)

उक्त भाव का प्रयोग उन अनेक प्रकार की घटनाओं के लिए किया जा सकता है जिनका सम्बन्ध-प्रकाश और विद्युत की अन्तर क्रिया से हैं, किन्तु व्यवहार में इस भाव (term) का उपयोग पदार्थों द्वारा एक विशेष तरंग-दैर्ध्य (wave length) के प्रकाश से प्रदीप्त होने पर, ऋणात्मक विद्युत के उद्रेक (Discharge) तक सीमित है। यहां पर हम इस प्रभाव की सैद्धान्तिक महत्ता का विवेचन नहीं करेंगे। हम यहाँ अपने को केवल इसके प्रयोगात्मक पहलू तक ही सीमित रक्खेंगे और यह समझने की कोशिश करेंगे कि किस प्रकार इस प्रभाव ने ऋणाणु के आविष्कार में सहयोग दिया। वैद्युत- चुम्बकीय तरंगों (Electro magnetic) की सत्ता पर प्रयोग करने के दौरान में हर्ट्ज ने प्रकाश के विद्युतकीय प्रभाव का निरीक्षण किया था। उसने देखा कि "High voltage" के स्रोत से सम्बन्धित दो विद्युतद्वारों (Electrodes) के बीच में वैद्युत विसर्ग (electrical discharge) अधिक आसानी से होने लगता है, यदि उनमें से एक विद्युत द्वार को "नील लोहितोत्तर (Ultraviolet) प्रकाश से प्रदीप्त कर दिया जाय। हौलवाश और रिघीने इस प्रयोगात्मक घटना का अधिक गहराई के साथ अध्ययन किया। हौलवाश ने निरीक्षण किया कि ताजा पालिश की गई ऋणात्मक विद्युत युक्त जस्ते की प्लेट नील लोहितोत्तर प्रकाश से प्रदीप्त होने पर अपना ऋणावेश खो देती है। ऐल्स्टर और जीटल ने प्रयोगात्मक अन्वेषणों के फलस्वरूप यह प्रतिपादित किया कि जस्ते की प्लेट का ऋणावेश किसी प्रकार के कणों के जरिये बाहर निकल जाता है। यह कण न तो जस्ते के परमाणु हो सकते हैं न उसी प्लेट को चारों ओर से घेरने वाली हवा के अणु।

तब यह ऋणात्मक विद्युत को प्रक्षित करने वाले कण क्या थे? इस प्रश्न का उत्तर भिन्न भिन्न प्रकार की प्रयोगात्मक साक्षियों के फलस्वरूप प्राप्त हो सका। इस प्रकार की साक्षियों में दो मुख्य हैः—

(१) एक्स-किरणों द्वारा गैसीय पदार्थों का आयनीकरण (ionisation)

(२) वायु शून्य नलिकाओं में विद्युत के प्रवाह की घटना।

एक्स किरणों द्वारा गैसीय पदार्थों का आयनीकरण

किसी गैसीय पदार्थ के स्तम्भ (Column) में एक्स किरणों का प्रवेश कराने पर यह निरीक्षण किया गया कि उस गैस का आयनीकरण हो जाता है अर्थात् उस गैस के अणु ऋणात्मक और धनात्मक कणों में विच्छिन्न हो जाते हैं। लेकिन ये आयन क्या हैं? अबतक जिस प्रकार के आयनीकरण का निरीक्षण किया गया था वह घोलों का आयनीकरण था। इस प्रकार के आयनीकरण का सम्बन्ध सोडियम क्लोराइड जैसे अणु का स्वतः ही धनावश युक्त सोडियम आयन तथा ऋणावेश क्लोरिन आयन में विभक्त हो जाने से था। लेकिन एक्स-किरणों द्वारा गैसों का आयनी-करण सर्वथा भिन्न प्रकार का था; क्योंकि यह औषजन और नेत्रजन जैसी शुद्ध गैसों तथा हीलियम और आरगन जैसी एक परमाणुविक गैसों में भी निरीक्षित किया गया था। इससे स्पष्ट है कि एक परमाणुक द्रव्य का विद्युत उदासीन अणु भी सूक्ष्म विद्युत आवेशों (Charges) का बना होता है। यह पहिला मौका था जब हमें इस बात का स्पष्ट प्रमाण मिला कि परमाणु विद्युत आवेशों द्वारा निर्मित एक विषम (Complex) रचना है। मिलीकन के कथनानुसार इस नवीन एजेन्सी एक्स-किरण के उपयोग के कारण परमाणु की एक चरम अविभाज्य कण के रूप में अस्तित्व की मान्यता समाप्त हो गई और उसके भिन्न भिन्न उपादानों (Constituents) के अध्ययन का युग प्रारम्भ हुआ। पदार्थ विज्ञानवेत्ता निम्न प्रश्नों का उत्तर तलाश करने लगे :—

(१) एक्स-किरणों द्वारा विच्छिन्न परमाणु के घटकों के द्रव्यमान (Mass) और विद्युत आवेश की मात्रा कितनी है?

(२) प्रकाश और ताप तरंगों के उन्मेष (emission) और शोषण (absorption) से इन परमाणुघटकों का क्या सम्बन्ध है ?

(३) क्या सारे परमाणुओं के घटक समान होते है ? क्या कोई ऐसा परम सूक्ष्म कण है जिसके द्वारा भिन्न भिन्न प्रकार के परमाणुओं का निर्माण होता है ?

## शून्य नलिका में विद्युत का विसर्ग तथा द्रव्य की चतुर्थ अवस्था

शून्य नलिकाओं में वैद्युत-विसर्ग (Electric discharge) के प्रयोगों ने उक्त प्रश्नों का आंशिक समाधान किया। विरल (Rarefied) गैस से भरी शून्य नलिका में विद्युत का प्रवाह कराने पर उनमें मनोरंजक घटनायें दृष्टिगोचर होती हैं, ज्यों ज्यों नलिका में गैस का दबाव कम किया जाता है। $\frac{1}{100}$ सेन्टीमीटर के दबाव पर नलिका की काँच की दीवालें तेज प्रकाश से प्रदीप्त होने लगती हैं। प्रकाश का रंग शून्य नलिका के काँच की रासायनिक रचना पर निर्भर करता है। लेकिन शून्य नलिका की दीवालें क्यों चमकने लगती है ? एक प्रकार का अदृश्य विकिरण (Invisible radiation) शून्य नलिका के ऋणद्वार (Cathode) से उत्सर्गित होता है जो दीवालों के सम्पर्क में उनको आने पर प्रदीप्त कर देता है।

इस अदृश्य विकिरण को ऋणद्वार-किरणों (Cathode rays) के नाम से प्रचारित किया गया। सर विलियम क्रुक्स ने इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण छान बीन की। उन्होंने अपने प्रयोगों का वर्णन करते समय लिखा है कि:—

"शून्य नलिका की घटनायें भौतिक विज्ञान के सामने एक नई दुनियाँ उपस्थित करती हैं। एक ऐसी दुनियाँ जहाँ द्रव्य चतुर्थ अवस्था में पाया जाता है। द्रव्य की चतुर्थ अवस्था (Fourth state of matter) का अध्ययन करते समय अन्त में हमारे नियंत्रण और पकड़ में ऐसे अदृश्य कण आते हुए प्रतीत होते है जिनको सुनिश्चितता के साथ भौतिक विश्व की आधार-शिला माना जा सकता है।"

## जे० जे० थामसन द्वारा ऋणाणु का आविष्कार

ऋणद्वार-किरणों (Cathode rays) पर गोल्डस्टीन, प्लकर, लेनार्ड और पेरिन द्वारा किये गये अन्वेषणों ने क्रुक्स द्वारा आविष्कृत, द्रव्य की चतुर्थ अवस्था के रहस्योद्घाटन में अद्भुत कामयाबी हासिल की। इन अन्वेषणों ने यह सिद्ध कर दिया कि ऋणद्वार किरणें ऋणात्मक विद्युत के कणों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। सर्व प्रथम केम्ब्रिज के प्रसिद्ध भौतिक शास्त्री सर जे० जे० थामसन ने इन किरणोंके आवेश और द्रव्यमान की निष्पति (Ratio) $\left(\frac{\text{आवेश}}{\text{द्रव्यमान}}=\frac{e}{m}\right)$ के मूल्य का सही-सही निर्णय किया। बाद में यह निरीक्षण किया गया कि ऋणात्मक विद्युतके इन वाहकों (Carriers) के $\frac{\text{आवेश}}{\text{द्रव्यमान}}$ का मूल्य शून्य नलिका में व्याप्त गैस के स्वभाव पर निर्भर नहीं करता। थामसन ने ऋणद्वार-कणों (Cathode-Particles) को 'Corpuscles' का नाम दिया। तदुपरान्त लौरेन्ज आदि वैज्ञानिकों ने इन 'Corpuscles' को "इलैक्ट्रोन" के नाम से निक्षेपित किया। यह पहिले बतलाया जा चुका है कि "इलैक्ट्रोन" शब्द का उपयोग स्टोनी ने एक बन्धक (Monovalent) आयन द्वारा संवाहित मूलभूत विद्युतावेश (Elementary Electrical Charge) के लिये किया था। इसके बाद तो यह भी सिद्ध हो गया कि प्रकाश-विद्युत प्रभाव (Photo-electric-effect) की घटना के सिलसिले में उत्सर्गित ऋणाविष्ट (Negatively charged) कण भी ऋणाणु ही होते है। लेनार्ड ने इन कणों के $\frac{\text{आवेश}}{\text{द्रव्यमान}}\left(\frac{e}{m}\right)$ का मूल्य निर्धारित किया। लेनार्ड द्वारा निर्धारित इन कणों के $\frac{\text{आवेश}}{\text{द्रव्यमान}}$ का मूल्य सर जे० जे० थामसन द्वारा निर्धारित इलैक्ट्रोन के $\frac{\text{आवेश}}{\text{द्रव्यमान}}$ के मूल्य के बराबर पाया गया।

## ऋणाणुओं का तापीय-उत्सर्ग (Thermionic Emission)

यह निरीक्षण किया कि उष्ण पदार्थ विशेष कर तप्त

धातुयें अपने ताप मान के कारण ऋणाणुओं का उत्सर्ग करने लगते हैं। इस घटना को तापकीय उत्सर्ग (Thermionic Emission) के नाम से पुकारा जाता है। ऋणाणु नलिकायें (Electron tubes) तथा रेडियो तत्व का निर्माण "तापीय उत्सर्ग" के सिद्धान्त के आधार पर किया जाता है। ऋणाणु नलिकाओं के अभाव में आकाशीय ध्वन्याक्षेपण (Wireless transmission) किसी भी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता था। बीसवीं सदी के व्यावहारिक वैज्ञानिक उपयोगों में ऋणाणु-नलिकाओं का सर्वोपरि स्थान है। यही नहीं इनके उपयोग का क्षेत्र दिन पर दिन विस्तृत होता जा रहा है।

### किरणोत्सर्ग का सिद्धान्त और संकुचनशीलता ऋणाणु का प्रकल्प (Radioactivity & the Hypothesis of Contractile Electron)

किरणोत्सर्ग की क्रिया (जो परमाणु के केन्द्रक के स्वतः विच्छेदन की क्रिया है) ये रेडियम जैसे भारी परमाणु के केन्द्र से अन्य प्रकार के निस्तृत··· द्रव्य के अतिरिक्त ऋणाणुओं का भी उत्सर्ग होता है। इस क्रिया में निकले हुए ऋणाणुओं को बीटा-किरण (Beta-rays) के नाम से पुकारा जाता है।

कॉफमैन ने इन ऋणाणुओं के $\frac{\text{आवेश}}{\text{द्रव्यमान}}$ का मूल्य निर्धारित किया। इस प्रकार निर्धारित मूल्य $1.1 \times 10^7$ e.m.u. आया जब कि अन्य घटनाओं से सम्बन्धित ऋणाणुओं के $\frac{\text{आवेश}}{\text{द्रव्यमान}}$ का मूल्य $1.7 \times 10^7$ e.m.u निश्चित किया गया था। काफमैन ने यह भी देखा कि ज्यों २ इन ऋणाणुओं का वेग प्रकाश के वेग के नजदीक पहुँचता है त्यों २ इनके $\frac{\text{आवेश}}{\text{द्रव्यमान}}$ का मूल्य तेजी के साथ घटने लगता है। काफमैन और जे० जे० थामसन ने $\frac{\text{आवेश}}{\text{द्रव्यमान}}$ के मूल्य में निरीक्षित उक्त विषमता पर विचार किया। इसकी व्याख्या करने के लिये उन्होंने यह सुझाव उपस्थित किया कि ऋणाणु के आवेश का मूल्य तो प्रत्येक परिस्थिति में स्थिर रहता है लेकिन उसका द्रव्यमान उसके वेग के साथ बदलने लगता है। इस प्रकार पहली मरतबा "द्रव्यमान की स्थिरता' (Consistency of Mass) का सिद्धान्त खण्डित सा मालूम पड़ने लगा। वेग के साथ द्रव्यमान के परिवर्तन की व्याख्या करने के लिये लॉरेंज ने संकुचनशील ऋणाणु (Contractile Electron) का प्रकल्प उपस्थित किया। उन्होंने कहा कि ऋणाणु अपनी गति की दिशा में सिकुड़ने लगता है। इस प्रकल्प के आधार पर उन्होंने वेग के साथ द्रव्यमान के परिवर्तन को एक गणित सूत्र में गूँथने की कोशिश की। कुछ दिनों बाद आइन्स्टाइन ने उसी सूत्र को अपने सापेक्षवाद के विशेष सिद्धान्त (Special theory of Relativity) की मान्यताओं के आधार पर स्थिर किया। आइन्स्टाइन ने कहा कि लौरेंज द्वारा प्रतिपादित "संकोच" भौतिक 'संकोच' (Physical contraction) नहीं है। इस प्रकार के संकोच, (Contraction) का खयाल काल और आकाश की मान्यताओं को गलत तरीके में समझने के कारण पैदा होता है।

### आवेश और द्रव्यमान का निरपेक्ष निर्णय (Absolute Determination of e and m)

### मिलीकन द्वारा ऋणाणु की व्यक्तिगत-सत्ता (individuality) का आविष्कार:—

विभिन्न प्रकार की प्रयोगात्मक घटनाओं में उपस्थित रहने वाले ऋण—आयनों के $\frac{\text{आवेश}}{\text{द्रव्यमान}}$ के मूल्य निर्धारण ने उनमें समानता का निश्चय तो कर दिया, लेकिन इतने पर भी निम्न प्रश्नों का उत्तर नहीं मिल सका :—

(१) ऋण—आयन में आवेश का निरपेक्ष औसत मूल्य कितना है?

(२) क्या अलग-अलग ऋण-आयन समान आवेश युक्त होते हैं? क्या गैसीय पदार्थ और घोलों में निरीक्षित विद्युत पारमाणविक रचना युक्त हैं?

(३) कहीं ऋणाणु भिन्न-भिन्न मात्रा के आवेशों का औसत मूल्य तो नहीं है?

अमेरिका निवासी प्रसिद्ध वैज्ञानिक मिलीकन ने अपने महत्वपूर्ण प्रयोगों के रूप में उक्त प्रश्नों के सुनिश्चित उत्तर उपस्थित किये। मिलीकन के यह प्रयोग के ऋणाणु का निरपेक्ष मूल्य निर्धारित करने के लिये किये गये थे। विद्युताविष्ट तेल की छोटी-छोटी बूँदों की गति विद्युतकीय और गुरुत्वकीय क्षेत्रों (Electrical and Gravitational fields) की उपस्थिति में निरीक्षण करना इन प्रयोगों की विशेषता थी। मिलीकन के प्रयोगों का पूर्ण विवरण देना तो यहाँ सम्भव नहीं है, लेकिन जिन परिणामों की ओर वे हमें ले जाते हैं वे भिन्न हैं:—

(१) ऋणाणु विद्युत आवेशों का औसत मूल्य (statistical value) नहीं है बल्कि वह स्वयं ही विद्युत की मूलभूत इकाई है, दूसरे शब्दों में ऋणाणु अपनी व्यक्तिगत सत्ता रखता है।

(२) जितने भी विद्युत आवेश प्रकृति में पाये जाते हैं उनकी मात्रा का मूल्य या तो ऋणाणु के आवेश की मात्रा के मूल्य के बराबर होता है या उसका पूर्णाङ्किक अपवर्त्य (Intergral multiple) होता है।

(३) अवाहक (Non-conductor और वाहक (Conductor पदार्थों में पाये जाने वाले सब प्रकार के स्थिर आवेशों (Static charges) का मूल्य मूलभूत आवेश के मूल्य का पूर्णाङ्किक अपवर्त्य (integral multiple) होता है।

(४) मूलभूत ऋण और धन आवेशों की मात्रा समान होता है।

इस प्रकार मिलीकन के सुन्दर और गम्भीर प्रयोगों द्वारा विद्युतकीय परमाणुकता का सिद्धान्त पूर्ण रूप से नश्चित हो गया—इन प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया कि ऋणाणु विद्युत का मूलभूत कण (Elementary Particle) होता है।

### ऋणाणु का द्रव्यमान:—

ऋणाणु के आवेश तथा $\frac{\text{आवेश}}{\text{द्रव्यमान}}$ का मूल्य जान लेने पर उसका द्रव्यमान जान लेना बड़ा आसान है। इस प्रकार गणना करके निकाले गये ऋणाणु के द्रव्यमान का मूल्य ·९१०७ × १०—२८ ग्राम आता है। यह द्रव्यमान उदजन (Hydrogen) परमाणु के द्रव्यमान का $\frac{१}{१८३६}$ वाँ भाग है। रोलेण्ड ने गणित द्वारा यह सिद्ध किया कि प्रत्येक विद्युत आवेश जड़त्व (inertia) युक्त होता है। इस प्रकार हम विद्युत आवेश के वजन की कल्पना करने को विवश हो जाते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार ऋणाणु का वजन सर्वदा उसके आवेश के कारण होता है। इसके विपरीत (Converse) भी सत्य माना जा सकता है। हम कह सकते हैं कि प्रत्येक प्रकार के जड़त्व का मूल उद्गम बिजली है। इस प्रकार पदार्थ विज्ञान के इतिहास में पहली मरतबा हम यह महसूस करने लगते हैं कि विद्युत और द्रव्य एक ही वस्तु के दो पर्याय हैं।

### ऋणाणु का परमाणु की रचना में स्थान और प्रकाश स्कन्द (emission) की क्रिया:—

ऋणाणु के अविष्कार ने परमाणु रूपी दुर्ग के जो एक ठोस और अभेद्य रचना मानी जाती थी द्वार खोल दिये। परमाणु के अन्तर्निहित कोष को प्रकाश में लाने के लिये यह आविष्कार 'सहस्र-रजनी' में वर्णित मन्त्र 'सुमसुत्र' के समान सिद्ध हुआ। निश्चित सा हो गया कि परमाणु ऋणात्मक और धनात्मक विद्युत आवेशों का बना होता है। धनाणु का भार ऋणाणु के भार का लगभग १८३६ गुना होता है। परमाणु की इस रचना को मान लेने पर दो प्रश्न पैदा होते हैं:—

(१) परमाणु के अन्दर धनाणुओं और ऋणाणुओं की व्यवस्था (Arrangemeni) क्या है?

(२) भिन्न भिन्न प्रकार के परमाणुओं में ऋणाणुओं की संख्या कितनी होती है?

### परमाणु का थामसन मॉडल :—

परमाणु के स्थायित्व (Stability) और उसके द्वारा प्रकाश स्कन्दन (Emission of light) का ध्यान रखते हुये थामसन ने यह सुझाव उपस्थित किया कि परमाणु का धनावेश एक समान घनत्व (Uniform density) गोले के रूप में उपस्थित रहता है तथा ऋणाणु धनावेश के इस गोले में वितरित रहते हैं। प्रकाश

का उन्मेष ऋणाणुओं के कम्पन के कारण पैदा होता है। परमाणु का यह मॉडल प्रकाश स्कन्दन की क्रिया की पूर्ण व्याख्या करने में असफल रहा।

### रदरफोर्ड का परमाणु भेदन और उनका परमाणु माडल

इन दिनों में केम्ब्रिज के प्रसिद्ध भौतिक शास्त्री लार्ड रदरफोर्ड गैसीय पदार्थों के स्तम्भों (Columns of gases) और धातुओं की पतली चद्दरों के अन्दर अलफा कणों (Alpha particles) के प्रवेश का अध्ययन कर रहे थे। उनने देखा कि ये कण द्रव्य के अंदर होकर गुजरते समय सीधी रेखा के मार्ग से इधर उधर भटक जाते हैं। चूँकि अलफा कण विद्युताविष्ट होते हैं, उनका सीधी रेखा के मार्ग से विचलित हो जाना किसी विद्युतकीय क्षेत्र (Electric field) के कारण होता है जो द्रव्य के परमाणु के अन्दर व्याप्त रहता है। परमाणु अपने पूरे रूप में तो वैद्युत-उदासीन (Electrically neutral) होता है। इसलिये इस प्रकार का मार्ग विचलन अलफा-कणों के परमाणु के अन्तर में होकर गुजरने के कारण होता है। थामसन ने अपने परमाणु मॉडल के आधार पर यह हिसाब लगाया कि इस प्रकार के विचलन (deviation) की मात्रा २° या ३° से अधिक नहीं हो सकती। जीजर और मार्सडन ने यह निरीक्षण किया कि कभी-कभी इस विचलन की मात्रा ६०° या उससे अधिक हो जाती है। परमाणु का थामसन माडल दीर्घ विचलन (Large deviation) की व्याख्या करने में सर्वथा असफल रहा। यही नहीं इस घटना के साथ साथ थामसन माडल भी समाप्त हो गया। रदरफोर्ड ने हिसाब लगाया कि परमाणु का धनावेश एक गोले के रूप में विस्तृत न होकर केवल $१०^{-१२}$ से० मी० व्यासके आकाशीय क्षेत्र में केन्द्रित रहता हैं। इस केन्द्रित आवेश के बाद में केन्द्रक या बीज (Nucleus) के नाम से निक्षेपित किया गया। परमाणु रचना सम्बन्धी उक्त मान्यतायें रदरफोर्ड के केन्द्रकीय प्रकल्प (Nuclear Hypothesis) के नाम से प्रसिद्ध है।

### रदरफोर्ड माडल की संकटावस्था :—

रदरफोर्ड द्वारा उपस्थित परमाणु के केन्द्रकीय-प्रकल्प (Nuclear Hypothesis) ने अलफा-कणों के दीर्घ विचलन की व्याख्या तो कर दी किन्तु उसके (परमाणु के) स्थायित्व का सवाल अनिश्चित ही रहा। हम यह कल्पना कर सकते हैं कि परमाणु के ऋणाणु उसके केन्द्रक से स्थिर वैद्युत शक्तियों (Electrostatic Forces) द्वारा बन्धे होते हैं; लेकिन गणना करने पर इस शक्ति की मात्रा इतनी अधिक आती है कि इसके द्वारा खिंच कर सारे ऋणाणु केन्द्रक में समाविष्ट हो जायें। इसलिये परमाणु को स्थायित्व प्रदान करने के लिए यह कल्पना करनी पड़ी कि ऋणाणु केन्द्रक के चारों ओर परिक्रमा करते रहते हैं उसी प्रकार जिस प्रकार सौरमण्डल में ज्योति ग्रह सूर्य का परिक्रमा करते है। इस प्रकार परमाणु एक सूक्ष्म सौर मण्डल है। किन्तु ऋणाणु के परिक्रमा की मान्यता वैद्युत-चुम्बकीय सिद्धान्त (Electro-magnetic-Theory) के विरुद्ध जाती है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक परिभ्रमण शील ऋणाणु को निरतर शक्ति का विकिरण करते रहना चाहिये। यह शक्ति सिवाय परमाणु व्यवस्था के और कहाँ से आ सकती हैं। इस प्रकार सारी परमाणु व्यवस्था शक्तिहीन होती चली जायगी और अन्त में एक सर्पिल (Spiral) मार्ग से ऋणाणुओं का केन्द्रक में समावेश हो जायगा। केन्द्रक में समाविष्ट होने की इस क्रिया में प्रत्येक परमाणु द्वारा निरंतर बढ़ने वाली आवृति संख्या (Constantly increasing frequency) के विकिरण का उत्सर्ग होगा। किन्तु यह बात प्रयोगात्मक निरीक्षण से मेल नहीं खाती। हम यह देखते हैं कि प्रकाश का उन्मेष निश्चित आवृति संख्या (Fixed Frequency) की वर्ण पट रेखाओं (Spectral lines) के रूप में होता है। सिद्धान्त और निरीक्षण की यह विषमता रदरफोर्ड माडल के जीवन के लिये एक महान संकट था।

### बोह्र द्वारा रदरफोर्ड माडल की रक्षा:—

इस विकट परिस्थिति में बोह्र ने क्रान्तिकारी नवीन धारणाओं को जन्म देकर रदरफोर्ड माडल में स्थायित्व प्रदान किया और उसको नष्ट होने से बचा लिया। बोह्र का सम्बन्ध खासतौर पर उदजन परमाणु द्वारा उन्मेषित वर्ण पट रेखाओं की व्याख्या से था। परमाणु के अन्दर की ऋणाणु व्यवस्था और उनके द्वारा उन्मेषित

(emitted) विकिरण के सिलसिले में बोह्र ने निम्न निर्भीक मान्यतायें उपस्थित कीं :—

(१) प्रत्येक ऋणाणु केन्द्रक के क्षेत्र में (in the field of the nucleus) बिना किसी प्रकार के शक्ति विकिरण के उसके चारों ओर परिक्रमणशील रहता है। ऐसा करते समय वह प्रकाश वैद्युत्त-चुम्बकीय सिद्धान्त का उल्लंघन करता है, किन्तु ऋणाणु की कात्तिक गति (orbital motion) न्यूटन के गतिशास्त्र के नियमों के अनुसार होती है।

(२) कक्षा (orbit) विशेष में ऋणाणु की शक्ति निश्चित रहती है। शक्ति का विकिरण ऋणाणु के अधिक शक्ति की मात्रा, एक मूलभूत मात्रा "h" जिसको प्लाँक का स्थिर पद (constant) कहते हैं—की पूर्णाङ्किक अपवर्त्य होती है। इस प्रकार बोह्र ने विकरित शक्ति को भी पारमाणविकता की विशेषता प्रदान की। बोह्र के प्रकल्प ने केवल उदजन—वर्णपट की ही व्याख्या न की किन्तु पदार्थ विज्ञान की एक नवीन शाखा वर्णपट-शास्त्र (Spectroscope) की भी नींव डाली।

## रासायनिक क्रिया में ऋणाणु का भाग-रासायनिक तत्वों का कुटम्ब

नवीन विकसित सिद्धान्तों ने यह भली प्रकार सिद्ध कर दिया कि भिन्न प्रकार के मूल तत्वों में जो अन्तर पाया जाता है वह केवल उनके परमाणुओं के अन्दर के ऋणाणुओं और धनाणुओं की संख्या और व्यवस्था का अन्तर है। तब नवीन आविष्कृत परमाणु रचना के दृष्टि कोण से रासायनिक क्रिया का क्या अर्थ है? मेंडलीफने मूलतत्वों के परमाणुओं के रासायनिक व्यवहार में आवर्तत्व (Periodicity) और नियमितता का निरीक्षण किया। मेंडलीफ का उक्त अनुसंधान "मूलतत्वों का आवर्त-वर्गीकरण"(Periodic classification of elements) के नाम से प्रसिद्ध है। क्या हम इस आवर्तत्व की परमाणु की विद्युतकीय रचना के रूप व्याख्या कर सकते हैं? जीजर और मार्सडन ने अपने अलफा-कणों के परिच्छेपण (Scattering) के प्रयोगों के आधार पर यह प्रतिपादित किया कि प्रत्येक पारमाणु के वहिर्केन्द्रक (extra-nuclear) ऋणाणुओं अथवा उसके अन्तर-केन्द्रक धनाणुओं की संख्या उस तत्व की मेण्डलीफ की आवर्त-सारिणी (Periodic-Table) में जो क्रमसंख्या है उसको सूचित करती है। उदाहरण के लिये सोडियम के परमाणु में वहिर्केन्द्रक ऋणाणुओं की संख्या ११ है, मूलतत्वों की आवर्त सारणी (Periodic-Table) में भी सोडियम ११ वें नम्बर पर है।

## बोह्र की कोष मान्यता (Shell conce t)

बोह्र ने रासायनिक क्रिया के इस आवर्तत्व को ऋणाणुओं की कोष-मान्यता के साथ सम्बन्धित करने की कोशिश की। बोह्र ने कहा कि प्रत्येक परमाणु के अन्दर के ऋणाणु-केन्द्र के चारों ओर बन्द कोषों (closed Shells) में व्यवस्थित रहते हैं! प्रत्येक कोष (Shell) में ऋणाणुओं की संख्या का एक निश्चित भाग (Quota) होता है। प्रथम कोष (hell) में २, द्वितिय ८, तृतीय में ८, चतुर्थ में १८, पंचम में १८ और षष्ठम कोष में ३२ ऋणाणु व्यवस्थित रह सकते हैं। तब किसी कोष के ऋणाणुओं की संख्या उसके निश्चित भाग (Quota) के बराबर होती है तो वह शैण परि प्लवित (Saturated) कहलाता है। ऋणाणुओं की संख्या निश्चित भाग से कम होने पर वह अपरिपल्लावित रहता है। जिस परमाणु के सारे कोष परिप्लावित होते हैं वह दूसरे परमाणुओं के साथ रासायनिक मिलन की इच्छा नहीं रखता। उदासीन (Inert) गैसों में यही होता है। हीलियम-परमाणु में केवल प्रथम कोष ही होता है और उसमें २ ऋणाणु होते हैं। निऑन (Neon) में दो कोष होते हैं, प्रथम कोष और द्वितिय कोष और दोनों कोष ऋणाणुओं से परिप्लावित होते हैं, अर्थात् प्रथम कोष और द्वितिय कोष में ६ ऋणाणु होते हैं। हीलियम और निऑन गैस के परमाणु में एक ऋणाणु (साथ ही धनाणु भी) बढ़ाने से हम को लिथियम और सोडियम नाम के क्षार-तत्व (Alkali elements) मिल जाते हैं निम्नचित्र उदासीन गैसों की क्षार-तत्वों (Alkali-elements) में संक्रमण-प्रक्रिया

(Transition) को प्रदर्शित करता है। उदासीन गैसें रासायनिक दृष्टि से नपुंसक होती है किन्तु ज्ञार-तत्व तीव्र रूप रासायनिक क्रियशीलता लिये होते हैं।

चित्र में केन्द्रीय अंक केन्द्रक के निःशेष (net) धनात्मकआवेश को जाहिर करते हैं, वृत्तों की परधि पर जो विन्दु लगाये गये हैं वे ऋणाणुओं को प्रदर्शित करते हैं।
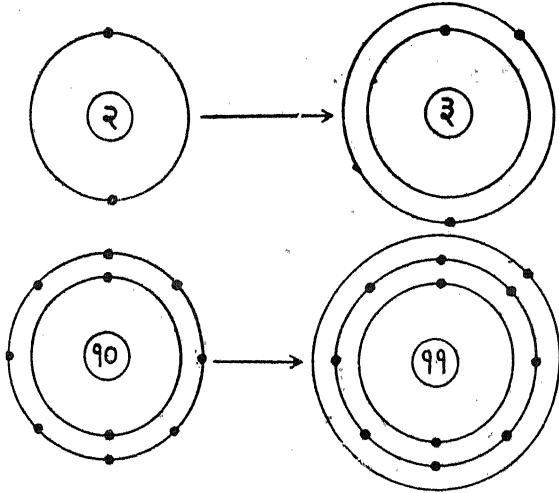
लिथियम और सोडियम के वाह्यतम कोष में एक ऋणाणु होता है। ये तत्व एक बन्धक हैं और आसानी से एक ऋणाणु दे सकते हैं। प्रत्येक परमाणु में अपने वाह्यतम शैल ( जो बहुधा अपरिज्ञावित होता है। ) के ऋणाणुओं के Quota को पूरा करने की प्रवृत्ति होती है। परमाणुओं की यही वृत्ति सब प्रकार की रासायनिक क्रिया का मूलाधार है। उदाहरण के लिये हम सोडियम फ्लोराइड के निर्माण पर विचार कर सकते हैं। सोडियम के वाह्यतम कोष में ऋणाणु होता है जबकि फ्लोरीन के वाह्यतम कोष में ७ ऋणाणु होते हैं। फ्लोरीन के वाह्यतम कोष को पूर्ण कोष-व्यवस्था के लिये एक ऋणाणु की आवश्यकता पड़ती है। इसलिये फ्लोरीन का परमाणु सोडियम और लीथियम जैसे परमाणुओं के प्रति ( जो ऋणाणु आसानी से सकते हैं ) रासायनिक आकर्षण रखता है। इस प्रकार निर्जीव द्रव्य में भी हम पूर्णत्व की ओर पहुँचने की अन्तः प्रेरणा का दर्शन करते हैं।

## ऋणाणु की आक्षिक गति (spin)

बाहर की ऋणाणु की काक्षिक गति ( arbital motion ) की धारणा तथा सामरफील्ड और अन्य विद्वानों द्वारा सापेक्षवाद के आधार पर इस धारणा का परिवर्द्धन, वर्णपट रेखाओं की विषय रचना की व्याख्या करने में अधूरे साबित हुये। युलेनवेक और गाऊडस्मित ने इस कठिनाई को हल करने के लिये यह मान्यता उपस्थित की कि ऋणाणु की काक्षिक गति के अतिरिक्त उसकी आक्षिक गति भी होती है। ऋणाणु अपनी धुरी के चारों ओर इसी प्रकार घूमता है जिस प्रकार ज्योतिर्ग्रह अपनी के अक्ष चारों ओर घूमते हैं। इस मान्यता के आधारपर ऋणाणु पर के धरातल का वेग प्रकाश के वेग से ३०८ गुना आता है और यह एक ऐसी बात है जिसकी अभी तक व्याख्या नहीं हो सकती है ऋणाणु की आक्षिक गति की मान्यता वर्णपट रेखाओं तथा परमाणुओं के चुम्बकीय व्यवहार की व्याख्या करने में अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुई है।

## ऋणाणु तरंग के रूप में:—

'प्रकाश-विद्युत प्रभाव' तथा 'कौम्पटन प्रभाव' जैसी प्रकाश से सम्बन्ध रखने वाली घटनाओं की प्रकाश के तरंग-सिद्धान्त ( wave theory ) के आधार पर व्याख्या करना सर्वथा असम्भव प्रतीत हुआ। आइन्स्टाइन ने कहा कि अच्छा तो यदि हम प्रकाश को भी द्रव्य के समान परमाणुओं का बना मानलें। प्रकाश और द्रव्य के सिद्धान्तों के समन्वय की ओर यह सबसे पहिला कदम था। २० साल बाद फ्रांस के प्रसिद्ध भौतिक शास्त्री डि-ब्रागजी ने इसका पूरक कदम उठाया। उसने द्रव्य की रचना की व्याख्या तरंग सिद्धान्त के रूप में करने की कोशिश की। इस प्रकार भौतिक विज्ञान के इतिहास में पहिली बार 'द्रव्य तरंग' ( matter-wave ) की मान्यता का जन्म हुआ डेवीसन जरमट और जी० पी० थामसन के प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया कि ऋणाणु का व्यवहार तरंगों के समान होता है। ऋणाणु के पारमाणविक और तरंगकीय व्यवहारों का समन्वय किस

प्रकार किया जाय ? बौर्न ने सुझाव उपस्थित किया कि हमको फिर कण की गति के निश्चयात्मक ( exact ) वर्णन का विचार छोड़ देना चाहिये।

किसी कण के स्थान का हम पूर्ण शुद्धता के साथ निर्णय नहीं कर सकते। हम केवल अमुक समय में अमुक स्थान पर अमुक कण के 'अस्तित्व की सम्भावना' ( probability of existence ) की मात्रा का अनुमान लगा सकते हैं। हीसनबर्ग ने भी व्यक्तिगत ऋणाणु के वेग और स्थान को एक ही समय में शुद्धता के साथ निर्णय करने की समस्या पर विचार किया। उसने कहा कि इस प्रकार का निर्णय सर्वथा अव्यवहार्य है। हीसनबर्ग ने कहा कि जितनी शुद्धता और निश्चितता के साथ हम किसी ऋणाणु के स्थान के निर्णय करने की कोशिश करेंगे उतनी ही अनिश्चितता उसके वेग के निर्णय करने में आ जायगी। हीसनबर्ग का यह सिद्धान्त 'अनिश्चयवाद' ( principle of uncertainty ) के नाम से भौतिक विज्ञान में मशहूर है। ऐसा मालूम पड़ता है कि हमारे अज्ञेय के क्षेत्र में प्रवेश करने पर कुछ पाबन्दियाँ लगी हुई है। इस प्रकार ऋणाणु की तस्वीर जो उसके कण होने के नाते इतनी स्पष्ट और साफ नजर आती थी उसके तरंग होने के रूप में धुँधली और अस्पष्ट दृष्टिगत होने लगती है। यह कठिनाइयाँ वैज्ञानिक को उसकी सत्य की चिरंतन साधना में हताश नहीं करती। परमतथ्य ( Absolute Reality ) के पाने की आशा में वह इन सब अड़चनों के बावजूद भी आगे बढ़ता है। आधुनिक समय में उसने द्रव्यकीय कणों के बारे में एक सम्भावना सिद्धान्त (theory of probability) को जन्म दिया है और इस सिद्धान्त की मूल मान्यताओं के आधार पर एक गणित व्यवस्था की रचना की है जिसे "तरंग-यंत्र शास्त्र ( wave mechanics ) कहते हैं। इस व्यवस्था की सहायता से उसने परमाणु के हृदय के अन्तरतम क्षेत्र में प्रवेश करने की कोशिश की है और उसने आविष्कार किया है इसी प्रकार के प्रयासों के फल स्वरूप 'केन्द्रक ध्वंस' ( nuclear fission ) की घटना का जो परमाणु बम्ब के निर्माण में आधार शिला का काम करती है।

### ऋणाणु केवल एक मान्यता (concept)

विश्व के नाटक में परमाणु एक सर्व व्यापक हस्ती नजर आती है। रासायनिक प्रकाशकीय और विद्युतकीय घटनाओं में नायक के रूप में कार्य करते हुए, ऋणाणु विश्व की विविधता को कायम किये हुये है। तब क्या हमको ऋणाणु का निश्चयतात्मक ज्ञान है ? क्या ऋणाणु माननीय मस्तिष्क द्वारा आविष्कृत केवल एक सुविधा-जनक मान्यता नहीं है जो परमाणु के अन्दर होने वाली घटनाओं को समझने में हमारी मदद करती है ? सैद्धान्तिक अड़चनों के बावजूद भी हमारी ऋणाणु की व्यक्तिगत सत्ता को कायम रखने की कोशिशें इस बात की ओर संकेत करती हैं कि वह एक भौतिक तथ्या ( physical reality ) होने से काफी दूर है। डेवीसन और जरमर के प्रयोगों में ऋणाणु अपने परमाणु व्यय को छोड़कर तरंग के समान व्यवहार करने लगता है। ऐसी हालत में तरंग के द्रव्यमान और आवेश का क्या अर्थ है ? ऐसा मालूम पड़ता है कि हमारे मस्तिष्क प्राकृतिक घटनाओं को केवल तरंग और परमाणु की मान्यता के रूप में ही समझ सकते हैं। नवीन अनुसंधान इन दोनों मान्यताओं की सीमितता की ओर संकेत करते हैं। "सम्भावना सिद्धान्त" ( theory of probability ) को जन्म देकर भौतिक शास्त्रियों ने तरंग और परमाणु की मान्यताओं में समन्वय कराने की कोशिश की है और एक ऐसी गठित व्यवस्था को जन्म दिया है जो परमाणु के आन्तरिक रहस्य को समझने में अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुई है।

आधुनिक काल में आविष्कृत विषय गणित सूत्रों और व्यवस्थाओं के बावजूद भी परमाणु एक रहस्य ही मालूम पड़ता है। आज से ३० साल पहले ऐसा मालूम पड़ता था कि हम सारी भौतिक घटनाओं का वर्णन "टेन्सर्स" ( tensors ) नाम की गणित व्यवस्था द्वारा कर सकते हैं किन्तु इस प्रकार की व्यवस्था ऋणाणु की आत्मिक गति ( spin ) की व्यवस्था करने में अपूर्ण सिद्ध हुई इसलिये "स्पिन्सर्स (spinsors) नाम की नवीन गणित मान्यता का जन्म हुआ अब प्रो०

डिराक हमें बतलाते हैं कि "क्लान्तम विद्युत गतिशास्त्र" Quantum electro dynamics के लिये हमें "ऐक्सपेन्सर्स" (expansors) नाम की नवीन गणित मान्यता की आवश्यकता महसूस होती है। मुमकिन है "एक्स स्पेन्सर" की मान्यता भी भविष्य में अपूर्ण सिद्ध हो जावे। मानवीय मान्यताओं की इस अपरिपूर्णता की उपस्थिति में, अणुाणु का व्यवहार उपनिषद सूत्र 'नेति नेति को चरितार्थ करता है।

---

# यांत्रिक चित्रकारी

## यांत्रिक रचनाओं और नक्शों की जाँच

*लेखकः—श्री ओंकारनाथ शर्मा (आगरा)*

**चित्रण** (Method of Drawing)

१—पैमाना—(क) देखिये कि जहाँतक साध्य हो निम्नलिखित पैमानों का ही उपयोग किया गया है या नहीं।

(१) पूरा आकार
(२) ६" द्वारा १ फुट
(३) ३" द्वारा १ फुट
(४) १ १/२" द्वारा १ फुट
(५) ३/४" द्वारा १ फुट
(६) ३/८" द्वारा १ फुट
(७) १" द्वारा १ फुट
(८) १/२" द्वारा १ फुट
(९) १/४" द्वारा १ फूट
(१०) १/८" द्वारा १ फुट
(११) १/१६" द्वारा १ फुट
(१२) १/६४" द्वारा १ फुट
(१३) दुगुना आकार
(१४) चौगुना आकार
(१५) अठगुना आकार

क्योंकि इन पैमानों के समझने में कारीगरों को अधिक सुविधा रहती है।

(ख) देखिये कि नकशे का पैमाना इतना काफी बड़ा है कि जिससे चित्रित वस्तु की बनावट और नाप वगैरह साफ साफ दिखाये जा सके हों। अनावश्यक बड़ा पैमाना भी ठीक नहीं क्योंकि उसमें कागज़ वगैरा की बरबादी होती है। यह भी देखिये कि जिस कागज़ पर नकशा बनाया गया है उसका आकार प्रमाणिक है।

(ग) देखिये कि सारा चित्रण पैमाने के अनुसार किया गया है और जो जो भाग पैमाने के विरुद्ध हैं उनके निकट सुवाच्य अक्षरों में लिख दिया गया है "बिना पैमाने" (Not to scale) और जो नाप पैमाने के विरुद्ध अंकित किये गये हों उनके अंकों के नीचे भी एक रेखा खींच देनी चाहिये

यथाः—| ←———२ १/२"———→ |

२—दृश्यों का जमाव :—(क) देखिये कि सरल और प्रमाणिक कोटि की प्रलम्बताओं का ही उपयोग किया जाय, तृतीय कोण की प्रलम्बता (Third angle projection) बड़ी उपयोगी है। यदि प्रमाणिक प्रलम्बता को छोड़ कर किसी अन्य प्रकार की प्रलम्बता का प्रयोग किया जाय तो वहाँ स्पष्ट रूप से लिख देना चाहिये।

(ख) देखिये कि नकशे में प्रदर्शित अदद की आकृति और बनावट को समझाने के लिये आवश्यक संख्या में दृश्य दिये हैं या नहीं। दृश्यों की संख्या "न अधिक न कम" होनी चाहिये।

(ग) देखिये कि नकशे में पुर्जे उसी स्थिति (Position) में चित्रित किये जावें जिस प्रकार कि वे पूरी मशीन आदि पर फिट किये जाते हैं। जब कि एक ही मशीन के पुर्जे और हिस्से एक से अधिक पन्ने

(sheet) पर चित्रित किये जावें तो यथा साध्य एक साथ लगने वाले पुर्जे और हिस्से एक ही पन्ने पर हों और उन भिन्न भिन्न पुर्जों की आपेक्षित स्थिती वैसी ही हो जैसी कि पूरी मशीन पर लगाते समय होगी अन्तर केवल यही हो कि उन्हें जुदा कर दिया गया है। उदाहरण के लिये, यदि कोई नट किसी बोल्ट या धुरी पर लगता है तो नक़शे में उसे उसी धुरी या बोल्ट की मध्य रेखा पर बनाना चाहिये और वह भी उसी सिरे की तरफ जिस पर कि वह लगाया जाता है। यदि कोई विशेष लाभ दिखाई दे तो इस नियम को तोड़ा भी जा सकता है।

(घ) देखिये कि एक ही वस्तु के भिन्न भिन्न दृश्यों के बीच में उतनी अधिक जगह न छोड़ी जाय जितनी कि भिन्न भिन्न वस्तुओं के दृश्यों के बीच में छोड़ी जाती है। लेकिन उन दृष्यों के बीच में कम जगह छोड़ कर इतना घिच पिच भी न कर दिया जाय जिससे कि उन के आवश्यक नाप और सूचनायें सफाई के साथ न दिये जा सकें।

(ङ) देखिये कि आवश्यक कोणीय प्रलम्बित दृष्य सही सही बनाये गये हैं या नहीं।

(च) देखिये कि आवश्यक स्थानों पर उद्धारित आकृतियाँ (Developed shapes) बनाई गई हैं या नहीं।

(छ) देखिये कि बहुत ही सरल आकृतियों को छोड़ कर दृश्यों की अन्य काटों का नामकरण कर दिया है, और जिस धरातल की काट दिखाई गई है एक पतली रेखा द्वारा अंकित कर दिया गया है और उस रेखा के छोरों और मोड़ों पर अक्षर अङ्कित कर दिये गये हैं, और उन्हीं अक्षरों के अनुसार उक्त काट (Section) अथवा आन्तरिक दृश्य का नामकरण किया गया है।

(ज) देखिये कि सब चूड़ीदार छेदों की चूड़ियाँ सही सही बनाई गई है और छेदों और पेचों पर बनी सीधी और उल्टी चूड़ियों की झुकाव की दिशा में कोई गड़बड़ी नहीं की गई है।

(झ) देखिये कि सीधे और उल्टे हाथ को लगने वाले दोनों ही प्रकार के पुर्जे और अदद चित्रित किये गये हैं, यदि वे बहुत कुछ समरुप (Similar) हैं और उनके केवल दो एक नापों में ही असमानता है तो वे नाप वहाँ पर स्पष्टतया अंकित कर देने चाहिये यथा :—

|<————२½" सी० हा०—>|
|<————३ " उ० हा०—>|

यदि वे बिलकुल ही समरुप अथवा उल्टे हैं तो यह सूचना भी वहां स्पष्टतया अंकित कर देनी चाहिये।

३—रेखायें :—(क) देखिये कि पुर्जों और अददों की आकृति प्रदर्शित करने वाली पूर्ण रेखायें काफी मोटी और स्थायी बनायी गई हैं या नहीं ? जिससे पहली निगाह पड़ते ही वे विन्दु-रेखाओं, नाप की रखाओं, प्रलम्बित रेखाओं और मध्य रेखाओं के बीच में से चमक उठें और उसकी आकृति एक दम दिमाग़ में बैठ जाय।

(ख) देखिये कि विन्दु रेखायें, नाप की रेखायें, प्रलम्बित रेखायें और मध्य रेखायें सबकी सब हल्की लेकिन स्पष्ट बनाई गई हैं या नहीं ?

(ग) देखिये कि पूर्ण और विन्दु रेखायें यथा स्थान बनाई गई हैं या नहीं।

(घ) देखिये कि जब किसी एक हिस्से की आकृति किसी एक दृश्य में पूर्णतया समझाई जाचुकी है तब उसी हिस्से की आकृति को प्रदर्शित करने वाली विन्दु रेखायें अन्य दृश्यों में बार-बार व्यर्थ ही न दिखाई जावें। और जब कि कोई आकृति बिना विन्दु रेखाओं के द्वारा ही समझाई जा सकती है तब उसे विन्दु रेखाओं से नहीं समझाना चाहिये। क्योंकि बिन्दु रेखाओं का एक व्यर्थ का जाल बना देने से नकशा समझने में दुरुह हो जाता है और कारीगर लोग चक्कर में पड़ जाते हैं।

(ङ)—देखिये कि आन्तरिक दृश्यों की काटें प्रमाणिक कटाव की लकीरों द्वारा भरी हैं या नहीं।

३–नाप (Dimensions)

१—आवश्यक नाप :—(क) देखिये कि नकशे प्रत्येक पुर्जे अथवा अदद के सब आवश्यक नाप दिये गये हैं या नहीं। यह जानने के लिये कि अमुक अदद के सब आवश्यक नाप दिये गये हैं या नहीं। आप जांच

करते समय अपना ध्यान केवल उस एक ही पुर्जे, अदद या उसके भी किसी विशेष भाग पर केन्द्रित कीजिये जब तक कि आप उसकी सब प्रकार से जांच न करलें। उदाहरण के लिये मान लीजिये कि आप एक अदद की जांच कर रहे हैं जिसके चपटे और गोल प्लेट नुमा शरीर के बीच में एक आयताकार उभार (Projection) बना हुआ है। अब पहिले आप उस चपटे और गोल प्लेटनुमा भाग की तरफ ध्यान दीजिये और देखिये कि उस प्लेट का व्यास और मोटाई दी है या नहीं, फिर उस आयताकार उभार की तरफ ध्यान दीजिये और देखिये कि उसकी लम्बाई चौड़ाई और ऊँचाई दी गई है या नहीं, फिर देखिये कि वह आयताकार उभार प्लेट की गोलपेटे के ऊपर कहां बनाया जाने को है, यदि बिलकुल बीच में है तो उस आयत का केन्द्र उस प्लेट के केन्द्र से मिल जाना चाहिये और इस बात को व्यक्त करने वाले नाप देने चाहिये, और यदि वह बीच में से कुछ हट कर बनेगा तो कितना किधर को ? कहने का आशय यह है कि प्रत्येक अदद और उसके जुदा-जुदा सरल अंगों को एक स्वतंत्र भाग समझ कर उसके नाप देने चाहिये और उनका जुदा-जुदा और आपस का आपेक्षिक सम्बन्ध किसी एक प्रमुख निर्णयक (Principle reference) सतह से निश्चित करना चाहिये। कभी उधर का एक नाम जाँच लिया और कभी उधर का एक नाप जांच लिया इस प्रकार विक्षिप्त की भांति भटकते न फिरिये बल्कि व्यवास्थित योजना के अनुसार एक अदद अथवा उसके एक भाग को पूरा पूरा जांच कर फिर आगे बढ़िये।

प्रत्येक अदद के नापों की जांच करते समय निम्नलिखित प्रश्न अपने मन में जरूर कीजिये :—

प्रश्न १—उक्त अदद के तीन परिमाण क्या है ? अर्थात् उसकी लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई क्या है ?

प्रश्न २ :—इसकी नियुक्ति (Location) कहां है ? इसे हम चतुर्थ परिमाण कह सकते हैं। गणित की परिभाषा में नहीं।

प्रश्न ३ :—उक्त अदद की आकृति को पूर्ण रूप से व्यक्त करने के लिए क्या कुछ और बात भी देनी आवश्यक है ?

(ख) :—देखिये कि सब उपयोगी समाहृत नाप (Important over all dimensions) और मुख्य मुख्य मध्य रेखाओं के बीच के फासले संगम नकशों (Assembly drawings) में अवश्य दिये जावें और जाँच लीजिये कि यह समाहृत नाप भिन्न भिन्न अवयवीय पुर्जों अथवा अददों के नापों का सही जोड़ है। यदि उप संगम और बनावट (Subassembly & detail drawings) के नकशों में भी इसी प्रकार के समहृत नाप दिये गये हों तो उन्हें भी इसी प्रकार जाँचना चाहिये।

(ग) :—देखिये कि व्यास और त्रिज्या सम्बन्धी नापों के साथ उनके संकेत "व्यास" अथवा "व" और "त्रिज्या" अथवा "त्र" क्रम से दिये गये हैं या नहीं।

(घ) यदि किसी बाहिरी दृश्य पर बिन्दु रेखाओं द्वारा भीतरी बनावट दिखाकर भीतरी नाप भी वहीं दे दिया जाय और संयोग वश बाहिरी नाप और भीतरी नाप में थोड़ा ही अन्तर हो तो भीतरी नाप के साथ में "भीतरी" (Inside) शब्द अवश्य लिख देना चाहिये।

(ङ)—देखिये कि नापों की सीमायें ठीक प्रकार से व्यक्त की गई हैं या नहीं और कहीं वे अनुचित तो नहीं हैं ? उनके औचित्य पर अपना फैसला देने के पहले उन पुर्जों और अददों के कार्य को भलीभांति समझ लीजिये।

(च)—देखिये कि किसी नाप को किसी एक दृश्य पर अथवा भिन्न भिन्न दृश्यों पर दोहराया तो नहीं गया है। दोहराने से कोई विशेष तात्पर्य निकलता हो तो दूसरी बात है, यदि दोहराना आवश्यक ही हो तो देखिये कि उनमें कहीं भिन्नता तो नहीं आगई है ? यदि भविष्य में उस नाप को बदलने की आवश्यकता पड़े तो उसे सभी जगह बदलने का ध्यान रखा जाय। इस काम में ज़रासी भी असावधानी हो जाने से भारी नुकसान होने की सम्भावना रहती है।

२—नापों को लिखने की व्यवस्था :—

(क)—देखिये कि सब नाप संगठित कर (Tied up) यथा स्थान लिखे गये हैं या नहीं।

(ख)—किसी नाप को लिखने का सब से उपयुक्त स्थान वही है जहाँ कि वह कारीगर के सीधा उपयोग (Direct use) में आवे।

(ग)—सब नापों को इस प्रकार से व्यक्त करना चाहिये कि वे कारीगर के सीधे उपयोग के हों और उसे किसी प्रकार की जोड़-बाकी न करनी पड़े।

(घ)—नापों को इस प्रकार से और ऐसे मौके और स्थान पर लिखना चाहिये कि जिससे कारीगर को किसी प्रकार का शक पैदा न हो कि वे किस जगह की दूरी प्रदर्शित कर रहे हैं।

(ङ)—नाप खुलासा जगह में लिखने चाहिये और उनके अंक उसी दिशा में पढ़े जाने चाहिये जिस दिशा की दूरी को वे व्यक्त करते हैं In the direction to which they apply.)

(च)—प्रत्येक नाप को किसी ऐसे स्थान से देना चाहिये जहां से कि कारीगर नाप सके, किसी कल्पित रेखा या विन्दु से नहीं।

(छ)—नाप उन्हीं दूरियों के देने चाहिये जो कि स्थिर और निश्चित हों।

(ज)—यदि किसी अदद की लम्बाई में छोटे बड़े कई व्यास हों तो उन व्यासों को, लम्बाई प्रदर्शित करने वाले, सामने के दृश्य में दिखाना चाहिये न कि किसी बग़ली के दृश्य में।

(झ)—कोई नाप एक ही सीध में बार बार नहीं देना चाहिये जब कि उन की समानता चित्र से वैसे ही साफ साफ जाहिर हो रही है। अधिक से अधिक उन्हें दो तीन बेर लिख कर, फिर कुल दूरी का समाहृत नाप (Over all dimension) जो कि बराबर भागों में बाँटा गया है लिख कर उसके समविभाग निम्न प्रकार व्यक्त कर देने चाहिये। १४ फासले प्रत्येक ७″= ८'' - २''

(ञ)—जहाँ बहुत जरूरी हो वहीं पर मध्य रेखाओं से नाप देने चाहिये।

(ट)—छोटे नाप सदैव रूप रेखा के पास देने चाहिये।

(ठ)—नाप रेखाओं के सीमा की रेखायें उनके छोर से कुछ आगे तक बढ़ी हुई रखनी चाहिये।

(ड)—नाप रेखाओं के छोर पर बाणों के मत्थे सही सही और सुन्दरता से अंकित करने चाहिये। बाणों के मत्थे लगाना कभी भूलना नहीं चाहिये।

(ढ)—मध्य रेखा के ऊपर कभी कोई नाप नहीं लिखना चाहिये, ऐसा करने से कई बेर गलती और भ्रम हो जाता है।

४—नापों को अंकित करना :—(क) देखिये कि फुट और इंचों के अंकों के बीच में लगाया जाने वाला आड़ा खत (—) सब जगह साफ साफ बनाया गया है या नहीं। उदाहरण के लिये :—५′—६″ कहीं पर इस भूल के कारण ५६″ न पढ़े जावें।

(ख)—देखिये कि दो फुट से छोटे नाप इंचों में व्यक्त किये गये हैं या नहीं, क्योंकि ऐसा हो सकता है कि १ फुट का अंक (अंग्रेजी में) भूल में पड़ जाय अथवा किसी लकीर का भाग समझ कर छोड़ दिया जाय। उदाहरण 1′—५$\frac{१}{२}$″ केवल ५$\frac{१}{२}$″ ही पढ़ा जाय और 1 किसी निकटवर्ती विन्दु रेखा, मध्य रेखा अथवा पूर्ण रेखा का भाग समझ लिया जाय। हिन्दी भाषा में भी ऐसी सम्भावना हो सकती है, यदि १ की घुँडी ठीक न बने।

(ग)—देखिये कि पूर्ण संख्याओं को व्यक्त करने वाले अंक, चित्र के अंकों से जरा बड़े हों, नहीं तो उन्हें भी चित्र के अंकों के साथ ही पढ़ा जाने का खतरा रहता है। उदाहरण १$\frac{३}{१६}$″, $\frac{१३}{१६}$″ पढा जा सकता है, यदि १ को बड़ा न लिखा जाय।

३—विशेष स्थल और पुर्जों पर नाप देने के कुछ उदाहरण :—

(क) गावदुम (Taper) और ढालू (आनत—Inclined) स्थलों पर नाप देते समय देखिये कि निम्नलिखित नाप दिये गये हैं या नहीं।

(१) गावदुम अथवा आनत की इकाई।

(२) गावदुम अथवा आनत भाग की लम्बाई।

(३) गावदुम अथवा आनत भाग के कम से कम एक सिरे का नाप।

(४) गावदुम अथवा आनत भाग की स्थिति।

(ख)—देखिये कि बेठन दार तार की कमानियों के सम्बन्ध में निम्नलिखित नाप दिये हैं या नहीं ?

(१) तार का व्यास दशमलव भिन्न में और गेज। Fixed gauging points for Succeeding operations.

(२) लपेटों का अर्थात् बेठनों की संख्या।

(३) भार पड़ने पर और भार न पड़ने पर लम्बाई।

(४) आबदारी के विषय की सूचना।

(ग)—देखिये कि डाई और पंचों के सम्बन्ध में निम्मलिखित बातें दी हैं या नहीं ?

(१) क्रमिक क्रियाओं के लिये स्थिर मापस्थल

(२) चालू पुर्जों के सख्त और ढीले पन की सीमायें।

(३) ग्राइन्ड करने की गुँजाइश।

(४) ब्लैंकों की बावरी (Burr) के लिये छूट।

(५) अदद को डाई में बैठाते समय पंच की आवश्यक ऊँचाई।

(६) नियुक्ति स्थलों के नाप (Dimensions of Locating points).

(घ)—देखिये कि चूड़ियों के सम्बन्ध में निम्नलिखित नाम अवश्य दिये जावें।

(१) चूड़ी की जाति।

(२) पिच अथवा लहर।

(३) प्रति इंच चूड़ियों की संख्या।

(४) नाप की सीमायें।

(ङ)—देखिये कि बरम की चूड़ियों के विषय में निम्नलिखित नाप दिये गये हैं या नहीं।

(१) चालू गहराई।

(२) छूट (Clearance)

(३) बाहरी व्यास

(४) पिचडाय मीटर

(५) जड़ का व्यास

(६) हेलिक्स ऐंगल

(७) कुल गहराई

(८) दांत के बगली का कोण

(९) लीड

(१०) लम्बाई का पिच

(११) नोंक पर रुखानी की चौड़ाई

(१२) रुखानी का वक्र

(१३) चूड़ियों की संख्या

(१४) चूड़ियां सीधी या उल्टी

(च) देखिये कि बरम के किर्रें यदि मशीन द्वारा काट कर बनाये जायें तो निम्नलिखित नाप अवश्य दिये जावें। यहाँ समझ लिया गया है कि होंगि कटार उपयोग के लिये तैयार है।

(१)—किर्रें के तीखे कोनों का व्यास (बाहरी व्यास)

(२)—तैयारी पर बाहरी व्यास।

(३)—थोट रेडियस।

(४)—फेस ऐंगिल।

(५)—बरम की लम्बाई।

(६)—पिच डायमीटर।

(७)—थोट डायमीटर।

(८)—दांतों की संख्या।

(९)—दांतों का अडेन्डम।

(१०)—दांतों की ऊँचाई।

११—बरम और उसके किर्रें के सन्टरों का फासला।

(छ)—यदि बरव का किर्रा ढाल कर बनाया जावे तो निम्नलिखित नाप जरूर आजाने चाहिये।

(१)—किर्रें के तीखे कोनों का व्यास।

(२)—तैयारी पर बाहरी व्यास।

(३)—थोट रेडियस।

(४)—फेस ऐंगिल।

(५)—लम्बाई का पिच।

(६)—दांत का अडेन्डम।

(७)—बरम का पिच डाय मीटर।

(८)—बरम और किर्रें के सेन्टरों का फासला।

(९)—बरम के दांतों की कुल गहराई।

(१०)—बरम की जड़का व्यास।

(११)—बरम का हेलिक्स कोठर।

(१२)—चूडी की रुखानी के नोंक की चौड़ाई।

(१३)--किर्रे का श्रोट डायमीटर।
(१४)--किर्रे की श्रोट रेडियम।
(१५)--बरम की सब से कम लम्बाई।
(१६)--बरम का बाहरी व्यास।
(१७)--किर्रे का पिच डायमीटर।
(१८)--बरम काटने की रुखानी का वक्र।
(१६)--किर्रे के दांत के गेज का वक्र।
(२०)—ढालने की विधि।

(ज)—यदि सीधे दांत का किर्रा मशीन से बनाया जाय तो निम्नलिखित नाप अवश्य हों।

(१) शरीर खरादने के आवश्यक नाप।
(२)—दांतों की संख्या।
(३)--पिच सरकिल का व्यास।
(४)--पिच डायमीटर।
(५)—कटर का नम्बर।
(६)—दांत की गहराई।

(झ)—यदि किर्रा ढाल कर बनाया जावे तो निम्नलिखित नाप अवश्य होने चाहिये।

(१) किर्रे के शरीर को तैयार करने के आवश्यक नाप।
(२) दांत के वक्र की जाति।
(३) सरक्युलर पिच।
(४) पिच सरकिल का व्यास।
(५) दांतों की संख्या।
(६) दांत की मोटाई पिच सरकिल पर।
(७) दांत की कुल गहराई।
(८) छूट।
(६) अडेन्डम।
(१०) गेज बनाने के लिये दांत का सही वक्र।
(११) ढालने का तरीका।

(ञ)—बीवल गीयर यदि आरम्भ से अन्त तक मशीन पर बनाया जावे तो निम्नलिखित नाप अवश्य होने चाहिये।

(१) शरीर खरादने के आवश्यक नाप।
(२) दांतों की संख्या।
(३) पिच डायमीटर।
(४) डिस्टेन्स।
(५) मोड्यूल।
(६) दांतों की ऊँचाई।
(७) पिच ऐंगिल।
(८) टॉप ऐंगिल।
(६) बॉटम ऐंगिल
(१०) एन्ड ऐंगिल
(११) फेस ऐंगिल

(ट)—बीवल गीयर यदि ढाल कर बनाया जावे तो निम्नलिखित नाप अवश्य होने चाहिये।

(१) शरीर को खरादने के आवश्यक नाप।
(२) दांत के वक्र की जाति।
(३) दांतों की संख्या।*
(४) सरक्यूलर पिच।*
(५) पिच सरकिल का व्यास।*
(६) दांत की कुल गहराई।*
(७) अडेन्डम।
(८) दांत की मोटाई।
(६) गेज बनाने के लिये दांत का सही वक्र।
(१०) सब आवश्यक कोण
(११) ढलाई का तरीका।

नोट—*चिन्हित नाप दोनों किर्रों के लिये देने चाहिये।

## विविध सूचनायें

१—कारखाने के मार्ग प्रदर्शन निमित्त सूचनायें।

(क)—देखिये कि संगम चित्र ( Assembly drawings ) और विवरण चित्र (Detail drawings) में जिनमें कि कई अदद एक साथ दिखाये गये हैं, प्रत्येक अदद के लिये संकेताक्षर (Reference letters) दिये गये हैं या नहीं। ध्यान रखिये कि जब संकेताक्षरों की ऊँचाई $\frac{3}{8}''$ से कम हो उस समय "I" और "O" अक्षरों का उपयोग न किया जाय क्योंकि उन्हें भ्रम वश एक और शून्य पढ़ा जाने की सम्भावना है।

(ख) देखिये कि वे स्थल जिन पर खराद की जाने को है, जिन्हें ग्राइन्ड करना है अथवा पोलिश करना है उन पर क्रमशः F, I और P अथवा और कोई उचित संकेत लगा देने चाहिये।

(ग) प्रत्येक छेद किस विधि से बनाया जायगा अथवा उस पर क्या क्या क्रियायें होंगी उनके संकेत सूचक शब्द यथा स्थान लिख देने चाहिये यथा :— CORED, TAPPED DRILLED, PUNCHED, REAMED, अथवा To take इत्यादि, अथवा इनके समानार्थी शब्द।

(घ) देखिये कि जिस स्थल पर काउन्टर बरिंग अथवा स्पोट फेसिंग करवाना हो तो वहाँ उस क्रिया की सूचना लिखी गई है या नहीं।

(ङ) जिस पुर्जे अथवा अदद पर जहाँ जिस प्रकार का तापोपचार (Heat treatment) करवाना हो उस सम्बन्ध की सूचना अवश्य देनी चाहिये, यथा :— खोल आबदारी (Case hardening), पानी (Tempering) और मुलायमी (Annealing)

(च) देखिये, कारखाने के मार्ग प्रदर्शन के लिये निर्माण सम्बन्धी सब क्रियाओं की सूची प्रत्येक अदद के लिये दी गई है या नहीं।

(छ)—आपके विचाराधीन अदद के निर्माण करने के लिये नई डाई अथवा फरमा बनाने के बदले क्या कोई पुरानी डाई अथवा फरमा काम में ज्यों का त्यों अथवा थोड़ी रद्दोबदल के साथ काम में लाया जा सकता है? यदि हां, तो उसका नम्बर आदि दीजिये और यह भी बताइये कि उसमें क्या रद्दोबदल करनी होगी?

(ज)—आपके विचाराधीन अदद के निर्माण करने के लिये कौन कौन से जिग, फिक्श्चर अथवा विशेष औजारों की आवश्यकता पड़ेगी, यदि वे बिलकुल नये बनाये जाने को हों तो उनके नकशों का हवाला दीजिये और यदि औजार गोदाम में पुराने बने हुए मौजूद हों तो उनके नम्बर आदि का हवाला दीजिये।

(झ)—देखिये कि एक सेट अथवा मशीन को पूरा करने के लिये कितने इस प्रकार के आददों की आवश्यकता है, वह संख्या सही सही दी है या नहीं?

(ञ)—देखिये कि इस नकशे का नम्बर ठीक प्रकार से सही सही दिया है या नहीं, और इस नकशे में अन्य नकशों के जो हवाले दिये हैं उनके नम्बर ठीक ठीक दिये हैं या नहीं?

(ट)—देखिये कि यह नकशा यदि किसी पुराने नकशे को रद्दी करता है अथवा उसके स्थान पर बना है तो उस नकशे अथवा नकशों का नम्बर दिया है या नहीं?

(२)—लिखित सूचनायें और हिदायतें

(क)—देखिये कि सब लिखित सूचनायें और अंक नीचे से ऊपर और बायें हाथ से सीधे हाथ की तरफ पढ़े जाते हैं या नहीं।

(ख)—देखिये कि लिखित सूचनाओं की भाषा इतनी काफी सरल है कि जिसे साधारण कारीगर भी भली भाँति समझ सकें।

(ग)—देखिये कि शब्दों के जितने भी संक्षिप्त रूप नकशे में दिये गये हों वे सब के सब सर्वमान्य हों और जिन्हें कारीगर लोग भली भाँति समझ सकें।

(घ)—देखिये कि नकशे पर दी हुई लिखित सूचना एक से अधिक पंक्तियों में लिखी जाय, तब बायें हाथ की तरफ वे पंक्तियाँ एक ही सीध में आरम्भ होनी चाहिये। उन पंक्तियों के बीच के फासले एक समान और केपिटल अक्षर की ऊँचाई के बराबर हों।

(ङ)—देखिये की नकशे में आद्योपान्त "रीति" का निर्वाह होना है या नहीं, रीतिशब्द से आशय है लिखाई की शैली एक समान ऊँचाई तिरछापन और सुडौलता जो कि एक अच्छे नकशे के लिये बड़ी आवश्यक है। बिना रीति के निर्वाह किये नकशा चाहे कितना भी सही बनाया गया हो बड़ा भद्दा और अरुचिकर (Poor) जान पड़ता है।

(च)—नकशे में प्रदर्शित किसी स्थान से सम्बन्ध रखने वाली जो भी सूचनाएं लिखी जावें, उन सूचनाओं और उन स्थलों का सम्बन्ध प्रदर्शित करने के लिये एक हलकी और स्पष्ट रेखा खींच देनी चाहिये और उस रेखा के दोनों सिरों पर बाणों के चिन्ह बना देने चाहिये

जिससे बिना किसी शक के यह ज्ञात हो जाय कि कौन सी सूचना किस स्थल विशेष से सम्बन्ध रखती है।

३—जिम्मे दारी :— (क)—देखिये कि भिन्न-भिन्न क्रियाओं के करने वाले कारीगरों के उपयोग के लिये जो कि सब मिलकर उस वस्तु का निर्माण करेंगे पर्याप्त सूचनायें नकशे में आ गई हैं या नहीं, कहीं ऐसा न हो कि सूचनाओं के अभाव में कहीं उन्हें अपने फोरमैन अथवा आपको तंग करना पड़े। सदैव याद रखिये कि कारखाने में काम करने वाले कारीगर आप की जैसी योग्यता नहीं रखते और न वे यांत्रिक कही हैं और यह भी न समझिये कि वे उक्त अदद के बारे में, जो कुछ नकशे में दिया है उससे अधिक जानते होंगे। यदि रखिये कि एक अच्छे नकशे का लक्षण (Correctness) और सर्वांगीणता ही नहीं हैं बल्कि सरलता (Simplicity) और स्पष्टता (Directness) भी है।

(ख) —: देखिये कि आपकी जाँच के बाद इस नकशे के कारखाना जाने पर यदि कोई अशुद्धि निकाली जाय तो क्या आप उसकी जिम्मेदारी लेने के लिये तैयार हैं?

(ग)—देखिये कि इस नकशे के कारखाना जाने के पहिले इस पर आपकी, आपके चीफ ड्राफ्स मैन की और मुख्य यांत्रिक की सही हो गई है या नहीं।

---

# अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन

## ३६वाँ अधिवेशन (मेरठ)

### विज्ञान परिषद् के स्वागताध्यक्ष का भाषण

*[ श्री शीतलप्रसाद एम० एस-सी० भौतिकोपाध्याय, मेरठ कालिज ]*

प्रतिनिधिगण तथा मित्रो,

स्वागत-समिति की ओर से आज जिस नगर में आपके स्वागत करने का शुभ कार्य मुझे सौंपा गया है उसकी महत्ता न तो हिन्दी के धुरन्धर साहित्यिकों की भूमि होने के कारण ही है और न है यह उच्च कोटि का वैज्ञानिक केन्द्र ही, फिर भी आधुनिक हिन्दी के साहित्यिक इतिहास में मेरठ का महत्व कुछ कम नहीं है। खड़ी बोली का प्रमाण-भूत रूप मेरठ में बोली जाने वाली भाषा को ही माना गया है। जब भी भाषा-विज्ञान के महारथियों में कोई मतभेद हुआ मेरठ की भाषा के उदाहरण ही प्रमाण-स्वरूप माने गए। इसके अतिरिक्त मेरठ को गौरव है ऐसे आदर्शवादी महानात्मा की कर्म-भूमि होने का कि जिन्होंने जीवन भर हिन्दी और देवनागरी का बेड़ा उस युग में उठाया जब कि देवनागरी और हिन्दी के समर्थक ढूँढे भी न मिलते थे। इन पं० गौरीदत्तजी ने इसी उद्देश्य से देवनागरी कालिज मेरठ के पूर्व-तम रूप देवनागरी पाठशाला को जन्म दिया। इन महानुभाव के अतिरिक्त यहाँ पर ऐसे आदर्शवादी स्वप्न-दर्शकों की कमी नहीं रही है जो उस दिन की बड़े चाव से बाट जोहते रहे हैं जब कि हिन्दी में ऐसे उच्च-कोटि के प्रामाणिक दैनिक समाचार-पत्र निकलें कि अंग्रेज़ी पत्रों का बोल-बाला उठ जाय, जब कि हमारा निजी पत्रव्यवहार, पठन-पाठन कार्यालयों का समस्त कार्य-क्रम हिन्दी में ही हो और यही नहीं अपितु गंभीर से गंभीर सर्वोच्च कोटि के अन्वेषणात्मक लेख व ग्रन्थ हिन्दी और केवल हिन्दी में ही लिखे जाँय और पढ़े लिखों की दैनिक बोलचाल अंग्रेज़ी-हिन्दी की खिचड़ी न होकर केवल हिन्दी ही हो।

## वैज्ञानिक-मनोवृत्ति

प्राचीन पूर्व-ऐतिहासिक कथा के अनुसार मेरठ मय-दानव नामक असुर का खेड़ा है। इस असुर ने युद्ध-सम्बन्धी व अन्य ऐसी वैज्ञानिक लीलाओं में ही पारंगतता प्राप्त नहीं की थी कि जिन्होंने महाऋषियों और महारथियों को चकित और परास्त कर दिया अपितु उसने यहाँ का वायु-मण्डल ऐसा दूषित कर दिया कि श्रवण जैसे मातृ पितृ-भक्त के मन में भी मैल आए बिना न रहा। निःसंदेह आज हम बौद्धिक कसौटी पर कस के निःसंकोच यह कह सकते हैं कि आज की साम्प्रदायिक संस्थाओं द्वारा निर्माणित वायु-मण्डल की भाँति उस असुर ने भी विषैले वातावरण को जन्म दिया होगा और भाँति भाँति के वैज्ञानिक अस्त्र-शस्त्र बनाए होंगे। किन्तु यह सब किस प्रकार बुद्धि के प्रयोग से निर्मित किए जा सकते हैं यह तो न उस काल के जन-साधारण की समझ में ही आया और न उन्हें समझाया ही गया। फल-स्वरूप जनता अंधकार में ही रही और इन असाधारण बौद्धिक शक्तियों को 'आसुरी' 'मायावी' आदि नाम देकर जनसाधारण के मन में भय बैठा दिया गया। विद्या और ज्ञान के अधिकारियों ने जनता से कोई सम्पर्क नहीं रखा। आज भी वैसा ही युग है। वैसी ही अवस्था है। वैज्ञानिक आविष्कार इतने वेग से प्रगति कर रहे हैं कि यदि हमने अपने देशवासियों—जन-साधारण—को इन आधुनिक प्रगतिओं से परिचित न रखा तो वैज्ञानिकों और जनसाधारण में इतना फटाव हो जावेगा कि इन आविष्कारों को अंध विश्वास का रूप देकर जनता सदैव ही अंध-कूप में पड़ी रहेगी अथवा किसी न किसी प्रकार की गुरु-गद्दी स्थापित हो जावेगी। और इन दोनों में से कुछ भी हुआ तो अपने प्यारे देश में सच्चे-प्रजातन्त्र की जड़ जमाने का हमारा मधुर स्वप्न कोरा स्वप्न ही रह जावेगा। इसी कारण यह आवश्यक हो जाता है कि ज्यों ज्यों वैज्ञानिक-प्रगति बढ़ती जावे त्यों त्यों जनसाधारण का ज्ञान तल ऊपर उठता जावे। अन्यथा प्रजातन्त्र की स्थापना तो दूर रही यह स्वतन्त्रता भी अधिक दिन सुरक्षित न रह सकेगी।

आज यदि सकल भू-मण्डल की ओर ऐतिहासिक दृष्टि-कोण से देखें तो यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि पिछली शताब्दियों की अपेक्षा बीसवीं शताब्दि में पाश्चात्य देशों में प्रायः सभी क्षेत्रों के विशेषज्ञों के ज्ञान-तल का परम-ह्रास हुआ है। नहीं हुआ तो केवल वैज्ञानिक क्षेत्र में ही। कहाँ है आज नैपोलियन और नेल्सन जैसे सेनापति ग्लैडस्टन जैसे राजनीतिज्ञ बर्क जैसे वक्ता, और कैण्ट जैसे दार्शनिक किन्तु न्यूटन और मैक्सवेल के सामने इस शताब्दि के प्लैंक और आइन्सटाइन किसी दशा में भी हलके न उतरेंगे। यह क्यों? इसलिए कि केवल वैज्ञानिकों ने ही सच्चे अर्थ में सत्य की खोज का प्रयत्न किया। केवल उन्होंने ही

(१) लगन के साथ पीछे पड़कर काम करने की आदत डाली

(२) फल की चाट में कर्त्तव्य-पथ को कभी न छोड़ा अपने सामने केवल एक ही आदर्श रखा "कर्मण्ये वाधिका रस्तेमा फलेषु कदाचना।"

तथा (३) यह अंहकार कभी न मन में आने दिया कि मेरी और केवल मेरी ही राह ठीक है। शेष सब कुराह हैं। उन्होंने एक संभवतया ठीक राह को लेलिया और पगपग पर चौराहे के आने की प्रतीक्षा करने लगे। यह थी सच्ची वैज्ञानिक मनोवृत्ति कि जिसने हमारी शताब्दि के वैज्ञानिकों को पतन से बचा लिया।

## विज्ञान आज कहाँ है ?

इसी सच्चे वैज्ञानिक मनोविकास के कारण आज विज्ञान-जगत ने अनपेक्षित एवम् आश्चर्य-जनक आविष्कारों से हम सब की आँखें चौंधिया दी हैं। आज से दो तीन हजार वर्ष पहले से ही मनुष्य की चेष्टा एक धातु को दूसरी धातु में बदलने की रही है। केवल स्वर्ण लोलुपता से प्रचालित होकर कोरी कल्पना के आधार पर ही ऐसी पारस पथरी की खोज की जाती रही है कि जिसके छूने मात्र से ही लोहा, सोना हो जाय। फल की चाट इतनी अधिक हो गई कि उसके आवरण में सारी वैज्ञानिक प्रवृत्तिय ढक गई। फलस्वरूप मिली अस-

फलता। किन्तु इसी शताब्दी के निष्काम-वैज्ञानिक-युग में प्रयोग करते करते हम कुछ धातुओं को दूसरी धातुओं में परिवर्तित कर सके हैं। यही नहीं इसी क्रम में यह भी पता चला कि पिण्ड-नाश से शक्ति-ज्योति या रश्मियों के रूप में किस प्रकार उत्पन्न हो सकती है। आज हमारा विचार है कि शायद यही पिण्ड-नाश नक्षत्रों और सूर्य को ज्योतिर्मय बना रहा है और उनका पिण्ड बराबर घटता जा रहा है। इसी प्रकार के प्रयोगों ने यह भी सिद्ध किया कि पिण्ड-नाश द्वारा प्राप्त शक्ति की मात्रा इतनी अधिक प्रचुर बनाई जा सकती है कि उसके विस्फुटन से संसार के बड़े बड़े नगरों को विध्वंस और विनाश की लपटों द्वारा क्षणों में समाप्त किया जा सकता है। इस परमाणु-बम ने हिरोशिमा जैसे नगर का जिस फुर्ती और निर्दयता से नाश किया उसकी कहानी मात्र के सुनने से रोयें कांपने लगते हैं। और आकाशीय रश्मियों (कास्मिक रेज) पर पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त करने के बाद शायद यह भी संभव हो सके कि इससे भी अधिक भयानक बम बनाया जा सके। किन्तु साधारण जनता इनकी कहानी सुनकर बार बार यह पूछती है कि क्या इस ज्ञान का उपयोग किसी लाभकारी काम में नहीं हो सकता? वैज्ञानिकों की बुद्धि इस दिशा में बराबर लगी हुई है और सफलता की राह धुंधली सी दिखाई देने भी लगी है। संभव है शीघ्र ही यह स्वप्न भी पूरा हो जाय।

इसके अतिरिक्त आज के विज्ञान की सहायता से कृषि-कला की वृद्धि पर्याप्त रूप से हो चुकी है। भांति भांति के प्रयोगों द्वारा उपज काफी बढ़ाई जा चुकी है, अनावृष्टि को बनावटी वर्षा द्वारा रोका जा चुका है, बड़े बड़े दिग्गज बांध बना कर बिजली पैदा की जा चुकी है। एवम् बढ़िया और शुद्ध दूध की शब्दशः नदियाँ बहाई जा चुकी हैं। हमें विश्वास आवे या न आवे परन्तु पाश्चात्य देशों में यह सब हो चुका है। इस में लेश भी सन्देह नहीं।

## "हमारी वैज्ञानिक समस्याएँ"

आज स्वतन्त्र होने पर हम ठण्डे दिल से सोच सकते हैं कि हमारी आज की वैज्ञानिक समस्याएं क्या हैं? सब से बड़ी समस्या है अपने समाज से अंध विश्वास को समूल नष्ट करना। अमरीका के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ फ्रेंकलिन की तरह हमको भी अपने पड़ोसियों को विश्वास दिलाना है कि केवल विधना के भरोसे हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना कर्महीनता की पराकाष्ठा है। जब फ्रेंकलिन की अपनी खेती नये नये खादों के प्रयोगों से बढ़ती चली गई तो भी पड़ोसियों को विश्वास न हुआ कि यह सब खाद का प्रताप है। उनके लिए तो धन और धरती का विकास विधाता की देन थी। वे समझते थे कि अपने अपने भाग्य की बात है कि किसी धरती में अच्छी उपज हो और किसी में बुरी। फ्रेंकलिन ने अपनी धरती के एक खेत में खाद लगाया और दूसरे को भगवान के भरोसे छोड़ दिया। फलस्वरूप खाद वाले खेत में दूसरे की अपेक्षा दुगुनी चौगुनी पैदावार हुई।

हम नित्य देखते हैं कि हमारे जीवन में ऐसे न जाने, कितने दृष्टान्त आते हैं। न हम आधुनिक उपायों से गाय को माता-माता कहते हुए भी—अधिक दुधैल ही बनाते हैं और न फल, अन्न, धान आदि की खेती को ही आधुनिक खादों के द्वारा बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं। जैसे हजारों वर्षों से चलता आया है वैसे ही उसे चलते रहने देते हैं, बल्कि उस में भी नित्य अवनति ही होती जाती है। अतः इस अंध विश्वास को दूर करने की सब से बड़ी हमारी समस्या है। इस सम्बन्ध में यह कहना आवश्यक है कि हमारी राष्ट्रीय सरकार को भी अति-वृष्टि, अनावृष्टि, भक्ष्य पदार्थों में उन्नति, आदि समस्याओं को सुलझाना है। यह सब जनता के बूते की बात नहीं। यह तो राज्य द्वारा ही सुचारु रूप से हो सकता है। परन्तु इस सब में भी सफलता सरकार को तभी मिल सकती है जब कि जनता का पूर्ण रूप से स्वयमेव ही, सहयोग मिले। और यह सहयोग तब तक मिलता नहीं जब तक कि हमारे जन साधारण की मनःस्थिति वैज्ञानिक न हो। इस सब से निष्कर्ष यह निकला कि वैज्ञानिकों, सरकार तथा जनता तीनों के सहयोग के बिना हमारी प्रगति की गाड़ी आगे चलती नहीं। इसलिए :—

(१) एक ओर तो हमारी सरकार को भोजनोन्नति अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि समस्याओं के सुलझाने के

लिए वैज्ञानिकों के ज्ञान और अनुभव के लाभ उठाना है और

(२) दूसरी ओर जनता से वैज्ञानिक सम्पर्क स्थापित रखने के लिए वैज्ञानिकों तथा विज्ञानाचार्यों को सरकार की सहायता प्राप्त करते हुए निम्नलिखित कार्यों में तुरन्त हाथ डालना है :—

(क) सर्वसाधारण की भाषा में ही उनको वैज्ञानिक बातों से परिचित करना और तदार्थ सरल भाषा में वैज्ञानिक पुस्तकों का निर्माण करना।

(ख) बालकों के लिए इसी प्रकार सरल पुस्तकें लिखना।

(ग) विद्यालयों तथा विश्व-विद्यालयों तक में पाठ्य-माध्यम राष्ट्र भाषा को बनाना एवम् पाठ्य-पुस्तकें, अन्वेषणात्मक-लेख तथा सर्वोच्च तल के प्रमाणभूत ग्रन्थ राष्ट्रभाषा में लिखकर प्रकाशित कराना।

(घ) पारिभाषिक शब्दों के सम्बन्ध में एक ऐसी राष्ट्रीय नीति बनाना जो समूचे राष्ट्र को मान्य हो सके। इस प्रश्न को गंभीरता से केवल राष्ट्रीय लाभ की दृष्टि और वैज्ञानिक ढंग से ही सुलझाना जिससे व्यर्थ की गरमागरमी न हो।

(ङ) पठन पाठन के लिये ग्रंथों के साथ वैज्ञानिक यन्त्रों और उपकरणों के निर्माण का कार्य तुरन्त ऐसे ढंग से करना कि ये अधिक संख्या में और आज के लूटमार वाले बाजार से सस्ते दामों में विज्ञान-शालाओं को प्राप्त हो सकें।

तथैव (३) इस विज्ञानी-करण के आन्दोलन को तीव्रता और गति देने के लिए प्राथमिक पाठशालाओं (प्राइमरी स्कूलों) के शिक्षकों के लिए १५-२० दिन की क्लासें खोलना जिससे वैज्ञानिक-मनोवृत्ति की ओर उनका रुझान हो। बाद में वैज्ञानिक पुस्तिकाओं व पाक्षिक या मासिक पत्रों द्वारा विज्ञान की गतिविधि से उनका सम्पर्क बनाए रखना।

यह सब न तो अकेले वैज्ञानिक ही कर सकते हैं और न अकेली सरकार ही। दोनों का सहयोग हुए बिना काम न चलेगा।

इन्हीं सब बातों को दृष्टि में रखते हुए इस वर्ष अधिवेशन में पारिभाषिक शब्दों पर विचार परिवर्त्तन के लिए एक गोष्टी, चलचित्रों का प्रदर्शन तथा सार्वजनिक वैज्ञानिक भाषण का आयोजन किया गया है। यदि उपस्थित विद्वानों द्वारा हमारी समस्याएँ कुछ भी सुलझ सकीं तो साहित्य सम्मेलन के लिए गर्व की बात होगी।

अंत में एक बार और आप सब का इस नगर में और विज्ञान परिषद् के अधिवेशन में हृदय से स्वागत करता हूँ और अपना परम पुनित कर्त्तव्य समझ कर अपने अधिवेशन के प्रधान प्रो भास्कर गोविन्द घाणेकर जी बी० एस०सी०, एम० बी० बी० एस० आचार्य आयुर्वेदिक महाविद्यालय काशी से प्रार्थना करता हूँ कि वे प्रधान-पद ग्रहण करके स्वागत समिति को अनुगृहीत कर परिषद् के कार्य को संचालित करने की कृपा करें।

———

# विज्ञान परिषद् के सभापति का भाषण

[ श्री भास्कर गोविन्द घाणेकर बी० एस०-सी०, एम० बी० बी० एस० ]

उपस्थित सज्जनो तथा देवियो !

आप लोगों ने विज्ञान-परिषद् के सभापति के पद पर मेरा चुनाव करके मुझपर जो अनुग्रह किया है उसके लिए मैं आपका अत्यन्त ऋणी हूँ। इसका कारण यह है किचुनाव में सफल होने के लिए इच्छुक व्यक्तियों द्वारा मतदाताओं की दृष्टि से जो विविध प्रयास किए जाते हैं उनमें से किसी प्रकार का भी प्रयास मेरी ओर से इस चुनाव में नहीं हुआ, आप लोगों ने केवल कर्तव्य-बुद्धि से मुझे इस पद पर निर्वाचित करने का सौजन्य दिखाया है। यह एक पक्षीय व्यवहार चुनाव-सम्बन्धी मेरे परिणत विचारों का फल है। आजकल चुनाव में सफल होने के लिए प्रार्थना, आग्रह, दबाव, बलात्कार इत्यादि अनेक सूक्ष्मासूक्ष्म उपायों का प्रयोग किया जाता है, परन्तु इनसे जो फल निकलता है वह मतदाताओं की इच्छा का वास्तविक प्रतिबिम्ब नहीं होता। इसलिए मैंने अपनी ओर से कुछ भी नहीं किया। आशा है कि आप लोग इसके लिए मुझे क्षमा करेंगे।

इस प्रसंग में मैं सम्मेलन के सभापतियों के चुनाव के सम्बन्ध में एक छोटा सुझाव उपस्थित करना चाहता हूँ। वह यह है कि जिस समय सम्मेलन की कार्यकारिणी समिति प्रत्येक पद के लिए तीन-चार व्यक्तियों के नाम चुनकर स्वीकृति के लिए उन व्यक्तियों के पास भेजती है, उसी समय सम्मेलन को उन व्यक्तियों के पास यह भी लिखना चाहिए कि वे अपना संक्षिप्त परिचय भेज देने की कृपा करें। सबका परिचय प्राप्त होने पर सम्मेलन अपनी ओर से परिचय-पत्र छपवाकर मतदाताओं के पास भेजे। विभिन्न पदों के लिए चुने गए व्यक्तिमत पाने के लिए किसी प्रकार का प्रयत्न न करेंगे। इस मतदाता पूर्ण स्वतंत्र रहकर निःसंकोच वृत्ति से मतदान का काम कर सकेंगे और जो फल निकलेगा वह मतदाताओं की इच्छा का शुद्ध प्रतिबिम्ब होगा। इस विषयान्तर के बाद अब मैं अपने भाषण के मुख्य विषय की ओर चलता हूँ।

## स्वभाषा का महत्व

गत वर्ष अँग्रेजों की राजकीय पराधीनता नष्ट होने परयद्यपि भारतवर्ष की गणना आप से आप संसार के स्वतन्त्र देशों में होने लगी तथापि केवल इसी कारण से संसार के उन्नत देशों में उसकी गणना नहीं की जा सकती। देश उन्नत है या नहीं, इसका निदान करने के अनेक साधन होते हैं। उनमें देश की भाषा और तद्गत वाङ्मय महत्वपूर्ण साधन है। देश की उन्नति के निदान में भाषा का समावेश करने का कारण यह है कि प्रत्येक देश की भाषा तथा उसके वाङ्मय में उस देश की उन्नति अवनति का प्रतिबिम्ब मिलता है। भारतवर्ष प्राचीन काल में उन्नत था, इस बात का पता उस समय की संस्कृत भाषा की प्रगल्भता तथा उसके विशाल वाङ्मय से लग जाता है। वर्तमान-काल में इङ्गलैण्ड, अमेरिका जर्मनी (इस समय का विचार न कीजिएगा) रशिया अत्यन्त उन्नत देशों में हैं और इस बात का पता अँग्रेजी, जर्मन, और रशियन भाषाओं की प्रगल्भता तथा उनके विशाल वाङ्मय से लग जाता है। यद्यपि ये सब भाषाएँ बहुत उन्नत हैं तथापि अँग्रेज, जर्मन या रशियन को छोड़कर अन्य देशों के लोग उनपर गर्व नहीं कर सकते। न इस प्रकार दूसरों की भाषा पर गर्व करना किसी को शोभा देता है। यहाँ पर मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी की एक कथा मुझे याद आ रही है। श्रीरामचन्द्रजी रावण का वध करके लङ्का में पहुँचे। लङ्का की सम्पत्ति अयोध्या से अधिक थी। एक सामान्य मनुष्य को उसका मोह होना स्वाभाविक था। लक्ष्मणजी ने श्रीरामचन्द्रजी से केवल यही कहा कि मैं चाहता हूँ कि हम लोग कुछ दिन इस

सुन्दर नगरी में ही रहें। उस पर श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—

**अपि स्वर्णमयी लङ्का न मे लक्ष्मण रोचते।**
**जननी—जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी॥**

मैं प्रभु रामचन्द्रजी का वचन स्वभाषा की दृष्टि से इस प्रकार कहूँगा—अपि स्वर्णमयी भाषा परेषां मे न रोचते। जननी च स्वभाषा च स्वर्गादपि गरीयसी। कहने का मतलब यह है कि स्वतन्त्रता प्राप्त होने के पश्चात् अँग्रेजी भाषा उन्नत है, इसीलिए उसका मुखापेक्षी रहना भारतीयों को किसी प्रकार से शोभा नहीं देगा। अब उनकी प्रतिष्ठा इस बात में है कि वे अपनी भाषा को अपना कर तपस्या से उसको संसार की उन्नत भाषाओं की पंक्ति में बिठाने की महत्वकांक्षा रक्खें। यह कार्य तभी हो सकता है जब प्रत्येक भारतीय केवल अपनी ही भाषा में भाषण-लेखनादि अपना सब व्यवहार करने का प्रण करे। युद्धों के द्वारा मुगलों की परतन्त्रता नष्ट करके श्री शिवाजी महाराज ने राजकीय स्वतन्त्रता प्राप्त की, परन्तु उससे भाषिक स्वतन्त्रता प्राप्त न हो सकी। इसके लिए उन्हें विदेशियों की भाषा के साथ युद्ध प्रारम्भ करना पड़ा। इसमें लिखे-पढ़े लोगों को विदेशी भाषा बोलने से विमुख करने का प्रयत्न किया गया, जिसके फलस्वरूप 'न वदेद्यावनीं भाषां प्राणैःकण्ठगतैरपि, यह सुभाषित लोगों में प्रचलित हुआ। दूसरी ओर विदेशी शब्दों के लिए अपने शब्द बनाने का प्रयास किया गया। जिसके फलस्वरूप 'राज-व्यवहारकोश' बन गया। इस समय भारत की स्थिति श्री शिवाजी महाराज के समय की सी है। 'इतिहास अपने को दोहराता रहता है' इतिहासज्ञों के इस कथन में कुछ तथ्य अवश्य है।

ऊपर जिस प्रण का मैंने निर्देश किया है वह केवल स्वदेशी का प्रण है। उसमें बहिष्कार की जरा सी भी गंध नहीं है। जिस समय भारत अपनी उन्नति के शिखर पर था उस समय भी भारतीयों ने बाहर की अच्छी वस्तुओं या बातों का बहिष्कार नहीं किया। भगवान् मनु ने अपनी स्मृति में केवल विद्या ही नहीं, अन्य उत्तम वस्तुओं को, चाहे जहाँ से मिल जाय, ग्रहण करने का उपदेश दिया है—

**श्रद्दधानः शुभांविद्यामाददीतावरादपि।**
**अन्त्यादपि परंधर्मं स्त्रीरत्न दुष्कुलादपि॥**
**विषप्यमृतंग्राह्य बालादपि सुभाषितम्।**
**अमित्रादपिसद्वृत्तममेध्यादपि काञ्चनम्॥**
**स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम्।**
**विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः॥**

इसके अतिरिक्त ज्योतिष और वैद्यक में 'म्लेच्छाहि यवनास्तेषु, सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्। ऋषिवत्तेऽपिपूज्यन्ते, 'कृत्स्नो हि लोको बुद्धियता माचार्यः' इत्यादि वचन मिलते हैं। इस समय भारत की स्थिति चिरकालानुबन्धी रोग से निर्मुक्त दुर्बल मनुष्य के समान है। उसको बाहर तथा भीतर से सब प्रकार की सहायता की आवश्यकता है। इसलिए केवल अँग्रेजी और जर्मन भाषा से ही नहीं, अपितु अँग्रेज और जर्मन मनुष्यों से भी यदि सहायता लेने की आवश्यकता हो तो लेनी चाहिए। परन्तु सबका उद्देश्य भारत की उन्नति होना चाहिए। यदि कोई मनुष्य पहले अपनी भाषा में प्रवीणता प्राप्त करके एक या अनेक अन्य भाषाओं को सीखकर उनसे मिलनेवाले ज्ञान से अपनी भाषा को समृद्ध करने का प्रयत्न करे तो अन्य भाषाओं का बहिष्कार करनेवाले स्वभाषा-प्रेमी मनुष्य की अपेक्षा उस मनुष्य के लिए मेरे मन में अधिक आदर रहेगा।

## भारत की राष्ट्रभाषा

संस्कृत भारत की अपनी भाषा है। यह भाषा अत्यन्त कर्ण-मधुर, सुललित, जितनी कठिन उतनी ही सरल और अत्यन्त अर्थवाही है। संक्षेप में यह यथा नाम तथा गुण है। प्राचीन काल में यह बोल-चाल तथा व्यवहार की भाषा रही। मध्यकाल में बोल-चाल में दूसरी अपभ्रष्ट भाषाएँ आ गईं, परन्तु धार्मिक एवं राजकीय कार्यों में इसका ही उपयोग होता रहा। उत्तरकाल में भारत परतन्त्र हुआ तब इसका राजकीय महत्व चला गया, परन्तु धार्मिक तथा अन्य व्यवहारों में यही भाषा रही। इस कारण से अत्यन्त प्राचीन काल से आज तक इस भाषा की परम्परा अखण्डित रही और इसमें अखिल भारतीय स्वरूप के ग्रन्थ बराबर बनते रहे हैं। संस्कृत भाषा देववाणी या

अमरवाणी है, यह कभी मरी नहीं, न मरेगी। यह संसार की अति उन्नत भाषा है और इसका प्रभाव अन्य अनेक देशों की भाषाओं पर पड़ा है। भारत की वर्तमान कालीन अनेक प्रान्तिक भाषाओं की भी यह जननी है तथा उनका बराबर पोषण करती आई है। इन सब बातों का विचार करके कुछ लोग संस्कृत को फिर से भारत की राष्ट्रभाषा बनाने के पक्ष में हैं। संस्कृत पर अत्यन्त अनुराग होने के कारण इस पक्ष का विरोध मैं नहीं कर सकता। परन्तु सामान्य जनता में शिक्षा के द्वारा ज्ञान-प्रसार करने की दृष्टि से संस्कृत की अपेक्षा प्रान्तिक भाषाएँ अधिक उपयुक्त हैं। इस समय भारत में आठ-दस प्रमुख प्रान्तीय भाषाएँ हैं। इनमें हिन्दी भाषा न्यूनाधिक अन्तर से आधे भारत में प्रचलित है और चौथाई भारत उसको अल्पायास या अनायास ही बोल या समझ सकता है। इसलिए हिन्दी ही भारत की राष्ट्र-भाषा होने योग्य है, और उसको जितनी शीघ्रता से इस स्थान पर आरूढ़ किया जाय, उतना ही अच्छा है। इस प्रकार यद्यपि व्यावहारिक दृष्टियों से हिन्दी राष्ट्रभाषा होती है तथापि उससे संस्कृत का महत्व कम नहीं होता। प्रान्तीय भाषाओं की उन्नति के लिए तथा अखिल भारतीय एकता कायम रखने के लिए विद्यालयों में संस्कृत का अनिवार्य होना बहुत आवश्यक है।

## हिन्दी के कालखण्ड

यद्यपि हिन्दी आठ सौ वर्ष की पुरानी कही जाती है तथापि जो हिन्दी राष्ट्रभाषा होने जा रही है वह केवल १५० वर्ष की है। यह काल मनुष्य-जीवन की दृष्टि से यद्यपि बहुत अधिक प्रतीत होता है तथापि भाषा के विकास की दृष्टि से कुछ भी नहीं है। मेरी दृष्टि से इस काल के दो खण्ड होते हैं। प्रथम खण्ड को मैं शैशवावस्था कहता हूँ। इसमें हिन्दी मातापिताहीन अनाथ बालक के समान थी, क्योंकि उसको न जनता का कोई विशेष आधार था, न राजा का। दूसरे कालखण्ड को मैं विवर्धमानावस्था ( अडोलेसन्स ) कहता हूँ। शरीर-शास्त्र में विवर्धमानावस्था उस कालखण्ड को कहते हैं जिसमें शरीर के सब अंग धीरे-धीरे बढ़कर पूर्ण प्रगल्भ होते हैं। पुरुषों में इस काल की मर्यादा १४ – २५ और स्त्रियों में १२--२० होती है। जब बालक स्वस्थ होते हैं तब उसके सब अंग यथाप्रमाण होते हैं तथा अवस्था-वृद्धि के साथ-साथ यथाप्रमाण बढ़ते हैं। जब बालक अस्वस्थ होता है तब उसका शरीर कृश और दुर्बल रहता है, उसके अंग-प्रत्यंग न यथाप्रमाण होते हैं, न यथाप्रमाण बढ़ते हैं, कहीं धड़ की अपेक्षा सिर बड़ा होता है। प्रथम काल में हिन्दी की स्थिति अस्वस्थ बालक के समान थी। इसका अर्थ यह है कि यदि भाषा क मूर्त स्वरूप दिया जाय तो उसका ग्रंथभण्डार-रूप शरीर बहुत ही दुर्बल तथा सिर और धड़ के समान साहित्य एवं विज्ञान के ग्रंथों की उत्पत्ति विषम प्रमाण में होती थी। इस काल में भाषा की इस दुरवस्था की ओर जनता का ध्यान आकर्षित हुआ और उसको दूर करने का प्रयत्न किया गया। इस प्रयत्न में अनेक विद्वान् लोगों ने व्यक्तिगत रूप से अपनी बुद्धि और लेखनी भाषा की उन्नति के लिए लगाकर अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थ लिखे। अनेक लोगों ने आपस में मिलकर भाषा की उन्नति के लिए अनेक सार्वजनिक संस्थाएँ खोलीं। काशी में नागरी-प्रचारिणी-सभा स्थापित हुई और उसके द्वारा अनेक मौलिक ग्रंथ प्रकाशित हुए। जिनमें विज्ञान की शब्दावलियाँ भी थीं। प्रयाग में विज्ञान-परिषद् स्थापित होकर विज्ञान मासिक तथा विज्ञान के अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन स्थापित हुआ। उस समय विज्ञानादि अंग बिल्कुल सिकुड़े हुए थे। अतएव विज्ञान की उन्नति के लिए सम्मेलन को विज्ञान-परिषद् की भी स्थापना करनी पड़ी। यदि सम्मेलन में ये विभाग न रक्खे जाते तो वे वैसे ही सूखे रहते। इस आपत्ति को टालने के लिए सम्मेलन के संस्थापकों ने इन विभागों को सम्मेलन के भीतर रखने में बहुत दूरदर्शिता दिखलायी। इससे हिन्दी के लेखकों का ध्यान केवल साहित्य पर केन्द्रित न होकर भाषा के अन्य अंगों पर भी आकर्षित हुआ और उन अंगों के ग्रंथ बनने लगे। इन सब प्रयत्नों के फलस्वरूप हिन्दी के जो अंग अपरिणत थे, वे परिणत होने लगे और हिन्दी 'प्रतिपच्चन्द्ररेखेववर

विष्णु' हो गयी। इसी वर्धिष्णुता को देखकर इसके प्रेमियों के मन में इस काल में इसको राष्ट्रभाषा बनाने की अभिलाषा प्रादुर्भूत हुई।

स्वराज्य-प्राप्ति के समय से हिन्दी का तीसरा और महत्व का काल प्रारम्भ होता है। इस काल को मैं उसकी यौवनावस्था मानता हूँ। इस काल के प्रथम वर्ष में ही हिन्दी अपने क्षेत्र के प्रांतों में राज-भाषा की गद्दी पर आरूढ़ हो गई और अब अल्पकाल में वह निखिल भारत की राजभाषा और राष्ट्रभाषा की गद्दी पर आरूढ़ होकर वस्तुतः गृहिणी बननेवाली है। आप जानते हैं कि जहाँ पर यह अभिजात आर्य वंश की सुरूप लड़की गृहिणी होने जा रही है वहाँ पर अनार्य संकर जाति की एक कुरूपा कन्या बड़े-बड़े लोगों के वसीले पर गृहिणी बनने की महत्वाकांक्षा रखती है, परन्तु भगवान् काल की कृपा से यह आपत्ति टहलनेवाली है और जहाँ पर भारतीयों ने पहले से इसको गृहिणी बनाने की महत्वाकांक्षा रक्खी थी, अब यह वहीं पर विराजमान होनेवाली है। जब यह महत्वाकांक्षा पूर्ण होगी तब प्रत्येक भारतीय नितान्त प्रसन्न होकर अन्तरात्मा की अपनी प्रसन्नता 'जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा' काश्यप महामुनि के इस वचन से प्रकट किए बिना नहीं रह सकेगा।

गृहिणी होने पर यौवनावस्था में स्त्रियों को 'उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम्। प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं' ये कार्य करने पड़ते हैं। हिन्दी को भी अब 'उत्पादन पुस्तकानां जातानां परिपालनम् प्रत्यहं राज्ययात्रायाः प्रत्यक्षं' ये सब कार्य करने पड़ेंगे और जैसे नवविवाहिता स्त्रियों को प्रारंभ में इन कार्यों को करने के लिए बहुत कुछ सहायता और मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है, वैसे ही हिन्दी को भी अपने कार्यों का बोझ सँभालने के लिये अनेक प्रकार की सहायता तथा मार्ग दर्शन की आवश्यकता होगी। इस सहायता की सुविधा के लिए मैंने तीन विभाग किये हैं। भौतिक सहायता—इसमें मैंने कागज और मुद्रण का समावेश किया है। (२) बौद्धिक सहायता—इसमें लेखक, अध्यापक आदि में ग्रन्थों के लेखन में किस प्रकार सहायता मिलती है इसका विचार किया है। (३) पारिभाषिक सहायता—इसमें परिभाषा के जटिल प्रश्नों पर अपने विचार प्रकट किए हैं।

## भौतिक सहायता

मुद्रण—मुद्रण-कला से ग्रन्थों के सृजन में बड़ी भारी क्रान्ति हो गयी है। आजकल मुद्रणकला की इतनी उन्नति हो गई है कि एक-एक घण्टे में सहस्रावधि कागज छापनेवाले और अल्पकाल में मुद्रसंग्रथन (कम्पोजिंग) करने वाले यन्त्र बन चुके हैं। इन यन्त्रों की सहायता से मुद्रणकार्य शीघ्र, स्वच्छ, सुन्दर और शुद्ध होता है। परन्तु ये यन्त्र रोमन लिपि के लिए बनाए गए हैं। नागरी लिपि का अक्षर-विन्यास रोमन लिपि से अधिक जटिल होने के कारण इन यन्त्रों का उपयोग नागरी के लिए नहीं किया जा सकता, इसलिए नागरी के मुद्रणालय अभी तक पुराने ढङ्ग से ही चल रहे हैं। परन्तु भविष्य में पुराने ढङ्ग से काम नहीं चलेगा। यदि हिन्दी को संसार की उन्नति भाषाओं में स्थान प्राप्त करना है तो नागरी लिपि के लिए रोमन लिपि के समान शीघ्र मुद्रण और मुद्रसंग्रथन यन्त्रों का आविष्कार करना पड़ेगा। कुछ विद्वान् लोगों का ध्यान इस कठिनाई की ओर बहुत पहले ही गया था और उन्होंने इस दृष्टि से प्रयास करना भी प्रारम्भ किया। परन्तु उनकी बुद्धि उलटी दिशा में चली। मैं उलटी दिशा में इसलिए कहता हूँ कि उन्होंने लिपि के लिए यन्त्र बनवाने में बुद्धि का उपयोग करने के बदले नागरी लिपि को रोमन लिपि के यन्त्रों के अनुरूप बनवाने में बुद्धि व्यय की। इसके लिए उन्हें नागरी अक्षर-विन्यासों में काफी काट-छाँट करनी पड़ी। इसका परिणाम 'विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामास वानरं' के समान देवनागरी रोमन नागरी बन गई और उसको पहचानना कठिन हो गया। यह कर्म उस बुद्धिमान मनुष्य के कर्म के समान हुआ जिसे बाजार की बनी बनाई सोने की सुन्दर चूड़ियों को लड़की के हाथ में पहनाने के लिए उसके हाथों पर ही रंदा करना पड़ा। वास्तव में वर्त्तमान नागरी लिपि में विशेष अन्तर न

करके यन्त्र बनवाने में बुद्धि का व्यय होना चाहिए। यह कार्य अध्यापकों या पण्डितों का नहीं है। 'शूरश्च कृतविद्यश्च दर्शनीयोऽसि पुत्रक। यस्मिन् कुले त्वमुत्पन्नो राजस्तत्र न हन्यते ॥' यह कार्य कुशल यन्त्र-विशारदों का है। यदि ये लोग नागरी लिपि के लिए यन्त्र बनवाने की ओर ध्यान दें और सरकार एवं धनिक इसमें आर्थिक तथा अन्य प्रकार की सहायता दें तो मैं समझता हूँ यन्त्र बनने में विलम्ब न लगेगा।

यो यमर्थं चिन्तयते तदर्थं यतते तथा।
सोऽश्वयं तमवाप्नोति न चेच्छ्रान्तो निवर्तते ॥

कागज—मुद्रण का कार्य कागजों पर होता है। कागज के लिए हम स्वयं पूर्ण नहीं हैं। अन्न के समान इस समय कागज की बहुत कमी है और शरीर के लिए अन्न का जो महत्व है, ग्रन्थों के लिए कागज का वही महत्व है। इसलिए अन्न-वितरण में जो दक्षता आवश्यक है, वही कागज के वितरण में आवश्यक है। परन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि इसमें बहुत अव्यवस्था है; जिसके कारण कूड़ा-करकट ग्रन्थों के लिए कागज मिलता है परन्तु अच्छे अच्छे ग्रन्थों के लिए नहीं मिलता। कागज की यह कठिनाई अनेक वर्षों तक चलेगी। इसलिए उपलब्ध राशि से यदि अधिक लाभ उठाना हो तो मेरी समझ में कागज का नियन्त्रण निम्न प्रकार से होना चाहिए। कागज का नियन्त्रण किसी एक अधिकारी के हाथ में न होकर एक प्रान्तीय समिति के हाथ में हो। इसमें विद्यालय, विश्वविद्यालय, महाविद्यालय, इत्यादि वर्गीकृत शिक्षण संस्थाओं के एक एक तथा साहित्य-सम्मेलन एवं शिक्षा-विभाग के भी एक एक प्रतिनिधि हों। प्रकाशकों को कागज न दिया जाय। प्रत्येक पुस्तक का परीक्षण करने के पश्चात् उसके लिए स्वतन्त्र कागज दिया जाय। विद्यालय, पाठशाला, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय की पाठ्य-पुस्तकों तथा संशोधनात्मक लेख-ग्रन्थ, निबन्ध आदि को कागज पहले दिया जाय। साहित्य के ग्रन्थों की अपेक्षा विज्ञान के ग्रन्थों को अधिक कागज मिलना आवश्यक है। क्योंकि सहित्य की अपेक्षा विज्ञान का क्षेत्र अधिक विस्तृत है। तथा हिन्दी में वैज्ञानिक ग्रन्थों की कमी है। वैसे ही अँग्रेजी ग्रन्थों की अपेक्षा हिन्दी ग्रन्थों को अधिक कागज देना चाहिए। मैं तो चाहता हूँ, कि केवल उन अँग्रेजी ग्रन्थों के लिए कागज दिया जाय जो संशोधनात्मक हों तथा भारत की दृष्टि से कुछ विशेषता रखते हों। जिन पुस्तकों का काम बाहर छपी हुई पुस्तकों से चल सकता है—ऐसी ही पुस्तकें पाठ्यक्रम में अधिक होती हैं—उन अँग्रेजी पुस्तकों को कुछ भी कागज न दिया जाय।

## बौद्धिक सहायता

संसार की अन्य उन्नत भाषाओं की ग्रन्थसम्पत्ति की तुलना में हिन्दी की ग्रन्थसम्पत्ति 'सर्वोप्ययं नन्वणु' है। परन्तु आश्चर्य या दुःख की कोई बात नहीं। यह दुरवस्था अनेक स्वायत्त तथा परायत कारणों से उत्पन्न हुई है जिनमें निम्न दो कारण प्रमुख है। ( १ ) कालावधि—अन्य उन्नत भाषाओं का प्रपञ्च अनेक शताब्दियों का है, हिन्दी का एक शताब्दी का भी नहीं है और यदि वस्तुतः देखा जाय तो अब प्रारम्भ हो रहा है उसके लिए कोई दवा नहीं ( २ ) शिक्षा का माध्यम—आधुनिक हिन्दी का जन्म पारतन्त्र्य में हुआ है और जन्म से अबतक उस पर अँग्रेजों का राज्य रहा। उनके अधिराज्य में राज्यव्यवहार और शिक्षा के लिए माध्यम अँग्रेजी रही संक्षेप में पिछले १५० वर्षों तक भारत की राज्यभाषा और राष्ट्रभाषा अँग्रेजी थी। इससे लिखे-पढ़े लोग अपना व्यवहार तथा लेखन अँग्रेजी में करते रहे हैं। फिर भी इस काल में कुछ महानुभाव ऐसे थे जिन्होंने अपनी लेखनी अपनी भाषा की सेवा में चलायी। कुछ लोग यहाँ तक एकान्तिक थे कि उन्होंने अँग्रेजी में लिखना पाप समझा। इस समय हिन्दी की जो ग्रन्थसम्पत्ति है वह ऐसे ही लोगों के कारण है हिन्दी भाषा इनका सदैव ऋणी रहेगी। इनके ऋण की कल्पना जगन्नाथ पण्डित के निम्न श्लोक से आपके सामने रखता हूँ—

तोयैरल्पैरपि करुणया भीम भानौ निदाघे
मालाकार ! व्यरचि भवता यातरोरस्य पुष्टिः—
सा किं शक्या जनयितमिह प्रावृषेण्येन वारां
धारासारानपि विकिरता विश्वतो वारिदेन ॥

अँग्रेजों के अधिराज्य के समय से ही हमारे बड़े-बड़े नेताओं ने अँग्रेजी (क्विट इंगलिश) का आन्दोलन प्रारम्भ करके अँग्रेजी से भारतीयों का पिण्ड छुड़ाने का प्रयास शुरू किया था। अब तो अँग्रेजों का राज्य भी चला गया। इसलिए राजभाषा, राष्ट्रभाषा या शिक्षा का माध्यम अँग्रेजी रखने में कुछ भी अर्थ नहीं। उसका स्थान हिन्दी को देना चाहिये। यहाँ पर मैं एक बात का स्पष्टीकरण करना चाहता हूँ। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा ही होनी चाहिए यह मेरा मत है। फिर भी जिन प्रान्तों की भाषा हिन्दी नहीं है उन प्रान्तों में औद्योगिक अभियान्त्रिक, व्यावसायिक विषयों की उच्च शिक्षा यदि हिन्दी में ही दी जाय तो अच्छा है। कारण यह है कि इन विषयों के विशारदों इसका का क्षेत्र केवल प्रान्तिक न रहकर अखिल भारतीय होता है।

अब भविष्य में महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में पढ़ाई लिखाई का काम हिन्दी में होना आवश्यक है। किसी भी भाषा की ग्रन्थसम्पत्ति इन संस्थाओं में काम करनेवाले बुद्धिमान अध्यापकों से बढ़ती है। हिन्दी भाषा को यदि संसार की अन्य उन्नत भाषाओं के समान उन्नत करना हो तो भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग को लिखने का काम केवल हिन्दी में करना आवश्यक है। मैं जानता हूँ कि वर्तमानकालीन बुद्धिजीवीवर्ग को जो अब तक अंग्रेजी का अभ्यस्त है, हिन्दी में पठन-पाठन एवं लेखन में बहुत कष्ट होंगे। परन्तु अब उनकी दूरदर्शिता इस कार्य के लिए तत्पर हो जाने में ही है।

मैं भी उक्त बुद्धिजीवीवर्ग का ही हूँ। मैं आज बीस-बाईस वर्ष से हिन्दी में अध्यापन और लेखन का काम कर रहा हूँ। इसलिए इन विषयों के सम्बन्ध में मैं अपने कुछ अनुभव तथा विचार आपके सामने रखना चाहता हूँ। संसार की अन्य उन्नत भाषाओं के ग्रंथों में जो विविध विषय और विचार वर्णित होते हैं उनको भली भाँति व्यक्त करने में हिन्दी असमर्थ-सी है। फिर भी तरतम भेद से यह कह सकते हैं कि साहित्य, दर्शन, इतिहास इत्यादि कुछ विषय ऐसे हैं कि जिनसे वह यथेष्ट परिचित है। इसलिए यदि अध्यापक अपने विषय के पठन के साथ हिन्दी और संस्कृत का भी अभ्यास जारी रक्खें तो अपने विषय की पढ़ाई और लिखाई अच्छी तरह कर सकते हैं। परन्तु विज्ञान के प्रायः सभी विषय ऐसे हैं जिनसे हिन्दी भाषा पूर्णतया अपरिचित है, जिसके कारण उनको हिन्दी में विचार प्रकट करना महान् कठिन काम होता है। इसलिए नौसिखियों को हिन्दी में वैज्ञानिक विषयों का अध्यापन नाक में दम कर देता है, लेखन का तो पूछना ही क्या? अंग्रेजी में किसी विषय का अध्ययन और लेखन सरल होता है। उसमें एक विषय के अनेक ग्रन्थ मिलते हैं। उनको पढ़ कर यदि टिप्पणियाँ लिख लीं तो पढ़ाई का काम हो गया और यदि उन्हीं को विस्तार दे दिया तो पुस्तक प्रस्तुत हो गई। मैंने ऐसे कई अंग्रेजी ग्रन्थ देखे हैं जिनमें दूसरे ग्रन्थों के पन्ने के पन्ने अक्षरशः उद्धृत किए गए हैं। मेरा यह कथन विशेषतया भारतीय वैद्यक ग्रन्थों के सम्बन्ध में है, अन्य विषयों के सम्बन्ध में क्या स्थिति होगी यह मैं नहीं जानता। हिन्दी में यदि किसी वैज्ञानिक विषय पर पुस्तक लिखना हो तो उसके लिए एक अन्य हिन्दी पुस्तक का भी मिलना कठिन होता है, फिर दस-पाँच पुस्तकों की आशा व्यर्थ है। इसलिए कोई भी अध्यापक इधर-उधर से सामग्री एकत्र करके हिन्दी में पुस्तक नहीं लिख सकता। उसको स्वयं अभ्यास और मनन करके अपना मार्ग निकालना पड़ता है। मैं आज बीस-बाईस वर्षों से यद्यपि पढ़ाई और लिखाई का काम कर रहा हूँ तथापि नए नए विषयों और विचारों को प्रकट करते समय कठिनाइयाँ सदा सामने खड़ी हो जाती हैं। कदाचित् मेरी मन्दबुद्धि का यह फल होगा। मैं जानता मेरे जैसे मन्दबुद्धि लोग ही अधिक होते हैं। अतः उनके लिए मेरी यह सूचना है कि वे प्रथम परिश्रम के साथ अपने विषयों की हिन्दी में पढ़ाई प्रारम्भ करें और उसमें योग्यता प्राप्त करने के पश्चात् उस पर पुस्तक लिखने में उद्यत हों। इससे वैज्ञानिक ग्रन्थ-सम्पत्ति जल्दी नहीं बढ़ेगी, परन्तु कोई चिन्ता नहीं। 'जल्दी की घानी आधा तेल आधा पानी' इस प्रकार का अधकचरा काम करने की अपेक्षा धीर होकर गम्भीर काम करना अनेक दृष्टियों से हितकर है! उत्साहातिरेक से यदि जल्दी-जल्दी पुस्तकें

लिखने का काम किया जाय तो जो पुस्तकें बनेंगी वे भाषा की दृष्टि से बेढब और विषय समझने की दृष्टि से दुर्गम होने के कारण विद्यार्थियों की दृष्टि से व्यर्थ। होंगी।

महाविद्यालयों और में विश्वविद्यालयों विज्ञान की पढ़ाई हिन्दी के द्वारा कब से प्रारम्भ की जाय यह एक बहुत महत्व का और उत्तरदायी प्रश्न है। इसका उत्तर देना मेरे अधिकार-क्षेत्र के बाहर है, परन्तु मैं यह समझता हूँ कि जितनी जल्दी प्रारम्भ किया जाय उतना ही अच्छा है, क्योंकि जब कोई काम करना होता है तब उसमें बिलम्ब करने में हानि होती है। केवल वैद्यक विज्ञान के लिए मैं यह कह सकता हूं कि उसमें हिन्दी के द्वारा पढ़ाई प्रारम्भ करने में एक दिन की भी देरी करने की आवश्यकता नहीं है। इसका एक कारण यह है कि इस विषय का अध्ययन और लेखन प्राचीन काल से अब तक अखण्डित रहा है और नये ढङ्ग का कार्य पचीस वर्ष पहले से प्रारम्भ हुआ है। इसके परिणाम-स्वरूप आधुनिक पाश्चात्य वैद्यक विषयों पर अनेक छोटे-मोटे ग्रन्थ हिन्दी तथा संस्कृत में प्रकाशित हो चुके हैं। इस काम में काशीविश्वविद्यालय के आयुर्वेद महाविद्यालय से प्रावीण्य के साथ उत्तीर्ण हुए वैद्य बहुत कुछ सहायता कर सकते हैं। इसलिए यदि आज वैद्यक महाविद्यालयों में हिन्दी द्वारा वैद्यक शिक्षा प्रारम्भ की जाय तो उसके पाँच वर्षों के अभ्यास क्रम के साथ साथ लगभग सब पाठ्य पुस्तकें बनायी जा सकती हैं। यदि वैद्यक महा विद्यालयों में अँग्रेजी जाननेवाले विद्यार्थियों की भरती की जाय तो हिन्दी में पढ़ाई होते हुए भी कार्य-निष्पत्ति और संशोधन में कोई अन्तर नहीं पड़ सकता। इसके अतिरिक्त हिन्दी में पढ़ाई करने का सब से बड़ा राष्ट्रीय लाभ यह होगा कि इससे वैद्यों और डाक्टरों के बीच में बननेवाली खाई अत्यन्त संकुचित हो जायगी और एक दूसरे के समीप आ जायेंगे एवं सहकार्य से पीड़ित जनता की सेवा कर सकेंगे। उपर्युक्त कारणों से अभी हाल में केन्द्रीय वैद्य-परिषद् ने वैद्यकीय महाविद्यालयों में हिन्दी द्वारा पढ़ाई आरम्भ करने के विरुद्ध जो प्रस्ताव स्वीकृत किया है वह मुझे अनुचित और अदूरदर्शी मालूम होता है।



इस विषय का कुछ अधिक विवरण आगे दिया गया है।

## पारिभाषिक सहायता

वैज्ञानिक ग्रन्थों के लेखन में और विषयों के अध्यापन में सबसे बड़ी आवश्यकता परिभाषा की होती है, क्योंकि उसके बिना विज्ञान की भाषा की होती है, क्योंकि उसके बिना विज्ञान की भाषा में संदिग्धता आ जाती है। पिछली शताब्दि में पाश्चात्य देशों में विज्ञान की बहुत उन्नति हुई और उसके साथ उसकी परिभाषा भी यथेष्ट बढ़ गयी। इस समय भी वैज्ञानिक परिभाषा वस्तुतः हिमालय के समान उत्तुङ्ग और महासागर के समान विस्तीर्ण है और वर्ष प्रति वर्ष उसकी उत्तुङ्गता और विस्तीर्णता बढ़ती जा रही है। परिभाषा की इस कठिनाई के कारण हिन्दी में वैज्ञानिक ग्रन्थ लेखन का काम चींटी की गति से हो रहा है और अध्यापन का काम करने के लिए प्रायः कोई तैयार नहीं होता। इस लिए परिभाषा-समस्या की पूर्ति किये बिना हिन्दी भाषा में विज्ञान की उन्नति नहीं हो सकती।

दो पक्ष—परिभाषा के प्रश्न पर विद्वानों में दो पक्ष हैं। एक पक्ष का मत यह है कि हिन्दी में अँग्रेजी की ही परिभाषा ग्रहण की जाय। दूसरे पक्ष का मत है कि हिन्दी की अपनी नई परिभाषा बनायी जाय। प्रथम पक्ष का कहना है कि अंग्रेजी परिभाषा के बिना विज्ञान में संशोधन का काम हम नहीं कर सकेंगे और उसके बिना हम कूपमण्डूक बनकर वैज्ञानिक दौड़ में संसार के पीछे रह जायँगे यह कथन सोलहो आने सत्य है, परन्तु इससे हिन्दी के लिए अँग्रेजी की ही परिभाषा ग्रहण की जाय यह अर्थ नहीं निकलता। इससे केवल यही निदर्शित होता है कि अनुसंधान और संशोधन करनेवालों को अँग्रेजी परिभाषा का और उसके साथ अंग्रेजी का ज्ञान आवश्यक है। परन्तु सारे देश में इनकी संख्या जैसा कि श्री कृष्ण भगवान् ने भगवद्भक्तों के सम्बन्ध में कहा है—मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये। यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्वतः। वैसे बहुत कम होती है। वे लोग अंग्रेजी परिभाषा का ज्ञान प्राप्त करके अपना अनुसन्धान का काम कर लें। वास्तव में देखा जाय तो

अनुसन्धान-कर्ताओं का कार्य केवल अंग्रेजी भाषा से नहीं चल सकता। यदि केवल अंग्रेजी से ही काम चल जाता तो अंग्रेज अनुसन्धानकर्ताओं को जर्मन, फ्रेञ्च तथा अन्य भाषाओं का मुखापेक्षी न होना पड़ता। परन्तु वे भी अन्य भाषाओं के विना अनुसंधान का काम नहीं कर सकते। इसका तात्पर्य यह है कि अनुसंधानकर्ता, चाहे जिस देश का हो केवल अपनी भाषा के ज्ञान पर अपना काम नहीं कर सकता, उसे अनेक भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करके संसार के सभी देशों के अद्ययावत् वैज्ञानिक आविष्कारों की जानकारी रखनी पड़ती है। इन असामान्य थोड़े से लोगों के लिए सर्वसामान्य जनता पर दुर्गम और दुरूह अंग्रेजी परिभाषा लादना किसी दृष्टि से भी हितकर नहीं है।

अंग्रेजी परिभाषा की दुर्बोधता—अब अंग्रेजी परिभाषा की दुर्बोधता के सम्बध में मैं कुछ अनुभव आपके सामने रखता हूँ। अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी परिभाषा पढ़कर यद्यपि मैं एम्० बी० बी० एस् परीक्षा उत्तीर्ण हुआ तथापि अधिकसंख्य वैद्यकीय पारिभाषिक शब्दों के योगार्थ मैं नहीं जानता था और जानता भी कैसे? अंग्रेजी पारिभाषिक शब्द अधिकतर ग्रीक और ल्याटीन भाषा के होते हैं, अंग्रेजी के नहीं। इसलिए जब तक कोई मनुष्य इन भाषाओं की जानकारी नहीं रखता तब तक उसे उनके योगार्थों का पता नहीं चल सकता। भारतीय वैज्ञानिकों में ग्रीक और ल्याटीन भाषा की जानकारी रखनेवाले बहुत कम होते हैं। इसलिए अधिकसंख्य भारतीय वैज्ञानिक इन शब्दों के अर्थ के सम्बन्ध में अनभिज्ञ ही रहते हैं। जब तक पढ़ाई और लिखाई अंग्रेजी में होती है तब तक इनका अज्ञान इन कार्यों में बाधा नहीं डालता, परन्तु जब अपनी भाषा में पढ़ाई करने का प्रसंग आता है तब वह आपत्ति-सी मालूम होती है। अतः हिन्दी के लिये अंग्रेजी परिभाषा को ग्रहण करना वस्तुतः उसको ग्रहण लगने के समान [illegible]ता है। इसके बदले यदि संस्कृत से बनायी गयी परिभाषा ग्रहण छूटने के समान है। इसका कारण यह है कि आधे से अधिक संस्कृतोत्पन्न पारिभाषिक शब्दों के अर्थ अनायास, चौथाई अल्पायास से या पूर्वापर सम्बन्ध और उर्वरित अनतिमात्र आयास से मालूम होते हैं। अपने कथन के पुष्ट्यर्थ मैं नीचे कुछ अंग्रेजी वैद्यकीय पारिभाषिक शब्द और उनके संस्कृत प्रति शब्द देता हूँ। मुझे विश्वास है कि हिन्दी जानने वाले अवैद्य लोग भी हिन्दी वैद्यकीय पारिभाषिक शब्दों को अच्छी तरह समझ सकेंगे, परन्तु अंग्रेजी जाननेवाले अडाक्टर लाख बार सिर पटकने पर भी उनको बहुत कम समझ पाएँगे। अतः उपस्थित अवैद्य और अडाक्टरों से प्रार्थना है कि वे इन शब्दों का अर्थ जानने का प्रयत्न करके मेरे कथन की सत्यता देखें।

| अंग्रेजी | हिन्दी |
|---|---|
| आर्थोप्निआ | ऊर्ध्वश्वास |
| एक्बोलिक | गर्भपातकर |
| कामेन्सल | सहभोजी |
| स्ट्रेप्टोकोकाय | मालागोलाणु |
| पायकिलोसाइट | प्रविधकायाणु |
| आलिगयूरिया | अल्पमूत्रमेह |
| एनकिफलायटीज | मस्तिष्कशोथ |
| एन्टीपार्टम | प्रसवपूर्व |
| हैड्रोपेरिटोनिअम | जलोदर |
| स्टोमाटायटीज | मुखपाक |
| आस्टिओम लेसिआ | अस्थिमृदुता |
| रिक्रूडेसन्स | प्रत्यावृत्ति |
| स्यूडोपोडिया | कूटपाद |
| हेलमिन्थ | कृमि |

परिभाषा के सम्बन्ध में जो अनुभव है वही अनुभव सर्वसाधारण डाक्टरी विषयों की पढ़ाई के सम्बन्ध में है। यह देखा गया है कि अंग्रेजी के द्वारा की गई पढ़ाई की अपेक्षा हिन्दी के द्वारा की गई पढ़ाई से विद्यार्थियों को विषय का ज्ञान अधिक सुलभता से होता है। मेरे इस कथन की पुष्टि आयुर्वेद विद्यालयों में, विशेषतः काशी विश्वविद्यालय के आयुर्वेद महाविद्यालय में, पढ़नेवाले विद्यार्थियों से हो सकती है। इसी अनुभव के आधार पर मैंने पहले ही कह दिया है कि और कहीं हो या न हो वैद्यक महाविद्यालयों की पढ़ाई तुरन्त हिन्दी में होनी चाहिए।

परिभाषा निर्माण—ग्रीक और ल्याटीन से बनी हुई अंग्रेजी परिभाषा की अपेक्षा संस्कृत से बनाई हुई परिभाषा सुबोध होने के कारण हिन्दी के लिए बनी बनाई अंग्रेजी परिभाषा का ग्रहण करने की अपेक्षा संस्कृत से नई परिभाषा बनाना अधिक श्रेयस्कर है। इससे प्रथम लाभ तो यह होगा कि यह परिभाषा केवल हिन्दी के लिए नहीं परन्तु भारत की सम्पूर्ण प्रांतिक भाषाओं के लिए उपयोगी होगी। द्वितीय लाभ यह होगा कि हिन्दी ग्रीक और ल्याटीन के संकर से अर्थात् बेढब और भद्दी होने से बचकर सुसंस्कृत, शुद्ध, सुसम्पन्न, सुबोध, ओघवती और ओजस्वी होगी। परंतु परिभाषा बनाना कोई ऐसा साधारण कार्य नहीं है। पिछले ६०-७० वर्षों में अनेक विद्वानों ने वैयक्तिक तथा सामूहिक रूप से इसको बनाने की चेष्टा की। इनका इतिहास मैं आपके सामने इस समय नहीं रखना चाहता। इनके कारण हिन्दी में अनेक सुन्दर सुन्दर पारिभाषिक शब्द बने, उतने अंश में हिन्दी की वैज्ञानिक शब्दावली समृद्ध हुई और वैज्ञानिक ग्रन्थों के लेखन का कार्य चींटी की गति से ही सही परन्तु चलता रहा, बंद नहीं हुआ। इस प्रकार के प्रयत्न अन्य प्रांतों में भी हुए। हिन्दी भाषा इनकी सदैव ऋणी रहेगी। परन्तु इन प्रयत्नों से परिभाषा का प्रश्न जैसा का तैसा असिद्ध रहा। परिभाषा अत्यन्त विस्तीर्ण और उत्तुङ्ग है, इसका उल्लेख पहले मैंने किया है। निर्माण की दृष्टि से उसको एक विस्तीर्ण और उत्तुङ्ग मन्दिर समझ सकते हैं। जैसे मन्दिर में नींव, चबूतरा, गर्भागार, सभा-मण्डप, शिखर, गोपूर, प्राकार इत्यादि अनेक अङ्ग होते हैं और निर्माण के समय विशिष्ट क्रम से उनको निर्माण करना पड़ता है, वैसे ही रसायन, भौतिक, गणित इत्यादि विज्ञान के अनेक अंग और उनके असंख्य शब्द परिभाषा में होते हैं और निर्माण के समय उनको विशिष्ट क्रम से निर्माण करना पड़ता है। संक्षेप में वास्तु-विद्या की दृष्टि से उसका पूरा मानचित्र मनश्चक्षु के सामने होने की आवश्यकता होती है। दूसरी आवश्यकता मसालों की है मन्दिर निर्माण में जिस प्रकार चूना, वज्रणचूर्ण (सीमेण्ट), सुर्खी, राखी, ईंटें, पत्थर, लकड़ी, लोहा इत्यादि अनेक प्रकार के मसालों की आवश्यकता होती है, वैसे ही परिभाषा-निर्माण में संस्कृत भाषा, उसका व्याकरण, प्राचीन संस्कृत साहित्य, ग्रीक, ल्याटिन, जर्मन इत्यादि संसार की अन्य अनेक भाषाएँ उनका घनिष्ट परिचय इत्यादि अनेक प्रकार के मसालों की आवश्यकता होती है। इन दोनों की सहायता से ही हिन्दी-परिभाषा-मन्दिर का निर्माण हो सकता है। परिभाषा निर्माण के पिछले प्रयत्न असिद्ध क्यों रहे इसके जो अनेक कारण हैं उनमें 'यादृशश्चित्रकरस्तादृशी : चित्रकर्म रूपरेखा, यादृशःकविस्तादृशी काव्यबन्धच्छाया' यह भी एक महत्व का कारण है।

डा० रघुवीर की परिभाषा—वास्तु शास्त्र के समान परिभाषा-शास्त्र का पूरा अध्ययन करके तथा उसके लिए आवश्यक सब साधन सामग्री से संनद्ध होकर उसके निर्माण का प्रयत्न भारतवर्ष में यदि किसी एक व्यक्ति ने किया है तो वे सरस्वती विहार के अधिष्ठाता डा० रघुवीर हैं। आपके द्वारा बनायी गयी परिभाषा आंग्लभारतीय महाकोष के नाम से प्रकाशित होती है। आज तक इस कोष के जितने भाग प्रकाशित हो चुके हैं उनका परिशीलन कर चुकने पर कहना पड़ता है कि यह महाकोष अपने ढङ्ग का अनूठा है और यदि कहा जाय कि परिभाषा-निर्माण के आज तक जितने भी प्रयत्न हुए हैं उनमें यही सर्वप्रथम, पद्धतिशील, शास्त्रोक्त सर्वव्यापी परिभाषा निर्माण का प्रयत्न रहा तो इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति न होगी। इसके अभी अनेक भाग निकलने शेष हैं, परन्तु जिस प्रबल आत्मविश्वास दुर्दम्य उत्साह निरतिशय-प्रेम और भागीरथ प्रयत्न से आपने परिभाषा-निर्माण का काम प्रारम्भ किया और जारी रक्खा है कि अल्पकाल में ही परिभाषा का भव्य और उत्तुङ्ग मन्दिर बन जायगा और हिन्दी भाषा समृद्ध होकर संसार में गौरव प्राप्त करेगी। इस राष्ट्र में डाक्टर महाशय बुद्धिमानों से बौद्धिक सहायता की, अर्थवानों से आर्थिक सहायता की और लेखकों से परिभाषा प्रचार की अपेक्षा करते हैं। मुझे विश्वास है कि स्वतन्त्र भारत के लोग इस महान् राष्ट्रकार्य को शीघ्र पूर्ण करने के लिए तन, मन और धन से सहायता करने में कोई कोर-कसर न रखेंगे।

यहाँ पर डाक्टर महाशय के सम्बन्ध में मैंने जो कुछ कहा उससे आप यह न समझिएगा कि मैं डाक्टर महाशय के प्रत्येक शब्द को वेदाक्षर मानता हूँ और आप भी मान लिजिएगा। स्वयं डाक्टर महाशय भी अपनी परिभाषा को वेदवाक्य नहीं मानते। इसलिए यदि आप उनके किसी एक या अनेक शब्दों के लिए दूसरे अच्छे प्रतिशब्द बना सकें तो अवश्य बना कर उनको अपने लेखों और ग्रन्थों में प्रयुक्त कीजिएगा और साथ साथ अंग्रेजी प्रतिशब्द भी दीजिएगा। मेरा भी डाक्टर महाशय के अनेक वैद्यकीय शब्दों के सम्बन्ध में मतभेद रहा, जिसे मैंने उनके लिए दूसरे प्रतिशब्द बनाकर और ग्रन्थों में प्रयुक्त करके प्रकट किया है। अभी हाल में जो बहुत छोटा सा उपर्युक्त प्रारम्भिक परिभाषा कोष डाक्टर महाशय ने प्रकाशित किया है उसमें उन्होंने स्वयं अनेक पुराने शब्दों में परिवर्तन किया है। यदि नया बनाया हुआ शब्द पहले की अपेक्षा अधिक अर्थबोधक हो तो परिवर्तन करने में कोई आपत्ति न होनी चाहिए। अंग्रेजी परिभाषा में भी समय समय पर परिवर्तन होते रहते हैं और अनेक वैज्ञानिक अनेक पारिभाषिक शब्दों के सम्बन्ध में अपनी अस्वीकृति प्रकट करते हैं। परन्तु स्मरण रहे कि आप और हम चाहे जितने छोटे मोटे परिवर्तन करते रहें, गोवर्धन पर्वत उठाने में श्रीकृष्णजी का जो स्थान और महत्व रहा वह स्थान और महत्व परिभाषा निर्माण में डा० रघुवीर जी का होगा आप और हम असंख्य गोप-गोपिकाओं के समान रहेंगे।

परिभाषा-समिति—इस प्रकार वैयक्तिक या सामूहिक रूप से बननेवाली परिभाषा का परीक्षण करने के लिए एक अधिकृत अखिल भारतीय स्वरूप की परिभाषा समिति का होना जरूरी है इसमें हिन्दी और संस्कृत जाननेवाले विज्ञान की विविध शाखोपशाखाओं के प्रगाढ़ विद्वान सदस्य हों। इसकी वार्षिक बैठक में इस अवधि के भीतर वैयक्तिक या सामुदायिक रूप से बनाये हुए परिभाषिक शब्दों का परीक्षण हो और अच्छे शब्दों पर समिति अपनी स्वीकृति की मुद्रा लगा दे। इससे परिभाष-निर्माण में जो सहायता दे सकते हैं उन सबों का सहयोग मिलेगा और बनी हुई परिभाषा में गांभीर्य और स्थैर्य पैदा होगा।

## साहित्य और विज्ञान

साहित्य और विज्ञान इन दोनों का स्वरूप और कार्य-क्षेत्र भिन्न भिन्न होता है। इसलिए साधारण जनता इनका आपस में कोई सम्बन्ध नहीं मानती और इनके पक्षपाती बिल्कुल पृथक् रहकर कई बार एक दूसरे का उपहास किया करते हैं। अतः दोनों में सम्बन्ध है या नहीं और यदि हो तो कैसा होना चाहिए, इसके सम्बन्ध में कुछ विचार मैं आपके सामने रखना चाहता हूँ। मनुष्य के शरीर में अनेक अंग होते हैं जो स्वरूप और कार्य में एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न होते हैं। परन्तु इनका आपस में सम्बन्ध नहीं, यह प्रश्न कदापि नहीं उठता। केवल यही नहीं कार्य-भिन्नता, स्वरूप-भिन्नता और उच्च-नीचता होते हुए भी सम्बन्धित रहकर एक दूसरे का उपकार करना और सब मिलकर एक उच्च उद्देश्य को सिद्ध करना शरीर की विशेषता मानी जाती है और इसका उदाहरण भिन्न मतावलम्बियों और परस्पर विरोधियों में समन्वय या मिलन करने के लिए लोगों के सामने रक्खा जाता है। ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीदबाहु राजन्यकृतः। ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यांशूद्रोऽजायत॥ इस वेद वचन में समाज धारणार्थ यही कल्पना प्रकट की गई है। इसी कल्पना के आधार पर वाङ्मय के विविध अंग-प्रत्यंगों का विरोध नष्ट करके उनमें सहयोग उत्पन्न करने की दृष्टि से भाषा को मैं मूर्त मानता हूँ। इस वाङ्मय मूर्ति में मेरी कल्पना के अनुसार साहित्य सिर होता है और विज्ञान अवशिष्ट शरीर। शरीर में सिर छोटा होता है तथा उसमें सारासार विचार, मार्गदर्शन और शरीर के प्रत्येक कार्य का नियन्त्रण करने का गुण होता है, परन्तु वह स्वयं कुछ नहीं कर सकता अर्थात् पंगु होता है। धड़ की स्थिति इसके विपरीत होती है। वह सिर की अपेक्षा कई गुना बड़ा एवं सब प्रकार का कार्यकर्ता होता है परन्तु उसमें कार्यदर्शन का गुण न होने से वह अन्धे के समान होता है। सिर और अवशिष्ट शरीर के परस्पर सम्बन्ध को

अन्य रीति से स्पष्ट करना हो तो सांख्योक्त पुरुष और प्रकृति के सम्बन्ध से, श्रीकृष्ण भगवान् और अर्जुन के सम्बन्ध से तथा सारथि और रथ के सम्बन्ध से स्पष्ट कर सकते हैं। इसी दृष्टि से साहित्यविहीन मनुष्य 'साक्षात् पशुः पुच्छ विषाणहीनः' माना गया है। यदि वाङ्मय से राष्ट्र को अधिक से अधिक लाभ पहुँचाना हो तो साहित्य और विज्ञान का सम्बन्ध और समन्वय सिर और शरीर, पुरुष और प्रकृति, श्रीकृष्ण भगवान् और अर्जुन तथा सारथि और रथ इनके समान होना आवश्यक है। इसका अर्थ यह है कि साहित्य का वाङ्मय बहुत अधिक न हो परन्तु ठोस हो और उसकी लेखन-शैली ऐसी रहे कि उसमें अपने विषयों के प्रतिपादनार्थ उपमादृष्टान्तादि अलंकारों के समान वैज्ञानिक बातों का भी उपयोग किया जाय। इससे लोगों में विज्ञान का प्रसार होने में सहायता मिलेगी। परन्तु उसके साथ-साथ ऐसे उच्च विचार प्रकट किए जायँ कि जो विज्ञान उच्छृङ्खल वृत्ति को नियन्त्रित कर सके। वैसे ही विज्ञान का वाङ्मय बहुत ही विशाल रहे और उसकी लेखन-शैली इस प्रकार की हो कि उसमें भी विषय प्रतिपादनाथ उपमा दृष्टान्तादि का उपयोग किया जाय जिससे उसका रूखा-सूखापन नष्ट हो और बीच-बीच में प्रसंगानुरूप साहित्यिक और दार्शनिक उच्च विचार प्रगट किए जायँ जिससे वह प्रभावित होकर रहे। आप जानते हैं कि विज्ञान से मनुष्य में अमानुष शक्ति आ जाती है और उसके कारण उसमें हिंसात्मक या ध्वंसात्मक प्रेरणाएँ उत्पन्न होकर अनर्थ होते हैं। अमानुष शक्ति चाहे प्राचीन काल के मन्त्र-तन्त्र-सिद्ध द्वारा प्राप्त हुई हो, चाहे आधुनिक विज्ञान द्वारा प्राप्त हुई हो, सदैव अनर्थ करने में अग्रसर रही है—गर्भेश्वरत्वमभिनवयौवनत्वम-प्रतिमरूपकत्वममानुषशक्ति त्वं चेति महतीवमनर्थपरम्परा॥ इस अमानुष शक्ति का उपयोग मनुष्यता की दृष्टि से करने की लोगों में प्रवृत्ति उत्पन्न करना साहित्य का उद्देश्य होना चाहिए। यदि साहित्य और विज्ञान का सम्बन्ध इस प्रकार का रहा तो जैसा कि भगवद्गीता में कहा है—यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः। तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥ वैसे जंगल में मंगल होगा। अन्यथा जैसे हो रहा है मंगल में जंगल निश्चित है।

आदर्श वाङ्मय—संस्कृत संसार की एक अत्युन्नत भाषा है। उपमादृष्टान्तादि से विषय प्रतिपादन की उसकी शैली 'एकमेवाद्वितीयं' है। केवल यही नहीं, साहित्य और विज्ञान का समुचित संगम उसमें दिखाई देता है। कोई भी साहित्य का ग्रन्थ देखिएगा, उसमें उपमादृष्टान्त अलंकार और उच्च विचारों के अतिरिक्त विज्ञान की अनेक उपयोगी बातें यथाप्रसंग मिलेंगी। वैसे विज्ञान का कोई ग्रन्थ उठाइए, उसमें विज्ञान के सिद्धान्त उपमादृष्टान्तादि से चित्रित किए हुए मिलेंगे। मैं अपने कथन के पुष्ट्यर्थ प्रथम साहित्य में विज्ञान के कुछ उदाहरण देता हूँ। मैं वैद्यक का विद्यार्थी हूँ अतएव ये उदाहरण वैद्यक के हैं—

विकारं खलु परमार्थतोऽज्ञात्वा नारम्भः प्रतीकारस्य॥ शाकुन्तल॥ उचित बेलातिक्रमे चिकित्सका दोष मुदाहरन्ति॥ मालविकाग्निमित्र॥

अचिन्त्योहि मणिमन्त्रौषधीनां प्रभावः र॥त्नावलि॥
निद्राहि प्राणिनां प्रथममिदं शरीरधारणनिमित्तम्॥
चण्डकौशिकम्॥
विषस्यविषमौषधम्॥ प्रसन्नराघव॥
द्वेष्योऽपि संमतः शिष्टस्तस्यार्तस्य यथौषधम्।
त्याज्यो दुष्टः प्रियोप्यासीदङ्गुष्ठोगुष्ठ इवाहिना॥
रघुवंश॥

अयति भवपित्तम् चेद्गजभजनर सूतशेखरं कृष्णम्।
सद्गोरसेन सहसितभनुत्रुटिकं सर्वथात्यजस्नेहम्॥
सुश्लोक राघव॥

अब वैद्यक में साहित्य देखिए। वैद्यक को ही आयुर्वेद कहते हैं। आयुर्वेद पूर्ण वैज्ञानिक वैद्यक है। इसमें व्याधि विज्ञान, व्याधि निराकरण, स्वास्थ्यरक्षा इत्यादि वैद्यक के अनेक अंगों का विवरण साहित्यिक और दार्शनिक पद्धति से किया गया है और उनके संबंध में जो नियम प्रतिपादित किये गये हैं वे पूर्ण त्रिकाला-बाधित हैं। मैं समझता हूँ कि जहाँ तक स्वास्थ्य-रक्षा और व्याधि-परिमोक्ष के सिद्धांतों का सम्बन्ध है आयुर्वेद अब भी संसार के सब वैद्यक शास्त्रों का गुरु है और भविष्य

में भी रहेगा। इसके इन सत्यं, शिवं और सुन्दरं, सिद्धान्तों को देखकर मुझे ग्रन्थ-लेखन की स्फूर्ति हुई और 'स्वाध्यशिक्षा पाठावलि' में इन आरोग्य सुभाषितों का संग्रह करके मैंने ग्रन्थलेखन का श्रीगणेश किया।

इनके कुछ उदाहरण देखिए—

चक्षुः प्रधानं सर्वेषामिन्द्रियाणां विदुर्बुधाः।
घननीहारयुक्तानां ज्योतिषामिवभास्करः॥
नाभोजनेन कातामिनर्दीऽप्यते नातिभोजनात्।
यथा निरिन्धनोवन्हि रल्पोवातीन्धनावृतः॥
हिताभिजुहुयान्नित्यमैन्तराग्निं समाहितः।
अन्नापानसमिद्भिर्ना मात्राकालौविचारयन्॥
भुत्वोपविशतस्तन्द्राशयानस्य तु पुष्टता।
आयुश्चंक्रमणमाणस्य मृत्युर्धावतिधावतः॥
स्नेहाभ्यङ्गाद्यथाकुम्भश्चर्मस्नेह विमर्दनात्।
तथाशरीरमभ्याङ्गाद्दढंसुत्वक्च जायते॥
देहवाक्चेतसांचेष्टाप्राक्श्रमाद्विनिवर्टयेत्।
अनुयायात्प्रतिपदं सर्वधर्मेषुमध्यमाम्॥
मरणंप्राणिनां इष्टंमायुःपुण्योभयक्षयात्।
तयोरप्यक्षयाद्दष्टं विषमापरिहारिणाम्॥

नरोहिताहार विहार सेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।
दातासमः सत्यपरः क्षमावान् आप्तोपसेवी च भवत्यरोगः॥
मतिर्वचः कर्मसुखानुबन्धि सत्वंविधेयंविशदा च बुद्धिः।
ज्ञानतपस्तत्परता च योगे यस्यास्तितं नानुपतन्तिरोगः॥

ऐसे असंख्य उदाहरण दिये जा सकते हैं। परन्तु 'नखल्व खिलमपि निघृष्यते सुवर्णखण्डं वर्ण निष्कर्षाय'। इसलिए इससे अधिक उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है, न यहाँ पर उसके लिए स्थान या समय है।

## विज्ञान परिषद् का भविष्य

मैं पहले कह चुका हूँ कि विवर्धमानावस्था में विज्ञान-परिषद् का साहित्य-सम्मेलन के भीतर रहना आवश्यक था। परन्तु इतउत्तर अधिक काल तक उसको सम्मेलन में रहना उन्नति में पोषक नहीं होगा। इसका वास्तविक स्थान निखिल भारतवर्षीय विज्ञान-परिषद् है। इस परिषद् का काम-काज अंग्रेजी में होता है और भविष्य में भी अनेक वर्षों तक अंग्रेजी में ही चलता रहेगा। फिर भी भविष्य में उसके भीतर हिन्दी का एक विभाग स्थापित करने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती। उसमें हिन्दी पारिभाषिक शब्दों का परीक्षण, हिन्दी में व्याख्यान तथा तद्विद् संभाषा (सिम्पं सिअम) इत्यादि कार्य प्रारम्भ किए जा सकते हैं और भाषा की उन्नति के साथ साथ ये कार्य बढ़ाए जा सकते हैं। जिस परिभाषा समिति का उल्लेख मैंने पीछे किया है उसकी बैठक इसके साथ करने से वह अधिक प्रातिनिधिक स्वरूप की भी हो सकती है। जब इस प्रकार भारतीय विज्ञान-परिषद् में हिन्दी का प्रवेश हो जाय तब सम्मेलन से इस विज्ञान-परिषद् को हटाया जा सकता है। मैं जानता हूँ कि विज्ञान-परिषद् का यह संक्रमण भारतीय वैज्ञानिकों के हिन्दी-प्रेम पर निर्भर है। परन्तु मुझे पूर्ण विश्वास है कि भारत के विज्ञानवेत्ता विदेशी भाषाओं की सहायता से अपने देश की सेवा करते हुए अपनी भाषा की ओर विमुख नहीं रह सकते।

बस, मेरा वक्तव्य समाप्त हुआ इसलिए अन्त में मैं फिर से उन सब सज्जनों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिन्होंने मुझे इस पद पर स्थापित करके अपने अल्प-स्वल्प विचारों के द्वारा राष्ट्रभाषा की सेवा करने का सुअवसर प्रदान किया, तथा आप सब उपस्थित सज्जनों और देवियों को भी मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने मेरा भाषण धैर्य तथा शान्तिपूर्वक श्रवण किया।

दृष्टं किमपि लोकेऽस्मिन्न निर्दोषं न निर्गुणम्।
आवृणुध्वमतो दोषान्विवृणुध्वं गुणान्बुधाः॥

जय हिन्दी

# विद्युत का धक्का

[लेखक:—रमेशचन्द्र कपूर, प्रयाग विश्वविद्यालय]

बिजली का प्रयोग तो नगरों में बहुत प्रचिलित हो गया है और अधिकतर घरों में विद्युत द्वारा ही रात में प्रकाश किया जाता है। भारतवर्ष में बिजली को अधिकतर प्रकाश करने के उपयोग में ही लाते हैं। यूरोप तथा अमेरिका में तो बिजली से कई घरेलू काम भी लिए जाते हैं जैसे वस्त्रों को धोना, वस्त्रों पर तह करना, कमरों को गरम करना, खाना पकाना, वस्तुओं को ठंडा रखना, तथा बर्फ जमाना इत्यादि और यहाँ तक कि डाढ़ी भी बिजली द्वारा ही बनाई जाती है। इसके अलावा रेडियो, ग्रामोफोन, टेलीविज़न इत्यादि वस्तुओं का, जो बिजली द्वारा चलती है, प्रचलन तो घर घर में हो गया है। परन्तु भारतवर्ष में अभी यह वस्तुएँ अधिक प्रचिलित नहीं हैं।

जिन लोगों के घरों में बिजली है या जो हमेशा बिजली से ही काम करते हैं, उन्हें बिजली के धक्के का तो अवश्य ही अनुभव होगा। यदि थोड़ी सावधानी से काम लिया जाय तो उसके भय से बचा जा सकता है।

यह प्रायः देखने में आया है कि बिजली में प्रायोगिक वस्तुओं को, जैसे स्विच, होल्डर इत्यादि को छूने से कभी-कभी धक्के का अनुभव होता है। यह धक्का क्यों लगता है और कैसे लगता है, इसके बारे में, अधिकतर लोगों को कुछ पता नहीं। उन्हें केवल यह मालूम होता है कि यह वस्तुएँ कभी तो बिलकुल अहानिकारक प्रतीत होती हैं और कभी बहुत वेग से धक्का देती हैं। अधिक वोल्टेज की बिजली हानिकारक समझी जाती है और कम वोल्ट से कोई हानि नहीं समझी जाती है, यद्यपि छः वोल्ट की बैटरी के विद्युततारों को एक अँगूठी द्वारा मिलाने से निकली हुई चमक किसी भी मनुष्य को इतना जला सकती है कि उसे कई दिन बिस्तर पर काटना पड़ेंगे। यह प्रायः देखने में आया है कि घरों में प्रायोगिक बिजली, १२० वोल्ट की होती है, कभी तो एक हल्का धक्का देकर रह जाती है और कभी बहुत भयंकर रूप से परेशान कर देती है।

वास्तव में धक्के की यह क्रिया एक वैज्ञानिक विधि द्वारा होती है। जब कभी मनुष्य का शरीर विद्युत की धारा के मध्य में हो जाता है, उसे एक धक्के का अनुभव होता है। वोल्ट तो केवल एक कारण है। कुछ अन्य कारणों से भी उस पर प्रभाव पड़ता है जैसे शरीर की अवस्था, चर्म की विद्युत् बाधा, विद्युत् धारा की मात्रा तथा समय। धारा कई प्रकार की हैं, ए० सी० (Alternating Current) अथवा डी. सी. (Direct Current)। इसका भी बहुत प्रभाव पड़ता है। यदि हाँथ या शरीर का अन्य भाग गीला होता है, तो धक्के की प्रबलता कई गुनी अधिक बढ़ जाती है। वोल्टेज के द्वारा नहीं वरन् धारा (Current) के कारण धक्के का अनुभव होता है। वोल्ट की विशेषता यहाँ तक है कि अधिक वोल्ट से अधिक धारा का प्रवेश होगा। कुछ वैज्ञानिकों का विचार है कि ०·०७५ एम्पियर विद्युत् धारा शरीर की गति को समाप्त करने के लिये काफ़ी है। कुछ अनुसंधानिक इस मात्रा को भी अधिक समझते हैं। ए. सी. धारा, डी. सी. से अधिक हानिकारक होती है।

शरीर की विद्युत् बाधा बहुत अधिक होती है। उस बाधा को हम तीन भागों में बाँट सकते हैं। शरीर के अन्दर की बाधा प्रायः १००० ओहम् (Ohms) से ५००० ओहम् तक होती है। त्वचा की विद्युत् बाधा इस पर निर्भर रहती है कि शरीर के किन दो भागों से विद्युत्धारा का प्रवाह होगा। यदि किसी की उँगलिया बिलकुल सूखी हैं और केवल एक उँगली से विद्युत्तार का स्पर्श हुआ है तो बाधा २५०००० ओहम् तक हो सकती है। परन्तु उसका दूसरा हाँथ यदि ज़मीन पर किसी गीली वस्तु को पकड़े है तो बाधा २००० ओहम्

तक पहुँच सकती है। इस प्रकार विद्युत बाधा के घट जाने से इतनी अधिक विद्युत्धारा का शरीर में प्रवेश हो सकता है कि वह हृदय की गति समाप्त करने के लिये काफ़ी हो सकती है। नमी होने से त्वचा की बाधा बहुत घट जाती है। इसलिये बिजली से काम करते समय इस बात का विचार सर्वदा रखना चाहिये कि त्वचा बिलकुल सूखी रहे और बिजली का स्पर्श शरीर के कम से कम भाग से हो। स्पर्श क्षेत्र के बढ़ जाने से विद्युत् बाधा कई सौ गुनी घट सकती है और धारा की मात्रा उतनी सौ गुनी ही बढ़ जायेगी।

खाना पकाने के तथा कपड़ों पर तह करने के यंत्रों की जाँच हमेशा करते रहना चाहिये क्योंकि इनकी विद्युत् बाधा बहुत कम होती है और इनमें अधिक धारा का प्रवेश होता है। गीले हाथ से किसी भी बिजली के यंत्र का स्पर्श नहीं करना चाहिये। पानी के कारण धारा का मार्ग बन जाता है जिससे कि विद्युत् शरीर में प्रवेश कर सकती है। बिजली की अँगीठी इत्यादि जिसमें पानी गर्म करने को रखा जाता है, पानी गर्म होने की जाँच उसमें उँगली डुबोकर नहीं करना चाहिये क्योंकि उसमें थोड़ी असावधानी से विद्युतधारा का प्रवेश हो सकता है जो हानिकारक सिद्ध हो सकता है।

घर पर बिजली इत्यादि खराब होने पर उन्हें ठीक करते समय यह विचार हमेशा रखना चाहिये कि मेन-स्विच बन्द कर दिया जाय। घरों में बिजली के दो प्रकार के तार होते हैं, एक गर्म तथा दूसरा ठंडा। जब हम किसी बल्ब को बिजली द्वारा जलाते हैं तो विद्युत् धारा का मार्ग गर्म तार से ठंडे तार द्वारा होता है। यदि हम जमीन पर खड़े होकर गर्म तार का स्पर्श करेंगे तो धारा का प्रवेश हमारे शरीर द्वारा होगा। इस प्रकार बिजली के स्विच को बन्द करने के उपरांत भी यही गर्म तार हमें धक्का पहुँचा सकता है। इसलिये बिजली की मरम्मत करते समय हमें सदा मेन-स्विच को बंद करना चाहिये। इसके उपरांत यदि कभी बिजली का काम करना हो तो लकड़ी तथा अन्य ऐसी वस्तु पर खड़ा होना चाहिये जिससे बिजली का प्रवाह न हो सके। यदि विद्युत का मार्ग पूरा न बन सकेगा तो वह कोई हानि न पहुँचा सकेगी। इसलिये यह भी ध्यान रखना चाहिये कि दूसरा हाथ किसी अन्य वस्तु को स्पर्श न करे अन्यथा उससे विद्युत् मार्ग बन जायगा। बिजली का कार्य करते समय दूसरा हाथ सदा जेब में रखना चाहिये जिससे वह अन्य वस्तु से स्पर्श न कर सके। इससे यह लाभ भी होगा कि यदि विद्युत् धारा का प्रवाह भी होगा, तो वह एक हाथ की उँगलियों के बीच से ही होगा और हृदय के बीच से न होने पायगा क्योंकि सूखी लकड़ी या अन्य किसी पदार्थ पर रहने से शरीर से होकर धारा का प्रवाह न हो पाएगा। जिस स्थान पर मेन-स्विच या फ्यूज़ हों वहाँ पर लकड़ी जड़वा देना बहुत लाभदायक होता है।

ऊपर लिखित थोड़ी सी बातों पर ध्यान रखने से बिजली के धक्के से कोई दुःख नहीं होगा और भय भी नहीं रहेगा।

# काष्ठ (Timber)

(लेखक—त्रिवेणीराय, 'साहित्यरत्न' इलाहाबाद)

उन पेड़ों की लकड़ी जिनका घेरा दो फ़ीट से कम न हो काष्ठ कहते हैं; अर्थात् काष्ठ-शिल्प में प्रयोगार्थ लकड़ी केवल उन्हीं लट्ठों में से प्राप्त की जा सकती है जिनका घेरा कम-से-कम २ फीट हो। पेड़ कट जाने के बाद तने तथा बड़ी डालियों को कई प्रकार के उचित घेरों तथा लम्बाई में बना लेते हैं। व्यापारिक सिद्धान्तों के अनुसार काष्ठ दो जातियों में उद्भिज-विज्ञान (वनस्पति-शास्त्र) के अनुसार बाँटा जाता है—पहला फूलदार वृक्ष, दूसरा गावदुम फलवाला वृक्ष।

## काष्ठ-वर्ग-विभाग

१. फूलदार पेड़ जिनकी पत्तियाँ बड़ी होती हैं जिन्हें अँग्रेजी में (Broad-leaf wood) कहते हैं। २. गावदुम फलवाला (Conifer, bearing fruit cones) पेड़, जिनका फल एक ठोस वस्तु (cone) की तरह जो कि शुन्डाकार होते हुए अंत में (Tapering) एक विन्दु तक जाकर समाप्त होता है। इन फलों की आकृति ठीक प्राचीन मिश्र में बने हुए पिरामिड की तरह, जो कि ऊपर की ओर नुकीले तथा जिनका आधार वृत्ताकार होता है। ये दो भेद काष्ठ के मुख्य हैं। फूलदार वृक्षों का काष्ठ घना तथा शिल्प के योग्य कड़ा होता है। इन पेड़ों का बीज फल में एक बीज-आवरण (seed-case) विशेष से ढका रहता है। इनको दो बीज-दल वाला पौधा भी कहते हैं। दूसरे पेड़ों की लकड़ी नरम होती है। ये पेड़ बहुधा सुई की तरह ऊपर बहुत ऊँचे चले जाते हैं। इनकी पत्तियाँ भी नुकीली शुन्डाकार होती हैं। इनके फूल साधारण होते हैं। इनके कोणिक (शुण्डाकार) फलों के बीज में बीज, बिना किसी आवरण के, नंगा रहता है।

काष्ठ-उप-विभाग (subdivision):—पुष्पित पेड़ के दो उपविभाग, पहला राल-नाड़ी (resin conals) युक्त तथा दूसरा बिना राल-नाड़ी का। इन पतली नाड़ियों में राल (एक द्रव पदार्थ) भरा रहता है। कोणिक पेड़ के दो मुख्य भाग हैं—पहला दृष्टि-गोचर किरण वाला जिसमें मज्जायुक्त किरणें स्पष्टतया दिखाई पड़ती हैं। इसके दो उप-विभाग—१. दृष्टि-गोचर वार्षिक-चक्र तथा सूक्ष्म रंध्र (pores) वाला काष्ठ। २. दृष्टिगोचर वार्षिक-चक्र, परन्तु अदृष्टिगोचर सूक्ष्म रन्ध्र वाला काष्ठ। दूसरा अदृष्टिगोचर किरणोंवाला काष्ठ, इसके तीन उप-विभाग—१. वार्षिक चक्र तथा रन्ध्र दृश्यमान, २. वार्षिक चक्र तथा रन्ध्र दोनों दृश्य-मान और ३. वार्षिक चक्र और रन्ध्र दोनों अदृश्यमान। पुष्पित पेड़ के पहले उपविभाग में स्प्रूस, लाल पाइन, पिच और (लाल तथा सफेद) लार्च, दूसरे उपविभाग में यू (yew) पेड़ जो कि सर्वदा हरा रहने वाला (an evergreen tree) होता है। कोणिक पेड़ों के पहले उपभाग के पहले हिस्से में ओक, बीच, एल्म (Elm) जिसकी पत्तियाँ दाँते दार होती हैं, दूसरे हिस्से में अल्दर, बासउड, पोपलर, हार्नबीम। दूसरे उपविभाग के पहले नं० में आश, टीक, मोहगनी, जराह और वालनट, नं० दूसरे में लाइम, बाक्स और चेस्ट नट और तीसरे नं० में आबनूस (Ebony) जिसकी लकड़ी काली होती है।

काष्ठ-बनावट (Structure of Timber)—काष्ट भी संसार का एक जीवित वस्तु है। यह असंख्य तत्त्वों (microsopic Cells) के सम्मिश्रण से बनता है। ये तत्त्व अद्रष्टिगोचर से होते हैं जो कि केवल सूक्ष्मदर्शक यंत्र (खुर्द बीन) से देखे जा सकते हैं। इनकी तुलना शहद के छत्ते से की जा सकती है। लेकिन फिर भी ये भिन्न भिन्न रूपों के होते हैं। कुछ वर्गाकार (Square), कुछ बेलन की तरह लम्बे और गोल, और कुछ सुई की तरह शुण्डाकार और लम्बे नुकीले होते हैं। शुण्डाकार शब्द (Taperd shape) के लिए ही प्रयोग किया गया है। ये तत्त्व पोले होते हैं। और ये आपस में मिले हुए, अच्छी तरह जुड़े हुए, ठोस घने फिर भी

मध्य में एक छेद के साथ बने रहते हैं। काष्ठ में एक प्राकृतिक द्रव पदार्थ होता है और इसी रस के द्वारा ये तत्त्व एक बन्धन में आपस में चिपके रहते हैं। यदि किसी तरह से गर्मी पहुँचाकर इस रस को सुखा दिया जावे तो इन तत्त्वों की संधि छिन्न भिन्न हो सकती है।

प्राकृतिक गठन के अनुसार काष्ठ को दो भागों में बाँटते हैं। १—नरम काष्ठ (Softwood)—२, कड़ा काष्ठ (Hardwood)। नरम काष्ठ में बहुधा शंबुफली पेड़ (गावदुम पेड़) आते हैं। ये पेड़ बहुधा सीधे रेशे वाले हैं। इसलिए इनकी लकड़ी में, उस समय भार-वहन की शक्ति जब कि उनकी मज्जायुक्त किरणें तथा रेशे (grain) क्षितिज के समानान्तर अथवा पड़े रुख में प्रयोगार्ह हों, अधिक होती है। उस शक्ति को 'आड़ी सम्पीडन-शक्ति' (Horizontal coeff-of elasticity) कहते हैं। यदि इन लकड़ियों के टक्कर (पार्श्व) में देखा जाय तो सूक्ष्म रन्ध्र सरलता से दिखाई पड़ते हैं। वे इस बात के द्योतक हैं कि रेशे आपस में साम्पीय के साथ मिले नहीं हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि काष्ठ में कमजोरी है। यही कारण है कि बहुधा इन लकड़ियों में जब कि उनका प्रयोग इस तरह किया जाय कि रेशों का रुख जमीन पर खड़ा (Vertical) पड़े तो ये लकड़ी आसानी से दबाव पड़ने पर फट जाती है। इस लकड़ी में खड़ी सम्पीडन-शक्ति की कमी इसलिए है कि रेशे परस्पर अच्छी तरह सटे नहीं रहते हैं। जैसा कि चित्र नं० १ में दिखाया गया है। यही कारण है कि इन लकड़ियों का वजन भी प्रति पौन्ड, कड़ी लकड़ी की अपेक्षा, कम होता है। इसलिए इसके फरनीचर हल्के तथा कम टिकाऊ होते हैं। इन लकड़ियों का रंग भी बहुधा हलका होता है। इसके प्रतिकूल लगभग प्रत्येक गुण कड़ी लकड़ी में जैसे खड़ी तथा पड़ी दोनों अधिक सम्पीडन शक्ति, घना रंग (dark colour) फरनीचर वजनी तथा टिकाऊ होते हैं। कड़ी लकड़ी के रेशे आपस में इतनी सामीप्य के साथ से जुड़े रहते हैं कि उनके पार्श्व (Section) में किसी तरह (आंख जब कि नंगी हो बिना दर्शन यंत्र के) रन्ध्र नहीं दिखाई पड़ते हैं।

शंबुफली पेड़ जैसे चीड़, देवदार और पिच आदि में राल तथा तेल की मात्रा अधिक होती है। इसलिए इनके काष्ठ में एक सुगंधि पाई जाती है। कुछ जगहों पर इससे एक प्रकार का सुगंधित तेल निकालते हैं जिसको गंध बिरोजा कहते हैं। यह देवदार से निकाला जाता है। तारपीन का तेल भी इसी तरह पेड़ से निकाला जाता है जो कि पालिश में मिलाया जाता है। इन पेड़ों को जब कि वे खड़े ही रहते हैं, तने में जमीन से ऊपर, गोलाई में चारों तरफ छाल को निकाल लेते हैं। इस तरह खुली जगह पाकर पेड़ का रस बहने लगता है। यह रस बाद में कड़ाही में खौलाकर तेल बना लिया जाता है। इस तेल के निकालने से लाभ अधिक तथा हानि कम है। लाभ—इन पेड़ों में राल तथा द्रव पदार्थ इतना रहता है कि काष्ठ की अच्छी सुखाई अथवा शुष्कीकरण (Seasoning) के पश्चात् में कुछ शेषांश रह जाता है। जब इस लकड़ी पर रन्दा किया जाता है तो उस पर औजार की धार फिसल कर खराब हो जाती है और लकड़ी को काटना या छीलना मुश्किल हो जाता है। क्योंकि शेषांश राल के द्वारा काष्ठ में नमी (moisture) रहने के कारण से लकड़ी में एक चिपचिपी (Cloggy) रहती है। बहुधा इस लकड़ी को दुबारा सुखाया जाता है।

पिच की लकड़ी में तो यह राल बहुत ही काफी होती है। यह देखा जाता है कि इसकी लकड़ी प्लेन (रंदा) करने के बाद फिर दुबारा सूखने लगती है। इसलिए इस सिकुड़न के द्वारा (Shrinkage) काष्ठ में फटासें (Warping) पड़ जाती हैं जो कि फरनीचर को खराब कर देती हैं।

इन नरम लकड़ी वाले पेड़ों का गाभा कभी कभी बहुत ही नरम होता है। जिससे कि बाह्य प्राकृतिक प्रभावों अथवा अन्दर के काष्ठ सिकुड़न के कारण से पेड़ बहुधा खोखले हो जाते हैं। इन लकड़ियों में राल होने का अधिक मात्रा में, कारण यह है कि इनके काष्ठ में पतली पतली रस की नालियां (Canals) अथवा नहरें होती हैं। इनमें रस का प्रवाह होता है। इन

नहरों के बीच में कहीं २ गड्ढे बड़े होते हैं और उनमें रस भरा रहता है।

तेल निकालने से हानि—तेल निकाल लेने पर लकड़ी में शुष्कता आ जाती है। इसके कारण लकड़ी का एक विशेष आवश्यक गुण 'लेचक' (Elasticity) नष्ट हो जाती है। यदि इस रस को वैज्ञानिक रूप से अधिक मात्रा में निकाल लिया जाय तो लकड़ी का प्राकृतिक सौन्दर्य तथा शक्ति दोनों का ह्रास हो जाता है। परन्तु न निकाला जाय तो भी लकड़ी पर काम आसानी से नहीं किया जा सकता तथा चीरते समय उसमें आरी फँस जायेगी। और जहाँ पर कि हम ऐसी लकड़ी का प्रयोग करने को हों जहाँ कि सिकुड़न होने से हमें हानि की विशेष सम्भावना है तो इसको मशीन द्वारा बिल्कुल ही निकाल देते हैं। फिर काष्ठ में सिकुड़न की
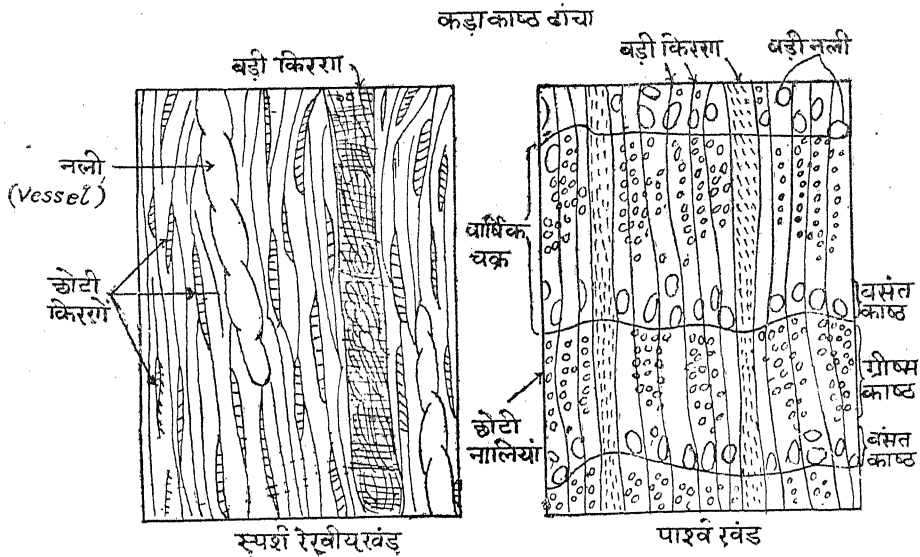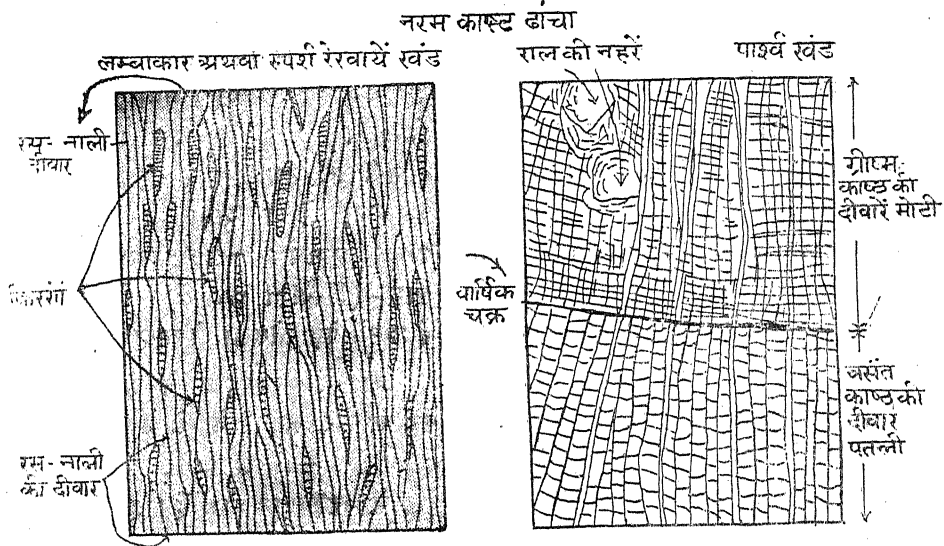
तनिक भी उम्मीद नहीं। परन्तु इस तरह का काष्ठ अपने प्राकृतिक रंग को खोकर कुछ हलका-सा रंग में बदल जाता है।

नरम काष्ठ की लकड़ी ढीली होती है इसलिए सीधे रेशे में आसानी के साथ फट जाती है। इस कारण से उनको छेदते समय बड़ी सावधानी से यह स्मरण रखना चाहिए कि वह फटने न पावे। दूसरी बात यह कि इस लकड़ी में कील अथवा पेंच कसने के पश्चात् भी वे ढीली रह जाती हैं। पेंच ढीले अपने सूराखों में पड़ जाते है। इसलिए इस लकड़ी में इन वस्तुओं (Materials) का प्रयोग कम किया जाता है। पतली जगहों में तो अच्छा हो इनमें डावल का प्रयोग किया जाय। डावल लकड़ी को गोल पतली 'कन्नीओं' को कहते हैं। इन नरम काष्ठों में कसे गए बोल्ट भी कुछ समय पश्चात् ढीले पड़ जाते हैं। कड़ा काष्ठ इन बुराइयों से बचा रहता है।

गावदुम फल वाले पेड़ों के रेशे सीधे ही बहुत लम्बे होते हैं। इसलिए उनको रन्दा करने में आसानी रहती है। इसके विपरीत कड़ी लकड़ी के रेशे टेढ़े मेढ़े तथा आपस में उलझे रहते हैं। इनको रन्दा करने में कठिनाई पड़ती है। परन्तु इन वक्राकार रेशों वाली लकड़ी से एक विशेष लाभ है। वह यह कि इस रेशे वाली लकड़ी में बड़ी ही अच्छी आकृति ( figure ) लकड़ी के धरातल ( snrface ) में बनी रहती हैं। इनका प्रयोग बहुमूल्य फरनीचरों में होता है। इस काष्ठ से विनियर ( veneer ) बनता है।

यदि कुछ मात्रा में राल-युक्त रस काष्ठ में वर्तमान हो तो उससे एक विशेष लाभ है। इस रस के सुगंधि में एक विशेष पदार्थ होता है जो कि बाह्य सूक्ष्म कीड़ों को विष की तरह हानि पहुँचा कर मार डालता है। इसलिए इस पेड़ में (जिसमें यह रस शेष हो) किसी तरह भी कीड़े आक्रमण नहीं करते हैं। और लकड़ी घुनने ( Rot ) से बची रहती है। इस रस को निकाल कभी-कभी अन्य शुष्क ( seasoned ) काष्ठ में मशीन के द्वारा वैज्ञानिक रीति से प्रवेश करा दिया जाता है। इस तरह काष्ठ को विषैला ( poisened ) बनाकर कीड़ों के आक्रमण से लकड़ी को बचा लिया जाता है। इस राल के शेष रहने से एक लाभ दूसरा यह है कि उसमें हम लोहे के ( materials ) कील, पेंच, बोल्ट आदि का प्रयोग कर सकते हैं क्योंकि यह राल आपस में रेशों को बाँध कर सम्बद्ध रखती है जिससे पेंच आदि ढीले नहीं पड़ते हैं। वास्तव में यदि काष्ठ शरीर है तो यह राल-युक्त रस उसका प्राण जो काष्ठ के रेशों को आपस में एक आकर्षण-शक्ति प्रदान करता है। इस रस को पूर्णतया निकाल लेने से काष्ठ प्राणहीन हो जाता है। माना कि वह सिकुड़ने से बच जाता है पर उस पर आसानी से कीड़े हमला कर सकते हैं तथा कील-स्क्रू का प्रयोग नहीं हो सकता। जब कि पेड़ खड़ा हो उस समय तो बिलकुल ही नहीं तेल निकालना चाहिए। क्योंकि प्राणहीन पेड़ कई बीमारियों का शिकार हो जाता है। तथा रेशों की परस्पर आकर्षण-शक्ति के अभाव के कारण आन्तरिक काष्ठ - (Heart wood) गामे को खीचते व छोड़ देते हैं जिससे पेड़ खोखला हो जाता है।

काष्ठ में मज्जायुक्त किरणें लम्बाई में काष्ठ के धरातल पर लकड़ी के रेशे के साथ समानान्तर दौड़ती हैं। वैसे तो ये किरणें प्रत्येक लकड़ी में होती हैं। परन्तु कुछ में अदृश्यमान होती हैं। इन किरणों का रंग, शेष काष्ठ से बीच-बीच में हलका रहता है। इस तरह दुरंगे प्रभाव के द्वारा काष्ठ के धरातल में एक विशेष सुन्दर चितकबरापन ( dappled shape ) आ जाता है। कुछ काष्ठ के विशेष गुण हैं, स्थिति स्थापक गुण, सुघड़ाई अथवा सुसाध्यता, सम्पीड़न शक्ति और तौल। स्थिति-स्थापक गुण ( coeff elasticisty ) प्रति वर्ग इन्च के हिसाब से पौंड की मात्रा में निकाला जाता है जैसे सागौन में स्थिति स्थापक गुण प्रति वर्ग इन्च के हिसाब से १६७८ पौंड होता है। इस गुण में लकड़ी की प्राकृतिक लोच की जाँच की जाती है। जहाँ पर अच्छे काम की आवश्यकता होती है वहाँ इस लोच को वैज्ञानिक ढंग से निकाल देते हैं। सुसाध्यता यानी लकड़ी को प्रयोग करने में कितना परिश्रम करना पड़ता है। क्या वह आसानी से रन्दी जा सकती है ? आदि बातें सुघड़ाई के प्रतीकांक जो कि सागौन १. ७५ होता है।

सम्पडिन शक्ति अथवा दबाव सहन करने की शक्ति। यह प्रतिवर्ग इंच के हिसाब से पौंड में निकाली जाती है। जैसे सागौन में प्रति वर्ग इन्च के हिसाब से अविकारी ध्रुवाङ्क ६८३ पौंड होता है। सम्पडीन शक्ति का चित्र नं० ४ दिखाया गया है। लकड़ी का तौल पौंड में प्रति घनफुट में बताया जाता है।

काष्ठ के तत्त्व ( cells ) :—

काष्ठ के तत्त्व
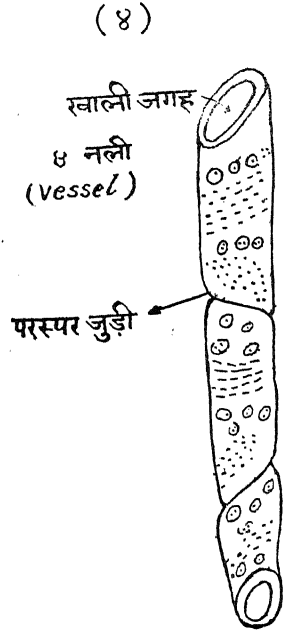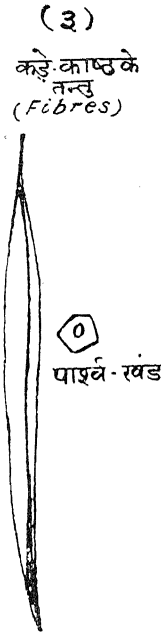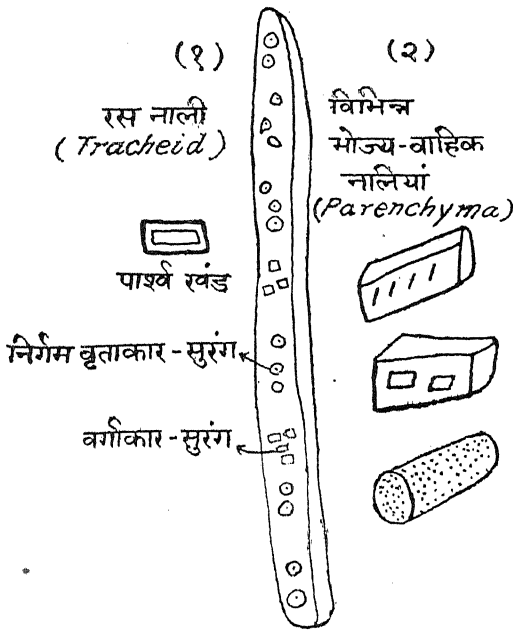
नरम काष्ठ में केवल दो तरह के तत्त्व पाए जाते हैं जिनसे वह बनता है। पहला और अत्यधिक आवश्यक (Tracheid) रस-नाली। दूसरा है भोज्य पदार्थ-वाहक नाली। ये तत्त्व आपस में एक दूसरे से सूक्ष्म सुरंगों द्वारा मिले रहते हैं। इन ठोस, फिर भी मध्य में छेद-युक्त तथा इधर-उधर चारों ओर, तत्त्वों की अनेक पतली नालियाँ होती हैं जो आपस में मिली रहती हैं तथा तत्त्वों की संधिकारक यानी उन्हें आपस में जोड़ती है। यह सब प्रत्येक क्रिया विशेषकर काष्ठ के विकास के लिए होती है।

(Tracheid) रस-नाली—यह काष्ठ के विकास के लिए प्रचुर मात्रा में पदार्थ एकत्रित करता है। इसकी आकृति धुरी अथवा टेकुआ की तरह लम्बी होती है। परन्तु इसके अंतिम ओर-छोर नुकीले या शुण्डाकार नहीं होते हैं। ये लम्बे लम्बे रेशे के साथ समानान्तर काष्ठ के धरातल पर होते हैं। इनके ही मध्य में ठीक इन्हीं के रास्ते

में कुछ अधिक मोटाई लिए हुए किरणें भी बनती हैं। जैसा कि चित्र नं० १ में दिखाया गया है। चित्र नं० ५ को देखने से यह ज्ञात होता है कि मौसिमों यानी बसंत ऋतु तथा गर्मी ऋतु के प्रभाव से उनकी आकृति में परिवर्त्तन हो गया है। बसंत में तत्त्वों की दीवालें पतली होती हैं और रस-नाली का पार्श्व-रूप वर्गाकार होता है। परन्तु गर्मी में ये दीवारें मोटी हो जाती हैं तथा पार्श्व-रूप ( Side Section ) भी बदल जाता है। बसंत ऋतु में रस ( Sap ) तेजी तथा आधिक्य रूप में काष्ठ में वर्त्तमान प्रवाहित रहता है। इस समय वह पतला रस रहता है। परन्तु जब कि गर्मी के कारण से रस सूख कर गाढ़ा हो जाता है तथा रस नीचे की ओर लौटने लगता है तो उस समय के रस में अधिक मात्रा में

अपेक्षतया उत्पादक सामग्री रहती है। इसलिए इस समय तत्त्वों की दीवारें मोटी हो जाती हैं।

बसंत में दीवारों के पतली होने का कारण—यह समय अधिक मात्रा में रस रखता है। काष्ठ के तन्तु तथा वृक्ष के अंकुर, प्रशाखायें सबलता के साथ अपने को दीर्घ करने, बढ़ने में तैयार रहते हैं। इसके लिए अधिक रस की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए इस समय तने के रगें जो कि रस-नाली वर्तमान रहती हैं अधिक तेजी के साथ रस को ऊपर ले जाती हैं। इसलिए इस समय रस-नाली का छेद आवश्यकतानुसार अपने घेरे में बढ़ जाता है और दीवार पतली होती हैं। इस तरह काष्ठ का विकास होता है। रस-नाली में दो प्रकार की सुरंगें होती हैं।

१. संधिकारक सुरंग (Simple pit) जो कि तत्त्व की दीवार में गोल अथवा वर्गाकार लम्बी दरारें होती हैं। यह सुरंग अपने द्वारा विशेष रस से पासवर्त्ती तत्त्व को सम्बद्ध करती है। इसलिए उसे 'संधिकारक सुरंग' कहते हैं। इन मिले हुए तत्त्वों के संधि के मध्य एक पतला पर्त होता है।

२. निर्गम सुरंग (Projected pit)—इसको 'प्रलम्बित सुरंग' भी कह सकते हैं। यह एक क्षेत्र है जो कि पतली दीवारों से बनता है। इसकी आकृति वृत्ताकार है। यह पतले क्षेत्र से गुम्बजाकार, बर्हिगत (Projected), असली सुरंग को ढकता हुआ, केवल गुम्बज के मध्य में एक सुराख छोड़ देता है। इस तरह बाहर से वह धरातल पर दो एकेन्द्रिक वृत्त (concentric circle) की तरह दिखाई पड़ता है। इनमें बहुत रूपान्तरीकरण होता रहता है।

दूसरा भोज्य-वाहिकानली (Parenchyma):-नरम काष्ठ में पायी जाने वाली, पतली नली है। यह छोटी तथा समानान्तर चतुर्भुजाकार आकृति (rectangular) की होती है जैसा कि चित्र नं० २ में दिखाया गया है। ये रस-नली से आबद्ध रहते हैं। ये तत्त्व किरणों को बनाते हैं। किरणें वास्तव में अपेक्षतया अधिक चौड़े तत्त्व हैं। किरणों का कार्य भोजन-सामग्री एकत्रित करना है। कभी कभी राल भी। परन्तु राल के लिए तो विशेषतया दूसरी नहरें तथा गड्ढे होते हैं।

कड़ा काष्ठ—इसकी बनावट अपेक्षतया अधिक गुँथी हुई होती है। अधिकतया काष्ठ अनेक सूक्ष्म तन्तुओं के

कड़ा-काष्ठ का पार्श्व खंड
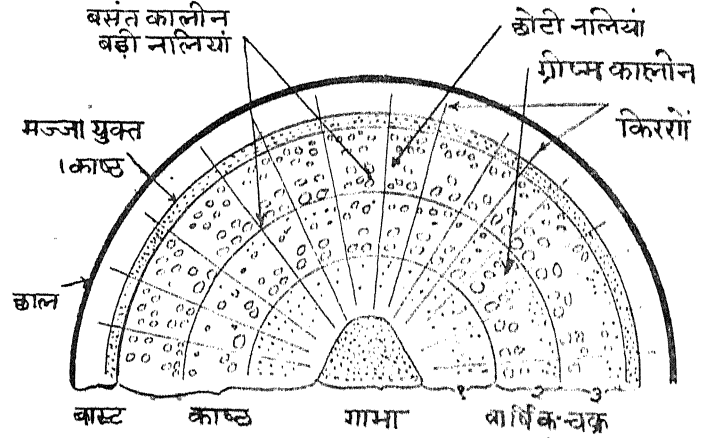
संमिश्रण से ही बनता है। जिनका रूप रस नाली के तत्त्व के समान मिलता जुलता होता है। ये किरण युक्त कतारों में होते हैं। इनके दोनों किनारे नुकीले होते हैं। परन्तु लम्बाई कुछ छोटी होती है। इनके पार्श्व-रूप में भी एक पतला रन्ध्र होता है। क्योंकि इनका कार्य भी आत्म-चालित (Mechanical) है।

दूसरे तत्त्व जो कि नरम काष्ठ में नहीं दिखाई पड़ते हैं रगें (Vessels) हैं। ये रगें अपेक्षतया चौड़ी होती हैं। तथा यह आपस में एक दूसरे पर चढ़ती हुई एक अच्छी नलिका (Tube) बनाती हैं। इनका अंतिम छोर नुकीला न होकर मोटा गोल होता है। इस तत्त्व तथा दूसरे प्रत्येक तत्त्व में एक विशेष भेद यह है कि अन्य दूसरे तत्त्वों का किनारा मुंदा हुआ होता है और केवल उनके पार्श्व काट कर देखने में ही मध्य सूराख दिखाई पड़ता है। परन्तु इस नली का किनारा अपने छेद को खुला ही छोड़ देता है। जैसे कि चित्र नं० ४ में दिखाया गया है।

ये नलियाँ यदि काष्ठ को धरातल के समानान्तर काटा जाय यानी ( longitudinal section or tangential ) स्पर्श-रेखीय खड़े, तो दिखाई पड़ती हैं। जैसा कि चित्र नं० १ में है। ये बड़ी हो सकती हैं लम्बाई में। यदि इन्हें नंगी आँखों से देखा जाय तो केवल पतली रेखा की तरह दिखाई पड़ती हैं। इनका काम है रस को जड़ से ऊपर शिखर ( Top ) तक पहुँचाना।

## पेड़ का विकास

वार्षिक चक्र—बसंत ऋतु में पहले पतली तत्त्वों की दीवार बनाते हैं। उस समय उनमें बड़ी बड़ी अपेक्षतया तत्त्वों के रन्ध्र होते हैं। पश्चात् ग्रीष्म-काष्ठ में मोटा तथा स्थायी, पूर्ण वार्षिक चक्र बन जाता है। इन दोनों भिन्न भिन्न ऋतुओं के काष्ठ के मध्य में एक गहरा निशान बन जाता है जैसा कि चित्र नं० १ के पार्श्व-खंड में दिखाया गया है। पेड़ में रस के साथ पानी, जो विविध प्रकार नमक ( लावण्यपदार्थों ) में मिला हुआ होता है, ऊपर की ओर दौड़ता है। यह पत्तियों तक पहुँच जाता है। वहाँ पर सूर्य-किरणों के संसर्ग से मिठास ( शक्कर ) पैदा होती है। इस तरह भोजन तैयार होता है। इससे काष्ठ ऊपर तथा वृत्ताकार दोनों ओर विकास करता है। इस भोज्य-पदार्थ का कुछ हिस्सा जड़ में भी पहुँच जाता और उनको जीवित रखता है। जब पेड़ ऊपर बढ़ता है तो उसके लक्षण छोटी छोटी ( twigs ) टहनियों में कलियों ( bud ) के रूप दिखाई पड़ते हैं। जहाँ पर तत्त्व अलग करके तथा बढ़ाकर एक नया रन्ध्र बनाता है। उसे वृत्ताकार विकास (growth in diameter) कहते हैं जो कि शरीर के चमड़े-सा बढ़ता है। यह एक नया परत छिलके (Bark) के नीचे होता है। इसको ( Cambium ) कहते हैं।

इस तरह इस क्रिया के बाद तत्त्व आन्तरिक भाग की काष्ठ के रूप में परिणित होते जाते हैं और बाह्य भाग अभी Bast यानी छाल ही बना रहता है। काष्ठ-धर्म ( Properties of Timber ) :—१. आत्मचालित-धर्म—(Mechanical Properties) को कई भागों में बाँटा गया है। क-मोड़धर्म(Bending) की मात्रा को ज्ञात करने के लिए दो उपाय काम में लाए जाते हैं। पहला Statics bending test जिसमें कि पदार्थों की गुरुता का ज्ञान कराया जाता है। इसको पदार्थों के भार परिमाण का शास्त्र कहते हैं। इसको हिन्दी में 'तौल-रीति' कहा जा सकता है। इस शास्त्र के अनुसार हम काष्ठ की अधिक से अधिक शक्ति का पता लगाते हैं। इसको "टूटन मापांक" (Modulus of rupture) कहते हैं! इस 'मापांक' से बहुधा धरन, बल्ला, शहतीर की शक्ति का पता लगाते हैं। विशेषकर जब कि शहतीर पर सीमेन्ट का पलास्टर करना हो तब प्रथम इस मापांक को अवश्य ज्ञात कर लेना चाहिए। दूसरा 'टक्करी मोड़ शक्ति' (Impact bending test) इस रीति के द्वारा यह पता लगाया जाता कि अचानक आई चोटको सहन करने में काष्ठ कितना शक्तिशाली है। इसको बहुधा चिमड़ापन ( Toughness ) कहा जाता है। जैसे हाकी को बनाने वाले काष्ठ में यह ज्ञात किया जाता है कि उसमें आए गेंद के टक्कर को सहन करने की कितनी क्षमता है। इस शास्त्रानुसार काष्ठ बहुधा खेल का सामान बनाया जाता है।

२. दबाव शक्ति (Compression strength) इससे यह पता लगाया जाता है कि लकड़ी अपने से नीचे के पदार्थों पर कितना दबाव डालती है।

३. दबाव या सम्पीडन शक्ति (Shearing strength ) यह ज्ञात करना कि ग्रेन के साथकाष्ठ कितना भार-वहन कर सकता है। चूलों को बनाते समय इसका ख्याल करना चाहिए—कि ऊपर से उनपर कितना भार पड़ता है।

४. कठोरता (Hardness ) यह ज्ञात करना कि काष्ठ में कितना मजबूतीपन है।

५. फटन-शक्ति (Cleavage strength) से यह ज्ञात होता है कि रेशे के साथ काष्ठ को फटने में क्या शक्ति है।

६. तनाव-शक्ति (Ten-sile strength ) के द्वारा रेशे के साथ खिंचाव सहन करने को काष्ठ-शक्ति का ज्ञान करते हैं।

ताप-पृथग्न्यास ( Heat Iusulation ) —यह सिद्ध है कि वह काष्ठ जिसका तौल हलका है, वजनी काष्ठ की अपेक्षा अधिक ताप—पृथग्न्यासक है। यह इसलिए है कि हलके काष्ठ के तत्त्व पतली दीवार के तथा बड़ी खोखली रन्ध्रों के साथ रहते हैं। इस पोपली

काष्ठ धर्म



जगह में (Dead air) मरी वायु रहती है यह मरी हुई हवा का स्थान जो कि काष्ठ के आन्तरिक ताप को बाहर जाने में, 'प्रेषण' में विलम्ब लगाता है। यह ताप को अन्दर ही रोक रखता है। भारी लकड़ियों में अति अल्प मात्रा में यह मरी-वायु रहती है।

अग्नि-विरोधी-शक्ति ( Fire Resistance ) यद्यपि काष्ठ को अत्यधिक रूप में आग लगने वाला वस्तु समझा जाता है फिर भी भिन्न भिन्न काष्ठों में यह शक्ति कम व अधिक होती है। जैसे एक लकड़ी के छोटे से टुकड़े में, बड़ी मोटी लकड़ी की अपेक्षतया शीघ्रता से आग लग जाती है। ओक, जराह, पडूक, बर्माटीक, वालनट, भारती-सिलवर, ग्रेउड और ( २" मोटा नरम काष्ठ भी ) अग्नि-विरोधी शक्ति अधिक रखते हैं। इनका प्रयोग गृह निर्माण में होता है।

उत्तम काष्ठ—रंग कलसर गहरा, चमकीला, देदीप्य-मान धरातल, रवा बारीक ठोस, रेशे आपस में सम्बद्ध तथा संगठित, किरणें महीन ठोस, बुरादा बारीक, चिरान की जगह चिकनी कठोर, वार्षिक चक्र सँकरे सूक्ष्म, तौल भारी तथा टक्कर में सूक्ष्म छेद नहीं दिखाई दे।

हमारे यहाँ प्राचीन शास्त्रानुसार 'भृगुसंहिता' में उत्तम काष्ठ—"आर्जवः सावंतश्च दृढाश्च चिरजीविनः। वर्षा-वाताप सहा जलस्थल भवाश्चये।

तत्तदेशो द्भवा : शस्ता ग्राह्यःस्यु शिल्पकर्मसु।" तथा मसमत निम्नांकित विचार है :—

"स्निग्ध सार महासारा ह्यवक्रा-स्तरुणो तराः। अवक्रा निर्वणाः सर्व्वे गृहीत्व्या मही एहाः।" ( जिनके कुन्दे सरल, ठोस गाभे वाले, मजबूत, टिकाऊ, सर्दी-गर्मी और बाध्य जलवायु के प्रभाव को सहन करने में समक्ष, स्वदेशी, लोचदार ( elastic ) और ताजे हों, तथा जिनमें टेढ़ापन या गाँठ आदि न हो, उन पेड़ों का काष्ठ काष्ठ-शिल्पकार के लिए प्रयोगार्ह है!)

## पेड़ काटने का समय :—

पहला पश्चिमी ( योरपीय ) देशों का विचार :—कोई भी ठीक उस समय ही काटना चाहिए जब कि काष्ठ का रस कहीं स्थिर रुका हो। जब अत्यधिक ग्रीष्म अथवा

ठीक ग्रीष्म काल के मध्य में ही सेप इस दशा में रहता है। उस समय भी नहीं काटना चाहिए जब कि रस नीचे की ओर लौट कर आ रहा हो। या जाड़े में भी नहीं काटना चाहिए जबकि रस पूर्णतया नीचे उतर चुका हो। किसी तरह भी शीत काल ही लकड़ी काटने का सबसे उपयुक्त समय है। क्योंकि इस समय सह्य तापमान रहता है। यदि गर्मी में लकड़ी काटी जाय तो उसकी नमी शीघ्रता से बाहर निकलेगी। इसलिए लकड़ी में फटासें तथा सिकुड़न आदि कई खराबियां आ जायेंगी। इस तरह गर्मी में काटे हुए काष्ट से उसका तौल भी अधिक मात्रा में भाप बनकर उड़ जायगा। अस्तु शीतकाल प्रत्येक दृष्टि से उपयुक्त माना गया है। जिस काष्ट में अधिक मात्रा में रस होता है वह टिकाऊ नहीं होता है। तथा उसपर जलवायु का प्रभाव इतना पड़ता है कि फटना, घूमना ऐंठना आदि साधारण बातें हो जाती हैं।

बहुधा वसंत के प्रारम्भ में ही पेड़ की छाल को हटा दिया जाता है जैसे ओक का। क्योंकि इसकी छाल कामोप युक्त होती है। इसके पश्चात् आगे प्रथम आने वाले शीत काल में पेड़ काटे जाते हैं। ऐसा समझा जाता है कि इस छाल को हटाने से काष्ठ का विकास वृत्ताकार पहले से अधिक हो जाता है। बहुधा भिन्न भिन्न पेड़ों के काटने का समय भी भिन्न होता है।

## प्राचीन भारत शास्त्रीय-मत

"उपक्रामेत, तांच्छेत्तम् यथा कामं वनस्पतीम्।"-(यपमत) शास्त्रीय-मतानुसार ग्रीष्म-काल का उत्तरायण काल ही लकड़ी काटने का उपयुक्त अवसर है। क्योंकि वसंत-काल में तो अधिक मात्रा तथा शीत काल में गाढ़े रूप में रस काष्ठ के अन्दर व्याप्त रहता है। इस समय पेड़ काटा जाय तो उसमें रस की अधिकता से उत्साहित होकर कई प्रकार के कीड़े काष्ठ पर आक्रमण करेंगे। इस तरह काष्ठ में घुन लग जायगा। हेमन्त में भी जब रस का आवागमन जारी रहता है लकड़ी नहीं काटना चाहिए।

वास्तव में जब कि काष्ठ-शुष्कीकरण वैज्ञानिक रीति से करना हो तब तक तो शीतकाल उपयुक्त है। परन्तु हमारे यहाँ शास्त्र कहता है कि यदि काष्ठ को ग्रीष्मकाल में काटा जायगा तो उस समय के रस में नमकीन कई पदार्थों का संमिश्रण कम मात्रा में अपेक्षतया और समय के रहता है। इसलिए इसमें किसी अन्य हानिकारक पदार्थों के आक्रमण की सम्भावना नहीं रहती। जब काष्ठ काटकर पानी में रखा जायगा तो उसका सेप पानी के साथ बह जायगा। उसके पश्चात् सुखाई हुई लकड़ी में घुन लगने की भी कम सम्भावना रहती है।

---

# अप्राकृतिक गर्भाधान प्रणाली

कैमब्रिज स्थित कृषि स्कूल में अनेकों विस्मयजनक परीक्षायें की जा चुकी हैं जिनमें से एक लगभग सफलता-पूर्वक समाप्त हो गई है। वहाँ की एक गाय, कुछ महीनों में एक बछवे को जन्म देगी पर वह उसकी वास्तविक माँ नहीं है।

इस स्कूल के डायरेक्टर डा० हमोन्ड और अनेक सहायकों ने यह पता लगा लिया है कि शरीर के भीतरी पुष्टिकर एक रसायनिक तत्त्व और अप्राकृतिक गर्भाधान के प्रयोग द्वारा एक चुनी हुई उत्तम गाय एक समय में २० बछवे तक दे सकती है। ऐसी गाय स्वयं जन्म न देकर, सुई की नोक के बराबर अन्डे देती है, जिन्हें इसके पेट से निकाल कर अन्य गायों के पेट में छोड़ दिया जाता है। वे अन्डे नकली माँ के पेट में पलकर बछओं के रूप में उत्पन्न हो जाते हैं। कैमब्रिज की ऐसी एक गाय को यही एक पुरस्कार मिलेगा कि उसके पेट की औलाद का बीज बढ़िया नसल के माता पिता की देन है।

इस नवीन विकास से बहुत सी आशायें हैं। वे गायें जो एक दिन में सेर दो सेर दूध भी नहीं दे सकतीं, उन्हें बछवे देने लायक बनाने पर प्रतिदिन ६ या ७ गैलन तक दूध की प्राप्ति हो सकती है। चौपायों की जाति में अप्राकृतिक गर्भाधान प्रणाली द्वारा अधिक उन्नति हो सकेगी जबकि प्राकृतिक ढङ्ग से सीमित वृद्धि होती है। वृद्धि और सुधार के लिये और भी अनेक अद्भुत विधियाँ काम में लाई जा रही हैं।

इन अनुसन्धानों से यह भी पता चला है कि अधिकांश पशु दिन के चढ़ते-ढलते प्रकाश को देखकर उपयुक्त गर्भाधान समय का निर्णय कर लेते हैं। विभिन्न पशुओं पर ऐसी परीक्षायें करके देखा गया है कि नकली प्रकाश द्वारा एक भेड़ को धोका देकर अकाल में भी मेमने देने योग्य बनाया जा सकता है। इस विधि द्वारा वर्ष में दो बार मेमने पैदा हो सकेंगे और भविष्य में संसार की भेड़ों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हो जायेगी। इन अमूल्य खोजों से हर देश लाभ उठा सकता है।

# पान

पं० सभाकान्त झा शास्त्री सं० सम्पादक "सचित्र आयुर्वेद"

पान खाने की प्रथा भारतवर्ष में दिन-दिन बढ़ती जा रही है। अमीर, गरीब, शिक्षित, अशिक्षित सभी लोगों में पान खाने का प्रचार बहुतायत से देखा जाता है। पान खाने की प्रथा इतनी जोर से बढ़ रही है कि जिन लोगों को प्रतिदिन पेट भर भोजन मिलने में भी सन्देह रहता है वे भी अपने दैनिक भोजन में से पान के लिये कुछ पैसे अवश्य बचा लेते हैं। आप अन्दाज लगा सकते हैं, जब गरीबों की यह हालत है तो श्रीमानों की क्या दशा होगी।

पान एक मांगलिक वस्तु भी है। जितने भी मांगलिक कार्य (विवाह, उपनयन, मुण्डन आदि) होते हैं। सब में पान की आवश्यकता होती है।

इसकी खेती-मद्रास बङ्गाल, बनारस, महोवा, राँची, मालवा, बिहार आदि प्रान्तों में बहुत होती है। इन सब पानों में बनारस का पान सब से अच्छा माना जाता है।

## पान के गुण

ताम्बूलं कटुतिक्त मुष्णमधुरं क्षारं कषायान्वितम्
वातघ्नं कृमिनाशनं कफहरं दुःखस्य विच्छेदनम्।
स्त्री संभाषण भूषणं धृतिकरं कमाग्नि सन्दीपनम्
ताम्बूले निहिता त्रयोदशगुणा स्वर्गेऽपि ते दुर्लभा।

अर्थात् पान चरपरा, कड़वा, गरम, मधुर, क्षार-गुणयुक्त, कषैला, तथा वात, कृमि, कफ और दुःख को नाश करने वाला, स्त्री संभाषण के विषय में अलंकार के समान है, तथा धारण शक्ति और काम शक्ति को बढ़ाता है। पान में ये तेरह गुण हैं।

पुराना पान—सरस, रुचिकारक, सुगन्धित, तीक्ष्ण, मधुर, हृदय को हितकारी, जठराग्नि को दीप्त करने वाला कामोद्दीपक, बलकारक, दस्तावर और मुख को शुद्ध करने वाला है।

नवीन पान—त्रिदोष कारक, दाह उत्पन्न करने वाला, विरेचक और वामक है। वही पान यदि बहुत दिनों तक जल से भींगा हुआ हो, तो अच्छा होता है, अर्थात् रुचिवर्द्धक, शरीर के वर्ण को सुन्दर बनाने वाला तथा त्रिदोषनाशक हो जाता है।

पान का उपयोग कफ प्रधान रोगों में विशेष रूप से होता है, खास करके दमा, फुफ्फुसनलिका की सूजन और श्वासमार्ग की सूजन में इसका रस पिलाया जाता है। और इसके पत्ते को गरम करके छाती पर बाँधते हैं। बच्चों की सरदी में भी पान के ऊपर जरा सा अरण्डी का तैल लगाकर उनको जरा गर्म करके छाती पर बाँध देते हैं जिससे बच्चों की घबराहट कम हो जाती है और सर्दी का वेग भी घट जाता है।

सुश्रुत के मतानुसार—यह सुगन्धित, शक्तिदायक पेट के अफारे को दूर करने वाला और उत्तेजक है। यह श्वास में मधुरता लाता है। आवाज को ठीक करता है। मुँह की दुर्गन्ध को मिटाता है, इसका रस कफज बीमारियों में दी जाने वाली दवाओं के अनुपान रूप में दिया जाता है। आयुर्वेदीय बहुत सी दवाइयाँ भी इसके साथ घोट कर बनायी जाती हैं। उड़ीसा में पान की जड़ का उपयोग गर्भ नष्ट करने के लिये किया जाता है।

## पान खाने की आदत--

अन्य नशीली वस्तुओं की तरह पान को भी लगातार खाते रहने से इसे खाने की आदत पड़ जाती है। जो लोग पहली बार पान खाते हैं उनके मस्तिष्क पर कुछ खास प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं। यथा कुछ बेचैनी, मूर्च्छा, उत्तेजना, पसीना बहना इत्यादि स्वाभाविक लक्षण देखने में आते हैं। परन्तु ये सब बातें शुरू में ही दिखाई देती हैं, कुछ अभ्यास हो जाने के बाद ये शिकायतें नहीं रहती हैं।

पान खाने वाले को पान खाने के बाद कुछ ताजगी मालूम होती है, तबियत खुश हो जाती है, मन प्रफुल्लित हो जाता है, शरीर की शिथिलता दूर हो जाती है, भूख और प्यास कुछ देर के लिये शान्त हो जाती है और कामेच्छा की प्रवृत्ति में कुछ स्थायित्व आ जाता है।

पान खाने की आदत उन जातियों में अधिक होती है, जिनके भोजन में "कार्बो हाईड्रेट" की मात्रा विशेष होती है, अर्थात् जो चावल, दाल, मछली आदि विशेष मात्रा में खाया करते हैं, पान के चूसने पर लार विशेष निकलती है जिससे पाचन-क्रिया प्रणाली को मदद मिलती है।

अधिक तादाद में पान खाने से दन्तरोग उत्पन्न हो जाते हैं; और साथ ही शरीर, आँख, बाल, कान, वर्ण, बल और जठराग्नि को नाश होने की सम्भावना रहती है। क्योंकि अधिक पान खाने से रासायनिक मिश्रणों का शरीर में अधिक संचय हो जाता है। जो शरीर के लिये हितकर नहीं होता परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि पान सर्वथा हानिकारक ही है। क्योंकि इसमें अनेक उपयोगी गुण भी मौजूद है।

पान चरपरा, गरम, रुचिवर्द्धक, कसैला और दस्तावर, कामोद्दीपक, मुखदुर्गन्ध नाशक है, तथा वायु और थकावट को दूर करने वाला है, मुख में स्वच्छता-सुगन्धि, कान्ति-और सुन्दरता उत्पन्न करता है, मुख से लार बहने को रोकता है। गले के दर्द को दूर करता हैं।

पान में पड़ने वाले मसालों में चूना कफ और वात को नाशक करता है। कत्था कफ और पित्तनाशक है। ये दोनों पान के साथ मिलते ही त्रिदोष नाशक हो जाते हैं। सुपारी—भारी, शीतल रूखी, कसैली, कफ और पित्तनाशक, अग्निप्रदीपक, रुचिकारक और मुख की विरसता नाशक है। नयी सुपारी हानिकारक होती है, अतः पुरानी ही सुपारी खानी चाहिये और पान के साथ कम मात्रा में खानी चाहिये। अकेली सुपारी कभी नहीं खानी चाहिये। उसके साथ में यदि पान न हो तो लवँग, छोटी इलायची, सौंफ आदि इसमें से किसी एक को वा सब को एक साथ मिलाकर खाने से अच्छा रहता है।

पान में चूने से दुगुना कत्था और थोड़ी सुपारी डाल कर खायें। यदि पान में सरसों बराबर कपूर डाल दें तो शीतल, पुष्टिकारक, नेत्रों को हितकारी मुँह का स्वाद ठीक करने वाले गुणों से युक्त होता है। यदि थोड़ी मात्रा में केशर या कस्तूरी मिला कर खाया जाय तो विशेष गुणयुक्त हो जाता है। कस्तूरी वीर्य्यवर्द्धक, मुख सौगन्ध्य कारक और गर्म होती है। पान के साथ जायफल और जावित्री भी खाये जाते हैं, जायफल हल्का, स्वर के लिये गुणदायक अग्निदीपक और पाचक है। जावित्री हल्की, गर्म और कफनाशक है। इसके अतिरिक्त लौंग भी पड़ती है। लौंग अग्निवर्द्धक, खाँसी वमन, शूल, आफरा आदि नाशक है। छोटी इलायची भी पान के मसालों में एक सुन्दर चीज है, यह कफ, श्वास, खाँसी मूत्रकृच्छ्र नाशक है। अर्थात् पान सब प्रकार के रोगनाशक है।

पान विधिपूर्वक मसाले डालकर खाना चाहिये। बाजारू पान खाना या पान में अधिक चूना या सुगन्धित नकली मासाला डाल कर खाना हानिकारक है।

पान लगाने से पूर्व पान की नोक, पान का डंठल तथा पान के बीच की नस निकाल कर फेंक देना चाहिये। ये हानिकारक होते हैं।

प्रातः १० बजे तक पान खाना हो तो कत्था और चूना से ज्यादा सुपारी रखे। दोपहर में कत्था ज्यादा दे तथा रात को चूना का भाग विशेष देना चाहिये।

आयुर्वेद में पान खाने का निम्नलिखित समय बताया है।

"रतौ सुप्तोत्थिते स्नाते भुक्ते वान्ते च संगरे।
सभायां विदुषां मध्ये कुर्यात्ताम्बूल भक्षणम् ॥

**पान का दुरुपयोग**—किन्तु आजकल उपरोक्त लाभ के अभिप्रायार्थ इसका व्यवहार नहीं करते, वे इसके हानि-लाभ पर ध्यान न देते हुए दिन भर पान चबाना ही अपना लक्ष्य समझते हैं।

आजकल लोग जिस तरह दिन भर पान चबाया करते हैं उस तरह से पान खाने (चबाने) से गुण नहीं करता। बल्कि इससे लाभ की जगह हानि ही होती है। अधिक पान खाने से स्वास्थ्य की जोर भयंकर हानि होती है उसकी तरफ आजकल लोग जरा भी ध्यान नहीं देते हैं। इस समय जो घर-घर दाँतों की बीमारी देखी जाती है वह प्रायः अधिक पान खाने का ही परिणाम है। कई चिकित्सकों का मत है कि पान के अनुचितरूप से ज्यादे सेवन से दृष्टि मन्द हो जाती है। और जठराग्नि मन्द हो पाचनक्रिया में गड़बड़ी होने लगती है।

पान के विशेष दुरुपयोग से फेफड़े और मसूड़े कमजोर हो जाते हैं दाँत कमजोर होकर गिरने लगते हैं, दाँत गिर जाने के बाद वह स्थान अत्यन्त निर्बल हो जाता है। पान सुपारी का मैल इकट्ठा होकर दाँतों पर जम जाते हैं। और उन्हें अत्यन्त गन्दा बना देते हैं, ज्यादे मैल जम जाने से मसूड़ों से पीव आना प्रारम्भ हो जाता है। परिणाम यह होता है कि दाँत कमजोर हो जल्दी गिरने लगते हैं, साथ ही पेट भी खराब हो जाते हैं।

कुछ लोग पान के साथ साथ जर्दा खाने की आदी होते हैं। पान के साथ जर्दा खाने से और भी अधिक हानि होती है, जो लोग जर्दा खाते हैं, उन्हें भोजन करने की इच्छा कम रहती है। पान और जर्दे का बचा हुआ अन्श दाँतों के बीच में अपने रहने का स्थान बना लेता है और धीरे-धीरे जब ज्यादे दाँत खराब हो जाते हैं तो उनमें मवाद निकलने लगता है। फलस्वरूप दाँत बदरंग होकर नष्ट हो जाते हैं, अधिक पान खाने से दाँतों की पंक्ति काली पड़ जाती है। तथा दाँतों की जड़ें शिथिल हो जाती हैं। जीभ का प्राकृतिक स्वाद नष्ट हो जाता है। अधिक पान खाने वालों की जिह्वा कुछ मोटी हो जाती है और उसे मुँह का प्राकृतिक आस्वादन की मधुरता जाती रहती है।

स्त्रियों के अधिक पान-तम्बाकू खाने की आदत से वे २०-२५ वर्ष में अपनी युवावस्था को गवाँ बैठती हैं। उनके कोमल ओष्ठों की स्वाभाविक लाली नष्ट होकर ओष्ठ कर्कश और काले हो जाते हैं, तथा अकाल में ही दाँत गिरने लगते हैं, दोनों गाल भीतर घुस जाते हैं, चेहरा शिथिल और कान्तिहीन दिखाई देने लगता है, और मुख की कोमल त्वचा सिकुड़ कर मुख बुरा मालुम होने लगता है, इस कारण उन पर जवानी में ही बुढ़ापा आ जाता है।

पान के अधिक अभ्यास से पाकस्थली और आँतों की भीतरी पाचक रसस्राव ग्रन्थियाँ नष्ट हो जाती हैं, उक्त पाचक रस के क्षीण होने से दुस्तर अजीर्ण रोग उत्पन्न हो जाता है, पाकस्थली तथा आँतों की शक्ति का ह्रास होने की वजह से खाये हुए अन्न अच्छी तरह नहीं पचते अतः कोष्ठकाठिन्यता और आमाशय सम्बन्धी अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

## पान के विशेष गुण

इसके खाने से कफ जल्दी सूख जाता है। जरा-सा सिरदर्द करने लगे या नाक से पानी बहने लगे, तो ऐसे जुकाम में चार पान का पत्ता लेकर इसका रस निकाल कर उसे कुनकुना करके पीने से जुकाम अच्छा हो जाता है। जिनको दिन भर कफ गिरता हो, उन्हें दिन में ३ बार, २ चम्मच पान के रस पीने से बहुत लाभ होता है, पान श्वास और दमा को भी दबाता है। जिन्हें दमा उखड़ा हो वे पके पान में इलायची के दाने मिला

कर उन्हें मुँह में रख धीरे-धीरे रस चूसते रहें तो जैसे जैसे पेट में रस जायगा वैसे वेसे दमा का दौरा भी कम होता जायगा। किसी भी कारण से मुँह में से बदबू आती हो तो पके पान में कंकोल का चूर्ण मिलाकर थोड़ी जावित्री और थोड़ा कपूर पिपरमेंट मिला धीरे-धीरे चबाता रहे, कुछ दिन तक इसका व्यवहार करने के मुँह की बदबू दूर हो जाती है।

पान के बीच की नसें वामक और कफ निःसारक होती है, अतः यदि कफ ज्यादा होकर बाहर नहीं निकालता हो तो पान की नस निकाल कर उसका रस एक चम्मच भर ले और उसमें थोड़ी सी शक्कर (चीनी) मिलाकर पीने से कफ पतला होकर बाहर निकलने लगता है, पका पान दस्तावर होता है, जो लोग पके पान रोज खाते हैं उन्हें दस्त में कब्जियत नहीं होती, बराबर साफ दस्त आता है। पके पान का डंठल भी दस्तावर होता है। छोटे बच्चों के गुदद्वार पर अच्छे पके पान के डंठल को थोड़ा सा घी मिला कर घुमाने से आसानी से दस्त आ जाते हैं।

पान वातघ्न भी होता है। अतः वातजन्य उन्मादवाले को अच्छे पके पान का रस दिन भर में २-३ चम्मच जरा सा घी मिला कर देने से वायु का वेग कम हो जाता है। अकारण ही शरीर में थकावट या शरीर में झिनझिनाहट मालूम हो शरीर में दर्द हो, तो ऐसा वात-विकारों में पान के रस में बराबर अदरक का रस और थोड़ी सी हींग तथा घृत मिला कर सुबह शाम देने से उपरोक्त वातजन्य उपद्रव नष्ट हो जाते हैं।

शरीर के किसी भी भाग में गाँठे उठ जाने से, उस पर पान का रस मल देने से सूजन बैठ जाती है। सूजन के ऊपर भी पान गरम कर बाँधने की चाल है। क्योंकि यह शरीरस्थ विकृत जलांश को शोषण कर खींच लेते है।

पान से गला साफ होता है। गले में कफ जम जाने के कारण तकलीफ होती हो तो २ चम्मच भर पान के रस में थोड़ी सी काली मिर्च मिलाकर पीने से गला साफ हो जाता है। आवाज बिगड़ जाने पर भी पान से आवाज साफ हो जाती है स्वर भङ्ग में ५ पान लेकर उसमें ५ काली मिर्च मिला करके धीरे-धीरे उसका रस चूसता रहे तो स्वर भङ्ग (आवाज बैठ जाना) दूर होकर साफ आवाज निकलने लगेगी।

सूखी खांसी (वातज कास) हो जाने पर दो पान के पत्तों में थोड़ा सा कत्था मिलाकर धीरे-धीरे इसके रस चूसने से खाँसी रुक जाती है। पान बलवर्द्धक भी है, यदि नियमित रूप से और समय पर पान का सेवन किया जाय तो ताकत बढ़ती है, खासकर वात और कफजन्य रोग होकर छूट जाने के बाद जो कमजोरी रोगी के शरीर में रहती है, उसके लिये पके पान का सेवन बहुत लाभदायक है।

पान कामवर्द्धक होता है, जिनकी कामशक्ति कम हो गयी हो वे भी उपरोक्त तरह से पान के सेवन से लाभ उठा सकते हैं। ताकत और कामवृद्धि के लिये निम्न प्रकार से पान के बीड़ा बना कर खायें।

अच्छे पके पान लेकर उसमें १ रत्ती अच्छा चूना ३ रत्ती खैर और उसमें आधी सुपारी काटकर डाले, इस प्रकार बनाये हुये पान भोजन के बाद २-३ बार खाने से बल बढ़ता है और कामोद्दीपन भी होता है।

पान विषघ्न भी है। कोई भी जहरीला जीव काट खाय या बदन के नीचे दब जाय तो पान का रस कटी हुई जगह पर मल देने से आराम हो जाता है, साथ ही पान के रस में पान की जड़ मिलाकर पिलाने से साधारण जहरीला साँप का विष दूर हो जाता है।

जो जखम बहुत दिन का हो, उसमें से बदबू आती हो तो पान के पत्ते को पीसकर उसमें थोड़ा सा घी मिला और हल्दी मिलाकर कुनकुना करके जखम के ऊपर पुल्टिस बाँध देने से जखम अच्छी हो जाती है।

---

# विज्ञान में विलम्ब

हमें बहुत ही दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि हमारे प्रयत्नों पर भी हम विज्ञान को ठीक समय पर प्रकाशित नहीं कर पा रहे हैं। जैसा कि हम पिछले दो अंकों में लिख चुके हैं कि पहले तो हमारी कठिनाई कागज के अभाव के कारण थी और फिर प्रेस की कठिनाई खड़ी हो गई। प्रेस को सरकारी काम तथा कोर्स की पुस्तकें छापना अधिक लाभदायक होता है और इस कारण विज्ञान को सब कार्य हो जाने के पश्चात् छापना ही ठीक समझते हैं। चार पाँच माह से यही मुख्य कारण है जिससे विज्ञान पिछड़ गया है। इस बीच में हम दो तीन प्रेस बदल चुके हैं। अब हमें आशा है कि एक दो माह में विज्ञान का प्रकाशन ठीक समय पर होने लगेगा। हमारे बहुत से सभ्य तथा ग्राहक इस विलम्ब के कारण ऊब उठे हैं। परन्तु हम उनसे प्रार्थना करते हैं कि वे एक दो माह और धैर्य रखें। इसके लिए हम अपने प्रेमी पाठकों से हाथ जोड़ कर क्षमा चाहते हैं।

ग्राहकों से निवेदन है कि पत्र-व्यवहार के समय अपना ग्राहक नम्बर देने की कृपा किया करें।

**हीरालाल दुबे**
प्रधान मंत्री

**डाक्टर श्री रंजन** ( सभापति )

प्रो० सालिगराम भार्गव तथा डा० धीरेन्द्र वर्मा ( उप सभापति ) डा० हीरालाल दूबे (प्रधान मंत्री )

श्री महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव तथा डा० रामदास तिवारी ( मंत्री ) श्री हरिमोहन दास टंडन (कोषाध्यक्ष)

# विज्ञान-परिषद् की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकों की सम्पूर्ण सूची

१—**चुम्बक**—हाई स्कूल में पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी० सजि०; ।।।≈)

२—**सूर्य-सिद्धान्त**—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखने का सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१८; १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महाबीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; सजिल्द; दो भाग में, मूल्य ८)। इस भाष्य पर लेखक को हिन्दी साहित्य सम्मेलन का १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है।

३—**वैज्ञानिक परिमाण**—विज्ञान की विविध शाखाओं की इकाइयों की सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस-सी०, १)

४—**समीकरण मीमांसा**—गणित के एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।) द्वितीय भाग ।।≈),

५—**निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)**—गणित के एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमतीप्रसाद अग्निहोत्री बी० एस-सी० ; ।।।),

६—**बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित**—इंटरमीडियेट के गणित के विद्यार्थियों के लिये—ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी० , १।),

७—**गुरुदेव के साथ यात्रा**—डाक्टर जे० सी० बोस की यात्राओं का लोकप्रिय वर्णन ; ।≈)

८—**केदार-बद्री यात्रा**—केदारनाथ और बद्रीनाथ के यात्रियों के लिये उपयोगी; ।≈)

९—**वर्षा और वनस्पति**—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शंकरराव जोशी; ।≈)

१०—**विज्ञान का रजत जयन्ती अंक**—विज्ञान परिषद् के २५ वर्ष का इतिहास तथा विशेष लेखों का संग्रह; १)

११—**फल-संरक्षण**—दूसरा परिवर्धित संस्करण-फलों की डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनाने की अपूर्व पुस्तक; २१२ पृष्ट, २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री बीरेन्द्र नारायण सिंह एम० एस-सी०; २।।)

१२—**व्यङ्ग-चित्रण**—(कार्टून बनाने की विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी एम० ए०; १७५ पृष्ठ; सैकड़ों चित्र, सजिल्द; २)

१३—**मिट्टी के बरतन**—चीनी मिट्टी के बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र; सजिल्द; २)

१४—**वायुमंडल**—ऊपरी वायुमंडल का सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र सजिल्द; २)

१५—**लकड़ी पर पालिश**—पालिश करने के नवीन और पुराने सभी ढंगोंका ब्योरेवार वर्णन । इससे कोई भी पालिश करना सीख सकता है—ले डा० गोरखप्रसाद और श्रीरामरतन भटनागर, एम०, ए०; २१८ पृष्ठ; ३१ चित्र, सजिल्द; २)

१६—**उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर**—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश, आकार बड़ा विज्ञान के बराबर २६० पृष्ठ, २००० नुसखे, १०० चित्र; एक-एक नुसखे से सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हजारों रुपये कमाये जा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थ के लिये उपयोगी; मूल्य अजिल्द २।।)

१७—**कलम-पैबंद**—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ५० चित्र; मालियों, मालिकों और कृपकों के लिये उपयोगी; सजिल्द; २)

१८—**जिल्दसाज़ी**—क्रियात्मक और ब्योरेवार। इससे सभी जिल्दसाज़ी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०; १८० पृष्ठ, ६२ चित्र; सजिल्द २),

१६—त्रिफला—दूसरा परिवर्धित संस्करण-प्रत्येक वैद्य और गृहस्थ के लिये—ले० श्री रामेश वेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ; ३ चित्र, एक रङ्गीन; सजिल्द २।।≈)

यह पुस्तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय, की १३ श्रेणी के लिए द्रव्यगुण के स्वाध्याय पुस्तक के रूप में शिक्षापटल में स्वीकृत हो चुकी है।"

२०—तैरना—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगों को बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद पृष्ठ १०४ मूल्य १),

२१—अंजीर—लेखक श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, अंजीर का विशद वर्णन और उपयोग करने की रीति। पृष्ठ ४२, दो चित्र, मूल्य ।≈)

यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय के शिक्षापटल में स्वीकृत हो चुकी है।

२२—सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओं के विचित्र संसार, पेड़ पौधों की अचरज-भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र और तारों की जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिष के संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञान के आकार के ४५० पृष्ठ और ३२० चित्रों से सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द मूल्य ६)

२३—वायुमण्डल की सूक्ष्म हवाएँ—ले० डा० सन्त-प्रसाद टंडन, डी० फिल० मूल्य ।।।)

२४—खाद्य और स्वास्थ्य—ले० श्री डा० ओंकारनाथ परती, एम० एस-सी०, डी० फिल० मूल्य ।।।)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं:—

२५—विज्ञान हस्तामलक—ले० स्व० रामदास गौड़ एम० ए० भारतीय भाषाओं में अपने ढग का यह निराला ग्रंथ है। इसमें सीधी सादी भाषा में अठारह वैज्ञानों की रोचक कहानी है। सुन्दर सादे और रंगीन पौने दो सौ चित्रों से सुसज्जित है, आज तक की अद्भुत बातों का मनोमोहक वर्णन है, विश्व-विद्यालयों में भी पढ़ाये जाने वाले विषयों का समावेश है, अकेली यह एक पुस्तक विज्ञान की एक समूची लैब्रेरी है, एक ही ग्रंथ में विज्ञान का एक विश्वविद्यालय है। मूल्य ६)

२६—भारतीय वैज्ञानिक—१२ भारतीय वैज्ञानिकों की जीवनियाँ; ले० श्री श्यामनारायण कपूर, सचित्र ३८० पृष्ठ; सजिल्द; मूल्य ३।।) अजिल्द ३)

२७—वैक्युम-ब्रेक—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवे में काम करने वाले फिटरों इंजन-ड्राइवरों, फोरमैनों और कैरेज एग्ज़ामिनरों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ; ३१ चित्र जिनमें कई रंगीन हैं, २),

# विज्ञान - परिषद् बेली रोड, इलाहाबाद

मुद्रक—जगतनारायण लाल हिन्दी साहित्य प्रेस प्रयाग। प्रकाशक—विज्ञान-परिषद्, बेली रोड, इलाहाबाद

भाग ६८
ख्या ४, ५, ६

संवत् २००५,
जनवरी, फरवरी, मार्च १९४९

[ एक संख्या का मूल्य ।)

वार्षिक मूल्य ३) ]

**श्री हरिश्चन्द्र आई० सी० एस०, जज, प्रयाग हाईकोर्ट** ( सभापति )
प्रो० सालिगराम भार्गव तथा डा० श्री रंजन ( उप सभापति ) डा० हीरालाल दुबे (प्रधान मंत्री )
डा० रामदास तिवारी तथा श्री महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव ( मंत्री ) श्री हरिमोहन दास टंडन (कोषाध्यक्ष

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and
Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

प्रधान सम्पादक
श्री रामचरण मेहरोत्रा
विशेष सम्पादक

डाक्टर सत्यप्रकाश — डाक्टर विशंभरनाथ श्रीवास्तव
डाक्टर गोरखप्रसाद — डाक्टर ब्रजकिशोर मालवीय

प्रयाग की

## विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

### परिषद् का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

### परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमंत्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे, जिन के द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

### सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिये वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशन में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित, परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों, विवरणों इत्यादि के बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उन का प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायेंगे।

## विषय-सूची

# विज्ञान

विज्ञान-परिषद्, प्रयाग का मुख्य-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ६८ | सम्वत् २००५ जनवरी-फरवरी-मार्च १९४९ | संख्या ४-५-६


# अखिल भारतीय विज्ञान काँग्रेस का ३६वाँ अधिवेशन

## पं० नेहरू द्वारा उद्घाटन

अखिल भारतीय विज्ञान काँग्रेस का ३६वाँ अधिवेशन मनोनीत सभापति सर के० एस० कृष्णन के तत्त्वावधान में ३ जनवरी, १९४९ को अपरान्ह में प्रयाग विश्वविद्यालय के सीनेट हॉल में बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुआ। इस अधिवेशन में लगभग ६०० वैज्ञानिक उपस्थित थे। अमेरिका, यूनाइटेड किंग्डम, फ्रांस आदि देशों के प्रतिनिधियों ने भी इस सम्मेलन में भाग लिया।

आरम्भ में विज्ञान काँग्रेस अधिवेशन की संरक्षिका श्रीमती सरोजिनी नायडू, ने भारत-मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू तथा सर के० एस० कृष्णन और आगत व्यक्तियों का हृदय से स्वागत किया।

### पं० गोविन्दवल्लभ पन्त का स्वागत भाषण

युक्त-प्रान्त के प्रधान मंत्री पं० गोविन्दवल्लभ पन्त ने सभी प्रतिनिधियों का विज्ञान-काँग्रेस की स्वागत समिति की ओर से स्वागत किया। आगन्तुकों का स्वागत करते हुए आपने कहा—"विज्ञान ने इस संसार में अत्यन्त आश्चर्य-जनक कार्य्य किये हैं और मानव-जीवन का कोई भी पहलू आज ऐसा नहीं है जो इसके प्रभाव से वंचित रह गया हो। वैज्ञानिक आविष्कारों की दृष्टि से यद्यपि हम अनेक देशों से पिछड़े हुए हैं परन्तु इस पिछड़े रहने का कारण भारतीयों की बुद्धि-विकास की कमी नहीं है, प्रत्युत शताब्दियों पुरानी राजनैतिक पराधीनता थी जिसके कारण सामाजिक और आर्थिक अवस्था

शोचनीय हो चुकी थी। ऐसी परिस्थितियों में विज्ञान की प्रगति होना सम्भव नहीं था। अतः भारत को स्वतन्त्रता मिल जाने पर अपनी पिछड़ी हुई परिस्थिति के अभावों को अपनी प्रगति की सम्पन्नता द्वारा पूरा करना है। इसी दृष्टि से भारत-सरकार ने सच्ची लगन और भावना के साथ विज्ञान-सम्बन्धी यह कार्य्य अपने हाथ में ले लिया है। विज्ञान में एकीकरण की अद्भुत शक्ति है और यह विज्ञान का ही चमत्कार है कि मानव के लिए यह वृहत् संसार आज इतना छोटा रह गया है।"

## पंडित नेहरू का भाषण

माननीय पं० जवाहरलाल नेहरू ने उद्घाटन समारोह सम्पन्न करते हुए लगभग ४० मिनट तक भाषण दिया और समस्त वैज्ञानिकों तथा आगन्तुक प्रतिनिधियों का भारत-सरकार की ओर ही से नहीं प्रत्युत इलाहाबाद का नागरिक होने के नाते भी उनका स्वागत किया। उन्होंने भारत-सरकार की ओर से आश्वासन दिलाया कि भारत-सरकार वैज्ञानिकों की प्रगति और सफलता में अत्यन्त ही दिलचस्पी ले रही है। उन्होंने सर सी० वी० रमन के लिए दीर्घायु के लिए कामना की। पं० नेहरू ने अपने भाषण में कहा कि—"उन्हें एक चीज बहुत तंग कर रही है और वह है संसार की वर्त्तमान स्थिति। आज संसार की स्थिति अत्यन्त दयनीय है। इस असफलता का मूल कारण आप चाहे नैतिक संकट बतलावें अथवा विच्छृंखलीकरण बतलावें; किन्तु यह सत्य है और ध्रुव सत्य है कि कुछ ऐसी चीज़ अवश्य है जो गलत है और सारे संसार को निश्चित रूप से गलत रास्ते पर ले जा रही है।

यह सत्य है कि विज्ञान ने बड़ी प्रगति की है, और यह भी सत्य है कि ऐसे व्यक्तियों की भी कमी नहीं है जिनमें सद्भावना है, प्रतिभा है, समझदारी है; फिर भी यह एक प्रगट सत्य है कि संसार एक निरन्तर गलत मार्ग पर ही अग्रसर हो रहा है। वैज्ञानिक प्रगति के साथ ही मानव-मस्तिष्क की भी सापेक्षित प्रगति नहीं हुई है। अब भी हम लोग निरन्तर सङ्कुचित दृष्टिकोण सोचने और विचारने के आदी हैं और सदा गुटबन्दी को सामने रख कर बातें करते हैं। वैज्ञानिक का एक भावना-प्रधान और विचारशील जीवन है, अस्तु उसे संसार की इस स्थिति पर विशेष ध्यान देना चाहिए। अतः वैज्ञानिकों का यह पुनीत कर्त्तव्य है कि वे नये-नये आविष्कारों के साथ ही इस बात का भी विचार रखें कि लोगों के मस्तिष्क का भी सम्पूर्ण विकास हो रहा है। वैज्ञानिकों को अपनी गुण-सम्पन्नता पर ध्यान देना चाहिए, परिमाण पर नहीं। मैं आपसे पीछे जाने के लिए नहीं कहता। पीछे जाने का अर्थ नष्ट हो जाना है। इस बात की प्रत्येक चेष्टा होनी चाहिए कि जो कुछ प्राप्त हो गया है उसकी पूर्णतः रक्षा की जावेगी और उसे अधिकाधिक बढ़ाने का निरन्तर उद्योग; किन्तु इसके साथ ही प्रगति को सन्तुलित बनाए रखने की भी आवश्यकता है। यह सन्तुलन प्रत्येक क्षेत्र में आवश्यक है। आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों में तो इस सन्तुलन की आवश्यकता है ही साथ ही यही सन्तुलन मानव जाति की मानसिक स्थिति में भी होना चाहिए।

आत्म-संघर्ष का कुप्रभाव सभी क्षेत्रों पर समान रूप से पड़ा है और इस असन्तुलन से बड़ी हानि हुई है, अस्तु वैज्ञानिकों का अन्वेषक होने के नाते यह परम कर्त्तव्य है कि वे इस बात का पता चलावें कि आखिर इस संघर्ष का मूल कारण क्या है? इस संघर्ष का कारण दूर करके उन्हें चाहिए कि वे खोए हुए सन्तुलन को पुनः स्थापित करें। यही विश्व की सबसे बड़ी आवश्यकता है।"

नेहरू जी ने आगे चल कर कहा कि—"आजकल हम एक ऐसे युग में रह रहे हैं कि जिसमें अधिकांश व्यक्ति विज्ञान के सम्बन्ध में ही चर्चा करते हैं। ये लोग विज्ञान की सफलता और प्रगति की सराहना करते हैं। ऐसे लोग केवल विज्ञान की चर्चा मात्र करना ही जानते हैं। इसमें तो तनिक भी सन्देह नहीं कि विज्ञान ने बहुत काम किया है और इसमें भी सन्देह नहीं कि विज्ञान सम्बन्धी अन्वेषणों और आविष्कारों का उपयोग किया जाना भी अत्यन्त आवश्यक है। मैं तो सरकार और नागरिक दोनों की ओर से यह अनुभव करता हूँ कि वैज्ञानिक क्षेत्र में अभी बहुत काम किए जाने आवश्यक

हैं। हम अपनी अनेक समस्याओं को बिना विज्ञान की सहायता से हल नहीं कर सकते हैं। भारत-सरकार विज्ञान की खोजों और विकास के लिए सम्पूर्ण सुविधाएँ और अवसर प्रदान करेगी, किन्तु विज्ञान की वास्तविक आवश्यकता रुपया-पैसा, विद्यालय अथवा सरकारी सुविधाएँ ही नहीं है, प्रत्युत आवश्यकता इस बात की है कि योग्य तथा ठीक-ठीक प्रकार के व्यक्ति इस क्षेत्र में प्रविष्ठ होवें।

विगत कुछ वर्षों में हमने विज्ञान की बातचीत ही अधिक की हैं, किन्तु मेरा विचार है कि भारत की वैज्ञानिक स्थिति ऐसी नहीं है जो वास्तव में होनी चाहिए। अतः मैं यह आवश्यक समझता हूँ कि व्यर्थ के कामों की अपेक्षा जो लाभ-प्रद हों और जो मानवता को ठीक-ठीक रास्ते पर ला सकें उनकी ओर ध्यान देना चाहिए।"

## विज्ञान काँग्रेस के सभापति का भाषण

अन्त में विज्ञान-काँग्रेस अधिवेशन के मनोनीत सभापति सर के० एस० कृष्णन ने भाषण देते हुए कहा कि भारत-सरकार पं० जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक अणु-शक्ति कमीशन की नियुक्ति कर रही है। उन्होंने कहा कि अणु-शक्ति का महत्त्व अब अत्यन्त बढ़ गया है और इसलिए यह उचित ही है कि इस सम्बध में खोज के लिए विशेष प्रबन्ध किया जाय। अध्यक्ष ने यह भी बतलाया कि भारत-सरकार सर सी० वी० रमन की देख-भाल में एक वैज्ञानिक विद्यालय की स्थापना करने जा रही है।

अन्त में अध्यक्ष ने आगन्तुक विदेशी वैज्ञानिकों का परिचय भी कराया। जो वैज्ञानिक आये थे उनमें प्रोफ़ेसर चैपमैन, प्रोफ़ेसर बर्लिंघम, प्रोफ़ेसर बालफ़ोर तथा प्रो० जिज्ञासु थे।

---

# सर कार्यमाणिक्कम श्रीनिवास कृष्णन्

## विज्ञान सम्मेलन के ३६वें अधिवेशन के सभापति

लेखक—डा० रामचरण मेहरोत्रा

प्रोफ़ेसर कृष्णन् पिछले साल अप्रैल में राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला के डाइरेक्टर का पद स्वीकार करने के पूर्व लगभग ५ वर्ष तक प्रयाग विश्वविद्यालय के भौतिक विभाग के आचार्य के आसन को सुशोभित करते रहे और इस अल्प काल में ही अपने सरल स्वभाव तथा आकर्षक व्यक्तित्व के कारण वे हर क्षेत्र में सर्व-प्रिय हो गए थे। इस अवसर पर जब वे प्रयाग में होने वाले विज्ञान-सम्मेलन के अधिवेशन में सभापति का आसन ग्रहण कर रहे हैं, हम सब उनके पुराने मित्र तथा सहयोगी उनका हृदय से स्वागत करते हैं।

श्री कार्यमाणिक्कम श्रीनिवास कृष्णन् का जन्म ४ दिसम्बर सन् १८९८ को दक्षिण भारत के वात्रप नगर में हुआ। अपनी प्रारम्भिक शिक्षा वात्रप तथा श्री विल्लीपुत्तुर के हिन्दू हाई स्कूलों में हुई। मद्रास क्रिश्चियन कालेज से बी० ए० पास करके वह उच्च शिक्षा के लिए कलकत्ते गए और वहाँ कालेज आफ़ सांइस में आचार्य रमन के पास अध्ययन एवं अन्वेषण करके १९२१ में अपनी शिक्षा समाप्त की। आचार्य रमन ने इन्हीं दो वर्षों के सम्पर्क से इस नवयुवक विद्यार्थी की प्रतिभा

श्री कृष्णन् के गुरु
सर सी० वी० रमन

का पता पा लिया था और वे तभी से चाहते थे कि यह मेधावी युवक वैज्ञानिक अनुसंधानों में लग कर भारत का गौरव बढ़ाए। परन्तु आर्थिक परिस्थितियों के कारण श्री कृष्णन् को मद्रास क्रिश्चियन कालेज में

डा० सर कार्यमाणिक्कम श्रीनिवास कृष्णन्

नौकरी करनी पड़ी। यहाँ आप रसायन-शास्त्र में निर्देशक नियुक्त हुए। इस काल में आपने रसायन-शास्त्र का गूढ़ अध्ययन किया और इस काल में अर्जित रसायन-शास्त्र का यह ज्ञान इन्हें अपने अगले अनुसंधानों में बड़ा ही सहायक हुआ।

## वैज्ञानिक अनुसंधान

परन्तु कृष्णन् का हृदय संतुष्ट न था वह कोई अच्छा अवसर ढूंढ रहे थे कि अपना सब समय वैज्ञानिक अनुसंधानों में लगा सकें। शीघ्र ही उन्हें यह सुअवसर मिल गया। डाक्टर अमृतलाल सरकार के बाद आचार्य रमन 'इंडियन ऐसोसिएशन फ़ार दि कल्टीवेशन आफ़ साइंस, कलकत्ता' के अवैतनिक मंत्री निर्वाचित किए गए। आचार्य रमन ने यह अवसर पाते ही श्रीकृष्णन् को अपने पास बुला लिया और नवम्बर १९२३ में कृष्णन् मद्रास क्रिश्चियन कालेज की नौकरी छोड़कर कलकत्ता पहुँचे। वहाँ आपके अनुसंधान कार्य का श्री गणेश हुआ।

आचार्य रमन के सम्पर्क में रहकर आपने १९२३ से १९२८ तक अनुसंधान-कार्य किया। इन्हीं दिनों के कार्य के फलस्वरूप आचार्य रमन की ख्याति संसार में फैल गई। इन सभी अनुसंधानों में श्री कृष्णन् का विशेष हाथ रहा है। आचार्य रमन के जगत-प्रसिद्ध 'रमन प्रभाव' सम्बन्धी अन्वेषण कार्य में भी आपको उनके सहकारी होने का गौरव प्राप्त हुआ। रमन के साथ ही आपकी ख्याति भी देश-विदेश में फैलने लगी और पत्रिकाओं में आपके अनुसंधानों के लिए प्रशंसा-पत्र छपने लगे। आचार्य रमन के साथ संयुक्त कार्य करने के अतिरिक्त आप इस काल में भी स्वतंत्र भौतिक कार्य करते रहे। इस काल में आपका स्वतंत्र अध्ययन मणिमय तथा चुम्बकीय रसायन पर हुआ।

कलकत्ते में आचार्य रमन के साथ पाँच वर्ष तक कार्य करने के बाद आपको ढाका विश्वविद्यालय में भौतिक विज्ञान का रीडर नियुक्त किया गया। यहाँ स्वतंत्र अनुसंधान करने तथा विद्यार्थियों का नेतृत्व करने का अवसर प्राप्त हुआ। इस काल में आपकी वैज्ञानिक प्रतिभा निखर उठी। यहाँ आपका विशेष अध्ययन मणियों के चुम्बकीय गुणों पर केन्द्रित था। इन अनुसंधानों के फल रायल सोसाइटी के फ़िलासिफ़िकल ट्रांज़ेक्शन में एक विशेष लेखमाला के रूप में प्रकाशित हुए।

सन् १९३६ में आपको एक बार फिर एसोसिएशन आफ़ साइंस वापस जाने का अवसर मिला। आचार्य रमन के बंगलौर चले जाने के बाद आप वहाँ के डाइरेक्टर नियुक्त किए गए। रमन के सम्पर्क के कारण एसोसिएशन की ख्याति बहुत ही उच्च कोटि की थी। श्री कृष्णन् ने इस ख्याति में किंचित भी कमी न आने दी। इनके लगभग सभी विद्यार्थी इनके साथ ढाका से कलकत्ते चले आए और वहाँ अपने विद्यार्थियों के साथ अपनी नई लगन के साथ अनुसन्धान कार्य जारी रक्खा। इस काल में आपने अपने चुम्बकीय अध्ययन को अधिक विस्तृत किया और साथ ही साथ अति निम्न तापक्रमों पर ताप गति के सिद्धान्त पर भी बड़ा गहरा अध्ययन किया। इस समय तक आपके स्वतंत्र अन्वेषणों तथा अनुसन्धानों की ख्याति भी सर्वत्र फैल चुकी थी। परन्तु इस बढ़ती हुई ख्याति ने आपके कार्य में

किसी प्रकार की कमी न आने दी वरन् आप नित्य ही ज़्यादा लगन से अपने कार्य में संलग्न रहे।

## विदेश-यात्रा

सन् १९३६ में आप प्रथम बार विदेश गए। वारसा में होने वाली वैज्ञानिकों की एक अन्तर्राष्ट्रीय कानफ्रेंस में आप ने 'सुरभित अणुओं की प्रतिदीप्ति' पर एक उत्कृष्ट अन्वेषण निबन्ध पढ़ा। इस निबन्ध से आपकी ख्याति बहुत दूर दूर तक फैल गई। १९३७ में आपने कैम्ब्रिज की कैवेंडिश प्रयोग-शाला, लन्दन की रायल इंस्टीट्यूट और लीज की भौतिक विज्ञानशाला में अपने अन्वेषणों पर भाषण दिए। लीज में आपको विश्वविद्यालय द्वारा एक विशेष पदक से भी सम्मानित किया गया।

१९३९ में आपको राष्ट्र संघ की ओर से आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय बौद्धिक सहयोग समिति की कार्यवाही में भाग लेने के लिये आमन्त्रित किया गया। इस अवसर पर आपने स्ट्रासवर्ग में अपने चुम्बकीय अध्ययनों पर बड़ा ही ओजस्वी भाषण दिया और इसके अतिरिक्त आप इंगलैण्ड तथा योरप के विभिन्न विश्वविद्यालयों में गये और वहाँ पर आपने भाषण देकर विदेशियों के सम्मुख भारत को गौरवान्वित किया।

डाक्टर कृष्णन् केवल एक कुशल अनुसन्धानकर्त्ता ही नहीं है, वरन् इनके भाषण बड़े ही लोकप्रिय होते हैं। आपके भाषणों में गहन अध्ययन की छाप तो होती ही है परन्तु साथ ही साथ कठिन से कठिन विषय को सरल रूप में श्रोतागणों को समझा देने की अद्भुत क्षमता भी आप में विद्यमान है। आप स्वभाव से बड़े ही सरल तथा विनोदी हैं और अपने भाषणों के बीच में जो अपनी विनोदप्रियता का परिचय देते हैं, उससे आपके भाषण बड़े ही लोक-प्रिय बन जाते हैं। इन गुणों से आपकी ख्याति और भी तेजी से बढ़ने लगी। अभी तक विदेशी वैज्ञानिक केवल आपके अनुसन्धान विषयक निबन्धों को पढ़कर ही आपकी प्रतिभा का पता पाते थे, परन्तु आपके भाषणों से वे बहुत ही प्रभावित हुए और इस ख्याति के फलस्वरूप शीघ्र ही १९४० में ब्रिटेन की रायल सोसायटी ने आँपको अपना सभ्य निर्वाचित किया। आप भारत के छटे सपूत हैं जिनको यह सम्मान मिला।

## देश में सम्मान

अपने देश में भी आपका बहुत सम्मान होने लगा और अब आपकी गणना सर्व-प्रमुख वैज्ञानिकों में होने लगी। सन् १९४० में आपको भारतीय विज्ञान सम्मेलन के भौतिक विज्ञान विभाग का सभापति निर्वाचित किया गया और इस अवसर पर दिया गया आपका भाषण आपके अनुसंधान-विषयक निबन्धों में बहुत प्रसिद्ध है। इसी वर्ष आपको कलकत्ते में अद्दरचन्द्र मुकर्जी भाषण देने को निमंत्रित किया गया और अगले वर्ष १९४१ में आपने पटना विश्वविद्यालय में सुखराज रे रीडरशिप भाषण दिए। इसी वर्ष आपको कृष्ण जुबली पदक द्वारा सम्मानित किया गया।

कलकत्ते में ९ वर्ष रहने के बाद आपको १९४२ में प्रयाग विश्वविद्यालय में आचार्य के पद के लिये आमंत्रित किया गया। मार्च १९४२ से अप्रैल १९४७ तक आपने इस पद को सुशोभित किया। यहां भी आपने बहुत से शिष्यों को वैज्ञानिक अनुसंधान की प्रेरणा दी। प्रयाग के शिष्यों में प्रमुख डाक्टर अवधबिहारी भाटिया, डा० देवेन्द्र शर्मा तथा श्री अजितकुमार जी वर्मा हैं। आपकी सहायता से डा० भाटिया ने 'धातुओं तथा धातु-संकरों के कुछ असामान्य गुणों पर जो मौलिक कार्य्य किया है, वह बहुत ही उच्चकोटि का है।

१९४६ में आपको भारतीय सरकार ने योरप तथा अमरीका भ्रमण करने भेजा। आपके इस भ्रमण का मुख्य उद्देश्य भौतिक विज्ञान में होने वाले नवीन अनुसंधानों से परिचय पाना था। आप लगभग ८ मास योरप तथा अमरीका का भ्रमण करके दिसम्बर १९४६ में भारत लौटे। इसी काल में आपने रायल सोसायटी द्वारा आयोजित इम्पायर साइंटिफिक कान्फ्रेंस में भी भारतीय सरकार के प्रतिनिधि की हैसियत से भाग लिया। जून १९४६ में आपके वैज्ञानिक अनुसंधान के सम्मानस्वरूप आपको 'सर' की पदवी दी गई। अगले वर्ष के आरंभ में आपने नवीन-स्थापित राष्ट्रीय भौतिक प्रयोग शाला के निर्देशक के पद

को स्वीकार कर लिया। अक्टूबर १९४८ में आप पेरिस में होने वाली चुम्बकीय मणिभि-वैज्ञानिकों की सभा में भाग लेने के लिए योरप गये और इस अवसर पर भी आपने ब्रिटेन तथा योरप के प्रमुख अनुसंधान केन्द्रों में भाषण दिये। योरप के इस भ्रमण से आप अभी थोड़े ही दिन पहिले-भारतवर्ष वापस आए हैं।

## विज्ञापन से कोसों दूर

प्रोफेसर कृष्णन् भारत के सर्वोच्च वैज्ञानिकों में तो हैं ही, परन्तु अपने इस गहरे ज्ञान को इतनी सरलता तथा सादगी से वहन करते हैं कि आश्चर्य होता है। ख्याति के उच्च शिखर पर पहुँच कर भी आपको घमण्ड छू भी नहीं गया है। आत्म-विज्ञापन से आप आज भी कोसों दूर भागते हैं। आप आज भी इतने क्रियाशील तथा फुरतीले हैं कि अपने नवयुवक विद्यार्थियों को मात करते हैं। आपने चुम्बकीय गुणों का विशेष अध्ययन किया है, शायद इसी से आपकी व्यक्तिगत चुम्बकीय शक्ति बहुत बढ़ गयी है। हर सभा में, हर सोसायटी में आप सबको अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। आपकी रुचि बहुत ही विस्तृत है। विज्ञानाचार्य होते हुए भी आप विविध विषयों में बहुत दिलचस्पी लेते हैं। किसी भी विषय पर बात कीजिए आपका ज्ञान बहुत ही विस्तृत प्रतीत होता है। संस्कृत के अच्छे पंडित हैं और प्राचीन भारतीय सभ्यता के बारे में आपका अध्ययन गहरा है। हर स्थिति में आप प्रमुख रहते हैं, ब्रिज तथा टेनिस के आप विशेष शौकीन हैं। आपके ब्रिज के साथी भी मुक्तकंठ से आपकी प्रशंसा करते हैं। कुछ वर्ष पहिले प्रयाग में आपने टेनिस की अखिल भारतीय प्रतियोगिता में भाग लिया था। आप जीवन की कला जानते हैं और उसके हर पहलू में दिलचस्पी रखते हैं।

आपको विज्ञान से अटूट तथा प्रगाढ़ प्रेम है; उसमें स्वार्थपरता की झलक भी नहीं है। आप गुणों के कुशल पारखी हैं और बहुत शीघ्र ही विद्यार्थियों की मेधावी शक्ति का सही अनुमान लगा लेते हैं, परन्तु अपने अच्छे से अच्छे विद्यार्थियों को निजी स्वार्थ से अपने साथ ही कार्य करने की सम्मति नहीं देते। यदि देखते हैं कि किसी अन्य वैज्ञानिक के साथ या किसी दूसरी प्रयोग शाला में कोई विद्यार्थी अधिक अच्छा अनुसंधान कार्य कर सकता है तो उसे वहीं जाकर काम करने को बाध्य करते हैं। आपके प्रयाग के विद्यार्थियों में डाक्टर हरीश-चन्द्र आजकल प्रिंसेटन में बहुत ही प्रमुख कार्य कर रहे हैं और यह आप ही की प्रेरणा का फल है कि हरीश जी एम० एस-सी० करने के बाद डाक्टर भाबा के पास बंगलौर गए और वहाँ से कैम्ब्रिज और फिर प्रिंसेटन के लिए प्रस्थान किया।

## वैज्ञानिक संस्थाओं में सहयोग

आप विज्ञान के क्षेत्रों में सहकारिता तथा सहयोग का महत्त्व जानते हैं। दुःख का विषय है कि भारत अन्य क्षेत्रों की तरह वैज्ञानिक क्षेत्र में भी पारस्परिक वैमनस्य से हानि उठा रहा है। इस वैमनस्य को दूर करने के लिए आप सदैव प्रयत्नशील रहते हैं और भारत की विभिन्न वैज्ञानिक संस्थाओं के परस्पर सहयोग के लिये आप दीर्घकाल से इच्छुक हैं। इंडियन साइंस कांग्रेस एसोसियेशन के अतिरिक्त भारतवर्ष में तीन वैज्ञानिक संस्थाएं प्रमुख हैं:—

(१) नेशनल इंस्टीट्यूट आफ साइंस, कलकत्ता (२) इंडियन एकाडमी आफ साइंस, बंगलौर तथा (३) नेशनल एकाडमी आफ़ साइंस, प्रयाग। आप इन तीनों के ही प्रमुख सदस्य हैं। १९४३-४४ में आप इन्डियन एकाडमी के उपसभापति थे। १९४५-४६ में आप नेशनल एकाडमी के सभापति रहे। यह आप ही के प्रयत्नों का फल है कि १९४५ तथा १९४६ में इंडियन तथा नेशनल एकाडमी के अधिवेशन संयुक्त हुए। इस प्रकार के संयुक्त अधिवेशनों में परस्पर विचार विनिमय से सब वैज्ञानिकों को बहुत ही लाभ होता है। आपकी इच्छा तो यह है कि यह तीनों संस्थाएं संयुक्त कार्य करें और इस दिशा में आप प्रयत्न भी करते रहे हैं।

यह हमारे सौभाग्य का विषय है कि स्वतंत्र भारत में होने वाले भारतीय विज्ञान सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन में सर का० श्री० कृष्णन् को ही प्रयाग के अधिवेशन के लिये सभापति चुना गया। हम कामना करते हैं कि

वैज्ञानिकों में पारस्परिक भ्रातृभाव तथा सहकारिता का पुजारी यह उदीयमान वैज्ञानिक अपने प्रयासों में सफल होकर भारतवर्ष की विभिन्न संस्थाओं के वैज्ञानिकों को एक ही मंच पर ले आने में सफल हो। इसी आशा की पूर्त्ति में देश के वैज्ञानिक-क्षेत्र का उज्ज्वल भविष्य निहित है।

---

# भारतीय भूमिविज्ञान का १४वां वार्षिकोत्सव

## डा० डी० एन० वाडिया सभापति के भाषण का सारांश

[ ब्रजनन्दन प्रसाद घिल्डियाल, एम० एस-सी० (एजी) ]

१४ वर्ष पहले कुछ उत्साही वैज्ञानिकों में जो कि अपनी दूरदर्शिता से इस देश के लिये भूमि-विज्ञान की महत्ता समझ चुके थे, एक भूमिविज्ञान की संस्था स्थापित करने का विचार उत्पन्न हुआ। ऐसा करने के लिये उन्हें आशावादी ही नहीं प्रत्युत उत्साही तथा विचारक होना भी आवश्यक था, चूँकि उस समय भूमि के विषय में बहुत ही संकुचित विचार दुनिया में प्रचलित थे और भूमि को उत्पादन तथा कर लगाने के लिये ही समझा जाता था। १९३५ ई० में तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय भूमिविज्ञान सम्मेलन (Third International Congress of Soil Science) ने भी इस संस्था की वृद्धि में सहायता दी। उस समय भारतीय कृषि-विभाग के कर्मचारी, रसायन, वनस्पति, भौतिक तथा भू-गर्भ विज्ञान के शास्त्रियों का, जो कि इस नई संस्था के सदस्य थे, एक प्रतिनिधि मन्डल अन्तर्राष्ट्रीय सभा में भाग लेने के लिये इंगलैन्ड गया। वहाँ जाकर उन्होंने इंगलैन्ड, वेल्स इत्यादि की हैमकालीन (glaciated) भूमि की रूप रेखा का अध्ययन किया। भूमिविज्ञान की सभा में अग्रगणनीय रूसी भूमिशास्त्रज्ञों की विचारधारा के बाद इंगलैन्ड में भूमि अध्ययन की उन्नति का तथा भूमिज्ञान का, अमरीकनों के द्वारा कृषि की वृद्धि में उपयोग इत्यादि का विस्तृत वर्णन तथा वाद-विवाद हुआ जिसका कि हमारे वैज्ञानिकों पर बहुत प्रभाव पड़ा। इन वैज्ञानिकों ने भारतवर्ष में लौटकर अपने अनुभव को देश के भूमिशास्त्र के अध्ययन में लगाया।

पिछले चौदह वर्षों में यदि उन्नति का अनुमान सरकारी कृषि, जंगल तथा दूसरे विभागों में और विश्वविद्यालयों में भूमि विज्ञान पर काम करने वालों से लगाया जाय तो कुछ कम नहीं है। प्रकाशित साहित्य भी समुचित है। फिर भी हमको अपनी प्रगति संसार की अन्वेषण की प्रगति के प्रसंग में देखनी चाहिये।

भूमिशास्त्र का विज्ञान प्रगतिशील है और योरप में रूसी वैज्ञानिकों के, पिछली शताब्दी के आखिरी वर्षों में, नींव डालने के बाद बड़े वेग से बढ़ा। यू० एस० ए० (U. S. A.) में भी विस्तीर्ण रूप से भूमिक्षरण (Soil Erosion) होने के कारण इसके अध्ययन की आवश्यकता समझी गई और भूमिशास्त्र के बहुत से अंशों में खूब वृद्धि हुई। इन सबकी तुलना में तो हमारा देश काफ़ी पिछड़ा हुआ है। इस कारण हमको यह विचार करना है कि हम कहाँ तक विदेशियों के अनुभव का अपने देश के वातावरण में प्रयोग कर सकते हैं। यद्यपि भूमि के उत्पादन, वृद्धि तथा पुष्टि के मुख्य तत्त्व तो सभी जलवायु तथा भूभागों में एक ही से रहेंगे परन्तु योरप तथा अमरीका की भूमियों का सूक्ष्म रूप से किया हुआ अध्ययन हमारी उष्ण आर्द्र देश की भूमियों के अन्वेषण में विशेष सहायक नहीं होगा। योरुपीय तथा उत्तरी यूरेशियन भूमि समूह भूगर्भ काल की प्लीस्टोसीन (Pleistocene Ice Age), हिम युग

के पीछे के हैं और लगभग ५०,००० वर्ष पुराने हैं। इसके अन्तर में हमारे देश के दक्षिणी पठार की भूमि करोड़ों वर्ष पुरानी है। ये भूमि अनेक युगों के प्रभाव से बार-बार बनती बिगड़ती रही हैं और योरुप, रूस तथा उत्तरी अमरीका के हिमकाल के बाद की भूमियों से सर्वथा भिन्न हैं। इस कारण यहाँ पोडसोलीकरण ( Podsolization ) इत्यादि क्रियाएँ जो कि योरुपीय भूमि की विशेषताएँ हैं नहीं पाई जातीं। ऐसी प्राकृतिक अवस्थायें सिर्फ़ पर्वतीय तथा जंगली भागों में ही दृष्टिगोचर होती हैं। गंगा-सिंधु की भूमि भी अपरिपुष्ट और आधुनिक है। यद्यपि यह भी हिमकाल के बाद की है परन्तु सर्वथा दूसरे वातावरण उष्ण कटिबन्ध में बनी है और इस कारण यह भी पोडसाली करण ( Podsolization ) और विशेष धरातलीय रूपरेखा से रहित है। ये भूमि कुछ कुछ विशेषताओं में योरुप की फ्लूवियो-ग्लेशियल ( Fluvio-glacial drift soil) भूमियों से मिलती-जुलती है क्योंकि गंगा और सिंधु द्वारा, यह भूमि प्लीस्टोसीन ( Pleistocene ) समय के बाद जमा की गई है। और इसके विपरीत यहाँ की लाल भूमियां ( lateritic soil ) तो योरुप के ठंडे देशों में हैं ही नहीं। इस प्रकार हमारे देश की भूमि योरुपीय तथा रूसी भूमियों से बहुत से आवश्यक रूपों में भिन्न है।

भारतवर्ष में विशेष रूप से दो भूमि भाग हैं। एक लाल तथा दूसरा काला भूमिभाग। ये लगभग दक्षिण में १२५,००० वर्ग मील से अधिक भाग में फैले हुए हैं। विशिष्ट रूप से इन दोनों भागों की विशेषताएँ, बंबई दक्षिण के बसाल्टिक ( Basaltic lava flows ) लावा प्रवाह जिनसे काली भूमि उत्पन्न हुई है और ग्रेनिटिक तथा नीसिक (granitic and gneissic) अम्लयुक्त चट्टानें जिनसे कि लाल मिट्टी की उत्पत्ति हुई है, इन दोनों से घटाई जा सकती हैं। इनका वांशिक भी इनके आधीन की बहुत सी भूमियों के अध्ययन से सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। इस प्रकार यद्यपि इन दोनों भागों के अधीन भूमियाँ जलवायु, वानस्पतिक तथा अन्य कारणों से एक दूसरे से बहुत कुछ मिल गई हैं और बहुत से स्थानीय भूमि भेद हो गये हैं परन्तु फिर भी ये भेद क्षारीय फेरो-मैगनीशियन ( Ferro-magnesian ) धातु तत्वों से एक वांशिक रूप तथा सिलिको एल्यूमिनस ( silico-alluminous ) तत्वों से दूसरे वांशिक रूप से सम्बन्धित हैं। और किसी भी दशा में काली या लाल मिट्टी अपनी क्षारीय परिवर्त्तनशक्ति ( base exchange ) या चिकनी मिट्टी ( clay ) के परिमाण में किसी भिन्न वंश से उत्पन्न होती हुई नहीं पाई गई है।

इन मूल भेदों के कारण काली तथा लाल भूमियाँ भारतीय भूमि कक्षा विभाजन में बहुत ही बड़ा भाग रखती हैं और इस कारण प्रत्येक भूमि अन्वेषक तथा भूमि नापक ( Soil Survey workers ) को इन भूमियों के उत्पत्ति का ध्यान रखना चाहिये। भारतवर्ष की अन्य शेष पठार के लेटराइट ( laterite ) के अनेक भेद तथा राजपूताना की मरुभूमियाँ हैं। ये दोनों भूमियाँ तुलनात्मक रूप से आधुनिक हैं और अभी कृषि सम्बन्धी उपयोग में नहीं लाई गई हैं। हवा, मानसून वर्षा तथा धरातल की ऊंचाई निचाई से ही इन भूमियों की वृद्धि होती है। फिर भी दोनों भूमियाँ वैज्ञानिक ढंग से प्रबन्ध करने पर काम में लाई जा सकती हैं।

भूमि के अध्ययन के मौलिक अन्वेषण की यथार्थ उपयोगिता का समझ लेना प्रत्येक विद्यार्थी तथा कृषि विभाग के वैज्ञानिक को आवश्यक है। तात्कालिक आर्थिक वृद्धि के लिये अन्वेषण से विशेष लाभ होने की सम्भावना नहीं होती। किसी भी उचित परिणाम पर पहुँचने के लिये विशेषतः भूमि जैसे कठिन मिश्रित विषय में एक पर्याप्त मात्रा में धैर्य- पूर्वक किए गए मौलिक अनुसन्धानों की आवश्यकता होती है। इस विषय के अध्ययन में विभिन्न भौतिक, रसायन, भूगर्भ, प्राण आदि शास्त्रों का भी उचित रूप में उपयोग करना चाहिये। कुछ ऐसे वैज्ञानिकों की भी आवश्यकता है जो कि अपने संकीर्ण विषय से बाहर और दूसरे डेटा (data) और स्टेटिसटिक्स ( Statistics ) को भी काम में ला सकें। भाग्यवश भारतवर्ष में इस विषय का अच्छा प्रारम्भ हुआ है। लगभग सब सूबों ने भूमि का

प्रारम्भिक नियमशील नाप जोख तथा अध्ययन आरम्भ कर दिया है। आकाश तथा वायु-विभाग ( Meteorological Department ) ने भी कृषि-विभाग से इस अध्ययन में संयुक्त रूप से काम करने का प्रबन्ध कर लिया है। ये सब भारत भूमि की उन्नति के लिये शुभ चिन्ह हैं।

अमरीका में १४ वर्ष बाद फिर अन्तर्राष्ट्रीय भूमि विधान की सभा ( International Congress of Soil Science ) को पुनर्जीवन देने का प्रयत्न किया जा रहा है। कार्यकारिणी की दूसरी बैठक १९५० ई० में होगी और आशा है कि हम लोगों को भी उससे लाभ होगा। हम लोगों से भी भारतीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के साथ साथ काम करने के बारे में प्रस्ताव मांगे हैं और हमारी कार्यकारिणी ने भी पारस्परिक सम्बन्ध के बारे में विचार प्रकट किए हैं। भारतीय संस्था ने इस नये साल से एक बुलेटिन प्रकाशित करने का आयोजन किया है और आशा है कि सदस्य अपने अन्वेषण कार्य के पत्रों को भेज कर सहायता करेंगे। संस्था के सदस्यों की संख्या भी अभी बहुत कम है, (९४) है। हमको सदस्यों के बढ़ाने में प्रयत्न करना चाहिए जिससे कि समुचित रूप से भूमि विज्ञान में वृद्धि हो सके।

---

# अखिल भारतीय भेषज सम्मेलन

## प्रयाग ( २ जनवरी १९४९ )

### माननीय श्री चन्द्रभानु गुप्त का उद्घाटन भाषण :

आपने मुझे इस अवसर पर यहाँ बुलाकर सब लोगों से मिलने का जो सुअवसर प्रदान किया है उसके लिए मैं आपका कृतज्ञ हूँ। जब मुझे आपका निमन्त्रण मिला था उस समय ऐसे सम्मेलन का उद्घाटन करने में मुझे संकोच हो रहा था। इसका मुख्य कारण यह था कि मैं न तो भेषज शास्त्र ( Pharmaceutical )...... विशेषज्ञ ही हूँ और न उससे भिज्ञ ही हूँ। फिर मैं ही क्यों यह चेष्टा करूँ और आपके बीच में आकर बोलूँ। परन्तु आपके मन्त्री महोदय ने बहुत आग्रह किया, कहा कि पिछले वर्षों में भी सूबे के स्वास्थ्य मन्त्री आप लोगों के बीच में आते रहे है। अतएव मैं इस कार्य में क्यों पिछड़ूँ ? यही कारण है कि मैं आपके मध्य बोलने का साहस कर रहा हूँ।

भारतवर्ष में भेषज ( Pharmacy ) व्यवसाय का अभी प्रारम्भ ही है। हमारे यहाँ वैद्यक (Medical) व्यवसाय की एक खास जगह रही है और इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि अब तक सरकार ने दवाइयों के व्यापार और उद्योग के बारे में उनकी सदैव राय ली है। और यह ठीक भी है। अगर आप मुझे आज्ञा दें तो मैं यह कहूँगा कि वैद्यक और फार्मेसी के पेशों में बाप बेटे का सा सम्बन्ध हैं। जैसे पिता अपने बच्चे के बचपन में उसकी उन्नति का ध्यान रखता है उसी तरह चूंकि अभी हमारे यह फार्मेसी का शैशव काल है अतएव यह स्वाभाविक ही है कि भेषज शास्त्र वेत्ता ( Pharmacists ) की उन्नति और भलाई से सम्बन्ध रखने वाले मामलों में चिकित्सकों की राय बराबर ली गई है।

इस समुदाय को यह बताने की मैं धृष्टता नहीं करूंगा कि भेषज शास्त्र ( Pharmacy ) का हमारे राष्ट्र के जीवन में क्या स्थान होना चाहिए, क्योंकि आप

में से हर एक उसकी अहमियत को महसूस करता है और आज जब हम स्वतन्त्र हो गए हैं, उसकी अहमियत का असली स्वरूप हमारी नजरों के सामने आ गया है। विदेशी शासन ने हमारे बीच बहुत सी चीजों को उभरने ही नहीं दिया प्रत्युत उन्होंने ऐसी चीजों को भी बढ़ने नहीं दिया जिनके विकास के लिए हमारे पास उचित मात्रा में साधन उपलब्ध थे। हम करोड़ों रुपये की दवाइयाँ विदेशों से मँगाते रहे हैं और आज भी बराबर मँगा रहे हैं। हमारे विदेशी शासकों ने उन दवाइयों को तैयार करने के लिए हमें प्रोत्साहन नहीं दिया और न उन्होंने देश में उन सुविधाओं को ही बढ़ाया जिनसे भेषज शास्त्र ( Pharmacy ) के विद्वान् उत्पन्न हो सकें। यही कारण है कि हमारा देश अब तक वर्ष में १४५ से अधिक योग्य भेषज शास्त्रवेत्ता (Pharmacists) पैदा करने की सुविधा नहीं दे सका है जब कि भोर ( Bhore ) कमेटी के मतानुसार देश को ऊँचा उठाने के लिए हमें भेषज शास्त्र ( Pharmacy ) के ६५,००० विद्वानों की आवश्यकता है। यह सच है कि चन्द देशभक्तों ने दवाइयों को इसी देश में तैयार करने की जिम्मेदारी अपने सिर पर ली और इस कार्य में श्री पी० सी० राय का नाम हमें सदैव स्मरण रहेगा जिन्होंने अपने त्याग और परिश्रम से बंगाल केमिकल व फारमाक्युटिकल वर्क्स लिमिटेड को जन्म देकर देश में उस उद्योग धन्धे को आधुनिक तरीकों से बढ़ाने की नीव डाली जिसकी निर्माण सामग्री इस देश में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थी। उन्हीं के परिश्रम से विज्ञान की इस शाखा में अनुसंधान की परिपाटी ने हमारे देश में जन्म लिया। हम आज उन तमाम व्यक्तियों तथा संस्थाओं के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं जिन्होंने श्री पी० सी० राय का अनुसरण करके देश में भेषज शास्त्र ( Pharmacy ) के प्रति प्रेम प्रदर्शित किया तथा उसकी खोज में अपना समय एवं धन व्यय किया है।

अब हमें पिछली कमियों के ऊपर सोचने की आवश्यकता नहीं है। वे तो विदेशी शासन के साथ ही इतिहास में विलीन हो गईं। अब तो यह हमारे देशवासियों की जिम्मेदारी है कि अपनी खामियों को दूर करके अपने देश में उन तमाम सुविधाओं को पैदा करें जिनसे भेषज रसायन शास्त्र का उद्योग बढ़ सके और अपने देश का करोड़ों रुपया बाहर जाने से बचा रहे।

इस सिलसिले में कई शब्दों जैसे भेषज शास्त्र ( Pharmacy ) भेषज रसायन ( Pharmaceutical chemistry ) आदि के सम्बन्ध में बहुत भ्रम फैला हुआ है। जहाँ तक मेरा ख़्याल है दवा को जनता के हाथों में पहुँचने तक तीन हालतों से गुजरना पड़ता है। पहले दवा की खोज की जाती है मेरे विचार से यह काम भेषज रसायन वेत्ता (Pharmaceutical chemist) का है। दवा की खोज हो जाने के बाद उसको बड़े पैमाने पर तैयार करने का काम व्यावसायिक भेषज शास्त्र वेत्ता ( industrial pharmacist ) का है और आखिर में दवाइयों की फुटकर तौर पर बेचने का काम भेषज शास्त्री ( pharmacists ) का है। इन तीनों कामों के लिए फार्मास्युटिकल शब्द इस्तेमाल किया जाता है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि भेषज ( Pharmacy ) विज्ञान की इन विभिन्न शाखाओं का भारत में जल्दी से जल्दी विकास होगा ताकि हमारा देश भी दुनिया के दूसरे देशों के समान हो सके।

यह बात सभी मानेंगे कि हमारे यहाँ के विश्वविद्यालयों ने भेषज शास्त्र ( Pharmacy ) के विषयों की ओर अधिक दूरदर्शिता नहीं दिखाई। हमारे सूबे में नहीं हमारे देश में भेषज (Pharmacy) को बढ़ाने का काम सबसे पहले बनारस विश्वविद्यालय ने किया। अब भेषज शास्त्र (pharmacy) के विषयों की शिक्षा देने वाली संस्थाओं की संख्या में वृद्धि बहुत जरूरी है क्योंकि भोर (Bhore) कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार हमारे देश में भेषज शास्त्र (pharmacy) जानने वालों की संख्या बहुत ही कम है। इसलिए भेषज शास्त्र ( pharmacy ) की शिक्षा को बढ़ाने की जरूरत है।

भेषज शास्त्र की शिक्षा के बाद जो दूसरी बात अहमियत रखती है वह है दवाइयों को बनाने और उनका स्टेन्डर्ड कायम रखने की। किसी भी देश में

सप्लाई में खाने की चीजों को पहला स्थान दिया जाता है। इसके बाद दवाइयों का नम्बर आता है।

अब तक इस व्यवसाय को बढ़ाने में जो रुपया लगाया गया है वह शून्य के बराबर है। भेषज रसायन के उद्योग को बढ़ाने तथा उसके अनुसंधान को प्रोत्साहित करने के लिए और ऐसी दवाइयाँ तैयार करने के लिए जो विदेशों में भी भेजी जा सकें हमें और अधिक धन तथा अनुसंधान करने वालों की आवश्यकता है। विदेशों की बड़ी बड़ी कम्पनियों ने, जिन्होंने इस उद्योग के विकास में हिस्सा लिया है, अनुसंधान करने वालों को उचित वेतन तथा तमाम सुविधाएँ प्रदान करके इस धंधे को बढ़ाया है। क्या हमारे देश के मैन्यूफैक्चरर्स (manufacturers) ऐसा नहीं कर सकते हैं? यों तो मेरी धारणा है कि इस तरह के तमाम उद्योग धन्धे राष्ट्र की तरफ से संचलित होने चाहिए और उनको बढ़ाने वालों को तमाम सुविधाएँ राष्ट्र की तरफ से मिलनी चाहिए। इसका कोई कारण नहीं कि हम भी दूसरे देशों की भाँति अपने देश में ऐसी दवाएँ न बना सकें जो हर देश में भेजी जा सकें और जिनका उसी तरह मान हो जैसा कुछ देशों की दवाओं का आज संसार में हो रहा है। हमारे देश में साधन है, जड़ी बूटियाँ हैं और विभिन्न प्रकार की दवाइयों के पौधे उगाये जा सकते हैं, उन पर अनुसंधान कर के उनके गुणदोष का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है और दुखित व पीड़ित मानव समाज के कल्याण के हेतु नई दवाइयों का आविष्कार कर के विज्ञान में वृद्धि की जा सकती है। हम अब तक पिछड़े रहे हैं परन्तु अब कोई कारण नहीं कि हम आगे न बढ़ें?

मैं यह जानता हूँ कि इस उद्योग को फैलाने की समस्या बहुत कठिन है क्योंकि इस उद्योग को बढ़ाने के साथ इस से सम्बन्ध रखने वाले दूसरे उद्योगों को भी बढ़ाना पड़ेगा जैसे सूक्ष्म रसायन (Fine chemi. cals), वैज्ञानिक औज़ार, प्रयोगशाला में काम आने वाले शीशे के सामान, शीशे का उद्योग, पैकिंग के समान ऐसे ही दूसरे रासायनिक उद्योगों को भी बढ़ाना पड़ेगा जैसे साबुन बनाना, तेज़ाब उद्योग आदि। अतएव इस उद्योग के विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हमें कारखाने खोलने पड़ेंगे, मशीनें लगानी पड़ेंगी और यह काम पलक मारते नहीं हो सकता।

इस देश के दवाइयों के उद्योग धन्धे को बढ़ाने में भेषज रसायन शास्त्र (pharmacy) बहुत बड़ा हिस्सा लेगा ऐसी मेरी धारणा है। अब तक इस देश में दवाइयों का सम्मिश्रण परस्पर भिन्न तरीकों से होता रहा है जिससे अपने देश की बनाई दवाइयों का मान बढ़ नहीं पाया है। अब भेषज रसायनवेत्ताओं का कर्तव्य होगा कि वह एक ही ढंग से दवाइयों को बनावें जिससे उनके गुणों में कोई अन्तर न आवे और अपने देश में आधुनिक ढंग की एक (Pharmacopia) को जन्म देकर उन डाक्टरों को मदद दे सकें जो अपने धन्धे में व्यस्त रहते हैं और जिन्हें उन दवाओं के मिलाने (compound) के लिए अपनी अपनी जगहों पर दवाखाने खोलने पड़ते हैं। हमारा अतीत बहुत गौरवशाली रहा है। आयुर्वेद के निघंटु (Pharmacopia) ग्रन्थ एवं रसायन शास्त्र अत्यन्त व्यापक एवं विकसित हैं परन्तु उन्हें आधुनिक वैज्ञानिक प्रणाली पर संयोजित करने की आवश्यकता है। अपने इस प्राचीन निघंटु ग्रन्थ का निष्पक्ष भाव से मनन करने की आवश्यकता है। मेरा विश्वास है कि यदि हमारे प्राचीन ज्ञान की इस शाखा का आधुनिक वैज्ञानिक प्रणाली से अध्ययन किया जाय तो हम संसार के विज्ञान को कुछ दे सकते हैं।

ज्यों ज्यों हम इस दिशा में तरक्की करते जायेंगे हमारे यहाँ ऐसी दवाएँ बनने लगेंगी जिनके व्यवहार से शर्तिया लाभ होगा। परन्तु इस तरह की दवायें तभी अपनी जगह कर सकेंगी जब हम सख़्ती से उन नियमों का पालन करेंगे जो हमने Drugs rules, 1940 द्वारा बनाए हैं। मुझे विश्वास है कि प्रान्त की सरकारें अपने अपने यहाँ ड्रग्स रूल्स को सख़्ती से अमल में लावेंगी जिससे गलत दवाओं का बनाना बिल्कुल बन्द हो जावेगा और स्टैन्डर्ड दवाओं का प्रचार बढ़ सकेगा।

जहाँ तक हमारे सूबे का सम्बन्ध है हम इस तरह

की कार्रवाई करके आयुर्वेद तथा यूनानी दवाओं को बनाने की एक माप भी स्थापित कर सकेंगे। साथ ही भेषज रसायन में एक नया कदम उठा सकेंगे। हमने अपने सूबे में Objectionable Advertisement Act को बना कर इस ओर कदम उठाया है। उससे नीम हकीमों की संख्या घटेगी और हमारे प्रान्त में सही दवाओं का बनना प्रारम्भ होगा। इससे भेषज रसायन के उद्योग (Pharmaceutical industry) को भी प्रोत्साहन प्राप्त होगा।

हमने आपके सम्मेलन के उद्देश्यों को कार्यान्वित करने की चेष्टा की है और अब तक हमने ९ में से कुल चार कम्पनियों को, जो बॉइलाजिकल प्राडक्टस (Biological Products) तैयार करती हैं, लाइसेन्स दिया है और ५५ में से ३१ और व्यक्तियों को जो अलावा इनके दवाइयाँ तैयार करते हैं, लाइसेन्स प्रदान किया है। कुछ समय से आपके एसोसियेशन की यह माँग रही है कि ड्रग्स ऐक्ट के प्रबन्ध के लिए और अधिक मात्रा में शिक्षित भेषज वेत्ताओं (Pharmacists) का उपयोग किया जाय। इस प्रकार की शिक्षा प्राप्त लोगों को औषधियों के विश्लेषण के लिए नियुक्त किया गया है, किन्तु फुटकर दूकानों को लाइसेन्स देने के लिए ऐसा करना सम्भव नहीं हो सका क्योंकि अधिकतर स्थानों में काम इतना नहीं है कि पूरे समय काम करने के लिए एक व्यक्ति नियुक्त किया जा सके। अतएव स्थानीय मेडिकल अफसर वहाँ के लिए लाइसेन्स देने का कार्य भी कर रहे हैं। जैसे ही काम में वृद्धि होगी भेषज शास्त्र में योग्यता प्राप्त व्यक्तियों को इन्स्पेक्टर के पद पर नियुक्त करने की आवश्यकता होगी!

भेषज शास्त्रवेत्ता से सम्बन्ध रखनेवाला दूसरा विषय है भेषज शास्त्र की शिक्षा और औषधि बनाने वालों का रजिस्ट्रेशन। केन्द्रीय धारा सभा द्वारा स्वीकृत फारमेसी ऐक्ट द्वारा यह बातें ठीक हो जायँगी। हमारे प्रान्त की सरकार इस दिशा में कदम उठा रही है और लखनऊ तथा आगरा मेडिकल कालेजों में फार्मेसी की कक्षाएँ शीघ्र खोलने का विचार कर रही है।

इन्डियन फार्मेक्यूटिकल एसोसियेशन को अपनी यह नीति बना लेनी चाहिए कि जहाँ और जब कभी जरूरत हो ऊँचे दर्जे की व्यावसायिक सेवा को प्रोत्साहन दिया जाय। भेषज शास्त्र में जिम्मेदार जगहों पर तरक्की देने के सम्बन्ध में आपके एसोसियेशन को ऊंचे स्तर को कायम रखने का आग्रह करना चाहिए।

संयुक्तराष्ट्र अमरीका के खाद्य एवं औषधि विभाग के कर्मचारियों द्वारा जो जाँच की गयी थी उससे पता चला है कि फुटकर दवाइयों की बिक्री की हालत बहुत चिन्ता-जनक है। नुस्खों में गलती होना तो बहुत आम बात है। हमारे यहाँ तो हालत और भी खराब है। दवाइयाँ बनाने-वाले कारखाने भी अपने यहाँ की बनी दवाइयों के किस्म की परवाह नहीं करते। मुझे यह मालूम हुआ है कि संयुक्त प्रान्त के सरकारी पब्लिक एनालिस्ट ने बाज़ार में बिकनेवाली दवाइयों की जो हाल में जाँच की है उसमें टिंक्चर इपेकाक के १४ नमूनों में सिर्फ दो उचित पाए हैं और ये चौदह नमूने अलग-अलग कारखानों के बने थे।

जनता को दवा बनानेवालों पर पूरा विश्वास होता है। उन्हें विश्वास होता है कि जो नुस्खा चिकित्सक ने लिख दिया है उसे वे अच्छी तरह और सही-सही बना देंगे। और ऐसा करना उनका व्यावसायिक कर्तव्य है। अगर व्यावसायिक योग्यता और ईमानदारी में कमी होगी तो जनता का विश्वास उन पर से उठ जायगा।

राजनीति की धारा को देखते हुए, दलगत राजनीति नहीं बल्कि इस देश और दूसरे देशों में चलनेवाले राजनीतिक आन्दोलन को देखते हुए हमें यह महसूस करना चाहिए कि हम वैधानिक विकास की स्थिति से गुजर रहे हैं। ऐसे समय में मामूली बातों पर भी अधिक से अधिक सरकारी कन्ट्रोल होगा।

शासन कितना ही अच्छा क्यों न हो किन्तु उसके शिकंजों में आने पर एक बड़ी संस्था के सदस्य होने से ही उत्साह मिलता है। भेषज शास्त्रवेत्ताओं का यह उत्साह नष्ट न होने के लिए मैं यह कहूँगा कि आप अपनी संस्था को इतना ताकतवर बनाएँ कि वह अपने सदस्यों के हितों की रक्षा कर सके। किसी भी देश के प्रगतिशील आन्दोलन का यह गुण होना चाहिए कि वह स्वेच्छा

और सरकारी समुदायों के सहयोग से बना हो। मेरा यह विश्वास है कि किसी भी पेशे का नियन्त्रण उसके सदस्यों द्वारा होना चाहिए जो अपने पेशे के लिए तन, मन और आत्मा लगाते हैं। आमतौर पर यह होता है कि लोग सरकार से सहायता पाने के लिए स्वयं ही अपने को संगठित करते हैं। इस प्रकार का विकास विशेष रूप से वांछनीय है क्योंकि यही स्वस्थ और सुदृढ़ है।

मैं यह मानता हूँ कि भेषज शास्त्र और चिकित्सा के व्यवसाय आगे चलकर एक दूसरे से अलग हो जायेंगे। क्योंकि भेषज शास्त्र के अभ्यास के लिए विशेष ज्ञान, योग्यता और ज़िम्मेदारी की ज़रूरत होती है और यह औसत दर्जे के चिकित्सक में नहीं होती। तभी जनता की चिकित्सा सम्बन्धी जरूरत के पर्याप्त ध्यान की गारन्टी हो सकती है। वैज्ञानिक तरीके पर संगठित भेषज शास्त्र हमारे देश के राष्ट्रीय जीवन में जो महत्वपूर्ण भाग लेगा उसे हम सब को स्वीकार करना चाहिए। देश की जन स्वास्थ्य की योजना में भेषज शास्त्र एक अटूट लड़ी है।

अतएव जब आपका व्यवसाय ठीक तौर पर संगठित हो जाय तब सरकार नियम निर्माण के मामलों में आपकी राय खुशी से लेगी। आपने मौजूदा कानूनों की खराबियों की ओर अक्सर इशारा किया है। बदलती हुई हालतों को देखते हुए कानूनों में भी परिवर्तन की ज़रूरत है। यदि आप यह चाहते हैं कि आपके संगठन पर सरकार को विश्वास हो तो मेरी आपको यह सलाह है कि आप अपने लक्ष्य को ऊँचा रखें, अपनी पूर्ण शक्ति से देश की सेवा करें, क्योंकि अधिकतम सेवा करनेवाला ही लाभ उठाता है। जय हिन्द।

---

# भारतीय विज्ञान सम्मेलन का इतिहास

[ लेखक—डाक्टर हीरालाल दुबे ]

भारतीय विज्ञान का इतिहास बहुत ही पुराना है और विज्ञान के विविध क्षेत्रों में भारत की देन भी कम नहीं है। गणित, ज्योतिष, रसायन, चिकित्सा, जीव और वनस्पति तथा भौतिक विज्ञान में भारत और देशों से अधिक बढ़ा हुआ था। यह कहना असत्य न होगा कि गणित और चिकित्सा में भारत केवल अगुआ ही न था अपितु और देशों का गुरू भी रह चुका है। यवनों के आने के पहले तक भारतीय विज्ञान की ज्योति चमक रही थी। परन्तु यवनों के प्रवेश के साथ ही भारतीय विज्ञान की लव भी धीमी पड़ती गई और अन्त में समाप्त भी हो गई।

सर जी० सी० बोस
सभापति १९२७

मेरे इस कथन का यह आशय बिलकुल नहीं है कि यवनों के कारण ही भारतीय विज्ञान की समाप्ति हुई। इसके क्या क्या कारण थे और किन-किन परिस्थितियों में इन विद्याओं का नाश हुआ यह तो एक दूसरा ही विषय हो जाता है। करीब तीन सौ वर्षों तक भारतीय विज्ञान अन्धकार में पड़ा रहा और इसके फलस्वरूप भारतवासी विज्ञान को भूल ही नहीं गये वरन् इतने अनभिज्ञ हो गये कि हम समझने लगे कि विज्ञान तो पाश्चात्य देशों की ही देन है।

## विज्ञान सम्मेलन का जन्म

भारतीय विज्ञान क्षेत्र में यह अन्धकार २०वीं शताब्दी के आरम्भ तक रहा। हमारे देश में विज्ञान के पुनर्जन्म और उत्थान की कथा भारतीय विज्ञान सम्मेलन (इंडियन साइन्स कांग्रेस) के इतिहास में

भलीभांति मिलती है। जिस प्रकार ह्यूम महोदय इंडियन नेशनल कांग्रेस के जन्मदाता हैं उसी प्रकार दो अंग्रेज़ नवयुवकों ने दूसरी नवम्बर १६१२ को शनिवार के दिन भारतीय विज्ञान सम्मेलन की नींव रक्खी। ये दोनों महोदय रसायनज्ञ हैं। १६१० में प्रोफेसर पी० एस० मेकमोहन की नियुक्ति कैनिंग कालेज लखनऊ में और प्रोफेसर जे० एल० साइमनसन की नियुक्ति प्रेसिडेन्सी कालेज मद्रास में हुई। ये दोनों आचार्य विलायत से आये हुए थे जहाँ विज्ञान खूब फल-फूल रहा था और वैज्ञानिकों को आपस में विचार-विनिमय के लिए रायल सोसाइटी और विज्ञान की प्रगति के लिए ब्रिटिश एसोसिएशन आदि वैज्ञानिक संस्थायें वर्तमान थीं। ऐसी संस्थायें किसी भी देश में ज्ञान और विज्ञान के प्रसार और वृद्धि में बहुत सहायता दे सकती हैं। प्रोफेसर मेकमोहन और प्रोफेसर साइमनसन ने भारतवर्ष में आते ही इस कमी को महसूस किया। उन्होंने देखा कि भारतवर्ष में वैज्ञानिक विचार-विनिमय की बहुत ही कमी है और यदि ब्रिटिश एसोसिएशन की भाँति इस देश में भी वैज्ञानिकों का वार्षिक सम्मेलन हो जाया करे तो यहाँ भी वैज्ञानिक अनुसन्धान को प्रोत्साहन मिल सकता है। वे इस विचार के थे कि न केवल विज्ञान के विविध क्षेत्रों के कार्यकर्त्ताओं के सम्मेलन और एक दूसरे से निकट सम्बन्ध हो जाने से ही अधिक लाभ होगा बल्कि इससे साधारण जनता में भी विज्ञान की ओर रुचि बढ़ेगी और वैज्ञानिक अन्वेषणों के महत्व और लाभ को लोग समझ सकेंगे।

सर सी० वी० रमन
सभापति १६२६

१६११ में इन दोनों आचार्यों ने भारतीय वैज्ञानिकों के पास पत्र भेजे और उनकी राय इस विषय पर मांगी। इस पत्र में उन्होंने लिखा था कि इस एसोसिएशन का ध्येय वही होगा जो कि विज्ञान की प्रगति के लिए ब्रिटिश एसोसिएशन का है—अर्थात्

(१) वैज्ञानिक निरीक्षण में अधिक उत्तेजना पैदा करना और अधिक नियमित रूप से वैज्ञानिक कार्य करना।

(२) देश के भिन्न-भिन्न भागों में फैले हुए तथा विज्ञान में रुचि रखने वाले व्यक्तियों और परिषदों का सम्मेलन करना।

(३) विज्ञान की वृद्धि में अड़चन डालने वाली बाधाओं का निवारण करना।

इस ध्येय को सामने रखते हुए एक ऐसा सम्मेलन स्थापित किया जावे जिसकी वार्षिक बैठक भारत के बड़े बड़े शहरों में हुआ करे जहाँ पर कि अनुसन्धान-विषयक लेख पढ़े जावें और उन पर वाद-विवाद भी होवे।

इन दोनों आचार्यों को यह भलीभाँति ज्ञात था कि इस योजना की सफलता भारतीय सहयोग पर ही निर्भर है और इस कारण उन्होंने भारतीय वैज्ञानिकों से इस सम्मेलन में भाग लेने की प्रार्थना की। बड़े हर्ष की बात है कि उस समय से भारतीय विज्ञान सम्मेलन बराबर उन्नति के मार्ग पर चल रहा है और इस उन्नति का श्रेय विदेशी वैज्ञानिकों को ही नहीं है, वरन् वह भारत के प्रत्येक प्रान्त के वैज्ञानिकों तथा अन्वेषणों में लगे हुए नवयुवकों के परिश्रम और लगन का फल है।

प्रोफेसर मेकमोहन और साइमनसन के प्रार्थनापत्र का स्वागत पूरे देश में हुआ यद्यपि इस कार्य की सफलता में संदेह प्रकट किया गया क्योंकि उस समय बहुत कम अन्वेषण इस देश में किए जाते थे। दूसरे, भारत की लम्बाई चौड़ाई को देखते हुए सम्मेलन में सब वैज्ञानिकों के एकत्रित होने में भी संदेह था। परन्तु जिन्होंने इस महान कार्य का बीड़ा उठाया था वे इन कठिनाइयों से निराश न होकर आगे ही कदम बढ़ाते गये। १६१२ की दूसरी नवम्बर को कलकत्ता में एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल के कमरों में भारत के १७ प्रख्यात वैज्ञानिकों की मीटिंग हुई। इस मीटिंग में यह तय हुआ कि एशियाटिक सोसाइटी से प्रार्थना की जावे कि वह विज्ञान सम्मेलन की वार्षिक बैठक का भार अपने ऊपर ले ले और प्रत्येक वर्ष कलकत्ता में बैठक होवे। इसके लिए एक कमेटी बना दी गई जो कि जनवरी १६१४ में साइंस

कांग्रेस की बैठक के लिए पूरी योजना तैयार करे और यह पहली बैठक भारतीय अजायबघर कलकत्ता की शताब्दी उत्सव के साथ ही की जावे।

## पहला अधिवेशन

१९१३ की २०वीं नवम्बर को एक असाधारण मीटिंग में कमेटी का पुनः निर्माण किया गया। इसमें लार्ड कारमाइकेल जो कि उस समय बंगाल के गवर्नर थे, साइंस कांग्रेस की पहली बैठक के संरक्षक नियुक्त किये गये और सर आशुतोष मुकर्जी, कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति पहले सभापति चुने गए। श्री डी० हूपर, मंत्री और कोषाध्यक्ष के पद पर नियुक्त किए गए।

कांग्रेस का पहला अधिवेशन एशियाटिक सोसाइटी के कमरों में १५, १६, और १७ जनवरी, १९१४ में हुआ और इस बैठक में १०६ सभ्यों ने भाग लिया जो कि भारत के विभिन्न भागों से एकत्रित हुए थे। यह अधिवेशन छः भागों में बँटा हुआ था जिसमें भौतिक, रसायन, जीव, वनस्पति, भूगर्भ और मानवजाति शास्त्र विषय थे और कुल मिलाकर ३२ लेख पढ़े गये थे। इस अधिवेशन की वार्षिक रिपोर्ट केवल ६ छपे हुए पन्नों में थी जिसमें विभिन्न भागों में पढ़े गए लेखों की सूची थी और सभापति सर आशुतोष मुकर्जी का भाषण भी था। यह रिपोर्ट एशियाटिक सोसाइटी के विवरणों में ही छापी गई थी।

आदि में सम्मेलन के कार्यकर्त्ताओं का यही विचार था कि प्रत्येक वर्ष अधिवेशन कलकत्ता में ही किया जावे परन्तु पहले अधिवेशन में ही यह स्पष्ट हो गया कि यदि दूसरे प्रांतों का पूरा-पूरा सहयोग प्राप्त करना है तो देश के विभिन्न भागों में अधिवेशन करना लाभदायक होगा। इस कारण सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन मद्रास में होना निश्चित हुआ। इस अधिवेशन के लिए मद्रास ने निमन्त्रण भी भेजा था।

१९१५ में विज्ञान सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन मद्रास में हुआ और इसमें १५० सभ्यों ने भाग लिया और पहली कांग्रेस के ६ भागों के अलावा दो और भाग बढ़ाए गये जो कि कृषि और औद्योगिक विज्ञान के थे। इस अधिवेशन में कुल मिलाकर ६० लेख भेजे गये थे।

सम्मेलन का तीसरा अधिवेशन इलाहाबाद में जनवरी १९१६ में होना निश्चय हुआ परन्तु बाद में वह बदल कर लखनऊ कर दिया गया क्योंकि संयुक्त प्रांत में लखनऊ का महत्व बढ़ गया था और वास्तव में इस प्रान्त की राजधानी लखनऊ हो गई। इस प्रकार भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न प्रांतों के बड़े-बड़े शहरों तथा विद्या के मुख्य केन्द्रों में साइंस कांग्रेस के अधिवेशन होने लगे और जिस ध्येय से इस कांग्रेस की स्थापना हुई थी उसकी भी पूर्ति होने लगी कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन कलकत्ता, मद्रास, लखनऊ, बंगलौर, लाहौर, बम्बई, बनारस, इलाहाबाद, नागपुर, इन्दौर, हैदराबाद, दिल्ली और पटना में हुए हैं।

सर जे० सी० घोष
सभापति १९३९

आरम्भ में सम्मेलन के कोई खास नियम नहीं थे। बंगलौर के चौथे अधिवेशन में, सम्मेलन के नियमों को बनाने की आवश्यकता जान पड़ी और एक अंतरंग सभा को सम्मेलन के कार्य का भार सौंपा गया और यह सभा कुछ विचारणीय विषयों को साधारण कमेटी की वार्षिक बैठक में भी रख सकती थी। साधारण कमेटी के सभ्य वे सब हो सकते थे जिन्होंने सम्मेलन के तीन अधिवेशनों में भाग लिया हो और तीन ऐसे सभ्य जो कि सम्मेलन के पदाधिकारी रहे हों।

१९२३ में पहली अंतरंग सभा का निर्माण हुआ और साधारण कमेटी ने एक कौन्सिल नियुक्त की जिसमें अतरंग सभा के सदस्य सम्मेलन के भारतवासी अध्यक्ष तथा पाँच और सभ्य होंगे। सम्मेलन के सभी भागों की कमेटियाँ बनाई गईं। इन कमेटियों पर अपने अपने विषयों के लेख पढ़ने व अपने अपने भागों के कार्य का भार सौंपा गया।

१९२४, १९२५ और १९३१ में कुछ नए नियम

बनाए गए और कुछ पुराने नियमों में रद्दोबदल किया गया। जो नियम आजकल प्रचलित हैं वे कलकत्ता अधिवेशन में ५ जनवरी १९३५ को बनाए गये थे और इसी समय इंडियन साइंस कांग्रेस एसोसियेसन की भी स्थापना हुई थी। इस एसोसिएशन के कार्य की वार्षिक रिपोर्ट सर्वप्रथम १९४६ में सभ्यों के सामने रक्खी गई।

## सम्मेलन की रजत-जयन्ती

साइंस कांग्रेस की रजत जयन्ती १९३८ में कलकत्ता में बड़े धूमधाम से मनाई गई और यह अधिवेशन कांग्रेस के इतिहास में बड़े मार्के का था। इस अवसर पर ब्रिटिश एसोसिएशन ने अपने सभ्यों का एक दल भेजा था। इस दल के नेता लार्ड रूदरफोर्ड थे और वे कांग्रेस की रजत जयंती के सभापति भी चुने गए थे परंतु बहुत खेद है कि उनकी अकस्मात मृत्यु हो जाने के कारण वे इस अधिवेशन में सम्मिलित न हो सके। उनके स्थान पर सर जेम्स ने सभापति का पद ग्रहण किया और लार्ड रूदरफोर्ड का लिखा हुआ भाषण इस अवसर पर पढ़ा। इस भाषण में साइंस कांग्रेस की उत्पत्ति से लेकर १९३८ तक भारतीय वैज्ञानिकों के मुख्य कार्यों का उल्लेख किया गया था और भारतीय विश्वविद्यालयों में वैज्ञानिक अन्वेषणों की ओर रुचि और उन्नति का भी हवाला था। उन्होंने इस ओर ध्यान दिलाया था कि विश्वविद्यालियों में विज्ञान विभागों को अधिक बढ़ाया जाय ताकि इस प्रगतिशील देश के लिये अध्यापकों और आविष्कार-कर्त्ताओं की कमी न पड़े और सरकारी वैज्ञानिक विभागों के लिए भी नवयुवक वैज्ञानिक सरलता से मिल सकें। लार्ड रूदरफोर्ड की इस चेतावनी का सरकार पर व विश्वविद्यालयों पर कोई भी असर न पड़ा और हमारी स्थिति आज भी आशाजनक नहीं है।

सर शांतिस्वरूप भटनागर सभापति १९४९

इस रजत-जयन्ती अधिवेशन में पाश्चात्य देशों के कई प्रसिद्ध वैज्ञानिक पधारे थे। इनमें केवल ब्रिटिश एसोसिएशन के ही सभ्य न थे, परंतु जर्मनी, फ्रांस, अमेरिका आदि देशों के भी वैज्ञानिक थे जिन्होंने अधिवेशन के विचार-विनिमय, वादविवाद तथा भाषणों में पूरा भाग लिया था। इस अधिवेशन में १५०० सभ्य थे और लेखों की संख्या ८७५ थी। दस विषयों पर विचार-विनिमय किया गया जिसमें विभिन्न विषयों के वैज्ञानिकों ने भाग लिया था। इसके अलावा विभागों में अलग अलग वादविवाद हुए। संध्या समय जन-साधारण के लिए सरल भाषा में ८ वैज्ञानिक भाषण हुए थे। इन भाषणों में इतना जमाव होता था कि जगह की कमी पड़ जाती थी और इससे हम कुछ अनुमान कर सकते हैं कि साइंस कांग्रेस को जनसाधारण में विज्ञान की ओर रुचि पैदा करने में कितनी सफलता प्राप्त हुई है।

रजत जयन्ती अधिवेशन से एक और बड़े महत्व की बात मालूम हुई। वह यह कि पाश्चात्य देशों के वैज्ञानिकों से मेल-मिलाप होने के कारण भारत में विज्ञान की प्रगति पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। साइंस कांग्रेस इसलिए अपने वार्षिक अधिवेशनों पर अन्य देशों के वैज्ञानिकों को निमंत्रित किया करती है जिससे इस देश में वैज्ञानिक अन्वेषणों को उत्तेजना प्राप्त हो और भारतीय वैज्ञानिकों को दूसरे देश के वैज्ञानिकों से मिलने का अवसर मिले।

१९४४ में दिल्ली में विज्ञान सम्मेलन का अधिवेशन हुआ था और यह भी बैठक बड़े महत्व की थी। इसमें लंदन की रायल सोसाइटी के मंत्री प्रोफेसर ए० वी० हिल महोदय पधारे थे। उन्होंने इस अवसर पर रायल सोसाइटी की भी मिटिंग की थी और सोसाइटी के २८० वर्षों के इतिहास में यह पहला ही अवसर था जब कि रायल सोसइटी की बैठक इंगलैंड के बाहर की गई। कांग्रेस का अधिवेशन कुछ समय के लिए रायल सोसाइटी की बैठक में परिणत कर दिया गया। सोसाइटी के दो प्रसिद्ध फेलो सर शांतिस्वरूप भटनागर और प्रोफेसर जे० एच० भाभा ने सोसाइटी के रजिस्टर में हस्ताक्षर किए थे।

## नेहरू जी सभापति

साइंस कांग्रेस का ३४वां अधिवेशन १६४७ में फिर से दिल्ली में मनाया गया। पहले इस अधिवेशन की बैठक पटना में होने वाली थी और इसके सभापति पं० जवाहरलाल जी चुने गए थे। राष्ट्रनेता पं० जवाहरलाल जी पहले भी सभापति के लिए चुने गए थे परन्तु अपनी जेलयात्राओं के कारण वे इस पद को अभी तक सुशोभित न कर सके थे। इस समय पंडित जी अस्थायी सरकार के उपसभापति थे और उन्होंने कई कारणों से कांग्रेस का अधिवेशन पटना में न रख कर दिल्ली में रखना अधिक उचित समझा। इस अधिवेशन में भी पाश्चात्य देशों के कई प्रसिद्ध वैज्ञानिकों ने भाग लिया। इंगलैड, फ्रांस, कनाडा, अमेरिका और रूस से वैज्ञानिक दल आये थे। इस अवसर पर भारतीय वैज्ञानिकों का भी खूब जमाव था। इतना जमाव शायद किसी और अधिवेशन में नहीं हुआ था। यह कांग्रेस १३ भागों में विभाजित थी और अनुसंधान विषयक लेखों की संख्या लगभग ७८२ थी और करीब करीब २५ मौलिक विषयों पर वादविवाद हुए जिन पर हमारे देश की उन्नति निर्भर है।

भारतीय विज्ञान सम्मेलन के इतिहास में इस ३४वें अधिवेशन का स्थान निराला ही रहेगा। यह पहला ही मौका है जब कि राष्ट्र-निर्माण की प्रयोगशाला में अन्वेषण करने वाले नेता द्वारा सभापति के पद की शोभा बढ़ाई गई। अभी तक केवल वैज्ञानिक ही इस पद को सुशोभित करते थे। दूसरे इस अधिवेशन में पाश्चात्य देशों से आये हुए वैज्ञानिकों ने अधिवेशन ही में भाग नहीं लिया परंतु भारतीय नेताओं से भी मेलमिलाप किया जो कि भारत की उन्नति और निर्माण में लगे हुए हैं और जिनकी हार्दिक इच्छा है कि दूसरे राष्ट्रों से विज्ञान, राजनीति और संसार की भलाई में पूरा पूरा सहयोग पा सकें।

पं० जवाहरलाल नेहरू ने सभापति पद से भाषण देते हुए कहा "मैं साइंस कांग्रेस और विदेशों से आए

सर के० एस० कृष्णन सभापति १६४६

हुये अतिथियों को विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि हम विदेश के विज्ञान में इस दृष्टि से सहयोग देने के लिए तत्पर हैं जिससे विश्व में शांति की स्थापना हो, और मानवता को शांति और वैभव मिले।" फिर आगे चल कर पंडित जी ने कहा "मैं आप सब वैज्ञानिकों को—चाहे आप युवक हों या वृद्ध—भारत के भविष्य की साधना के चिन्तन के लिए आमंत्रित करता हूँ जिससे आप के सहयोग से न केवल भारत के चालिस करोड़ व्यक्तियों का उत्थान हो, परन्तु समस्त विश्व में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग से सुख और शान्ति की स्थापना हो।"

गत वर्ष कांग्रेस का अधिवेशन पटना में हुआ था और इस वर्ष प्रयाग में हुआ जिसका उद्घाटन प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने किया।

# विज्ञान सम्मेलन के सभापति

१९१४ सर आशुतोष मुकर्जी
१९१५ श्री डब्लू० बी० बैनरमैन
१९१६ कर्नल सर सिडनी जी० बुरर्ड
१९१७ सर एलफ्रेड गिबस बोर्न
१९१८ डा० गिलबर्ट टी० वाकर
१९१९ लेफ्टनेन्ट कर्नल सर ल्युनार्ड रॉजर्स
१९२० सर प्रफुल्ल चन्द्र राय
१९२१ सर राजेन्द्र नाथ मुकर्जी
१९२२ श्री सी० एस० मिडलोमिस
१९२३ सर एम० विश्वेश्वरैया
१९२४ डा० एन० एननडेल
१९२५ डा० एम० ओ० फॉर्सटर
१९२६ श्री एलबर्ट हॉवर्ड
१९२७ सर जे० सी० बोस
१९२८ श्री जे० एल० साइमनसन
१९२९ सर सी० वी० रमन
१९३० कर्नल एस० आर० क्रिसटाफर्स
१९३१ लेफ्टनेन्ट-कर्नल आर० बी० सीमूर सीवेल
१९३२ राय बहादुर लाला शिवराम कश्यप
१९३३ डा० एल० एल० फरमर
१९३४ प्रो० मेघनाथ साहा
१९३५ डा० जे० एच० हटन
१९३६ सर यू० एन० ब्रह्मचारी
१९३७ राव बहादुर टी० एस० वेंकटरमन
१९३८ सर जेम्स जीन्स
१९३९ सर जे० सी० घोष
१९४० प्रो० बीरबल सहानी
१९४१ सर आरदेशिर दलाल
१९४२ श्री डी० एन० वाडिया
१९४३ श्री डी० एन० वाडिया
१९४४ प्रो० एस० एन० बोस
१९४५ सर शान्तिस्वरूप भटनागर
१९४६ प्रो० एम० अफ़ज़ल हुसेन
१९४७ पं० जवाहरलाल नेहरू
१९४८ कर्नल आर० एन० चोपड़ा
१९४९ सर के० एस० कृष्णन्

# "शिलषाभ जीव-विज्ञान और चिकित्सा में"

## रसायन-शास्त्र विभाग के सभापति

### डॉक्टर पी० बी० गंगुली, डी० एस० सी०, एफ० एन० आई० का भाषण

(श्री बालकृष्ण अवस्थी-अनुवादक)

इस भाषण में मुख्यतः जीव-विज्ञान और चिकित्सा की दृष्टि से शिलषाभ (colloids) का वर्णन किया गया है। यद्यपि आरम्भ में रसायन शास्त्र की उन्नति रसायन व भौतिक-शास्त्र के विद्वानों के प्रयत्नों से हुई, परन्तु हाल में जो कार्य इस दिशा में हुआ है उससे यह स्पष्ट प्रगट होता है कि भविष्य में इसकी उन्नति इसके जीवित वस्तु में तथा जीवन की विविध क्रियाओं के उपयोगों द्वारा ही होगी। इसकी कला से यह विदित होता है कि कोष जीवित वस्तु का सबसे छोटा अंश है। कोष देह में किस तरह बढ़ती है, विभाजित होती है यह पुट्ठों और रुधिर के पोषण पर निर्भर है। उदाहरणार्थ जीवन के मूल तत्व (Proto plasm) को ही ले लीजिए। इसमें लगभग ३५ रासायनिक पदार्थ पाए जाते है, जिनमें, मुख्य लवण, शक्कर, ऊँचे कार्बोदेत (जैसे माँड़, कोष्ठोज आदि) चरबी, प्रोटीन व लीपाइड हैं। लवण और शक्कर तो असली घोल में रहते हैं पर चर्बी इमल्शन के रूप में पाई जाती है। प्रोटोप्लाज्म में ७५°/० पानी है, शेष में लगभग ५०% प्रोटीन, २०% चरबी, २०°/० लवण व १०°/० कार्बोदेत हैं। अति सूक्ष्म दर्शक यंत्र द्वारा देखने से मालूम होगा कि वास्तव में प्रोटोप्लाज्म दो भागों में विभाजित रहता है। एक भाग रिक्त प्रतीत होता है और दूसरे मे इमल्शन के दाने दिखाई पड़ते हैं। इस क्रम में मूल-तत्व प्रोटीन ही है, जिससे कि प्रोटप्लाज्म के गुण मालूम किए जाते हैं। कई रासायनिक परिवर्तन एक साथ ही हुआ करते हैं जिसमें अभिसरण (osmosis) भी भाग लेता है। यद्यपि बहुधा प्रोटोप्लाज्म पनीला होता है इसमें आकर्षण की शक्ति विद्यमान रहती और शिलषिक रूप में परिवर्तित भी हो सकता है। ये सब परिवर्तन शिलषाभ (colloid) के स्कन्धीकरण (coagulation) से होते हैं जो कि ताप व अन्य कारणों पर निर्भर हैं और वृद्धि, चोट लगने, बीमारी अथवा पुनर्जन्म के अवसर पर दृष्टिगत होते हैं।

प्रोटीन में वे सभी गुण विद्यमान हैं जिन्हें संक्षिप्त में हम जीवन कह सकते हैं। अन्य पदार्थ जैसे कार्बोदेत, लवण, चर्बी जीवन के क्रम को चालू रख सकते हैं परन्तु प्रोटोप्लाज्म बनने के लिए प्रोटीन का आधार अत्यावश्यक है। प्रोटीन और प्रोटोप्लाज्म शिलषाभ (colloid) गुण के सम्बन्ध में एक दूसरे से बहुत मिलते हैं। ये दोनों ही स्कन्धिकरित (coagulated) होते हैं। सोखने से फूल जाते हैं, पनीली दशा में आकर्षित होते हैं और प्राकृतिक रूप में भी बदल सकते हैं। बहुत से प्रोटीन के गुण प्रोटोप्लाज्म के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। यदि कोई भाग टूट-फूट जाता है अथवा उसमें किसी प्रकार की क्षति पहुँचती है तो प्रोटोप्लाज्म तुरन्त एक नवीन भाग बनाने में समर्थ हो जाता है जो कि उसकी जगह ले लेता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि जब एक कोष विभाजित होता है तो प्रोटोप्लाज्म की सान्द्रता (viscosity) में कई शीघ्र परिवर्तन होते हैं जो कि एक अवस्था में सब से अधिक हो जाती है। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि साधारणतः यह शिलषाभ की अवस्था में रहता है, परन्तु सान्द्रता के परिवर्तन के कारण थोड़ी देर के लिए उसमें स्कन्धीकरण हो जाता है जो कि फिर अपने पुराने रूप में बदल जाता है। अब अचेतना पैदा करने वाले पदार्थों की ओर ध्यान दीजिए। थोड़ी सान्द्रिक अवस्था में ईथर (Ether) प्रोटोप्लाज्म

को और पनीला बना देता है और कोष-विभाजन स्थगित हो जाता है; परन्तु अधिक सान्द्रिक दशा में स्कन्धीकरण पूर्ण हो जाता है और वह जम जाता है। प्रोटोप्लाज्म को उसकी बनावट के आधार पर जीवित शैली भी कहा गया है।

जीवित-कोष के समान अस्थिर चीज प्रयोगशाला में बनाने के कई बार प्रयत्न किए गए हैं। एक रसायनाचार्य ने सोडियम फौस्फेट के घोल में चूना, लोहा, मैङ्गनीज आदि के लवण डालकर घोंघे की तरह का पदार्थ बना लिया। इसी प्रकार जब किसी श्लिषाभ में कैल्शियम लवण के रवे बनते हैं तो पेड़ में पत्तियों के प्रकार की बनावट बन जाती है। इन सबका कारण अभिसरण, फैलाव तथा जैल की उपस्थिति में श्लिषाभ का पैदा होना है।

"जैल में रासायनिक परिवर्तन" नामक विषय पर काफी खोज की गई है। लीसगैङ्ग ने देखा कि इसमें एक ऐसी क्रिया होती है जो कि साधारण रासायनिक-क्रियाओं से भिन्न है। इस अनोखी क्रिया में एक ऊपर दूसरी तह जमती जाती है जो कि लगातार नहीं रहती। उसने कई ऐसी क्रियाओं को इसी प्रकार समझाया है। बाद में अन्य रसायनज्ञों ने भी यह दिखलाया है कि इस प्रकार से जो वस्तुएँ बनती हैं उनका आकार भू-गर्भ विद्या की वस्तुओं से बहुत मिलता है। यह बात भी सिद्ध की जा चुकी है कि हड्डी, पुट्ठे के रेशे, पथरी आदि की उत्पत्ति जीवित पदार्थों में किस प्रकार होती है। यह उसी प्रकार से होती है जैसे कि श्लिषाभ में एक के बाद दूसरी परत जमती है और एक कड़ी चीज बन जाती है। इसे "सामयिक अवक्षेपण" (Periodic precipitation) कहते हैं। यह लीसगैङ्ग ने सबसे पहिले अनुभव किया था अतः लीसगैङ्ग रिङ्ग के नाम से प्रसिद्ध है।

जैल में जब दो घोल, जो आपस में क्रिया कर सकते हैं, का प्रवेश होता है तो ये मिलकर कुण्डली (rings) बनाते हैं। कभी-कभी कुछ ऐसी असमान अवस्थाएँ भी आ जाती हैं जब ये कुण्डली नहीं भी बना पाते हैं; किन्तु यदि जैल के माध्यम में, सान्द्रता में अथवा प्रयोग की अन्य अवस्थाओं में परिवर्तन कर दिया जाय तो उक्त-क्रिया सरलतापूर्वक हो सकती है। जैसे-जैसे हम व्यापन (diffusion) केन्द्र से दूर होते जाते हैं, एक से दूसरी तह की दूरी भी बढ़ती जाती है। कभी-कभी जैल के न होने पर भी ऐसी बनावटें देखी जाती हैं। इस दिशा में वैज्ञानिकों ने भिन्न-भिन्न वस्तुओं के ऊपर प्रयोग किए हैं। जैसे पटना में श्री० घोष ने शीशे की चादरों के बीच की जगह पर ये चीजें बनाईं और सूक्ष्मदर्शकयंत्र द्वारा उनकी परीक्षा की। उन्होंने देखा कि आरम्भ में अवक्षेप श्लिषाभ के रूप के ही थे और ब्राउनियन-गति (Brownian movement) भी उसमें देखी गई।

कई ऐसी बनावटें भी देखी गई हैं जिसमें मुख्यक्रिया व्यापन (Diffusion) थी। गणित में कई सूत्रों द्वारा यह निकालने का प्रयत्न किया गया है कि जैल की भिन्न-भिन्न सतहों पर क्रिया करने वाली वस्तुओं का केन्द्रण क्या है।

लीसगैङ्ग-घटना (Liesegang phenomenon) को समझाने के लिए कई सिद्धान्त रखे गए हैं। उनमें अतितृप्ति (Super saturation theory), अवशोषण (absorption theory) व्यापन-तरङ्ग (Diffusion wave theory) और श्लिषाभ-अधिशोषण (Colloid-adsorption) सिद्धान्त मुख्य हैं। इनमें से प्रत्येक सिद्धान्त एक विशेष काम के लिए उपयुक्त है।

पशुओं के शरीर में श्लिषाभ अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। रोगावस्था में इनका संतुलन बिगड़ जाता है और इतना अधिक बढ़ जाता है कि अवक्षेपण होने लगता है। लीसगैङ्ग के मतानुसार यह क्रिया यहीं पर नहीं रुकती वरन् श्लिषाभ में अतितृप्ति और अधिशोषण होने लगता है जिसके कारण छोटा सा कंकड़ जो कि साधारणतः मल-मूत्र के साथ बाहर निकल जाता है, अब काफ़ी बड़ा हो जाता है और वहीं पर जम जाता है। एक दूसरे रसायन शेड (Schade) ने इसके लिए एक दूसरा ही प्रमाण दिया है।

पानी में रहने वाले अनेक जानवरों का ऊपर का चमड़ा अत्यन्त कड़ा होता है जो कि श्लिषाभ और

रवेदार पदार्थों के जमने के कारण हो जाता है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण 'mother of pearl' है। मोती स्वयं खटिकम कर्बनेत (Calcium carbonate), पानी और कुछ सेन्द्रिक पदार्थ से बना है और जानवर के शरीर से निकली हुई कठिन चीज का सबसे मनोहर दृष्टान्त है। मोती और जिस जानवर में मोती होता है—दोनों में वही तीनों वस्तुएँ पाई जाती हैं, केवल मात्रा में ही अन्तर रहता है। मोती का बनना अकस्मात और शुक्ति (oyster) में बीमारी के कारण होता है। शुक्ति अपने खाने के लिए पलक (cilia) से निरन्तर पानी फेंकता है और अपनी इच्छानुसार अण्डे व छोटे-छोटे कीड़े अपने पास रहने देता है। कभी-कभी बालू का एक कण अथवा अन्य हानिकारक कीड़ा पलक से बचकर कोष में चिपक जाता है जिसके कारण शुक्ति में चंचलता आ जाती है और एक विशेष प्रकार का तरल पदार्थ शुक्ति से निकलने लगता है जो समुद्र से खटिक ले लेता है और उस तरल पदार्थ के चारों ओर तहें जम जाती हैं। यह क्रिया क्रमशः होती है और धीरे धीरे वह एक परिपूर्ण मोती के रूप में परिवर्तित हो जाती है।

चीन में कृत्रिम मोती बनाने की रीति बिल्कुल इसी सिद्धान्त पर है। मोती बनाने वाली शुक्ति को पानी से बाहर निकाल लेते हैं और कीचड़ की एक छोटी गोली अथवा गौतम बुद्ध की छोटी तस्वीर उसके बाहरी चमड़े के अन्दर निपुणतापूर्वक डाल देते हैं। शुक्ति को फिर पानी में डाल दिया जाता है और निश्चित समय के पश्चात् उसे निकाल लिया जाता है। बुद्ध की तस्वीर से बने हुए कई मोती लन्दन के अजायबघर में रखे हैं। इस रीति को सर्व-प्रथम जापानियों ने ही वैज्ञानिक रूप से मालूम किया था। बाहरी सतह इस कार्य के लिए सब से अधिक उपयुक्त है। इस क्रिया में यह आवश्यक नहीं है कि कोई विजातीय पदार्थ उस कोष के निकट अवश्य आवे ही। सीप, घोंघा आदि जीवों में भी रोग के कारण मोती बन सकते हैं जैसे कि कुछ जानवरों में पत्थर बनते हैं।

Mother of pearl में रंग दो कारणों से होता है। एक तो बाह्य सतह में रगड़ लगने से और दूसरे खटिकम् कर्बनेत (Calcium carbonate) की पतली सतह के बीच में पड़ने से। लार्ड रेले के अनुसार रंग केवल एक सतह के कारण ही नहीं होता है बल्कि कई सतहों के कारण जो कि क्रमशः एक के बाद दूसरी लगी रहती है।

सामयिक अवक्षेपण का एक और उदाहरण खटिकम् स्फुरेत (Calcium phosphate) का है। खटिकम् नेषित (Calcium nitrate) के जैल में जब ट्राइ-सोडियम फौस्फेट का व्यापन होता है तो खटिकम् स्फुरेत् सतहों में जम जाता है। मोती की रासायनिक परीक्षा से पता चलता है कि उसमें कोई स्फुरेत नहीं है, केवल खटिकम् कर्बनेत है। इसलिए कृत्रिम रूप से उसको बनाने के लिए यह सोचा गया कि खटिकम् कर्बनेत को धीरे-धीरे सतहों में जमाया जाय। इसको करने के लिए खटिकम् द्विकर्बनेत को जिलेटिन में घोला गया जो कि एक जैल बन गया। वह धीरे-धीरे विलग होकर खटिकम् कर्बनेत के रूप में बैठने लगता है और इस प्रकार एक अत्यन्त सुन्दर चीज बन जाती है जो कि रंग में भी mother of pearl के समान है। सूक्ष्म दर्शक यन्त्र से देखने पर पता चलता है कि उसमें बराबर-बराबर दूरी पर समानान्तर रेखाएँ हैं। इसी प्रकार की अन्य वस्तुएँ भी जानवरों के शरीर में पाई जाती हैं।

किरणों का प्रभाव भी शिलषाभ पर कई प्रकार से पड़ता है। इनके द्वारा सामयिक अवक्षेपण शीघ्रता व अधिकता से होता है। कैओलीन के घोल में जब प्रकाश की किरणें डाली जाती हैं तो उसके कण तहों में लग जाते हैं जो कि दीप्ति Phoresis से मिलता है।

प्रकाश शिलषाभ को बना भी सकता है और स्कन्धि-करित भी कर सकता है। केवल नील लोहितोत्तर किरणों का प्रभाव ही नहीं वरन् एलफा किरण, बीटा किरण और एक्स किरण का प्रभाव भी शिलषाभ पर सम्पूर्ण रूप से पड़ता है। गर्मी से भी स्कन्धीकरण होता है।

नील लोहितोत्तर प्रकाश जब किसी धातु के पानी के आसपन में डाला जाता है तो स्कन्धीकरण के बजाय खण्डन होता है; इसलिए कि उद्जैल्स (hydrogels) में किरणों के प्रभाव से उद्जन-पर-आॅषेत बन गया। साधारणतः शिवषाभ में किरणों के कारण स्कन्धिकरण

होता है। इसके अतिरिक्त उसकी चालकता; विद्युन्मय; पी० एच०, सान्द्रता तथा अन्य गुणों में भी परिवर्तन होता है। एक विशेष बात यह है कि + और—दोनों तरह के विद्युन्मय शिलषाभ में प्रकाश का प्रभाव समान ही रहता है। बहुत से लोगों ने इस विषय पर खोज की है। बीटा किरणों का प्रभाव मुख्यतः जाँचा गया है। बीटा किरणों का उद्गम रेडियम ब्रोमाइड को लिया गया है और + व – दोनों प्रकार के शिलषाभ पर देखा गया है कि इसका क्या प्रभाव पड़ता है यानी स्कन्धिकरण होता है या नहीं। इससे यह देखा गया है कि साधारणतः + विद्युन्मय शिलषाभ आशा के विपरीत कम सुग्राह्य होता है। एक्स-किरणों से मालूम होता है कि स्कन्धिकरण के लिए विद्युन्मय का निराकरण आवश्यक है। इसके अतिरिक्त प्रकाश-वैद्युत के प्रभाव भी होते हैं जिससे चालकता में वृद्धि होती है और सान्द्रता में कमी। स्कन्धिकरण को समझाने के लिए दूसरा सिद्धान्त प्रकाश-रसायन है। प्रकाश से रासायनिक परिवर्तन होते हैं। लाल ने बहुत से + और—शिलषाभ की परीक्षा की और देखा कि उनकी पी० एच० में अन्तर आ जाता है। स्कन्धिकरण का कारण स्थिर पदार्थों का प्रकाश-रसायन का विच्छेदन बतलाया गया है। कणों का विस्तार भी बढ़ जाता है। सोने के घोल पर भी कई प्रयोग किए गए है। यदि सोनेको हाइड्रैज़ोइक, प्रस्फुरस, फौर्मेल्डीहाइड, एसीटीलीन आदि से लध्वीकृत करें तो पारद लम्प के सामने कोई अन्तर नहीं होता पर यदि उद्जन पर ओषेद (hydrogen per oxide), टैनिन, कत्था, रिसौर्सिनोल, पाइरौगैलोल, आदि का प्रयोग उस काम के लिए किया जाय तो स्कन्धिकरण प्रकाश के सामने हो जाता है।

शिलषाभ का प्रकाश चिकित्सा से भी सम्बन्ध रहता है, विशेषतः अभाव की बीमारियों में। जीव-रासायनिक में प्रोटीन, कार्बोदेत, लवण व चर्बी मुख्य पदार्थ हैं। प्रोटीन का अणुक भार बहुत अधिक होता है और पृथक-पृथक समवैद्युनिक बिन्दु भी होते हैं। प्रकाश से उनके शिलषाभ रूप में अन्तर आ जाता है। यह बात तो सभी जानते हैं कि खटिकम् को यदि हम वैसे ही खावें तो उसका प्रभाव शरीर में बहुत कम होता है। वह रक्त में ठीक तरह से मिल नहीं पाता किन्तु यदि उसी को किसी विटामिन के साथ प्रयोग किया जाय तो वह बहुत शीघ्र ही मिल जाता है। विटामिन प्रकाश से ही शरीर में बनते हैं और इसी से प्रकाश देह के लिए अत्यन्त उपयोगी है। इसी प्रकार जिलेटीन को प्रकाश दिखलाने से उसके गुणों में अन्तर आ जाता है; चालकता घट जाती है और फूलने की शक्ति चली जाती है। इसी प्रकार अण्डे की सफ़ेदी में भी होता है।

दूसरी चीज़ जिसमें शिलषाभ का प्रयोग जीव-विद्या में होता है अधिशोषण है। जीवित शरीर के कोष अधिशोषक होते हैं। रुधिर में अमीनो-अम्ल लौह की उपस्थिति में जो कि उत्प्रेरक का काम करता है oxidise हो जाते हैं। कितनी मात्रा में ओषदीकरण होता है यह अधिशोषण की मात्रा पर निर्भर है। इसी प्रकार से यह देखा गया है कि और भी सेंद्रिक पदार्थ ओषज़न से oxidise हो जाते हैं। शरीर की झिल्लियों में कई केशाल (capillaries) होते हैं जिससे कि ऊपरी भाग काफ़ी बढ़ जाता है और इसी कारण अधिशोषण भी अधिक हो जाता है। इससे शरीर में जहाँ भी उत्प्रेरक ओषदीकरण (catalytic oxidaiotn) होता हैं अधिशोषण का विशेष हाथ रहता है।

Enzymes की उत्प्रेरक क्रिया (catalytic activity) अधिशोषण पर निर्भर है। कोई कोई स्फटिजा (alumina) से ज़्यादा अधिशोषित होते हैं और कोई kaolin से और कोई दोनों से। ph value के अनुसार रासायनिक क्रिया की गति एनज़ाइम की मात्रा के अनुसार घटती बढ़ती है। एक एनज़ाइम की क्रिया सर्वदा एक विशेष पदार्थ या जीव-विद्या-सम्बन्धी क्रिया पर होती है। यह इस प्रकार समझाया गया है कि उनकी सतह पर अधिशोषित अणुओं की विशेष पूर्वीय स्थिति होती है। यह एक मार्के की बात है कि यह silica gel पर केन्द्रिक पदार्थों के अधिशोषण से बहुत मिलता है। ज्ञानी साहब ने इस विषय पर काम किया है।

आपने बहुत से एक-भास्मिक (mono basic), द्वि भास्मिक (dibasic) hydroxy fatty acids और सौरभिक अम्ल (aromatic acid) की silica जेल पर क्रिया की परीक्षा एक-भास्मिक (mono basic acid) में अधिशोषित अणुओं की संख्या बराबर रहती है जिससे मालूम होता है कि उसमें एक विशेष प्रकार का पूर्वीयकरण होता है। इसी प्रकार से अन्य सेन्द्रिक पदार्थों जैसे- paraffins, benzene, toluene, alcohols, ketones आदि का भी पूर्वीयकरण होता देखा गया है। प्रत्येक में एक विशेष प्रकार का पूर्वीयकरण होता है जो कि औरों से भिन्न होता है। यह उत्प्रेरणा के लिए एक विशेष कारण है।

ज्ञानी ने जेल प्रयोग शाला में बनाया था। अन्य रसायनाचार्यों ने भी पृथक रीतियों से बनाए जो कि ph व ताप के अनुसार थे। कई क्षाराभ भी silica jel में अधिशोषित हो जाते हैं। जैसे, मारफ़ीन, निकोटीन, कुनैन, ब्रसीन, स्ट्रीकनीन इत्यादि। इन सब का अधिशोषण देखा गया है। और उससे कई उपयोगी परिणाम निकाले गए हैं। इससे विशेष बात यह पता चली है कि अणुओं की बनावट में और अधिशोषण में एक घनिष्ठ सम्बन्ध है। दूसरी यह कि विषैली चीज़ों के अधिशोषण से अधिक है।

क्रोमेटोग्रैफ़िक विश्लेषण में शोषण का बड़ा उपयोग होता है। इस विश्लेषण से हम बहुत से ऐसे पदार्थों को पृथक् कर सकते हैं जो एक दूसरे में बहुत मिल गये हैं। विशेषतः दवाई वाले पौदों से निकलने वाले पदार्थ। यह विधि पहले पहल एक रूसी वैज्ञानिक Tswett ने निकाली थी जो कि बाद में बहुत बढ़ाई गई और आजकल इस काम के लिए एकमात्र साधन है। जिस सिद्धान्त के उपर यह रीत काम में लाई जाती है, वह यह है—कई पदार्थ भिन्न-भिन्न चीज़ों में पृथक्-पृथक् मात्रा में शोषण होते हैं और ठीक घोलक के उपयोग से से वे निःशोषित हो जाते हैं, और अपनी असली दशा में आ जाते हैं। इस विधि की विशेषता यह है कि यदि सूक्ष्म मात्रा में भी मिले हुये पदार्थ हों तो भी आसानी से अलग किये जा सकते हैं और दूसरे यह कि ऐसे पदार्थ भी अलग किये जा सकते हैं जो बनावट में एक दूसरे से बहुत मिलते हों और जो किसी दूसरी रीति से सफलता पूर्वक अलग नहीं किये जा सकते। प्रारम्भ में Borck mann's स्फटिज्ञ का प्रयोग किया गया पर आजकल और भी वस्तुयें काम में लाई जाती हैं जैसे मिट्टी (clay), magnesium silicate, activated lactose आदि।

Peptisation तथा flocculation भी शिलषाभ के विशेष गुण हैं। यह बीमारियों के लक्षण मालूम करने में उपयोग किये जाते हैं और शरीर के तरल पदार्थों की परीक्षा में भी रक्षित-शिलषाभ (protective colloid) की peptising power उसका gold number कहा जाता है। Spinal fluid का gold number—meningitis तथा दिमाग़ के रोगों में काम लाया जाता है। इसी प्रकार flocculation भी रोगों को पहिचानने के काम में लाया जाता है। कोलायड के और भी कई उपयोग चिकित्सा में किये जाते हैं।

दवाओं को कोलायड रूप में देना लाभदायक समझा जाता है। कई दवायें इसी प्रकार की बन गई हैं और बहुत सी बन रही हैं। आम तौर पर जो प्रयोग में लाई जाती हैं वह कैलशियम, मैंगनीज़, लौह, चाँदी, आयोडीन, सलफर आदि से बनती हैं। कभी कभी इनमें विटामिन भी मिला दिये जाते हैं जिससे कि दवा का गुण बढ़ जाय।

पुरानी आयुर्वेदिक रीति में भी यह प्रयत्न किया जाता था कि दवा को इतना महीन कर दें कि उसका असर खूब हो। धातुओं के आक्साइड और सलफाइड को शहद में खूब पीस कर खिलाते थे—जो कि कोलायड के रूप में हो जाता था। जीव-विद्या में बहुत सी ऐसी जगहें पाई जाती हैं जहाँ पर कोलायड का उपयोग किया गया है। बहुत से जीव कार्यों में कोलायड के गुण देखे जाते हैं। जीवित रहने का अभिप्राय ही यही है कि कोलायड दशा चली जा रही है और जहाँ भी कोएगुलेशन हुआ, मृत्यु हो जाती है।

जिस प्रकार से वैज्ञानिक खोज इस ज़माने में हो

रही है उससे तो यही पता चलता है कि वह दिन दूर नहीं है जब कि जीवित चीज भी अप्राकृतिक रूप से बनाई जा सकेगी। आजकल मानव जाति एक बहुत ही शोचनीय दशा में है। एक ओर तो वह वैज्ञानिक खोजों (आविष्कारों) की ओर तेज़ी से बढ़ रही है और दूसरी ओर वह ऐसे भी एक-से-एक भयानक औज़ार बना रही है जिससे मानव जाति के नाश के सिवाय और कुछ हो नहीं सकता। यह सभ्यता जो आज कई वंशों के बाद मानव जाति में आ सकी है, नाश होने वाली है। आज विज्ञान के ही कारण ऐसी ऐसी अजीब चीज़ें बनी हैं जिससे कि हम लोगों के लिए हर एक काम सरल हो गया है पर साथ-ही-साथ यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि कोई ऐसा काम भी न किया जाय कि जिससे मानव जाति व उसकी सभ्यता का नाश हो।

---

# भारत में क्षयरोग के कतिपय दृष्टिकोण और उसके बचाव के उपाय

## औषधि-विज्ञान तथा पशुचिकित्सा विभाग के सभापति

**डाक्टर एम० बी० सोपरकर, एम० डी०; बी० एच० वाई०; एफ० एन० आई०**

**के भाषण का संक्षिप्त-विवरण**

भाषण का पूर्वार्ध तपेदिक के उन पहलुओं से सम्बन्धित है जिनका प्रभाव पशुओं और विशेषकर चौपायों पर न केवल उनके कृषि और पशु-विज्ञान की दृष्टि से पड़ता है; प्रत्युत इसलिए भी कि उसका मानव-रोगों से भी घनिष्ट सम्बन्ध है। भाषण का उत्तरार्ध भारत में इस रोग की मुक्ति के साधनों से सम्बन्ध रखता है, क्योंकि मानव-जीवन पर इसका विशिष्ट प्रभाव पड़ता है।

अन्य रोगों के प्रतिकूल, जो केवल प्रायोगिक रूप में ही उड़कर दूसरों के लग जाते हैं, क्षय रोग पशु-पक्षी आदि विभिन्न जाति के जानवरों को प्राकृतिक-छूत से ही ग्रसित कर लेता है और विशेषकर उन पशुओं को जो मनुष्य के लिए अत्यन्त उपादेय और आर्थिक महत्व रखते हैं—अर्थात् पालतू-पशु।

साधारणतः लोगों में यही प्रचलित धारणा है कि भारतीय पशुओं में क्षय-रोग की व्यापकता अत्यन्त ही न्यूनांश में है। फिरोज़पुर के ६,००० के लगभग वधित पशुओं का निरीक्षण कर टेलर ने यह प्रमाणित किया कि उनमें लगभग ३·५ प्रतिशत पशु क्षय रोग के शिकार थे।

### भारतीय पशुओं का क्षय-रोग अवरोधन

भारतीय पशुओं में इस रोग की कम आशंका और यूरोपियन पशुओं में अधिकता का कारण मालूम करने के लिए अनेक प्रयोग किए गए हैं। इन प्रयोगों के परिणाम-स्वरूप यह स्पष्ट हो गया है कि कुछ भारतीय बछड़े यूरोपियन नस्ल के बछड़ों के समान ही क्षय-आक्रान्त थे और कुछ में इस रोग के अवरोधन की काफी शक्ति विद्यमान थी।

### भारतीय-चौपायों में क्षय-रोग संक्रमण

क्षय रोग के संक्रमण की जाँच वक्ता महोदय ने भारत के कुछ भागों में की थी। इसके लिए उन्होंने

वध्य-स्थानों ( slaughter houses ) के वधित पशुओं का भली प्रकार निरीक्षण किया। लाहौर के १,११६ पशुओं में से २५५ अर्थात् २२.८५ प्रतिशत पशु ऐसे थे जिनके नेत्र क्षय-रोगिक गिल्टी (Glandular leisions of tuberculosis) से ग्रस्त थे; उन पशुओं में विशेष रूप से गाय, भैंस तथा बैलों की संख्या ही अधिक रोगाक्रान्त थी। ३५७ परीक्षित गायों में से ६७ (अर्थात् १८ प्रतिशत से अधिक) इस रोग से पीड़ित थीं; ६४२ भैंसों में से १५२ (अर्थात् २३ प्रतिशत से अधिक) इस रोग से ग्रस्त थीं; और १७ बैलों में से ३६ (३० प्रतिशत से अधिक) इस रोग के शिकार थे। इस रोग से पीड़ित ८५ से लेकर ९० प्रतिशत पशुओं में अम्ल-कीटाणु पाए गए। तपेदिक के कीटाणुओं को सूक्ष्म दर्शक यंत्र द्वारा निरीक्षण करने के लिए आग्रहपूर्वक कहा जा रहा है, किन्तु कैलमैट का कथन है कि क्षय के कीटाणुओं का सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा भी व्यक्त करना दुष्कर है। उत्तरगामी अन्वेषणों से भी यही स्पष्ट है कि भारत के अन्य भागों में भी इस रोग की द्रुतगति वर्धमान है।

अतएव भारत में इस रोग का संक्रमण विस्तार योरप के समान ही व्यापक है। यहाँ इस रोग की व्यापकता वृषभकुल में ही अधिक है और अनेक दशाओं में योरप तथा अमेरिका से भी अधिक तीव्रतर है। इस रोग की गहनता दर्शाते हुए भाषण में क्षय-रोग के कीटाणुओं की भीषणता पर, जो भारतीय चौपायों को प्रभावित करती है, प्रकाश डाला गया है।

शीदर ने मुक्तेश्वर में कुछ प्रयोग किए हैं और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि भारत में योरप की अपेक्षा क्षय रोग की कम व्यापकता का कारण रोग विषयक कीटाणुओं की निर्बलता है। पशुओं की नस्ल का सम्बन्ध वे इससे नहीं बताते। डॉक्टर सापरकर ने क्षय रोग के कीटाणुओं को भारतीय पशुओं से विलग कर उनकी जाँच की और यह सिद्ध किया है कि वे योरपीय जाति के कीटाणुओं से किसी प्रकार भी अशक्त और दुर्बल नहीं है। इसके लिए उन्होंने भारतीय रोग-ग्रसित पशुओं में ४० से अधिक कीटाणुओं की विभिन्न जातियों का अलग कर उनकी परीक्षा की है। परीक्षण के आधार पर वे बतलाते हैं कि वे सब के सब कीटाणु वृषभ कुलीय हैं। मद्रास के केवल एक संक्रमित सांड़ के शरीर में ही उन्हें गाय-बैल और शाकुनिक जीवाणुओं का सम्मिश्रण मिला है।

तदनन्तर भाषण में मानवीय क्षय-रोग कीटाणुओं का भारतीय चौपायों पर प्रभाव वर्णित है। यद्यपि मानवी रोग कीटाणुओं का संक्रमण पशुओं पर व्यापक नहीं पाया गया; परन्तु फिर भी चौपाए उसकी छूत को सहज ही ग्रहण कर लेते हैं और उनको दूध में निःसरण कर डालते हैं जैसा कि क्षयरोग कमीशन के कार्य-कर्त्ताओं ने अपने प्रयोगों द्वारा प्रगट किया है। अतः रोग-निष्क्रमण की इस प्रणाली से जन साधारण के स्वास्थ्य को काफी भय है। अतः चौपायों में क्षय-रोग विषयक प्रश्न पर काफी छानबीन और खोज की आवश्यकता है और डॉक्टर रोज़ के मतानुसार जिन उपायों से पशुओं की रक्षा इस रोग से की जा सकती है वे ही अन्ततः मानव जाति के लिए लाभप्रद होंगे।

## घरेलू पशुओं के अतिरिक्त अन्य जानवरों में क्षय-रोग निष्क्रमण

घरेलू चौपायों के अतिरिक्त पशुओं की अन्य जातियां भी प्राकृतिक क्षय रोग के शिकार रहते हैं। कर्नल लिस्टन के साथ वक्ता महोदय ने बम्बई के चिड़ियाघर के जानवरों की परीक्षा की थी और उन परीक्षणों के अनुसार अनेक जातियों के पशु जैसे लामक, चित्तीदार हरिण, नीलगाय, साँभर, मृग, अरबी गज़ल और मनाया का टापीर आदि सभी क्षय रोग के शिकार से ग्रस्त थे। बम्बई में भोजन के लिए वधित सूअरों की कुल संख्या का ४ प्रतिशत भाग क्षय-रोगी पाया गया था। इसी प्रकार घोड़े ऊँट और हाथी आदि अन्य जीव-जन्तु भी क्षय रोग पीड़ित रहते हैं।

शल्याकृतिक क्षय रोग के विषय पर भाषण में अखिल भारतीय पशु चिकित्सा सम्मेलन के द्वितीय अधिवेशन की ओर निर्देश किया गया है जो कि सन् १९२१ में कलकत्ता में हुआ था। मेजर-जनरल (उस समय कर्नल) हचिनसन ने उस अधिवेशन में यह बताया था

कि शल्याकृतिक क्षयरोग के विभिन्न रूप जैसे अस्थि, जोड़ और गिल्टी इत्यादि भारतवर्ष में भी उतने ही उग्र रूप में व्यापक हैं जितने कि पाश्चात्य देशों में। आगे चल कर उन्हों ने इस बात पर अधिक जोर दिया था कि मानवी क्षय रोग सम्बन्धी कीटाणुओं की विशेषतः काफी खोज करने की आवश्यकता है। अमेरिका और योरुप में की गई खोजों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि मनुष्यों में अधिकांशतः और छोटे बच्चों में विशेष कर चौपायों की क्षयरोग वाली जाति आक्रमण करती है और यह दूध द्वारा ही फैलता है। डाक्टर सोपरकर द्वारा की गई जाँचों से पता चलता है कि भारत में क्षय-रोग संक्रमण मानवी-क्षय-रोगक कीटाणुओं द्वारा ही होता है। अतः इन खोजों द्वारा यही प्रमाणित होता है कि चौपायों वाले क्षय-रोग के कीटाणुओं का मानवी क्षय-रोग के निःसरण में अधिक महत्वपूर्ण भाग नहीं है, यद्यपि चौपायों में क्षय रोग का संक्रमण आज अति उग्र रूप में पाया जाता है। इसका कारण कदाचित दूध को उबाल कर पीना हो सकता है।

जोन-रोग से जानवरों के बचाव के सम्बन्ध में भाषण में यह निर्देष किया गया है कि यदि जानवरों को जीवित शाकुनिक-क्षय-रोगक करण्डाणु का भेदन (injection) दिया जाय तो वे रोग-मुक्त किए जा सकते हैं। जोन-रोग का अभिसरण अम्ल-क्षय-रोगक करण्डाणु द्वारा होता है जिन्हें हम जोन करण्डाणु कहते हैं।

क्षय रोग में व्युत्युत्साहिक (allergic) प्रकृति पर भाषण में बताया गया है कि जब सामान्य (स्वस्थ) पशु की चमड़ी द्वारा जल-मिश्रित tuberclin का भेदन किया जाता है तो कोई असाधरण परिवर्तन दृष्टिगत नहीं होते, किन्तु जब वही क्रिया क्षयिक रोगी के की जाती है तो तीव्र क्रमि विस्फोट होने लगते हैं।

डाक्टर सोपरकर और उनके साथियों ने रोग की व्युत्युत्साहिक प्रकृति के ऊपर कुछ प्रयोग किए हैं। इन प्रयोगों में उन्होंने tuberclin भेदन पर होने वाले क्रमि-विस्फोट की जाँच की है। जाँचों के फलस्वरूप निम्न परिणाम निकले हैं—(१) स्वस्थ पशु में सूची-भेदन (tuberclin injection) से उसकी त्वचा में कोई परिवर्तन नहीं होता है। (२) जब केवल अकेले त्वचा-स्वत्व का ही सूची-भेदन किया जाता है तो भी कोई परिणाम नहीं निकलता है। (३) जल त्वचा-स्वत्व और tuberclin साथ-साथ कई घंटों तक भेदित किए जाते हैं तो परिणाम उसी अनुसार निकलते हैं जिस प्रकार कि tuberclin का क्षयिक पशु में भेदन करने पर होते हैं।

निस्यन्दक युक्त क्षयिक करण्डाणु (filterable form of the tubercle bacillus) पर भी भाषण में विचार किया गया है। निस्यन्दक क्षयिक करण्ड-काणु के विद्यमान होने पर प्रायः मतभेद है। कुछ विख्यात वैज्ञानिक इसके पक्ष में हैं कि निस्यन्दक क्षयिक करण्डकाणु वर्तमान हैं और कुछ विपक्ष में भी हैं। वक्ता महोदय की सामान्य खोजों का इस भाषण में उल्लेख था। उन्होंने यह सिद्ध किया था कि पशुओं से प्राप्त श्लिष्कि-निस्यन्दक (filterates of sputa) और मानवी श्लिष्कि निस्यन्दक दोनों में काफी अन्तर रहता है। ऐसे ही कुछ परिणाम पेरिस में वाल्टिस, निग्रे और वानडीन्ने ने भी प्राप्त किए हैं। जिनसे यह सिद्ध होता है कि निस्यन्दक करण्डकाणु वर्तमान रहते हैं और वे क्षयिक करण्डकाणु की उत्पत्ति की एक स्थिति है।

## क्षय-रोग नियन्त्रण

तत्पश्चात् अपने भाषण में डाक्टर सोपरकर ने क्षय से बचाव और उसके नियन्त्रण सम्बन्धी बातों पर प्रकाश डाला है। उन्होंने बताया कि क्षय-रोग संक्रमण सम्बन्धी विश्वस्त आँकड़े तो हमें प्राप्त नहीं हैं, किन्तु साधारण खोजों के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि भारतवर्ष में प्रति वर्ष लगभग ५ लाख मनुष्य क्षय रोग से मर जाते हैं। बड़े बड़े नगरों में क्षय-रोग से होने वाली मृत्यु का अनुमान प्रति १,००,००० पीछे २०० से लगाकर ४५० तक है। बंगाल की हाल की प्रकाशित एक विज्ञप्ति के अनुसार वहाँ ७ प्रतिशत मनुष्य क्षय रोग के ग्रास बन जाते हैं और तीन प्रतिशत मृत्युएँ बीमारी की असाध्यता के कारण होती हैं। सन् १९२० में भारतवर्ष में लैङ्कैस्टर ने एक जाँच की थी। उन्होंने अनुमान लगाया था कि प्रति ७ या ८ मृत्युओं में से एक क्षय रोग से ग्रस्त था और नगरों में यह संख्या प्रति

तीन मनुष्यों में एक तक बढ़ जाती है। इससे यह सिद्ध होता है कि भारतवर्ष में क्षय रोग अत्यन्त भीषण रूप से मनुष्य को ग्रसे हुए है। यदि प्रति ५ मृत्युओं में से एक क्षय रोग की मान ली जावे तो यह सिद्ध होता है कि प्रति वर्ष २५ लाख मनुष्य इस रोग द्वारा मर जाते हैं।

पाश्चात्य देशों में इस रोग के नियन्त्रण में काफी सफलता मिली है। वहाँ क्षयाकान्त रोगियों के पृथक्कीकरण पर विशेष रूप से जोर दिया जाता है। उन देशों में रोगियों को पृथक कर अलग शय्या और बिछावन का प्रबन्ध रहता है और इस प्रकार मृत्यु-संख्या घट कर बहुत कम रह गई है। प्रति १०० मरने वाले रोगियों के पीछे ग्रेट-ब्रिटेन में १००; डेन्मार्क में १८६; स्वीडन में १७० और न्यू-यौर्क राज्य में ३०० पृथक शय्या हैं। संयुक्त-राज्य अमेरिका में मृत्यु-संख्या में क्रमशः बहुत कमी हो चुकी है। सन् १८६० में वहाँ प्रति १,००० व्यक्तियों में मृत्यु का अनुमान २४५ था किन्तु सन् १९४७ में वही घट कर ३७०४ रह गई। मृत्यु-संख्या की यह कमी पृथक-शय्या और आधुनिक प्रणाली के उपचारों के कारण ही हो सकी है।

भारतवर्ष में इस पद्धति का अनुकरण करने के लिए ७,००० के स्थान पर ५ लाख पृथक शय्या की आवश्यकता है। १२० के स्थान पर ४४०० उपचार गृह और २०० की जगह १३००० शिक्षित चिकित्सकों की आवश्यकता है। भारतवर्ष में भी इस रोग के निवारण के लिए पाश्चात्य पद्धति अनुकरणीय है।

## व्यय

विगत ४० वर्षों में अमेरिका में क्षय चिकित्सा गृहों के संस्थापन में लगभग ३००,००० डालर की पूँजी व्यय हो चुकी है और उन पर प्रतिवर्ष १००,००० डालर और खर्च होते हैं। इसी आधार पर भारतवर्ष के लिए भी व्यय का अनुमान लगाया गया है। यदि चिकित्सा के हर व्ययों को जोड़ लिया जावे तो उपचार-गृह में प्रति रोगी ७५०) रुपये भोजन सहित साधारण दिनों में व्यय होंगे। व्यय के इस औसत से ५००००० मृत्युओं के पीछे ३७,५०,००,०००) वार्षिक व्यय होगा। यदि इस लागत में रोग-निवारण और उपचार सम्बन्धी अन्य व्यय जो कि लगभग एक-तिहाई होंगे और जोड़ दिए जावें तो सम्पूर्ण भारत के व्यय का लेखा ५० करोड़ रुपया होता है।

एक बड़े चिकित्सालय के सुपरिन्टैंडैन्ट ने अभी कुछ समय पूर्व यह बतलाया है कि यदि किसी रोगी को परिस्थितिवश एक दिन भी अधिक ठहरा लिया जाता है तो इसमें राज्य के २) प्रति दिन व्यय नहीं होते किन्तु ६) होते हैं। इस हिसाब से चिकित्सालयों में शय्या और औषधियों का कुल व्यय १५० करोड़ रुपये होगा। इतनी बड़ी पूँजी केवल एक ही रोग पर व्यय नहीं की जा सकती है। इसके अतिरिक्त ऐसी कोई भी योजना एक साथ ही कार्यान्वित नहीं की जा सकती है। परन्तु चूँकि विषय अत्यन्त ही आवश्यक है अतः इसके उपयोगी भागों को कार्यान्वित करने में असाधारण विलम्ब न होना चाहिए। इसके लिए केवल एक उपाय है और वह यह कि रोग के बचाव के लिए बी० सी० जी० का टीका लगाना। क्षय रोग एक सांसारिक विषय है और इसे यू० एन० ओ० की स्वास्थ्य सभा ने अपने हाथों ले लिया है। उसके निर्णयानुसार बी० सी० जी० का टीका ही केवल इस समय अमोघ औषधि हो सकती है जो कि हर प्रकार परीक्षित है। इस विधि से रोग का नियन्त्रण करने के लिए यू० एन० ओ० ने योरप के दस देशों के ५०,००६० बच्चों को टीका लगाने की एक अपूर्व योजना भी तैयार करली है। १०,०००० से अधिक टीका लगाए हुए व्यक्तिओं को जाँच करने से यही प्रमाणित होता है कि बी० सी० जी० के टीके सरल हैं और इनसे किसी प्रकार की हानि की आशंका नहीं है। इसे पुष्ट करने के लिए कैल्मेट ने अपनी जाँच के आधार निम्न बातें बताई हैं—"चार वर्ष पूर्व लगभग ५७६ बच्चों के बी० सी० जी० का टीका लगाया गया था और वे बच्चे निरन्तर क्षयिक परिवारों में ही रहते चले आए हैं, किन्तु उनमें से आज तक एक भी नहीं मरा है और न उन्हें फिर से किसी प्रकार रोग का छूत ही लग पाया है। यद्यपि उन्हीं चार वर्षों में अन्य बच्चों में से जिनका पालन-पोषण उस वातावरण में हुआ था ७·४% से ७१·५% तक मर चुके हैं।"

इसी प्रकार डेन्मार्क के विषय में भी कहा जाता है।

जिन बच्चों के बी० सी जी० का टीका लगाया जा चुका था वे यद्यपि क्षयिक परिवारों में रहे, रोगियों से हर प्रकार मिले और जुले किन्तु उन्हें रोग ने फिर नहीं घेरा। यहाँ तक कि अन्त में रोग क्रमशः विलीन ही हो गया। वील हैलो ने २५ वर्ष पूर्व जिन बच्चों के बी० सी० जी० का टीका लगाया था उनके विषय में इसी बात की पुष्टि होती है। इस प्रकार वक्ता महोदय अन्त में बी० सी० जी० को हर प्रकार सन्तोषजनक बताते हैं और अन्त में इसीके अनुसरण करने का सुझाव देते हैं। इसके लिए उन्होंने निम्न प्रणाली बताई है—प्रत्येक नवजात शिशु और स्कूल जानेवाले बच्चों तथा उन व्यक्तियों के भी जिनके कि ट्यूबरक्लिन की परीक्षा ऋणात्मक (Negative) सिद्ध हुई है बी० सी० जी० का टीका लगाया जाना चाहिये। इसके पश्चात् बी० सी० जी० को प्रमित (standerdise) करना आवश्यक है। इस प्रकार डाक्टर सोपरकर ने बताया है कि भविष्य में बी० सी० जी० का भारत में क्या स्थान होगा?

### बी० सी० जी० के टीकों का भारत में प्रचार

भारत सरकार के स्वास्थ्य विभाग ने तपेदिक रोग के नियन्त्रण के प्रश्न पर काफी सोच-विचार कर यही तय किया है कि बी० सी० जी० के टीके ही अन्ततः प्रभावशाली तथा सस्ते बैठेंगे और इसका उपयोग बृहद् रूप में क्षय रोग के निवारण करने के लिए किया भी जा सकता है। अतः केन्द्रीय सरकार के तत्वावधान में कुछ चुने हुए क्षेत्रों में पहिले इसकी परीक्षा की जायगी। बी० सी० जी० का टीका लगाने की कई रीतियाँ हैं—(१) मौखिक (Oral); (२) अधोचर्मीय (Subcutaneous); (३) त्वचान्तरिक (intradermal); (४) चर्म द्वारा (percutaneous); (५) नीग्र और ब्रेटे की पद्धति द्वारा (Scarification method of Negre and Bretey); (६) श्वास नालिका द्वारा (respiratory route by B. C. G aerosol) और (७) कपालय-नासा विधि (Bucco-nasal administration)

भारत में अधिकांशतः त्वचान्तरिक विधि को ही अनुसरण किया जाता है परन्तु ऊपर बताई गई विधियों में से बहुत ऐसी हैं जिनके बाद में होने वाली क्षति का भी कोई भय नहीं रहता। अतः बी० सी० जी० का प्रयोग व्यापक करने के लिए तथा खर्च में कमी करने के लिए हमें उपरोक्त दोष (होने वाली क्षति) को दूर करना होगा।

भाषण के अन्त में यह कह कर समाप्त कर दिया गया है कि "उपयुक्त सगठन, उत्साह, इच्छा और शक्ति मिलने पर कम लागत में पाँच वर्ष के अन्दर ही रोग से कई सहस्र व्यक्तियों को बचाया जा सकता है।

---

# चन्द्रशेखर वेंकट रमन

लेखक :—जितेन्द्र नाथ वाजपेयी, एम० ए०, प्रयाग विश्वविद्यालय।

सन् १९४८ का वर्ष भारतीय इतिहास में बड़े ही महत्व का है क्योंकि इसी साल भारतवर्ष के सब से बड़े और विख्यात वैज्ञानिक सर चन्द्रशेखर वेंकट रमन की साठवीं वर्ष पूरी होती है। सर रमन भारत के ही नहीं बल्कि समस्त विश्व के उच्च वैज्ञानिकों में से एक हैं।

सर रमन का जन्म ७ नवम्बर १८८८ में त्रिचनापल्ली में हुआ था। आपके पिता श्री चन्द्रशेखर अय्यर गणित तथा भौतिक शास्त्र के त्रिचनापल्ली तथा विजिगापट्टम में अध्यापक थे। बालक रमन पर पिता के प्रकाण्ड पाण्डित्य की पूरी छाप पड़ी। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा ए०वी०एन० कालेज विजिगापट्टम तथा मद्रास प्रेसीडेन्सी कालेज में हुई। आपकी प्रतिभा की आभा सब को तभी ज्ञात हो गई थी जब आपने सोलह वर्ष की आयु में बी० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की और विश्वविद्यालय

का स्वर्ण पदक प्राप्त किया। सन् १६०६ में आपने एम. ए. की परीक्षा पास की और इसमें आपको सम्मान मिला।

अठारहवीं साल में आपने अपना सर्व प्रथम वैज्ञानिक निबन्ध लन्दन की दार्शनिक पत्रिका में छपवाया। सन् १६०७ में आप इण्डियन फाइनेंस सरविस की परीक्षा में बैठे और भारतीय सरकार के एक उच्च पदाधिकारी हो गए। सरकारी नौकरी करते हुए भी आपने अपने अनुसन्धान कार्य को न छोड़ा और कई मौलिक वैज्ञानिक निबन्ध प्रकाशित कराए। आप की अद्भुत प्रतिभा को देखकर कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति महोदय ने आपको पलित प्रोफेसर के पद पर नियुक्त किया। बस अब क्या था आपने बड़ी संख्या में अपने मौलिक निबन्धों का प्रकाशन करवाया। सन् १६२२ में प्रसन्न हो कलकत्ता विश्वविद्यालय ने आपको डाक्टर आफ साइंस की डिग्री से सम्मानित किया। उसी साल आप 'लन्दन की रायल एशियाटिक सोसाइटी' के फेलो भी चुन लिए गए। सन् १६३० में आपको अपने आविष्कार 'रमन एफेक्ट' पर नोबल पुरस्कार मिला। विश्वम्भर के विश्वविद्यालयों तथा समितियों से आपको उपाधियाँ मिलीं। आपको १६२६ में ब्रिटिश सरकार ने नाइट अर्थात् सर की पदवी से आभूषित किया।

कई बार आपने हिन्दुस्तान की तथा विदेश की सभा समितियों में गौरव प्रद भाषण दिए हैं।
यदि यह कहा जाय कि सर चन्द्रशेखर रमन भारतीय वैज्ञानिक अनुसन्धानों के संस्थापक हैं, तो अत्युक्ति न होगी। जिस उत्साह से आपने इतने बड़े वैभव को त्यागा था उसी के कारण बहुत से शिष्य उनसे अनुसन्धान कार्य सीखने गये। आपके मुख्य शिष्यों में सर के० एस० कृष्णन्, भगवन्तम तथा आर० एस० कृष्णन् इत्यादि जैसे महारथी वैज्ञानिक हैं।

इतना ही नहीं, सर रमन केवल उच्चकोटि के वैज्ञानिक ही नहीं हैं पर एक बहुत बड़े वक्ता भी हैं। सर कृष्णन् ने आपके भाषण की उपमा ठीक ही नटराज के नाचों से दी है।

भारत सरकार ने आपको राष्ट्रीय प्रोफेसर बनाकर आपका अभिनन्दन किया है। यह निश्चय है कि इस पद पर रह कर सर रमन भारत की वैज्ञानिक उन्नति में बड़ा भाग लेंगे। आपके सम्मानार्थ प्रयाग में इसी साल इण्डियन साइंस कांग्रेस ने आपकी ८० वीं वर्षगांठ पर बड़े उत्सव से समारोह मनाया। इस सम्मेलन में श्रीमती सरोजनी नायडू तथा सर के० एस० कृष्णन् और जी० वी० लाल के ओजस्वी भाषण हुए। श्रीमती नायडू ने कहा कि यदि सर रमन नोबेल पुरस्कार न भी पाते तो भी उनकी गणना महान् वैज्ञानिकों में होती। आपने यह भी कहा कि यद्यपि वह सर रमन की आगामी वर्ष गाठों पर उपस्थित न रह सकें तो भी जहाँ कहीं भी वह होंगी उनकी आवाज़ यही कहेगी 'रमन महान्' और 'अमर रमन'। श्री जी० वी० लाल ने सर रमन को अमेरिका के पत्रकारों की शुभ कामनाएँ भेंट कीं।

ऐसे धुरंधर वैज्ञानिक के सम्मान का उत्सव प्रयागराज में बड़े ही समारोह के साथ समाप्त हुआ। हम सर चन्द्रशेखर वेंकट रमन को शुभ कामनाओं के अतिरिक्त भेंट ही क्या कर सकते हैं और यही चाहते हैं कि सर चन्द्रशेखर रमन अपनी मातृभूमि का नाम बहुत काल तक ऊँचा रख सकें।

---

# मानवता का भविष्य और वैज्ञानिक

## संयुक्त प्रान्त की गवर्नर श्रीमती सरोजनी नायडू की नेशनल एकेडमी आफ़ साइन्सेज़ के उद्घाटन के समय की वक्तृता

बहुधा ऐसा कहा जाता है कि वैज्ञानिक जन समुदाय से पृथक रहते हैं परन्तु भला वैज्ञानिकों में ऐसा साहस कब हो सकता है कि वे जनता से अलग रह सकें। जनता से पृथक रहना तो संसार का अहित करना होगा। वैज्ञानिकों के पास दूसरों को देने के लिये एक विशेष सन्देश होता है। वैज्ञानिकों को चाहिये कि अति साधारण मनुष्य को भी सरलतम भाषा में ज्ञान प्रदान करें क्योंकि निर्धन दीन व्यक्तियों का शिक्षा और ज्ञान प्राप्त करना जन्म सिद्ध अधिकार है अत. स्पष्ट है कि विज्ञान की भाषा कभी निरर्थक और दुरूह नहीं हो सकती।

बहुधा यह देखा गया है कि लोग विज्ञान को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं परन्तु मुझे तो विज्ञान अत्यन्त सरस और उत्साह वर्द्धक प्रतीत होता रहा है। वैज्ञानिकों का भी यह कर्तव्य है कि अपने विषय को ऐसे शब्दों द्वारा प्रतिपादित करें जिनसे वैज्ञानिक विषयों के प्रति जनता की अधिक रुचि बढ़े।

ऐसे प्रयत्न होने चाहिये कि पुरुषों और स्त्रियों को जीवन के प्रारम्भ से ही वैज्ञानिक बातें सीखने को मिल सकें। वैज्ञानिक साहित्य ऐसे सरल शब्दों में लिखा जाना चाहिये जिन्हें बच्चे भी समझ सकें। इस दृष्टि से मिन्यू मसानी की पुस्तक आदर्श मानी जा सकती है क्योंकि छोटे छोटे बच्चे भी उसे रुचि पूर्वक पढ़ते हैं।

यह ठीक है कि सरकार के बिना सहयोग के विज्ञान की उन्नति नहीं हो सकती। मैं उन सभी मन्त्रियों से जिनका सम्बन्ध इस प्रान्त की अभिवृद्धि से है आग्रह करूँगी कि जो लोग विज्ञान की सेवा करना चाहते हैं उन्हें सहयोग और सहायता प्रदान करें।

मानव समाज का भविष्य वैज्ञानिकों के हाथ में है। वे जनता का बहुत लाभ कर सकते हैं। जन समुदाय में प्रचलित कुरीतियों का वे निवारण कर सकते हैं।

मेरे पिता भारतवर्ष के पहले आधुनिक वैज्ञानिक थे। इनके बाद सर प्रफुल्लचन्द्र राय की गणना है। आचार्य राय ने एक बार मुझसे यह कहा था कि तुम्हारे शरीर में रासायनिक रुधिर है। अब मेरे और तुम्हारे बीच में रसायन का सम्बन्ध है। मैं एक बार एकेडेमी आफ साइन्सेज के अधिवेशन में जो हैदराबाद में हुआ था सम्मिलित हुई थी। उस अधिवेशन में डा० सी० वी० रमन और प्रो० बीरबल सहानी के समान विख्यात वैज्ञानिक सम्मिलित हुये थे। यह वह वर्ष था जब प्रो० ए० वी० हिल भारतवर्ष में कुछ लोगों को रायल सोसाइटी की सदस्यता का प्रमाण पत्र देने के लिये आये थे। उस समय से एकेडेमी आफ साइन्सेज में मेरी रुचि बहुत बढ़ गई है।

भारतवर्ष की प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकारें देश की उन्नति के लिये अनेक वैज्ञानिक आयोजनायें बना रही हैं। इन आयोजनाओं की सफलता के लिये वैज्ञानिकों के सहयोग और निपुणता की विशेष आवश्यकता है। वैज्ञानिकों की सहायता पाये बिना हमारी एक भी आयोजना सफल नहीं हो सकती है। भला कौन सी वह आयोजना है जिसमें विज्ञान से सहायता न मिल सकती हो। अतः वैज्ञानिकों को बेचारे राजनीतिज्ञों और राज्याधिकारियों के आशयों के प्रति सन्देह नहीं करना चाहिये। उनसे जो कुछ हो सकता है वे सब कुछ करने को उद्यत हैं।

मेरा वैज्ञानिकों से यह अनुरोध है कि यदि तुम्हारे पास कुछ ज्ञान देने को है तो तुम्हारा यह कर्तव्य है कि तुम राजमार्गों पर चलते हुये और साथ ही साथ गली और कूचों में जाकर और फिर पर्वत के शिखरों पर से इस ज्ञान के सन्देश को घोषित करो। अपनी गूँज से जनता को उद्वेलित कर दो। अगर तुम्हारे पास कोई सन्देश देने को है तो बताओ किन्हें देने के लिये यह सन्देश तुमने छिपा रक्खा है। जीवन से विरक्त और पृथक रहकर इतने वर्षों तक जनता का तुमने बड़ा अहित किया है। तुम्हें अपना ज्ञान छोटे कबाड़ियों की तरह से छोटे छोटे

से बर्तनों में सीमित रख कर छिपाना नहीं चाहिये। तुम्हारे पास तो वह जीवन मूर ज्ञान है जिससे मानवता सम्पन्नता प्राप्त कर सकती है।

जनता तो यह चाहती है कि उसे सीधी-साधी भाषा में ज्ञान प्राप्त हो। विज्ञान का सन्देश देश के गाँव-गाँव में फैलना चाहिये और बच्चों बच्चों तक एवम स्त्रियों तक इसे पहुँचना चाहिये। विज्ञान केवल धनी मानियों की सम्पत्ति नहीं है निर्धन व्यक्तियों को भी इसे प्राप्त करना जन्म सिद्ध अधिकार है। वैज्ञानिकों का कर्तव्य है कि उनके अनुसन्धानों का ज्ञान मनुष्य मात्र में प्रसारित हो। विज्ञान का उद्देश्य जन समुदाय की सेवा करना है जिसमें प्रत्येक पुरुष, महिला और बच्चा सम्मिलित हो। विज्ञान अत्यन्त चमत्कार पूर्ण विषय है। निरन्तर अनेक वर्षों के परिश्रम और धैर्य के पश्चात् वैज्ञानिक ऐसी कोई विलक्षण खोज करता है जिससे मनुष्य मात्र को लाभ पहुँचने की सम्भावना प्रतीत होती है। लोगों की यह धारणा भ्रमपूर्ण है कि विज्ञान नीरस मृत्यप्राय एवम् मानवता का विरोधी है। परन्तु इस धारणा को निर्मूल सिद्ध करने के लिये वैज्ञानिकों का यह कर्तव्य है कि जन-मात्र को लोकोपयोगी शब्दों में इस ज्ञान का सन्देश दें और उनकी अविद्या और अन्धकार को दूर करें। वैज्ञानिकों का यही आदर्श होना चाहिये। मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी कि इस एकेडमी द्वारा जो साहित्य प्रकाशित हो वह ऐसा ही नहीं जिसका उपयोग देश प्रदेश के विशेषज्ञ और विद्वान ही कर सकें। इस एकैडमी को यह भी चाहिए कि ऐसे भी साहित्य को प्रकाशित करे जिसकी भाषा सरल हो और जिससे साधारण जनता अपनी देशी भाषा में लाभ प्राप्त कर सके। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये एकैडमी एक पृथक शाखा खोल दे तो उससे बड़ा लाभ होगा।

मेरा यह विश्वास है कि किन्डरगार्टन वाली अवस्था से ही स्कूलों में वैज्ञानिक विषयों की शिक्षा आरम्भ होनी चाहिए ऐसा करने से बच्चों पर स्थायी प्रभाव पड़ सकेगा। मुझे अपने सम्बन्ध में याद है कि बचपन में शैय्या पर लेटे-लेटे मैंने जो वैज्ञानिक कहानियाँ अपने पिता से सुनी थीं उनका अब तक मेरे ऊपर प्रभाव अंकित रहा है। वस्तुतः जो कुछ भी साहित्य, विज्ञान अथवा इतिहास मैं जानती हूँ वह सब उसी समय का है जब मैं आठ वर्ष की थी। बचपन में प्राप्त किया गया ज्ञान भविष्य के निर्माण की आधार शिला बन जाया करता है। जो कुछ रुचि मैं आज इस समय ज्ञानविज्ञान के एवम् मानव-विचार के प्रत्येक क्षेत्र में ले रही हूँ मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यह तभी सम्भव हो सका है जब कि मेरे बचपन में मेरे पिता ने उस ज्ञान का प्रकाश मुझे दिखा दिया था।

इस देश में जो कुछ भी आयोजनायें बन रही हैं उनकी सफलता में वैज्ञानिकों का सहयोग अत्यन्त आवश्यक है। वैज्ञानिकों का लक्ष्य यह नहीं होना चाहिये कि उन्हें राज्य सत्ता में कुछ अधिकार प्राप्त हो। उनका लक्ष्य तो जनसमुदाय को मानवता का मार्ग प्रदर्शित करना है। उनका यह उत्तरदायित्व पूर्ण अधिकार राज्याधिकार से कहीं अधिक महत्व का है। सिंहासन की पृष्ठभूमि में बैठ कर जो मनुष्य कार्य करता है वही वास्तविक शासक है। विज्ञान वस्तुतः मनुष्य का परोक्ष शासक है। विज्ञान का पवित्रतम उद्देश्य सत्य का अनुशीलन करना है। वैज्ञानिक अपनी क्षमताओं द्वारा संसार को परमाणु बम के विनाशकारी प्रभाव से भी बचा सकते हैं। यदि वे इतने भयानक विनाशकारी बम का आविष्कार कर सके तो उनमें ही इतनी भी क्षमता है कि जन-समुदाय का महान् हित भी कर सकते हैं और विध्वंस से जनता को बचा भी सकते हैं।

नेशनल एकेडेमी आफ साइन्सेज, जिसके अधिवेशन का मैं आज उद्घाटन कर रही हूँ देश की अग्रगण्य संस्था है और इसके सदस्य मानव समाज के एक नये मंगलमय भविष्य के निर्माण के लिये कटिबद्धप्रतीत होते हैं। भविष्य के इतिहास में आज का यह उत्सव अवश्य उल्लेखनीय रहेगा। मेरी यह शुभ कामना है कि अगले वर्षों में एकेडेमी को उत्तरोत्तर अधिकाधिक सफलता प्राप्त हो और इस एकेडेमी की संरक्षकता में अनेक उपयोगी अनुसंधान हों। यही नहीं, इस एकेडेमी द्वारा साधारण जनता को सुगम भाषा में वैज्ञानिक विषयों का ज्ञान प्राप्त हो।

# वैज्ञानिक और जन-सेवा

( प्रोफेसर श्री अमीय चरण बनर्जी के भाषण का भावानुवाद )

नेशनल एकेडमी आफ़ साइंस के १८ वें अधिवेशन के अवसर पर एकेडमी के प्रधान, प्रोफेसर बनर्जी ने निम्न भाषण दिया। इस अधिवेशन का उद्घाटन प्रयाग में माननीया श्रीमती सरोजनी नायडू, गवर्नर संयुक्त प्रान्त ने पहली जनवरी सन् १९४८ ई० को किया।

विज्ञान का सभ्यता और संस्कृति से बड़ा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। सभ्यता का कोई भी ऐसा अंग नहीं जिस पर विज्ञान का प्रभाव स्पष्ट प्रतीत न होता हो। भविष्य में तो मानव समाज पर विज्ञान का प्रभुत्व और प्रभाव और भी होगा ऐसी आशा की जा सकती है। यह जानने के लिये कि समाज और विज्ञान में वास्तविक सम्बन्ध क्या है हमें यह जानना चाहिए कि विज्ञान कहते किसे हैं? वस्तुतः सामान्य जनता विज्ञान शब्द से जो अभिप्राय समझते हैं वह कुछ दृष्टियों में तो अधिक विस्तृत परन्तु कुछ अन्य दृष्टियों में अत्यन्त संकुचित है। जब कभी विज्ञान शब्द का प्रयोग बहुवचन में होता है तो हमें इसकी विशिष्ट परिभाषायें देनी पड़ती हैं। हम इस समय इस बहुवचनार्थ विज्ञान का ही उल्लेख करेंगे। विज्ञान के सामने जो इस समय मुख्य समस्या है वह यह है कि यह सर्वसाधारण के परिचय की वस्तु बने और यही समस्त मानव-समाज के उपयोगी हो। मुझे यह कहने में कोई भी भय या संकोच नहीं है कि उन देशों में भी जो अपने को अत्यन्त सभ्य कहलाने का गर्व कर सकते हैं; जनता का अल्पांश ही यह समझता है कि विज्ञान किसे कहते हैं, इसके उद्देश्य क्या हैं, इसकी कार्य-पद्धति क्या है और वैज्ञानिक परिणाम क्या हैं। हमारे देश में तो ऐसे लोग इने गिने ही मिलेंगे जिन्हें विज्ञान का सच्चा परिचय हो। विज्ञान से सम्बन्ध रखने वाली अनभिज्ञता केवल निम्न-स्तर के मनुष्यों में ही नहीं है, अपने को अति उच्च और सुशिक्षित कहने वाले व्यक्ति भी विज्ञान से बहुत कुछ अनभिज्ञ हैं। सन् १९४५ ई० में जापान के दो अरक्षित नगरों का परमाणु द्वारा विध्वंश हुआ। उनसे लोगों को यह आशंका होने लगी है कि ज्यों-ज्यों परमाणु की शक्ति का उत्पादन किया जायेगा और उसके बहुत से उपयोग होंगे, सभ्यता और मानवता का भविष्य अत्यन्त भयावह हो जायेगा। वास्तविक बात तो यह है कि ऐसी आशंका रखने वाले यह भूल जाते हैं कि परमाणु की जिस शक्ति का परिचय परमाणु बाढ़ के विश्वकोटि के रूप में जापान में हुआ है उससे भी मनुष्य अनेक उपकारक प्रयोग कर सकता है। सम्भवतः वे यह नहीं जानते कि संसार में वैज्ञानिक इस सम्बन्ध में अत्यन्त प्रयत्नशील हैं कि परमाणु के विस्फोट से जो शक्ति प्राप्त होती है उसका उपयोग मानव-समाज के लाभ के लिये किया जाय। यह कहना आवश्यक न होगा कि अन्य प्रकार के विस्फोटक बमों का उपयोग नर हत्या करने में ही नहीं, पर्वतों की खुदाई में, सुरंगों के निर्माण में, पर्वतीय प्रदेशों में जन-मार्ग के बनाने में और इसी प्रकार के अन्य रचनात्मक कार्यों में भी किया जाता है।

विज्ञान के लक्ष्य और उद्देश्य से लोग कितने अनभिज्ञ हैं यह बात लोक-प्रिय समाचार-पत्रों से भी प्रकट होती है। इन समाचार पत्रों में बहुधा कभी कभी मौलिक त्रुटियाँ, पुराने जीर्ण उदाहरणों की ओर निर्देश और इसी प्रकार के अनुभव छपा करते हैं। यह ठीक है कि इसका समस्त दोष समाचार पत्रों के संपादन मंडल का ही नहीं है यह तो प्रत्येक वैज्ञानिक का उत्तरदायित्व है कि वह यह देखता रहे कि वैज्ञानिक विचारों और अनुसंधानों का प्रचार जनता में व्याख्यानों द्वारा, समाचार पत्रों द्वारा और चल-चित्रों द्वारा होता रहे। हमारे दुर्भाग्य की बात है कि हमारे अधिकांश वैज्ञानिक न तो जनता ही से संपर्क रखते हैं और न संवाददाताओं से। सम्भवतः इसलिए की वे सामान्य जनता में अपना विज्ञापन कराना अनुचित समझते हैं। वे जनता से दूर रहने का प्रयत्न करते हैं।

वस्तुतः वैज्ञानिक के लिये यह सर्वथा उचित है कि वे संवाददाताओं को यथार्थ संवाद को समझने, उसे प्रकाशित करने और जनता तक उसका प्रसार करने में समर्थ बनावें। यदि संवाददाता वैज्ञानिक की भावनाओं को ठीक प्रकार से न समझ सकेंगे और न व्यक्त ही कर सकेंगे तो जनता में भ्रान्ति फैलने की बड़ी सम्भावना रहेगी। जनता में विज्ञान और वैज्ञानिक के प्रति अविश्वास भी बढ़ेगा। अभी यह संभव नहीं हो सका है कि साधारण व्यक्ति के मस्तिष्क पर विज्ञान का प्रभुत्व जम गया हो। विज्ञान का प्रभाव इन लोगों पर बहुत कम और अस्थायी है। इसीलिये हम देखते हैं कि जनता में फलित ज्योतिष सम्बन्धी अन्धविश्वास है और तरह-तरह की तर्क शून्य धार्मिक रूढ़ियाँ भी अभी तक इस सभ्यतापूर्ण-युग में प्रचलित हैं। लोगों को अभी तो यह भी नहीं मालूम कि इनके देश-वासियों ने कौन सी वैज्ञानिक अन्वेषणायें की हैं और इनसे जीवन का क्या सम्बन्ध है। हमारे देश में तो बहुत कम ऐसे शिक्षित भारतीय होंगे जिन्हें भारतीय वैज्ञानिकों के अन्वेषणों का परिचय हो।

हमारी समस्याओं का समाधान अब केवल वैज्ञानिक कर सकते हैं। भारतवर्ष अब स्वतंत्र हो गया है। उसके ऊपर अब राजनीतिज्ञ और नैतिक उत्तरदायित्व अधिक है। उसके समक्ष जो कठिनाइयाँ हैं उनका समाधान अब विज्ञान के ही हाथ में है। अतः विज्ञान को अब सर्व-सुगम हो जाना चाहिये। वैज्ञानिक विधियों और वैज्ञानिक अनुसंधानों का अच्छी प्रकार प्रचार करना चाहिए। अच्छी प्रकार प्रचार करने का अर्थ आत्म-विज्ञापन नहीं है। हमारे अस्तित्व और हमारे देश के उत्थान के लिये ऐसा करना नितान्त आवश्यक है। वैज्ञानिकों का जनता से विरक्त रहना देश के हित में अत्यन्त बाधक है। यह कितना अनुचित है कि हमारे बहुत से राजनीतिक नेता महायुद्धों का उत्तरदायित्व वैज्ञानिकों के सर मढ़ते हैं और युद्धों के विध्वंसकारी प्रभाव के लिये वैज्ञानिकों को दोषी ठहराते हैं। उनका कहना है कि यदि वैज्ञानिक इन विनाशकारी एटम बमों के समान विध्वंसकारी अस्त्र शस्त्रों का अनुसंधान न करते तो संसार युद्ध के दुष्परिणामों से बचा रहता। वैज्ञानिक भी तो यही कह सकते हैं कि राजनीतिक व्यक्ति ही गत महायुद्ध के ही नहीं प्रत्युत समस्त युद्धों के कारण रहे हैं। वास्तविक बात तो यह है कि निरंकुश शासक, राजनीतिज्ञ और शक्ति के लोलुप व्यक्ति ही भयंकर युद्धों के कारण रहे हैं और चेष्टाओं ने ही इस धरती को नरक-तुल्य बना दिया है।

अब वह युग आ गया है कि वैज्ञानिकों को सामान्य संसार से अलग हो करके नहीं रहना चाहिये। विज्ञान के लिये यह कोई लज्जा की बात बात नहीं है कि वैज्ञानिक गद्य साहित्य के सर्वश्रेष्ठ निर्माता बने। अंग्रेजी साहित्य में हक्सले (Huxley), जीन्स (Jeans), एडिंगटन (Eddigton) और ब्रेग (Bragg) के समान कुछ व्यक्ति इस क्षेत्र में अपवाद स्वरूप विख्यात अवश्य हैं। अगर विज्ञान को जनता के योग्य सुबोध और सुगम बनना है तो विज्ञान और साहित्य का सम्बन्ध घनिष्ट होना चाहिये। वैज्ञानिक को साहित्य से प्रथक रहने का कारण उसकी अयोग्यता नहीं है प्रत्युत बात तो यह है कि उसे वैज्ञानिक कार्यों और अनुसंधानों में बहुत संलग्न रहना पड़ता है। मौलिक अनुसंधानों के प्रति उसकी प्रवृति इतनी तीव्र होती है कि वह भूल जाता है कि साधारण जनता के प्रति विज्ञान और वैज्ञानिक का कोई सम्बन्ध है या नहीं। इसका फल यह होता है कि विज्ञान के प्रसार का जो कार्य अच्छे और योग्य वैज्ञानिकों को करना चाहिये था वह अधकचरे और निम्नस्तर के वैज्ञानिकों को करना पड़ता है।

विज्ञान का लक्ष्य जन मात्र की सेवा करना है। वैज्ञानिक का राजनीतिक कर्तव्य क्या है यह स्पष्ट है। वस्तुतः उसका उत्तरदायित्व अधिक है। यह ठीक है कि संसार भर में ऐसे लोग जो वैज्ञानिक पद्धति पर शिक्षित हुए हैं इस बात के प्रति सदा असन्तोष प्रकट करते रहते हैं कि सरकारी कार्य करने की पद्धति अत्यन्त अप्रगतिशील और बाधक है। बहुधा सरकारी मशीन जिस प्रकार कार्य करती है उससे यह पता चलता है कि गत दो शताब्दियों में जो वैज्ञानिक अनुसंधान हुए हैं और जो मौलिक सत्य परिपालित हुए हैं उनके प्रति सरकार के लोगों में कितनी

अज्ञता और कितनी उपेक्षा है। इस मशीन के चलाने में बहुधा यथार्थ तथ्यों का निराकरण किया जाता है और अवैज्ञानिक विचारों और भावनाओं को आश्रय दिया जाता है। बहुत सी त्रुटियाँ, भ्रान्तियाँ भी फैलाई जाती हैं। विज्ञान की पद्धति यह रही है कि ज्ञात से अज्ञात की ओर धीरे-धीरे बढ़ना और ज्ञात बातों के आधार पर निष्पक्ष और निःस्वार्थ भाव से आलोचनायें करना और उनके आधार पर फल और परिणाम निकालना। अतः अब यह नितान्त आवश्यक हो गया है कि वैज्ञानिक राजनीति से पृथक रहने की अपनी वर्तमान नीति को छोड़ दें नहीं तो जनता की हानि होने की सम्भावना है। वह समय अभी दूर है जब कि घरेलू और अन्तरराष्ट्रीय राजनीति में वैज्ञानिक शैली को उचित स्थान मिलेगा। मैं यह जानता हूँ कि ऐसा होने में अभी देर लगेगी पर यह न समझना चाहिये कि यह असम्भव है। ऐसा होने में कठिनाइयाँ अवश्य हैं पर कठिनाइयों से घबड़ाकर अपने कर्तव्य से च्युत हो जाना वैज्ञानिक के लिये लज्जा की बात है।

वैज्ञानिकों को वस्तुतः बड़ा क्लेश और संताप होता है जब कि वे देखते हैं कि विज्ञान के आविष्कारों का उपयोग जनता की सेवा के लिये नहीं प्रत्युत मानव समाज के विनाश और विध्वंस के लिये किया जा रहा है। वैज्ञानिकों को इस बात का श्रेय देना चाहिये कि ये एक मत होकर मुक्त स्वर से इस बात की घोषणा करते हैं कि परमाणु बम सम्बन्धी कोई भी रहस्य गुप्त न रक्खा जाय और जनता के हित के लिये उसे प्रकाशित कर दिया जाय। परमाणु बम का रहस्य किसी एक देश की संपत्ति न रहे प्रत्युत सभी देशों के व्यक्ति इससे लाभ उठावें। पर वैज्ञानिकों की सुनता कौन है—नक्कारख़ाने में तूती की आवाज़—अब वह समय आ गया है कि वैज्ञानिकों को अपना एक संघ बना लेना चाहिये जिससे वे राजनीति के क्षेत्र पर अपना अधिक प्रभाव डाल सकें। इतना करने से अब काम नहीं चल सकता कि वे शान्त अलग बैठे रहें और वैज्ञानिक अन्वेषणों के अनुचित उपयोग का उत्तरदायित्व राजनीतिक पुरुषों तथा देश के अन्य नेताओं के सर मढ़ते रहें। जिन मनुष्यों पर उत्तरदायित्व इस बात का है कि वे ऐसी चीज़ों की खोज करें जिससे अत्यधिक लाभ और अत्यधिक हानि दोनों की संभावना है उन्हीं व्यक्तियों का उत्तरदायित्व यह भी है कि वे यह भी देखते रहें कि उनके अनुसंधानों का उपयोग जनता के हित के लिये और हानियों के निवारण के लिये हो रहा है। वैज्ञानिक अपने उत्तरदायित्व से केवल इतने से मुक्त नहीं हो सकते कि वे संसार से पृथक रहें और अपने को इसका अंग न बनने दें। वैज्ञानिक किसी एकान्त स्थान में शांति की साधना नहीं कर सकता। वह अपने को युग-जीवन से पृथक नहीं रख सकता है। उसे इस बात को गम्भीरता पूर्वक सोचना चाहिये कि जिस जन-समुदाय में वह रहता है और जिसकी सहायता से वह अपना अन्वेषण करने में समर्थ होता है उसके प्रति भी उसका विशेष कर्तव्य है।

संयुक्त राष्ट्रों ने यह पवित्र घोषणा की है कि इस बात का प्रयत्न करेंगे कि संसार में स्थायी शांति की स्थापना हो परन्तु इस दशा में सफलता प्राप्त करने के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि जनता में वैज्ञानिक प्रवृत्तियों की ओर रुचि उत्पन्न हो। खेद की बात है कि अभी जनता की रुचि वैज्ञानिक साधना की ओर बहुत ही कम है। लोग इस बात को तो स्वीकार करते हैं कि विज्ञान के आविष्कारों के कारण बहुत लौकिक वैभव प्राप्त हुये पर उसमें अब भी यह भ्रान्ति फैली हुई है कि विज्ञान आत्मिक और दार्शनिक अभीष्टों की सिद्धि में सफल नहीं हो पाया। लोग विज्ञान को साधारण लौकिक सम्पन्नताओं का देने वाला ही समझते हैं जिनके कारण बहुत से अमानुषिक और बहुत सी हानिकारक घटनायें भी हुईं। न जाने क्यों लोग विज्ञान के ज्ञान को निम्नस्तर का नीरस और हेय समझते हैं। विज्ञान के प्रति यह भावना इस युग की ही है। प्राचीन भारतीय और यूनानी भावनाओं के आधार पर तो कला और विज्ञान का सहचारी सम्बन्ध माना जाता था। दोनों की सहायता के आधार पर सामान्य संस्कृति का निर्माण होता था। १९वीं शताब्दी में जो वैज्ञानिक प्रगति हुई उसका राजनीति और अर्थशास्त्र में जिस प्रकार दुरुपयोग हुआ उसके कारण ऐसी भावना बन गई। अनेक अन्ध

विश्वासगत रूढ़ियों का उन्मूलन विज्ञान ने किया और इसलिये भी उन लोगों की भावनायें जिनकी स्वार्थ साधना रूढ़ियों के आधार पर होती थीं, विज्ञान के प्रतिकूल हो गई। दुर्भाग्य की बात है कि साधारण जनता विज्ञान को मानवता का विरोधी समझती है। केवल थोड़े से ही एडिंगटन और ह्वाइट हेड के समान गणितज्ञ दार्शनिक ऐसे हुए हैं जिन्होंने इन भावनाओं के प्रतिवाद करने का प्रयत्न किया है। समस्त वैज्ञानिकों का यह कर्तव्य है कि विज्ञान के सम्बन्ध में जो भ्रान्तियाँ जनता में उपस्थित हो गई हैं उसका प्रतिवाद करें और विज्ञान का वास्तविक महत्व जनता को बतावें। विज्ञान यह कभी नहीं कहता कि उसने अपरिवर्तनशील निरपेक्ष सत्यों का उद्घाटन किया है। परन्तु यह अवश्य है कि विज्ञान ने ऐसे ज्ञान का परिपादन किया है जिसकी सत्यताओं का परीक्षण सभी कर सकते हैं और जिसके ज्ञान से सब को लाभ हो सकता है। वस्तुतः विज्ञान का लक्ष्य सत्य, पूर्ण सत्य और केवल सत्य की खोज करना है। न्याय और विधान से सम्बन्ध रखने वाले मेरे मित्र मुझे क्षमा करेंगे यदि मैं यह कहूँ कि न्यायालयों की अपेक्षा प्रयोगशालाओं में सत्य की समीक्षा का अधिक प्रयत्न किया जाता है और यहीं पर सत्य का अधिक उद्घाटन होता है। बहुधा अब भी यह कहा जाता कि विज्ञान यथार्थ ज्ञान का अनात्म प्रयास है और इसी कारण वैज्ञानिकों और जनसमुदाय में सच्चा समन्वय स्थापित नहीं हो सका है। वस्तुतः बात तो यह है कि जब तक विज्ञान के प्रति जनता अविश्वास रक्खेगी उसे विज्ञान से पूरा पूरा लाभ नहीं हो सकेगा। उनको यह समझ लेना चाहिये कि विज्ञान का भी दार्शनिक तथ्यों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। विज्ञान का हृदय की अनुभूतियों से भी सम्बन्ध है। मानवता के अंतिम लक्ष्य की सिद्धि विज्ञान का भी उतना ही ध्येय है जितना कि अन्य दर्शनों का। ऐसे भी महान वैज्ञानिक हैं जो संगीतज्ञ भी हैं। जब लोग यह समझेंगे कि बैक और बाटीसिली (Botticelle) के समान बोर (Bohr) और ईन्सटीन (Einstein) भी कलाकार हैं तब सम्भवतः वे विज्ञान के वास्तविक महत्व को समझ सकें। हमको वास्तविक स्थाई शान्ति तभी प्राप्त हो सकती है जब हम यह समझ लेंगे कि विज्ञान से न केवल आवश्यकताओं की पूर्ति होती है प्रत्युत इससे भय की निवृत्ति भी होती है।

हमारे देश में जितनी वैज्ञानिक संस्थायें हैं उनका यह उद्देश्य होना चाहिये कि वे विज्ञान के विषयों को लोक-प्रिय बनावें और इसके संदेश को जन-समुदाय में प्रचलित करें। सरकार को भी यह चाहिये कि प्राथमिक पाठशालाओं में विज्ञान के विस्तृत अध्ययन का प्रबन्ध करे जिससे कि विज्ञान के अभिप्राय से हमारे बालक भी परिचित हो जायँ। सरकार को यह भी चाहिये कि माध्यमिक पाठशालाओं में भी वैज्ञानिक शिक्षा का उचित प्रबन्ध हो जिससे विद्यार्थी यह जान जायँ कि विज्ञान का लक्ष्य क्या है।

इस बात में हमारे देश में दो विरुद्ध मत हैं कि राज्य के शासन में वैज्ञानिकों का क्या स्थान होना चाहिये। एक मत तो यह है कि वैज्ञानिक को विज्ञान-वेत्ता होने के नाते शासन में कोई विशिष्ट अधिकार देना लोकतंत्र शासन के मौलिक सिद्धान्तों के विरुद्ध है। उन लोगों का यह भी कहना है कि शासन में बहुत सी ऐसी सामाजिक समस्याओं पर विचार करना पड़ता है जो भौतिक ही नहीं प्रत्युत नैतिक और आत्मिक भी हैं। उनमें से कुछ तो इतनी जटिल हैं कि उनका समाधान वैज्ञानिक पद्धतियों अथवा किसी भी एक जाति की विचार धाराओं के आधार पर नहीं किया जा सकता जिस जन समुदाय में वैज्ञानिक और अवैज्ञानिक दोनों होंगे उसकी समस्याओं का समाधान केवल वैज्ञानिकों के ऊपर नहीं छोड़ा जा सकता। उनका यह कहना है कि अनात्म और नीरस वैज्ञानिकों के हाथ में यदि शासन आ जाये तो वह तंत्र नृशंस शासन से भी अधिक भयानक होगा। इस विचार धारा का प्रतिवाद प्रोफेसर हाल्डेन ने किया है। वे जिस विचारधारा के नेता हैं उसका अभिप्राय यह है कि हमारा समाज इस समय अर्थ और संपत्ति के नियमों से शासित हो रहा है और यदि इस शासन में कुछ भी हाथ ऐसे व्यक्तियों का हो जिन्होंने वैज्ञानिक शिक्षा पाई है तो शासन का रूप ही कुछ भिन्न हो जाएगा।

वैज्ञानिकों के पास जो विशेष ज्ञान है उसके आधार पर वे समाज के दोषों को सरलता से पहिचान सकते हैं और उन दोषों के निवारण के ऐसे उपाय भी सोच सकते हैं जो औरों के लिये सम्भव नहीं। हाल्डेन का यह कहना है कि वैज्ञानिकों को न केवल यह अधिकार ही है कि लोकतंत्रता की दृष्टि से वे शासन में अपना स्वत्व प्राप्त करें न कि राजनीति कार्यों से अपने को पृथक रक्खें। बहुत से विचारशील व्यक्ति इन दोनों विचार-धाराओं से पूर्णतया सहमत नहीं है। मेरा यह विश्वास है कि वैज्ञानिकों को चाहिये कि प्रत्येक समस्या पर अपने ढंग से विचार करें और समाधान सोचें। राजा को भी यह चाहिये कि वैज्ञानिकों से अधिकाधिक विषयों में परामर्श करें और उनका सहयोग प्राप्त करें। ऐसा करने से समाज की बहुत उन्नति हो सकेगी। सरकार की सहायता से नेशनल साइंस फाउन्डेशन की स्थापना होनी चाहिये। यह संस्था मौलिक अनुसंधान भी करेगी और साथ-साथ जनता में वैज्ञानिक भावनाओं का भी प्रचार करेगी। इस संस्था का यह भी उद्देश्य होना चाहिये कि शिक्षा और विज्ञान के क्षेत्र में जो लोग व्यक्तिगत रूप से कार्य कर रहे हैं अथवा समष्टि रूप से, उन सब कार्यों का समन्वय हो। यह संस्था केवल परामर्श ही देने वाली संस्था न हो प्रत्युत इसको विस्तृत शासन स्वायत्त भी प्राप्त हो। अब वह समय आ गया है कि वैज्ञानिक अपने एकान्तता और विरक्तता का परित्याग करके जनता के हितार्थ आगे बढ़ें। कवि सम्राट टैगोर के शब्दों में हमारे लिये यह उचित नहीं है कि सन्यास और एकान्तता में हम अपने मोक्ष की प्राप्ति का प्रयत्न करें।

[डा० सत्यप्रकाश

---

# भारतीय रसायन परिषद् की रजत-जयन्ती

ले०—डा० सन्तप्रसाद टंडन

जनवरी मास में भारतीय रसायन परिषद् ने अपनी रजत जयन्ती बड़े समारोह से इलाहाबाद में अखिल भारतीय विज्ञान कांग्रेस के अवसर पर मनाई। इस समारोह में हमारे देश के प्रमुख वैज्ञानिक सम्मिलित हुये थे। संसार के विभिन्न देशों की रासायनिक संस्थाओं ने इस शुभ अवसर पर अपनी शुभेच्छाओं के बहुत से संदेश परिषद् के पास भेजे।

नई संस्था स्थापित करने में प्रारम्भ में अनेकों कठिनाइयाँ हुआ करती हैं। नई संस्थाओं को जन्म देना व रूप देना ऊँचे विचारशील, आदर्शवादी तथा कर्मठ व्यक्तियों का काम होता है। भारतीय रसायन परिषद् की स्थापना भी कुछ ऐसे ही कर्मयोगियों के प्रयत्नों का फल है।

हम अपने प्राचीन ज्ञान व सभ्यता का प्रायः ढिंढोरा पीटते हैं, इसमें सन्देह नहीं कि किसी समय भारतवर्ष ज्ञान के क्षेत्र में संसार का अगुआ था। उस समय हमारे ऋषि और मुनि अपने आश्रम में बैठकर नवीन तथ्यों का निरूपण करते रहते थे और ज्ञान के भांडार की वृद्धि करते थे। किन्तु हमारा यह नेतृत्व धीरे-धीरे क्षीण होता गया और अन्त में हम ज्ञान की खोज में संसार के दूसरे देशों से बहुत पीछे रह गये। विद्या के क्षेत्र में हमारे पतन का कारण क्या था, इसकी समीक्षा करने की यहाँ आवश्यकता नहीं है। इन कारणों में राजनीतिक कारण तो मुख्य था ही किन्तु साथ ही कुछ हमारा अपने स्वभाव का भी दोष था। अस्तु।

प्रत्येक देश में रसायन विज्ञान का सूत्रपात व उन्नति

चिकित्साशास्त्र की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तथा उसके सहयोग से ही हुई। हमारे यहाँ भी रसायन विज्ञान की जो कुछ भी उन्नति प्राचीन समय में हुई थी वह भी मुख्य रूप से चिकित्साविदों द्वारा ही हुई थी। बौद्धकाल तक हमारी इस उन्नति का क्रम चलता रहा। उसके बाद यह क्रम टूट गया और हमारी रसायन सम्बन्धी कार्य की प्रगति रुक गई।

अंग्रेजी राज्यकाल में जब यहाँ विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई तब पुनः वैज्ञानिक शिक्षा का नवीन रूप से प्रारम्भ हुआ। इस दिशा में खोज सम्बन्धी कार्य का प्रारम्भ एक प्रकार से सन् १८४० में कलकत्ते के मेडिकल कालेज के रसायन विज्ञान के प्रोफेसर डा० शाउगनेसे (Shaugnessy) द्वारा हुआ। उन्होंने भारतवर्ष की अनेक जड़ी बूटियों का रासायनिक रूप से अध्ययन किया और अपने निष्कर्षों को प्रकाशित किया। डा० शाउगने के कार्य के अतिरिक्त हमारे यहाँ १९वीं शताब्दी के मध्यकाल तक खोज सम्बन्धी कार्य लगभग नहीं के बराबर हुआ।

भारतवर्ष में रसायन के पठन-पाठन तथा खोज सम्बन्धी कार्य को एक संगठित रूप देने का कार्य वस्तुतः आचार्य श्री प्रफुल्लचन्द्र राय ने १९वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में किया। आचार्य राय एक कर्मयोगी महापुरुष थे। उनका सारा जीवन एक तपस्वी का जीवन था। रसायनशास्त्र की ऊँची शिक्षा प्राप्त करने के बाद जब वह एडिनबरा से सन् १८८९ में भारतवर्ष लौटे तभी से उनका यह स्वप्न रहा कि किस प्रकार भारतवर्ष रसायन के क्षेत्र में उन्नति कर संसार के अन्य देशों के समकक्ष हो जाय। प्रेसीडेन्सी कालेज, कलकत्ता के रसायन शास्त्र के अध्यापक के रूप में उन्होंने अपने विद्यार्थियों में रसायन विज्ञान के प्रति रुचि और उत्साह जाग्रत किया। इसके फलस्वरूप उनके पास कुछ परिश्रमी तथा योग्य विद्यार्थियों का एक समूह एकत्रित हो गया जिससे उन्हें रसायन के खोज सम्बन्धी कार्य को आगे बढ़ाने में सहयोग व सहायता मिली। इस प्रकार १८९४ से लेकर अगले २० वर्षों के भीतर भारतवर्ष में धीरे-धीरे रसायन के कार्य का एक संगठित रूप हो गया। इस समय यह आवश्यकता प्रतीत होने लगी कि भारत के रसायनज्ञों की एक परिषद् होना चाहिए जहाँ वे समय समय पर एकत्रित होकर विचार विनिमय कर सकें और रासायनिक कार्य को आगे बढ़ा सकें। इसी समय यहाँ के रसायनज्ञों ने अपने खोज सम्बन्धी लेखों के प्रकाशन सम्बन्धी एक दूसरी कठिनाई भी अनुभव की। उस समय हमारे यहाँ से कोई ऐसा मासिक पत्र नहीं प्रकाशित होता था जिसमें यहाँ के रसायनज्ञों के खोज सम्बन्धी लेख ठीक से प्रकाशित हो सकते। ऐसे अधिकांश लेखों को भारत से बाहर के पत्रों में ही प्रकाशित होने के लिए भेजना पड़ता था।

एक रसायन परिषद् की स्थापना के सम्बन्ध में विचार करने के लिए सन् १९२२ में एक छोटी समिति बनाई गई जिसके सभापति डाक्टर ई० आर-वाटसन थे। इस समिति ने विभिन्न विश्वविद्यालयों व रसायनज्ञों से मंत्रणा करने के बाद यह जानकारी प्राप्त की कि हमारे देश में रासायनिक कार्यों में रुचि लेने वाले तथा मौलिक खोज सम्बन्धी कार्य करने वाले व्यक्ति पर्याप्त संख्या में थे और उन सब की यह इच्छा थी कि एक रसायन परिषद् की स्थापना की जाय। इस समिति की रिपोर्ट के बाद आर्थिक व्यय आदि का प्रारम्भिक प्रबन्ध किया गया और ९ मई सन् १९२४ को इस परिषद् की नियमानुसार रजिस्ट्री हो गई। इसके संस्थापक सभापति आचार्य श्री प्रफुल्लचन्द्र राय हुए और मंत्री डा० जे० एन० मुकर्जी। दिसम्बर १९२४ तक इसके १०१ फेलो चुने गये। नवम्बर १९२४ में परिषद् ने अपनी खोज सम्बन्धी पत्रिका का पहला अंक निकाला। यह पत्रिका प्रथम ४ वर्षों तक त्रैमासिक रही। १९२८ में यह पाक्षिक रूप में निकलने लगी और सन् १९३० से अब तक बराबर मासिक रूप में निकल रही है। सन् १९३७ से परिषद् की ओर से एक औद्योगिक त्रैमासिक पत्रिका भी निकल रही है।

इन पच्चीस वर्षों के जीवनकाल में परिषद् धीरे-धीरे उन्नति की ओर अग्रसर होता गया है। इसके सदस्यों की संख्या तथा पत्रिका के ग्राहकों की संख्या में बराबर वृद्धि होती आ रही है।

परिषद् का मुख्य ध्येय रासायनिक खोजों को प्रोत्साहन देना और इस सम्बन्ध के कार्य की उन्नति करना है। इस ध्येय की पूर्ति के लिए परिषद् ने दो कार्य किये। परिषद् की स्थापना के पहले यहाँ के रसायनज्ञों का एक दूसरे से विशेष सम्पर्क नहीं रहता था। वे एक स्थान पर बैठकर आपस में रासायनिक प्रश्नों पर विचार विनिमय नहीं कर सकते थे। एक स्थान पर सम्मिलित रूप से एकत्रित होकर विचार विनिमय करना किसी कार्य विशेष की सफलता के लिए कितना आवश्यक है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है। परिषद् के द्वारा रसायनज्ञों का एक स्थान पर सम्मिलित रूप से खोज सम्बन्धी नवीन प्रश्नों पर विचार व चिन्तन करने के लिए एकत्रित होना संभव हुआ। अखिल भारतीय विज्ञान काँग्रेस के अधिवेशन के समय पर ही रसायन परिषद् अपना वार्षिक सम्मेलन आयोजित करता है। इस सम्मेलन में देश के प्रत्येक भाग से रसायनज्ञ सम्मिलित होते हैं और परस्पर रासायनिक प्रश्नों पर विचार विनिमय करते हैं। इस विचार विनिमय से एक अन्वेषक को दूसरे अन्वेषक से उसके अपने कार्य में सुझाव व सहायता मिलती है।

प्रारम्भ में परिषद् के पास अपना कोई भवन न होने से इसकी प्रगति में बड़ी रुकावट रही। अभी भी परिषद् के पास ऐसा बड़ा भवन नहीं है जो इसकी पूरी आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त हो। कलकत्ता विश्वविद्यालय के विज्ञान के कालेज में हो विश्वविद्यालय की अनुमति से परिषद् ने दो कमरे दस हजार रुपयों के व्यय से सन् १९३३ में बनवाये थे। इन्हीं कमरों में परिषद् का समस्त कार्यालय व पुस्तकालय है। परिषद् के पुस्तकालय में विभिन्न देशों के खोज सम्बन्धी पत्रिकाओं का अच्छा संकलन है। सन् १९२९ में परिषद् ने खोज सम्बन्धी कार्य के लिये उपयुक्त व्यक्तियों को कुछ आर्थिक सहायता देना भी प्रारम्भ किया था किन्तु धन की कमी के कारण इसे कुछ समय बाद बंद करना पड़ा।

आचार्य श्री प्रफुल्लचन्द्र राय की सत्तरवीं वर्षगाँठ के उपलक्ष में सर शान्ति स्वरूप भटनागर के प्रस्तावित करने पर परिषद् ने प्रत्येक वर्ष के रसायन सम्बन्धी सबसे अच्छे खोज के कार्य पर एक स्वर्णपदक तीन वर्षों तक लगातार दिया। सन् १९३४ से परिषद् की ओर से प्रत्येक वर्ष एक पदक स्वर्गीय श्री जे० एम० दास गुप्त की स्मृति में, जो इस परिषद् के सदस्य थे, रसायन सम्बन्धी उत्तम खोज पर दिया जा रहा है। इस पदक का सम्पूर्ण व्यय स्वर्गीय श्री जे० एम० दास गुप्त के छोटे भाई श्री एस० एम० दास गुप्त दे रहे हैं।

परिषद् भारतीय रसायनज्ञों की एक मात्र संस्था है। इसने पिछले २५ वर्षों में अनेक कठिनाइयों के होते हुये भी स्तुत्य कार्य किया है। अब देश स्वतन्त्र है, हम सब का कर्तव्य है कि इस परिषद् को अपना पूरा सहयोग देकर इसकी उन्नति में सहायक हों। वर्तमान युग वैज्ञानिक युग है। इस युग में जिस देश ने विज्ञान की उपेक्षा की उसकी अवनति अवश्यम्भावी है। संसार की वर्तमान सभ्यता को रूप देने में रसायन विज्ञान का प्रमुख हाथ है। रसायन पर ही देश की औद्योगिक तथा कृषि सम्बन्धी उन्नति निर्भर करती है। भारतवर्ष के पिछड़े रहने का एक मुख्य कारण यही है कि यहाँ रसायन विज्ञान तथा अन्य विज्ञान की पर्याप्त उन्नति अभी तक नहीं हो पायी है। अब तक तो हमारी उन्नति में विदेशी सरकार बाधक स्वरूप थी। किन्तु अब ऐसी बाधा हमारे सम्मुख नहीं है। हमारी राष्ट्रीय सरकार का यह कर्तव्य है कि वह रसायन तथा अन्य विज्ञान के पठन-पाठन व खोज के कार्य में पूरी सहायता दे जिससे हम अन्य उन्नतिशील देशों से इस दिशा में पीछे न रहें।

---

# भारतीय रसायन परिषद्

के

# माननीय सभ्यगण

प्रो० ए० सोमरफील्ड

प्रो० इरीन जूलियो

प्रो० सर राबर्ट राबिनसन

सर जे० सी० बोस

सर सी० वी० रमन

प्रो० एल० रूज़िका

प्रो० पाल करॅर

प्रो० ए० एस० ग्यारगी

# भारतीय रसायन परिषद्
के
# भूतपूर्व सभापति

गिलबर्ट जान फाउलर
१९२७-२८

बाबा कर्त्तारसिंग
१९३१-३२
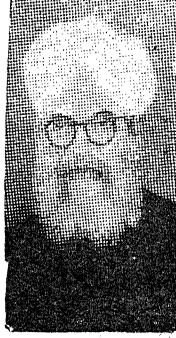
ज्ञानेनचन्द्र घोष
१९३७-३८

हेमेन्द्रकुमार सेन
१९३९-४०

शान्ति स्वरूप भटनागर
१९४१-४२

बिमन बिहारी डे
१९४३-४४

ज्ञानेन्द्र नाथ मुकर्जी
१९४५-४६

# संयुक्त प्रांत के उद्योग धन्धे

लेखक—डा० सत्यप्रकाश

संयुक्त प्रांत को साधारणतया कृषिप्रधान प्रान्त समझा जाता है। पंजाब का वह भाग जो भारतवर्ष में है, पाकिस्तान के बन जाने पर शाब्दिक अर्थ में अब 'पंजाब' (पंच आब) नहीं रहा। पर संयुक्त प्रांत को पाँच नदियाँ इसे अब भी वास्तविक पंजाब बनाये हुये हैं। इस प्रांत की पाँच प्रमुख नदियाँ ये हैं—गंगा, यमुना, गोमती, सरजू और गंडकी। इन पाँच नदियों से सिंचित प्रांत को स्वभावतः कृषि-प्रधान होना ही चाहिये। पर इसका यह अभिप्राय नहीं है कि यहाँ उद्योग-धन्धे चलते ही न हों।

हमारे संयुक्त प्रांत के धन्धों का इतिहास पुराना है। सोना, चाँदी, पीतल, काँसे और अन्य धातुओं के घरेलू कारखाने यहाँ बहुत काल से रहे हैं। काँच के कारखाने भी हमारे यहाँ पुराने हैं। इत्र का व्यवसाय इस प्रांत की ही विशेषता रही है। बनारस का जरी का काम इस प्रांत का अति प्राचीन धन्धा है। मिर्जापुर की दरियाँ, और वहाँ का लाख का व्यवसाय इस प्रांत का गौरव रहा है। लखनऊ के खिलौनों का इतिहास भी पुराना है। गुड़ और उससे शक्कर (खांड) और फिर बूरा, मिश्री, आदि बनाने का व्यवसाय इस प्रांत का प्रसिद्ध रहा है। कपड़े की बुनाई, रुई की कताई, और वस्त्रों की रंगाई भी इस प्रांत के कई स्थलों में प्रसिद्ध रही है। ताले, कैंची, हथियार, लोहे के अन्य औज़ार आदि के लिए भी हमारा प्रान्त भारत के अन्य प्रान्तों से पीछे नहीं रहा।

हमारे प्रान्त के पुराने उद्योग धन्धों की कला का विकास किस प्रकार हुआ, इसका हमारे पास इतिहास नहीं है। इस कला के विकास में समस्त देश का हाथ रहा है। बहुत कुछ ज्ञान का आदान-प्रदान विदेशियों के सम्पर्क के कारण भी रहा। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में यहाँ के अनेक उद्योग-धन्धों का वर्णन आता है—जैसे हथियारों का बनाना, मुद्राओं का बनाना, गोला बारूद का प्रयोग, मोती, मणियों और रत्नों का व्यवसाय, शराब बनाने की विस्तृत विधियाँ, गृह-निर्माण की दृढ़ सामग्री का बनाना, रेशमी, ऊनी और सूती कपड़ों का व्यवसाय, चमड़े का व्यवसाय, खान में से प्राप्त कच्ची धातु से शुद्ध धातु पृथक करने की कला।

## संग्रहालयों में संचित चीजें

हमारे संग्रहालयों में बहुत सी पुरानी ऐसी चीजें संगृहीत हैं जिनसे अपने प्राचीन उद्योगधन्धों की कुछ झलक हमें मिल जाती है। इनमें से कुछ का उल्लेख हम यहाँ करेंगे।

(१) सोने की सबसे पुरानी प्राप्त चीज एक कैस्केट रत्न पेटिका है जो बौद्धकालीन है, और इंडिया आफिस लायब्रेरी में सुरक्षित है। सन् १८४० के लगभग मैसन महोदय कोकाबुल की उपत्यका में जलालाबाद के पास यह मिली थी। विल्सन के मतानुसार यह ईसा से ५० वर्ष पूर्व की है।

(२) बर्डवुड ने चाँदी के एक प्रचीन पात्र का उल्लेख किया है जिसका व्यास ६ इंच, गहराई १५ इंच और तौल २६ औंस से कुछ अधिक है। यह बदख्शाँ के मीरों की सम्पत्ति थी, जो सिकन्दर के वंशज थे। यह संवक ४००-५०० वि० का रहा होगा। बर्डवुड की सम्मति है कि पंजाब में सोने-चाँदी का काम सदा से कुशलता पूर्वक होता आता आया है। काश्मीर की चाँदी की सुराहियाँ आदि प्राचीन काल से महत्व पाती रही हैं।

लखनऊ की सुराहियाँ भी काश्मीर की सुराहियों की समता कर सकती थीं। चाँदी और सोने की थालियों के लिए ढाका, कलकत्ता और चटगाँव भी अब तक प्रसिद्ध रहे हैं। मध्य भारत में बाँदा जिला सभी प्रकार के धातुओं के काम के लिए प्रसिद्ध था। कच्छ और गुजरात भी चाँदी और सोने से बर्तनों के लिए उल्लेखनीय है।

यही हाल मद्रास का भी है। बर्डवुड का कहना है कि मद्रास में सोने और चाँदी का काम हर जगह ही बड़ी कुशलता से किया जाता है। धार्मिक कृत्यों के लिए सोने की प्रतिमाएँ समस्त देश में बनाई गई हैं। रघुनाथराव (राघोबा) ने दो ब्राह्मण इंगलैण्ड भेजे थे। जब १७८० ई० में वे वापिस आए तो उनके प्रायश्चित्त के लिए शुद्ध सोने की एक विशाल 'योनि' बनाई गई, जिसमें होकर वे निकाले गये। ऐसा करने के अनन्तर वे जाति में सम्मिलित किये जा सके। लगभग इसी समय महाराजा ट्रावनकोर ने युद्ध में की गई हत्या का प्रायश्चित किया—सोने की एक बड़ी सी गाय बनाई गई, और इसके उदर में राजा को कुछ समय तक रक्खा गया। उसका फिर 'पुनर्जन्म' हुआ और इस प्रकार वह पूर्व पापों से मुक्त समझा गया। राजसिंहासन पर बैठते समय यह प्रक्रिया ट्रावनकोर के सभी राजाओं को करनी पड़ती रही है।

## पीतल व ताँबे के काम

(३) पीतल, ताँबे और टीन के काम—भारतवर्ष में गृहस्थी के सभी बर्तन इन धातुओं के बनते रहे हैं। सन् १८५७ में मेजर हे ने कुण्डला (कूल) में बौद्ध-गुफा में दबा हुआ तांबे का एक लोटा पाया जो सन् २००-३०० ई० का प्रतीत होता है। यह लोटा आजकल के लोटों से मिलता है। इसके ऊपर गौतम बुद्ध के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली चित्रकारी भी है।

सुलतानगंज में पाई गई बुद्ध की ताम्रमूर्ति (जो बर्मिङ्घम के किसी व्यक्ति के पास चली गई है) तांबे की बनी सबसे बड़ी प्रतिमा है। दिल्ली की कुतुब मीनार के निकट बना लोहस्तम्भ भारतवर्ष के लोह-निर्माण-कौशल का जीता जागता नमूना है। यह २३ फुट ८ इञ्च ऊँचा, नीचे की ओर १६.४ इञ्च व्यास का और ऊपर चलकर १२.०५ इञ्च व्यास का है। यह लगभग ४०० ई० में बनाया गया था और आज १५५० वर्ष बाद भी उतना दृढ़ बना हुआ है, और धूप-पानी में बिलकुल खुला रहने पर भी इसमें जंग कहीं नहीं लगा। अहमदाबाद में शाहआलम के मकबरे के फाटक सुन्दर पीतल के बने हुए हैं और भारतीय कारीगरी के अद्भुत नमूने हैं।

करनाल, अमृतसर, लाहौर, लुधियाना, जालंधर, आदि स्थानों में धातुओं का काम कुशलता से होता रहा है। काश्मीर में तांबे के बर्तनों पर रांगे का कलई बड़ी सुन्दरता से शताब्दियों से की जाती रही है। मुरादाबाद के कलई के बर्तन (पीतल पर रांगे की कलई) सदा से प्रसिद्ध रहे हैं। बनारस में धातु के बर्तनों का काम बहुत पुराना है। यहाँ पीतल में सोना, चाँदी, लोहा, राँगा, सीसा और पारा मिलाकर अष्टधातु तैयार की जाती है। (पीतल में ताँबा और जस्ता होता है) और यह धातु-मिश्रण बड़ा पवित्र समझा जाता रहा है। पारा और रांगा के मिश्रण से बना शिवलिंग बड़ा पवित्र माना जाता है। बर्दमान और मिदनापुर में कांसे के बर्तन अच्छे बनते आए हैं। नरसिंहपुर (मध्यप्रान्त) के तेंदूखरा में बहुत सुन्दर इस्पात बनती रही है। नासिक, पूना, अहमदाबाद आदि स्थलों में भी सभी प्रकार की धातुओं का काम होतारहा है। तंजौर के बर्तन सदा प्रसिद्ध रहे हैं।

(४) कुफ्त और बीदरी का काम—कलई मुलम्मे से नहीं, बल्कि एक धातु के तार को दूसरी धातु पर पीटकर लगाने का नाम कुफ्त है। यह प्रथा दमस्कस नगर के नाम पर अँगरेजी में डेमेसनिंग कहलाती है और पूर्वी देशों की ही प्रथा है। काश्मीर, गुजरात, सियालकोट और निजाम राज्य में यह विशेषतया होती है। जब चाँदी का कुफ्त करना होता है, तो इसी का नाम बीदरी हो जाता है (बीदर नगर के नाम पर)। कभी कभी इस्पात के प्लेट पर नक्काशी करके और फिर उस पर सोने का पत्र पीटकर भी कुफ्त करते हैं। बिहार के पुर्निया और भागलपुर में भी यह कार्य कुशलता से होता है। इन सब को नक्काशी और चित्रकारी देखने योग्य होती है।

(५) एनेमेल या मीना—एनेमेल की प्रथा संसार भर में महत्व की समझी जाती है, और यह काम जयपुर में अति प्रारम्भिक समय से होता आ रहा है। महाराज एडवर्ड जब इस देश में प्रिन्स आफ वेल्स के रूप में आए थे, तो उन्हें एनेमेल किया हुआ जो थाल भेंट किया गया था उसके बनाने में चार वर्ष लगे थे। लेडी मेयो के पास इस कला का बना हुआ एक चम्मच

और प्याला था। एण्डरसन को जो इत्रदान मिला था, वह साउथ केनसिंगटन म्यूजियम में सुरक्षित है और जयपुर की कुशलता का स्मारक है। इण्डिया म्यूजियम में कलमदान, हुक्का आदि अनेक चीज़ें इस प्रकार के कामों की रक्खी हैं।

(६) काँच का काम-चूड़ियाँ—रायपुर की मणिहारिन बहुत समय से प्रसिद्ध हैं। काँच के आभूषण होशियारपुर, मुलतान, लाहौर, पटियाला, बाँदा, डलमऊ, लखनऊ, बम्बई, काठियावाड़, मैसूर आदि में बनते रहे हैं। कांच की गंगाजली नगीना (बिजनौर जिला) की प्रसिद्ध रही है।

## अस्त्र-शस्त्र और इस्पात

(७) अस्त्र-शस्त्र और इस्पात—निर्मल से २० मील की दूरी पर जो लोहे का खनिज मिलता है, उससे दमस्कस-इस्पात बहुत दिनों से बनती चली आ रही है। गोदावरी की दिमदुर्ती खानों से भी यह इस्पात बनाया जाता रहा है।

भारतवर्ष के अस्त्र-शस्त्रों पर भी चित्रकारी की जाती थी। लाहौर, स्यालकोट, काश्मीर, मुंगेर, चटगाँव, विहानी (सीतापुर जिला) मध्य प्रान्त के अनेक स्थान, मैसूर गोदावरी आदि में इस्पात की तलवारें, चाकू, भाला आदि बनते रहे हैं। सतारा और कोल्हापुर में शिवाजी के अस्त्र-शस्त्र अब तक सुरक्षित रक्खे हुए हैं और वे पवित्र माने जाते हैं। उनकी भवानी नामक तलवार की बराबर पूजा होती रही है। एगरटन ने इण्डिया आफिस के अस्त्र-शस्त्रागार की एक सूची तैयार की 'हैंडबुक आफ़ इंडियन आर्म्स''। इसमें उन्होंने साँची के लेखों के आधार पर सन् २५० ई० से पूर्व के अस्त्रों के चित्र दिये हैं। उदयगिरि और अजन्ता की चित्रकारी में (सन् ४००), भुवनेश्वर के मन्दिर के चित्रों में (सन् ६५०), सैत्रोन (राजपूताना) के मूर्ति-चित्रों में (सन् ११००) जो अस्त्र-शस्त्र चित्रित हैं उनके आधार पर विवरण दिया है। अस्त्रों के बनाने की विधि भी दी है। खेद है कि मद्रास सरकार ने अपने प्रान्त के पुराने अस्त्र-शस्त्रों को धातु की लालच में गलवा डाला, और इसीलिये अब हमारे अजायब-घरों में इस प्रान्त के अस्त्र-शस्त्र देखने को नहीं मिलते।

(८) राजसी ठाठ के सामान—चँवर, छत्र, मोरछल, सिंहासन, हौदे, हाथी और घोड़ों की झूलें, शामियाने, तोरण आदि ठाठबाट के सामान प्राचीन प्रथा के अनुसार आज तक राजघरानों और महंतों के यहाँ चले आ रहे हैं। बहुत सी शृङ्गार सामग्री कई पीढ़ियाँ पुरानी हैं। 'आईने-अकबरी' में राज्य-चिन्हों का औरंग, छत्र, सायेबान, अलम: नक्कारे आदि का वर्णन है। मुहर्रम के जूलूसों की शृङ्गार-सामग्री का उल्लेख हेरक्लोट की पुस्तक कानून इस्लाम (१८३२) में पाया जाता है। सन् १८७५ में राजेन्द्रलाल मित्र ने एक पुस्तक "एंटीक्विटीज आफ़ उड़ीसा" लिखी थी, जिसमें "युक्तिकलाप-तरु" नामक ग्रंथ का उल्लेख है। इस ग्रंथ में तरह तरह के छत्रों के बनाने का विस्तृत विधान है—जैसे प्रसाद छत्र (जो बाँस और लकड़ी और लाल कपड़े का बनता है। यह राजाओं को भेंट देने के योग्य है), प्रताप-छत्र (नीले कपड़े पर सुनहरे किनारे का), कनक-दण्ड छत्र (चन्दन की डंडी और उस पर स्वर्ण कलश) और नवदंड छत्र (राज्याभिषेकादि महत्वपूर्ण अवसरों के लिये), यह स्वर्ण और रत्न-जटित होता है।)

(९) बर्तनों को रंगना और चमकाना—भारत के सभी प्रान्तों में मिट्टी के बर्तन बनते रहे हैं। इनको पकाने की विधि भी स्थल-स्थल पर अलग अलग है। जैसी लकड़ी जहाँ मिली, वहाँ वैसा ही व्यवहार किया गया। इन बर्तनों पर चमक लाने के लिये दो चीजों का उपयोग होता रहा है—(१) काँच (२) सिक्का। पंजाब में दो तरह के काँचों का प्रयोग होता रहा है—अँगरेजी कांची, और देशी काँची।

अँगरेजी कांची में २५ भाग संग-ए-सफेद, ६ भाग सोहागतेलिया, और १ भाग नौसादर लिया जाता है। सब चीजों को महीन पीसा जाता है, और फिर छान कर थोड़े से पानी के साथ गूथा जाता है, और नारंगी के आकार की सफेद गेंद तैयार की जाती है। इन्हें फिर गरम करके लाल कर लिया जाता है। फिर ठंडा करके पीसते हैं और कलमीशोरा मिलाकर भट्ठी पर गलाते हैं।

ऊपर उठा हुआ भाग अलग कर लेते हैं, और काम में लाते हैं

देशी कांची में भी संग-ए-सफेद, सोडा और सुहागा काम में लाते हैं।

सिक्का चार तरह के काम आते हैं—सिक्का सफेद, सिक्का जर्द, सिक्का शर्बती, सिक्का लाल। सिक्का सफेद सीसा में आधा भाग राँगा मिलाकर बनाते हैं, सिक्के जर्द में सीसे को चौथाई भाग राँगा से अपचयित करते हैं, सिक्का शर्बती में राँगा की जगह जस्ता लेते हैं, और सिक्का लाल बनाने के लिये सीसा को हवा में आक्सिडाइज करते हैं।

काँसा और सिक्का-सफेद मिलाकर सफेद रंग तैयार करते हैं। दक्षिण भारत में रेत या कोबाल्ट का काला आक्साइड मिलता है। इसे गरम करके सफेद रंग के साथ पीसकर नीला रंग तैयार करते हैं।

## पाश्चात्य ढंग के कारखाने

आजकल पुरानी पद्धति के उद्योग धंधे बहुत कुछ बन्द हो रहे हैं (सर्वथा लुप्त तो नहीं हुये हैं) और उनके स्थान पर पाश्चात्य ढङ्ग के कारखाने खुल गये हैं, इनमें से कुछ कारखाने सरकार चला रही हैं, पर अधिकांश कारखाने पूँजीपतियों द्वारा चलाये जा रहे हैं।

नवीन पद्धति के इन कारखानों में सूती कपड़ों के कारखाने विशेष महत्व के हैं, जो लगभग इस समय सभी कानपुर में केन्द्रित हैं। इनमें १५ के लगभग कारखाने तो अच्छे परिमाण पर कपड़ा बनाते हैं। लगभग ६० हज़ार व्यक्ति इनमें काम करते हैं। आगरा, हाथरस आदि स्थानों में छोटे-छोटे कताई, बुनाई के कारखाने हैं। जूट के कारखाने दो कानपुर में हैं और एक गोरखपुर में हैं।

शराब और उससे पावर एलकोहल बनाने वाले कारखाने इस प्रांत में कई जगह हैं, जो चीनी के कारखानों के "चोटे" (शीरे) से शराब बनाते हैं : अलमोड़ा, कानपुर, गोंडा, लखनऊ, मेरठ, मुरादाबाद, हरगाँव, रामपुर, सहारनपुर, उन्नाव और गोरखपुर में नवीन पद्धति के, और अनेक स्थानों में पुरानी देशी पद्धति के शराब के कारखाने हैं। शराब के कारखानों की हमें अभी बहुत वृद्धि करनी है। मद्यपान की दृष्टि से नहीं, प्रत्युत इस दृष्टि से कि मद्य से अनेक अन्य रासायिक पदार्थ हमें बनाने में सहायता मिलेगी।

शक्कर के कारखानों की बाढ़-सी हमारे प्रान्त में आ गयी है। प्रयाग, बरेली, बाराबंकी, बिजनौर, कानपुर, गोरखपुर, मेरठ, मुजफ्फरनगर, पीलीभीत, गोला गोकरण-नाथ, उन्नाव, सीतापुर के आस-पास अनेक स्थानों में इस समय बहुत कारखाने हैं। चीनी के व्यवसाय के साथ साथ गन्ने की खेती यहाँ तक अब बढ़ गई है कि जिस भूमि में पहले खाने का अन्न बोया जाता था, वहाँ कृषक अब गन्ना बो रहा है। गन्ने बोने में उसे अधिक पैसे मिलते हैं। यदि अपनी खाद्य समस्या सुलझानी है, तो अब इस ओर हमें ध्यान देना पड़ेगा। गन्ने के दाम किसान को इतने मिलने चाहिये, जिससे वह अन्न की खेती करना छोड़ न दे।

हमारे प्रान्त में सहारनपुर में सिगरेट का एक बड़ा कारखाना है। क्लटरबकगंज बरेली में दियासलाइयाँ बनाने का बहुत ही सुन्दर कारखाना है, पर अब भी इस पर विदेशी अधिकार अधिक है। कानपुर और आगरे में गैस (ऑक्सीजन, कार्बन डाईआक्साइड) के दो ही कारखाने हैं। गाजियाबाद, मोदीनगर, और कानपुर में वनस्पति घी बनाने के सुन्दर कारखाने हैं। फीरोजाबाद में चूड़ियों का कारखाना है। बरेली में तारपीन तेल का अच्छा कारखाना है जो आजकल सरकार के हाथ में चला गया है। लखनऊ में कपूर पेपर मिल्स है जहाँ कागज तैयार होता है और मेरठ में भूसे से पट्ठा बनाये जाने की अच्छी फैक्टरी है। काँच के कारखाने आगरा, बहजोई, इलाहाबाद और मैनपुरी में हैं। इस कारखानों के अतिरिक्त आटा पीसने, तेल निकालने, बिस्कुट आदि तैयार करने तथा लकड़ी चीर कर उससे अनेक पदार्थ बनाने के कारखाने लगभग प्रत्येक बड़े नगर के आसपास खुल गये हैं। आलू बोने के लिए बीज सुरक्षित रखने के लिये मेरठ आदि दो तीन नगरों में शीतशालायें (कोल्ड स्टोरेज) बनायी गई हैं।

ऐसी आशा की जाती है कि हमारा यह प्रान्त शीघ्र ही उद्योगधंधों का अच्छा केंद्र बन जायगा। वैज्ञानिक अनुसन्धानों की यहाँ विशेष आवश्यकता है और उसको प्रश्रय देने के लिये अनेक केन्द्र खोले जा रहे हैं।

# शाकाणु ( Bactesia )

कृष्ण मोहन गुप्त

आधुनिक प्राणीशास्त्रीय विज्ञान के अध्ययनात्मक क्षेत्र में शाकाणु—एक प्रकार का अदृश्य जीवाणु—के अन्वेषण ने आश्चर्यजनक क्रान्ति उपस्थित कर दी है। मानव-मंगल के मित्र के रूप में शाकाणु का इतना आर्थिक और सजीव महत्व है, कि उनके अभाव में जीवित रहना असम्भव है; और हमारे शत्रु के रूप में वे इतने प्राणघातक तथा विश्वव्यापी हैं, कि कोई भी इस प्रकार के भयावह जीवाणुओं से अपनी रक्षा नहीं कर सकता। इन रहस्यमय प्राणियों के अद्भुत इतिहास से परिचित होना अत्यन्त ही मनोरञ्जक होगा, अतएव आइये, देखा जाय वस्तुतः ये हैं क्या ?

शाकाणुणीय जीवाणुओं में शक्ति के ग्रहण, संग्रह, त्ययग और अन्तर्क्रिया की ही शीघ्रतापूर्वक जाना जा सकता है एवं वे ही स्पष्ट रूप में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं, जब कि उनका प्रकार या भेद कम ज्ञेय और कम महत्वपूर्ण है। एक शाकाणुविहीन पृथ्वी या शाकाणुविहीन समुद्र में जीवित रहने की क्षमता न तो वनस्पति को ही है और न तो प्राणधारियों को ही। इस प्रकार यह सरलता से अनुमान लगाया जा सकता है कि शाकाणु के ही सदृश्य जीवाणुओं ने किसी समय पृथ्वी और समुद्र को भावी वनस्पतियों और प्राणधारियों के जीवन के विकास के लिए तैयार किया एवं स्वतः जीवन को एक लम्बी शाकाणुणीय अवस्था से पार होना पड़ा है। जीवन के आदि में शाकाणु दोनों प्रारम्भिक युगों के मध्य में स्थित प्रतीत होते हैं। अनेक अत्यन्त छोटे आकार या वस्तुतः अदृश्यता के कारण उनका वर्गीकरण उनके स्वरूप के आधार पर कम ही होता है, वरन् उन्हें उनके रासायनिक क्रियाओं, पतिक्रियाओं और अन्तर्क्रियाओं के जो आजकल के विज्ञान के आश्चर्योत्पदक विजय हैं, अनुकूल विभिन्न वर्गों में विभक्त करते हैं। शाकाणु का आकार उनकी पृथ्वी के प्रारम्भिक और वर्त्तमान इतिहास में महत्ता के विपरीत अनुमान में है। अभी तक ज्ञान में सबसे बड़े शाकाणु १/२००० मीलीमीटर से कुछ ही अधिक लम्बे और १/४००० मीलीमीटर चौड़े हैं। छोटे आकार वाले १/८००० मीलीमीटर से अणुवीक्षकीय दृश्य की सीमा तक पहुँचते हैं। इनसे भी और छोटे आकार वाले शाकाणु प्राप्त हुये हैं, जिनको साधारण अणुवीक्षक या सूक्ष्मदर्शक यंत्र से नहीं देखा जा सकता। हमको उनकी उपस्थिति का बोध कुछ रोगों में होता है। इन अणुवीक्षकीय और पाण्डवीक्षीय (ultramicroscopic) आकार वाले जीवाणुओं का रासायनिक विन्यास अत्यंत जटिल है। इनका अध्ययन रसायनशास्त्र के स्वतंत्र लेख में संभव है।

सबसे प्रथम व्यक्ति लेइनेन हाक्स था, जिसे दाँतों से निकलने लाले श्वेत पदार्थ में सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा कुछ चलते-फिरते प्राणियों को देखकर बड़ा ही कौतूहल हुआ एवं उसने उन्हें सक्रिय जीवाणुओं का नाम दिया। इसके बाद जब लूई पास्चर ने १८८२ ईस्वी में लेइनेन हाक्स के निरीक्षण को अपने प्रयोगों के आधार पर प्रौढ़ बल दिया, तो शाकाणु का वास्तविक अन्वेषण समझना चाहिये। बहुत से प्रयोगों के बाद यह बतलाया गया कि प्रत्येक स्वाभाविक प्रौढ़ मनुष्य के दैनिक उत्सर्ग में १२८०००,०००,००० शाकाणु और किसी किसी समय तो ३३०००,०००,०००,००० शाकाणु तक उपस्थित होते हैं, जिनका भार सुखाने पर ५.५ ग्राम के लगभग होगा और इस सूखे हुये पदार्थ में भूयाति—एक तत्त्व—की मात्रा ०.६ ग्राम है जो कि सम्पूर्ण आन्त्र भूयाति के आधे के बराबर होती है।

जिस प्रकार पर्णसाद (chlorophyll)—वृक्षों का हरा रंग वाला पदार्थ—के रासायनिक क्रिया के अन्वेषण का वनस्पति के जीवनम की व्याख्या करने में महत्त्व है, उसी प्रकार छोटे से छोटे शाकाणु के रासायनिक जीवन के अनुसंधान ने 'जीवन के आदि' की समस्या को सुलझाने में स्पष्ट सहायता पहुंचायी है।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि वे शाकाणु ही हैं जिन्हें जीवन विहीन संसार से भी शक्ति और आहार प्राप्त करने की क्षमता है। उनको 'प्रारम्भिक आहारी' कहा जाता है और वे साधारणतम या सरलतम ज्ञात जीवाणु ही नहीं है, प्रत्युत जीवन-रसायन के पूर्व अवस्था में भी जीवित प्राणियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनमें सीधे अप्राङ्गारिक (Inorganic) रासायनिक यौगिकों से दोनों, शक्ति और आहार को खींच लेने की विचित्र क्षमता होती है। निदान, इस प्रकार के शाकाणु जीवन विहीन पृथ्वी पर भी रहने और फलने-फूलने में समर्थ थे। यहाँ तक कि उस समय भी जब कि सूर्य के क्रमिक आलोक का विकास भी नहीं हुआ था और पूर्णशाद-युग के बहुत ही पूर्व, जिसका आल्यका—एक प्रारम्भिक वनस्पति—एक उदाहरण है।

इस प्रकार के शाकाणु में एक, जिसका नाम नाईट्रोसोमोनास है अपने दहन (combustion) के लिए जारक, अयस, भास्वर (Phosphorus) और लोहक (manganese) के बीच की क्रिया से प्राप्त करता है तथा इसका प्रत्येक साधारण कोश (cell) एक शक्तिशाली अद्भुत प्रयोग शाला की तरह है जिसमें जारण आवेजक (oxidising catalyzer) वर्त्तमान हैं, जिनकी उपस्थिति से अयस और लोहक की रासायनिक क्रिया की गति में वृद्धि हो जाती है। यहाँ पर नाइट्रोसोमोनास (Nitosomonas) अपने जीवन के लिए तिक्तातु शुल्वेय पर (ammonium sulphate) निर्भर होता है एवं अपने लिये शक्ति को तिक्तातु के भूयाति से लेकर उन्हें भूयित (Nitrites) में परिणत करता है। परस्पराश्रित ढंग से इसके साथ जीवन व्यतीत करने वाला (Nitrobacter) नाइट्रोबैक्टर—इसी श्रेणी का शाकाणु भी रहता है जो अपना भोजन उसी भूयित से लेता है जिसे पहले प्रकार के शाकाणु नाइट्रोसोमोनास बनाते हैं एवं (नाइट्राइट) भूयित का जारण करके उसे भूयीय (Nitrate) में परिवर्त्तित कर देता है। अस्तु ये दोनों छोटी-छोटी जातियाँ अपने साधारण आकार ही में हमारे उस नियम पर प्रकाश डालती हैं जिसमें एक जीव (नाइट्रोबैक्टर) अपने जीवन के लिये वातावरण (नाइट्रोसोमोनास) के साथ रहता है। इस प्रकार के शाकाणु समस्त विश्व में बिखरे हुये प्रतीत होते हैं।

प्रारम्भिक आहारी उसी भूयनिवेशक शाकाणु (Nitrifying Bacteria) के वर्ग में आते हैं, जो शिम्बमत् वृक्ष (Leguminous plants) के जड़ों में रहते हैं तथा वायुमंडल के भूयाति को उसके यौगिकों में परिणत करके पृथ्वी की उर्वराशक्ति बढ़ाते हैं। आप स्वतः अनुमान लगा सकते हैं कि इनके अभाव में वार्षिक उत्पादन में इस प्रकार कितनी अधिक कमी हो जायगी और ये हरे-भरे भूमिखण्ड मरुभूमि बन जायँगे। १८८७ ईस्वी में हापारस और हुप्पे ने सबसे पहले इन भूयनिवेशकों (Nitrifiers) का मिट्टी में निरीक्षण किया और सिद्ध किया कि प्राग पर्णशाद युग के जीव केवल प्राङ्गार द्विजारेय ($co_2$) और तिक्तातु (ammonium) से ही शक्ति लेकर जीने की क्षमता रखते थे। शाकाणु के जीवन के रासायनिक प्रतिक्रियाओं से जो नव रासायनिक तत्व संबंधित हैं उनके नाम दहातु (potassium), भास्वर (Phosphorus), भ्राजातु (magnesium), शुल्वारि (Suldhur), चुर्णातु (Calcium), निरजी (Chlorine), भूयाति (Nitrogen) और प्राङ्गार (Carbon) हैं। इन प्रारम्भिक आहारियों के लिये प्राङ्गारिक कारवण और भूयाति के छोटे चिह्न भी हानिकारक हैं। १९०२ इस्वी में नाथनशन ने शुल्वारि-शाकाणु का जो अयस्य (Ferrous) लवण को अयसिक लवण (Ferric) और शुल्वारिद्विजारेय ($SO_2$) को उदजन शुल्वेय ($H_2s$) में परिणत करने की शक्ति रखते हैं, अनुसंधान किया। हमें इन तुच्छ जीवाणुओं का कृतज्ञ होना चाहिये, क्योंकि इन्होंने ही पृथ्वी को इस योग्य बनाया कि हम जीवित रह सकें।

आप यह सुनकर अत्यन्त ही आश्चर्यान्वित हो जायँगे कि ये क्षुद्र शाकाणु भी चट्टानों के विच्छेदन में एक निश्चित प्रभाव रखते हैं। ये शाकाणु अपना भोजन और अपने लिए शक्ति तुषारापात और वर्षा से नीचे

लाये हुए भूयाति यौगिकों से लेते हैं। वे तिक्ताति को भूयिक अम्ल ( Nitric acid ) में परिणत करते हैं तथा यह भूयिक अम्ल सक्रिय होकर चट्टानों के पूर्णीय भाग को धीरे धीरे खा जाता है (या खरोंचता है)। हर्ट लेव ने भी इसी प्रकार का सेमन्ट का विच्छेदन करते हुए भूयनिवेशक शाकाणु का नीरीक्षण किया। इसमें सन्देह नहीं कि उनका प्रभाव किसी एक विन्दु पर ध्यान देने योग्य नहीं होता, पर उन्हीं का संयुक्त प्रभाव एक प्रशंसनीय अध्ययन की वस्तु बन जाता है। यहाँ तक कि आजकल भी सूखे प्रदेशों में तिक्ताति-निर्माणक शाकाणु मिट्टी में केवल सतह ही नहीं, बल्कि सात से लेकर दस फीट गहराई तक भी जहाँ आर्द्रता स्थायी होती है तथा छिद्रयुक्त मिट्टी अच्छी प्रकार वातिउन्मृदा ( aerated ) होती है, अत्यन्त तीव्र गति से क्रियाशील हैं। अस्तु, इस प्रकार से वे भूयातिधनी भूमिखण्डों का निर्माण करते हैं, जिनसे मरुभूमि निवासी वृक्षों की जड़ों का गहराई तक जाना समझा जा सकता है! इन्हीं की क्रियाओं से मिट्टी की उर्वराशक्ति में वृद्धि होती है।

ये जीवाणु ताप-प्रेमी और प्रकाश से दूर रहने वाले हैं। उनका जीवन पृथ्वी के ताप पर आश्रित होता है; क्योंकि अन्य शाकाणु की भाँति वे सूर्यप्रकाश की अनुपस्थिति में ही अपनी क्रियाओं को उत्तम रीति से पूर्ण कर सकते हैं, यहाँ तक कि सीधा या प्रत्यक्ष सूर्य-प्रकाश तो उनके लिये प्राणघातक होता है। सूर्यप्रकाश के कीटाणु-नाशक प्रभाव से शाकाणुणीय श्लेषाभीय ( Colloidal ) का आतंचन ( Coagulation ) पार जम्बु रश्मियाँ ( ultraviolet ) द्वारा हो जाता है। ये शाकाणु वायुमंडल के भूयाति को ग्रहण करने एवं ग्रहण करने की अत्यधिक प्रारम्भिक शक्ति का उदाहरण उपस्थित करते हैं। इस प्रकार से वायुमंडल के भूयाति और वृक्षों के प्राङ्गार का सदुपयोग करने वाले शाकाणु तीन साधारण वर्ग में विभाजित किए जा सकते हैं।

ये साधारणतम शाकाणु जो सीधे जीवन विहीन पृथ्वी पर अपना अस्तित्व बनाये रखते थे, सजीव संसार के बहुत से मौलिक रासायनिक शक्तियों को निर्मित करते हैं। उदाहरण स्वरूप—

(१) श्लेषाभीय कोशा अंतर्क्रिया और श्लेषाभीय स्थिति ( colloidal suspensions ) के अनुकूलतार्थ समस्त अनुकरण जिनमें निम्नलिखित सम्मिलित हैं।

(२) उत्तेजनात्मक विद्युत-क्रिया और आयन आवेश (ion Charge)

(३) आवेजक ( Catalytic agent ) या विकर (Enzymes)

(४) प्रोभूजिन ( Protein ) और प्राङ्गार-शक्ति संग्रह।

शाकाणु की रासायनिक प्रक्रियायें उच्चश्रेणी के वृक्षों और प्राणधारी-कोशाओं के समान ही हैं। यदि हम इन शाकाणुओं के रासायनिक जीवन सम्बन्धी प्रतिक्रियाओं पर विचार करें तो हमें ज्ञान होगा कि उन्हें भूयाति की उपस्थिति ने पृथ्वी की उर्वरा शक्ति बढ़ाने में अच्छी सहायता पहुँचायी है। भूयाति अस्थि अवशेष शाकाणु(Fossil bacteria) का भी एक प्रधान अवयव है, जिनका सम्बन्ध गुच्छगोलाणु (Micrococcus) से है और कदाचित वे, जो भूयाति-गोलाणु से (Nitrosococcus) सम्बन्धित हैं, तिक्ताणु लवणों से शक्ति प्राप्त करने की क्षमता रखते हैं।

साधारण प्रकार के शाकाणु के कोशों की बनावट नग्न या अरक्षित होती है और प्ररस (Protoplasm) प्राणधारियों का जीवन-तत्व, उसके शरीर के पूर्ण क्षेत्र में समान ही होता है।

इसके अनन्तर जीवन विहीन संसार के शाकाणु की उन संतानों का प्रादुर्भाव होता है जो प्राङ्गारिक और अप्राङ्गारिक दोनों प्रकार के लवणों से अपनी शक्ति और आहार ग्रहण करने में समर्थ होते हैं। दूसरे प्रकार के शाकाणु विभूयीयक ( denitrifiers ) होते हैं जो भूयीय (Nitrate) से जारक को लेते हैं तथा उनको भूयित (Nitrite), स्वतन्त्र भूयाति और तिक्ताति में प्रहासित कर देते हैं। इन प्रकार के शाकाणु में वर्णी कणिका (Chromatic Granules) भी पाये गये

हैं। जारक की अनुपस्थिति में सक्रिय रहने की क्षमता इनमें नहीं होती एवं अपने विशद प्रतिक्रियाओं से वातावरण को इस प्रकार परिवार्त्तित कर दिये हैं कि शाकाणु का वह परजीवी जीवन विकसित होना संभव हो सका जिसका प्रारम्भ आय शाकाणु के साथ परस्पराश्रय के सम्बन्ध से होता है। उन्होंने वनस्पतियों के साथ प्रथम और बाद में समस्त संसार के साथ अपना अभिन्न सम्बन्ध स्थापित कर लिया। यह शाकाणुणीय वर्ग बड़ा ही विशद है और उस प्रकार के शाकाणु भी इसी में आते हैं जो सभी प्राणी-प्रोभूजिन (Protein) के जीवन को विकसित करना आरम्भ कर देते हैं। यह श्लेषाभीय पदार्थ आहार के दृष्टिकोण से बड़े ही महत्व का और प्रोभूजिन के मूल्य का है। इसी श्रेणी के शाकाणु बहुत से प्राप्त जीवों (Protozoa) का, जो प्राणधारी जीवन के भौतिक वर्गों में आते हैं, प्रारम्भिक जीवन बनाते हैं। तीन प्रकार के रासायनिक कर्त्ता जिन्हें विकर कहते हैं वर्त्तमान हैं।

(१) प्रो भुजांशिक (Proteolytic)

(२) जारक।

(३) संयोजक (Synthetic)

पहले प्रकार के विकर तो प्राणधारियों के (Tryptin) ट्रीप्टीन विकर के समान हो होते हैं तथा उनमें प्रोटेज और साधारण प्रोभूजिन ( श्विति, केसिन )—ये सब साधारण खाद्य पदार्थ हैं—आदि को पचाने की शक्ति होती है। वे जटिल प्रोभूजिम को नहीं पचा सकते। दूसरे शक्तिशाली विकर भी वर्त्तमान हैं पर उनकी क्रियायों से अभी तक वैज्ञानिक जगत परिचित नहीं हो सका है। तीसरे प्रकार वालों का भी जो नूतन जोवित रासायनिक यौगिकों का सृजन करते हैं, अस्तित्व अवश्य होगा, यद्यपि उनके विषय में अभी तक कोई निश्चित सूचना नहीं सुनी गयी।

ये क्षुद्रतम प्राणी, जिन्हें उपर्युक्त ऐसो भौतिक और रासायनिक शक्तियाँ प्राप्त हैं, जो समय-समय पर ग्रहण किये गये थे, प्राणधासी जगत को बहुत से झुण्डों में परिस्थितियों के अनुकूल अनुकरण करने के द्वारा निर्मित विकिरण के अनुसार प्रारम्भ करते हैं। ये जीवाणु शक्ति के लिये क्रमशः नवीन साधनों की खोज किया करते हैं; या तो सीधे अप्राङ्गारिक जगत से ले लेते हैं या परजीवी के रूप में विकसित होते हुये प्राङ्गारिक शाकाणुणीय और वानस्पत्य आहार से प्रोभूजिन और प्राङ्गोदीप ( Carbohydrates ) विभिन्न झुण्डों से ले लेते हैं, जिनकी क्रिया और और अन्तर्क्रिया परस्पर एक दूसरे पर चारों ओर से घिरे वातावरण के कारण हुये परिवर्तन के फलस्वरूप होती है।

शाकाणु को अन्य जीवों के प्रकार श्वसन—साँस लेने के लिए—जारक की आवश्यकता होती है। लेकिन स्वतन्त्र जारक अनावश्यक ही नहीं है, प्रत्युत अवात जीवीय (anaerobic) शाकाणु के लिये वस्तुतः विषैला भी है क्योंकि जारक को वे प्राङ्गारिक या अप्राङ्गारिक यौगिकों से लेते हैं। शाकाणु का एक परीवर्तीय वर्ग भी है, जिन्हें सामयिक शक्तिधारी अवातजीव कहते हैं। इस वर्ग में आने वाले शाकाणु स्वतन्त्र जारक का भी उपयोग करते हैं। उच्च श्रेणी के बीजाणु-निर्माणक शाकाणु को स्वतन्त्र जारक ही अनिवार्य है।

एवरेन वर्ग ने १८३८ ईस्वी में लोह शाकाणुओं का पता लगाया, जो कि अपनी शक्ति लोहे के यौगिकों के जागरण से प्राप्त करते हैं। लोहे के अविलेय जारेय ( oxide ) शाकाणु के कोशाओं में संग्रहित होते रहते हैं, तथा जैसे-जैसे शाकाणु प्राण त्याग करते हैं, वे लोहे के रूप में तह पर तह जमते जाते हैं। और हमें लोहे की बड़ी-बड़ी चादरें मिलती हैं। लोहे के अयस्क (ores) कतिपय पूर्वयुग की ऐसी चट्टानों के रूप में पाये जाते हैं, जिन्हें देखकर ही यह ज्ञान हो जाता है कि ये लोहे के पतले-पतले सतहों के संयोग से बने हैं। अनुमान किया जाता है कि ये ६०,०००,००० वर्ष प्राचीन हैं और ऐसा वैज्ञानिकों का विश्वास है कि वे शाकाणुणीय आदि के ही हैं। शुल्वारि-शाकाणु भी इसो प्रकार अपनी शक्ति को उदशुल्वेय के जारण क्रिया से प्राप्त करते हैं। अस्तु, शाकाणु का पृथ्वी के नवीन सतह-निर्माण और धातुओं के सृजन में एक महत्वपूर्ण हाथ है। इन्हीं क्रियाओं के परिणामस्वरूप नवीन-नवीन जीवन के रूपों का प्रादुर्भाव हुआ तथा वे फलने-फूलने लगे। यह क्रिया आज भी उदाहरण

के लिए बहामा बैन्क में देखी जा सकती है जहाँ पर चूना शाकाणु के द्वारा खड़िया सतह पर सतह के रूप में अवस्थित है। समुद्र के पानी में चुर्णातु के बहुत से लवण विलयन के रूप में विद्यमान हैं। कुछ उष्ण सामुद्रिक जलों में जमे हुये चूने की मात्रा अधिक है तथा उनमें जीवित प्राणियों के विभिन्न रूप बहुत से हैं। यहाँ पर हम 'शक्ति के प्रदाय के समतोल का जीवन-वातावरण के साथ संतुलन' को भलीभाँति समझ सकते हैं। विभूयीयक शाकाणु पानी से उस शक्ति का अपहरण कर लेते हैं जो निम्न श्रेणियों के वनस्पतियों के लिये आवश्यक हैं।

प्रकाशयुक्त शाकाणु भी हमारे कौतूहल की कम वृद्धि नहीं करते। ये जीवाणु वनस्पति और प्राणधारियों के पूर्व ही प्रकाश के उत्पादन में संलग्न थे, जिसके विषय में ऐसा अनुमान किया जाता है कि वह क्रिया जल और स्वतंत्र जारक की उपस्थिति में किसी भास्वरीय पुकाशोत्पादक ( phosphorescence ) पदार्थ के जारण से सम्बन्धित है।

हम नित्यप्रति अपने पयशाला और प्रयोगालयों में किण्वन ( Fermentation ) क्रिया का सदुपयोग करते हैं। शाकाणु के अनुसंधान के पूर्व भी इस क्रिया की विधि से हम परिचित थे। तथा उसका उपयोग पयशालाओं के पदार्थ सुषव, मदिरा और स्वादिष्ट मिष्ठान बनाने में करते थे। 'किण्वन' की क्रिया में विभिन्न प्रकार के रासायनिक कर्त्ता, जिन्हें 'विकर' कहते हैं भाग लेते हैं। हमारी पूर्ण पाचन-क्रिया के मार्ग में वह भोजन जिसे हम दैनिक आहार के रूप में लेते हैं, इन्हीं विकरों से आक्रान्त होकर ऐसी अवस्था में परिवर्त्तित होता है कि हम उसका सदुपयोग कर सकने के समर्थ हो सकें। दुग्धिक किण्वन से पयशालाओं के पदार्थ दूध, पनरी, दही आदि तैयार करते हैं। किण्वन का सिद्धान्त है कि यह क्रिया जीवित प्ररस की क्रियाओं का फल है। विभिन्न प्रकार की मदिरा, सुरा और आसव मादक शाकाणुणीय पदार्थ का उदाहरण उपस्थित करते हैं। आजकल के बहुत से उद्योग-धंधे मदिरा-निर्माण, फ्लैक्स के वस्त्र बनाने का उद्योग, खमीरा बनाने का धन्धा तथा खनिजकरण आदि इन्हीं क्षुद्र जीवाणुओं पर आधारित हैं। अब शाकाणु के आर्थिक महत्त्व के चित्र की कल्पना सरलता से की जा सकती है।

शाकाणु मानवता की सेवा दोनों प्रकार से परजीवी की तरह और शवजीवी की भाँति भी करते हैं। शव जीवी शाकाणु का जीवन सड़ते-गलते हुये प्राङ्गारिक पदार्थों पर आश्रित होता है, जिन्हें वे भूयाति के यौगिकों में परिणत कर देते हैं, जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति में अच्छी वृद्धि होती है।

उपर्युक्त वाक्यों से यह स्पष्ट है कि शाकाणु जीवित प्राणियों के लिये बड़े ही सहायक हैं। मैं समझता हूँ अब हमें उनसे अपने बलशाली और अद्भुत शत्रुओं के रूप में भी परिचित हो जाना चाहिये। वृक्ष प्रायः शाकाणु से आक्रान्त होते हैं तथा उनका फल-फूल नष्ट-प्राय हो जाता है। केवल एक ऋतु में ही इनके प्राण-घातक व्यवहार से अत्यधिक और देशव्यापी हानि हो सकती है। किसी किसी वर्ष एक ही अन्न के शाकाणु से आक्रान्त होने पर लाखों रुपयों की हानि विभिन्न देशों को उठानी पड़ती है। वनस्पति-जगत से शाकाणु द्वारा संघटित रोगों को दूर करने के लिये बहुत से सरकारों द्वारा नियम बनाये जाते हैं। वनस्पति ही नहीं, प्रायः प्राणधारी भी, विशेषतः मनुष्य इन निर्दयी जीवाणुओं के ग्रास बनते हैं। हम लोग यदि हैजा पर, जो एक साधारण रोग है, दृष्टिपात करें, तो ज्ञात होगा कि इसके कारण अनुमानतः औसतन प्रत्येक देश के एक छठवें निवासी मृत्यु के मुख में जाते हैं यह परजीवियों द्वारा संचरित रोग है। ये गोलाणु बड़े ही सक्रिय होते हैं तथा वायुमंडल में सर्वदा उन्हें इधर से उधर घूमते फिरते देखा गया है। जिस क्षण वे उपर्युक्त पोषिता जैसे आलू, रक्तलसीका ( किसी चोट से प्रवाहित होता हुआ ) या दूध ( नहीं ढका हुआ ) पाते हैं उसी क्षण वे वहाँ एकत्रित हो जाते हैं और संख्या में प्रतिपल वृद्धि करते जाते हैं। बेचारे मनुष्य, जिन्हें इन जीवाणुओं की उपस्थिति तथा उनकी क्रिया का कोई ज्ञान नहीं रहता, उन खाद्यपदार्थों का भोजन कर लेते हैं और शाकाणुणीय सेना के गुप्त सैनिकों द्वारा बंधन में

बाँध लिये जाते हैं। रक्त में जो चोट के बाहर आता रहता है, स्वत: रक्त-लसीका के माध्यम से तैर कर भीतर चले जाते हैं। यदि हम उन सभी रोगों में से कुछ का भी नाम जान लें जो शाकाणु के कारण होते हैं तो हमें उनके भयावह स्वरूप का ज्ञान सरलता से हो सकेगा। साधारण रोगों में से ये हैं, सन्निपातिक ज्वर, राजयक्ष्मा (तपेदिक), गौ आदि पशुओं में विशेष संक्रामक पीड़ा, धनुष्टंकार और जलान्तक आदि।

इन सभी रोगों में एक विशेष प्रकार का शाकाणु होता है जो हमारे जीवन को संकट में डाल देता है। हम लोगों का मुख शाकाणु का अच्छा निवास-स्थान है। खाद्यपदार्थों की उपस्थिति के कारण वे दाँतों, जबड़ों और दूध के दाँतों में एकत्रित होते हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि हमारे प्राचीन ऋषियों को इनकी मुख में उपस्थिति का ज्ञान था क्योंकि तभी तो उन्होंने दो व्यक्तियों को उसी पात्र में भोजन करने या पानी पीने का आदेश नहीं दिया। विषफोड़ा ( cancer ) सम्बन्धी रोग भी इन्हीं शाकाणु के ही कारण होते हैं तथा अभी तक ये असाध्य रोग ही समझे जाते हैं। परमाणु बम की विभीषिका से आप परिचित ही हैं। अब उच्चकोटि के वैज्ञानिकों के ध्यान में शाकाणुणीय विस्फोटक ही दूसरा-स्थान रखता है जो कुछ क्षण ही में बिना किसी ज्वाला या अग्नि के नगर का नगर नष्टप्राय कर दे सकता है।

विषय को समाप्त करने के लिए मुझे यह कहना चाहिये कि यदि मनुष्य स्वतः अपना शत्रु नहीं बनता तो शाकाणु मानव-समुदाय का कोई अनिष्ट नहीं कर सकता, प्रत्युत मानवता की सेवा में सदा रत रहेगा।

# धरतीमाता *

## भारत की कृषि उन्नति के लिए भूमि शास्त्र की महत्ता

[ लेखक:—श्री मुरलीधर कोठियाल, एम० एस सी०, एम्प्रेस विक्टोरिया रीडर, वनस्पति विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय, ]

### पूर्वोक्ति

धरती चर, अचर प्राणी मात्र की माता है। भरण पोषण की सभी वस्तुओं का आदि श्रोत धरती ही है। धरती का फास्फोरस तथा कैलशियम हमारी अस्थि, मज्जा तथा ज्ञान-तन्तुओं का निर्माण करते हैं। सूर्य-रश्मि और पानी के अतिरिक्त वे सभी वस्तुएँ जिनकी हमारे शरीर को आवश्यकता होती है धरती से ही प्राप्त होते हैं।

प्रकृति धरती का पोषण करती है जब कि मनुष्य उसका शोषण! मनुष्य बनों को काट कर, चरागाहों को नष्ट कर, लगातार जोत बो-कर धरती का दुरुपयोग करता है। कृषि से उत्पादित सभी वस्तुएँ नगरों में चली जाती हैं लेकिन धरती की उत्पादन शक्ति को बढ़ाने वाले सभी पदार्थ नगरवासी अपनी सभ्यता के राग में नालियों द्वारा नदियों में बहा देते हैं। पृथ्वी पर रहने वाले भूलते हैं कि वे अपन 'धरती माता' का अपने स्वार्थ साधन में दुरुपयोग कर अपनी सन्तान का गला घोंट रहे हैं। उपजाऊ भू-खण्ड हमारी ही सम्पति नहीं बल्कि हमारी सन्तान की भी धरोहर है।

विभिन्न राष्ट्र अपने देश की धरती को प्रेम और आदर की दृष्टि से देखते हैं; कोई अपने देश को 'मातृभूमि' और कोई 'पितृभूमि' कहते हैं। प्रत्येक राष्ट्र के जीवन में उसकी धरती बहुत बड़ा महत्व रखती है। धरती पर कृषि निर्भर है और कृषि पर भरण, पोषण, उद्योग-धन्धे, कल-कारखाने तथा अन्य आर्थिक समस्याएँ निर्भर हैं। आर्थिक समस्या ने सभ्यता के विकास पर कितना प्रभाव डाला है यह समाज-शास्त्र के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है। किसी भी देश के

*लेखक अपने शिक्षक प्रो० श्रीरंजन, अध्यक्ष वनस्पति विभाग, का हृदय से आभारी है जिन्होंने अपने प्रकाशित तथा अप्रकाशित अनुसन्धानों को उद्धृत करने की आज्ञा दी।

निवासियों का व्यवसाय और व्यापार उस देश की धरती पर उगने वाली उपज पर निर्भर होता है। उपजाऊ धरती में कुछ विशेष तत्वों की कमी से—जिनका उल्लेख आगे किया जावेगा, उस देश के निवासियों के स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार मनुष्य के वे कार्य जो प्रत्यक्ष रूप से धरती से सम्बन्धित नहीं वे भी धरती से प्रभावित होते हैं। संस्कृति का श्रीगणेश धरती को संस्कृत (culture) करने से हुआ। पृथ्वी के भिन्न-भिन्न भू-खण्डों की सभ्यता में अन्तर प्रधानता वहाँ की भूमि तथा जलवायु में अन्तर के कारण पाया जाता है। किसी देश के निवासियों की सभ्यता की नींव की दृढ़ता वहाँ के निवासियों की अपनी धरती से पूर्ण परिचय पर निर्भर है क्योंकि धरती में ही उसकी जड़ें रहती हैं। यदि भारतवासी अपनी सभ्यता को चिरकालीन और स्वस्थ बनाना चाहें तो उन्हें अपनी भूमि से प्रेम और आदरभाव रखना चाहिए।

भारतवर्ष और चीन सभ्यता के सबसे पुराने केन्द्रों में से हैं। इन दोनों देशों में धरती को माता का प्रेम और मान दिया जाता है। हिन्दुओं की पूजा पद्धति में पृथ्वी की पूजा सर्वप्रथम होती है। वैदिक आर्यों ने 'पृथ्वी' को पञ्च तत्वों में स्थान दिया। चीन के निवासी अपनी धरती को बड़े प्रेम से देखते हैं। उनका यह प्रेम पर्लबक ने 'गुड अर्थ' नामक उपन्यास में सुन्दरतापूर्वक किया है। प्रोफेसर किंग ने चीन के निवासियों को 'चालीस शताब्दियों के कृषक' (Farmers of the Forty Centuries) कहा है। निश्चय ही सभ्यता और संस्कृति का आदि श्रोत कृषि ही रहा है और कृषि से उत्पादित वस्तुओं से ही सभ्यता का विकास हुआ है।

## धरती और समाज की आर्थिक समस्या

माल्थूज ने १७९८ में 'जनसंख्या' शीर्षक निबन्ध में योरोप की जनता को जनसंख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि लेकिन भोज्य पदार्थों के उत्पादन में उसी अनुपात से वृद्धि न होने के कारण आने वाले संकट के विषय में अगाह किया। दुनियाँ के दो तिहाई मनुष्य कृषक हैं, फिर भी दो तिहाई मनुष्यों को भर पेट खाना नहीं मिलता।

जनसंख्या, कृषि और उत्पादन के दृष्टिकोण से हमारे देश की समस्या अन्य देशों से भिन्न है। यहाँ आबादी का घनत्व ४४० मनुष्य प्रतिवर्ग मील है जब कि संयुक्तराष्ट्र अमेरिका में २०० मनुष्य प्रतिवर्ग मील है। यहाँ प्रति मनुष्य के हिस्से में एक एकड़ भूमि आती है जब कि संयुक्तराष्ट्र अमेरिका में प्रत्येक मनुष्य के हिस्से में २० एकड़ भूमि आती है। भारतवर्ष में केवल उपजाऊ भूमि की ही कमी नहीं बल्कि प्रति एकड़ उपज भी संसार के कृषि-प्रधान देशों से आधी से भी कम है। उदाहरण के लिए जापान में ३००० मन प्रति एकड़ धान उगता है और बेलजियम में २६ मन प्रति एकड़ गेहूँ उगता है जब कि हमारे देश में ३६० मन प्रति एकड़ धान और ८ से १२ मन प्रति एकड़ गेहूँ उगता है। जन गणना के आँकड़ों से पता चलता है कि १९२० से १९४१ तक आबादी में २३ करोड़ से ३० करोड़ तक वृद्धि होती ही चली गई जब खाद्य पदार्थों के उत्पादन में ५० लाख टन से अधिक वृद्धि नहीं हुई जिसके फलस्वरूप आजकल हमें ४-५ लाख टन खाद्य पदार्थों की कमी का कष्ट सहना पड़ता है। आबादी में वृद्धि होना स्वाभाविक ही है लेकिन इस बढ़ती जनसंख्या के लिए भोजन का प्रबन्ध भी आवश्यक है। खूराक की कमी के कारण ही हमारे देश के अधिक मनुष्य अल्पायु हो रहे हैं। अन्तर-राष्ट्रीय युद्धों के युग में प्रत्येक राष्ट्र को अपने पैरों पर खड़े होने की बड़ी आवश्यकता है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि हमारी कृषि-समस्या के दो पहलू हैं: एक तो यह कि देश की अधिक से अधिक भूमि उपजाऊ बनाना; और दूसरी यह है कि उपजाऊ भूमि की उपज को वर्तमान से दो तीन गुना बढ़ा देना। इन दोनों पहलुओं पर आगे विस्तारपूर्वक विचार किया जावेगा।

औद्योगीकरण के इस युग में कृषि की महत्ता को किसी प्रकार कम नहीं किया जा सकता। संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के आँकड़ों से मालूम होता है कि एक एकड़ भूमि जिसमें खेती होती हो उससे १०० इकाई भोजन प्राप्त होता है जब कि उतनी ही भूमि दूध के उत्पादन में लगाने से ४० इकाई, मांस के उत्पादन में लगाने से ८ इकाई और अंडों के उत्पादन में लगाने से ६ इकाई भोजन प्राप्त होता है। अतः बुद्धिमानी इसी में है कि भारतवासी अपनी उपजाऊ

भूमि का अधिक से अधिक भाग कृषि-कार्य में लगावें। कट्टर हिन्दुओं के लिये तो यह और भी आवश्यक है क्योंकि मांस और अंडों से वे घृणा करते हैं।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, कनाडा, इंग्लैण्ड, रूस, जापान आदि सभी राष्ट्र अपनी कृषि को समुचित महत्व देते हैं। औद्योगीकरण के लिये आवश्यक कच्चा माल हमें कृषि से मिलता है। अतः देश की औद्योगिक उन्नति कृषि पर निर्भर है। इसके अतिरिक्त बढ़ती जनसंख्या के एक भाग को कृषि और दूसरे को कारखानों में लगाये रखना बहुत आवश्यक है। यही नहीं बल्कि कृषि और कारखानों से उत्पादित पदार्थों के मूल्य और उनमें लगे मनुष्यों की संख्या और आय में संतुलन भी आर्थिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है।

## ऐतिहासिक

मनुष्य के इतिहास के प्रारम्भ से ही कृषि-विज्ञान का श्रीगणेश होना अति आवश्यक था। ऋग्वेद में कृषि-कार्य का उल्लेख है। चीन के नागरिकों ने ४२ शताब्दी पूर्व खेती का नक्शा बनाया था जिसके आधार पर वे कर लगाया करते थे और राज्य के कृषि सम्बन्धी कार्य करते थे।

डिलोक्रिटस (३६० ई० पू० ) ने मिट्टी से पौदों के द्वारा जीव-जन्तुओं में और प्राणियों से फिर मिट्टी में एक निरन्तर चलने वाले तत्वों के चक्र का वर्णन किया है। अरस्तू (३८४-३२२ ई० पू०) ने बतलाया कि पौदे अपनी बढ़ती के लिए भूमि से जड़ों के द्वारा आवश्यक तत्व चूसते हैं। जीवजन्तु पौदों से बने पदार्थों पर निर्वाह करते हैं। इस प्रकार 'धरती-पौदे-जीवजन्तु' में एक शृंखलाबद्ध सम्बन्ध है।

१८ वीं शताब्दी के अन्त तक रसायन शास्त्र में विशेष उन्नति हो चुकी थी। १८३४ ई० में लीबिग ने कृषि सम्बन्धी प्रयोग करने आरम्भ किये। लीबिग ने पौदों की खूराक के बारे में 'आय व्यय' (Balance sheet theory) का निम्न मत प्रकट किया। "खेती में उपज की मात्रा खाद के रूप में दिये रासायनिक द्रव्यों की मात्रा के अनुसार समान अनुपात में घटती या बढ़ती है।" १८३४ ई० में रोथाम्स्टेड, इंग्लैण्ड में कृषि अनुसन्धान का केन्द्र स्थापित किया गया। इस केन्द्र के संस्थापक बोसिंगाल्ट और गिल्बर्ट ने आधुनिक कृषि सम्बन्धी रसायन शास्त्र को जन्म दिया। वाक्समैन, विनोग्रेडस्की, वारिंगटन आदि वैज्ञानिकों ने मिट्टी में परिवर्तन लाने वाले कीटाणुओं का पता लगाया और इस विषय में अन्वेषण किये।

१८७० ई० के लगभग रूस में डाकूशेभ, ग्लिका, पोलीनोभ, जर्मनी में रमन, अमेरिका में मारबुट आदि ने धरती को ८-१० फीट की गहराई तक खोदकर उसकी परतों या धरातलों का अध्ययन किया। और भिन्न-भिन्न जलवायु के भूप्रदेशों में बनी मिट्टी का कक्षा विभाजन किया। उपरोक्त विद्वानों ने पुराने भूमि-शास्त्रज्ञों के विपरीत मिट्टी को सजीव और गतियुक्त होने का मत प्रगट किया।

हिलगार्ड, किंग, ह्विटने, मारबुट आदि ने अमेरिका में भूमि-शास्त्र पर अन्वेषण किये। वर्तमान काल में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के वैज्ञानिक इस विषय में अग्रगण्य हैं। अब यह सिद्ध हो गया कि पृथ्वी के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में जलवायु की भिन्नता के कारण युग-युगान्तरों में भूमि का निर्माण विभिन्न वातावरण में हुआ। और इसीलिए भिन्न-भिन्न प्रदेशों की धरती एक दूसरे से भौतिक तथा रासायनिक गुणों में भिन्न हैं। फलतः हरएक प्रदेश की भूमि सम्बन्धी कृषि समस्या में भेद आना स्वाभाविक है। भारतवर्ष जैसे विस्तृत भू-खण्ड के लिए यह बात विशेष महत्त्व की है। बड़े हर्ष का विषय है कि 'भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद्' ने भारतवर्ष की भूमि सम्बन्धी अन्वेषण की समस्या को हल करने के लिए देश को अलग-अलग भू-खण्डों में विभाजित कर दिया है।

## भूमि-शास्त्र के अध्ययन की जटिलता

लीबिग का मत था कि मिट्टी पौदों को जल तथा अन्य भोज्य पदार्थों को देने का माध्यम मात्र है। लेकिन पिछले सौ वर्ष से अधिक तक किए गये अन्वेषणों से सिद्ध हो गया कि उपजाऊ धरती की मिट्टी निर्जीव माध्यम नहीं बल्कि (सर डेनियल हाल (१९०५) के शब्दों में) 'मिट्टी का अध्ययन उन कठिनतम और उलझी हुई समस्याओं में से है जिन्हें मनुष्य को अपने इतिहास में सुलझाने का परिश्रम करना होगा।'

मिट्टी की ऊपरी तहों में रहने वाले सूक्ष्म जन्तु उसमें

नाइट्रोजन तत्त्व का निग्रहण करते हैं तथा अन्य भिन्न-भिन्न जाति के सूक्ष्म जन्तु ऐसे रासायनिक परिवर्तन लाते हैं जो पौदों को लाभकारी होते हैं। केंचुए आदि बड़े जन्तु मिट्टी को उथल पुथल करते रहते हैं। धरती की सतह पर सड़ने वाले पदार्थ उसमें कार्बनिक पदार्थ (organic matter) की वृद्धि करते हैं। शीतोष्ण कटिबन्ध में पेड़ पौदे अधिक होने, साल भर वर्षा के पानी की प्रचुरता होने, और गरमी कम होने से धरती के ऊपर सड़े द्रव्यों की एक मोटी तह जम जाती है। लेकिन ऊष्ण कटिबन्ध में ऐसी तह नहीं जमती। वर्षा की धार के जोर से ऊपरी सतहों के रासायनिक द्रव्य निचली सतहों में जमा हो जाते हैं। मिट्टी के सबसे महीन अंश के अणु के चारों ओर विद्युत प्रभाव से भिन्न-भिन्न तत्त्वों के आयन आकर्षित होते हैं और इस प्रकार एक आयन का स्थान दूसरा आयन लेता रहता है। मिट्टी से यही सब तत्त्व पौदे चूसते हैं जिन्हें जीव-जन्तु खाते हैं। पौदे तथा जीव-जन्तु अपनी मृत्यु के बाद इन नाश न होने वाले तत्त्वों को फिर धरती को वापिस लौटा देते हैं। इस प्रकार का चक्र निरन्तर चलता रहता है। अतः स्पष्ट है कि संस्कृत के कोष के अनुसार 'मृत्तिका' (मिट्टी) निर्जीव या मृतक और गतिहीन वस्तु नहीं बल्कि सजीव और गतियुक्त है।

## मिट्टी-पौदे और जीव-जन्तुओं का पारस्परिक सम्बन्ध

हरे पौदे सूर्य रश्मि और कार्बन-डाइ-आक्साइड के अतिरिक्त सभी वस्तु भूमि से जड़ों के द्वारा लेते हैं। अतएव पौदों की तन्दुरुस्ती भूमि में उनके लिए भोजन के समुचित मात्रा में विद्यमान होने से निर्धारित होगी। हयलरीगल आदि अन्वेषकों ने जौ के पौदों को नाइट्रोजन, फासफोरस और पोटाश कम तथा अधिक मात्रा में देकर यह सिद्ध कर दिया कि जौ की उपज इन तत्त्वों की मात्रा के साथ समानुपातिक है। मूली, गाजर आदि जड़ वाले पौदे फासफोरस की कमी से पतली जड़ के हो जाते हैं लेकिन फासफोरस की मात्रा बढ़ाने से जड़ें तौल में बढ़ती जाती हैं। इन तीन तत्त्वों के अतिरिक्त लोहा, बोरन, मैंगनीज, ताँबा, जस्ता निकेल, कोबाल्ट भी पौदों की तन्दुरुस्ती के लिए आवश्यक हैं। लौह तत्त्व की कमी से पौदे पीले पड़ जाते हैं। बोरन की कमी से सेब के अन्दर का भाग बेरस हो जाता है, तम्बाकू की पत्ती सिर से सड़ने लगती है, फूल गोभी गेरुआ हो जाती है और शकरकन्द सड़ जाता है। जहाँ कि इन धातु तत्त्वों की स्वल्प मात्रा में मिट्टी में विद्यमान होना पौदों की तन्दुरुस्ती के लिए अति आवश्यक है, इनकी प्रचुरता (अर्थात् एक भाग मिट्टी में १ लाखवें भाग से अधिक) भी पौदों को घातक सिद्ध होती है।

हमारे देश के भिन्न-भिन्न भागों में पैदावार की विशेषता—जैसे देहरादून के चावल, इलाहाबाद के अमरूद, पंजाब का गेहूँ इत्यादि—वहाँ की भूमि और जलवायु के कारण है। एक ही गेहूँ का बीज भिन्न-भिन्न स्थानों पर उगाये जाने पर ऐसी फस्ल दे सकता है जो कि रंग-रूप में तो समान हो लेकिन रासायनिक तत्त्वों की मात्रा में भिन्न हो। भूमि की पानी को सोखने की शक्ति उसके भौतिक गुणों पर निर्भर है और मिट्टी में पानी की मात्रा के भिन्न होने से पौदों की रासायनिक द्रव्यों की सोखने की शक्ति में भेद आ जाता है।

मनुष्य तथा अन्य प्राणियों का शरीर भी उन्हीं तत्त्वों से बना है जो कि धरती में विद्यमान रहते हैं और पौदों द्वारा धरती से प्राणियों तक पहुँचते हैं। मांसपेशियां प्रोटीन की बनी रहती हैं जिनमें नाइट्रोजन प्रधान तत्त्व रहता है। हड्डियाँ कैलशियम से बनती हैं। आँखों में बेरियम पाया जाता है, जस्ता योनि ग्रन्थियों में, ब्रोमीन ब्रह्मग्रन्थि (pituitary) में, कोबल्ट और निकेल क्लोम ग्रन्थि (pancreas) में।

फिनलैण्ड की उपजाऊ भूमि के अम्ल होने से वहाँ के निवासियों को क्षय रोग अधिक हो जाता है। मैक्सिको की मिट्टी में सिलीनियम—जो कि मनुष्यों के लिए विष है—अधिक मात्रा में विद्यमान होने से बड़े घातक रोग हो जाते हैं। इस प्रदेश के नवजात शिशुओं की, माँ के दूध में सिलीनियम अधिक होने से, शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है। ऐसी भूमि पर उगने वाले गेहूँ में प्रति लाख में १०-१२ भाग सिलीनियम होता है। ऐसी भूमि पर उगे हुए घास पर निर्वाह करने वाले ढोरों के खुर, बाल इत्यादि झड़ जाते हैं और उन्हें पक्षाघात और जलशोथ का रोग हो जाता है।

ताम्र तत्त्व की मिट्टी में कमी होने के कारण हालैण्ड

में ढोर को एक विशेष रोग हो जाता है जिसे 'Salt Sick' कहते हैं। टाइफस और इंफ्लुएंजा भी भोजन में विशेष धातु तत्वों की कमी से हो जाते हैं।

गोरखपुर के जिले में पानी में आयोडीन की कमी पायी जाती है। अतः इस प्रदेश के मनुष्यों और ढोरों को गण्डमाला का रोग हो जाता है।

विटामिन बी १ को शरीर में लेने के लिए मैंगनीज की आवश्यकता पड़ती है। इस तत्व की कमी के कारण मुर्गियों को Perosis का रोग हो जाता है।

आस्ट्रेलिया की भूमि में कैलशियम की कमी से जानवरों को हड्डियों की बीमारी हो जाती हैं। जिस धरती में फासफोरस की कमी होती है उस प्रदेश के रहने वाले प्राणियों को Lamziekte बीमारी हो जाती है जो अन्य प्रदेशों में नहीं होती। टेनेसी के प्रदेश में भूमि में फासफोरस की मात्रा और जानवरों की तन्दुरुस्ती में सम्बन्ध पाया गया है।

फ्लोरिडा की धरती में लोहा और कोबल्ट की कमी के कारण उस पर उगने वाले पौदों पर निर्वाह करनेवाले ढोर रोगग्रस्त हो जाते हैं। न्यूजीलैंड की भूमि में कोबल्ट की कमी के कारण वहाँ की भेड़ों को Bush sickness का रोग हो जाता है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि पौदे एक शृङ्खला का काम करते हैं जो कि धरती से आवश्यक रासायनिक द्रव्यों को चूस कर ऐसे भोज्य पदार्थों में परिणित कर देते हैं जिन्हें खाकर सभी जानवर और मनुष्य जीवित रहते हैं। यदि भूमि में उन आवश्यक तत्वों की कमी हो तो उसमें उगने वाले पौदों में वे द्रव्य नहीं होंगे और फलतः ऐसे पौदों से बने भोज्य पदार्थों पर जीवन यापन करने वाले प्राणी उन रोगों से ग्रस्त हो जावेंगे जो कि उन रासायनिक द्रव्यों की कमी से होते हैं।

अतः यह आवश्यक है कि जिस भूमि पर चरागाह हों या फस्ल उगाई जाय उसमें रासानिक तत्व समुचित मात्रा में हों। भूमि में लगातार फस्ल उगाने से इन तत्वों की कमी हो जाती है। अतः अच्छी पैदावार प्राप्त करने के लिये इन आवश्यक तत्वों की कमी पूरी की जानी चाहिए। इसके लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की खाद प्रयोग की जाती हैं। अच्छी पैदावार के लिए यह भी आवश्यक है कि भूमि में कार्बनिक पदार्थ समुचित मात्रा में हों और मिट्टी में हानिकारक पदार्थ न हों।

जिस भूमि में जिन रासायनिक तत्वों की कमी हो उसमें उन्हीं तत्वों-में प्रधान रासायनिक खाद देना चाहिए। कुछ विशेष जाति के पौदों को विशेष खाद की आवश्यकता होती है; उदाहरणतः जड़ वाले पौदों को फासफोरस की, दालों को चूने की, आदि आदि।

धरती में आवश्यक तत्वों की मात्रा का एक संतुलन आवश्यक है। धरती और पौदों का पारस्परिक सम्बन्ध एक बड़ी जटिल समस्या है। पोटाश और कैलशियम की भूमि में प्रचुरता होने से पौदों की फासफोरस चूसने की शक्ति में कमी आजाती है जब कि चूने का पत्थर और सुपर फास्फेट के भूमि में डालने से पौदों में फासफोरस की मात्रा बढ़ जाती है।

एक प्रयोग में देखा गया कि सेलखड़ी (Gypsum) के भूमि में डालने से पौदों में कैलशियम की मात्रा में कम (०·०६ प्रतिशत) बढ़ती हुई जब कि नाइट्रोजन प्रधान खाद डालने से अधिक (०·३६ प्र० श०) बढ़ती हुई। नाइट्रोजन प्रधान खाद डालने से पौदों की भूमि से मैंगनीज और कोबल्ट चूसने की शक्ति में कमी आ जाती है।

उपरोक्त वर्णन से भूमि-शास्त्र के अध्ययन की महत्ता स्पष्ट हो जाती है। किसी प्रदेश की मिट्टी में विद्यमान रासायनिक तत्वों से उस प्रदेश के मनुष्य तथा ढोरों के स्वास्थ्य तथा जीवन में बड़ा अन्तर आ जाता है। किसी राष्ट्र के नागरिकों का स्वास्थ्य और समाज की आर्थिक समस्या दोनों उस प्रदेश की मिट्टी के गुणों पर निर्भर हैं।

## यूरोप और भारतवर्ष की भूमि में जाति भेद और भारत की मिट्टी की मुख्य जातियाँ

भारतवर्ष आधुनिक वैज्ञानिक अध्ययन और प्रगति में पाश्चात्य देशों से कई वर्ष पीछे है। भूमि-शास्त्र की मुख्य समस्याओं पर अन्वेषण पश्चिम में ही प्रारम्भ हुए और हमारे सामने वही बातें सत्य के रूप में उपस्थित की गईं जो कि पाश्चात्य अन्वेषकों को अपने देश में मालूम हुईं। केवल ४४ वर्ष पूर्व १९०५ ई० में पूसा, बिहार में

'भारतीय कृषि अनुसन्धान केन्द्र' स्थापित किया और साथ ही 'कृषि अनुसन्धान परिषद्' की भी स्थापना की गई। तब से किए गये अन्वेषणों से यह मालूम हुआ कि यूरोप और यूरेशिया, जो कि शीतोष्ण कटिबन्ध में स्थित हैं, के भूमि-शास्त्र के तथ्य हमारे देश में भी सत्य सिद्ध हों यह आवश्यक नहीं। हमारा देश ऊष्ण कटिबन्ध में स्थित है और यहाँ केवल वर्षा ऋतु में मानसून से वर्षा होती है। वर्ष का बाकी समय करीब करीब सूखा बीतता है। तापमान भी अतिशीत ४०° फारनहाइट से अति उष्ण १२५° तक बढ़ता है। इसके विपरीत यूरोप और यूरेशिया में तापमान मध्यम और वायुमण्डल में विशेष आर्द्रता रहती है। वहाँ पेड़ पौदे भी अधिक हैं। फलतः धरती की ऊपरी सतह से जल की मात्रा कम अंश में भाप के रूप में परिणत होती है और भूमि पर पड़े पौदों के अंश सड़ते रहते हैं। हमारे देश में भूमि से जल अधिक मात्रा में भाप बन जाता है और वायुमण्डल शुष्क रहता है। जलवायु की इस भिन्नता के कारण यूरोप और हमारे देश की मिट्टी के भौतिक तथा रासायनिक गुणों में बहुत परिवर्तन आगया है। इस भेद का एक और भी कारण है। यूरोप की वर्तमान मिट्टी का निर्माण पश्च हैमकाल (Post-glacial age) में हुआ अर्थात् यूरोप की धरती का जन्म ५० हजार वर्ष पूर्व जब कि हमारे देश में विन्ध्याचल के दक्षिण स्थित भूमि का जन्म पूर्व हैमकाल (Pre-glacial age) में हजारों-लाख वर्ष पूर्व हुआ। हिमालय पहाड़ भी इनके सामने शिशु के समान है। इस प्रदेश की मिट्टी बहुत ही परिपक्व हैं। इनमें युग युगान्तरों के अनन्तर कई परिवर्तन प्रारम्भ और पूर्ण हुए जिसके फलस्वरूप इस प्रदेश की मिट्टी का वर्तमान स्वरूप हो गया।

हमारे देश में चार प्रकार की मिट्टी मुख्य हैं: (१) लाल मिट्टी, (२) काली या रेगुट मिट्टी; ये दोनों अति प्राचीन हैं (३) पुलिन (Alluvial) मिट्टी जो कि सिन्ध-गंगा का उपजाऊ मैदान बनाती हैं और (४) Laterite रक्तपाषाण दक्षिणी पेनिनसुला की अम्ल मिट्टी; यह मिट्टी यूरोप में भी पाई जाती है।

इसके अतिरिक्त राजपूताना प्रान्त के समीप मरुभूमि है। क्षारीय ऊसर भूमि भी हमारे देश में अध्ययन के दृष्टिकोण से विशेष महत्व की हैं। यह संयुक्तप्रान्त में ऊसर, सिन्ध में कालर, पंजाब में राकर और थुर तथा बम्बई प्रान्त में चोपन कहलाती हैं।

यूरोप और अपने देश की भूमि की उपरोक्त भिन्नता को ध्यान में रखते हुए अपनी भूमि की समस्या का विचार हम निम्नलिखित दृष्टिकोण से करेंगे:—

१. जलवायु की भिन्नता के कारण पेड़ पौदों के मुख्य भोज्य पदार्थों की भूमि में मात्रा;

२. मानसून की वर्षा और बाकी समय शुष्क जलवायु होने के कारण पौदों को जल की समस्या;

३. तापमान के अधिक होने और सूर्यप्रकाश की प्रचुरता के कारण भिन्नता;

४. धरती को उपजाऊ बनाए रखने की समस्या रासायनिक खादों का प्रयोग;

५. धरती की ऊपरी सतह के धुल जाने के कारण भूमि क्षरण (Erosion टूट-फूट) की समस्या;

६. बढ़ती जनसंख्या को भोजन प्राप्त करने के लिए जोती बोई न जाने वाली धरती को उपजाऊ बनाना तथा बंजर और ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाना।

७. उपज को वर्तमान से २/३ गुना बढ़ाने का प्रयत्न करना और वैज्ञानिक अन्वेषणों को किसानों तक पहुँचाना और उन्हें भूमि की रक्षा और पोषण के उपाय बतलाना।

अब हम इन पहलुओं पर एक एक कर विचार करेंगे।

आधुनिक भूमि-शास्त्र के विद्वानों के मतानुसार मिट्टी की रचना भू-गर्भ की चट्टानों पर युगयुगान्तर में जलवायु के प्रभाव से हुई। और इस प्रकार की क्रिया से धरती में ऊपरी सतह से भूगर्भ की ओर एक के बाद दूसरे धरातलों की रचना हुई जो कि उनके भौतिक तथा रासायनिक गुणों से पहिचाने जा सकते हैं।

जैसा कि लिखा जा चुका है कि शीतोष्ण कटिबंध में धरती के ऊपर सड़े पदार्थों (पत्ती इत्यादि) की एक तह जम जाती है और इस भाग को अम्ल कर देती है। वर्षा के कारण इस तह के नीचे की तह (२-४ इंच मोटी) धुल जाती है और धुले हुए तत्त्व जैसे लौह एक तीसरी तह बनाते हैं जो गेरुआ रंग की होती है। इस तह से

नीचे पुरानी चट्टान या मातृशिला से बनी बालू की तह होती है। शीतोष्ण कटिबंध में इस प्रकार जो धरातलों का निर्माण होता है उस क्रिया को पोडसोलीकरण कहते हैं। इस प्रकार की भूमि विशेष अम्ल (H-४) होती है और इनमें धुलाई आसानी से होती रहती है। इनमें कार्बनिक अंश की प्रचुरता पाई जाती है। इसके विपरीत हमारे देश के ऊष्ण जलवायु में आर्द्रता कम रहने, पेड़ पौदों के कम होने से और सूर्य प्रकाश की प्रचुरता के कारण धरती के ऊपर कार्बनिक पदार्थ की तह नहीं जमा होती और हमारी भूमि बहुधा क्षारीय होती है। नदी के बहाव से जमा हुई पुलिन मिट्टी (Alluvial Soils) में कोई विशेष धरातल नहीं होते लेकिन पौदों की उपज के लिए सभी पदार्थ इनमें प्रचुरता में रहते हैं। Laterite Soil जो कि हमारे देश के दक्षिणी भाग में पाई जाती हैं उनमें पानी आसानी से समा जाता है और धरातलों का निर्माण स्पष्ट नहीं रहता। इसके विपरीत Lateritic red earths में पानी कठिनता से समाता है। काली मिट्टी में कार्बोनेट ऊपरी सतह से नीचे की सतहों में बह जाते हैं और करीब २-५ फिट की गहराई पर जमा हो जाते हैं। इनका ऊपरी हिस्सा काले रंग का होता है। क्योंकि उसमें ह्यूमस काफी रहता है। ये मिट्टियाँ क्षारीय गुण के कारण भुरभुरी होती हैं।

उपरोक्त वर्णन से भारतवर्ष और यूरेशिया की धरती में भेद का कारण स्पष्ट हो जाता है। यह भिन्नता हमारी धरती के निर्माण के 'काल' और 'प्रकार' के कारण है।

हमारे देश की मिट्टी में जलवायु के प्रभाव से कार्बनिक पदार्थ और कुल नाइट्रोजन की इतनी कमी पाई जाती है कि यूरोप में ऐसी भूमि कृषि के अनुपयुक्त समझी जाती है। लेकिन यहाँ फासफोरस और पोटाश की कमी नहीं पाई जाती क्योंकि यह दोनों तत्त्व मातृ-शिला से प्राप्त होते हैं। लेकिन यूरेशिया की मातृ-शिला में इन तत्त्वों की कमी से ऊपरी सतह में भी इन तत्त्वों की कमी होती है और फलतः उपज में कमी आ जाती है।

निम्नलिखित सारणी में इंग्लैण्ड और भारतवर्ष की मिट्टी में मुख्य तत्वों की मात्रा दे रहे हैं।

( ग्राम प्रतिशत में )

| | कार्बनिक अंश | कुल नाइट्रोजन | प्राप्य नाइट्रोजन | फासफोरस | पोटाश |
|---|---|---|---|---|---|
| भारतवर्ष | ०·७५–२·०० | ०·०३–०·०६ | ०·००३–०·०१ | ०·०३–०·०६ | ०·००८–०·०२ |
| इंग्लैण्ड | १·००–३·०० | ०·०६–०·२२ | ०·०३–०·०१ | ०·०३–०·०६ | ०·०१—०·०२ |

उपर्युक्त सारणी में विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि हमारे देश की मिट्टी में नाइट्रोजन की कुल मात्रा कम होने पर भी प्राप्य नाइट्रोजन की मात्रा अधिक है। पौदों की उपज पर धरती में कुल नाइट्रोजन की मात्रा से उतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना उसके प्राप्य रूप में मौजूद होने से। क्योंकि जड़ों के द्वारा पौदे सिर्फ अमोनिया और नाइट्रेट के रूप में नाइट्रोजन शोषण करते हैं। इंग्लैण्ड तथा अन्य शीतोष्ण प्रदेशों में कुल नाइट्रोजन का केवल १/१०० वां भाग प्राप्य रूप में मिट्टी में विद्यमान रहता है जब कि हमारे देश में करीब १/१० वाँ भाग प्राप्य रहता है। यह एक बहुत बड़ा भेद है और इसी कारण हमारे देश में बिना खाद दिये भी उसी भूमि पर लगातार प्रति वर्ष बरसात में कुछ न कुछ उपज हो ही जाती है।

रंजन और कोठियाल के एक प्रयोग में जिसमें चार प्रकार की मिट्टी ली गई थी कुल और प्राप्य नाइट्रोजन की मात्रा ग्राम प्रतिशत में इस प्रकार थी :

| | कुल नाइट्रोजन | प्राप्य नाइट्रोजन |
|---|---|---|
| १. चुपड़ी मिट्टी | ०·०४५ | ०·००४ |
| २. पिरोर (कछार) मिट्टी | ०·०८५ | ०·००६ |
| ३. बाग की मिट्टी | ०·०८० | ०·००४ |
| ४. बलुई मिट्टी | ०·०५० | ०·००२ |

गमलों में इन चार प्रकार की मिट्टियों को भर कर गेहूँ बोया गया और देखा गया कि बलुई मिट्टी में पौदों की उपायल (तन्दुरुस्ती) और उपज (yield) चुपड़ी मिट्टी से कम है यद्यपि बलुई मिट्टी में कुल नाइट्रोजन चुपड़ी मिट्टी से अधिक है। यह अन्वेषण प्राप्य नाइट्रोजन की मात्रा की महत्ता को दर्शाता है। बलुई मिट्टी में कुल नाइट्रोजन अधिक होने पर भी खाद डालने की सबसे अधिक आवश्यकता है।

## पानी की समस्या

हमारे देश के जलवायु में केवल बरसात में मूसलाधार पानी बरसाता है। ज्यादा पानी बरसने पर नदियों में बाढ़ आजाती है और ढालू जमीन का ऊपरी भाग, जो कि पौदों की उपज के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण है बह जाता है और भूमि में दरारे पड़ जाती हैं। मानसून के बाद शुष्क ऋतु आती है और पौदे पानी के लिए तरसते हैं। इसके विपरीत इंग्लैण्ड में समुद्र नज़दीक होने से साल भर नमी रहती है। यूरेशिया के शीतोष्ण कटिबन्ध में भी साल भर नमी रहती है। भारतवर्ष के इस प्रकार के जलवायु में बरसात में खरीफ की फस्ल बिना खाद दिये भी हो जाती है लेकिन रबी की फस्ल के लिए पानी की समस्या विकट हो जाती है।

इलाहाबाद अग्रीकलचरल इन्स्टिट्यूट में १६३६ में एक प्रयोग प्रारम्भ किया गया जिसमें एक ५३८'×८८' के खेत की बराबर २४ क्यारियों में से ६ क्यारियाँ में ६" मोटी कच्चे गोबर की तह को गाढ़ दिया गया। बाकी क्यारियों में खाद फैला कर जोत दी गई। इस खेत में लगातार खरीफ की फस्ल बोई गई। जिन क्यारियों में खाद को गाढ़ा गया था उनमें अन्य क्यारियों से दो-तीन गुनी अधिक पैदावार हुई। इस प्रयोग से यह सिद्ध हो गया कि खाद को प्रयोग करने का यह एक बहुत अच्छा तरीका है। इस तरीके से कोई भी खाद प्रयोग की जा सकती है और उसका प्रभाव १० साल से अधिक देखा गया है। १६४७ में इन क्यारियों में जाड़ों में जौ बोया गया। हर एक क्यारी में पौदे तो बराबर उगे लेकिन ५-६ हफ्ते बाद गढ़ी हुई खाद की क्यारियों के अलावा अन्य सब क्यारियों में जौ के पौदे सूख गये। रंजन और कोठियाल ने इस समस्या पर विस्तृत अनुसंधान किए जिससे मालूम हुआ कि गढ़ी हुई खाद के अलावा अन्य क्यारियों में कार्बनिक अंश की कमी होने से उनकी पानी को सोखने की शक्ति में भी कमी आ जाती है। और पानी की मात्रा में कमी होने से शुष्क जलवायु में पौदे सूख जाते हैं।

चार भिन्न-भिन्न प्रकार की मिट्टियाँ, जिनका हम उल्लेख कर चुके हैं उनमें बाग की मिट्टी और बलुई मिट्टी में पानी की समस्या में पिरोर और चुपड़ी मिट्टियों से बहुत भेद रहा। सभी गमलों में उपयुक्त मात्रा में पानी देने पर भी पहले दो प्रकार की मिट्टियों में पौदों की पत्तियाँ जल्दी सूखने लगीं। बाग और बलुई मिट्टी के गमलों में प्रारभ में जो बालें आई थी वही पकीं जब कि पिरोर और चुपड़ी मिट्टी के गमलों के पौदे अधिक दिन हरे रहे और उनमें बालें काफी अर्से तक आती रहीं। पानी को सोखने के इस भेद के कारण उपज में बड़ा भेद आ गया।

अतः हमारा विचार है कि पानी हमारे देश में फस्ल के लिए एक सीमान्त कारण (Limiting factor) की तरह सिद्ध होता है और इस समस्या पर गहरा अध्ययन होना चाहिए। पानी की कमी के कारण हमारे देश की उपज में बहुत कमी आ जाती है। खरीफ और रबी दोनों फस्लों में ठीक समय पर वर्षा न होने से अन्न का अकाल पड़ जाता है। वर्तमान में हमारे देश की उपजाऊ भूमि का केवल एक चौथाई भाग (६४ लाख एकड़) सींचा जाता है। यदि कुएँ खोद कर तथा नहरें बना कर सिंचाई को बढ़ाया जाय तो अन्नाकाल का कोई भय न रहे। अमेरिका में T. V. A. की योजना ने देश की काया पलट कर दी। यदि हमारे देश की दामोदर घाटी, नायर बाँध (मरोरा डाम) आदि की योजना सफल हो जाँय तो सिंचाई तथा सस्ती विद्युत शक्ति की प्राप्ति से हमारे देश की आर्थिक स्थिति बहुत सुधर जाय।

## तापमान और सूर्य-प्रकाश

ऊष्ण कटिबन्ध में स्थित होने के कारण हमारे देश में तापमान शीतकाल में बहुत कम (४०°फ०) और गरमी में बहुत अधिक (१२५° फ०) रहता है। सूर्यप्रकाश की यहाँ हमेशा प्रचुरता रहती है। वर्षाऋतु में गरमी तथा पानी दोनों के पर्याप्त मात्रा में होने से पत्ती, पौदे आदि जल्दी-जल्दी सड़ जाते हैं और खाद में परिणित हो जाते हैं।

धर और उनके शिष्य इस विषय पर पिछले बीस बर्षों से प्रयोग कर रहे हैं। उन्होंने सभी प्रकार के पदार्थ जिनमें कारबन हो, उदाहरणतः कागज, घी, शीरा, नीम की पत्ती, गोबर की खाद, भूसा, चीनी आदि को मिट्टी में मिलाया और उसको धूप में और अन्धेरे में रक्खा। उनके अन्वेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि उपरोक्त सभी शक्तिदायक

पदार्थ जिनमें कार्बन होता है वे मिट्टी में सूर्य-किरणों की सहायता से उपचित हो जाते हैं और इस प्रक्रिया में जितनी शक्ति का उत्पादन होता है वह वायुमण्डल की नाइट्रोजन का निग्रहण करने में सहायक होती है। इस मत के अनुसार कोई भी कारबन-युक्त पदार्थ चाहे उनमें नाइट्रोजन न भी हो वह भी मिट्टी में मिला दिया जाय तो वह कुछ काल के उपरान्त धरती में नाइट्रोजन की वृद्धि करता है।

यूरोप आदि शीतोष्ण कटिबन्ध के देशों में किये गये प्रयोगों से यह सिद्ध होता है कि भूमि में नाइट्रोजन की वृद्धि नाइट्रोजन निग्रहण करने में समर्थ द्रुमाणु (Bacteria) से होती हैं। धर के मतानुसार उष्ण कटिबन्ध में यह आवश्यक नहीं। हमारे देश के जलवायु में सूर्य-रश्मि से ही नाइट्रोजन की वृद्धि हो जाती है।

## धरती को उपजाऊ बनाने की समस्या

जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है हमारे देश की भूमि में कार्बनिक पदार्थ और नाइट्रोजन की कमी है। लेकिन नाइट्रोजन की इस कमी को पूरी करने के लिये हमारे पास कोई साधन नहीं। पश्चिम के उन्नतिशील देशों में नाइट्रोजन को वायुमण्डल से निग्रहण करने के बड़े बड़े कारखाने हैं। १६३७ में जर्मनी में १३ लाख टन, इंग्लैण्ड में २ लाख टन, जापान में ४ लाख टन नाइट्रोजन का मशीन से उत्पादन होता था। जापान ने पिछले २० वर्षों में धान की पैदावार में सारे संसार को मात दे दी। इंग्लैण्ड ने भी अपने देश की उपज को पिछले १५-२० वर्षों में कई गुना बढ़ा दिया। बेलजियम में प्रति एकड़ गेहूँ की पैदावार हमारे देश से दुगुनी है। जैसा कि हम लिख चुके हैं; हमारे देश में प्रति एकड़ पैदावार बढ़ाने की सबसे बड़ी आवश्यकता है लेकिन अभाग्यवश 'अधिक भोजन पैदा करो' ( Grow more food Campaign ) के प्रयत्न करने पर भी १६४५-४६ में १६३६-३७ के गेहूँ की प्रति एकड़ पैदावार में कमी हो गई। ( संयुक्त प्रान्त में ६८ पाउंड प्रति एकड़, पूर्वी पंजाब में १६६ पा० प्र० ए०, बिहार १६६ पा० प्र० ए०, दिल्ली में २६१ पा० प्र० ए०, अमृत बाज़ार पत्रिका की एक खबर के आधार पर )

पाश्चात्य देश अपनी भूमि में प्रतिवर्ष प्रति एकड़ कुछ न कुछ रासायनिक खाद डालते रहते हैं ( हॉलैण्ड २५ पा० प्र० ए०, बेलजियम २८ पा० प्र० ए०, इंग्लैण्ड ३ पा० प्र० ए०, जर्मनी १५ पा० प्र० ए०,) लेकिन हमारे देश में कोई सुविधा नहीं। नई दिल्ली की एक खबर (८ अक्टूबर १६४७) में प्रकाशित हुआ कि भारतवर्ष को प्रतिवर्ष १५ लाख टन नाइट्रोजन की आवश्यकता है। गोबर से अधिक से अधिक ३ लाख टन नाइट्रोजन प्राप्त हो सकती है अतः १२ लाख टन की कमी पड़ती है। यदि ५० प्रतिशत खली (oil cake) भी खाद के रूप में प्रयोग की जाय तो भी १० लाख टन की कमी पड़ेगी। इस कमी को पूरा करने के लिए कुछ वर्ष पूर्व हमारी सरकार ने राजपूताना की खानों से ( Gypsum ) सेलखड़ी प्राप्त कर बिहार की कोयले की खानों के नजदीक ले जाकर ३·५ लाख टन अमोनियम सल्फेट प्रतिवर्ष बनाने की योजना बनाई थी। लेकिन ऐसी योजना में विशेष खर्च का ब्यौरा होने से यह कार्य रूप में परिणित न हो सकी।

रासायनिक खादों को देश में उपयुक्त लागत पर बनाना अति आवश्यक है क्योंकि इसके प्रयोग से अन्य organic खादों के मुकाबले अधिक उपज होती है। यद्यपि लगातार इनके प्रयोग से भूमि के गुण पैदावार के लिए हानिकारक भी हो सकते हैं।

रासायनिक खादों के उपलब्ध न होने पर भी हमें पैदावार बढ़ाने के अन्य उपाय काम में लाने चाहिये। इस प्रसंग में हमें चीन के किसानों से शिक्षा लेनी चाहिये। वे खाद के रूप में प्रयोग की जाने वाली सभी वस्तुओं को बड़े प्रयत्न से संग्रह करते हैं और अपनी खेती में प्रयोग करते हैं। किंग ने अपनी पुस्तक 'Farmers of the Forty Centuries' में लिखा है कि किसानों के बच्चे ढोरों का गोबर जमीन में पड़ने से पहले ही टोकरी में पकड़ लेते हैं। चीन में शहर के मैले को हजारों रुपये की लागत पर ठेकेदार खरीदते हैं। वहाँ शहर के मैले को नदियों में नहीं बहाते बल्कि उसे खाद की तरह प्रयोग कर देश की पैदावार बढ़ाते हैं। कारपेन्टर के एक अनुमान के अनुसार ४०० लाख आदमियों की विष्टा से साल भर में १·५ लाख टन फासफोरस, ३·७६ लाख टन पोटेशियम और ११·५३ लाख टन नाइट्रोजन प्राप्त हो सकता है।

जैसा कि उल्लेख किया गया है हमारे देश में करीब १२ लाख टन नाइट्रोजन की कमी पड़ती है जिसका बहुत सा भाग इस स्रोत से पूरा किया जा सकता है। हिन्दुस्तान के जलवायु में विष्ठा का हानिकारक और बीमारी फैलाने वाला प्रभाव जल्द ही नष्ट हो जाता क्योंकि मिट्टी में रोग के कीटाणुओं को नष्ट करने की शक्ति रहती है। शहर के कूड़े तथा अन्य गन्दगी में एक अनुमान के अनुसार ७० लाख टन नाइट्रोजन, १३ लाख टन फासफोरस और ६३ लाख टन पोटाश का प्रतिवर्ष हमारे देश में अपव्यय होता है।

रूढ़िवादी लोग परम्परा से प्रयोग की जाने वाली खादों के अतिरिक्त अन्य खादों को नहीं प्रयोग करते। घर के अन्वेषणों के अनुसार कोई भी कारबन युक्त पदार्थ खाद के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। उन्होंने कागज, भूसा, शीरा आदि प्रयोग कर भूमि में नाइट्रोजन की वृद्धि को दिखलाया है।

रंजन और कोठियाल ने भी इस प्रसंग में प्रयोग किए। आम के गूदे को सड़ा कर और बिना सड़ाए खाद के रूप में गमलों में प्रयोग किया गया। और इन गमलों में धान, मकई, गेहूँ की फस्लें उगाई गई। पौदों की उपज और पैदावार से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि आम के गूदे को सफलतापूर्वक खाद की तरह प्रयोग किया जा सकता है।

आम के गूदे और गेहूँ में प्रोटीन की मात्रा करीब-करीब बराबर होती है। अतः गेहूँ के आटे को भी खाद की तरह प्रयोग किया गया। इन गमलों में भी पैदावार बहुत बढ़ गई है। अतः स्पष्ट है कि कोई भी प्रोटीन-युक्त पदार्थ खाद की तरह प्रयोग किया जा सकता है। सनई की हरी खाद के बजाय हमने मामूली हरी पत्तियाँ जैसे नीम की पत्तियाँ तथा बगीचे में झड़कर जमा हुई पत्तियाँ आदि को गड्ढे में सड़ा दिया। इस तरह बनी खाद को प्रयोग कर मालूम हुआ कि वह सनई की खाद से निश्चय ही अच्छी खाद है। सनई की जड़ों में वायुमण्डल से नाइट्रोजन को निग्रहण करने वाले कीटाणु रहते हैं और उसमें नाइट्रोजन की प्रतिशत मात्रा भी अन्य पौदों से अधिक होती है। लेकिन पौदों में डंठल पड़ जाने के बाद उनमें कारबन की मात्रा इतनी अधिक हो जाती है कि मिट्टी में कारबन-नाइट्रोजन का अनुपात पौदों की उपज के लिए प्रतिकूल हो जाता है।

शहर के कूड़े को सड़ा कर खाद की तरह प्रयोग किया जा सकता है। हर्ष का विषय है कि हमारे प्रान्त की कई नगर-सभाओं के निरीक्षण में इसका प्रयत्न किया जा रहा है।

पानी की कुछ जाति की काइयों (Algae) में भी नाइट्रोजन बहुत अधिक मात्रा में होता है। इनको खाद की तरह प्रयोग करने के प्रयत्न किए जारहे हैं।

हमें भविष्य में उन सभी वस्तुओं को जो अन्यथा किसी काम नहीं आतीं, लेकिन खाद की तरह प्रयोग की जा सकती हैं, प्रयोग कर भूमि को उर्वरा बनाना चाहिए।

## धरती के धुलने और टूटने-फूटने से हानि—भूमिक्षरण

हमारे देश की धरती की उत्पादन शक्ति का ह्रास केवल इसीलिए नहीं हो रहा है कि हम उसमें खाद नहीं दे सकते बल्कि बहुत सा भाग इसलिए भी बंजर होता जा रहा है कि ढालू जमीन की ऊपरी सतह बरसात में मानसून की मूसलाधार वर्षा में धुल जाती है और उसमें दरारें और गड्ढे बन जाते हैं। सड़क, रेलवे-लाइन, नदी-नाले आदि के दोनों ओर इस प्रकार का भूमि-क्षरण प्रत्यक्ष दीखता है।

भारतवर्ष की धरती में भूमि-क्षरण शताब्दियों से होता चला आ रहा है। १८४४ में स्लीमैन (I. C. S.) ने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि खेतों की देखरेख न करने से बुन्देलखण्ड का उपजाऊ भाग, नरबदा का डेल्टा धुलता चला जा रहा है। इसको रोकने के लिए हमारे देश में 'बन्द' बनाने की प्रथा थी। जबलपुर में राजा मान ने १५ वीं शताब्दी में बन्द बनाए थे। शिवालिक की पहाड़ियों से काफी मिट्टी बह कर पास के मैदानों में जमा हो जाती है जिसे 'चो, कहते हैं। १९०० ई० में पंजाब की सरकार ने 'चो' का कानून बनाया जिससे इस भाग में पेड़ों को उगाने तथा चरागाहों की रक्षा करने की व्यवस्था की गई।

१९३५ में भारतीय बोर्ड आफ अग्रीकलचर और अनिमल हसबैन्ड्री की soil शाखा ने अपनी रिपोर्ट में यह बतलाया कि डकन (मद्रास) बम्बई, पंजाब, छोटा नागपुर और मध्यभारत प्रान्त में काफी भूमि क्षरण

(Erosion) होता है। इन प्रान्तों से भी अधिक टूट-फूट हिमालय की तराई के ढालों पर होती है। यह भाग पूर्व में पथरीले गुड़गाँव के पहाड़ों से लेकर शिवालिक की पहाड़ियों और पश्चिम में नमक के पहाड़ों (Salt range) तक विस्तृत है। इस भाग का क्षेत्रफल ३५०० वर्गमील है। दामोदर घाटी में भी काफ़ी टूट-फूट होती है। यद्यपि सही आंकड़े प्राप्त नहीं हैं फिर भी अनुमानतः हमारे देश की १५० लाख एकड़ भूमि की उपज भूमि-क्षरण के कारण कम हो रही है।

भूमि-क्षरण का मुख्य कारण धरती का शोषण करना है। जंगलों को काटना, लगातार फस्ल उगाना, चरागाहों में प्रतिवर्ष ढोरों को चुगाना, खेतों को गलत तरीके से जोतना-बोना, इसके मुख्य कारण हैं। पहाड़ों के ढालों पर ढाल की दिशा में जोतने और बांध न बनाने से भूमि धुल जाती है और उसमें दरारें पड़ जाती हैं।

भूमि-क्षरण हमारी सभ्यता के अस्तित्व के लिए बड़ी भयंकर चीज है। संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका में इस विषय पर लाखों किताबें और लेख प्रकाशित हो चुके हैं और धरती को भूमि-क्षरण से बचाने का सतत प्रयत्न किया जा रहा है। दुनिया के सामने बढ़ती आबादी को भरपेट भोजन उगाने की समस्या है लेकिन भूमि-क्षरण न रोकने से हमारे प्रयत्न पूर्ण सफलता नहीं पा सकते। भूमि-क्षरण से धरती की उर्वरा शक्ति को गहरा धक्का पहुँचता है।

हमारे देश के अधिकांश क्षेत्रफल को बनाने वाली काली और रक्त-पाषाण मिट्टी में स्वतः ही टूट-फूट कम होती है। लेकिन पहाड़ के ढालों, नदी की घाटियों—जैसे हमारे प्रान्त में गंगा के खादर, में बहुत भूमि-क्षरण होता है। शोलापुर, बम्बई की प्रयोगशाला इस विषय पर अनुसन्धान करने में प्रधान है। इस केन्द्र के निरीक्षण में शोलापुर, अहमदनगर, बीजापुर, पूना और सतारा जिले की भूमि पर प्रयोग किए जा रहे हैं। इन जिलों में सालाना कम लेकिन मूसलाधार वर्षा होती है। वर्ष भर काफी शुष्क जलवायु रहता है। जिन जिलों में बरसात में ज्वार की फस्ल बोई जाती है उनमें ३८ टन प्रति एकड़ मिट्टी सालभर में बह जाती है। ज्वार की फस्ल भूमि-क्षरण को बढ़ाती है। इसलिए यह आवश्यक है कि ऐसी भूमि में बारी-बारी से ऐसी फस्लें उगाई जाँय जो कि टूट-फूट को रोकें और भूमि में पानी की मात्रा को बढ़ाएँ। इस विषय पर किए अन्वेषणों से पता चलता है कि लतायुक्त दालों के पौदे जैसे चना, मूंगफली, उर्द, मूंग आदि भूमि-क्षरण को रोकते हैं। हमारे देश के भिन्न-भिन्न भागों में भूमि-रक्षण को रोकने वाले उपयुक्त पौदे, उनके प्रति एकड़ बीज बोने की मात्रा तथा इस दिशा में सहायक फस्लों का तारतम्य मालूम करने की आवश्यकता है।

जापान और अमेरिका आदि देशों में भूमि-रक्षण को रोकने के लिए अड़ू, इमली, इल्म, यूकिलप्टस, बारबेरी, चेस्टनट, (पांगर) मलबरी, चीड़, कुडजू आदि का प्रयोग किया जाता है। इन पेड़ तथा पौदों की जड़ें भूमि में काफी गहराई तक जाती हैं। इनमें कुडजू विशेष उल्लेखनीय है। यह एक बार लगा देने से हमेशा के लिए रहता है। इसकी बेल सारी जमीन पर फैल जाती है, और उसको ढक कर पानी से रक्षा करती है। इस बेल की पत्तियाँ ढोरों को खाने में बहुत स्वादिष्ट होती हैं। इसके अतिरिक्त इनमें नाइट्रोजन, पोटाश काफी मात्रा में विद्यमान रहते हैं। रंजन और कोठियाल ने इसे हरी खाद की तरह प्रयोग कर देखा कि इससे उपज बहुत बढ़ जाती है। हम इसे भूमि की रक्षा के लिए भी प्रयोग कर रहे हैं।

हर्ष का विषय है कि हमारी सरकार गंगा-खादर आदि टूट-फूट वाले भूमि-खण्डों को उपजाऊ बनाने का प्रयत्न कर रही है।

### बंजर तथा ऊसर भूमि

सरकारी आंकड़ों से पता चलता है कि १९४१ में सारे देश में ९४ लाख एकड़ भूमि पर न तो जंगल थे और न जोती-बोई जाती थी। इसमें से ९ लाख एकड़ भूमि उपजाऊ भूमि है और शेष ८५ लाख एकड़ ऊसर, बंजर, खादर आदि है।

हमारे देश में खाद्य पदार्थों की औसत पैदावार करीब ५० लाख टन प्रति वर्ष है। और हमारी आबादी के लिए करीब ५५ लाख टन भोज्य-पदार्थों की प्रति वर्ष आवश्यकता होती है। यदि उपरोक्त भूमि का एक चौथाई भी उपजाऊ बनाया जा सके तो हमें राशनिंग और भोजन कन्ट्रोल

विभाग की आवश्यकता न पड़ेगी।

जैसा कि लिखा जा चुका है हमारे देश की भूमि का बहुत सा भाग क्षार की मात्रा अधिक होने से ऊसर हो गया है।

लेदर ने क्षारीय ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाने के सम्बन्ध में प्रयोग किए। ऐसी भूमि पर सेलखड़ी (Gypsum) डालना विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ। लेकिन सेलखड़ी का प्रयोग बहुत मंहगा पड़ता है। धर का विचार है कि ऊसर भूमि पर शीरे का प्रयोग करने से वह उपजाऊ बन सकती है। प्रयाग विश्वविद्यालय में इस विषय पर अन्वेषण किए जा रहे हैं।

### उपज बढ़ाने के अन्य उपाय

अधिक से अधिक उर्वरा भूमि पर यदि खराब बीज बो दिया जाय तो पैदावार अच्छी नहीं हो सकती। अतः आवश्यक है कि देश की प्रयोगशालाओं में वैज्ञानिक अच्छे से अच्छे बीजों को बनाने का प्रयत्न करें। भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् के प्रयत्न से पूसा ५२, कानपुर १३, पंजाब ८ आदि अच्छे गेहूँ की किस्में उपलब्ध हुईं, जो कि प्रति एकड़ पैदावार मामूली गेहूँ से विशेष अधिक देते हैं।

हिन्दुस्तान जैसे बड़े देश में जलवायु और मिट्टी की भिन्नता से एक ही जाति (variety) का गेहूँ या अन्य बीज सभी भागों में अच्छी उपज नहीं दे सकता। अतः प्रत्येक प्रान्त में अच्छे से अच्छे बीजों को बनाने का प्रयत्न किया जाना आवश्यक है।

दस वर्ष पूर्व प्रयाग विश्वविद्यालय के वनस्पति-शास्त्र के अध्यक्ष प्रो० श्री रंजन ने पूसा ५२ को रंजन-रश्मि से प्रभावित कर ११ नई किस्म के गेहूँ उत्पन्न किए, जिनमें से तीन बहुत अच्छे सिद्ध हुए। सब से अच्छे गेहूँ का नामकरण श्रीमती विजयालक्ष्मी के नाम से 'विजया' किया गया और दूसरे गेहूँ का नामकरण स्वर्गीय श्रीमती सरोजिनी नायडू के नाम से 'सरोजिनी' किया गया। ये गेहूँ हमारे प्रान्त में बहुत अच्छी उपज देते हैं और इनके प्रयोग का प्रचार होना चाहिए।

रबी की फस्ल की उपज बढ़ाने के लिए सिंचाई का प्रबन्ध होना अति आवश्यक है। देश की सरकार को कुएँ खोदकर और नहरों से सिंचाई का प्रबन्ध करना चाहिए। हमारे देश की अधिकांश जनसंख्या का मुख्य भोजन चावल है। धान पानी का पौदा है। अतः स्पष्ट है कि धान की उपज बढ़ाने के लिए सिंचाई का यथेष्ट प्रबन्ध होना चाहिए। जापान से हमें उदाहरण लेना चाहिए और अपने देश की धान की उपज को दस गुना नहीं तो ५ गुना अवश्य बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए।

अमेरिका में किसानों को नई बातें बतलाने के लिए कई पत्र हैं लेकिन हमारे देश के किसान न तो पढ़े-लिखे हैं और न इस विषय में यहाँ कोई प्रचार का कार्य होता है। विद्वान अन्वेषकों के अन्वेषण यदि पुस्तकों में ही प्रकाशित किए जाएँ और किसानों द्वारा प्रयोग में न लाए जाएँ तो देश की भोजन की समस्या हल होने की कोई आशा नहीं। हमारे देश के कृषि विभाग के लोग सिर्फ़ कागज़ी कार्यवाही तक अपने काम को सीमित रखते हैं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के कृषि विभाग में प्रयोगशालाओं में पाये गये उपयोगी निष्कर्षों को किसानों तक प्रचार करने के लिए कार्यकर्ताओं की एक श्रृंखला है। हर एक स्टेट की केन्द्रीय प्रयोगशालाओं में जो उपयोगी फल मिलते हैं उनको अधिकारीवर्ग किसानों को सिखा देते हैं। प्रोत्साहन मिलने से ये लोग नये ढङ्गों को प्रयोग करने को तैयार हो जाते हैं और लाभ उठाते हैं। भारतवर्ष के अपढ़ और रूढ़िवादी किसानों को ऐसी शिक्षा की परम आवश्यकता है।

कहा जाता है कि "आवश्यकता आविष्कार की जननी है" लेकिन बड़े आश्चर्य की बात है कि भारतवर्ष जैसे कृषि प्रधान देश में भौतिक, रसायन, आदि शास्त्रों में बड़े-बड़े वैज्ञानिक हुए लेकिन कृषि अनुसंधान में हमारा देश अभी तक बहुत पिछड़ा हुआ है। हमारे देश के उत्साही अन्वेषकों को इस विषय में विशेष रुचि लेनी चाहिए और देश के भोजन तथा व्यापार की समस्या को सुलझा कर उसे अन्य देशों के समान उन्नति के शिखर पर पहुँचाने का प्रयत्न करना चाहिए।

केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकार को भी भूमि-शास्त्र के अनुसंधान को समुचित महत्त्व देना चाहिए। हर्ष का विषय है कि इस विषय की ओर उचित ध्यान दिया जा रहा है।

# मनुष्य पर भौगोलिक परिस्थिति का प्रभाव

## विज्ञान परिषद के ३५ वें अधिवेशन के अवसर पर डा० रामनाथ दुबे का भाषण

आज के दिवस को मैं अपने जीवन का एक स्वर्ण दिवस समझता हूँ। विज्ञान परिषद् के सम्मुख बोलने का अवसर एक बहुत ही बड़ा सम्मान है। इस सम्मान का महत्व मेरे लिये और भी बढ़ जाता है जब मैं यह देखता हूँ कि आज इस सभा में श्रद्धेय श्री आचार्य जी जैसे धुरंधर विद्वान उपस्थित हैं। अतः इस सम्मान के लिये मैं अपने मित्र विज्ञान परिषद् के सभापति महोदय डा० श्री रंजन जी को अनेक धन्यवाद देता हूँ।

परन्तु मैं ऐसी धृष्टता नहीं कर सकता हूँ कि यह समझूँ कि इतना बड़ा सम्मान मुझ जैसे तुच्छ व्यक्ति के लिये व्यक्तिगत रूप से दिया गया है। नहीं! वास्तव में यह सम्मान उस विषय के लिये है जिसकी सेवा मैं इस विश्वविद्यालय में लगभग २३ वर्ष से कर रहा हूँ। वह विषय भूगोल है। विज्ञान परिषद् में भूगोल पर व्याख्यान होना हमारे देश में भूगोल की उन्नति का सूचक है। आधुनिक योरोप तथा अमेरिका में तो भूगोल ने पिछले ५० वर्षों में अपना यथोचित स्थान पा लिया है। परन्तु हम लोग इस विषय में अभी तक बहुत पिछड़े हुये हैं। वास्तविकता तो यह है कि बिना भूगोल की उन्नति के किसी भी विज्ञान की उन्नति केवल अधूरी है। किसी भी विज्ञान की उन्नति का मुख्य ध्येय मनुष्य की उन्नति में सहायक होना ही है। विज्ञान और मनुष्य के बीच यह घनिष्ट सम्बन्ध ही आधुनिक सभ्यता का मूल है। परन्तु मनुष्य और विज्ञान के इस घनिष्ट सम्बन्ध का द्योतक भूगोल ही है। वैज्ञानिक प्रकृति के नियमों की खोज बीन करता है, और उसके अन्वेषण से यह पता लगता है कि किसी निर्धारित अवस्था में प्रकृति का कौन सा नियम लागू होगा। परन्तु वह यह नहीं बताता है कि वैसी निर्धारित अवस्था पृथ्वी पर कहाँ कहाँ पाई जाती है। प्राकृतिक दशा के इस भौगोलिक वितरण को केवल भूगोल ही बता सकता है। विज्ञान ने किसी अंश तक अपने अन्वेषण द्वारा 'क्या' और 'क्यों' के प्रश्नों का उत्तर दिया। मगर भूगोल ने 'कहाँ' के प्रश्न का उत्तर दिया।

परन्तु 'कहाँ' प्रश्न का उत्तर पाते ही मनुष्य प्रकृति के नियमों से लाभ उठाने के लिये तैयार हो जाता है। जब तक भूगोल द्वारा 'कहाँ' का उत्तर नहीं मिलता है तब तक विज्ञान का सारा अन्वेषण मनुष्य के हित की दृष्टि से बेकार है। उदाहरणार्थ, विज्ञान हमको यह बताता है कि गेहूँ की उपज के लिये क्या-क्या आवश्यकतायें हैं। परन्तु भूगोल हम को यह बताता है कि वे आवश्यकतायें पृथ्वी के किस भाग में पूरी हो सकती हैं। अतः उन्हीं भागों में मनुष्य गेहूँ उपजाने का प्रयत्न करता है। वैज्ञानिक अणु शक्ति का पता लगाता है, परन्तु अणु शक्ति का देने वाला यूरेनियम कहाँ मिलता है इसका पता भूगोल से ही लगता है।

परन्तु 'कहाँ' प्रश्न का उत्तर देने के अतिरिक्त भूगोल का एक दूसरा बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य है। वह कार्य पृथ्वी पर मनुष्य की उन्नति का अध्ययन करना है। हम सब लोग जानते हैं कि पशु पक्षियों की भाँति मनुष्य केवल एक जीव ही नहीं है। जीव के अतिरिक्त वह कुछ और भी है। उसमें कुछ ऐसी शक्ति है जो अन्य जीवों में नहीं पाई जाती है। यह शक्ति मनुष्य के मस्तिष्क में है। इसी मस्तिष्क की सहायता से ही मनुष्य "अशरफुल मखलूकात" होने की उपाधि पाता है। भूगोल की दृष्टि से मनुष्य के लिये उसके मस्तिष्क का सबसे बड़ा लाभ 'चुनाव' करने में है। किसी दशा में मनुष्य क्या करेगा, यह उसी के मस्तिष्क के चुनाव पर निर्भर है। यह चुनाव क्या होगा कोई भी वैज्ञानिक आजतक नहीं बता सका है। परन्तु भूगोल ने मनुष्य की उन्नति को भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में अध्ययन किया है। और इसलिये वही इस चुनाव के बारे में कुछ कह सकता है।

चुनाव करने में मनुष्य की विचार शक्ति और उसकी 'गति' ( mobility ) अधिक सहायक हैं। विचारशक्ति का सम्बन्ध मनुष्य के पुराने अनुभवों से है। अधिक अंश तक यह अनुभव भिन्न-भिन्न परिस्थितियों से मिलते हैं। और इसलिये वे भूगोल से सम्बन्धित है। 'गति' के द्वारा

मनुष्य एक परिस्थिति से दूसरी परिस्थिति में जा सकता है, और ज्यों-ज्यों इस 'गति' में 'वेग' बढ़ता जाता है त्यों-त्यों मनुष्य के चुनाव का क्षेत्र बढ़ता जाता है। अर्थात् वह अपनी परिस्थित को शीघ्र से शीघ्र त्याग सकता है। परन्तु विशेष ध्यान देने की बात यह है कि वेग से वेग गति भी मनुष्य को पृथ्वी से अलग नहीं ले जा सकती है। हवाई जहाज को भी पृथ्वी पर उतरना ही पड़ता है।

अपनी विचार शक्ति और गति की सहायता से मनुष्य प्रकृति के अनेक नियमों से लाभ उठाता है जिनका अन्वेषण विज्ञान ने किया है। किसी एक नियम से वह दूसरे नियम को काटता है और इस प्रकार प्रकृति की निर्माण की हुई परिस्थिति में कुछ थोड़ा सा परिवर्तन कर लेता है। और इस प्रकार "प्रकृति-विजेता" होने का दावा करने लगता है। वास्तव में उसकी यह 'विजय' केवल 'प्रकृति-सहकारिता' (Cooperation with nature) ही है। प्रकृति के नियमों का उल्लंघन नहीं। यही कारण है कि किसी भी परिस्थिति से किसी न किसी रूप में मनुष्य अपना लाभ कर सकता है। बर्फ से ढके हुये आर्कटिक प्रदेश में अथवा सहारा जैसी मरुभूमि में भी मनुष्य रह सकता है और रहता है। यद्यपि इन कठिन परिस्थितियों में वह अपनी उन्नति इस प्रकार नहीं कर सकता जैसे कि अधिक सहायक परिस्थितियों में।

यह प्रत्यक्ष है कि प्रत्येक मनुष्य की विचार शक्ति तथा 'गति' समान नहीं हो सकती हैं। उनमें भिन्नता आवश्यक है। जिस जाति के मनुष्यों में जितनी ही अधिक विचार शक्ति तथा गति होती है वह जाति उतनी ही अधिक उन्नत और सभ्य समझी जाती है। क्योंकि वह जाति अपनी इन शक्तियों से अपनी परिस्थिति में यथा समय बहुत कुछ परिवर्तन कर सकती है। और उन परिवर्तनों से अपनी उन्नति में सहायता लेती हैं।

सारांश यह है कि इस पृथ्वी पर जितनी भी भिन्न-भिन्न परिस्थितियाँ हैं उनके बनाने व बिगाड़ने में प्रकृति तथा मनुष्य दोनों ही का हाथ है। जितना ही उन्नत मनुष्य, उतना ही अधिक बलवान उसका हाथ।

उपरोक्त बात का ध्यान रखते हुए प्रत्येक परिस्थिति के दो भाग किये जाते हैं। एक तो प्राकृतिक परिस्थिति (Physical environment) और दूसरी सांस्कृतिक परिस्थिति (Cultural environment)

प्राकृतिक परिस्थिति में स्थल की विशेषतायें, जैसे नदी, तालाब, पहाड़, पठार, जलवायु, चट्टानें, वन इत्यादि सम्मिलित किये जाते हैं। और सांस्कृतिक परिस्थिति में मनुष्य द्वारा निर्मित वस्तुयें; जैसे नहर, पुल, सड़क, रेल, सुरंग, खेत, उद्यान, इत्यादि हैं।

यहाँ पर विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि दोनों प्रकार की परिस्थितियाँ प्रगतिशील (dynamic) हैं। जीवित हैं, स्थाई या मृत (static) नहीं अर्थात् उनमें सदा परिवर्तन होता रहता है। घड़ी-घड़ी, मिनट-मिनट उनका रूप, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष, बदलता रहता है। नदी के किनारे जो कण हम आज देखते हैं, कल वहाँ नहीं रहेगा। पेड़ की जिस पत्ती को आज हम हरी देखते हैं कल उसमें कुछ परिवर्तन हो जायेगा। इसी भांति जहाँ आज मरुस्थल है, वहाँ पर सौ या दो सौ वर्ष उपरांत बड़े बड़े हवाई अड्डे बन सकते हैं जिनके चारों ओर पाताल तोड़ कुओं के जल से हरे भरे पेड़, शीतल सुन्दरता का आनन्द दे रहे हों। पाँच सौ वर्ष पहले कौन कह सकता था कि बीकानेर की मरुभूमि में नहर की सिचाँई से लहलहाते हुये खेत बन सकेंगे?

प्राकृतिक परिस्थिति में सबसे अधिक प्रभावशाली अंग जलवायु है। जलवायु का प्रभाव बहुत ही विस्तृत और गंभीर होता है। यथार्थ में परिस्थिति की प्रगतिशीलता इसी जलवायु का ही फल है। इसके अतिरिक्त जलवायु की भिन्नता ही परिस्थिति की भिन्नता का मूल कारण है। चूँकि पृथ्वी पर एक स्थान से दूसरे स्थान तक अनेक प्रकार की जलवायु पाई जाती है, इसीलिये एक स्थान से दूसरे स्थान तक परिस्थिति भी बदलती रहती है। जलवायु की भिन्नता का कारण पृथ्वी पर सौर-शक्ति का असमान वितरण है। जलवायु के सभी अंग, जैसे वायु, जलवर्षा, ताप इत्यादि इसी सौर-शक्ति के फल हैं। मनुष्य के जीवन को जलवायु के प्रभाव से अलग नहीं रक्खा जा सकता है। प्राकृतिक परिस्थिति में जलवायु ही एक ऐसी शक्ति है जिसमें मनुष्य अपने लाभ के लिये बहुत कम परिवर्तन कर सका है। यह सत्य है कि थोड़ी मात्रा में मनुष्य आजकल एअर-

कंडीशन करके वायु के ताप को घटा-बढ़ा सकता है। परन्तु इसका लाभ अभी तक जन-साधारण के लिये नहीं है। और यदि ऐसा हो भी जाय तो भी इसका लाभ मनुष्य के निवास स्थान तक ही सीमित रहेगा, बाहरी क्षेत्रों में उसका कार्य जलवायु पर ही निर्भर रहेगा। मनुष्य के शरीर पर जलवायु का एक बहुत ही मार्मिक प्रभाव पड़ता है। उसका स्वास्थ्य, उसकी शक्ति, उसके वस्त्र, उसका निवास तथा उसका भोजन इत्यादि इसी प्रभाव के फल हैं। मनुष्य के शरीर का ताप लगभग ९८° रहा करता है।। इस ताप को बनाये रखने के लिये मनुष्य के शरीर से सदा एक प्रकार की गरमी निकलती रहती है जब मनुष्य चुपचाप बैठा होता है, उस समय उसके शरीर के प्रति वर्ग सेन्टीमीटर से प्रति सेकिन्ड १ मिली केलोरी गरमी जाती रहती है। परन्तु यदि वह काम करने लगे तो कार्य के अनुसार निकल जाने वाली गरमी ७ मीली केलोरी तक बढ़ जा सकती है। इस मात्रा से कम गरमी निकलने पर शरीर को अधिक गरमी लगने लगती है, और उससे अधिक निकलने पर शरीर को ठंढक लगने लगती है। शरीर को इन दोनों दशाओं से सुरक्षित रखने के लिये मनुष्य वस्त्र का प्रयोग करता है। पृथ्वी के उन भागों में जहाँ वायु का ताप अधिक होता है और इसलिये मनुष्य के शरीर से कम गरमी निकल पाती है, बहुत ही कम वस्त्र पहने जाते हैं। अफ्रीका के मध्य भाग में अथवा हमारे देश में दक्षिण प्रदेश में इसका उदाहरण मिलता है। परन्तु जहाँ वायु का ताप कम होता है और इसलिये शरीर से अधिक गरमी निकल जाती है, वहाँ पर अधिक तथा गरमी रोकने वाले वस्त्र पहनने की प्रथा है। इसका उदाहरण योरप के ठंढे देशों में मिलता है। ऋतु-परिवर्तन का प्रभाव भी इसी प्रकार होता है। अभी आपको एक मान चित्र दिखाया जायगा, जिसमें संसार को वस्त्र के अनुसार तीन भागों में बाँटा गया है—पहला वह भाग जहाँ पूरे वर्ष इतनी गरमी पड़ती है कि न्यूनतम वस्त्रों की आवश्यकता पड़ती है; दूसरे वे भाग जहाँ जाड़े और गरमी में अधिक अन्तर पड़ जाने के कारण ऋतु के अनुसार वस्त्र बदलने पड़ते हैं; और तीसरे वे भाग जहाँ पूरे वर्ष भर कठोर शीत पड़ता है, और इसलिये केवल गरम वस्त्रों का ही प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार मनुष्य-जीवन के दूसरे अंगों पर भी जलवायु का प्रभाव पड़ता है।

सांस्कृतिक परिस्थिति में सबसे अधिक महत्वशाली अंग आवागमन (Communications) है। रेल, तार, रेडियों, वायुयान इत्यादि आवागमन के मुख्य सूत्र हैं। आवागमन का प्रभाव मनुष्य के सभी प्रकार के सामाजिक जीवन पर पड़ता है। आवागमन मनुष्य की गति का ही एक रूप है जिसका वर्णन ऊपर किया गया है। मनुष्य का संसर्ग, उसका वाणिज्य, तथा उसके उद्योग-धन्धे आवागमन पर निर्भर हैं। पृथ्वी के जिन भागों में आवागमन की अधिक तथा सुचारू रूप से उन्नति की गई है, वे भाग आजकल की सभ्यता में सबसे आगे बढ़े हुए हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका तथा पश्चिमी योरप इस बात के उदाहरण हैं। जिन भागों में आवागमन की उन्नति विशेष है, वहाँ पर मनुष्य-जाति में एक ऐसी विशेषता आ जाती है जो संसार के अन्य भागों में नहीं पाई जाती है। यह है वहाँ की 'आर्थिकता' (materialism)। परन्तु आर्थिकता के साथ ही साथ वहाँ पर मनुष्य का मानसिक विकास भी अधिक मात्रा में देखा जाता है। जिन भागों में आवागमन की कमी होती है वहाँ पर लोग प्रायः अंधविश्वासी तथा रूढ़ि पंथी होते हैं क्योंकि संसर्ग की कमी के कारण उनकी विचार-धारा संकुचित रहती है। संसार में बहुत से ऐसे भाग हैं जहाँ पर इसका उदाहरण देखा जा सकता है। ज्ञान और सभ्यता की उन्नति के साथ ही साथ आवागमन का सबसे महान कार्य संसार को एक कर देने में है। रेडियों की सहायता से बर्फ से घिरे हुए सहस्रों मील दूर स्थित एन्टार्कटिक महाद्वीप में बैठे हुए वैज्ञानिक लोग भी यह जान सकते हैं कि दुनिया में इस समय क्या हो रहा है। वायुयान तथा केमरा की सहायता से संसार के किसी भी कोने का फोटोग्राफ आज हम प्राप्त कर सकते हैं। आवागमन के इन सूत्रों द्वारा आज सारे संसार की समस्याएँ मनुष्य जाति की समस्याएँ बन गई हैं। यही कारण है कि आजकल का भूगोल प्राचीन समय का सा भूगोल नहीं रहा है जब कि पृथ्वी के कुछ थोड़े से भागों का थोड़ा सा ज्ञान प्राप्त कर लेना ही पर्याप्त था। आजकल भूगोल एक बृहत् विद्या, एक विज्ञान बन गया है, जिसका कुछ न कुछ ज्ञान साधारण मनुष्य को भी आवश्यक है। बिना इस ज्ञान के कोई भी शिक्षा पूर्ण

शिक्षा नहीं कही जा सकती है; क्यों कि आज का संसार एक संसार है। इस संसार के रहने वालों का संसर्ग तथा संघर्ष सार्वभौमिक हो गया है। संसार का कोई भी रहने वाला वृहत् संसार की धारा से अपने को अलग नहीं रख सकता है। जैसा कि पिछले युद्ध ने सिद्ध कर दिया। आज कल संसार के एक कोने के रहने वालों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये दूसरे कोने की सहायता लेनी पड़ती है। ऐसी दशा में यदि हमको संसार के विभिन्न कोनों का कुछ भी ज्ञान नहीं है तो हम केवल कूप मण्डूक ही हैं जो अपने संकुचित ज्ञान रूपी कूप में उछल कूद मचा रहे हैं।

संसार के जीवन को अध्ययन करने से हमको पता चलता है कि मनुष्य जाति की आवश्यकताओं की उत्पत्ति, विशेषकर जलवायु अथवा सभ्यता अर्थात् समाज-रीति ही करते हैं। शरीर को सुरक्षित रखने वाली आवश्यकतायें जलवायु के कारण उठती हैं। परन्तु शरीर को एक विशेष रूप से सुरक्षित रखने के लिये जो आवश्यकतायें होती हैं वे सामाजिक अथवा सांस्कृतिक हैं। जिस प्रकार संसार के भिन्न-भिन्न भागों में जलवायु की भिन्नता के कारण विशेष प्रकार के वस्त्र, भोजन, निवास इत्यादि आवश्यक होते हैं उसी प्रकार समाज संगठन तथा सांस्कृतिक भिन्नता के कारण पृथ्वी के विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न आवश्यकतायें होती हैं। इन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति में सारा संसार आज लगा हुआ है। मनुष्य की ये आवश्यकतायें तथा उनकी पूर्ति भौगोलिक परिस्थिति के ही प्रभाव हैं।

संसार में मनुष्यजाति को उन्नति का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि प्राकृतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थिति एक दूसरे से अलग नहीं की जा सकती हैं। मनुष्य पर इन दोनों परिस्थितियों का प्रभाव सम्मिलित रूप में होता है। किन्तु मनुष्य की विशेषताओं के कारण, जिनका वर्णन ऊपर किया गया है, इस प्रभाव को नापना असंभव है। इस समय केवल इतना ही कहा जा सकता है कि मनुष्य जीवन पर भौगोलिक परिस्थिति का प्रभाव वास्तविक यद्यपि गूढ़ है।

परिस्थिति के प्रभाव का सबसे सरल उदाहरण किसी भी देश की जनसंख्या के वितरण में है। भारतवर्ष में ही हम देखते हैं कि कहीं जनसंख्या अधिक है और कहीं कम। यदि यह परिस्थिति का प्रभाव नहीं है तो और क्या है?

इस प्रभाव से मनुष्य की संस्कृति तथा उसकी उन्नति का महत्व भली-भाँति प्रकट होता है। अमेजन नदी की घाटी, काँगो नदी की घाटी तथा हिन्देशिया की प्राकृतिक परिस्थित लगभग मिलती जुलती है, परन्तु उनकी सांस्कृतिक परिस्थित में इतना अधिक अन्तर है कि इन भागों में मनुष्य की उन्नति में कोई भी सामनता नहीं है।

इसके विपरीत संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्वी तथा पश्चिमी भागों में सांस्कृतिक परिस्थित लगभग समान है, किन्तु प्राकृतिक परिस्थित में बहुत बड़ा अन्तर है। इसके फलस्वरूप दोनों भागों में मनुष्य की उन्नति में कितना अधिक अन्तर है। एक भाग में उद्योग धन्धों की और दूसरे में कृषि की प्रधानता है।

इस सब कथन का सारांश यह है कि संसार की भिन्नता में ही एकता है। भिन्नता का कारण प्रकृति है और एकता का कारण मनुष्य। मनुष्य की उन्नति के साथ-साथ एकता की उन्नति बढ़ती जाती है। भिन्नता और एकता दोनों का ही अध्ययन भूगोल के अन्तर्गत है जिससे यह 'भिन्नता' एकता के रूप में परिणित हो जाती है (diversity leading to unity)।

मैं आपका और अधिक समय नष्ट नहीं करना चाहता हूँ केवल इतना कह देना चाहता हूँ कि अब आपको संसार के विषय में अपने पुराने विचार बदल देने हैं। इस विचार परिवर्तन में भूगोल से आप बड़ी सहायता पायेंगे।

धन्यवाद!

# विज्ञान परिषद् के ३५ वें वर्ष (अक्टूबर १९४७ से सितम्बर १९४८) का कार्य विवरण

विज्ञान परिषद् के ३५ वें वर्ष का कार्य भी गत वर्ष के कार्य के भाँति ही असन्तोषजनक रहा और हम अपने ध्येय में सफल नहीं हो सके। कागज नियंत्रण की कठिनाई ज्यों कि त्यों रही जिसके कारण नई पुस्तकों का प्रकाशन न हो सका और बड़ी कठिनाइयों से केवल एक पुस्तक "व्यंग चित्रण" का दूसरा संस्करण प्रकाशित हो सका। पुरानी पुस्तकों का भण्डार और भी समाप्त हो चुका है और घरेलू डाक्टर, मधुमक्खी पालन, ताप आदि के अतिरिक्त सूर्य सिद्धान्त के प्रथमा तथा मध्यमाधिकार के समाप्त हो जाने के कारण इसके शेष चार भागों का उचित सदोपयोग नहीं हो सकता। मनोरंजक रसायन, सुवर्णकारी, गुरुदेव के साथ यात्रा आदि पुस्तकें भी समाप्त हो चुकी हैं। नई पुस्तकें "साँपों की दुनिया" तथा "रेडियो" प्रकाशित होने जा रही हैं और हम ऐसी आशा करते हैं कि यह ३-४ माह में छप सकेंगी किन्तु पर्याप्त सामग्री के अभाव तथा छपाई की मँहगाई के कारण हम बिना विशेष आर्थिक सहायता के इन कठिनाइयों का सामना करने में सफल हो सकें ऐसा असंभव ही दीखता है। इस सम्बन्ध में हम नवम्बर मास में प्रांतीय शिक्षा मन्त्री, माननीय श्री सम्पूर्णानन्द जी से मिले थे और उन्होंने हमें उचित सहायता का वचन देकर हमारा साहस बढ़ाया है। हमें यह बताते हुये अत्यन्त दुःख होता है कि गत वर्ष के हमारे १७०००) रु० वार्षिक सहायता के निवेदन पर सरकार ने हमारी ६००) रु० की सहायता को १२००) रु० वार्षिक कर दिया है। यह इतनी कम है कि इसको न होने के बराबर कहा जा सकता है किन्तु हम इस वर्ष कुछ विशेष सहायता की आशा रखते हैं।

हमने हिन्दी साहित्य सम्मेलन से भी इस बात का निवेदन किया था किन्तु उन्होंने भी अपने पत्र ता० ३-१२-४८ में यह स्पष्ट कर दिया कि वे स्वयं अपनी स्थिति ठीक करने में इतने लगे हैं कि हमारी कोई सहायता नहीं कर सकते। हम यह भी चाहते थे कि हिन्दुस्तानी एकेडमी की भाँति हमारा एक प्रतिनिधि हिन्दी साहित्य सम्मेलन की कार्यकारिणी समिति में रहे किन्तु इस सम्बन्ध में अभी तक कोई उत्तर नहीं आया।

उपरोक्त सारी दशाओं के होते हुए भी हमें यह बताते हुए हर्ष होता है कि हम फिर भी विज्ञान को निरन्तर निकाल रहे हैं और इसका श्रेय केवल हमारे प्रधान सम्पादक डा० श्री रामचरण जी मेहरोत्रा को है। गत मई मास में कुछ कागज के अभाव तथा प्रेस की गड़बड़ी के कारण विज्ञान निकलने में कुछ देर अवश्य हो गई है किन्तु हमें पूरी आशा है कि फरवरी तक हम शेष अंक निकाल कर पिछड़े अंकों को पूरा कर लेंगे।

इस वर्ष निम्न सज्जन परिषद् के पदाधिकारी रहे:—

सभापति ........ डा० श्री रंजन
उप सभापति ..... प्रो० सालिगराम भार्गव
डा० धीरेन्द्र वर्मा
प्रधान मंत्री ...... डा० हीरालाल दुबे (विज्ञान)
मंत्री ........... डा० रामदास तिवारी (प्रकाशन)
श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव (विक्रय)
कोषाध्यक्ष ....... श्री हरिमोहनदास टंडन
स्थानीय अंतरंगी .. प्रो० ए. सी. बनर्जी
डा० बी. एन. प्रसाद
डा० गोरख प्रसाद
ड० सन्तप्रसाद टंडन
प्रधान संपादक ... डा० रामचरण मेहरोत्रा
बाहरी अंतरंगी ... श्री बेंकटलाल ओझा (हैदराबाद)
श्री नन्दकुमार तिवारी (काशी वि० वि०)
प्रो० फूलदेवसहाय वर्मा ( ,, ,, )
श्री छोटूभाई सुथार (अहमदाबाद)
डा० ओंकारनाथ परती (सागर)
आयव्यय परीक्षक—डा० सत्यप्रकाश

सितम्बर सन् १९४८ तक परिषद् के आजीवन सभ्यों की संख्या ४८ तथा साधारण सभ्यों की संख्या ७३ और

ग्राहकों की संख्या २७६ है। इस वर्ष निम्न सज्जन परिषद के आजीवन सभ्य तथा साधारण सभ्य हुए:—

आजीवन सभ्यः—

१—श्री सेठ हज़ारीलाल गुप्त — बस्की-दारागंज
२—श्री बीरेन्द्र नरायण सिंह — गाज़ीपुर

साधारण सभ्यः—

१—श्री गोपी कृष्णदास एम. एस-सी. — बनारस
२—श्री कृष्णकुमार अग्रवाल — सिकलापुर, बरैली
३—श्री हीरालाल निगम — इलाहाबाद
४—श्री ए. वी. महाजनी — सागर
५—श्री० एस. एस. लाल — सागर
६—श्री एस. एन. झा. बी. एस-सी. (एग्रीकलचर) — रीवां
७—श्री सतगुर सरन निगम — सागर
८—श्री जी. एस. पाण्डया — बर्नपुर (बर्दवान)
९—श्री परमेश्वर नाथ भार्गव — जयपुर
१०—श्री पी. वी. देहद राय — सागर
११—श्री ओम प्रकाश — महावीरगंज, अलीगढ़
१२—श्री महेश चन्द्र गुप्त — चन्दौसी
१३—श्री बृजकिशोर मालवीय — लखनऊ
१४—श्री रुद्रपाल सिंह जी — प्रयाग

इस सम्बन्ध में हमें यह बताते हुये दुःख होता है कि कई वर्षों से वार्षिक शुल्क न देने तथा ३-४ पत्रों में एक का भी उत्तर न आने के कारण हमें ३८ साधारण सभ्यों का नाम सूची से काट देना पड़ा।

इस वर्ष के आय-व्यय का लेखा इस प्रकार है:—

आय

| | |
|---|---|
| आजीवन सभ्यों से | १७३) |
| साधारण सभ्यों से | ५६४) |
| पुस्तकों की बिक्री से | १३८४) |
| विज्ञान के ग्राहकों से | ७७८-) |
| ब्याज से | ७।)।।। |
| संयुक्त प्रान्तीय सरकार से | १६००) |
| गत वर्ष की रोकड़ बाकी | १९५१।-)४ |
| | ६४५७॥≶)१ |

व्यय

| | |
|---|---|
| लेखक का वेतन | २८५) |
| चपरासी का वेतन | २४३॥=) |
| गोदाम और दफ़्तर का किराया | १८०) |
| स्टेशनरी | १०॥≶) |
| इक्के ठेले का किराया | ७।≶) |
| पार्सल आदि का खर्च | १८॥-) |
| विज्ञान की छपाई | ६७४॥-) |
| पुस्तकों की छपाई | ३२०) |
| अन्य पुस्तकों के खरीदने में | ७४) |
| टिकट आदि (पोस्टेज) | २३४॥≶) |
| फुटकर खर्च | १८॥=)॥ |
| पुस्तकें और प्रूफ दिखाई | १००) |
| कागज़ खरीदा | ४६०।≶)॥ |
| ब्लाक बनवाने में | ७६।-)॥ |
| बैंक कमीशन | ३।=) |
| पुस्तकों का मूल्य ( फल संरक्षण ) श्री बीरेन्द्र नारायण जी को | १००) |
| रोकड़ बाकी | ३६४९॥।)७ |
| | ६४५७॥≶)१ |

विज्ञान के सम्बन्ध में आय-व्यय का ब्योरा:—

| आय | | व्यय | |
|---|---|---|---|
| ग्राहकों से | ७७८-) | कागज़ | ३१६॥≥)॥ |
| सभ्यों से | ५६४) | पुस्तकें और प्रूफ दिखाई | १००) |
| सरकार से | १६००) | ब्लाक में | ७६।-)॥ |
| | | छपाई | ६७४॥-) |
| | | डाक खर्च | १२१॥=)। |
| | | लेखक का वेतन ( कुल का ½ ) | ९५) |
| | | चपरासी का वेतन ( ,, ) | ८१≥) |
| | | फुटकर खर्च | ६-)॥। |
| | | रोकड़ बाकी | १४७०) |
| | २९४२-) | | २९४२-) |

उपरोक्त आय-व्यय का लेखा देखने से यह अवश्य स्पष्ट हो जायगा कि गत वर्षों की भाँति हमको घाटा पूरा करने के लिये पुस्तकों की आय का उपयोग नहीं करना पड़ा इसका कारण कुछ तो सरकार की १०००) रु० की विशेष सहायता है और कुछ कई वर्षों का सभ्य शुल्क जो पड़ा था सभ्यों से प्राप्त हुआ। किन्तु इतना काफी नहीं है हमको इसका दुःख है कि हम लेखकों को उचित पुरस्कार तथा लेखों की प्रतियाँ भी नहीं दे सकते जिसके कारण हमको लेखों का भी अभाव बना रहता है। सम्पादन आदि में भी उचित धन व्यय नहीं कर सकते। हमारा अपना कोई भवन न होने के कारण हम अपने कार्यालय को भी सुचारु रूप से नहीं चला सकते। अब तक यही होता आया है कि मंत्री कार्यालय को अपने घर में ही रखता है। लेखकों को पुरस्कार सम्पादन आदि का खर्च पूरा करने के लिये तो रुपये का प्रबन्ध करना अनिवार्य है क्योंकि इसके बिना हम कार्य को सुचारु रूप से नहीं चला सकते और न हम विज्ञान को उचित उपयोगी और सफल ही बना सकते हैं। इन सब बातों का ध्यान रखते हुए आगामी वर्ष का विज्ञान का अनुमान पत्र इस प्रकार है:—

| आय | | व्यय | |
|---|---|---|---|
| लगभग ३०० ग्राहकों से | ९००) | ३२ पेज का विज्ञान ५५० के लिये २४ रीम कागज | ४००) |
| ,, २५ सभ्यों से | १२५) | ३ रीम कवर का दाम | ७०) |
| सरकार से | १२००) | छपाई | १२००) |
| घाटा | ४११) | रैपर की छपाई | ४०) |
| | | ब्लाक | ३००) |
| | | डाक खर्च | १५०) |
| | | लेखक का वेतन कुल का ½ | १८०) |
| | | चपरासी का वेतन कुल का ½ | ९६) |
| | | सम्पादन के लिये पुस्तकें | ५०) |
| | | प्रूफ दिखाई | १५०) |
| | २६३६) | | २६३६) |

अन्य कार्यों के लिये शेष अनुमान पत्र इस प्रकार है:—

| आय | | व्यय | |
|---|---|---|---|
| पुस्तकों की बिक्री से | १०००) | स्टेशनरी पैकिंग आदि | ५०) |
| रोकड़ बाकी | ३६४९।।।)७ | डाक-व्यय | १५०) |
| | | इक्का ठेला आदि | २०) |
| | | रेल भाड़ा आदि | १०) |
| | | साइकिल की मरम्मत | ४०) |
| | | बैंक इन्सीडेन्ट चार्ज | १०) |
| | | दफ़्तर गोदाम का किराया | १८०) |
| | | फुटकर | १५) |
| | | लेखक का वेतन कुल का ½ | १८०) |
| | | चपरासी का वेतन कुल का ½ | १९०) |
| | | पुस्तकों की जिल्द बँधाई | ७००) |
| | | नई पुस्तकों की छपाई | २५००) |
| | | रोकड़ बाकी | ६०२।।।)७ |
| | ४६४९।।।)७ | | ४६४९।।।)७ |

अन्त में मेरा कर्तव्य है कि प्रधान सम्पादक डा० श्री रामचरण जी मेहरोत्रा को विशेष धन्यवाद दूं जिन्होंने बिना किसी भेंट या पुरस्कार आदि के विज्ञान के निकालने में बहुत ही परिश्रम किया है। कोषाध्यक्ष श्री हरिमोहनदास टंडन तथा आय-व्यय परीक्षक श्री डा० सत्यप्रकाश जी का परिश्रम भी सराहनीय है और परिषद इन महानुभावों का विशेष आभारी है।

हीरालाल दुबे

प्रधान मंत्री

# विज्ञान परिषद् के ३५ वें वार्षिक अधिवेशन का कार्य विवरण

विज्ञान परिषद् का ३५ वाँ वार्षिक अधिवेशन २ फरवरी सन् १९४९ को ३ बजे संध्याकाल में म्योर सेन्ट्रल कालेज के भौतिक विज्ञान के व्याख्यान भवन में हुआ डाक्टर श्री रंजन ने सभापति का आसन ग्रहण किया। व्याख्यान भवन परिषद् के सभ्यों, विश्व-विद्यालय के अध्यापकों तथा विद्यार्थियों से भरा हुआ था। लखनऊ विश्वविद्यालय के वाइसचांसलर श्री आचार्य नरेन्द्रदेव जी ने अधिवेशन का उद्घाटन किया और प्रयाग विश्वविद्यालय के भूगोल विभाग के अध्यक्ष डा० रामनाथ जी दुबे ने लगभग १ घंटे तक 'मनुष्य पर भौगोलिक परिस्थिति का प्रभाव' पर बहुत ही मनोहर तथा शिक्षाप्रद सचित्र भाषण दिया।

## श्री आचार्य नरेन्द्रदेव द्वारा उद्घाटन

उद्घाटन करते हुए आचार्य नरेन्द्रदेव जी ने कहा कि प्रतिकूल वातावरण होते हुए भी परिषद् ने पिछले ३५ वर्षों में देश तथा राष्ट्र भाषा की जो सेवा की है वह अत्यन्त सराहनीय है। आज हमारे वैज्ञानिकों को देश की औद्योगिक योजनाओं में बड़ा महत्व पूर्ण भाग लेना है। हमारे देश में वैज्ञानिक कार्य्यकर्त्ताओं की बहुत कमी है और इस कमी को दूर करने में राष्ट्र भाषा के माध्यम द्वारा शिक्षा देने से बहुत सहायता मिलेगी। दक्षिण भारत के निवासियों को आज हिन्दी समझने में ब[illegible]ी कठिनाई पड़ती है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए हिन्दी के प्रेमियों को हिन्दी व दक्षिण की भाषाओं का एक कोष शीघ्र ही तैयार करना चाहिये। विश्वविद्यालय के हिन्दीप्रेमी अध्यापकों को एक ऐसी संस्था बनानी चाहिये जिसका प्रमुख कार्य्य हिन्दी में विज्ञान की पाठ्य पुस्तकें तैयार करना हो जिससे विश्वविद्यालय में हिन्दी में विज्ञान की पढ़ाई जल्द ही आरम्भ की जा सके।

आगे चलकर आचार्य जी ने कहा, आज कल जो समस्याएँ हम को परेशान कर रही हैं उन सब का समाधान विज्ञान द्वारा ही हो सकता है। अपने देश में विकास की बहुत योजनाएँ तैयार हो रही हैं। विज्ञान के गवेषकों तथा अन्वेषकों को ऐसे अन्वेषण नहीं करने चाहिए जिनसे संहार हो। विज्ञान की खोजों के फल स्वरूप किसी व्यक्ति का उत्तरदायित्व उसी तक सीमित नहीं है वरन् उस सामाजिक क्षेत्र का उत्तरदायित्व उस पर है जिसमें वह रहता है। अब हमारा कर्त्तव्य है कि हम देखें कि विज्ञान का प्रयोजन साधारण जनों के लाभ के लिए हो। राष्ट्रीयता की भावना हमारे दृष्टिकोण को संकुचित कर देती है, हमारा राष्ट्र धर्म उदार होना चाहिए।

विश्वविद्यालयों में उच्च श्रेणी के अध्यापकों की कमी का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा "विश्वविद्यालयों के अध्यापक आज भारतीय सरकार में चले जा रहे हैं। इसका मुख्य कारण विश्वविद्यालय में अपर्याप्त वेतन हैं। सरकार को इस ओर उदासीन न होना चाहिए।"

"सब पाश्चात्य कलाएँ तथा विषय आजकल विज्ञान से प्रभावित हो रहे हैं। वे सब विज्ञान का उपयोग करते हैं और उससे प्रेरणा लेते हैं। वह अपढ़ है जिसको आज विज्ञान की साधारण बातों का ज्ञान नहीं है। विज्ञान परिषद् ने सरल भाषा में विज्ञान के विषयों पर ४०—५० पुस्तकें प्रकाशित करके सर्व साधारण तक विज्ञान के तथ्यों को पहुँचाने का प्रयत्न किया है। आज हमारा देश स्वतन्त्र हो गया है और इस प्रयत्न को बहुत बढ़ाना है। विज्ञान परिषद् जैसी संस्थाओं की बहुत आवश्यकता है। सरकार को इसकी सहायता मुक्तहस्त से करना चाहिए।

## प्रो० सालिगराम भार्गव की ६१ वीं वर्षगांठ पर बधाई

विज्ञान परिषद् प्रयाग एवं विज्ञान के पाठकों की ओर से डा० सत्यप्रकाश ने प्रो० सालिगराम भार्गव को उनकी ६१ वीं वर्ष गांठ के अवसर पर बधाई देते हुए कहा कि आज हमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है। हमारे पाठक इस बात से अनभिज्ञ नहीं हैं, कि प्रो० भार्गव हमारे परिषद् के प्रमुख संस्थापकों में से हैं। विज्ञान परिषद् की मूल संस्थापना म्योर कालेज, प्रयाग के तीन आध्यापकों ने आज से ३७ वर्ष पूर्व की थी—प्रो० रामदास गौड़, स्वर्गीय महामहोपाध्याय

डा० गङ्गानाथ झा और प्रो० सालिगराम भार्गव और मौलवी हमीदउद्दीन का भी इसमें सहयोग था। यह वह युग था जब हिंदी साहित्य में वैज्ञानिक ग्रन्थों का नितान्त अभाव था, और नीचे से ऊपर तक की समस्त शिक्षा का माध्यम अँग्रेज़ी था। प्रयाग के म्योर कालेज और विश्वविद्यालय को गौरव प्राप्त है, कि अँग्रेज़ी शिक्षण का केन्द्र होते हुए भी, इस संस्था के भवन में विज्ञान परिषद् जैसी संस्था की स्थापना की गई। हिन्दी वैज्ञानिक साहित्य के सृजन का जब इतिहास लिखा जायगा तो उसमें विज्ञान परिषद् की स्थापना एक विशेष घटना मानी जायगी और इस संस्थापना का जहाँ कहीं भी उल्लेख होगा गौड़जी, झाजी और भार्गवजी इन तीनों का नाम लेते हुए हम अपना गौरव समझेंगे। खेद की बात है कि विज्ञान परिषद् के इन संस्थापकों में से तीन तो (डा० झा, प्रो० हमीदउद्दीन और प्रो० गौड़ जी) इस समय दिवंगत हो चुके हैं। हमारी शुभ कामना है कि प्रो० सालिगरामजी चिरायु हों, जिससे वे अधिकाधिक लोक सेवा कर सकें।

प्रो० भार्गव का जन्म सन् १८८८ में हुआ था। आपने म्योर सैंट्रल कालेज से एम० एस-सी० परीक्षा उत्तीर्ण की और उसके अनन्तर उन्हें अनुसन्धान कार्य के लिए एम्प्रेस विक्टोरिया रीडरशिप नाम की छात्रवृत्ति मिली। प्रयाग विश्वविद्यालय की इस छात्रवृत्ति के साथ छात्र से यह भी आशा की जाती है कि वह अनुसन्धान कार्य के साथ हिन्दी या उर्दू में किसी वैज्ञानिक विषय पर कुछ साहित्य भी लिखे। आचार्य रामदास गौड़ के सहयोग से प्रो० सालिगराम जी ने "विज्ञान-प्रवेशिका" (प्रथम भाग) नामक एक पुस्तिका पहले लिखी थी, जिसे विज्ञान परिषद् ने प्रकाशित किया था। इस पुस्तक का, वैज्ञानिक विषय की पाठ्य पुस्तकों के इतिहास में एक उपयोगी स्थान है। इससे प्रोत्साहित होकर प्रो० भार्गव ने एक दूसरी पुस्तक प्रारम्भ की—"चुम्बक"। इस पुस्तक के अध्याय धारावाहिक रूप में "विज्ञान" में प्रकाशित हुए और फिर अलग पुस्तक रूप में प्रकाशित हुए। तब से अब तक इस पुस्तक के कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

प्रो० भार्गव ने विज्ञान परिषद् की न केवल संस्थापना ही की, उन्होंने इस परिषद् के भिन्न-भिन्न पदों पर कार्य भी किया। कई वर्ष आप इसके प्रधान मंत्री और तीन वर्ष तक इसके सभापति रहे। परिषद् के तत्वावधान में आपने कई बार लोकप्रिय व्याख्यान दिए। सन् १९१३ में महामना पूज्य पं० मदनमोहन मालवीय की अध्यक्षता में दिया गया "भारती भवन" में आपका व्याख्यान विशेष ऐतिहासिक महत्व का है। इस व्याख्यान का विषय "आर्कमीदीज़ के नियम का बहुव्यापी उपयोग" था। परिषद् की प्रत्येक कार्यावली को समय-समय पर भार्गवजी का न केवल आशीर्वाद ही प्राप्त रहा है किन्तु उन्होंने सक्रिय रूप से इसकी सहायता भी की है। रासायनिक तत्वों के नामकरण के अवसर पर प्रो० भार्गव ने विशेष रुचि ली और इसमें पूर्ण सहयोग दिया। "विज्ञान" पत्रिका की प्रगति में आप सदा रुचि लेते रहे हैं, और कई अवसरों पर आपने उसकी

प्रो० सालिगराम भार्गव

यथेष्ट सहायता की। जिस समय वैज्ञानिक विषयों का शिक्षण हिन्दी में कहीं भी न होता था, प्रो० भार्गव नियम पूर्वक हिन्दी विद्यापीठ के छात्रों को हिन्दी में "विज्ञान" विषय पढ़ाने के लिए जाया करते थे। मैंने स्वयं "प्रथमा" परीक्षा (हिन्दी साहित्य सम्मेलन) का पाठ्यक्रम आपसे सन् १९२० में पढ़ा था।

प्रो० भार्गव ने इस वर्ष प्रयाग विश्वविद्यालय की सेवा से अवकाश ग्रहण किया है। इस समय आप प्रयाग विश्वविद्यालय के भौतिक विभाग के अध्यक्ष थे। आपके छात्र और परिषद् के कार्य में सहयोगी होने का मुझे भी गौरव प्राप्त हुआ है। हम परमात्मा से

**श्री हरिश्चन्द्र जी एम० एस-सी०, आई० सी० एस०**
**न्यायाधीश, प्रयाग हाईकोर्ट**
**परिषद् के नये सभापति**

प्रार्थना करते हैं, कि प्रो० भार्गव का शेष जीवन काल देश के लिए उत्तरोत्तर कल्याणमय सिद्ध हो। आप चिरायु, स्वस्थ और निश्चिन्त जीवन व्यतीत करें, यह मेरी मंगल कामना है।

इसके पश्चात् श्री आचार्य नरेन्द्रदेवजी तथा अन्य सज्जनों को धन्यवाद देने के बाद सभा का विसर्जन हुआ।

इसके बाद ही परिषद् की अंतरंग सभा की बैठक हुई। गत वार्षिक कार्य विवरण पढ़े जाने और स्वीकृत होने के पश्चात् आगामी वर्ष के लिए निम्न पदाधिकारी चुने गए।

सभापति—श्री हरिश्चन्द्र, आई० सी० एस०, न्यायाधीश, प्रयाग हाईकोर्ट

उपसभापति—प्रो० सालिगराम भार्गव
डा० श्री रंजन

प्रधान मंत्री—डा० हीरालाल दुबे

मंत्री—डा० रामदास तिवारी
श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव

कोषाध्यक्ष—श्री हरिमोहन दास टंडन

स्थानीय अन्तरंगी—डा० धीरेन्द्र वर्मा
डा० गोरखप्रसाद
डा० बद्रीनाथ प्रसाद
डा० सन्तप्रसाद टंडन

प्रधान सम्पादक—डा० रामचरण मेहरोत्रा

बाहरी अन्तरंगी—श्री वेंकटलाल ओझा (हैदराबाद)
श्री नन्दकुमार तिवारी (हिन्दू विश्वविद्यालय)
प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा (हिन्दू विश्वविद्यालय)
डा० रामाधार मिश्र, एम० एल० ए० (लखनऊ वि० वि०)
डा० ओंकारनाथ परती (सागर वि० वि०)

आय-व्यय परीक्षक—डा० सत्यप्रकाश

इस अवसर पर यूनाइटेड रिसर्च लैबोरेट्री, प्रयाग तथा 'एमिटको' लिमिटेड, नया कटरा, प्रयाग ने जलपान का आयोजन किया। इसके लिए परिषद् उन्हें धन्यवाद देती है।

हीरालाल दुबे
प्रधान मंत्री

# विज्ञान-परिषद् की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकों की सम्पूर्ण सूची

१—चुम्बक—हाई स्कूल में पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी० सजि०; ।।।≈)

२—सूर्य-सिद्धान्त—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखने का सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१५; १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; सजिल्द; दो भाग में, मूल्य ८)। इस भाष्य पर लेखक को हिन्दी साहित्य सम्मेलन का १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है।

३—वैज्ञानिक परिमाण—विज्ञान की विविध शाखाओं की इकाइयों की सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहाल-करण सेठी डी० एस-सी०, १)

४—समीकरण मीमांसा—गणित के एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।) द्वितीय भाग ।।≈),

५—निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)—गणित के एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमतीप्रसाद अग्निहोत्री बी० एस-सी०; ।।।),

६—बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित—इंटर-मीडियेट के गणित के विद्यार्थियों के लिये—ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी०, १।),

७—गुरुदेव के साथ यात्रा—डाक्टर जे० सी० बोस की यात्राओं का लोकप्रिय वर्णन; ।≈)

८—केदार-बद्री यात्रा—केदारनाथ और बद्रीनाथ के यात्रियों के लिये उपयोगी; ।≈)

९—वर्षा और वनस्पति—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शंकरराव जोशी; ।≈)

१०—विज्ञान का रजत जयन्ती अंक—विज्ञान परिषद् के २५ वर्ष का इतिहास तथा विशेष लेखों का संग्रह; १)

११—फल-संरक्षण—दूसरा परिवर्धित संस्करण-फलों की डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनाने की अपूर्व पुस्तक; २१२ पृष्ट, २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्र नारायण सिंह एम० एस-सी०; २।।)

१२—व्यङ्ग-चित्रण—(कार्टून बनाने की विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी एम० ए०; १७५ पृष्ठ; सैकड़ों चित्र, सजिल्द; २)

१३—मिट्टी के बरतन—चीनी मिट्टी के बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र; सजिल्द; २)

१४—वायुमंडल—ऊपरी वायुमंडल का सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र सजिल्द; २)

१५—लकड़ी पर पालिश—पालिश करने के नवीन और पुराने सभी ढंगोंका ब्योरेवार वर्णन। इससे कोई भी पालिश करना सीख सकता है—ले डा० गोरखप्रसाद और श्रीरामरतन भटनागर, एम०, ए०; २१८ पृष्ठ; ३१ चित्र, सजिल्द; २)

१६—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश, आकार बड़ा विज्ञान के बराबर २६० पृष्ठ, २००० नुसखे, १०० चित्र; एक-एक नुसखे से सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हजारों रुपये कमाये जा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थ के लिये उपयोगी; मूल्य अजिल्द २।।)

१७—कलम-पैबंद—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ५० चित्र; मालियों, मालिकों और कृषकों के लिये उपयोगी; सजिल्द; २)

१८—जिल्दसाजी—क्रियात्मक और ब्योरेवार। इससे सभी जिल्दसाजी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०; १८० पृष्ठ, ६२ चित्र; सजिल्द २),

१९—त्रिफला—दूसरा परिवर्धित संस्करण-प्रत्येक वैद्य और गृहस्थ के लिये—ले० श्री रामेश वेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ; ३ चित्र, एक रङ्गीन; सजिल्द २।।।=)

यह पुस्तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय, की १३ श्रेणी के लिए द्रव्यगुण के स्वाध्याय पुस्तक के रूप में शिक्षापटल में स्वीकृत हो चुकी है।"

२०—तैरना—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगों को बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद पृष्ठ १०४ मूल्य १),

२१—अंजीर—लेखक श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, अंजीर का विशद वर्णन और उपयोग करने की रीति। पृष्ठ ४२, दो चित्र, मूल्य ।।=)

यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय के शिक्षापटल में स्वीकृत हो चुकी है।

२२—सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओं के विचित्र संसार, पेड़ पौधों की अचरज-भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र और तारों की जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिष के संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञान के आकार के ४५० पृष्ठ और ३२० चित्रों से सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द मूल्य ६)

२३—वायुमण्डल की सूक्ष्म हवाएँ—ले० डा० सन्त-प्रसाद टंडन, डी० फिल० मूल्य ।।।)

२४—खाद्य और स्वास्थ्य—ले० श्री डा० ओंकारनाथ परती, एम० एस-सी०, डी० फिल० मूल्य ।।।)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं :—

२५—विज्ञान हस्तामलक—ले० स्व० रामदास गौड़ एम० ए०। भारतीय भाषाओं में अपने ढंग का यह निराला ग्रंथ है। इसमें सीधी सादी भाषा में अठारह वैज्ञानों की रोचक कहानी है। सुन्दर सादे और रंगीन पौने दो सौ चित्रों से सुसज्जित है, आज तक की अद्भुत बातों का मनोमोहक वर्णन है, विश्व-विद्यालयों में भी पढ़ाये जाने वाले विषयों का समावेश है, अकेली यह एक पुस्तक विज्ञान की एक समूची लैब्ररी है, एक ही ग्रंथ में विज्ञान का एक विश्वविद्यालय है। मूल्य ६)

२६—भारतीय वैज्ञानिक—१२ भारतीय वैज्ञानिकों की जीवनियाँ; ले० श्री श्यामनारायण कपूर, सचित्र ३८० पृष्ठ; सजिल्द; मूल्य ३।।) अजिल्द ३)

२७—वैक्युम-ब्रेक—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवे में काम करने वाले फिटरों, इंजन-ड्राइवरों, फोरमैनों और कैरेज एग्ज़ामिनरों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ; ३१ चित्र जिनमें कई रंगीन हैं, २),

# विज्ञान - परिषद् बेली रोड, इलाहाबाद

मुद्रक—जगतनारायण लाल हिन्दी साहित्य प्रेस प्रयाग। प्रकाशक—विज्ञान-परिषद्, बेली रोड, इलाहाबाद

# विज्ञान

भाग ६९
संख्या १, २

संवत् २००६,
अप्रैल, मई १९४९
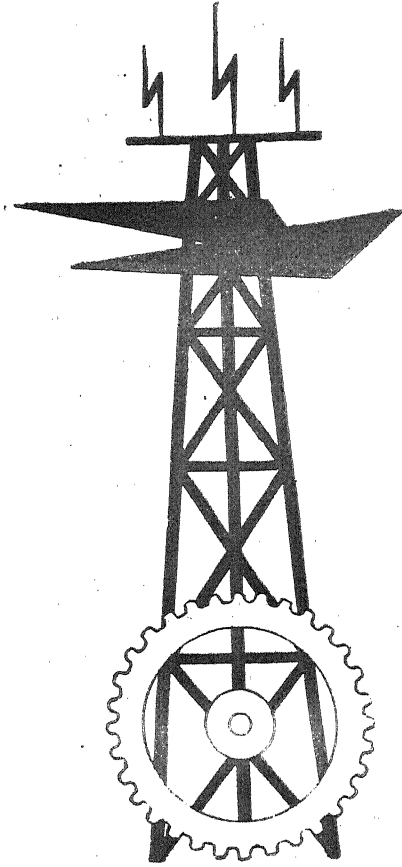
वार्षिक मूल्य ३) ]

[ एक संख्या का मूल्य ।)

# विश्वविख्यात वैज्ञानिक स्वर्गीय आचार्य वीरबल साहनी

**श्री दिव्यदर्शन पंत**

रविवार तारीख ३ अप्रैल की शाम को ६ बजे, जब पंडित जवाहरलाल नेहरू ने बड़ी धूमधाम के साथ गुरुदेव आचार्य वीरबल साहनी के पुरा-वनस्पति-विज्ञान-मन्दिर का शिलान्यास किया था, तब यह किसने सोचा था कि निष्ठुर दैव संसार के इस अमर वैज्ञानिक के मृत शरीर का दाहकर्म उसके केवल ७ ही दिन बाद, ठीक उसी समय, और उस सुन्दर पुरातन वनस्पति अवशेषों से जटित शिला के सामने ही करवायेगा? आचार्य साहनी की इस आकस्मिक और असामयिक मृत्यु से संसार का एक महान् वैज्ञानिक ही नहीं, वरन् वनस्पति शास्त्र का एक धुरन्धर विद्वान सदा के लिये उठ गया। सर चन्द्रशेखर वेंकट रमन् ने एक बार कहा था कि आचार्य साहनी मनुष्यों में एक महान् रत्न हैं—देखने में सुन्दर, सुदृढ़ और सुडौल शरीर वाले, व्यवहार में विनयशील और नम्र, विज्ञान के अनन्य सेवक आचार्य साहनी सचमुच ही एक नर रत्न थे।

## जन्म और शैशव

आचार्य साहनी का जन्म १४ नवम्बर १८६१ को पंजाब के भेड़ा नामक ग्राम में हुआ था। आपकी माता श्रीमती ईश्वरीदेवी अपने शील और सुन्दर स्वभाव के लिए प्रसिद्ध थीं। आपके पिता लाला रुचिराम साहनी, जिनका देहान्त पिछले ही वर्ष हुआ है, गवर्नमेंट कालेज लाहौर के रसायन शास्त्र के आचार्य और एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक थे। आचार्य साहनी प्रो० रुचिराम को अत्यन्त प्रिय थे। सन् १६४२ में जब लेखक को आचार्य साहनी के अल्मोड़ा स्थित निवास-स्थान पर रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, तब उन्होंने कहा था कि—"वीरबल मुझे बचपन से ही बहुत अधिक प्रिय है। वीरबल और उसकी धर्मपत्नी सावित्री मेरी सबसे अधिक सेवा-सुश्रूषा करते हैं।" आचार्य साहनी भी अपने वृद्ध पिता को बहुत प्रेम करते थे। मैंने स्वयं देखा है कि जब कभी उनका कोई लेख छपकर आता था तो वे सबसे पहले अपने हाथ से उसकी एक प्रतिलिपि लाला जी को भेजते थे।

बालक वीरबल का बाल्यकाल भेड़ा में ही बीता था। बचपन से ही इन्हें पतंग उड़ाने, डाकखाने के टिकट, केकड़े, पत्थर, पेड़, पौधे आदि जमा करने का बड़ा शौक था। टिकट जमा करने के लिये यह अक्सर आधे रास्ते तक जाकर पोस्टमैन को पकड़ लेते थे, ताकि इनके और भाई बहनें टिकट न ले सकें। अपने नटखटपन में कभी-कभी यह भेड़ा की मुसलमान जाटनियों के चर्खे तोड़ डालते। इनसे बिगड़ कर, इनको चिढ़ाने के लिए वे कहा करती थीं:—
"बीरबला भे बीरबला, सैंया कदी ना होये तेरा भला॥"

## केंब्रिज में

अपनी प्रारम्भिक शिक्षा लाहौर के सेन्ट्रल माडल स्कूल और गवर्नमेन्ट कालेज में समाप्त करने के बाद सन् १६११ में श्री साहनी केम्ब्रिज के इमेन्युअल कालेज में पढ़ने के लिए विलायत को रवाना हुए और वहाँ पहुँचने के कुछ ही समय बाद प्रथम महायुद्ध के प्रारम्भ हो जाने के कारण सन् १६१६ तक वहीं रहे।

आरम्भ से ही वीरबल बड़े सत्यवादी, निर्भीक और न्यायप्रिय थे। इनकी बी० एस-सी० की परीक्षा के प्रश्न-पत्रों में से एक पत्र में उससे पहले साल के सारे प्रश्न फिर से पूछे गये थे। वीरबल ने यह बात एक अध्यापक को बतलाई और जब उसने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया तो यह उसी क्षण बाहर निकल आये। बाद में विश्वविद्यालय की सीनेट ने विद्यार्थियों की बात को न्याय-संगत मान लिया और उस विषय में पुनः परीक्षा ली गई। केम्ब्रिज

में भी आपने अपने चरित्र-बल का परिचय दिया। वहाँ की प्रवेशिका परीक्षा में जिस संस्कृत पुस्तक के एक अंश का आप को भावार्थ लिखना था, वह पुस्तक परीक्षा भवन में न थी। इस पर आपने निरीक्षक को यह बात बतलाते हुये कहा कि यदि वे आज्ञा दें तो आप अपने कमरे से अपनी पुस्तक ला सकते हैं, परन्तु उसमें आपने किनारे पर पेन्सिल से नोट लिख रक्खे हैं। इनकी स्पष्ट-वादिता को देखकर निरीक्षक ने श्री साहनी को बिना किसी देखरेख के अपने कमरे में जाकर पुस्तक लाने की आज्ञा दे दी। वे अपने कमरे से पुस्तक ले आये और बिना नोट देखे भावार्थ लिख डाला। बाद में प्रोफ़ेसर सीवर्ड ने जो उस समय विज्ञान के प्रधान थे, इनकी इस बात से मुग्ध-होकर इन्हें चाय पर निमन्त्रित किया। एक नए विद्यार्थी के लिये यह बहुत बड़ा सम्मान था। इसके बाद एक दिन जब कि वीरबल ट्राइपोस में ही पढ़ते थे, उन्होंने गिंक्जो नामक वृक्ष के बीज के अन्दर किसी अन्य वृक्ष के पराग को अंकुरित होते हुए देखा। यह एक विचित्र बात थी जिसे वीरबल ने प्रोफ़ेसर सीवर्ड को दिखाया। बीरबल की तीव्र दृष्टि को देखकर प्रोफ़ेसर महोदय ने उनकी बहुत प्रशंसा की और उन्हें उस विषय में एक छोटा सा लेख लिखने को प्रोत्साहित किया। फलतः यह श्री साहनी का वैज्ञानिक अनुसंधान सम्बन्धी प्रथम लेख वनस्पति विज्ञान के प्रसिद्ध पत्र 'न्यू फ़ाइटोलाजिस्ट' में १९१४ में छपा और प्रोफ़ेसर सीवर्ड की विद्वत्ता और प्रोत्साहन से प्रभावित हो श्री साहनी विज्ञान के आजन्म सेवक बन गये।

## संग्रह और अध्ययन की प्रवृत्ति

वीरबल पहले ही से एक परिश्रमी विद्यार्थी थे जो केवल कोर्स की पुस्तकों का ही नहीं वरन् और भी कई पुस्तकों और जानने योग्य बातों का अध्ययन करते रहते थे। केम्ब्रिज में आपने बहुत सी स्लाइडें बना और बहुत से प्रस्तराव-शेष जमा किये जिनकी सहायता से बाद में आप अपने शिष्यों को पढ़ाया करते थे। अपने विशाल पुस्तकालय के लिए भी लेखों और पुस्तकों का संग्रह आपने यहीं से आरम्भ कर दिया था।

केम्ब्रिज में आपने बड़ी सादगी का जीवन व्यतीत किया, जिसमें आपने अपने माता-पिता से बिना किसी धन की सहायता के अपनी ६० पौंड वार्षिक की छात्रवृत्ति से ही अपने सब खर्च पूरे कर लिए। कभी कभी आप अपना खर्च करने के लिए एक ही बार खाकर रह जाते थे। विलायत जाते समय आप अपने साथ कुछ पायजामें और कमीज़ ले गये थे। इन्हीं से आपने आठ वर्ष तक अपना काम चलाया। एक बार जब आपके कोट का काज किनारे पर फट गया था, तब आपने उन्हें दूसरी तरफ बदल दिया। जब लोग आपसे इस विचित्र बदलाव का कारण पूछते तो आप बिना मुस्कराये ही बेधड़क होकर कहा करते कि यही नया फ़ैशन है।

केम्ब्रिज में पढ़ने के साथ ही साथ आपने लन्दन विश्वविद्यालय की एम० एस सी० और बाद में डी० एस सी० की उपाधियाँ भी प्राप्त कीं। आपके अनुसंधान कार्य की महत्ता को समझकर लन्दन की रायल सोसायटी और इमेनुअल कालेज, दोनों ने आपको आर्थिक सहा-यता दी। इसके अतिरिक्त आप गर्मियों में म्यूनिच में भी अध्ययन करने जाते थे। इस प्रकार यूरोप और ब्रिटेन के प्रायः सभी बड़े-बड़े वनस्पति-विज्ञान-वेत्ताओं से आपका निकट-सम्पर्क हो गया, जिनमें आपके गुरु प्रोफ़ेसर सीवर्ड और डाक्टर स्काट विशेष उल्लेखनीय हैं।

लन्दन से डी० एस सी० की उपाधि लेकर श्री साहनी सन् १९१९ में भारत लौट आये और हिन्दू विश्वविद्यालय काशी में वनस्पति विज्ञान के आचार्य नियुक्त किये गये। परन्तु तत्कालीन साइंस कालेज के प्रिंसिपल डा० गणेशप्रसाद से कुछ अनबन हो जाने के कारण आपने १९२० में बनारस से त्याग पत्र दे दिया और आप लाहौर के गवर्नमेंन्ट कालेज में उसी पद पर नियुक्त किये गये। सन् १९२१ में लखनऊ विश्वविद्यालय के स्थापित होने पर आप वहाँ पर वनस्पति विज्ञान के आचार्य नियुक्त हुये और अन्तिम दिन तक उस पद की शोभा को बढ़ाते रहे। इसके अतिरिक्त आप कई साल तक लखनऊ विश्वविद्यालय के विज्ञान विभाग के प्रधान भी रहे। सन् १९४३ में जब आपके ही प्रयत्नों से लखनऊ में भूगर्भ-विभाग खुला तो आप उसके भी आचार्य नियुक्त किये गये। विश्वविद्यालय की इन सेवाओं के साथ-साथ आपका अपना अनुसन्धान कार्य और आपके शिष्य

वर्ग का निरीक्षण तो चलता ही रहता था, किन्तु इसके अतिरिक्त पिछले कुछ दिनों से आप पुरावनस्पति-विज्ञान-मन्दिर के संचालक का भी काम कर रहे थे। इतने सब कामों को एक साथ इतनी सुन्दरता से बहुत कम लोग संभाल सकते हैं, लेकिन आपको अपने इन सब कामों में जो सफलता मिली है उसका बहुत कुछ श्रेय आपकी धर्मपत्नी श्रीमती सावित्री साहनी के सहयोग, सहायता और सहानुभूति को भी है। अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति पुरावनस्पति विज्ञानमन्दिर को देकर आप दोनों ने विज्ञान और राष्ट्र को वास्तव में अपना सर्वस्व दे दिया। पिछले कुछ दिनों से तो श्रीमती साहनी मन्दिर की प्रबन्धक समिति की आजन्म अध्यक्ष के रूप में आचार्य साहनी के प्रबन्ध कार्य में भी हाथ बटा रही थीं और हमें पूर्ण विश्वास है कि आपकी देख-रेख में यह मन्दिर इस महान् क्षति के होने पर भी पूर्ववत् उन्नति करता रहेगा।

आचार्य साहनी का वनस्पति-विज्ञान सम्बन्धी अनुसंधान कार्य केम्ब्रिज में प्रारम्भ हुआ। आरम्भ में कुछ कार्य जीवित वनस्पतियों पर करने के बाद आपने भारतीय वनस्पति अवशेषों की दुबारा जाँच पड़ताल आरम्भ कर दी। इनका वर्णन आपके पहले फाइस्ट-मान्टल आदि विदेशी वैज्ञानिकों ने किया था; जिसमें आपने अनेक त्रुटियाँ पाईं और इन्हीं अवशेषों के संग्रह में अनेक नवीन अवशेषों को भी खोज निकाला। इसी प्रकार आपने और भी कई भारतीय वनस्पति अवशेषों का अन्वेषण किये जो कि भारत में ही नहीं वरन् विज्ञान के लिये सर्वथा नवीन हैं। आपके इन अनुसन्धानों के विस्तृत वर्णन रायल सोसायटी के फिलोसोफिकल ट्रान्जेक्शन्स और अन्य प्रख्यात विदेशी तथा भारतीय वैज्ञानिक पत्रिकाओं में छपे हैं। आपके लगभग ८० लेख अभी और छपने को बाकी हैं। अपने लेखों में आपने पुरातन वनस्पति अवशेषों का ही विस्तृत रूप से वर्णन नहीं किया वरन् इनके आधार पर उनके कुल सम्बन्ध, वनस्पति जगत के विकास तथा तत्कालीन भूगोल और जलवायु के विषय में अत्यन्त सुन्दर और विश्वास करने योग्य मौलिक गवेषणायें की हैं।

इसके अतिरिक्त आपके अनुसन्धान कार्य से वेगनर के महाद्वीप विभाजन सिद्धान्त, दक्षिणपठार की आयु, ग्लोसोप्टरिस वनस्पतियों की उत्पत्ति और स्वभाव तथा "मनुष्य जाति की उत्पत्ति के बाद हिमालय के उत्थान" आदि अनेक जटिल तथा वादविवाद-युक्त भूगर्भ और वनस्पति विज्ञान विषयक समस्याओं को हल करने में सहायता मिली है।

## पुरातत्व और पुरावनस्पति-तत्त्व

आपका अनुसन्धान कार्य वनस्पति और भूगर्भ विज्ञान तक ही सीमित नहीं है। आपने पुरातत्त्व सम्बन्धी भी अनेक अन्वेषण किये हैं। पुरातत्त्व में आपकी रुचि बहुत पहले से ही थी। एक बार तो आप इस बात पर अनिश्चित थे कि आप पुरातत्त्व का अध्ययन करेंगे या पुरावनस्पति विज्ञान का। एक बार रोहतक के पास यमुना की उपत्यका का भ्रमण करते समय आपको खोकरा कोट नामक स्थान पर कुछ टूटे हुये मिट्टी के ठप्पे मिले जिनमें सिक्कों के चिह्न बने हुये थे। बाद में वहाँ पर खुदाई करवाने पर आपको उसी प्रकार के हजारों ठप्पे और मिले जिनसे ऐसा प्रतीत होता है कि वहाँ पर ईसा से १०० वर्ष पूर्व यौधेय राजाओं की टकसाल रही होगी। इन ठप्पों की सहायता से आपने

**स्वर्गीय आचार्य बीरबल साहनी**

आपके असामयिक निधन से वैज्ञानिक संसार को बहुत क्षति पहुँची है।

तत्कालीन सिक्के ढालने की विधि का विस्तारपूर्ण वर्णन लिख डाला और इस कार्य के लिये आपको भारतीय न्यूमिसमेटिक सोसायटी ने एक पदक प्रदान किया। अनुसन्धान कार्य के अतिरिक्त और भी कई प्रकार से आपने विज्ञान की सेवा की है। वास्तव में आपको भारतीय वनस्पति विज्ञान का जन्मदाता कहा जा सकता है। पुरावनस्पति-विज्ञान-मन्दिर के अतिरिक्त आपने भारतीय वनस्पति विज्ञान परिषद, अखिल भारतीय विज्ञान काँग्रेस, भारतीय वैज्ञानिक एकेडेमी, राष्ट्रीय वैज्ञानिक एकेडेमी, राष्ट्रीय विज्ञान मन्दिर और 'करेन्ट साइन्स' आदि की स्थापना और संचालन में विशेष भाग लिया है। वनस्पति विज्ञान की शिक्षा प्रारम्भ करने वाले विद्यार्थियों के लिये प्रो० लोसन की पाठ्य-पुस्तक का भारतीय संस्करण लिखकर आपने इस देश में वनस्पति विज्ञान के प्रचार में बहुत बड़ी सहायता दी है। इस सुन्दर पुस्तक को आपने तभी लिख दिया था जब कि आप केम्ब्रिज में पढ़ते थे। इसके लिये आपको केवल ८० पौंड मिला और आपसे इस प्रकार की कोई दूसरी पुस्तक न लिखने की प्रतिज्ञा करा ली गई, जिस पर आप जीवन भर दृढ़ रहे।

## शिष्यों के प्रिय अध्यापक

आचार्य साहनी एक प्रख्यात वैज्ञानिक होने के साथ ही एक अत्यन्त योग्य अध्यापक और आचार्य भी थे। बहुधा दोनों हाथों से चित्र बनाकर आप अपने विद्यार्थियों को बड़े चाव और रोचक ढंग से पढ़ाते थे। इनमें योग्य नवयुवकों को अनुसन्धान कार्य में प्रोत्साहित कर तथा उन्हें इसकी उत्तम शिक्षा-दीक्षा देकर आपने वनस्पति विज्ञान का जो प्रचार इस देश में किया है, उसके लिये हम सदैव आपके ऋणी रहेंगे। अनेक विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में आपके शिष्य वनस्पति विज्ञान और विशेषकर पुरावनस्पति-विज्ञान के अध्यापक हैं। इस देश में विज्ञान को लोकप्रिय बनाने में भी आपने बहुत बड़ा भाग लिया है। समय समय पर आप जनसाधारण के लिये सरल तथा सरस भाषा में लेख और भाषण दिया करते थे। आपका शिक्षा-कार्य विद्यालय के कमरों तक ही सीमित न था। बहुधा आप विद्यार्थियों के साथ वनस्पतियों और पुरावनस्पतियों के संग्रह और अध्ययन के लिये उन क्षेत्रों में भ्रमण करने जाते थे, जहाँ वे पाई जाती हैं। इन अवसरों पर आप विद्यार्थियों ही के साथ तीसरे दर्जे में यात्रा करते, उन्हीं के साथ भोजन करते और उन्हीं के साथ रहा करते थे। अपने साथियों और शिष्यों के सुख-दुःख का आपको सदैव ध्यान रहता था। एक बार जब हम लोग राजमहल की पहाड़ियों में आपके साथ भ्रमण कर रहे थे तब दिन की कड़ी धूप में बहुत देर चलने के बाद सब को बहुत प्यास लग आई। बड़ी कठिनाई से एक कुआँ मिला। आचार्य साहनी ने अपने हाथ से कई बार किसी और बर्तन के न होने पर एक टिफिन केरियर में पानी खींच कर हम लोगों को पिलाया और स्वयं सब को पिला चुकने के पश्चात् ही पिया। यदि आपके साथियों या शिष्यों में से कोई बीमारी अथवा अन्य किसी संकट में पड़ जाता था तो आपको बड़ा मानसिक कष्ट होता था और उसकी सहायता करने के लिये आप भरसक प्रयत्न करते थे। किन्तु इस सहायता और दयाभाव से कोई अनुचित लाभ नहीं उठा सकता था। उचित अनुशासन कर्त्तव्यपरायणता के आप सदैव प्रेमी थे। स्वयं रात्रि होने तक कालेज में अपना काम करते रहते थे और अपने शिष्यों से बहुधा कहा करते थे कि अनुसंधान कार्य में ९९ प्रतिशत परिश्रम की आवश्यकता है और केवल १ प्रतिशत बुद्धि की।

## विश्व-व्यापी सम्मान

विज्ञान की इन बहिर्मुखी सेवाओं के उपहारस्वरूप अनेक विदेशी तथा भारतीय वैज्ञानिक संस्थाओं ने आपको सब प्रकार से सम्मानित किया। सन् १९२९ में केम्ब्रिज विश्वविद्यालय ने आपको एससी० डी० की उपाधि प्रदान की। इस उपाधि को पाने वाले आप प्रथम भारतीय हैं। १९३६ में आप लन्दन की रायल सोसायटी के ५वें भारतीय फेलो निर्वाचित किये गये। इसी प्रकार आप और भी कई देशी तथा विदेशी वैज्ञानिक संस्थाओं के फेलो थे जिनमें अमेरिकन एकेडेमी आफ आर्टस, साइन्सेज एण्ड लेटर्स, भारतीय तथा राष्ट्रीय-वैज्ञानिक-एकेडेमी (जिनके आप दो बार सभापति और उपसभापति भी रह चुके हैं), राष्ट्रीय-विज्ञान-मन्दिर (जिसके आप उपसभापति भी रह

चुके हैं), और भारतीय वनस्पति-विज्ञान-परिषद् (जिसके आप सभापति भी रह चुके हैं) आदि मुख्य हैं। अखिल भारतीय विज्ञान काँग्रेस के तो आप १६२१ और १६३८ में वनस्पति विभाग के अध्यक्ष, १६२६ में भूगर्भ विभाग के अध्यक्ष और १६४० में सभापति रह चुके हैं। इसके अतिरिक्त आप अनेक अन्तर्राष्ट्रीय-वैज्ञानिक सभाओं में भारत के प्रतिनिधि और दो अन्तर्राष्ट्रीय-वनस्पति-विज्ञान-काँग्रेसों के उपसभापति रह चुके हैं। अभी हाल में तो आप १६५० में स्वीडन में होने वाली आगामी अन्तर्राष्ट्रीय-वनस्पति-विज्ञान-काँग्रेस के एक सभापति निर्वाचित हो गये थे।

### सच्चे देशभक्त

एक प्रसिद्ध शिक्षक और वैज्ञानिक होने के साथ ही आचार्य साहनी एक सच्चे देशभक्त भी थे। खादी और स्वदेशी के तो आप पहले से ही प्रेमी थे। स्वच्छ सफेद खद्दर की अचकन, चूड़ीदार पायजामा, गांधी टोपी और लाल पंजाबी जूता पहने हुए आप अपने सुन्दर रूप और स्वभाव से सब को मुग्ध और प्रभावित कर लेते थे। सन् १६२२ में जब वेल्स के युवराज लखनऊ विश्वविद्यालय में पधारे थे तो आपने उनका बहिष्कार किया था। कांग्रेस के पहले आन्दोलन के समय आप उसमें शामिल होना चाहते थे किन्तु बाद में आपने विज्ञान द्वारा ही देश सेवा करना अपने लिये यथेष्ट समझा। देश की स्वतंत्रता के आन्दोलन के साथ आप की सच्ची सहानुभूति सदैव बनी रही। मुझे अच्छी तरह याद है कि स्वतंत्रता-दिवस के अवसर पर जब एक बार कुछ को छोड़ कर सब विद्यार्थी हड़ताल पर थे तो आपने उनको भी अपने साथियों का अनुकरण करने को कहा और हाजिरी तक न ली। स्वदेशी के साथ-साथ राष्ट्र-भाषा हिन्दी और उसमें विज्ञान की शिक्षा के भी बहुत प्रेमी थे।

सर्वतोमुखी प्रतिभा वाले इस विश्व-विख्यात वैज्ञानिक देशभक्त के साथ केवल कुछ ही देर रहकर मनुष्य अनेक बातें सीख सकता था। मुझे तो कई साल तक उनकी छत्रछाया में रहने से ऐसा प्रतीत होता है कि मुझे न जाने कितनी बड़ी देन मिल गई है।

---

# शब्दावली निर्माण पर विहंगम दृष्टि

कुलदीपचन्द्र चड्ढा, एम०, एस० सी०

विज्ञान की भारतीय शब्दावली निर्माण का कार्य आज ही प्रारंभ नहीं हुआ—यह अनेकों वर्ष पूर्व प्रारंभ हुआ था; सैकड़ों हजारों वर्ष पूर्व, यदि हम जरा विशालतर दृष्टि कोण से देखें। कहना न होगा कि ज्ञान विज्ञान के अनेक विषयों का वर्णन, वेदों, दर्शनों और इन पर किए गए अनेक भाष्यों में किया जा चुका है। हमारे पूर्वजों ने, इन विषयों की अभिव्यक्ति के लिए, एक विशिष्ट भाषा और कुछ विशेष शब्दों का प्रयोग किया था। यही ज्ञान आगे चलकर, विश्लेषणात्मक भाषा में, दर्शन, गणित, ज्योतिष, रसायन, कला आदि कहलाए। अतएव, एक प्रकार से हमारी वैज्ञानिक शब्दावली तब से चली आती है, जब से सृष्टि के आदि ग्रन्थ, "वेद" लिखे गए।

मध्यकालीन युग में, अनेक विषय विशेषज्ञों—वराह, मिहिर, आर्य्यभट्ट, प्रशस्तपद, उदयन, नागार्जुन, च्यवन, धन्वन्तरि, भास्कराचार्य, ब्रह्मगुप्त, वाचस्पति, श्रीधर, चरक, सुश्रुत और वाग्भट्ट ने —इस क्रम को जारी रखा। ज्ञान विज्ञान के विवेचन और वृद्धि द्वारा वे हमारी विज्ञान की शब्दावली को भी बढ़ाते रहे। यह क्रम लगभग १३००-१४०० ईस्वी तक चला। उसके उपरान्त भारत की अस्तव्यस्त अवस्था में विविध विषयक उन्नति और शब्द निर्माण का यह कार्य—दोनों परम्परावलम्बी होने के कारण—रुक

से गए।

१६वीं शताब्दी के मध्य तक, अंग्रेज आगन्तुक, लगभग सारे भारत के शाशक बन गए। न जाने किस लक्ष्य से—विद्या प्रचार के दृष्टि कोण से अथवा अपने किसी स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए—उन्होंने हमें यूरोपीय ज्ञान विज्ञान की विचार धाराओं से परिचित करवाया। निस्सन्देह यह उसी विद्या का रूपान्तर मात्र था जिसमें हम अतीत में सिद्धि पा चुके थे, पर कालान्तर में परिस्थितियों की विषमता के कारण, इसे भुला भी चुके थे। अतएव यह विस्मृत विद्या हमें अपरिचित सी मालूम हुई, और इसे अपने नए शासकों की विदेशी भाषा में सीखने के अतिरिक्त, हमारे पास और कोई चारा न था, अतएव हमें उस शब्द श्रृंखला को भी अपनाना पड़ा, जिसे आज अंग्रेजी पारिभाषिक—शब्दावली का नाम मिला है।

इस कठिन वातावरण में भी भारत सपूतों ने अपने ऊर्वर मस्तिष्क की सहायता से, विज्ञान के खोये हुये क्षेत्र में पुनः सिद्धि पाई। आज हमारे जगदीशचन्द्र बोस, सर सी० वी० रमन, सर शान्ति स्वरूप भटनागर, सर के० एस० कृष्णन्, डा० मेघनाद साहा, प्रो० एस० चन्द्रशेखर, रामानुजम, वीरबल साहनी, वाडिया, भाभा आदि वैज्ञानिक अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अमित प्रसिद्धि पा चुके हैं।

पर इसी बीच में "अपनी भाषा अपना वेष; अपनी सत्ता अपना देश"—की भावना ने जोर पकड़ा। और उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त से ही वैज्ञानिक शब्दावली के भारतीयकरण की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। शब्दावलियाँ बनाई गईं और कुछ कुछ प्रयुक्त भी हुईं। पर ये प्रयास हमारे गोरे शासकों की इच्छा के अनुकूल न थे। अतएव उनको न तो प्रोत्साहन मिला, और न उनका प्रचार ही हुआ।

आज स्वातन्त्र्य के नवयुग में, इन प्रयासों के पुनरुद्धार की आवश्यकता अनुभव हुई है और यह कार्य पुनः प्रारंभ हुआ है—इस बार कुछ अधिक तन्मयता के साथ। यह भी सकारण ही है, क्योंकि इस प्रकार की राष्ट्रीय प्रवृत्तियाँ, स्वतंत्रता के वातावरण में ही पनप सकती हैं। आज अनेकों कोटि के विद्वान् इस पुनीत कार्य में संलग्न हैं, जिससे यह कार्य काफी आगे बढ़ चुका है। तदन्तर ही, इस काम के अनेक पहलू सामने आए जो केवल सैद्धान्तिक रूप रेखा बनाते समय कल्पित भी न किए जा सकते थे। अन्यथा कार्य की गहराई में जाने पर, कभी-कभी विद्वानों में मतभेद होना भी असम्भव नहीं। इस मतभेद के कारण यह शब्दावली कुछ कुछ विश्रृङ्खल सा रूप धारण कर रही है। एक ही अंग्रेजी शब्द के लिए विभिन्न हिन्दी पर्यायी प्रमुख हो रहे हैं और कई बार एक ही हिन्दी शब्द अनेक अंग्रेजी शब्दों के स्थान पर इस्तेमाल किया जाता है।

पर कोई भी यह मानने से इन्कार नहीं करेगा कि यह अभीष्ट स्थिति नहीं। शायद उचित अवसर है कि शब्दावली निर्माण के कार्य का विश्लेषणात्मक दृष्टि से सिंहावलोकन किया जाय, जिससे हम अब तक के किए हुए कार्य के दोषों को—यदि वे वास्तव में ही "दोष" सिद्ध हों तो—दूर कर सकें। और भविष्य में भी इस कार्य का आयोजन, यथासंभव, निर्दोष और सर्वोपयोगी रूपेण किया जा सके।

मानव की बुद्धि—मानव होने के नाते—सीमित है। मानव समाज में विलक्षण बुद्धि वाले व्यक्तियों की कमी नहीं; पर उनसे भी गल्ती हो जाना अस्वाभाविक नहीं। पर मानव सुलभ स्वभाव के कारण कई बार व्यक्ति अपनी दोषपूर्ण वृत्ति को भी निर्दोष सिद्ध करने का प्रयास करता है। ऐसे प्रयास का केवल मात्र अंकुश "आलोचना" है।

आलोचना स्वयं एक बुरी चीज नहीं। उचित तर्क को सहने और उसका आदर करने की भावना—भले ही यह कठिन हो, पर अत्यन्त अभीष्ट है। पर हाँ, आलोचना भी किसी निकृष्ट ध्येय से नहीं होनी चाहिए।

मानव यदि किसी विशेष मार्ग पर चलता है, जो दोष पूर्ण है, तो शायद इसलिए कि उसे दोष का ज्ञान नहीं। आलोचना किसी कार्य, व्यक्ति, परिस्थिति इत्यादि के सब पक्षों पर प्रकाश डालती है, जिससे कार्य आदि का दोषपूर्ण पक्ष सामने आ जाय।

अपने विषय पर वापिस आते हुए, हमें यह मानने में संकोच नहीं कि शब्दावली निर्माण के कार्य में सलग्न विद्वान् केवल एक ही ध्येय से अनुप्राणित हैं—राष्ट्र सेवा।

पर उपर्युक्त कारण से ही उनमें विचार वैषम्य पैदा हो गया होगा। शायद प्रत्येक विद्वान् इस मूलभूत तथ्य को स्वीकार करता है कि शब्दावली के भारतीयकरण का ध्येय, जनता को उसी की भाषा में ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा दिलवाना है।

"पर कौन सी जनता ?"

## शब्दावली के व्यवहार का क्षेत्र—

हो सकता है, यह प्रश्न किन्हीं पाठकों को निरर्थक सा लगे। पर परिस्थिति पर गम्भीरता से विचार करने से शायद प्रकट होगा कि यह नितान्त अकारण ही नहीं। भारत में निवास करने वाला विशाल समुदाय बोल-चाल, और कुछ अन्य व्यवहारों के लिए भी, पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी, मालवी, कन्नड़, मलयालम, तामिल, तैलगू, उड़िया, बंगाली, आसामी, नैपाली, हिन्दी आदि संख्यातीत भाषाएँ प्रयुक्त करता है। इनमें से अनेक भाषाएँ अत्यन्त समुन्नत भी हैं। हमारी सरकार, भावी, शिक्षा की जो योजनाएँ बना रही हैं, उनमें इन भाषा-भाषी विभिन्न प्रदेशों को प्रादेशिक भाषाओं के माध्यम में ही शिक्षा देने की अनुमति दी गई है। तथाच, शब्दावली निर्माण के कार्य में राहुल और रघुवीर ही संलग्न नहीं, बंगला, तामिल आदि के भी अनेक विद्वान् अपनी भाषाओं में यह शब्द-चयन कर रहे हैं।

इस परिस्थिति के कारण ही कभी-कभी भ्रम होने लगता है कि शायद हिन्दी शब्दावली का क्षेत्र अत्यन्त सीमित रह जाय। यदि उपर्युक्त सभी प्रादेशिक भाषाएँ, एक अन्य की होड़ में, अपनी प्रादेशिक सत्ता को, राष्ट्रीय भाषा को उपेक्षित करके, अधिक सबल बनाने का यत्न करें, तो शायद हिन्दी शब्दावली का अधिकार संयुक्त प्रान्त, बिहार, मध्य प्रान्त और राजस्थान के ही कुछ प्रदेशों पर रह जायगा।

यदि किन्हीं पाठकों को हमारे ये विचार निराशाजनित लगते हों, तो हम प्रकट करने का दुस्साहस करते हैं कि यह केवल हमारा ही विचार नहीं, इस उक्ति के पक्ष में हम हिन्दी के अत्यन्त मान्य विद्वान् के शब्दों का उल्लेख करते हैं*। शब्दावली के ही विषय में, विचार विनिमय के अनन्तर, उन्होंने प्रकट किया..."देखना यह है कि बंगला, उड़िया, मराठी, गुजराती के विद्वान् क्या स्वीकार करते हैं"......।

समस्या थी कि कुछ विशेष अंग्रेजी शब्दों को, उनके मूल रूप में ही अपना लिया जाय, अथवा उनका भी अनुवाद किया जाय।

स्पष्ट ही है कि ये महानुभाव, हिन्दी की शब्दावली के सार्वभारतीय अंगीकरण की आशा नहीं रखते। इसके विपरीत एक अन्य केन्द्र में यही मानकर शब्द चयन किया जा रहा है कि हिन्दी शब्दावली का सारे भारत में प्रयोग होगा।

शब्दावली निर्माण में संलग्न अनेक विद्वानों में इस विषय में मतभेद पाया जाता है कि संस्कृतजनित शब्दों को मान्यता देनी चाहिए अथवा प्रचलित (प्रायः अपभ्रंश) शब्दों को। Electricity को विद्युत् कहें अथवा बिजली; collision को संघात कहें अथवा टक्कर; Envelope को लिफाफा कहें अथवा आवरण ? इस विचारभेद में केवल व्यक्तिगत पसन्द ही काम नहीं करती, यह भेद सैद्धान्तिक भेद है। यदि हमारी शब्दावली को सार्वभारतीय बनना है तो निस्सन्देह हमें वह भाषा अपनानी पड़ेगी जिसका अधिकांश बंगाली, गुजराती, तैलुगू के विद्यार्थी भी समझ सकें। इस दृष्टि से 'संघात'—'विद्युत्'—और 'आवरण' शब्द ही अधिक उचित प्रकट होंगे। पर यदि यू० पी०; सी० पी० को ही हिन्दी शब्दावली से लाभ उठाना है तो वे शब्द क्यों न अपनाए जायँ जिन्हें नगर का एक मजदूर, ग्राम का किसान और विश्वविद्यालय का अध्यापक, सभी अत्यन्त सुगमता से समझ सकते हैं—अर्थात् टक्कर बिजली, लिफाफा।

भविष्य में किस मन्तव्य को मान्यता मिलेगी, यह तो नेहरू, राधाकृष्णन्, ताराचन्द और भटनागर के हाथ में

---

***हम प्रस्तावक महोदय के नाम का उल्लेख करना उचित नहीं समझते। भावी स्थलों पर भी यथासंभव यही नीति अपनाएँगे—लेखक**

है। पर क्या हमारे लिए उचित नहीं कि हम देखें, दोनों में से कौन सी स्थिति जनता के लिए अधिक उपयोगी होगी? स्वराज्य मिलने के भी दो वर्ष उपरान्त तक, हिन्दी-हिन्दुस्तानी-उर्दू, तथा देवनागरी-अरबी का संघर्ष सा चलता रहा। एक समय तो भय पैदा हो गया था कि कुछ सत्ताधारी राजनीतिज्ञ जनता के बहुमत की अवहेलना करके, उर्दू-अरबी लिपि को ही मान्यता न दे डालें। पर समय ने सिद्ध कर दिया है कि अन्त में विजय सत्य की ही हुई। प्रस्तावित समस्या का भी, इसी आशा से, विश्लेषण करना अभीष्ट होगा।

राष्ट्रभाषा— अर्थात् सकल राष्ट्र के लिए एक ही भाषा को निर्धारित करना, राष्ट्रीय एकता की मूल कड़ी है। भौगोलिक एकता राष्ट्र के व्यक्तियों को भले ही एक सूत्र में बान्धती हो, पर इस सूत्र को मजबूत बनाने के लिए हमें अधिकाधिक कारण चाहिए। राष्ट्रभर के लिए एक ही भाषा का आंशिक प्रयोग ऐसा ही एक कारण है। इस कारण को अधिक सबल बनाने के लिए वांछित है कि यह राष्ट्रभाषा केवल राजनीतिक व्यवहार तक ही सीमित न रहे वरन् शिक्षा का भी माध्यम बने। आखिर आज के विद्यार्थी ही तो कल के राजनीतिज्ञ होंगे।

पर इसके विपरीत मत प्रकट किया जाता है कि बच्चा मातृभाषा में ही शिक्षा अधिकतम सुगमता से प्राप्त कर सकता है। हमें इस मत से इन्कार नहीं। पर मातृभाषा स्वयं प्रादेशिक भाषा से भिन्न होती है। संयुक्त भारत के पश्चिमोत्तर प्रान्त से प्रारंभ करके यदि हम ठीक आसाम, बंगाल और कुमारी अन्तरीप तक चले जायँ तो हमें बोली में निरन्तर भेद आता हुआ मालूम होगा। पश्चिमी पंजाब में मियांवाली की बोली, लाहौर में बोली जाने वाली पंजाबी की अपेक्षा, पेशावर में बोली जाने वाली पश्तो के अधिक निकट है। पूर्वी पंजाब में, हिसार और रोहतक की बोली, जालंधर की भाषा की अपेक्षा मेरठ की बोली के अधिक निकट है। इसी प्रकार बिहार की पूर्वी और पश्चिमी सीमाओं पर बोली जाने वाली भाषाओं में परस्पर अधिक भेद है और समपवर्ती प्रान्तों की भाषाओं में कम। अतएव यदि पंजाब में पंजाबी, उड़ीसा में उड़िया और आंध्र में तैलुगू को शिक्षा का माध्यम बनाया गया तो



बालक फिर भी अपनी मातृभाषा में शिक्षा-ग्रहण न कर रहा होगा। यदि मियांवाली जिले के शरणार्थी बालक और हरियाना के जाट बालक को केन्द्रीय पंजाब की पंजाबी में शिक्षा ग्रहण करनी पड़े तो दोनों के लिए कठिनता होगी क्योंकि यह दोनों की मातृभाषा से भिन्न है।

और यदि प्रत्येक जिले की भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया जाय तो वह अत्यन्त हानिकर विकेन्द्रीकरण होगा, साथ में अव्यावहारिक भी।

शिक्षित व्यक्ति की उपयोगिता का क्षेत्र भी, उसकी भाषा की उपयोगिता के क्षेत्र के अनुकूल होगा। गुजराती में विज्ञान का अध्ययन करके, कोई विद्यार्थी, देहली की National Physical Laboratory का अध्यक्ष बनने के स्वप्न नहीं देख सकता।

ये सभी विचार सिद्ध करते हैं कि यथासंभव भारत भर में शिक्षा का माध्यम एक होना चाहिए। प्रारंभिक कक्षाओं में तो प्रादेशिक भाषाएँ ही व्यवहार में आएँगी। पर ८-१० वर्षों के उपरान्त राष्ट्रभाषा को ही शिक्षा का माध्यम बनाना उचित होगा। प्रारंभिक ८-१० वर्षों के अध्ययन में भी पारिभाषिक शब्द सब भाषाओं में समान होने चाहिए, क्योंकि इस सिलसिले में मातृ बोली का तो प्रश्न ही नहीं उठता। माता की गोद में, बच्चा रोटी, पानी, पैसा, बाजार आदि सामान्य व्यवहार के शब्द तो सुनता रहता है, पर Electron, microbe या oxide के पर्यायी उसके कानों में नहीं पड़ते रहते।

अतएव जहाँ तक विज्ञान की शब्दावली का संबन्ध है, उसका अखिल भारत में समान रूप से व्यवहार होना चाहिए। और इस समान व्यवहार का आधार, राष्ट्रभाषा के अतिरिक्त और क्या हो सकता है?

## शब्दावली की भाषा का रूप

राष्ट्रभाषा हिन्दी ही होगी। पर हिन्दी के भी तो अनेक अर्थ निकाले जाते हैं। उर्दू से शुद्ध संस्कृत तक, भाषा के किसी भी रूप को हिन्दी कहा जा सकता है। यही नहीं, कहीं तो उर्दू, हिन्दी, अँग्रेजी आदि की खिचड़ी को ही हिन्दी कहते हैं। शब्दावली निर्माण का आधार किस हिन्दी को बनाया जाय?—यह है हमारी अगली समस्या।

इसके लिए हमें शब्दावली निर्माण के ध्येय की ओर पुनः वापिस जाना होगा।—"हम जनता को उसी की भाषा में शिक्षा देना चाहते हैं"। हमने ऊपर सिद्ध किया कि जनता से अभिप्राय, अखिल भारतीय जनसमुदाय का लेना चाहिए। उसके लिए हम उस हिन्दी को आधार नहीं बना सकेंगे जो देहली और लखनऊ के बाजारों में बोली जाती हैं। इसके लिए तो सभी प्रान्तों की सुविधा सामने रखनी होगी, और हिन्दी में समस्त प्रान्तों की भाषा के प्राण को केंद्रित करना होगा।

प्रान्तीय भाषाओं का प्राण संस्कृत है। शायद एक दो भाषाओं को छोड़ कर सभी भाषाएँ संस्कृत से निकली हैं।

परन्तु अपने ठाठों और शृंगारों के कारण ही संस्कृत अपने मूल रूप में आज मृतप्राय सी है। अतएव हमें संस्कृत के सुगम और व्यवहारगत शब्दों को ही अपनाना होगा। अन्यथा भी तो क्लिष्ट भाषा जनता की भाषा नहीं हो सकती। अतएव हिन्दी शब्दावली का ढाँचा हमें संस्कृत के उन शब्दों की नींव पर खड़ा करना चाहिए जो प्रादेशिक भाषाओं में मूल अथवा अपभ्रंश रूप में विद्यमान हैं। हाँ, शब्दावली में हम मूल संस्कृत शब्द को ही मान्यता देंगे, अपभ्रंश रूप को नहीं, भले ही वह अपभ्रंश रूप किसी प्रान्तीय भाषा—भले ही वह यू० पी० की ही क्यों न हो—में प्रचलित हो गया हो। यदि हम यू० पी० की बोलचाल की भाषा के शब्दों को ही मान्यता देने लग गए तो बंगाल, महाराष्ट्रादि हमारे प्रयासों को संशय की दृष्टि से देखने लगेंगे। ऐसी स्थिति में हिन्दी शब्दावली को कभी भी सर्वभारतीय महत्त्व न मिल सकेगा। अतएव हमें "घिर्री"—"अन्टा"—"बेठन" आदि शब्दों का बहिष्कार करना पड़ेगा।

साथ ही साथ हमें "याम्योत्तरवृत्तीय" (Collimate) आदि अपाच्य शब्दों से भी दूर रहना चाहिए जो भाषा में नाहक ही अजीर्णता पैदा करें।

सूत्र रूप में हमें सुगम संस्कृत शब्दों को ही अपनाना चाहिए। ऐसे शब्द प्रायः सभी प्रान्तीय भाषाओं में समान रूप से—कुछ हेर फेर के साथ—प्रयुक्त होते हैं; अतएव वे सर्वप्रिय बन सकेंगे।

### शब्द चयन का आधार :—

Tecnnical terms का प्रचलित पर्यायी है—"पारिभाषिक शब्द"। भले ही यह पर्यायी संयोग वश प्रचलित हो गया हो, पर यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अनुवाद है। विज्ञान की शब्दावली का अधिकतम लाभ उसे वास्तविक अर्थों में "पारिभाषिक" बना देने से होगा। इस दशा में निर्धारित शब्द क्रिया, धारणा अथवा पदार्थ विशेष की परिभाषा का सूक्ष्म सांकेतिक रूप होगा। उदाहरण के तौर पर, जल के रसायनिक विश्लेषण से दो गेसैं (वायव्य) उत्पन्न होती हैं। इनमें से मुख्य वायव्य अंग्रेजी में Hydrogen कहलाता है, क्योंकि Hydro—प्रत्यय का अर्थ है जल। इसी प्रकार जर्मन भाषा में भी इसे Wasserstoff कहा जाता है—Wasser का अर्थ भी है जल। तदनुरूप हिन्दी में भी इसे 'उदजन' अथवा 'नीरजन' का सार्थक रूप मिलना चाहिए।

परिभाषा पदार्थ के लक्षणों पर आधारित हो सकती हैं, उसके आविष्कार के कारण, कर्ता अथवा परिस्थितियों आदि पर भी। अधिक उलझनों में न फँसते हुए हम उन्हीं लक्षणों अथवा परिस्थितियों को आधार बना सकते हैं जो प्रचलित अंग्रेजी शब्दों का आधार हैं। हाँ कई अंग्रेजी शब्दों का नामकरण उस समय हुआ जब कि तत्संबन्धी जानकारी अपरिपक्व थी। ऐसी स्थिति में अनेक बार यह जानकारी विषय के विस्तृत होने पर, अशुद्ध सिद्ध हुई। पर परम्परा के कारण अंग्रेजी के ये प्रचलित शब्द स्थानान्तरित न किये जा सके। हिन्दी में तो परम्परा का कोई प्रश्न नहीं। अतएव हम भ्रान्त के स्थान प्रमाणित धारणाओं को शब्दावली का आधार बना सकते हैं।

इस प्रकार के पारिभाषिक शब्द सार्थक होंगे ही। और यही कारण शब्दावली को आकर्षक बना सकेगा। 'नत'—'उन्नत'—और 'उदर' का अर्थ प्रायः प्रत्येक भाषाभाषी जानता होगा। अतएव Convex Lens और Concave Lens के स्थान पर 'उन्नतोदर ताल' और 'नतोदर ताल' का सर्वतः स्वागत होगा, क्योंकि इनके अंग्रेजी पर्यायी शब्दों की भांति, इनके प्रयोग में भ्रान्ति की गुन्जायश ही नहीं रह जाती।

इसके अतिरिक्त आवश्यकता होने पर अंग्रेजी शब्द का शाब्दिक अनुवाद मात्र भी अपनाया जा सकता है। पर कुछ महानुभावों ने एक तीसरे पथ का अनुसरण किया है। अंग्रेजी शब्दों के अर्थ, आशय अथवा उसकी पृष्ठ भूमि पर ध्यान दिए बिना ही अनेक बार अँग्रेजी शब्दों में रंचमात्र रूप भेद करके ही उन्हें अपना लिया गया है, यथा "ऑक्सिजन" के लिए "अक्षिजन"। ऐसे शब्द लाभ के स्थान पर हानि ही करेंगे। लेखक के विचार में तो ऐसे शब्दों को अपनाने की अपेक्षा, शब्दों को उनके मूल अंग्रेज़ी रूप में ही अपना लेना अधिक उचित होगा।

## अँग्रेजी शब्दों से रूपसमानता

परन्तु इसके विपरीत, यदि अंग्रेजी शब्दों में थोड़ा सा रूप भेद करके हम उन्हें सार्थक भी बना सकें, तो ऐसे शब्द हानिकर होने की अपेक्षा द्विगुणित लाभकारी होंगे।

हम इस बात से इनकार नहीं करते कि हिन्दी की शब्दावली अपनाते समय प्रारंभ में कठिनाइयाँ होंगी। इसी कारण हम यह भी उचित समझते हैं कि यदि शब्दावली को किसी प्रकार दूषित किए बिना, हम इन कठिनाइयों को कम कर सकें, तो हमारा प्रयास श्लाघ्य होगा। क्योंकि ऐसा करने से उन लोगों का विरोध कम हो जायगा जो केवल संक्रान्ति काल की कठिनाइयों से घबराते हैं।

ऐसी कठिनाइयों को कम करने का एक और आसान रास्ता है, शब्दों को समानार्थक अंग्रेज़ी शब्दों के समरूपक बनाना। इस विषय में एक संयोग का उल्लेख कर देना अनुचित न होगा। अपने एक साथी इंजीनियर से शब्दावली के विषय पर ही चर्चा हो रही थी। तदनन्तर ही वे बोल उठे,

"क्षमा करना भाई, आप भले ही इस काम में दिलचस्पी लेते हों। पर याद रखिये, आपका यह काम केवल विद्वत्ता का विषय ही बना रहेगा। इसका व्यावहारिक मूल्य तो नहीं के बराबर होगा!"

"कारण?"

"कारण?—कारण क्या! क्या तुम सम्भव समझते हो कि हमारे प्रयोग के लाखों वैज्ञानिक शब्द स्थानान्तरित हो सकेंगे? क्या तुमने तद्विषयक कठिनाई का भी कभी अनुमान लगाने का प्रयास किया है?·····क्या मैं Diode, Triode, Tetrode, Pentode आदि शब्दों से अलग हो सकूँगा—इनके स्थान पर जटिल हिन्दी शब्दों को आयु भर में सीख सकूँगा?"

"निस्सन्देह! क्या तुम्हें इनके स्थान पर द्वयोद, त्रयोद, चतुरोद, पंचोद···का प्रयोग कष्टकर प्रतीत होगा?"

"हैं?—क्या यही हैं इनके हिन्दी पर्यायी? तब तो भाई हम भी·····"

कहना न होगा कि उनके आकस्मिक मत परिवर्तन का कारण शब्दों की समानता मात्र थी। लेखक, सविनय, अपने स्वल्प अनुभव के आधार पर कह सकता है कि यह गुर अत्यन्त उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है। और इसके पालने में विशेष कठिनता भी न होगी। भाषाविज्ञों का मत है कि सम्भवतया सभी भाषाएँ एक ही जननी की उदरजन्या हैं। अतएव उनमें मातृरूप का कुछ-कुछ अंश अवश्य होगा। माता शब्द के पर्यायी 'मदर', 'मादर', 'मातृ', 'मेटर', 'मैरे' एक सुलभ उदाहरण हैं।

इस भाव को हम एक उपयोगी उदाहरण द्वारा और स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं।

प्रत्येक रसायनिक पदार्थ के छोटे से छोटे कण को Molecule कहा जाता है। संसार में कुल ६२ प्रकार के मूल तत्त्व ( Elements ) माने जाते हैं जिनके अकाट्य कणों को Atom कहा जाता है। Atom के केन्द्र को Nucleus कहा जाता है और यह Nucleus भी Proton और Neutron नामक दो कणों की विविध संख्याओं से बनता है। इस पदार्थ-रचना के प्रारंभिक विवेचन के लिए Molecule, Atom, Nucleus, Proton और Neutron शब्दों को अनूदित पड़ेगा। एटम बाम्ब आदि के उल्लेख में ये शब्द अनेक लेखादि में प्रयुक्त हो चुके हैं। इनके लिए जो पर्यायी प्रयुक्त हुए हैं उनको हम नीचे दे रहे हैं।

Molecule·····कण, अणु, व्यूहाणु, मौलिकण
Atom·····परमाणु, अणु
Nucleus·····न्यष्टि, नाभिक, केन्द्रक, धुरीकण
Proton·····प्राणु, परमाणु
Neutron·····नयाणु

शायद प्रत्येक पर्यायी, तुल्य अँग्रेजी शब्द का आशय व्यक्त करने में समर्थ है। पर समरूपता की दृष्टि से Molecule के लिए "मौलिकण" Atom के लिए 'अणु', Nucleus के लिए "नाभिक" या "न्यष्टि" और Proton तथा Neutron के लिए सभी उल्लिखित शब्द उचित होंगे। ऐसे शब्दों के लिए एक और परीक्षा भी आवश्यक है जिसका हम ऊपर संकेत कर चुके हैं—अर्थात् वे सार्थक अवश्य हों।

इसी प्रकार Helium का उचित पर्यायी 'हेलिम' होगा न कि 'हिमजन' अथवा 'यानाति', Indium का 'सिन्धुकम्' होगा न कि 'नैलातु' और Iridium का 'इन्द्रकम्' होगा न कि 'बनातु'।

## शब्द माधुर्य और उच्चारण सरलता

उपर्युक्त दो नियमों के अतिरिक्त हमें भाषा विज्ञान के एक अन्य सर्वमान्य नियम को अपनाना पड़ेगा। भाषा में श्रुतकटु और क्लिष्ट उच्चारण वाले शब्दों को सर्वदा हेय माना जाता है। अतएव हमारे शब्द चयन में उन शब्दोंको प्राथमिकता मिलनी चाहिए जो मधुर और सौष्ठव पूर्ण हों। ऊपर हमने Concave और Convex के लिए 'नतोदर' और 'उन्नतोदर' का उल्लेख किया। सार्थक और सरल होने के साथ ये कर्ण कटु भी नहीं। लेकिन इनकी अपेक्षा 'न्युब्ज' और 'अदुब्ज' कैसे रहेंगे?

—शायद हमारे यह प्रकट करने की आवश्यकता नहीं कि ये कठिन होते हुए, उच्चारण में भी क्लिष्ट हैं।

इसी के साथ, यह भी प्रकट कर देना उचित होगा कि आज के संसार में संक्षेप भी सौंदर्य का अंश माना जाता है। अतः पारिभाषिक शब्दों का संक्षिप्त कलेवर उनकी प्रियता को बढ़ाएगा। निस्सन्देह हमने स्वयं यह नियम प्रतिपादित किया है कि शब्दों में यथासंभव वैज्ञानिक पदार्थ, क्रियादि की परिभाषा होना चाहिए। पर केवल सांकेतिक परिभाषा। शब्द के स्थान पर वाक्य खण्ड का प्रयोग कभी भी व्यवहारिक नहीं बन सकता। Crator के लिए एक स्थान पर प्रयुक्त किए गए पर्यायी 'चन्द्रपृष्ठस्य गुफा' का हम इसी आधार पर विरोध करते हैं। यहाँ हम एक दो और उदाहरण देंगे जो एक प्रकाशित शब्दावली में प्रकट हुए :—

| | |
|---|---|
| Focus | एकीभवन स्थान |
| Latus Rectum | नाभिगद्विगुणकोटी |

अधिक न कहते हुए, हम इस नियम को यहीं छोड़कर आगे चलते हैं, क्योंकि एक विवादस्पद समस्या हमारी प्रतीक्षा कर रही है।

## अंग्रेजी शब्दों का स्थान :—

अंग्रेजी के सभी, अथवा कम से कम कुछ विशेष शब्दों को अपना कह कर ही, हिन्दी शब्दावली में स्वीकार कर लेना चाहिए, इसके समर्थन में तीन कारण पेश किए जाते हैं :—

(१) अंग्रेजी शब्दों का अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व,

(२) अंग्रेजी शब्दों का साधारण बोलचाल की भाषा में समावेश,

(३) विदेशी शब्दों के प्रति उदारता; तथा इस प्रकार हिन्दी को अधिक अलंकृत करना।

अंग्रेजी शब्दों की उपयोगिता जाँचने के लिए हमें इन तीनों कारणों का महत्त्व आँकना होगा।

विज्ञान की प्रगति ने संसार की ही नहीं, अपितु विश्व की भी सीमाएँ, परस्पर कुछ सटा सी दी हैं। अतएव हमारे प्रत्येक व्यापार का क्षेत्र विस्तृत हो गया है। आज वर्ग विशेष, वर्ण विशेष, प्रदेश विशेष और जाति विशेष के हितों अथवा उन्नति का ही ध्यान रखना संकुचित-हृदयता माना जाता है, जहाँ कि प्राचीन काल में अथवा मध्यकालीन युग में इन्हें देशभक्ति और जाति प्रेम माना जाता था। विशेष कर विद्या और विज्ञान की सीमाएँ देशों और राष्ट्रों की राजनीतिक सीमाओं को लांघ चुकी हैं। अतः ज्ञान विज्ञान की सार्वदेशिक प्रगति से परिचित होना अत्यन्त आवश्यक है।

वैज्ञानिक प्रगति से परिचित रहने के लिए, और वैज्ञानिक धारणाओं के अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय के लिए उस भाषा का ज्ञान होना आवश्यक है जिसमें यह आदान प्रदान होता है। परन्तु ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा का अभी जन्म नहीं हुआ। भारत के कुछ विद्वान् भले ही अंग्रेजी को, वैज्ञानिक विचार विनिमय की अन्तर्राष्ट्रीय भाषा माने,

पर अन्य देश अंग्रेजी को मान्यता देने को तैयार नहीं।

हाल ही के संसार युद्ध के बाद, संसार का राजनैतिक चित्र ही नहीं बदला, औद्योगिक, उत्पादन सम्बन्धी, शिक्षा-प्रचार, स्वास्थ्य और बल-वैभव, सबके वितरण का पुनरायोजन हुआ है। विशेष तौर पर युरोप के अनेक प्रगतिशील और उन्नत देश अपना महत्व खो बैठे हैं। युद्ध से पूर्व जर्मनी और उसके आस-पास के देश वैज्ञानिक अनुसन्धान में बढ़े चढ़े थे। आज भी अमेरिका के प्रमुख वैज्ञानिक मूलतः इन्हीं प्रदेशों से सम्बन्ध रखते हैं। इसके अतिरिक्त फ्रांस की भी, वैज्ञानिक क्षेत्र में, अपनी ही स्थिति थी, और जापान भी इस ओर सराहनीय प्रयास कर रहा था। अतएव युद्ध पूर्व काल में, विविध भाषाओं—कम से कम जर्मन और फ्रैंच का ज्ञान, वैज्ञानिक अनुसन्धान के लिए आवश्यक समझा जाता था। आज इस बदली हुई परिस्थति में, अमेरिका और इंगलैंड ही वैज्ञानिक प्रगति के अग्रसर हैं। पर जिस प्रकार जर्मनी अपने पद से स्थानान्तरित कर दिया गया, उसी प्रकार हो सकता है कल को अमेरिका को भी अपने वैभव के उच्च आसन से किसी निम्नतर तल पर अवतरण करना पड़े।

इस चंचल संसार में कोई भी देश, अमरत्व का वरदान लेकर नहीं आया। अतः किसी एक देश की भाषा अन्तर्राष्ट्रीय भाषा नहीं बन सकती। हाँ, यदि सभी देश मिलकर कोई नई अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक भाषा—एस्पेरान्तो की भांति—गढ़ने लगे, तो दूसरी बात है।

यह तो है तार्किक विश्लेषण। पर वस्तुस्थिति भी इससे भिन्न नहीं। आज की बदली हुई परिस्थिति में भी फ्रान्स, जर्मनी, रूस, हालैण्ड आदि, अंग्रेजी शब्दावली को 'अन्तर्राष्ट्रीय' मनाने को तैयार नहीं, और विज्ञान के विवेचन का माध्यम अपनी ही भाषा को बनाए हुए हैं। साधारण प्रयोग में आने वाले शब्दों, यथा कार्बन, सोडियम, सल्फ़र, नाइट्रोजन आदि को भी जर्मन भाषा में स्वदेशी नाम मिले हैं, क्रमशः कोहलेनस्टाफ्फ, नात्रियम, श्वेफल और स्टिक्कस्टाफ्फ। इसी प्रकार फ्रैंच में Engine को Moteur, टेलीफोन के Receiver को Recepteur, Loud speaker को Haut Parleur और Lens को Lentitte कहा जाता है।

फिर भी हमें यह मानने से इन्कार नहीं कि मध्य यूरोप, इंगलैंड और अमेरिका में कुछ शब्द समान रूप से, अथवा मिलते जुलते शब्द प्रयुक्त होते हैं, यथा Atom, Molecule, Radio इत्यादि। पर यह प्रयोग उस भावना से नहीं होता, जिस भावना से हमारे कुछ आचार्य समझते हैं। इनका प्रयोग एक प्राकृतिक तथ्य के कारण है—यूरोपियन भाषाओं का समान स्रोत, लेटिन और ग्रीक भाषाएँ। केवल इसी कारण संयोग वश, कुछ समान या मिलते-जुलते शब्दों का यूरोप के देशों में प्रयोग होता है। पर इस प्रयोग की तह में शब्दों का अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व कदाचित् नहीं। इसे सिद्ध करने के लिए हमें केवल इतना कहना पड़ेगा कि इन समान शब्दों के व्याकरणीय रूप अंग्रेजी, फ्रैंच और जर्मन आदि में भी भिन्न-भिन्न हैं।

शब्दों की यह समानता केवल विज्ञान और अन्य विशिष्ट ज्ञानों तक ही सीमित नहीं। यूरोप की भाषाओं के समान स्रोत के कारण, साधारण व्यवहार के अनेक शब्द भी परस्पर मिलते से हैं। फ्रैंच का ही उदाहरण लीजिए। Paper और River को papier और Riviere कहा जाता है। पर इस समानता के कारण, क्या हम इन शब्दों को भी अन्तर्राष्ट्रीय मान लें?

जहाँ तक विशेषज्ञ—अनुसन्धान का सम्बन्ध है, हम स्वीकार करते हैं कि विशेषज्ञों को अंग्रेज़ी से परिचित होना पड़ेगा। परन्तु अंग्रेजी से "ही" नहीं, अंग्रेज़ी से "भी"। क्योंकि आज के विज्ञान की भी एक बहुत बड़े अंश की रूप रेखा का आलेखन और पृष्ठभूमि की तैय्यारी, जर्मनी और और फ्रांस में हुई थी। वृक्ष के फल चखने के लिए, उसकी जड़ों को उपेक्षित नहीं किया जा सकता। अनेक महत्वपूर्ण धारणाओं, यथा Theory of Relativity, quantum Theory, Uncertainty principle इत्यादि का पूरा ज्ञान, जर्मन भाषा जाने बिना न हो सकेगा। अतएव निकट अतीत के विज्ञान में पारंगत होने के लिए जर्मन भाषा का ज्ञान भी आवश्यक है।

भारत के अनेक वैज्ञानिक जिनमें डा० मेघनाद साहा, डा० एस० एन० बोस, डा० डी० एम० बोस आदि विख्यात हैं, अपने अनेक निबन्ध भी जर्मन भाषा में छपवा चुके हैं।

रूस आज सर्वांगीय प्रगति कर रहा है। कल को शायद यह विज्ञान के क्षेत्र में, अमेरिका से भी बाजी ले जाय। ऐसी दशा में विशेषज्ञों को रशियन भी सीखनी पड़ेगी।

तात्पर्य्य यह कि वैज्ञानिक अनुसन्धान के दौरान में, विभिन्न देशों की प्रगति जानने के लिए, केवल अंग्रेजी ही नहीं, जर्मन, फ्रैंच, रशियन आदि अनेक भाषाओं का ज्ञान आवश्यक है। अंग्रेजी शायद इनमें प्रमुख अवश्य है। केवल इसी कारण हम इसकी शब्दावली को बनाए नहीं रख सकते। कुछ दर्जन, या कुछ सौ विशेषज्ञों की सुविधा के लिए, सारी जनता की सुविधा को उपेक्षित नहीं किया जा सकता।

एशिया की प्रमुख भाषाओं का स्रोत, संस्कृत भाषा है। अतएव, एशियाई देशों का नेतृत्व करने के अभिलाषी भारत को, एशिया भर के लिए, संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग प्रचारित करना चाहिए, न कि स्वयं भी लेटिन और ग्रीक के शब्दों को अंगीकार करना।

अंग्रेजी के सामान्य व्यवहार में आए हुए शब्दों को स्वीकार कर लेने का सुझाव इससे भी अधिक शिथिल है। ये अंग्रेजी शब्द अपने गुणों के कारण, अथवा राष्ट्र की आन्तरिक अभिलाषा के कारण, हमारे बोलचाल की भाषा में प्रवेश नहीं पा गए, अपितु केवल इसीलिए कि हमारे सिर पर एक विदेशी सत्ता अवस्थित थी।

आज देश स्वतंत्र है। परन्तु फिर भी कल की गुलामी के कुछ चिह्न उस पर शेष हैं। राष्ट्र का आज का रूप भी उसका मौलिक रूप नहीं। बन्धनहीन होकर वह अपने मौलिक रूप की ओर अग्रसर अवश्य है। अतएव यह जानने के लिए कि उसका मौलिक रूप क्या है, हमें राष्ट्र की प्रवृत्तियों की ओर ध्यान देना चाहिए, न कि उसके तात्कालिक रूप की ओर। मैसूर स्थित टेलीफोन बनाने के स्थान का नाम "दूरवाणी-नगर" रखकर राष्ट्र ने सिद्ध किया है कि वह "टेलीफोन" शब्द का उपासक नहीं।

राष्ट्र की इसी प्रवृति की अभिव्यक्ति, मैसूर रेडियो संस्थान के नाम "आकाशवाणी" से स्पष्ट होती है—

और ये दो उदाहरण उस दक्षिण भारत के हैं जिसके अधिकांश विद्वान् अंग्रेजी शब्दों को बनाए रखना चाहते हैं।

प्रयोग के क्षेत्र में समस्या और भी विषम बन जाती है। एक ग्रामीण से लेकर, एक शिक्षित नागरिक तक, सभी "रेडियो" शब्द का प्रयोग करते हैं। उन्हें इस बात से कोई सरोकार नहीं कि जिस पदार्थ को वे "रेडियो" का नाम देते हैं, उसका यह नाम क्योंकर पड़ा। वे तो रेडियो से एक ऐसे यन्त्र का अभिप्राय लेते हैं जो दूर-दूर के समाचार और संगीत सुनाता है।

उन्हें यह ज्ञात नहीं कि जिसे वे रेडियो कहते हैं उसका पूरा नाम Radio Receiver है; और उसके नाम का कारण यह है कि वह बेतार—रश्मियों को ग्रहण करता है।

कहना न होगा कि Radio प्रत्यय का निर्माण लेटिन की धातु Radiare पर आधारित है जिसका अर्थ है—to radiate अर्थात् रश्मिरूपेण फैलाना।

Radio यदि एक प्रचलित शब्द है तो इसका अर्थ भी एक प्रचलित धारणा है। और दुर्भाग्य से यह धारणा भ्रान्त है। अणु—विज्ञान से परिचित पाठक Radioactive पदार्थ का आशय जानते होंगे। इस पदार्थ से Radiations अर्थात् रश्मियाँ निकलती हैं। पर 'रेडियो' के भ्रान्त प्रचलित अर्थ को सामने रख कर, एक शब्द कोश के संकलन कर्त्ता ने इस शब्द का अनुवाद किया, "रेडियो का प्रभाव डालने वाला!"—एक नितान्त अशुद्ध और भ्रान्त अनुवाद !!

पर यदि हम रेडियो शब्द को अपनालेंगे तो ऐसे भ्रांत अनुवाद होते ही रहेंगे। क्योंकि विभिन्न प्रकार की रश्मियों के संबन्ध में Radiology, Radiometer Radioactivity, Radiograph, Radiomicrometer, Radiovision, Radiophony आदि अनेक शब्द विज्ञान में प्रयुक्त होते हैं। इनका अनुवाद रेडियो-विद्या, रेडियो मापक, रेडियो सक्रियता आदि करेंगे तो सब जगह अर्थ का अनर्थ होगा

चला जायगा।

इस प्रकार के शब्द संतान—अर्थात् एक ही मूल प्रत्यय से युक्त शब्द अन्यत्र भी प्रयुक्त होते हैं। यथा Tele—प्रत्यय का अर्थ है "दूर"। इसके प्रयोग से, दूरी संबद्ध पदार्थों और क्रियाओं को Telegram, Telegraph, Telekinesis, Telemeter, Telepathy, Telephone, Telephotograph, Telescope, Telespectroscope Telethermograph इत्यादि शब्दों से व्यक्त किया जाता है। अतएव यदि 'टेलीफोन' शब्द को, इस कारण अपना लिया जाय कि यह "प्रचलित" शब्द है तो कोई कारण नहीं कि 'टेलीस्कोप' को 'दूरदर्शक' से स्थानान्तरित कर दिया जाय, तथा शेष शब्द-शृंखला के अनुवाद का क्लिष्ट भार कंधों पर उठाया जाय।

फिर "प्रचलित-शब्द" का अर्थ नितान्त अस्पष्ट है। साधारण मनुष्य के लिए रेडियो, टेलीफोन, मेशीन आदि प्रचलित शब्द हैं। अँग्रेजी से अनभिज्ञ एक मिस्त्री के लिए मोटर, आर्मेचर, वाइंडिंग, वायरिंग, टर्मिनल, कार्बन, काम्यूटेटर, स्पार्क प्लग, लूब्रीकैंट आदि शब्द भी प्रचलित हैं। क्या इन्हें भी हिन्दी शब्दावली में सम्मिलित कर लिया जाय? ऐसा करने से तो हिन्दी एक वर्ण-संकर सी भाषा बन जायगी......।

तीसरा मन्तव्य कुछ महत्त्व का अवश्य है। विदेशी विचारों, धारणाओं, साहित्य और कला आदि के अध्ययन से, किसी भी राष्ट्र के विचारों, धारणाओं और कला आदि को उन्नति मिलती है। तथाच, राष्ट्र का दृष्टिकोण भी विशाल होता है। पर इस आधार पर भी, कुछ एक शब्दों को अंगीकार करने का उचित अवसर अभी दूर है। यदि हिन्दी ने अपनी वर्तमान, अपरिपक्व अवस्था में अंग्रेजी शब्दों को अपनाना शुरु कर दिया तो भय है कि कहीं प्रबल अंग्रेजी शब्दावली, अबल हिन्दी भाषा पर छा ही न जाय।

अंग्रेजी के प्रति हमारे ये विचार शायद अतिगत (Extremist) से प्रतीत हों। पर विश्वास रखिए, ये विचार हमने किसी भावुकता से प्रेरित होकर आपके सामने नहीं रखे। अतएव यदि कुछ अंग्रेजी शब्दों के समावेश से हमारे राष्ट्र के गौरव और भाषा की रूपरेखा पर कठोर आघात नहीं होता तो उनके प्रतिकूल हमारा कोई दावा नहीं। उदाहरणार्थ, अनेक वैज्ञानिक धारणाओं और परिभाषाओं में, इकाइयों और सिद्धान्तों के साथ, विदेशियों के नाम जुड़े हैं। हम उन्हें स्थानान्तरित करने की प्रस्तावना नहीं कर सकते। हम Avagadro's law का अनुवाद 'व्यूहाणु संख्या नियम' नहीं करना चाहते। Beckmam's Thermometer, Pythagoras Theorem, Bunsen Burner और Leclanche cell में से हम उनके आविष्कर्ताओं के नाम को निकाल कर, उनका अनुवाद इस प्रकार नहीं करना चाहते—'अतिसूक्ष्म तापमान'—'चिति प्रमेय'—'पिनाल दाहक'—'प्येकबिन्दुपञ्चकोशा' !! कारण? यदि 'रमन-प्रभाव' को अंग्रेज 'Special scattering Effect' कहें—या जर्मन वाले 'स्मेकल-प्रभाव' कहें (जैसा कि वे कहते भी हैं) तो भारतियों को कैसा लगे? हाँ, यदि हम यह सिद्ध कर सकें कि भारत के किसी प्राचीन विद्वान् ने Pythagoras से पूर्व उक्त नियम प्रपादित किया तो हम भारतीय आविष्कर्ता के नाम को मान्यता देने का सर्वथा समर्थन करेंगे।

## कुछ प्रचलित हिन्दी शब्द

ऐसे भारतीय आविष्कर्ता ढूँढ़ निकालना कठिन नहीं, जिन्होंने अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन युरोपियन विद्वानों से पूर्व किया हो। प्राचीन भारत की वैज्ञानिक, और अन्य ज्ञानों के संबन्ध में, प्रगतियों का इतिहास, बहुत विशाल है। और साथ ही साथ इन विज्ञानों की विवेचना में प्रयुक्त होनी वाली एक विशिष्ट शब्दावली भी इसी इतिहास में निहित है। प्राचीन काल में सम्बद्ध क्रियाओं के स्पष्टीकरण में इन शब्दों का प्रायक प्रयोग हो चुका है, जिससे ये मँजे हुए से शब्द बन गये हैं। ऐसे कुछ शब्दों को हम नीचे उद्धृत करते हैं:—

| | |
|---|---|
| Pressure | नोदन |
| Impact | अभिघात |
| Capillarity | अभिसर्पण |
| Vertical Motion | संसूर्च्छन |

| | |
|---|---|
| | गति-कला |
| Harmonics | अनुरणन |
| Series | सन्तान |
| Fundamental No. te | श्रुति |
| Concord | सम्वादित्व |

प्राचीन भारत की समृद्धि की याद दिलाने वाले हमारे पूर्वज वैज्ञानिकों—श्रीधर, प्रशस्तपद, उदयन आदि-द्वारा प्रयुक्त शब्द हमारी नई शब्दावलियों में स्थान पाने का उचित अधिकार रखते हैं। हाँ, हमें यह अवश्य देखना होगा कि वैज्ञानिक धारणाओं के आधुनिक चित्र में, वे ठीक तौर से सजते भी हैं अथवा नहीं।

हमारे विचार में अनेक शब्द इस परीक्षण में उत्तीर्ण होंगे। उद्धृत शब्दों से प्रकट होगा कि ये शब्द सरल, सार्थक भी हैं। अतएव इनके 'अधिकार' का अवश्य ख्याल रखना चाहिए।

जैसा हमने प्रारम्भ में संकेत किया, इस शताब्दी के प्रारम्भ में भी, हिन्दी में विज्ञान-लेखन का एक क्रम प्रारम्भ हुआ। इन प्रयासों में भी—गुरुकुल आदि के पठन-पाठन में तथा विज्ञान परिषद् के प्रकाशनों में—कुछ पर्यायी प्रयुक्त हो चुके हैं। वैज्ञानिक हिन्दी के संक्षिप्त इतिहास में भी अनेक शब्दों को प्रमाणिकता सी मिल गई है, यथा :—

| | |
|---|---|
| Hydrogen | उदजन |
| Oxygen | ओषजन, अम्लजन |
| Nitrogen | नौषजन, नत्रजन। |

इन शब्दों को अपनाने में भी हमें संकोच नहीं होना चाहिए। इन शब्दों का प्रयोग, निस्सन्देह अल्पकालिक है और इस कारण यदि इनमें कोई दोष हो तो उन्हें स्थानान्तरित करना कठिन न होगा, प्रत्युत वांछनीय होगा। उदाहरणार्थ उदजन के स्थान पर नीरजन क्या अधिक सरल और सुन्दर नहीं? तथाच, हमें यह देखना होगा कि सार्थकता, सरलता और समौचित्य में, आक्सिजन का उचित पर्य्यायी ओषजन है, अम्लजन, अथवा आचार्य रघुवीर का नया पर्यायी—जारक?

इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे प्रचलित शब्द हैं, जो अपने गुणों के कारण प्रमाणित से बन गए हैं। उदाहरणार्थ, Electron को व्यक्त करने के लिए प्रायः प्रत्येक हिन्दी लेखक "ऋणाणु" (या ऋणानु?) शब्द का प्रयोग करता है। और शायद यह अत्यन्त उचित शब्द है। इसके स्थान पर "विद्युदणु" का प्रयोग करके, हम वैज्ञानिक हिन्दी के संक्षिप्त से इतिहास की भी इतिश्री नहीं करना चाहते!

## संकलन-कर्त्ताओं का दृष्टिकोण

जैसा हम पूर्व भी कह चुके हैं, संकलन कर्त्ता, प्रायः सभी, एक ही ध्येय से कार्य कर रहे हैं—'राष्ट्रसेवा'। परन्तु ऐसे कार्यों में कभी-कभी परस्पर होड़ भी हो जाती है। वास्तव में वही उचित अवसर होता है आत्मिक गुण प्रकट करने का। परस्पर वैमनस्य को दृष्टि में न लाते हुए, केवल उसी पथ का अवलम्बन करना जिससे राष्ट्र का अधिकाधिक भला हो, अत्यन्त वांछित है।

हो सकता है किसी केन्द्र पर कोई विद्वान् समस्त विज्ञानों और विद्याओं की शब्दावलियों का संकलन कर रहा हो। हो सकता है, उसे कुछ विषय-विशेषज्ञों की सहायता प्राप्त हो। पर यह प्रायः असम्भव है कि प्रत्येक विषय का विशेषज्ञ उसके काम में हाथ बँटा रहा हो। अतः क्या उसके लिए उचित है कि वह प्रत्येक विषय की शब्दावली का साधिकार अनुवाद करे?

पुनश्च, जैसा हम पूर्व भी संकेत कर चुके हैं, मानव होने के नाते, किसी का भी बौद्धिक विकास पूर्ण नहीं हो सकता। अतएव हो सकता है कि जिस शब्द को हमने आज निर्धारित किया है, कल कोई अन्य महानुभाव उससे अच्छा पर्यायी ढूँढ़ निकाले। उस स्थिति में क्या इस नये शब्द को मान्यता देना उचित नहीं?

यदि यह उद्दण्डता में गण्य न हो तो हम अपना ही उदाहरण देने की धृष्टता करते हैं। Atom Bomb तथा Atomic Physics पर साधारण जनोपयोगी लेख लिखते समय हमें Nucleus के अनुवाद की आवश्यकता अनुभव हुई। प्रारंभ में हमने इसे "धुरीकण" लिखा जैसा कि हमने एक हिन्दी प्रवचन में पढ़ा था। पर बाद में Nucleons शब्द के पर्यायी की जरूरत पड़ी। अतएव न्यूक्लियस के लिए पूर्व प्रयुक्त शब्द का त्याग करके हमें इसे "नाभिक" द्वारा प्रकट करना पड़ा। न्यूक्लिऑन्ज के लिए निश्चित किया गया "नाभिकण"।

इस समय तो हमें ये दोनों शब्द अत्यन्त उपयुक्त प्रतीत होते हैं। पर कल को किसी अन्य के सुझाव को मान्यता देने से हमें इन्कार न होगा, इस शर्त पर कि वह वास्तव में ही मान्यता के योग्य हो।

इसी प्रकार एक लेखक का अनुकरण करते हुए हमने Helium को "हिमजन" लिखा। पर प्रकरण का आशय इस शब्द से व्यक्त नहीं होता, क्योंकि हिलयम् शब्द Helio (सूर्य) से उद्धृत है। अतएव इसके लिए "हैमजन" का प्रयोग किया गया, क्योंकि कुछ स्थलों पर "हैमम्" सूर्य के लिए प्रयुक्त हो चुका है।

पर नागरी प्रचारणी सभा की एक पुरानी शब्दावली के परीक्षण के अनन्तर "हेलिम" शब्द से भेंट हुई जिसका आधार है "हेलि"। संस्कृत में यह शब्द भी सूर्य के लिए प्रयुक्त होता है। पर समरूपता से यह शब्द अपनी उपयोगिता को स्वयं प्रकट करता है। अतएव हमें पूर्व दोनों शब्द त्यागने में शोक नहीं।

और शोक भी कैसा? दोषित भावना की मुक्ति तो सदैव वांछनीय है!

इस प्रकार यदि उदारता, सद्भावना और सद्हृदयता से हम अपने दोषों को इसलिए त्यागने से संकोच न करें कि उनका निष्कास राष्ट्र की भलाई का कारण बनेगा, तो निश्चय ही हमारा दृष्टिकोण सराहनीय है।

हो सकता है आज हमारी सत्ता के कारण, हमारी मान्यता अधिक हो, और उसी के बूते हम अपनी दोषित शब्दावली को भी स्वीकृति दिलवा दें। पर इसके कारण भविष्य में राष्ट्र को जो झंझट झेलने पड़ेंगे, उनके कारण हम राष्ट्र की आत्मा से शुभ कामना की अभिलाषा नहीं रख सकते।

## कार्य का केन्द्रीकरण

व्यक्तिगत रूप से काम करने वालों का दृष्टिकोण क्या होना चाहिए इसके विषय में हमने बहुत कुछ लिख डाला। पर हम भी तो अनुभव करते हैं कि महत्त्वाकांक्षा मानवीय जीवन का एक आकर्षण है। इससे आकृष्ट होकर मानव कभी-कभी पथ से विचलित भी हो सकता है।

आज का प्रजातंत्रवाद व्यक्ति की इस प्रवृति पर एक सफल अंकुश है। इसीलिए तो प्रत्येक योजना के निरीक्षण, विवाद ग्रस्त मामलों के सुलझाने तथा अन्य इसी प्रकार के कामों में एक से अधिक व्यक्तियों का शिष्ट मंडल नियुक्त होता है। एकाधिकार में व्यक्ति द्वारा अनर्थ हो सकता है—एक से अधिक व्यक्तियों द्वारा प्रपादित हुए काम में इसकी संभावना कम है।

अतएव, क्या यह उचित नहीं कि हिन्दी की शब्दावली के कार्य को भी एक केंद्रिय संस्था नियंत्रण में रखे? ऐसा करने से हमारी शब्दावली बहुत परिष्कृत हो सकती है।

केवल शब्दों को निश्चित करने में ही नहीं, शब्दावली के उचित प्रयोग के लिए भी केंद्रीय संस्था अभीष्ट है।

आज युवक भारत प्रगतिशीलता का भक्त है। जहाँ तक साहित्य का सम्बन्ध है, वह इसकी प्रत्येक शाखा को समुद्धत्त बनाने में प्रयत्नशील है। हिन्दी की पत्रिकाओं में आज केवल कविताएँ और कथा-कहानियाँ ही नहीं, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, विज्ञान, रसायन और नक्षत्रविद्या पर भी लेखन कार्य हो रहा है। स्वातन्त्र्य के आवेश में पारिभाषिक शब्द भी हिन्दी में प्रयुक्त करने की चेष्टा की जाती है। पर जब किसी निश्चित स्रोत से वांछित शब्द नहीं मिलते तो लेखक अपने ही अल्हड़ प्रयास करने लगते हैं, जो स्वच्छन्द होने से उच्छृंखल होते हैं। उदाहरणार्थ, "परमाणु" शब्द से Atom, Molecule, Electron तथा Proton का आशय लिया जा चुका है। तद्विपरीत एक ही अंग्रेजी शब्द द्वारा एकाधिक हिन्दी शब्दों की अभिव्यक्ति के भी अनेक उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं। इस प्रकार की चेष्टाएँ, शब्दावली के भारतीयकरण के प्रयासों को शिथिल ही करती हैं। दो भिन्न लेखकों के लेख पढ़कर और विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त समान शब्दों को पढ़कर, क्या पाठक भ्रान्ति में न पड़ जायँगे?

यदा कदा प्रकट होने वाले ये लेख ही नहीं, आज तो हिन्दी के कर्मठों के अपने ही कहने पर, अनेक विश्वविद्यालयों ने भी हिन्दी को विज्ञान-शिक्षा का माध्यम बना लिया है। अवसरवादी लेखकों ने पुस्तकें लिखना भी प्रारम्भ कर दिया है। उनके ये आयोजन प्रायः दोष पूर्ण हैं—पर क्या कोई व्यक्ति उनकी चेष्टा को रोक सकता है? यहाँ भी भिन्न-भिन्न लेखक भिन्न-भिन्न सूत्रों का प्रयोग करेंगे।

पुस्तकों के स्थायित्व की दृष्टि से ये प्रयास द्विगुणित अनर्थ-कर हैं।

विज्ञान के भारतीयकरण की इन, तथा इन जैसी ही अन्य शिथिलताओं से हम बच सकते हैं, यदि इन प्रयासों का नियन्त्रण कोई केंद्रीय संस्था करे—एक महायज्ञ-कुण्ड का आयोजन हो, जिसमें आहुति डालने के इच्छुक आहुति भी डाल सकें और यज्ञ का लाभ तथा प्रसाद पाने के अभिलाषी भी, किसी कठिनता के बिना ऐसा कर सकें।

वैषम्य तो मानवता का—बल्कि अखिल सृष्टि का-स्वभाव है। जब कभी कोई नई क्रिया या यन्त्र आविष्कृत होता है तो अंग्रेजी में भी भिन्न मति के लोग उसे भिन्न-भिन्न नाम देते हैं। सन् १९३७ में, अणु-क्षेत्र में एक नए कण का अन्वेषण हुआ। प्रारंभ में इसके अनेकों नाम रखे गए, X-Particle, Heavy Particle, Heavy Electron, Barytron, Yukon, Mesotron, तथा Meson ; कुछ वर्षों तक प्रायः ये सभी नाम प्रयुक्त होते रहे। पर आज प्रायः सर्वसम्मति से केवल अन्तिम नाम ही प्रयुक्त किया जाता है।

अतएव, यदि हिन्दी में भी, एक से अधिक व्यक्ति शब्दावली पर माथापच्ची कर रहे हैं, और भिन्न-भिन्न शब्द गढ़ रहे हैं, तो इससे विशेष हानि की आशंका नहीं-इससे तो, विविधता के कारण-शब्द चयन अधिक सुचारु रूप से किया जा सकेगा। पर प्रमाणयता देने वाली कोई संस्था भी तो हो जो अन्तिम निर्णय करे!

इस संस्था से आशा की जायगी कि यह न केवल हिन्दी वालों, बल्कि अन्य प्रान्तों की भाषाओं में शब्दावली संकलन करनेवाले सभी महानुभावों से सम्पर्क स्थापित करे। इस संबन्ध में हम प्रकट कर दें कि जब, इस शताब्दि के प्रारंभ में, नागरी प्रचारणी सभा, वैज्ञानिक विषयों पर शब्द-चयन कर रही थी, तो कुछ बंगाली तथा गुजराती विद्वानों के कामों से विशेष सहायता मिली थी। हिन्दी में तो सर्व प्रथम प्रकाशित होने वाली वैज्ञानिक पुस्तकों में से कई बंगला का अनुवाद मात्र थीं।

अन्यथा भी, शब्दावली को सार्वभारतीय मान्यता दिलवाने के लिए हमें प्रादेशिक भाषा के विद्वानों का सहयोग, समर्थन और सहानुभूति प्राप्त करनी होगी।

इस प्रकार केन्द्रीय संस्था, शब्दावली निर्माण के नियन्त्रण के लिए अनिवार्य सी है और जितनी शीघ्रता से यह केन्द्रीय संस्था स्थापित होगी, उतना ही हिन्दी के लिए हितकर होगा।

विज्ञान की शब्दावली के कार्य में संलग्न प्रायः सभी मुख्य कार्यकर्त्ता इस केन्द्रीय संस्था से अनुशासित होंगे, ऐसी हमारी आशा है। वार्तालाप के दौरान इस विषय के एक अग्रणी ने एक बार प्रगट अवश्य किया था कि "क्या हिन्दी वाले भी कभी इकट्ठे मिल कर बैठ सकते हैं?"—पर हम आशा करते हैं, कि हिन्दी के विद्वान्, इस आचार्य की बात को झूठा सिद्ध कर देंगे (?)···क्योंकि राष्ट्र का भला इसी से होगा।

हमने शब्दावली के संबन्ध में अपने विचार रखे अवश्य; पर हम नहीं जानते कि ये कहाँ तक उचित हैं, और इन्हें कहाँ तक मान्यता मिलेगी। हो सकता है, हमारा कोई दृष्टिकोण दूषित हो, जैसा कि हमने स्वयं दूसरों के विचारों को समझा है। अतएव, यदि हमारे किसी विचार का आलोचनात्मक विरोध हो तो वह भी हमें सधन्यवाद ग्राह्य होगा।

इस प्रकार के दोषों का परीक्षण करने के लिए यदि सब विद्वान् मिलकर बैठ सकें, तो हम अपने काम को पूर्णतया परिष्कृत कर सकेंगे।

इसके स्थान पर पत्र-पत्रिकाओं में एक अन्य के व्यक्तित्व पर आक्षेप और अवांछित आरोप लगाना, (जैसा कि कुछ स्थलों पर देखा गया है) निस्सन्देह निन्दनीय है।

हम स्वयं मानते हैं कि शब्दावली निर्माण का कार्य अत्यन्त दुरूह है। परस्पर सूक्ष्मभेद वाली क्रियाओं, धारणाओं आदि को भिन्न-भिन्न शब्दों द्वारा व्यक्त करना, वह भी ज्ञान विज्ञान के दर्जनों विषयों की अभिव्यक्ति के लिए,—और फिर इन शब्दों को सार्थक, सुन्दर, सरल, संक्षिप्त और समरूपक बनाना, कोई आसान काम नहीं। अतएव कहीं-कहीं नियम भंग भी हो सकता है। ऐसी दशा में, एक-एक शब्द को लेकर उस पर टीका-टिप्पणी करना शायद उचित नहीं।

हाँ, मूलभूत धारणाओं को समान रूप से निर्धारित किया जा सकता है—और यह है भी आवश्यक। इसके

लिए ही हमने केंद्रीयसंस्था की प्रस्तावना की। यह संस्था, चाहे एक ही केन्द्र में कार्य के सम्पादन की व्यवस्था करे, अथवा भिन्न-भिन्न विषय विशेषज्ञों पर इस काम का भार सौंपे—दोनों दशाओं में धन, श्रम और समय की बहुत बचत होगी। और साथ ही साथ काम भी सुचारु रूप से होगा।

सुचारु रूप से होने के साथ-साथ हमारा काम कुछ शीघ्रता से भी होना चाहिए। हमें इस धारणा को अधिक महत्त्व नहीं देना चाहिए कि हम उस शब्दावली का अनुवाद कर रहे हैं, जिसको बनते सैंकड़ों वर्ष लगे, क्योंकि इंगलैंड के वैज्ञानिक सैंकड़ों वर्षों में केवल विज्ञान की शब्दावलियाँ ही नहीं बनाते रहे। यदि सुव्यवस्था से किया जाय तो हमारा कार्य एक दो वर्षों में ही पूर्णतया सम्पन्न हो सकता है।

इसके लिए हमें उस अव्यवस्था की ओर अवश्य ध्यान देना पड़ेगा जिसकी ओर हमने इस लेख में संकेत किया है।

---

# कांच बनाने के पदार्थ

लेखक—बालकृष्ण अग्रवाल बी० एस-सी०, बी० एस-सी० (टेक ग्लास)

काँच का सामान हम लोग प्राचीन काल से प्रयोग करते आ रहे हैं। इसके बहुत से उदाहरण मिलते हैं—प्रकृति में तरह तरह के पत्थर पाये जाते हैं। उसमें एक को (obsidian) ओब्सिडियन कहते हैं। उसका रंग अधिकतर काला होता है लेकिन कभी कभी लाल, हरा रंग का भी पाया जाता है। वास्तव में वह एक तरह का काँच होता है और इतना कड़ा होता है कि पुराने समय में लोग उसके हथियार, जैसे—चाकू, भाले, कुल्हाड़े, तीर आदि बनाते थे।

काँच का धंधा हमारे भारतवर्ष में प्राचीन काल से चला आ रहा है। लेकिन यह बताना कठिन है कि काँच पहले कहाँ और कैसे बनाया गया था। काँच सम्भवतः पहले (Asia Minor) ऐशिया माइनर में अचानक तरीके से बन गया। एक बार कुछ सौदागर, एक शोरे से लदा हुआ जहाज़ ले जा रहे थे। वह जहाज़ समुद्र के बीच दलदल में फँस गया। जब सौदागर खाना पकाने के लिये समुद्र के किनारे पर उतरे तो उन्होंने चूल्हा बनाने के वास्ते इधर उधर ईटों की तलाश की लेकिन उनको ईटें न मिलीं। उन्होंने ईटों के स्थान पर शोरे के ढेलों से अपना चूल्हा बनाया। जब वह खाना पका रहे थे तो उन्होंने चूल्हे में से पानी के समान पतला व चमकदार द्रव बहता देखा। इसको देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ और सोचा कि यह नई चीज़ शोरे, रेता और आग से ही मिलकर बनी होगी जिसको उन्होंने काँच कहा।

काँच के बनाने के वास्ते रेता, सोडा, और चूना यह तीन पदार्थ प्रधानतः प्रयोग में लाए जाते हैं। इनको एक खास मिकदार में मिला कर भट्टी में गरम किया जाता है। इसके अतिरिक्त यदि कोई खास तरह का या रंगीन काँच बनाना होता है तो और दूसरे पदार्थों का मिलाना अत्यन्त आवश्यकीय है।

काँच बनाने के पदार्थ पाँच हिस्सों में बाटें जा सकते हैं।

(१) ऐसे पदार्थ जो कि काँच बनाने के लिये निहायत जरूरी हैं। जैसे-रेता, सोड़ा और चूना।

(२) ऐसे पदार्थ जो कि काँच के गलाने में मदद करते हैं। इसको (Fluxes) द्रावक कहते हैं। जैसे—सोडा, पोटाश, फेलस्पार, रेडलैंड, सोडा सलफ़ेट, बोरेक्स आदि।

(३) ऐसे पदार्थ जो काँच के ख़राब रंग को साफ़ करने में मदद करते हैं, जैसे मैंगनीज़ डाई—ऑक्साइड (Manganese Di—oxide), आरसिनिक (Arsenic)। इनको (Oxidising Agent) ऑक्सिडाइज़िंग एजेन्ट कहते हैं।

(४) ऐसे पदार्थ जो कि गलाते समय काँच में छोटे छोटे हवा के बुलबुले रह जाते हैं उनको साफ करने में मदद करते हैं। जैसे (Nitre) नाइटर यानी शोरा, (Ammonium Nirtate) अमोनियम नाइट्रेट।

इनको (Fining Agent) फाइनिंग एजेन्ट यानी स्वच्छकारक कहते हैं।

(५) ऐसे रसायन जो कि रंगीन काँच के बनाने के लिये ज़रूरी है जैसे (Cobalt oxide) कोबाल्ट ऑक्साइड से नीला, (Chromium oxide) क्रोमियम ऑक्साइड से हरा, (Uraniun oxide) यूरेनियम ऑक्साइड से पीला रंग इत्यादि।

आपको ऊपर बताई हुई बातों से मालूम हो गया होगा कि काँच के बनाने के लिये चीजें किस तरह बाँटी जा सकती हैं। काँच के बनाने के लिये रेत ख़ास वस्तु है। या प्रकृति में (sand-stone) सेन्डस्टोन, (Sand) रेता (Quartz) क्वार्ट्ज़, (Quarzite) क्वारजाइट की, शकल में पाया जाता है। ज्यादातर सफ़ेद रेत को ही काँच बनाने के काम में लाते हैं। क्योंकि वह दूसरी चीजों की तुलना में सरलता से मिल सकता है और दूसरे वह दानेदार होता है। अगर क्वार्ट्ज़ का प्रयोग करें तो उसको तोड़ने व पीसने के वास्ते कल का प्रयोग करना पड़ता है। वह इतना कड़ा होता है कि तोड़ते व पीसते समय मशीन का लोहा इसमें मिल जाता है। जो कि काँच के वास्ते अत्यन्त हानिप्रद है। लेकिन जहाँ पर अच्छा रेता नहीं पाया जाता है वहाँ पर क्वार्ट्ज़ को ही पीस कर इस्तेमाल करते हैं। उसे प्रयोग करने से पहले उसका लोहा चुम्बक वाली मशीन यानी (Magnetic Seperator) मेग्नेटिक सेपेरेटर से अलग करते हैं।

अब आप लोगों को बतायेंगे कि काँच में किस जाति के रेता का प्रयोग करना चाहिए। कदाचित आप लोगों का ख्याल है कि हर जाति के रेते से काँच तैय्यार किया जा सकता है। लेकिन ऐसा नहीं होता है। काँच के बनाने का रेता एक खास तरह का होता है। इसको प्रयोग करने से पहले यह देखना आवश्यक है कि रेता का रंग अच्छा है या बुरा। क्योंकि अधिकतर रेत में लोहा व अन्य हानिकारक चीज़ें मिली रहती हैं। यह हानिकारक चीजें ज्यादातर रेत को छानने व पानीसे धोने से अलग की जा सकती हैं। जिन देशों में अच्छा रेता नहीं पाया जाता है वहाँ पर ख़राब रेते को छानकर व पानी से धोकर अच्छा बना लेते हैं। क्योंकि ऐसा करने से लोहा व मट्टी इत्यादि निकल जाती हैं। इसलिए आप लोगों को चाहिए कि रेत को काम में लाने से पूर्व यह देखना अत्यन्त आवश्यक है—

(१) रेता अच्छा है या बुरा, यानी (Purity of sand) रेता की शुद्धता अवश्य देखना चाहिए।

(२) रेता का दाना किस प्रकार का है। गोला है या चपटा या नौकीला (Grading of sand) यानी रेत का महीनकरण।

रेत के अच्छे या बुरे का अर्थ यह है कि वास्तव में रेता कितना शुद्ध है या उसमें कितने हानिकारक पदार्थ मिले हुए हैं। रेत में सब से हानिकारक पदार्थ लोहे का अंश होता है।

यदि ज्यादा लोहे के अंश और खराब रेते को काँच के बनाने में प्रयोग किया जावेगा तो काँच साफ नहीं बनेगा बल्कि हरे रंग का काँच बनेगा। जिसको कि वैज्ञानिक मेंनगनीज़ डाइ ऑकसाइड व आर्सेनिक डालकर दूर करने की कोशिश करते हैं। इसलिए ऐसे रेता का प्रयोग करना चाहिए जिसमें लोहे का अंश बहुत ही कम हो।

रेत में लोहे के अतिरिक्त और भी हानिकारक पदार्थ मिले होते हैं। जैसे (Alumina) ऐल्यूमिना, (Calcium) कैलशियम, (Magnesium) मेगनीशियम, (Soda) सोडा इत्यादि। इन सब चीजों की मिकदार अधिकतर दो या तीन प्रतिशत से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। लेकिन वास्तव में यह कोई नुकसान देने वाली चीजें नहीं हैं. बल्कि वह काँच के बनाने के लिये आवश्यक हैं। अगर रेते के अन्दर लोहे का अंश ०.१ प्रतिशत या $\frac{१}{१०००}$ भाग से ज्यादा नहीं है तो लोहे के हरे रंग को मेंगनीज डाइ-ऑक्साइड से मिलाकर सरलता से साफ कर सकते हैं, लेकिन यदि लोहे का अंश ०. १ प्रतिशत से ज्यादा है तो मेंगनीज़ से साफ किया हुआ काँच की चमक कम हो जावेगी और काँच देखने में इतना साफ व चमकदार नहीं होगा जितना कि अच्छा रेता को प्रयोग करने से बनेगा। इसीलिए अच्छे और सुन्दर काँच बनाने के लिए अच्छे जाति का रेता ही प्रयोग करना चाहिये।

(Crystal) क्रिस्टल यानी मणिभ काँच, (Optical) काँच यानी प्रकाश सम्बन्धी काँच और चश्मे के लेन्स बनाने के लिये रेत में लोहे का अंश ०·०३

प्रतिशत से भी कम होना चाहिये। दरवाज़े वाले साफ़ शीशे व दर्पण इत्यादि में लोहे का अंश ०.०६ प्रतिशत से कम होना चाहिये।

प्रयोगशाला में इस्तेमाल करने वाले रासायनिक काँच में ०·१ प्रतिशत से ज्यादा लोहा न होना चाहिये। मामूली शीशियाँ, लानटेन की, चिमनी पानी पीने के गिलास व रंगीन शीशे में भी लोहे का अंश ०·३ प्रतिशत से ज्यादा न होना चाहिये।

काली शीशियों के बनाने में ख़राब रेत भी प्रयोग किया जा सकता है। उसमें लोहे का अंश दो या तीन प्रतिशत तक भी हो सकता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जिस किस्म का काँच बनाना हो उसी प्रकार का रेत काँच के बनाने में प्रयोग करना चाहिये।

(Grading of sand)

## रेत का ग्रेडिंग यानी रेत का महीन करण

काँच बनाने वाला रेता का दाना छोटा और समान होना चाहिये। ऐसा होने से काँच जल्दी गलेगा। यदि रेत का दाना बहुत बड़ा होगा तो वह गलने में कठिनाई पैदा करेगा यानी काँच देर में बनेगा। और अद्रवित रेत काँच में (Stones) यानी पत्थर पैदा कर देगा। जैसा आपने बहुधा काँच के गिलास व शीशियाँ वगैरह के अन्दर सफ़ेद चीज़ सी देखी होगी जिसका गलाना कठिन होता है। यदि दाना बहुत छोटा होगा तो वह काँच में (seed) सीड पैदा कर देगा और उसको साफ करना कठिन होगा। यह बहुधा (Tank Furnace) टैंक भट्टियों में दूसरे रसायन के साथ हवा में उड़ता है। इसके अतिरिक्त छोटे दाने वाले रेत में लोहे का अंश भी ज्यादा होता है क्योंकि रेत में लोहे का अंश अधिकतर महीन कणों में ही सीमित रहता है।

रेत का प्रयोग करने से पहले उसका छानना अत्यन्त आवश्यक है। रेत को २० नं० चलनी से छानना चाहिये। जो हिस्सा चलनी के ऊपर रह जावे उसे प्रयोग न करना चाहिये क्योंकि वह बहुत बड़ा होता है। इसके बाद रेत को १२० नं० की चलनी से निकालना चाहिये। जो हिस्सा १२० नं० की चलनी से निकल जावे उसे फेंक देना चाहिये। क्योंकि ऐसा अनुभव किया गया है कि उसमें मट्टी व काले रंग यानी लोहे का अंश अधिक होता है। इस विधि के अनुसार लोहे का अंश रेत में बहुत कम हो जाता है। और इस रेत का बना हुआ काँच कहीं अधिक चमकदार व सुन्दर होगा।

रेत पृथ्वी के सतह के भीतर या उसके धरातल में पाया जाता है। यह ढेले इतने मुलायम होते हैं कि वह हाथ से सरलता पूर्वक तोड़ लिये जाते हैं।

रेत भारतवर्ष के करीब-करीब हर प्रांत में पाया जाता है लेकिन प्रसिद्ध स्थान यह हैं।

सन्युक्त प्रान्त में :—

(१) लोघरा, बरगढ़, संकरगढ़, जसरा। यह स्थान इलाहाबाद व मानिकपुर रेलवे स्टेशन के बीच में हैं।

(२) बड़ौदा स्टेट

(३) मंदरास—इन्नौर व इन्नोनारे

(४) पंजाब—जैजों, अम्बाला

(५) सी०पी०—जबलपुर

(६) जैयपुर—सवाई माधौपुर

संकरगढ़ व बरगढ़ वाला रेता यू० पी० के तमाम व करीब करीब सारे भारतवर्ष के कारखानों में प्रयोग होता है। इन तमाम स्थानों का रेता गिलास-टेकनालोजिस्ट की प्रयोगशाला में परीक्षित हो चुका है और युद्ध काल में रेतों का दाम उसके लोहे के अंश के अनुसार निश्चित किया गया था।

(Special Quality) उच्चतम श्रेणी वाले रेत में लोहे की मात्रा ०·०४ प्रतिशत से ज्यादा न होनी चाहिये। उसका दाम ११ आना प्रति मन था।

(Ist Quality) प्रथम श्रेणी वाले रेत में ०·०४ से ०·०७ प्रतिशत लोहे तक होना चाहिये। दाम ६ आना फी मन।

(Yellow Quality) पीले रेते में ०·०७ प्रतिशत से ज्यादा लोहा का अंश होना चाहिये। इसका दाम ११ आना फी मन होता है।

अब रेत की जाँच करने की विधि आपको बताऊँगा जिससे आप लोग अपने कारखानों में ही अच्छे या बुरे रेते की स्वयं जाँच कर सकें।

रेत को किसी साफ बर्तन में १० मिनट तक आग पर खूब गर्म करना चाहिये। ऐसा करने से उसका रंग बदल

जावेगा और लाल रंग का हो जावेगा। यही लाल रंग आपको रेत में लोहे के अंश का अनुमान देगा। जिस तरह एक सुनार अच्छे या बुरे सोने को कसौटी पर घिस कर जाँचता है और उसके चमक को फिर प्रमाणित सोने की चमक से मिलाता है ताकि वह जान सके उसमें कितनी मिलावट है, उसी तरह आप लोगोंको अपने गरम किये हुये रेते को प्रमाणित रेते के नमूने से मिलाना चाहिये जिसमें लोहे का अंश मालूम हो। अच्छे रेत का रंग गरम करने पर मामूली हलका गुलाबी होना चाहिये।

ग्लास टेकनालाजिस्ट, यू० पी० गवर्न्मैन्ट ने एक मशीन रेत को पानी से साफ करने की, विलायत से मँगाई है उसका मूल्य करीब १०,०००) रुपए है। इस मशीन द्वारा २४ घंटे में १० टन रेता साफ़ किया जा सकता है। ऐसी मशीनों का प्रयोग आज कल दूसरे देशों में पूर्णरूप से हो रहा है और शायद सरकार की नई योजना के अनुसार ऐसी मशीनें रेत के कारखानों पर लगाई जावें ताकि साफ़ किया हुआ रेता हर एक कारखाने को आसानी से मिल सके और उससे ही काँच बने।

(Borax)—इसे सुहागा भी कहते हैं। यह हिन्दुस्तान मे तिब्बत और अमरीका मे केलीफोरनियाँ में प्राकृतिक रूप में पाया जाता है। इसमें फेलस्पार, अभ्रक व मट्टी मिली रहती है जो कि पानी की सहायता से आसानी से अलग की जा सकती है। इसमें १६ प्रतिशत सोडा का अंश, ३६·६ प्रतिशत बोरिक ऑक्साइड और ४२·२ प्रतिशत पानी का अंश होता है। बोरेक्स भी काँच के बनाने के लिये अत्यन्त आवश्यक है। करीब ५० साल का समय हुआ इसका प्रयोग काँच के बनाने में काफी तौर से होने लगा है और दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है।

इसको काँच के बनाने में ५ प्रतिशत मिलाने से काँच जल्दी गल जाता है और साफ भी हो जाता है। यह काँच को चमकदार, मजबूत और अच्छा बना देता है। इससे बने हुये काँच के सामान आकस्मिक गरम व ठन्डे किये जाने पर टूटते नहीं हैं। इसलिये इसका प्रयोग लालटेन की चिमनियों, गिलास, थरमामीटर व रसायनिक बर्तनों में बहुत ही जरूरी है। चूड़ियों में प्रयोग करने से यह एक तरह की चमक व आवाज़ पैदा कर देता है जो कि विलायती चूड़ियों में पाई जाती हैं। भारतवर्ष की बनी हुई चूड़ियाँ सौन्दर्य में विलायती चूड़ियों से कई गुनी अधिक अच्छी हैं लेकिन चमकदार व मजबूत कम होती हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि भारतवर्ष में चूड़ियों में बोरेक्स की मात्रा काफी तादाद में प्रयोग नहीं करते हैं। यह बहुधा देखा गया है कि चूड़ियों की चमक थोड़े ही दिनों के प्रयोग से गिर जाती है यानी इस पर प्राकृतिक हवा व पानी का असर जल्दी होने लगता है। अगर चूड़ियों में सुहागा की मात्रा काफी प्रयोग की जावे तो ऊपर की बातों का असर बहुत कम होता है।

यह रंगीन काँच के बनाने के लिये निहायत जरूरी है। संसार में जितने अच्छे से अच्छे काँच के सामान बनते हैं सब में इसका काफी तौर से प्रयोग होता है। यहाँ तक कि (Pyrex) पाइरेक्स गिलास में करीब करीब १५ प्रतिशत तक प्रयोग होता है। इसके प्रयोग से चूड़ियों व अन्य वस्तुओं के दाम तो अवश्य ज्यादा हो जावेंगे लेकिन साथ साथ चूड़ियों की चमक व सौन्दर्य कई गुनी बढ़ जावेगी। इसका मूल्य करीब करीब ३२) रुपए प्रति हन्डरवेट होता है।

[Soda carbonate] सोडा कर्बोनेट अथवा सोडा काँच के गलाने के लिये अति आवश्यक चीज़ है। यदि हम केवल रेत से ही काँच तैयार करें तो देखेंगे कि उसका गलाना बहुत कठिन होता है। फिर भी काँच तो बन ही जाता है। रेते को गलाने के लिये सोडा का प्रयोग इसलिये करते हैं कि रेता थोड़ी गरमी से ही गल जावे और काँच के रूप में हो जावे। ऐसा देखा गया है कि जितना ज्यादा सोडा का प्रयोग किया जावे उतनी ही जल्दी काँच गलकर तैयार हो जाता है। लेकिन यह असल में काँच नहीं है। वह एक तरह का सोडा सिलीकेट है जो कि पानी में आसानी से घुल जाता है। कांच में सोडा की मात्रा १८ या १९ प्रतिशत से ज्यादा न होनी चाहिए। यदि सोडा का प्रयोग ऊपर की मात्र से अधिक किया जावेगा तो वह प्राकृतिक हवा व पानी से जल्दी ख़राब हो जावेगा। काँच में चूना का भी मिलाना अत्यन्त आवश्यक होता है क्योंकि इसका बना हुआ काँच पानी में नहीं घुलता। इसका प्रयोग कांच में कम से कम ७ या ८ प्रतिशत होना

चाहिये। सोडा दो प्रकार का होता है। हल्का और भारी। दोनों ही सोडा अच्छे होते हैं और कोई अन्तर इनमें नहीं होता है। लेकिन काँच में ज्यादातर भारी सोडा का ही प्रयोग करते हैं। यह सूजी की तरह दानेदार होता है। इसका प्रयोग इसलिए करते हैं कि भारी सोडा का बना हुआ काँच का (Batch) बैच पॉट में कम जगह घेरेगा क्योंकि यह भारी होता है। इसलिये ऐसे सोडा का पॉट केवल दो या तीन बार ही भरना पड़ेगा। जब कि हल्के सोडे से बने हुए बैच को कई बार भरना पड़ेगा। हल्का सोडा जब (Tank Furnace) टैंक फ़रनेस में प्रयोग किया जाता है तो वह हवा में उड़ने की कोशिश करता है।

सोडा को हमेशा सूखी जगह में रखना चाहिये क्योंकि वह हवा से पानी खेंचता है और अगर वह बहुत दिनों तक नम ज़मीन पर रक्खा जावेगा तो उसमें ढेले पड़ जाते हैं और उसका तोड़ना कठिन हो जाता है।

सोडा में ६४.३६ प्रतिशत सोडा कोराइड
३.२४ ,, सोडा क्लोराइड
२.२४ ,, मट्टी वगैरह या अन्य दूसरे पदार्थ

(Lime) कांच के बनाने के लिये चूना भी अत्यन्त आवश्यक वस्तु है जैसा बताया जा चुका है। रेता और सोडा से बना हुआ काँच पानी में आसानी से घुल जाता है। इसलिये चूना को मिलाना जरूरी होता है ताकि वह पानी में न घुले और हवा व प्राकृतिक चीजों का आसानी से मुकाबला कर सके।

कांच में चूना तीन प्रकार से मिलाया जाता है।

(१) चूने का पत्थर—इसे (Limestone) भी कहते हैं। इसमें चूने की मात्रा ५६ प्रतिशत होती है।

(२) ढेलेदार चूना—इसे (Quicklime) व कलई व बिना बुझी हुई कलई भी कहते हैं।

(३) बुझा हुई चूना—इसे (Slaked lime) व बुझा हुआ पत्थर भी कहते हैं।

चूने में लोहे, ऐलूमिना, मेगनीसियम वगैरह का अंश भी मिला होता है। लोहे की मात्रा सुन्दर काँच के बनाने में ·१५ प्रतिशत से ज्यादा न होनी चाहिये। ज्यादा तर चूना का पत्थर ही काँच में मिलाया जाता है इसके मिलाने से कई फ़ायदे होते हैं। इसका मूल्य कम होता है और दूसरे जब यह काँच में मिलाया जाता है तो काँच के गलते समय इसमें से कारबन डाई-ऑक्साइड गैस निकलती है। यह गैस काँच को साफ करने में भी मदद करती है। इसमें चूना की मात्रा स्थिर रहती है। यदि ताज़ी कलई या ढेलेदार चूने की शक्ल में मिलाया जावेगा तो चूना की मात्रा घटती रहती है क्योंकि वह हवा से हमेशा पानी खींचता रहता है। इसलिये काँच में मिलाने से पहिले इसकी मात्रा जानना अत्यन्त आवश्यक है। इसी प्रकार बुझे हुए चूने में भी कठिनाइयाँ होती हैं। और इन्हीं बुराइयों की वजह से शीशे में चूना ज्यादातर चूना के पत्थर की शक्ल में मिलाना चाहिये। काँच के अन्दर चूना की मात्रा करीब-करीब ७ या ८ प्रतिशत होना चाहिये। यह मध्यप्रदेश में ज्यादातर पाया जाता है।

काँच को साफ करने के लिये साल्टपीटर, आरसेनिक व मेंगनीज़ को भी इस्तेमाल करते हैं। इसकी मात्रा बहुत ही कम मिलानी होती है। साल्टपीटर जब काँच में मिलाते हैं तो वह एक प्रकार की गैस देता है जो कि काँच के अन्दर जो छोटे-छोटे हवा के बुलबुले रह जाते हैं उसको दूर करके काँच को साफ़ बना देता है। आरसेनिक भी यही काम करता है। परन्तु मेंगनीज़ काँच में दो काम करता है। पहला वह काँच के हरे रंग को दूर करता है और दूसरे वह काँच को साफ करने में भी मदद करता है।

Colouring Agents—इनको रंग कारक वस्तुएँ कहते हैं। रंगीन काँच के बनाने के लिये अनेक प्रकार के धातु के ऑक्साइड का प्रयोग किया जाता है और प्रत्येक औक्साइड अपना-अपना रंग काँच को देते हैं। जैसे कोबाल्ट ऑक्साइड से नीला रंग, क्रोमियम आकसाइड से हरा काँच, मैंगनीज आकसाइड से जामुनी; गन्धक से पीला व अम्बर; सेलीनियम से लाल रंग, कापर से हरा, नीला व लाल रंग भी बनता है। लेकिन इन रंगों को बनाने के लिये काँच की भिन्न-भिन्न वस्तुएँ अपना-अपना असर करती हैं। रंग काँच में तीन प्रकार से बनता है।

(१) वह रंग, जो कि काँच की वस्तुओं के ही साथ

मिलाने व गरम करने पर निकल आते हैं जैसे कोबाल्ट से नीला रंग।

(२) वह रंग जो कि तैय्यार किये गये काँच को दुबारा गरम करने से बनता है जैसे सेलीनियम व कापर ऑक्साइड से लाल रंग का काँच तैयार होता है।

(३) ऐसे रंग जो कि काँच के तैय्यार होने पर दिखाई नहीं देते बल्कि जब वह धीरे-धीरे ठन्डा किया जाता है तो उसमें रंग आ जाता है। इस रंग वाले काँच को अपार दर्शक (Opal) कांच करते हैं। इस कांच को बनाने के लिये ख़ास बात यह है कि यह बहुत देर तक और ज्यादा गरमी वाली भट्टी में गरम न करना चाहिये।

---

# श्लैष—पदार्थ की चतुर्थ अवस्था

लेखक—घनश्याम कृष्ण शुक्ल, एम० एससी०, रिसर्च स्कालर, प्रयाग विश्वविद्यालय

युगों से पदार्थ की तीन अवस्थायें मानी गयी हैं। वस्तुओं के भौतिक गुणों के अनुसार वे ठोस, द्रव, तथा वाष्प—तीन अवस्थाओं में विभक्त हैं। किन्तु इसी दृष्टि से अवस्था के विवेचन में हम एक इनसे परे भी एक अवस्था का परिचय पाते हैं जिसके गुण ठोस और द्रव दोनों से मिलते-जुलते हैं। इसी अवस्था का नाम श्लैष (Colloid) है। प्रकृति में इसका उदाहरण बहुतायत से मिलता है।

प्रकृति का आधिभौतिक निर्माण इन्हीं चारों विशेष-अवस्थाओं के अन्तर्गत होता है। श्लैष में ठोस और द्रव दोनों का संयोग रहता है तथा श्लैष के निर्माण के लिये स्वतंत्रतः अलग-अलग ठोस और द्रव का पूर्ण निकट सम्पर्क आवश्यक है। साधारण रूप से ठोस पदार्थ द्रव में घुलकर पूर्ण घोल बनाते हैं। इस क्रिया में ठोस के भौतिक स्वरूप का पूर्ण लोप हो जाता है। पूर्ण घोल के भौतिक गुणों में द्रव के गुणों से सामंजस्य रहता है। इस दशा में ठोस अपनी अवस्था बदलकर द्रव रूप में परिवर्त्तित हो जाता है।

पूर्ण घोल के अतिरिक्त भी एक विशिष्ट दशा में विलय बन सकता है जिसमें ठोस के अस्तित्व का लोप नहीं होता। ऐसी परिस्थिति में श्लैष का निर्माण होता है। श्लैष निर्माण में केवल आकार का परिवर्त्तन होता है। द्रव और ठोस दोनों अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। इस भाँति भौतिक दृष्टि से श्लैष में पदार्थ की दोनों अवस्थायें जागरूक रहती हैं।

पूर्ण घोल में ठोस का आकार द्रव रूप में परिवर्त्तित हो जाता है और उसके गुणों के अनुसार द्रव के भी परिवर्त्तित गुण समक्ष आते हैं। दोनों मिलकर एक आकार—द्रवरूप में ही रह जाते हैं। कुछ विशिष्ट भौतिक परिवर्त्तनों के कारण पूर्ण घोल के स्थान पर श्लैष की उत्पत्ति होती है। श्लेष रूपांतर केवल एक भौतिक परिवर्त्तन है जिसमें ठोस और द्रव दोनों के रासायनिक बनावट में कोई अन्तर नहीं होता। केवल ठोस के आकार में अन्तर पड़ता है पर ठोस अवस्था का लोप नहीं होता। द्रव के भीतर ठोस के कण अत्यधिक छोटे होकर लटके रहते हैं तथा द्रव उन कणों के चारों ओर आकर उन्हें एक दूसरे से मिलकर बड़े होने से रोकता है। इन कणों पर द्रव तथा ठोस स्पर्श के कारण विद्युत का भी समावेश हो जाता है। प्रत्येक कण के सम-विद्युत होने के परिणाम-स्वरूप कण एक दूसरे से पृथक रहते हैं। कणों की प्राकृतिक हलचल सदा उन्हें चलायमान रखती है। इस भाँति एक दूसरे के सम्पर्क से दूर रहने के कारण कणों का आकार सदा एक निश्चित अवस्था से अधिक नहीं हो पाता। इस निश्चित अवस्था से अधिक बड़े कण होने पर श्लैष का ठोस और द्रव में पृथकीकरण हो जाता है।

उपर्युक्त परिस्थितियों में परिवर्त्तन आने पर भी श्लैष अवस्था का पृथकीकरण हो जाता है।

श्लैष का उदाहरण मूल प्रकृति में अत्यधिक है। इस विशिष्ट अवस्था के अध्ययन में केवल कणों का ही नहीं

बल्कि प्रकृति के उत्पादन प्रणाली का भी अध्ययन हो सकता है। प्राकृतिक निर्माण का मूल आधरस (Protoplasm) है तथा रासायनिक दृष्टि से हम उसका भोग मालूम कर सकते हैं। लगभग ३५ वस्तुओं की उपस्थिति प्राकृतिक सेलों (cells) में मिलती है जिनमें मुख्यतः लवण, कार्बोहाइड्रेट, चिकनाई, तथा प्रोटीन हैं। लवण पूर्ण घोल (True solution) के रूप में, चिकनाई मुख्यतः श्लैष्म रूप में, और प्रोटीन ठोस रूप में अथवा श्लैष रूप में विद्यमान रहती है। आधरस की अवस्था अधिक अंश में श्लैष रूप में रहता है जिसमें प्रोटीन मूल अंश होता है। और यह यद्यपि द्रवरूप में रहता है पर श्लैष के अस्तित्व के कारण इसमें ठोस की उपस्थिति का भी परिचय रहता है। आधरस में उसके भौतिक परिवर्त्तन के कारण उसकी स्निग्धता (viscoty) में भी परिवर्त्तन देखा जाता है जो उसे द्रव से ठोस अवस्था तक में परिवर्त्तित कर देता है। द्रवत्व (Fluidity) पर विशेषतः तापक्रम और द्रव के अन्तर्गत की वस्तुओं की उपस्थिति का प्रभाव रहता है। किन्तु श्लैष की दशा में उपस्थित कणों के बनावट, आकार, वृद्धि तथा नष्ट होने की भी छाया उसके द्रवत्व में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

यह तो निर्विवाद रूप से माना जा सकता है कि प्रोटीन प्रत्येक जीवित वस्तु का मूल अंश है। इतना ही नहीं बल्कि जीवित अवस्था की उत्पत्ति और वृद्धिकरण (evolution) के लिये भी प्रोटीन नितांत आवश्यक है। जीविन के इस आवश्यक वस्तु के गुण श्लैष गुण से अधिक सामंजस्य रखते हैं और भौतिक दृष्टि से प्रोटीन पूर्ण श्लैष है। प्रोटीन से निर्मित सेलों का रूप भी श्लेष्म हो जाता है। सेलों का निर्माण, उनका बढ़ना, अथवा टूट जाने पर पुनर्निर्माण आदि क्रियायें सब श्लैष की दशा में होती हैं और श्लैष के नियमों के अन्तर्गत होती हैं।

इतना ही नहीं वरन् प्रकृति के निर्माण क्रिया के प्रारम्भ में अधिकांश रूप से श्लैष अवस्था का परिचय मिलता है। लिसेगांग ने पत्थरों की तह में समय समय के क्षिति-श्लैष पृथकीकरण के कारण गोल रेखाओं का निर्माण सर्वप्रथम देखा। विभिन्न परिस्थितियों में इन रेखाओं का निर्माण श्लैष के पृथकीरण द्वारा किया जा सकता है तथा इसका कारण भी श्लैषगत नियमों से उपस्थित किया जा सकता है। यह अन्तर युक्त पृथकीकरण विभिन्न परिस्थितियों में तापक्रम, जलवायुगत, दैनिक तथा बाह्य उपक्रम के परिवर्त्तनों द्वारा श्लैष में पृथकीकरण के कारण लाया जा सकता है तथा द्रवगुण से भिन्न श्लैष प्रकृति से ही इसका अनुमान किया जा सकता है।

शारीरिक अवयवों और द्रवों में भी श्लैष अवस्था का परिचय मिलता है। रुग्णावस्था में अंगों में श्लेष्म के कारण पृथकीकरण होता है और प्रकृति से प्रतिकूल स्थिति होने पर कष्ट होता है। पित्त, लहू इत्यादि का स्वरूप श्लैष सा होता है। शारीरिक द्रवों की श्लैष स्थिति होने के कारण बहुत सी औषधियाँ अब भी श्लैष रूप में दी जाने लगी हैं जिनकी कमी के कारण रोगों की उत्पत्ति होती है। श्लैष अवस्था में वे शरीर द्वारा ली जाने में अधिक उपयुक्त होती हैं और इस भाँति अन्य अवस्था में दी गई औषधियों से अधिक शीघ्र गुणकारी होती हैं। विशेषतः वे औषधियाँ जो रक्त में मिश्रित की जाती हैं प्रायः श्लैष रूप में दी जाती हैं क्योंकि इससे रक्त को प्राकृतिक अवस्था में कोई विशेष परिवर्त्तन नहीं होता अतः श्लैष दशा अधिक उपयुक्त होती है।

रासायनिक परिवर्त्तनों की गतिविधि में श्लैष अवस्था की उपस्थिति से बड़ा अन्तर पड़ता है प्रत्येक रासायनिक परिवर्तन पर उसके वातावरण में उपस्थिति वस्तुओं का उसकी गति पर बड़ा प्रभाव पड़ता है क्योंकि परिवर्त्तन में भाग लेने वाले पदार्थों की भौतिक दशा ही प्रायः रासायनिक परिवर्त्तन के प्रारम्भ का कारण होती है। अतः इस पर अन्य वस्तुओं का प्रभाव स्वाभाविक ही है। रासायनिक द्रव्यों से बाह्य वस्तुओं के स्पर्श से ही परिवर्त्तन की गति में प्रभाव सम्भव है। श्लैष रूप में ठोस का आकार कणों में परिवर्त्तित हो जाता है। इस भाँति आकार तो छोटा हो जाता है पर ठोस का स्पर्श धरातल बहुत बढ़ जाता है। अतः यह निश्चित है कि कोई वस्तु ठोस से अधिक श्लैष दशा में रासायनिक गति में परिवर्त्तन लाने में समर्थ होगी। इस तरह यह तय है कि हम प्रत्येक रासायनिक परिवर्त्तन की रासायनिक गति को उपयुक्त ठोस को श्लेष्म

रूप में परिणत करके बदल सकते हैं।

अतः प्रकृति के रहस्य को समझने के लिये केवल रासायनिक गवेषणा और रासायनिक गुण, परिवर्त्तन, निर्माण के अध्ययन से कार्य नहीं चलेगा वरन् प्रकृति स्थित वस्तुओं का भौतिक स्वरूप भी ध्यान में रखना नितांत आवश्यक है। पदार्थ की अवस्था का परिचय उसके भौतिक गुणों से ही चलता है और अवस्था के परिवर्त्तन के साथ-साथ गुणों में परिवर्तन होता है। एक अवस्था का दूसरे में भी परिवर्त्तन होने के साथ साथ भौतिक गुणों में सदा ही नियमित परिवर्तन होता है और भौतिक उपक्रम ही पदार्थ की विशिष्ट अवस्था बनाते हैं। ठोस और द्रव—दोनों के भौतिक गुणों में पूर्ण परिवर्त्तन पाया जाता है तथा ये दोनों अपने अपने स्थान पर अवस्था विशेष के परिचायक हैं। श्लैष अब भी ठोस और द्रव के बीच की अवस्था कही जा सकती है तथा निश्चय पूर्वक यह कहा जा सकता है कि श्लैष ठोस और द्रव दोनों के भौतिक गुणों से परिपूर्ण होता है। प्रकृति का निर्माण कार्य स्वयं बहुलतापूर्ण है तथा केवल एक शुद्ध अवस्था का उदाहरण कहीं भी नहीं मिलता। अस्तु ठोस और द्रव पदार्थ की दो असम्बन्ध अवस्थाओं में श्लैष एक निश्चयात्मक रूप से विशिष्ट अवस्था है जो भौतिक परिवर्त्तनों और उपक्रमों के कारण समय समय पर पूर्व परिचित अवस्थाओं में पृथक हो जाया करता है।

प्रकृति निर्माण सम्बन्धी रहस्यों की कुञ्जी श्लैष है और पदार्थ की इस विशिष्ट अवस्था में ही हम अपने ज्ञान के पूर्व परिचित भौतिक और रासायनिक साधनों का उपयोग कर सकते हैं। इस विचार से ठोस और द्रव पदार्थ की दो निश्चित अवस्थाओं से—श्लैष अधिक व्यापक और हमारे जीवन तथा प्रकृति के अधिक निकट है।

# फोटोग्राफी से टाइप कम्पोज़िङ्ग

लेखक : पर्सी वेब्स्टर

ब्रिटेन में अब तक टाइप कम्पोजिंग केवल धातु टाइप पर निर्भर रही है। खानों वाले लकड़ी के एक बड़े बक्स में पर्याप्त पूर्व निर्मित धातु शब्दों को अलग अलग भरकर हाथों द्वारा कम्पोजिंग की जाती है। एक कुशल कम्पोजीटर बक्से के खानों में से एक के बाद दूसरा शब्द उठा कर उन्हें छपाई के लिये जल्दी जल्दी पंक्तियों में जड़ने लगता है।

साधारणतः लोग समझते हैं कि बड़े-बड़े छापेखानों में टाइप कम्पोजिंग का कार्य भी वर्षों पहले से मशीनों द्वारा किया जा रहा है, इसीलिये लाखों सूचनापत्र तथा पुस्तकें प्रकाशित होती रहती हैं। उन्हें शायद यह पता नहीं है कि छापने की कोई मशीन तैयार धातु टाइप सहित नहीं होती। कम्पोजिंग का सारा काम केवल हाथों से ही किया जाता है। पर कम्पोजिंग के लिये धातु के विभिन्न टाइप तथा शब्द पंक्तियाँ आदि अभी तक मशीन में ढाली जाती हैं।

ब्रिटिश वैज्ञानिक फोटोग्राफी से टाइप कम्पोजिंग की विधि का पता लगाने के लिये बहुत पहले से अनुसन्धान कर रहे हैं। उनके आविष्कार लगभग पचास वर्ष पूर्व पेटेन्ट हुए थे। उस समय से फोटोलिथोग्रैफिक (पत्थर पर फोटो उतार कर उससे छापने की विधि) और फोटोग्रेवर (फोटो के चित्र को धातु की चद्दर पर उतार कर खोदना अथवा ब्लाक बनाना) में बहुत सफलता मिल चुकी है। इस तरह की पहली मशीन जो हाथों से धीरे धीरे चलाई जा सकती है चौदह या पन्द्रह वर्ष पूर्व ब्रिटेन में चालू की गई थी। छपाई के लिये पाजिटिव अथवा नेगेटिव चित्र तैयार किये जाते हैं। टाइप अथवा उसके छापे का चित्र ले लिया जाता है।

## धातु टाइप से छुट्टी

द्वितीय महायुद्ध से कुछ समय पूर्व ऐसे अनुसन्धान ने अधिक उन्नति की और धातु टाइप के स्थान में केवल

फोटोग्राफी से टाइप कम्पोजिंग करने की विधि परीक्षा का विषय बन गई।

इसके आविष्कर्ता "कावेंट्री गाज ऐंड टूल कम्पनी" के जार्ज वेस्टोवर ने धातु टाइप से कम्पोजिंग किए बिना पाजिटिव और नेगेटिव लेने की उपयोगी और सस्ती विधि का पता लगा लिया है। इस विधि को "रोटोफोटो" कहते हैं।

"रोटोफोटो" में मोनोटाइप-की बोर्ड, लाइन प्रोजेक्टर तथा मेकअप मशीन तीन मुख्य अंग होते हैं। प्रोजेक्टर मोनोटाइप कम्पोजिंग ढंग पर आधारित होता है।

आविष्कारक वेस्टोवर, जो बहुत समय तक मोनोटाइप कार्पोरेशन लिमिटेड के एक प्रमुख सदस्य थे, टाइप कम्पोजिंग के अध्ययन में जीवन के बीस वर्ष बिता चुके हैं।

फोटो का मूल पाठ इस ढंग से तैयार होता है। मोनोटाइप की बोर्ड की सहायता से कागज की एक छिद्रित नकल तैयार कर ली जाती है। फिर कागज की चर्खी को लाइन प्रोजेक्टर पर चढ़ा दिया जाता है। प्रोजेक्टर में मोनोटाइप कास्टर जैसी यन्त्र रचना होती है, लेकिन इसमें अन्तर यह होता है कि साँचे में ढले काँसा टाइप की अपेक्षा एक नेगेटिव प्रयुक्त करना पड़ता है। कैमरे में लगी ३५ मिलिमीटर वाली फिल्मरील के द्वारा प्रत्येक शब्द का चित्र उतरने लगता है। फिल्म धोने के पश्चात् पंक्तियों का फोटोप्रतिबिम्ब फिल्म पर प्रकट हो जाता है। एक मोनोटाइप कास्टर की गति के समान ही प्रोजेक्टर भी चलता है।

## फिल्म पर अशुद्धियों का सुधार

प्रूफ अलग से ठीक किये जाते हैं। 'फोटोप्रकाशग्राही' कागज की रील पर फिल्म प्रोजेक्ट करने से एक साधारण प्रूफ तैयार हो जाता है। अशुद्धि वाली पंक्ति को की बोर्ड पर दोबारा काट छेद कर प्रोजेक्टर पर चढ़ा दिया जाता है। सारी शुद्धियाँ कई एक पृथक फिल्म रीलों पर उतर आती हैं।

छपाई चद्दरों के लिये मेकअप मशीन की सहायता से अन्तिम फिल्म तैयार कर ली जाती है और साथ ही साथ उसमें शुद्धियाँ भर दी जाती हैं। वर्तुलाकार अथवा बेलन जैसा लैम्पखाना मेकअप मशीन का विशेष अंग है जिसके चारों ओर पाँच स्टेशन (धुरी कील) लगे होते हैं। इनमें से प्रत्येक स्टेशन पर फिल्म रील चढ़ा दी जाती है। एक स्टेशन फिल्म तथा मुख्य पाठ के लिये होता है, दूसरे पर फिल्म तथा शुद्धियाँ, तीसरे पर फिल्म तथा शीर्षक और बाकी भी इसी तरह प्रयुक्त कर लिये जाते हैं। फिर अन्त में मुख्य पाठ का फिल्म उतार लिया जाता है।

यह स्वतः चलने वाला प्रोजेक्शन केवल अशुद्धि दूर करने के समय ही रुकता है। शुद्धि भरने के लिये फिल्म खाने को घुमाकर शुद्ध पंक्ति मूल पाठ की ओर फेर दी जाती है। इस विधि से फिल्म कतरने की आवश्यकता नहीं होती। ये सारे ढंग सरल तथा तीव्र हैं, और इनसे उच्च कोटि का फिल्म प्रूफ तैयार हो जाता है जिससे छपाई चद्दरें बनाकर छापना आरम्भ किया जा सकता है।

# क्षय रोग का प्रभावशाली टीका—बी० सी० जी०

स्वास्थ्य विभाग की एक विज्ञप्ति में बताया गया है कि बंगाल के प्रधान मंत्री डा० बी० सी राय की अध्यक्षता में बारह प्रसिद्ध डाक्टरों ने क्षय रोग में बी० सी० जी० का टीका लगाने के सम्बन्ध में एक वक्तव्य द्वारा जो विचार प्रकट किए हैं, उनसे भारत सरकार का स्वास्थ्य विभाग पूर्णतया सहमत है। वक्तव्य पर निम्नलिखित अन्य डाक्टरों के हस्ताक्षर हैं: डा० जीवराज एन० मेहता ( बड़ौदा के प्रधान मंत्री ), डा० के० एस० राय ( अध्यक्ष, भारतीय चिकित्सा परिषद् ), डा० के० सी० के० ई० राजा ( भारत सरकार के स्वास्थ्य सर्विस संचालक ) तथा भारतीय क्षय संघ की स्थायी समिति के आठ सदस्य—डा० आर० बी० बिलीमोरिया, डा० ए० सी० उकील, डा० आर० बी० लाल, डा० बी० बी० योध, डा० के० वासुदेव राव, डा०, के० एल० विग, डा० एस० के० सेन और डा० पी० वी० बेन्जेमिन।

## भारतव्यापी प्रयोग

इन डाक्टरों ने अपने वक्तव्य में कहा है :

भारत में बी० सी० जी० के टीके का प्रयोग अगस्त, १९४८ में आरम्भ हुआ था और तब से दक्षिण भारत में मदनपल्ली में एवं उत्तर भारत में दिल्ली में इसका प्रयोग बराबर हो रहा है। अब भारत सरकार इसका प्रयोग समस्त प्रान्तों में आरम्भ करने की योजना बना रही है।

जून १९४८ में भारत सरकार द्वारा प्रकाशित एक विज्ञप्ति में भारत में क्षय रोग की स्थिति की समीक्षा की गयी थी और इस रोग की रोकथाम के लिए बी०-सी० जी० के टीके की उपयोगिता पर विचार किया गया था। उसके बाद समाचारपत्रों में ऐसे कई लेख प्रकाशित हुए जिनमें बी० सी० जी० के टीके की उपयोगिता के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के मत प्रकट किए गए। कुछ लेखों में तो टीके का समर्थन किया गया था और कुछ में उसकी उपयोगिता एवं निर्दोषिता के संबंध में संदेह प्रकट किया गया था। यह भी कहा गया कि इस टीके का प्रचार हो जाने से लोगों को तथा सरकार को यह मिथ्या विश्वास हो जायगा, कि टीका लगाने के बाद यह बीमारी नहीं होगी और सरकार का ध्यान अन्य उपायों द्वारा इस रोग का सामना करने की ओर से हट जाएगा। जब चेचक का टीका लगाने की प्रथा आरम्भ हुई थी, तब भी ऐसे ही संदेह प्रकट किए गए थे, परन्तु अन्त में सत्य की विजय हुई। अतः सम्भावित सार्वजनिक आलोचना को ध्यान में रखते हुए हम बी०-सी० जी० के टीके के सम्बन्ध में अपने निश्चित विचार प्रकट कर देना चाहते हैं।

काल्मेट ने पेरिस के पास्चर इंस्टिट्यूट में १३ वर्ष के प्रयोग और कठिन परिश्रम के बाद, बी० सी० जी० के टीके की खोज की थी। सर्व प्रथम १९२१ में इसका प्रयोग मनुष्य जाति पर किया गया। १९४८ के अन्त तक डेन्मार्क, नार्वे और स्वीडन में १० लाख से अधिक व्यक्तियों को यह टीका लगाया गया। अमरीका, रूस तथा यूरोप के अन्य देशों में भी इस टीके का प्रयोग किया गया। अब तक संसार भर में लगभग १ करोड़ व्यक्तियों को क्षय रोग का टीका लगाया जा चुका है।

इस टीके सम्बन्धी साहित्य के पढ़ने से हमको विश्वास हो गया है कि ( १ ) बी० सी० जी० का टीका उपयोगी है और यदि व्यापक रूप से इसका प्रयोग किया जाय तो भारत में क्षय रोग से होने वाली मृत्युओं की संख्या बहुत कुछ कम हो सकती है, ( २ ) यह बिलकुल निर्दोष है और ( ३ ) टीका लगे हुए व्यक्ति को अलग रखने की आवश्यकता नहीं है।

## अन्य आवश्यकतायें

हमारा यह भी विश्वास है कि केवल बी० सी० जी० का टीका ही क्षय रोग की रोकथाम के लिए पर्याप्त नहीं है। जीवन स्तर, रहन सहन, भोजन और स्वास्थ्य के सुधार पर भी ध्यान देना चाहिए। इसके अतिरिक्त क्षय के रोगियों को अलग रखकर उनकी रोग परीक्षा एवं चिकित्सा का प्रबन्ध करना भी आवश्यक है। परन्तु अर्थाभाव और शिक्षित कर्मचारियों की कमी के कारण ये उपाय कठिन हैं। इसलिए बी० सी० जी० के टीके का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है। हमारा विश्वास है कि यदि इस टीके का प्रचार हो गया तो इस रोग की बहुत कुछ रोकथाम हो जायगी। परन्तु टीके के साथ अन्य उपायों का अवलम्बन अत्यावश्यक है।

पाश्चात्य देशों में भी, जहाँ जीवन का मानदण्ड बहुत ऊँचा है और स्वास्थ्य एवं आहार पर विशेष ध्यान दिया जाता है, क्षय निरोधक उपायों के रूप में बी० सी० जी० के टीके को स्वीकार कर लिया गया है। भारत में तो इसका प्रयोग बहुत ही आवश्यक है।

# शराब का उत्पादन

ले० एच० के० पी० वर्मा, M. Sc., F. I. I. S. T., A. R. I. C. केमिकल इञ्जीनियर

'बियर' (Beer शब्द सैक्सन शब्द 'बेयर' (Baere) से लिया गया है। इसका आशय उस पौधे से है जिससे यह तैयार किया जाता है। इसका 'अनाजों की शराब' नाम यथार्थ ही है। ४००० ईस्वी पूर्व के लगभग इजिप्ट देश में 'ब्रुइंग' की इस कला का आविष्कार हुआ था। दक्षिणी अमेरिका में 'चीचा' (Chicha) और सोरा (Sora) नाम की हलकी और तेज शराब बनाई जाती थी। चीन में इसी प्रकार की शराब 'क्यु' (kiu) नाम से लगभग २,३०० ई० पू० में प्रचलित थी। परन्तु ब्रुइंग की अर्वाचीन विधि को उत्तरी योरप के निवासियों ने मालूम किया था। मध्य काल में यह कला प्रत्येक बड़े परिवार में प्रचलित थी परन्तु विशेष रूप से इसकी उन्नति मठों में हुई। फ्युडल लार्डों ने इसको आयवृद्धि का अच्छा जरिया समझकर उन लोगों पर जो इस व्यापार में लगे थे सालाना शुल्क लगा दिया। १७वीं शताब्दी के मध्य में शराब पर अथवा उसके उत्पादन में प्रयुक्त होने वाली विशेष वस्तुओं पर प्रथम बार कर लगाया गया। यद्यपि इस पर अनेकानेक कर लगाये गये तथापि संसार में बियर की उत्पत्ति में अब तक बहुत वृद्धि हो चुकी है।

बियर का उत्पादन बहुत ही टेकनिकल है। और इसको बनाने के नियम बहुत कठिन हैं। बने हुये बियर की किस्म, कच्चे माल की किस्म, उनके चुनाव की सावधानी तथा होशियारी और खासकर आद्योपान्त अत्यन्त स्वच्छता रखने के उपायों पर निर्भर होतो है।

बियर बनाने के लिये माल्ट, हाप्स और यीस्ट पदार्थों की आवश्यकता होती है। ठन्डा और साफ पानी बहुत जरूरी है। बर्टन, डबलिन और लन्दन के ब्रुअर्स गले हुए नमक से पानी निकालते हैं और इस तरह के पानी में सब प्राकृतिक गुण पाये जाते हैं। इसी कारण से इनकी बियर संसार भर में प्रसिद्ध हो गई है। कुछ हालतों में खराब पानी को भी अच्छा बनाया जा सकता है। बियर के स्वाद और किस्म पर 'बार्ली माल्ट' का गहरा प्रभाव पड़ता है। अच्छी माल्टिंग बार्ली का जौ साफ और अच्छी तरह से पका होना चाहिये। इसको कंकड़ या बाहरी बीजों से रहित शीघ्र उगने वाला होना चाहिये। इसको कुछ अंकुरित करके बहुत सावधानी के साथ 'रोस्ट' किया जाता है जिससे इसका स्वाद और रंग अच्छा हो। 'हाप्स' (Hops) हेम्प के परिवार के फूल होते हैं और इसमें सुगन्धित, स्वच्छ तथा सुरक्षित रखने के गुण होते हैं। 'यीस्ट' (yeast) एक छोटा सा जीव होता है परन्तु उनके थोड़े से प्रकार ही 'फरमेन्टेशन' (Fermentation के काम में लाये जाते हैं। इसका उद्देश्य 'वर्ट' (wort) में काफी प्राकृतिक अलकोहल उत्पन्न करना है जो माल्ट और हाप्स से मिलकर तथा कारबोनिक ऐसिड गैस की सहायता से बियर को स्वादिष्ट और टिकाऊ बना देता है।

माल्टिंग क्रिया के अनुसार बार्ली को साफ पानी में डालते हैं जब तक कि यह काफी पानी नहीं सोख लेता और इसके बाद इसको 'माल्टिंग फ्लोर' पर फैला देते हैं। यह बीज बहुत शीघ्र उगने लगता है और इसके एक किनारे पर अंकुर निकलने लगते हैं। इस परिवर्तन के समय कायिक, प्राकृतिक और भौतिक क्रियायें होती हैं। (Diastatic & proteolytic enzymes) प्रस्फुटित होते हैं, कुछ माड़ डेक्सट्रिन और माल्टोज में बदल जाता है, बार्ली में रहने वाली परिवर्तनशील प्रोटीन के अल्प भाग का रूप परिवर्तित हो जाता है, 'सेल-वाल' (Cell-walls) के द्वारा अनाज पकने में सहायता मिलती है। इन सब परिवर्तनशील क्रियाओं को 'माडिफ़िकेशन' (modificatian) कहते हैं।

माल्ट की क़िस्म इन्हीं परिवर्तनों पर निर्भर रहती है। इसमें माल्टिंग की हानि १०% होती है। एक सप्ताह के अन्दर जड़ों के निकलने के पहले हरा माल्ट धीरे धीरे

सूखने लगता है। फिर यह गर्म हवा में सुखाया जाता है जब तक कि इसकी नमी दो प्रतिशत नहीं रह जाती। सूखे अंकुरों को अलग करने के बाद तथा प्रयोग करने के पहले यह बैग में भरा जाता है और उसमें कुछ समय के लिये रक्खा जाता है। अब यह माल्ट का नमूना बिस्कुट के स्वाद का होता है।

बियर के ब्रुइंग का पहला तरीका एक मिल में माल्ट को दबाना है। जो 'ग्रिस्ट' बच जाता है। उसको 'हपर' में ले जाते हैं जिसको 'ग्रिस्ट केस' कहते हैं। इस ग्रिस्ट केस को इस तरह से रखते हैं जिससे पीसा हुआ माल्ट गर्म पानी के साथ १६०°F पर मिलकर बहता हुआ मासटन में पहुँच सके। माल्ट में जो भी (Enzymes) रहते हैं वे उस अनाज के माड़ को चीनी में बदल देते थे और उसके बाद डेक्सट्रीन में। मासटनमें, दो घन्टे के बाद, टन के द्वारा वर्ट को ले जाते हैं। टन में जो भीगा ग्रिस्ट रह जाता है उसको गुड्स कहते हैं। गुड्स पानी में भिगो कर १९०°F तक गर्म किया जाता है और तब यह 'स्पेन्ट ग्रेन्स' हो जाता है और जानवरों के खाने के लिये बेच दिया जाता है।

मिला हुआ वर्ट मासटन से ताँबे के बरतन में पम्प किया जाता है। और फिर अच्छी तरह हॉप्स मिलाने के बाद करीब दो घन्टे तक गर्म किया जाता है हॉप्स का अनुपात ३६ गैलन वर्ट में लगभग डेढ़ पौंड है। हॉप्स को मिलाने के लिये काफी होशियारी की जरूरत है। गर्म करते समय हॉप्स के प्राकृतिक गुण वर्ट में चले जाते हैं और उसमें प्रोटीन मिल जाता है। उसी समय सब बदबू दूर हो जाती है और वर्ट साफ हो जाता है।

ये सब पदार्थ फिर 'हॉप बैग' में डाल दिये जाते हैं जिसके स्थल पर पहले से ही और हॉप्स फैला दिये जाते हैं और उनके साथ साथ थोड़ा पोटेशियम का सलफ़ाइट भी मिला रहता है। फिर वर्ट में (Stainless sted के refrigerator) द्वारा ठंडक पहुँचाई जाती है ६०°F तक। यह यंत्र प्लेट का बना होता है जिसके अन्दर से ठन्डा पानी और गर्म वर्ट परस्पर विरोधी दिशा में पम्प किये जाते हैं। गर्मी का आदान-प्रदान (Heat exchange) ताँबे की एक पतली चादर से होता है। दूर तक चलने और हिलते रहने से प्रोटीन अलग हो जाता है और गैस मिल जातीहैं जो यीस्ट (Yeast) के लिये सहायक हैं।

अब दूसरा काम गर्म करने का है जो कि बहुत खतरनाक होता है। ठन्डा वर्ट लकड़ी के बर्तन में इकट्ठा किया जाता है जिसकी ताकत ३००० गैलन तक की होती है और जो दोनों ओर से धातु के घेरे द्वारा बन्द रहता है। यीस्ट गर्माया जाता है और बर्तन पूरा भर जाता है। यीस्ट का रेट जिसमें कि ७०% नमी होती है, प्रति ३६ गैलन वर्ट के लिये दो पौंड होता है। जो वर्ट जमा होता है उसको सरकारी कर लगाने के लिये नापा जाता है। यह (Fermentation) (गर्म करने की क्रिया) नियमित तापक्रम में ही किया जाता है। साथ साथ अल्कोहल की उत्पत्ति तथा वर्ट की चीनी में से कार्बन डाइऑक्साइड निकल जाने से (Specific gravity) में भी कमी रहती है।

कुछ घन्टों के बाद इसके तल पर भूरे रंग की क्रीम जिसको (first heads) कहते हैं, आजाती है। इसको निकाल दिया जाता है क्योंकि इसमें बाहरी चीजें होती हैं जो बियर में से ऊपर उफन आती हैं। जो कुछ बच जाता है उसको जामा किया जाता है और फ्रिजिंग पॉइन्ट पर जमाया जाता है। अब जो ईस्ट बनता है वह पहले से पाँच गुना जादा होता है। उसका एक हिस्सा साफ किया जाता है तथा ब्रुइंग आरम्भ करने के लिये रख लिया जाता है और जो बाकी बच जाता है वह डिस्टिलरी और बेकरीज में चला जाता है या जानवरों को खिलाने के काम में लाया जाता है। (yeast) और वर्ट का कुछ हिस्सा वैज्ञानिक लोग अपने काम में लाते हैं।

जब 'स्किमिंग' (सफाई) समाप्त हो जाती है तब तल पीले और भूरे रंग का बन जाता है और दो तीन दिन तक रखा रहता है, तब तक बियर साफ और ठन्डी होती रहती है। तैयार की हुई बियर (Cellar) में रखने के पहले ६०°F तक ठन्डी की जाती है। बोरे में बन्द करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि इसमें अन्य पदार्थ न पड़ने पावें। भरते समय अधिक भाग नहीं उठना चाहिये क्योंकि ऐसा होने से उसमें घुली हुई गैस निकल

जाती है और (Conditi) भी नष्ट हो जाती है।

'स्टोरेज' करते समय 'ऐस्टर्स' बनते हैं और ये बियर में सुगन्धि और स्वाद पैदा करते हैं। इस समय रूर ऋतु में तापक्रम ५५° F रक्खा जाता है।

बियर बोतल में बन्द करदी जाती है या लकड़ी के डब्बों में बेची जाती है। बोतल में भरने से पहले इसको फ़िल्टर और कार्बोनेट करते हैं। बर्तन को उबाल कर अच्छी तरह साफ़ कर लेना चाहिये तथा सुखा लेना चाहिये। बियर में अनुपात निम्नलिखित होता है :—पानी ८६·६, एक्स्ट्रैक्ट (Extrct) ५·६, अलकोहल ३·७, कार्बन डाइ-ऑक्साइड ०·५, कार्बोहाइड्रेट ५·२, प्रोटीन ०·५, और राख ०·२। राख में अधिकतर फासफोरस, सोडियम, पौटैशियम, मेग्नेशियम और कैलशियम होते हैं।

मनुष्य के भोजन में अब विटामिन पर अधिक ज़ोर दिया जाता है और इस दृष्टिकोण से बियर और ईस्ट काफी उपयोगी हैं। बियर को खाने की तरह नहीं खाते, यह चाय या कॉफी की तरह पिया जाता है। इसमें पाचक और पौष्टिक पदार्थ होते हैं और दूध की तरह रोग-प्रोत्साहन का दोष भी नहीं होता। ब्रुवरी को सड़ाते हैं और इससे अच्छी खाद बनती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि अनाज की तरह खाने से बार्ली की शराब बनाना अपेक्षाकृत अधिक सस्ता और अच्छा है।

किसी चीज को बढ़िया बनाने के लिये यह आवश्यक है कि सबसे अच्छे पदार्थ प्रयुक्त हों। अच्छी बियर तभी मिल सकती है जब कि हर विषय में उचित ध्यान दिया जाय।

---

# धूमकेतु (Comets)

श्री नत्थनलालजी गुप्त

कभी-कभी आकाश में एक अद्भुत पदार्थ दृष्टि पड़ता है जिसमें एक छोटे से तारे के समान प्रकाशित शिर होता है, और उसके पीछे एक बहुत लम्बी चौड़ी चमकीली पूँछ होती है; इसे धूमकेतु या पुच्छल तारा कहते हैं। अंग्रेजी में यह कोमेट (comet) कहलाता है। पहले समय के लोग इसे अनिष्टकर समझते थे और जब कभी वह दिखाई देता था तो बहुत डर जाते थे। वह लोग इसे युद्ध, मरी, अकाल या और किसी बड़े अमङ्गल का कारण ख्याल करते थे। प्रायः यह भी समझा जाता था कि जब कोई धूमकेतु दिखाई देता है तो संसार का कोई प्रसिद्ध मनुष्य या कोई बादशाह मर जाता है। जॉन गैडवरी कहता है, कि तलवार-की आकृति का धूमकेतु युद्ध को और बालों वाला किसी बादशाह की मृत्यु को प्रगट करता है। पिछले समय में जब जब बड़े बड़े धूमकेतु दृष्टि पड़ते रहे हैं, उनका सम्बन्ध किसी न किसी महाराजा की मृत्यु या किसी दूसरी बड़ी दुर्घटना के साथ, जो उसके पश्चात् घटी, जोड़ा जाता रहा है। जैसा कि ईसा से ३७१ वर्ष पहले एक बहुत बड़ा धूमकेतु प्रगट हुआ था; उन्हीं दिनों में एक भूडोल हैलस और बोरा नाम के दो नगर समुद्र मग्न हो गये थे; लोगों ने झट इस मुसीबत को धूम केतु के सिर मढ़ दिया। सन् १५५० ई० में जो धूमकेतु दिखाई दिया था उसे महाराजा चार्लस पञ्चम को गद्दी से उतारे जाने का

कारण समझा गया, यद्यपि वह धूमकेतु के प्रगट होने से पहले ही गद्दी से उतर चुका था। सन् १००० ई० में एक बहुत बड़ा धूमकेतु उदय हुआ; उस समय तो लोगों ने यही समझ लिया था, कि बस अब कयामत (प्रलय) आने वाली है और उससे वह इतने भयभीत हुए कि उन्होंने

फसलें तक न बोईं और सारा काम काज छोड़ कर बैठ गये। परिणाम यह हुआ कि योरुप में भयंकर अकाल पड़ गया और भूख से बहुत से लोग मृत्यु का ग्रास बन गये। सन् १०६६ ई० में विलियम विजयी ने इङ्गलिस्तान को जीत लिया; उसी साल एक बड़ा धूमकेतु भी प्रगट हुआ लोगों ने समझ लिया कि इसी धूमकेतु के कारण इंगलिस्तान पर यह मुसीबत आई है। आजकल विद्या की उन्नति के कारण लोगों के दिलों से ऐसी वहम की बातें कुछ दूर हो गई हैं, पर असभ्य देशों के लोग अब भी उससे बहुत भय खाते हैं और उसके उदय को अपने अभाग्य का चिन्ह समझते हैं।

बड़े धूमकेतु के, जो बिना दूरदर्शक के देखा जा सके, प्रायः दो भाग होते हैं—शिर और पुच्छ। शिर के मध्य में एक अधिक प्रकाशित विन्दु होता है, जो नाभि (Nucleus) कहलाता है। यह गैस के सदृश किसी क्रम प्रकाशित पदार्थ से घिरा रहता है जो नाभ्यावरण वा कोमा (Coma) कहलाता है। पुच्छ (Tail) भी उसी वायव्य

पदार्थ की बनी हुई होती है और सदा सूर्य्य से प्रतिकूल दिशा में रहती है। कोई धूमकेतु, जब बहुत दूर होने के कारण पहले-पहल केवल दूरदर्शक यन्त्र द्वारा देखा जाता है, तो प्रायः उसकी पूँछ नहीं होती। वह नीहारिका (Nebula) के समान धीमे प्रकाश से चमकता है। और गैस का एक गोलमोल धब्बा सा प्रतीत होता है। जब वह सूर्य के कुछ निकट पहुँच जाता है तो उसमें पूँछ निकल आती है और ज्यों-ज्यों वह सूर्य्य के समीप पहुँचता जाता है, पूँछ अधिक लम्बी और स्पष्ट होती जाती है। जब धूमकेतु सूर्य्य के बहुत ही समीप पहुँच जाता है तो उसकी नाभि में भी एक प्रकार की खलबली सी मच जाती है और उसमें बहुत से परिवर्तन होने लगते हैं। कभी-कभी उसमें से प्रकाश की बहुत सी शाखाएँ सी फूट निकलती हैं, वा तहें सी बन जाती हैं। जब सूर्य्य के पास से गुजर जाता है तो उसका उबाल कम हो जाता है। उसकी पुच्छ भी अब पीछे की अपेक्षा आगे की तरफ चलती है और क्रमशः छोटी होती जाती है। जब वह सूर्य्य से बहुत दूर निकल जाता है तो उसकी पुच्छ अदृश हो जाती है। कभी-कभी एक से अधिक नाभि भी देखी गई है। इस प्रकार से कतिपय धूमकेतुओं की एक से अधिक पुच्छ भी होती हैं। उदाहरणतः सन् १७४४ ई० में जो धूमकेतु दिखाई दिया था, उसकी छः पुच्छें थीं। बहुत छोटे धूमकेतुओं में न पुच्छ होती है और न नाभि। वह केवल हलके आलोक के धब्बे से प्रतीत होते हैं और उनकी गति-विधि से ही जाना जाता है कि वह धूमकेतु हैं।

धूमकेतु या पुच्छल तारे अत्यन्त हलके और झिर-झिरे पदार्थ से बने हुए हैं। इस बात का पता उस समय लगता है जब कोई बड़ा पुच्छल तारा बहुत ही छोटे-छोटे ताराओं के ऊपर से गुजरता है। वह तारे धुंधले होते हैं, कि उनके ऊपर से कोई बादल की पतली सी तह भी गुजरती है तो वह बिलकुल अदृश हो जाते हैं; किन्तु, वही तारे धूमकेतु की पुच्छ में से, जो लाखों मील मोटी होती है, अपनी पूरी चमक दमक के साथ दृष्टि आते हुए दिखाई दिया करते हैं।

केपलर का विचार था कि आकाश में धूमकेतुओं की संख्या इतनी है जितनी समुद्र में मछलियाँ। किन्तु हमें वह कभी कभी ही दर्शन दिया करते हैं। कारण यह है कि जब कोई धूमकेतु हमारे बहुत निकट पहुँच जाता है, तभी वह हमें दिखाई दिया करता है। दूर के धूमकेतु या तो कभी दूरवीक्षण यन्त्र में से दृष्टि आ जाया करते हैं, या कभी फोटोग्राफी के प्लेट पर अपना धुँधला सा चिन्ह छोड़ जाया करते हैं। इस समय हमें ७०० से अधिक पुच्छल ताराओं का ज्ञान है, जिनमें बहुत से तो बहुत ही छोटे और धुँधले हैं, और केवल दूरवीक्षण यन्त्र द्वारा ही देखे जा सकते हैं। निसन्देह बहुत से ऐसे भी होंगे जो हमें कभी और किसी प्रकार से भी दृष्टि नहीं आ सकते; क्योंकि जब हमारे निकटतम होते हैं तब भी वह सौर जगत की सीमा से बाहर ही रहते हैं। बड़े-बड़े धूमकेतुओं के नाम उन

प्रसिद्ध ज्योतिर्विदों के नामों पर रक्खे गये हैं, जिन्होंने उन्हें खोज निकाला, या उनकी गति विधि जानने का विशेष प्रयत्न* किया था; जैसे हेली का धूमकेतु (Halley's comet) इन्क्के का धूमकेतु (Enckey's comet)। कुछ धूमकेतु उस वर्ष से सम्बन्धित किये गये हैं जिस वर्ष उन्हें देखा गया था, और यदि एक ही वर्ष में कई धूमकेतु एक के पीछे एक दृष्टि गोचर हुए तो वर्ष के साथ क्रम-संख्या भी जोड़ दी जाती है जैसे १८५८ का धूमकेतु सं० ६।

धूमकेतु बहुत बड़े बड़े होते हैं। उनके शिर का व्यास (इस सिरे से उस सिरे तक आर-पार गुजरने वाली रेखा) ४०००० मील से भी ऊपर होती है। सन् १८५८ई० के डोनाटी के धूमकेतु (Donati's comet) के सिर का व्यास २५०००० मील पाया गया था और १८११ ई० के धूमकेतु के सिर का व्यास तो एक समय सूर्य के व्यास से भी बड़ा कूता गया था। एक अद्भुत बात यह है कि धूमकेतु ज्यों-ज्यों सूर्य के निकट पहुँचता जाता है, उसका सिर छोटा और पुच्छ बड़ी होती जाती है। इसका कारण सम्भवतः यह है कि शिर का वायव्य पदार्थ कुछ तो सूर्य के प्रचण्ड ताप के प्रभाव से अधिक पतला होकर अदृश हो जाता है और कुछ पूँछ में सम्मिलित होकर उसको अधिक लम्बी बना देता है। नाभि का व्यास १०० मील से ८००० मील तक होता है। इससे भी तरह तरह के परिवर्त्तन होते रहते हैं। धूम केतु के पुच्छें तो सूर्य के निकट पहुँच कर अत्यन्त लम्बी हो जाती हैं। उनकी लम्बाई प्रायः एक करोड़ (१०००००००) मील से दस करोड (१०००००००००) मील तक पाई गई है। सन् १८४३ ई० के धूम केतु की पुच्छ इससे भी अधिक अर्थात्, पन्द्रह करोड (१५०००००००) मील लम्बी थी। पुच्छ की मोटाई भी लाखों मील होती है और विस्तार मे वह सूर्य से हजारों गुणा अधिक होती है।

किन्तु आकार इतना अधिक होते हुए भी, धूम केतु का भार उसके शिर सहित, जो पूँछ की अपेक्षा अधिक ठोस होता है, बहुत ही कम पाया गया है। क्योंकि धूमकेतु के आकर्षण का कुछ भी प्रभाव पृथ्वी, किसी और ग्रह या अग्रह पर कभी देखा नहीं गया किन्तु, यह तो देखा गया है कि जब कोई धूमकेतु किसी ग्रह के बहु पास से गुजरता है, तो वह ग्रह उसे कुछ न कुछ अपनी तरफ खींच लेता है; इससे वह अपने मार्ग से भटक जाता है और उसे एक नवीन मार्ग स्वीकार करना पड़ता है। सन् १८७७ ई० की घटना है, कि एक धूमकेतु जब बृहस्पति के पास से गुजरने लगा तो उसके चाँदों ने उसे पकड़ लिया और खूब परेशान किया। इसका भार इतना हलका था कि जहाँ तक विचार करने से मालूम हुआ, उसमें कुछ भी शक्ति न थी जिससे उन चाँदों को अपनी कक्षाओं पर गति करने से कुछ भी अड़चन पड़ती। जब वह किसी प्रकार उनसे छुटकारा पाकर बाहर निकला तो उससे और कोई क्षति तो न पहुँची किन्तु इतना अय हुआ कि आइन्दा के लिये उसका मार्ग बिलकुल बदल गया; और वह अपने पुराने मार्ग पर फिर कभी लौट कर न आ सका। यदि किसी धूमकेतु का भार पृथ्वी के भार का लाखवाँ भाग भी हो तो भी ग्रहों की चाल पर उसका कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पड़ना चाहिये।

धूमकेतुओं का आकार तो बहुत बड़ा होता है और भार बहुत कम, इसलिये उनका घनत्व भी बहुत ही कम होना चाहिये। अन्दाजा लगाया गया है, कि कोमा (Coma) का घनत्व हमारे वायु-मंडल के घनत्व के हजारवें भाग से भी कम होता है, और पूँछ तो उससे भी अधिक भिरभिरी होती है।

जब धूमकेतु सूर्य के निकट पहुँच जाता है, तो उसमें अद्भुत प्रकार के परिवर्तन होने लगते हैं, पहले उसकी नाभि (शिर का मध्य बिन्दु) अधिक चमकने लगती है; फिर उसके उस पार्श्व में से, जो सूर्य्य की ओर होने के कारण अधिक ताप सहन करता है, प्रकाश के कितने ही फव्वारे से छूटने लगते हैं, जिनके कारण ज्योति का एक सुन्दर पंखा सा बन जाता है, यह प्रकाश की किरणें घूम कर पीछे को मुड़ जाती है, और पुच्छ में

*हमारे ज्योतिष ग्रन्थों में भी धूमकेतुओं के ऐसे ही नाम पाये जाते हैं जो उनके आविष्कर्ता ऋषियों के नाम पर रक्खे गये हैं जैसे उद्यालक, काश्यप आदि।

सम्मिलित हो जाती है, मानो जोर की पवन उस आलोकित पदार्थ को, जो नाभि में से निकल रहा है, उड़ाकर पीछे की तरफ ले जा रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि सूर्य धूमकेतु की नाभि को तो, जो अपेक्षाकृत ठोस और भारी होती है, अपनी तरह खींचता है; किन्तु उस हलके पदार्थ को, जिससे कोमा और पुच्छ बनती है, अपने से परे धकेलता है। इस सम्बन्ध में ओल्बर्स ( Olbers ) साहिब का ऐसा विचार है, कि धूम केतु का शिर और पुच्छ जिन हलके परमाणुओं से बने होते हैं, वह किसी न किसी प्रकार की विद्युत शक्ति से अवश्य प्रभावित होते हैं, और वैसी ही विद्युत शक्ति सूर्य्य में भी होती होगी, इसलिये यह परमाणु सूर्य से सदा दूर ही भागने का प्रयत्न किया करते हैं, कतिपय विद्वानों का ऐसा भी मत है, कि सूर्य के आलोक का ही उन परमाणुओं पर दबाव पड़ता है, जिससे वह बाहर की तरफ़ अकेले जाते हैं। यह भी हिसाब लगाया है कि हमारी पृथ्वी हर सूर्य के आलोक का दबाव ७५००० टन के बराबर है। अतः यह तो स्पष्ट ही है, कि धूमकेतु की पुच्छ कोई अलग पदार्थ नहीं है, किन्तु, उन्हीं पदार्थों के, जिनसे धूम केतु का शिर बनता है, पीछे की ओर अकेले जाने से उत्पन्न हो जाती हैं, और यही कारण है, कि जब धूम केतु सूर्य से बहुत दूर होता है, तब तो उसकी कोई पुच्छ नहीं होती, किन्तु जब वह सूर्य के समीप पहुँच जाता है, तो पुच्छ पैदा हो जाती हैं, और ज्यों ज्यों उसके अधिक निकट पहुँचता जाता है, पुच्छ भी अधिक लम्बी होती जाती हैं, और जब वह सूर्य के पास से गुजर जाता है, तो पुच्छ घटने लगती हैं, और अन्त में बिल्कुल नहीं रहती। और यह बात भी समझ में आजाती है, कि किस कारण से पुच्छ सदा सूर्य से प्रतिकूल दिशा में रहती है—अर्थात्, जब धूम-केतु सूर्य्य की तरफ़ आरहा होता है, तब तो शिर आगे और पुच्छ उसके पीछे-पीछे चलती हैं, किन्तु जब वह सूर्य से परे जा रहा होता है, तो उसकी पुच्छ आगे-आगे चलती है और शिर पीछे-पीछे खिसकता है।

कतिपय धूमकेतुओं की नाभि के गिर्द प्याज के छिलकों के समान, वामक पदार्थों की तहें तले ऊपर चढ़ी होती हैं। जब धूम केतु सूर्य्य के निकट पहुँचता है, तो यह तहें अधिक स्पष्ट हो जाती हैं। नाभि के साथ वाली तह अधिक चमकती है, अन्य तहें क्रमशः धुँधली पड़ती जाती हैं, यही तहें पीछे की तरफ़ लम्बी होकर पुच्छ बन जाती है, कुछ लोगों का विचार है कि पुच्छ खोखले शंकु जैसी होती है।

पुच्छल तारे की पुच्छ कुछ न कुछ मुड़ी हुई अवश्य होती है। जिस दिशा में वह गति कर रहा होता है, पुच्छ उससे उल्टी दिशा में मुड़ी रहती है। रूस देश के प्रसिद्ध ज्योतिषि प्रो० ब्रेडीखाईन (Pro: Bredikhine) की सम्मति है, कि पूछें तीन प्रकार की होती हैं। प्रथम वह जो बहुत लम्बी और सीधी होती हैं और सूर्य से बिल्कुल विरुद्ध दिशा में रहती हैं। यह ऐसे पदार्थों से बनती हैं, जिनपर सूर्य की पीछे ढकेलनेवाली शक्ति अधिक जोर से प्रभाव डालती है, इस कारण परमाणु बड़ी तेजी से पीछे की ओर ढ़केले जाते हैं; और बहुत दूर तक फैल जाते हैं। इस प्रकार की पुच्छें हाईड्रोजन गैस (Hydrogen) से बनी हुई ख्याल की जाती हैं। सन् १८११ ई०, १८४३ ई० और १८६१ ई०, के पुच्छल तारों की पुच्छें इसी प्रकार की थीं। दूसरी प्रकार की पुच्छें कुछ अधिक टेढ़ी और पर या खंजर की आकृति की होती हैं। उनके परमाणुओं पर सूर्य की उक्त शक्ति का कम प्रभाव पड़ता है। यह हाईड्रोकारबन्स (Hydrocarbons) से बनी होती हैं। डोनाटी (Donati) और कोगी (Coggia) के धूम केतु इसके उदाहरण हैं। तीसरी प्रकार की पुच्छें बहुत छोटी, बहुत टेढ़ी और पंजे अथवा ब्रुस की आकृति की होती है। इनके परमाणुओं को सूर्य बहुत ही कम परे ढकेलता है। इनमें सोडियम (Sodium), लोहा और कुछ दूसरे पदार्थ पाये जाते हैं।

धूमकेतुओं या पुच्छल तारों की नाभियों के सम्बन्ध में ऐसा विचार किया जाता है कि वह बालू रेत के समान नन्हें नन्हें ठोस पार्थिव कणों वा रोड़ों का ढेर सा होता है, जो एक दूसरे से दूर दूर रहते हैं। बहुत टुकड़ों के गिर्द वायव्य पदार्थों का एक गिलाफ़ भी लिपटा रहता है। यह टुकड़े आपस में रगड़ खाते और टकराते हुए चलते हैं, इसीसे प्रकाश उत्पन्न होता है, यह कहना कठिन है, कि

वह रोड़े कितने बड़े बड़े होते हैं किन्तु, हम पीछे वर्णन कर चुके हैं, कि धूम केतु अत्यन्त हलके फुलके और सूक्ष्म पदार्थ होते हैं। इससे तुम अनुमान लगा सकते हो, कि वह रोड़े बहुत बड़े २ नहीं हो सकते और वह एक दूसरे से पर्याप्त अन्तर पर ही रहते हैं। जब धूमकेतु सूर्य के निकट पहुँचता है, तो सूर्य के अधिक आकर्षण तथा ताप से उनमें बड़ी हलचल मच जाती है, जिससे नाभि का आयतन बढ़ जाता है। जो टुकड़े सूर्य्य के अधिक निकट होते हैं, उनपर अधिक प्रभाव पड़ता है—वह अधिक तेजी से थरथराने तथा आपस में टकराने लगते हैं, जिससे उनमें बहुत गर्मी पैदा हो जाती है। उस गर्मी तथा उस प्रचण्ड उत्ताप के कारण, जोसूर्य्य उनको सहन करना पड़ता है, वह न केवल पिघल जाते हैं, वरन उनमें से अनेक गैसें भी बन बन कर निकलने लगती हैं ; जिन्हें सूर्य्य पीछे की तरफ ढकेल देता है इसीसे पुच्छ बन जाती हैं। धूम केतु का प्रकाश कुछ तो ठोस कणों के परस्पर टकराने से उत्पन्न होता है और कुछ उन वैद्युत चिंगारियों से पैदा होता है, जो सूर्य्य के विद्युत प्रभाव के कारण कणों के बीच में पैदा होते रहते हैं, इसके अतिरिक्त वह सूर्य के प्रकाश को भी, जो उनके ऊपर पड़ता है, हमारी तरफ फेंकते रहते हैं, इसीलिये, धूम-केतुओं के रश्मि चित्रों में एक धुँधला सा लगातार रश्मि चित्र भी बनता है, जिसमें प्रायः फ्रानहूफर की रेखाएँ भी दृष्टि आया करती हैं। उसके ऊपर तीन प्रकाशित बन्द नज़र आते हैं; एक पीले भाग में, एक हरे में और एक नीले में, यह बन्द कारबन की चमकती हुई गैस के कारण प्रकट होते हैं। यह लाल रंग की तरफ तो स्पष्ट और प्रकाशित होते हैं और जामनी रंग की तरफ क्रमशः फीके पड़ते जाते हैं। सर विलियम ह्यूगिन्स (Sir William Huggins) और डा० कोपलेण्ड (Dr. Copeland) आदि ने प्रकाश विश्लेषक यन्त्र द्वारा मालूम किया है, कि धूमकेतु के शिर और पुच्छ में हाईड्रोजन गैस पाई जाती है, इससे ब्राडीखाइन (Bredi Khine) विचार का अनुमोदन होता है। मई सन १८८२ ई० में जो धूमकेतु दिखलाई दिया था, उसके रश्मि चित्र से प्रो० कोपलेंड ने सोडियम की दोहरी लकीर भी ढूँढ निकाली थी। यह पहला ही अवसर था, जब कि पुच्छल तारे में सोडियम पाई गई; और जब प्रकाश विश्लेषक की झिरी को चौड़ा कर दिया गया, सोडियम के प्रकाश में धूमकेतु का शिर और पुच्छ स्पष्ट दिखाई देने लगे। जब वह सूर्य्य के बहुत निकट पहुँच गया, तो सोडियम की रेखाएँ रोशन हो गईं पर हाईड्रोजन के बन्द हलके पड़ गये। सितम्बर सन् १८८२ ई० के पुच्छल तारे के रश्मि चित्र में भी, इसी प्रकार, सोडियम की रेखाएँ बहुत रोशन देखी गईं। इसका प्रो० कोपलेंड ने १८ सितम्बर के धूमकेतु का दिन के समय प्रकाश विश्लेषण द्वारा निरीक्षण किया था, इन्हें, सोडिमम की रोशन लकीरों के अतिरिक्त कुछ और रोशन लकीरें भी दिखलाई दीं; जो लोह की वाष्प से सम्बन्ध रखती थीं, मैंङ्गनीज (Manganese) की लाईन भी देखी गई, जो बर्नर के तापमान पर दृष्टि आया करती हैं। यह निरीक्षण, धूमकेतु के सूर्य्य के निकटतम विन्दु पर से गुजर जाने के एक दिन पश्चात, किया गया था।

अब तक हमने पुच्छल ताराओं की आकृति तथा प्रकृति के सम्बन्ध में वर्णन किया है, अब हम इनकी चाल ढाल के सम्बन्ध में कुछ बताना चाहते हैं। पहिले जन-साधारण का ऐसा बिचार था, कि पुच्छल तारे आकाश में चलने फिरने वाले सैलानी जीव हैं, इनका कोई निश्चित मार्ग नहीं है, जब और जिधर उनके दिल में आता है चल देते हैं, यही कारण हैं, कि उनके आने का कोई समय नियत नहीं किया जा सकता। वह जब तक अकस्मात ही हमारे सामने आ खड़े होते हैं और कुछ दिन हमे दर्शन देकर फिर न मालूम कहाँ चले जाते हैं। पहले लोगों का ऐसा ही विचार था, किन्तु आखिरकार न्यूटन साहिब ने यह सिद्ध कर दिया कि पुच्छल तारे भी निर्दिष्ट मार्गों पर गति करते हैं; और उसी प्रकार से नियम के पाबन्द हैं, जिस तरह दूसरे आकाशीय पिण्ड (ग्रह और उपग्रह आदि) किन्तु उनकी कक्षाएँ, ग्रहकक्षाओं से बहुत भिन्न आकृति की होती है। हम पहले वर्णन कर चुके हैं, कि ग्रहकक्षाएँ अण्डाकार होती हैं उनके दो केन्द्र होते हैं, जो नाभि वा फौकस कहलाते हैं। फौकसों में जितना अधिक अन्तर होता है, उतनी ही कक्षा अधिक लम्बोतरी

होती है। बहुत से धूमकेतु हमारे सूर्य्य के गिर्द ग्रहों के समान ही घूमते हैं, पर उनकी कक्षाएँ बहुत ही लम्बोतरी हैं। उनकी एक नाभिपर सूर्य्य स्थित है। अतः, एक समय तो वह सूर्य्य के अत्यन्त निकट पहुँच जाते हैं और दूसरे समय वह उससे बहुत ही दूर चले जाते हैं। हेली का पुच्छलतारा जब अपनी कक्षा के नीच स्थान (सूर्य्य के निकटस्थ बिन्दु) पर होता है, तो वह शुक्र ग्रह की अपेक्षा भी सूर्य्य के अधिक समीप पहुँच जाता है, और जब वह उच्चस्थान (सूर्य्य से अत्यन्त दूर) पर पहुँचता है, तो नैपच्यून (Neptune) की कक्षा से भी बहुत दूर तक, बाहर निकल जाता है। जब वह अपनी कक्षा पर सूर्य्य से बहुत दूर होता है तो वह कीड़े के समान बहुत ही धीरे-धीरे रेंगता है, पर जब वह सूर्य के अत्यन्त निकट पहुँच जाता है, तो उसकी आकर्षण शक्ति से अपनी रक्षा करने के लिये कई सौ मील प्रति सेकेण्ड के वेग से पागलों के समान, दौड़ने लगता है। न्यूटन महोदय ने यह बतलाया था, कि "बराबर समय में बराबर क्षेत्रफल" का नियम इनकी (धूमकेतुओं की) गति पर भी ठीक बैठता है। हेली का धूमकेतु अपनी कक्षा पर ७९ वर्षों में एक चक्कर लगाता है। वह अन्तिम बार सन् १९१० ई० में दृष्टिगोचर हुआ था और अब वह फिर १९८५-८६ ई० में दिखाई दे सकेगा।

कुछ पुच्छल तारों की कक्षाएँ इससे कम लम्बोतरी होती हैं। इसलिये वह शीघ्र-शीघ्र वापिस लौट आते हैं। जैसे इन्के का पुच्छल तारा (Enckey's Comet) तीन वर्षों से कुछ अधिक समय के पश्चात् वापिस लौट आता है। बहुत से ऐसे पुच्छल तारे हैं, जिनकी कक्षाएँ हेली के पुच्छल तारे की कक्षा से भी बहुत अधिक लम्बी है। सं० १८५८ ई० में एक पुच्छल तारा दृष्टिगोचर हुआ था, उसकी कक्षा इतनी लम्बी है, कि जब उसके सम्बन्ध में हिसाब लगाया गया, तो प्रतीत हुआ कि वह २१०० वर्षों पश्चात् वापिस लौट सकेगा। इसी प्रकार सन् १९११ ई० का पुच्छल तारा २९०० वर्ष के पश्चात् ही फिर दर्शन दे सकेगा। १८४४ ई० के पुच्छल तारे के सम्बन्ध में तो गणित द्वारा पता लगा है, कि वह एक लाख १००००० वर्षों से पहले कदापि वापिस नहीं लौट सकता।

बहुत से धूमकेतु ऐसे भी है, जो केवल एक बार हमारे सौर-साम्राज्य की सैर करने चले आये थे और अब उनके फिर कभी वापिस लौटने की कोई आशा नहीं है। कारण यह है कि उनकी कक्षाएँ दीर्घ वृत्ताकार (अण्डाकार) नहीं हैं, किन्तु, परवलय के (parabolic) आकार की हैं। दीर्घवृत्त के दोनों सिरे आपस में मिले हुए होते हैं, चाहे वह कितनी ही दूर जाकर मिलें। पर, परवलय (parabola) ऐसी आकृति है जिसके सिरे आपस में कभी नहीं मिलते। लोहे की पत्ती को मोड़ कर जिस प्रकार चिमटा बना लेते हैं, वैसे ही आकृति उसकी होती है। उसके दोनों सिरे एक दूसरे से परे ही-परे हटते चले जाते हैं, घूम कर एक दूसरे के समीप कभी नहीं आते। बहुत बड़े-बड़े और चमकीले धूमकेतुओं की कक्षाएँ प्रायः ऐसी ही पाई गई हैं। अतः इस दृष्टि से धूमकेतु दो प्रकार के हैं:—एक तो वह* जो हमारे सौर साम्राज्य से सम्बन्ध रखते हैं, और नियत समय के पश्चात् बार-बार लौटते हैं; दूसरे वह, जो अनन्त आकाश में घूमते हुए, केवल एक बार, किसी कारण से, सौर साम्राज्य में आ निकलते हैं, और यहाँ से वापिस जाने के पश्चात् फिर कभी लौट कर नहीं आते। पहली प्रकार के धूमकेतु भी दो तरह के हैं:—एक वह, जिनका भ्रमणकाल बहुत छोटा है; दूसरे वह, जिनका भ्रमणकाल बहुत लम्बा है।

ग्रहकक्षाएँ लगभग एक ही धरातल में स्थित हैं, और वह एक दूसरी को छेदन करती हुई बहुत छोटे-छोटे कोण बनाती हैं; तथा सारे ग्रह प्रायः एक ही दिशा में—अर्थात् पश्चिम से पूर्व को गति करते हैं। किन्तु, पुच्छल तारों की कक्षाएँ भू-कक्षा के धरातल के साथ हर प्रकार का कोण बनाती हैं; और उन पर कुछ तो ग्रहों के समान पश्चिम से पूर्व को और कुछ विलोम दिशा में—अर्थात् पूर्व से पश्चिम को चलते हैं।

*इनको नियतकालिक (periodical) धूमकेतु कहते हैं।

# शक्ति का नवीन और प्राचीन साधन : वायु

## ईंधन के अभाव की समस्या और उसका हल

लेखक—एच० मर्किट

इधर कुछ समय से ब्रिटेन के अनुसन्धानकर्ता और कारीगर ऐसे प्रयोगों की पुनरावृत्ति कर रहे हैं जो प्राचीन-काल में हमारे पूर्वजों ने प्राचीन ढंग से किए थे। स्काट-लैंड के उत्तरी किनारे से दूर आर्कने नामक द्वीप में वायु का ६० मील प्रति घंटे की गति प्राप्त करना कोई असाधारण घटना नहीं है। वायुगति नापने का कार्य आर्कने द्वीप तथा स्काटलैंड से कार्नवाल तक ऐसे स्थानों पर किया गया है जहाँ सारे वर्ष तेज हवा नियमितरूप से बहती है।

इतिहासकार इस बात पर सहमत नहीं कि प्राचीनकाल के निवासियों के लिए शक्ति का पहला साधन क्या था, वायु अथवा जल। इतना तो निश्चय है कि वायु और जलचक्कियाँ हमारी पुरानी टेक्निकल सफलताओं की प्रमाण हैं। ब्रिटेन जैसे औद्योगिक अभिवृद्धि के देशों में वायु से शक्ति प्राप्त करने की ओर पिछले डेढ़ सौ वर्षों से ध्यान नहीं दिया जा रहा है। व्यापक धारणा यह थी कि भविष्य में बहुत समय तक आवश्यक शक्ति पर्याप्तरूप में कोयले और तेल से प्राप्त की जा सकेगी।

पर तेल की निधि कभी न कभी तो समाप्त होगी ही। कोयले की राशि अनन्त नहीं है। फलतः अमेरिका, फ्रांस, डेनमार्क तथा अन्य देशों का ध्यान फिर से वायुचक्की की ओर आकृष्ट हुआ। और ब्रिटेन में तो एक वायुशक्ति उत्पादक कमेटी स्थापित की गई जिसके सदस्य वैज्ञानिक और सरकारी प्रतिनिधि हैं।

यद्यपि विशेषज्ञों का यह विचार नहीं है कि वायु एक दिन उद्योग के लिए गति प्राप्त करने का मुख्य साधन हो जाएगी पर इससे कोयले और श्रमिक की बचत वे अवश्य सम्भव समझते हैं। उदाहरणार्थ, यदि इस साधन से दस लाख किलोवाट शक्ति उत्पन्न की जा सकी तो कोयले के वार्षिक खर्च में लगभग २० लाख टन की बचत सम्भव होगी।

### भावी वायुचक्की

भावी वायुचक्की की रूपरेखा कैसी होगी ?

निश्चय ही उन वायुचक्कियों से विपरीत जिन पर डाक क्विग्सोट ने आक्रमण किया था। और प्राचीन प्रकार की वायुचक्कियाँ आधुनिक टेक्निकल विकास के अनुरूप भी न होंगी। भविष्य में जलचक्कियों का निर्माण उन नियमों पर आधारित होगा जिनके अनुसार कुछ देशों में पतले इस्पात की परदार मीनारें खड़ी की जाती हैं। मीनार की ऊँचाई लगभग २०० फीट होगी। अनुमान के अनुसार एक हजार से लेकर दो हजार किलोवाट की उत्पादकशक्ति वाली वायुचक्कियाँ सब से कम खर्चीली होंगी। एक पहाड़ी पर इस प्रकार की लगभग बीस चक्कियाँ बनाई जाएँगी।

पहाड़ी या पर्वत के आकार का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है। उदाहरणार्थ पहाड़ी के किनारे पर वायुचक्की खड़ी करने पर हवा का झुकाव पंखों को ठीक से काम नहीं करने देगा।

बीस वायुचक्कियों के विद्युत उत्पादक यंत्र जिनकी सम्पूर्ण उत्पत्ति तीस हजार किलोवाट होगी देश की विद्युतशक्ति को प्रत्यक्षरूप से करेंट पहुँचा सकते हैं। इस प्रकार यदि विभिन्न स्थानों पर ऐसे कई "विद्युत केन्द्र" स्थापित किए गए तो वायुचक्कियों से बिजली की नियमित उत्पत्ति कुछ हद तक निश्चित हो सकती है और कोयला प्रयुक्त करने वाले उत्पादक यंत्रों पर दबाव कम पड़ेगा। इन वायुचक्कियों में रुचि विशेषज्ञों तक ही सीमित नहीं है। संसार के कई देशों में अलग बसे हुए खेत और बस्तियाँ इनका बहुत लाभदायक उपयोग कर सकती हैं। आस्ट्रेलिया, कैनेडा, दक्षिणी और पश्चिमी अफ्रीका इत्यादि को दस

किलोवाट के उत्पादक यंत्रों की आवश्यकता है और ब्रिटेन ऐसी चक्कियों का निर्यात प्रारम्भ करने वाला है।

अणुशक्ति के इस युग में शक्ति के प्राचीनतम साधन का उपयोग एक विलक्षण घटना समझी जाएगी। सच बात यह है कि आज, जब कोयले और तेल के अभाव ने हमारे सामने इतनी विकट समस्याएँ खड़ी कर दीं हैं, शक्ति के दोनों साधनों का उपयोग बड़ा आवश्यक हो गया है।

# वृद्धावस्था में नवजीवन

लेखक—ईगन लार्सेन

चिकित्सा विज्ञान के एक नवीन क्षेत्र में लीन डाक्टर मरजोरी वारेन की कार्रवाइयों को अमेरिकी प्रेक्षकों ने कई महीनों तक बहुत लगन के साथ अध्ययन किया है। डा० वारेन वेस्ट मिडिल सेक्स हॉस्पिटल, लन्दन के "जेरिआट्रिक" (अभी हाल में बने इस शब्द को वृद्धजनों की शारीरिक तथा मानसिक देख रेख के लिये अपनाये जानेवाले आधुनिक वैज्ञानिक ढंग तथा सिद्धान्तों की जगह प्रयुक्त किया जाता है) यूनिट के केवल अध्यक्ष ही नहीं है बल्कि उन्होंने इस प्रकार की चिकित्सा बड़े कमाल से सम्पूर्ण की है। वह "जेरिआट्रिक" विज्ञान के एक प्रबल समर्थक होने के नाते पिछले दस वर्षों से अथक परिश्रम कर रहे हैं।

विशालरूप से औद्योगिक देशों में वृद्ध लोगों की संख्या आये दिन बढ़ती रहती है, इसलिये वहाँ बुढ़ापे ने एक समस्या का रूप धारण कर लिया है। लेकिन आज विकसित सामाजिक अवस्थाओं से उत्पन्न जीवन की बढ़ी हुई आशा और रोग—युद्ध में मिली सफलता तथा पहले के असाध्य रोगों की चिकित्सा प्रारम्भ होने से बुढ़ापा समस्या का महत्व अधिक बढ़ गया है। इन विकासों के परिणामस्वरूप बूढ़ों की देख रेख केवल सामाजिक हित की समस्या नहीं रही बल्कि एक अत्यन्त व्यावहारिक महत्व का प्रश्न बन गया है, क्योंकि हारे-थके तथा चारपाई चिपकू बूढ़ों की संख्या वृद्धि के कारण सारी समाज की कार्रवाइयों पर बुरा प्रभाव पड़ने लगता है।

## डा० वारेन की विधियां

इस ओर मिली महान सफलता का प्रमाण इस बात से मिल जाता है कि पिछले कुछ महीनों के अन्दर ७०० में से ५०० मामलों की चिकित्सा डाक्टर वारेन की विधियों के अनुसार की गई थी। पाँच सौ लंगड़े लूलों ने हाथ पैर हिलाना प्रारम्भ कर दिया और ये निराश बूढ़े अन्य कई रोगों से मुक्त होकर जीवन में रुचि लेने लगे हैं। हिलती गर्दन तथा भगवान के अतिथि बनने वाले स्त्री पुरुष टिकठी पर चढ़कर आने की जगह अपने पैरों से चलकर अस्पताल से बाहर आये थे।

इस तरह के इलाज में मालिश, सुइयों, गर्माई और खूराक पर अधिकतर ध्यान दिया जाता है। लेकिन इनके अतिरिक्त शारीरिक व्यायाम, कामकाज, सहानुभूतिपूर्ण वातावरण और आशावाद का चालू रहना अधिक महत्वपूर्ण है।

फिलहाल ब्रिटिश अस्पतालों में छः जेरिआट्रिक यूनिट काम कर रहे हैं, और शीघ्र ही अधिक विस्तार होने वाला है। वृद्ध देखरेख चिकित्सा समाज नामक एक संगठन स्थापित हो चुका है। इसमें स्थानीय अधिकारी सहयोग दे रहे हैं। सर्वप्रथम कार्नवाल काउन्टी कौंसिल ने डा० वारेन के हाथ तले निकला एक ऐसा चिकित्सक नियुक्त किया था।

लेकिन इलाज से स्वस्थ होने वाले वृद्धजनों का क्या होता है, और अन्य लोगों का अस्पताल में मरीज बनना किस तरह रोका जा रहा है? ये भिन्न प्रश्न हैं, जो कि शायद चिकित्सा से भी अधिक आवश्यक है। पर इन प्रश्नों का सम्बन्ध सामाजिक हिताधिकारियों के साथ लागू होता है।

### अधिक उपयोगी कार्य

रेड क्रा ससोसायटी, सालवेशन आर्मी, फ्रेंडली सोसाइटीज़ और नेशनल कौंसिल आफ विमेन आदि कई बड़े संगठनों का प्रतिनिधित्व करने वाली 'राष्ट्रीय वृद्धजन हितकारी समिति' नामक संस्था लन्दन में, १६४१ में स्थापित की गई थी। देश के सभी भागों में चालू स्थानीय कमेटियों के द्वारा बहुत ही उपयोगी कार्य किया जाता है।

इस समय राष्ट्रीय कमेटी की मन्त्रिणी कुमारी डी० रामजे के सामने यही मुख्य समस्या उपस्थित है कि बूढ़े लोगों को समाज में कैसे फिर से स्थान दिलाया जाये? क्योंकि अकेले रहने वाले बूढ़ों के लिये समाज में दुबारा अपना स्थान बनाना बहुत आवश्यक है। विशेष क्लब और सामाजिक केन्द्र केवल साठ से अधिक आयुवाल को रेडियो मनोरंजन, जलपान, ताश खेलने की सुविधायें, काढ़ने-बुनने और बिरादरी नाच-गान प्रस्तुत करते हैं। कार्यक्रम में बाहरी वायुसेवन और शौकिया नाटक व्यवस्था भी सम्मिलित हैं।

ये केन्द्र कुछ घन्टों के मनोरंजन के अतिरिक्त अन्य कई सहूलियतें भी प्रदान करते हैं। मित्रता पैदा कराई जाती है, जिससे किसी के घर आ जाना आरम्भ हो सके। कई प्रकार की आपसी सहायता प्रसन्नता से दी ली जाती हैं। हितकारी संगठनों के प्रतिनिधि एकाकी बूढ़ों को सहायता अथवा सलाह देने के विचार से नियमपूर्वक देखने जाते हैं। घरेलू सहायता और पकापकाया भोजन उनके घरों पर भेजा जाता है।

### घर या क्लब

ठीक तो यही है कि बूढ़े लोग जहाँ तक हो अपने घर पर ही रहें लेकिन कुछ को निवासयुक्त क्लबों में भेजना श्रेयकर होता है जिनके लिये आजकल इंग्लैंड और वेल्स में ऐसे ७०० ठिकाने उपस्थित हैं। ५०० ऐच्छिक और लगभग २०० स्थानीय अधिकारियों द्वारा चलाये जाते हैं। ऐसे एक आदर्श गृह में २० से ४० आदमियों को आश्रय दिया जाता है। जो चाहे वह अपने कमरे में दूसरे को भी टिका सकता है अथवा उसे अकेला कमरा मिल जाता है। कुछ स्थानीय अधिकारियों ने बूढ़ों की विशेष बस्तियाँ बसाई हैं जिनमें एक मंजिली कुटियों की पंक्तियाँ दिखाई देती हैं। ऐसे एकत्रित बूढ़ों में श्रेणी विभाजन समाप्त हो जाता है। लन्दन के बूढ़ों के लिये ३४ बंगले बनाये गये थे। इनमें रहने वालों में से चार व्यक्ति तीन कमरे-के मकानों, ११ चार कमरे वाले मकानों, ११ पाँच कमरे वाले मकानों, और छः उन मकानों से आये जिनमें छः कमरे थे। सम्पन्न परिवार की एक बुढ़िया अकेलेपन के कारण अपने बड़े मकान का सुख छोड़कर यहाँ रहने इसलिये आई कि उसे हर समय मिलने बोलने के लिये आस पास चार आदमी दिखाई देते रहेंगे।

बुढ़ापा पेन्शन प्राप्त करने के अधिकारी लोगों को भी अपना धन्धा न छोड़ने की सलाह दी जाती है और स्थानीय अधिकारी हारे थके लोगों को कम परिश्रम वाला काम काज दिलाने का प्रयत्न कर रहे हैं। अभी बहुत काम बाकी है जिसे समाजशास्त्री के अतिरिक्त अर्थशास्त्री और टेक्निकल विशेषज्ञों ने भी सम्पूर्ण करना है।

---

# परीक्षा एवं शिक्षा का माध्यम हिन्दी

## हाई स्कूल तथा इन्टरमीडियेट शिक्षा बोर्ड का निश्चय

हाई स्कूल तथा इंटरमीडिएट एजुकेशन बोर्ड, संयुक्त प्रान्त ने अपनी २८ फरवरी, १६४६ की बैठक में, जो इलाहाबाद में शिक्षा संचालक के सभापतित्व में हुई थी, निम्नलिखित प्रस्ताव पास किये :—

(क) हाई स्कूल में १६५२ तथा इंटरमीडिएट में १६५३ से परीक्षा का माध्यम हिन्दी हो। (ख) सभी स्वीकृत संस्थाओं में ६ वीं कक्षा में जुलाई, १६५०, १० वीं एवं ११ वीं कक्षा में जुलाई, १६५१ तथा १२ वीं कक्षा में जुलाई, १६५२ से शिक्षा का माध्यम हिन्दी हो।

(ग) १६५२ की हाई स्कूल परीक्षा तथा १६५३ की इंटरमीडिएट परीक्षा से प्रश्न पत्रों का अंग्रेजी में दिया जाना बन्द कर दिया जाय।

(घ) जिन उम्मीदवारों की मातृ-भाषा हिन्दी न हो, उन्हें अंग्रेजी या उर्दू में प्रश्नों के उत्तर लिखने की स्वीकृति देने के लिये सभापति को अधिकार हो।

# विज्ञान-परिषद् की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकों की सम्पूर्ण सूची

१—**चुम्बक**—हाई स्कूल में पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी० सजि०; ।।।≈)

२—**सूर्य-सिद्धान्त**—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखने का सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१६; १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महाबीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; सजिल्द; दो भाग में, मूल्य ८) । इस भाष्य पर लेखक को हिन्दी साहित्य सम्मेलन का १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है।

३—**वैज्ञानिक परिमाण**—विज्ञान की विविध शाखाओं की इकाइयों की सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस-सी०, १)

४—**समीकरण मीमांसा**—गणित के एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।) द्वितीय भाग ।।≈),

५—**निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)**—गणित के एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमतीप्रसाद अग्निहोत्री बी० एस-सी०; ।।।),

६—**बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित**—इंटरमीडियेट के गणित के विद्यार्थियों के लिये—ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी०, १।),

७—**गुरुदेव के साथ यात्रा**—डाक्टर जे० सी० बोस की यात्राओं का लोकप्रिय वर्णन; ।≈)

८—**केदार-बद्री यात्रा**—केदारनाथ और बद्रीनाथ के यात्रियों के लिये उपयोगी; ।≈)

९—**वर्षा और वनस्पति**—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शंकरराव जोशी; ।≈)

१०—**विज्ञान का रजत-जयन्ती अंक**—विज्ञान परिषद् के २५ वर्ष का इतिहास तथा विशेष लेखों का संग्रह; १)

११—**फल-संरक्षण**—दूसरा परिवर्धित संस्करण-फलों की डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनाने की अपूर्व पुस्तक; २१२ पृष्ट, २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्र नारायण सिंह एम० एस-सी०; २।।)

१२—**व्यङ्ग-चित्रण**—(कार्टून बनाने की विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी एम० ए०; १७५ पृष्ठ; सैकड़ों चित्र, सजिल्द; २)

१३—**मिट्टी के बरतन**—चीनी मिट्टी के बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र; सजिल्द; २)

१४—**वायुमंडल**—ऊपरी वायुमंडल का सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र सजिल्द; २)

१५—**लकड़ी पर पालिश**—पालिश करने के नवीन और पुराने सभी ढंगोंका ब्योरेवार वर्णन । इससे कोई भी पालिश करना सीख सकता है—ले डा० गोरखप्रसाद और श्रीरामरतन भटनागर, एम०, ए०; २१८ पृष्ठ; ३१ चित्र, सजिल्द; २)

१६—**उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर**—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश, आकार बड़ा विज्ञान के बराबर २६० पृष्ठ, २००० नुसखे, १०० चित्र; एक-एक नुसखे से सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हजारों रुपये कमाये जा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थ के लिये उपयोगी; मूल्य अजिल्द २।।)

१७—**कलम-पैबंद**—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ५० चित्र; मालियों, मालिकों और कृषकों के लिये उपयोगी; सजिल्द; २)

१८—**जिल्दसाज़ी**—क्रियात्मक और ब्योरेवार । इससे सभी जिल्दसाज़ी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०; १८० पृष्ठ, ६२ चित्र; सजिल्द २),

१६—त्रिफला—दूसरा परिवर्धित संस्करण-प्रत्येक वैद्य और गृहस्थ के लिये—ले० श्री रामेश वेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ; ३ चित्र, एक रङ्गीन; सजिल्द २।।।=)

यह पुस्तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय, की १३ श्रेणी के लिए द्रव्यगुण के स्वाध्याय पुस्तक के रूप में शिक्षापटल में स्वीकृत हो चुकी है।"

२०—तैरना—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगों को बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद पृष्ठ १०४ मूल्य १),

२१—अंजीर—लेखक श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, अंजीर का विशद वर्णन और उपयोग करने की रीति। पृष्ठ ४२, दो चित्र, मूल्य ।।=)

यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय के शिक्षापटल में स्वीकृत हो चुकी है।

२२—सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओं के विचित्र संसार, पेड़ पौधों की अचरज-भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र और तारों की जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिष के संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञान के आकार के ४५० पृष्ठ और ३२० चित्रों से सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द मूल्य ६)

२३—वायुमण्डल की सूक्ष्म हवाएँ—ले० डा० सन्त-प्रसाद टंडन, डी० फिल० मूल्य ।।।)

२४—खाद्य और स्वास्थ्य—ले० श्री डा० ओंकारनाथ परती, एम० एस-सी०, डी० फिल० मूल्य ।।।)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं :—

२५—विज्ञान हस्तामलक—ले० स्व० रामदास गौड़ एम० ए०। भारतीय भाषाओं में अपने ढंग का यह निराला ग्रंथ है। इसमें सीधी सादी भाषा में अठारह विज्ञानों की रोचक कहानी है। सुन्दर सादे और रंगीन पौने दो सौ चित्रों से सुसज्जित है, आज तक की अद्भुत बातों का मनोमोहक वर्णन है, विश्व-विद्यालयों में भी पढ़ाये जाने वाले विषयों का समावेश है, अकेली यह एक पुस्तक विज्ञान की एक समूची लैब्रेरी है, एक ही ग्रंथ में विज्ञान का एक विश्वविद्यालय है। मूल्य ६)

२६—भारतीय वैज्ञानिक—१२ भारतीय वैज्ञानिकों की जीवनियाँ; ले० श्री श्यामनारायण कपूर, सचित्र ३८० पृष्ठ; सजिल्द; मूल्य ३।।) अजिल्द ३)

२७—वैक्युम-ब्रेक—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवे में काम करने वाले फिटरों, इंजन-ड्राइवरों, फोरमैनों और कैरेज एग्ज़ामिनरों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ; ३१ चित्र जिनमें कई रंगीन हैं, २),

## विज्ञान - परिषद् बेली रोड, इलाहाबाद

मुद्रक—जगतनारायण लाल हिन्दी साहित्य प्रेस प्रयाग। प्रकाशक—विज्ञान-परिषद्, बेली रोड, इलाहाबाद

भाग ६९
संख्या ३, ४

संवत् २००६,
जून, जुलाई १९४९

वार्षिक मूल्य ३) ]

[ एक संख्या का मूल्य ।)

**श्री हरिश्चन्द्र आई० सी० एस०, जज, प्रयाग हाईकोर्ट** ( सभापति )
प्रो० सालिगराम भार्गव तथा डा० श्री रंजन ( उप सभापति ) डा० हीरालाल दुबे (प्रधान मंत्री )
डा० रामदास तिवारी तथा श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव ( मंत्री ) श्री हरिमोहनदास टंडन (कोषाध्यक्ष )

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

प्रधान सम्पादक
**श्री रामचरण मेहरोत्रा**
विशेष सम्पादक
डाक्टर सत्यप्रकाश — डाक्टर विशंभरनाथ श्रीवास्तव
डाक्टर गोरखप्रसाद — डाक्टर ब्रजकिशोर मालवीय

## विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

### परिषद् का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

### परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमंत्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे, जिन के द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

### सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिये वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशन में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित, परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों विवरणों इत्यादि के बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उन का प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन-चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायेंगे।

## विषय-सूची

# विज्ञान

**विज्ञान परिषद, प्रयाग का मुख-पत्र**

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयत्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

**भाग ६९** | **सम्वत् २००६ जून-जुलाई १९४९** | **संख्या ३-४**

# परमाणु बम पर कुछ विचार

[ लेखक—डा० ओङ्कारनाथ पर्त्ती ]

लगभग चार वर्ष होने आये जब प्रथम बार 'परमाणु बम' का प्रयोग हीरोशीमा और नागासाकी पर हुआ था। इसमें कम से कम एक लाख प्राणियों की मृत्यु हो गयी। संसार भर में इस नवीन बम की चर्चा होने लगी। अखबारों में भी परमाणु बम के विषय पर कई लेख छपे। कई सम्पादकों ने प्रथम बार अपने पत्रों में वैज्ञानिक लेखों को स्थान दिया। सर्व साधारण की भी रुचि इन लेखों के पढ़ने की ओर अग्रसर हुई। वैज्ञानिक पत्रों में तो इस विषय के लेखों की धूम मच गयी। कितने ही वैज्ञानिक अनेक रूप से इस विषय पर अपने विचार प्रकट करने लगे। समाचार पत्रों में तो परमाणु बम विषयक लेखों की एक बाढ़ सी आगयी।

क्या आपने कभी विचार किया है कि इन लेखों में कितनी बातें विश्वास करने योग्य हैं? 'परमाणु बम' का आविष्कार संयुक्त राष्ट्र अमरीका में हुआ है। अमरीका की सरकार इस विषय में पूर्ण सतर्क है कि परमाणु बम विषयक कोई भी महत्त्व पूर्ण बात किसीको भी मालूम न होने पाये। यह भी स्पष्ट है कि अमरीका से अभी तक कोई भी छिपी बात किसी को भी ज्ञात नहीं हो पाई है। इतना जानते हुये भी वैज्ञानिक अथवा सर्व साधारण इन 'परमाणु बम' विषयक लेखों को बड़े चाव से पढ़ते हैं। इनको पढ़कर उन्हें ऐसा जान पड़ता है कि परमाणु बम के विषय में अपनी ज्ञान वृद्धि कर रहे हैं। बड़े खेद की बात है कि यह जानते हुये भी कि इन लेखों के लेखकों को परमाणु बम के विषय में वास्तव में कुछ भी ज्ञात नहीं है जनता इन्हें पढ़ने में अपने ज्ञान का विकास समझती है। मेरी समझ में तो यह सब लेख अज्ञानता के भंडार हैं। यदि इन लेखों में कुछ सार होता तो अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अमरीका अन्य सब राष्ट्रों पर परमाणु बम की धौंस न जमाता होता।

आपको यह जानकर कदाचित् आश्चर्य होगा कि परमाणु बम के विषय में कितनी कम बातें ज्ञात हैं। क्या कोई जानता है कि परमाणु बम का रूप कैसा है? यह बम कैसे चलाया जाता है? कहाँ बनाया जाता है? संसार में कितने ऐसे बम हैं? भविष्य के युद्ध में इनका प्रयोग किस रूप में होगा? इन प्रश्नों का उत्तर कोई लेखक नहीं दे

सकता। जो इनका उत्तर जानते हैं उन पर अमरीका सरकार की कड़ी निगरानी है। उनका कुछ लिखना तो दूर रहा वह किसीसे भी इस विषय में बात तक नहीं कर सकते। आप इससे अनुमान कर लीजिये कि परमाणु बम विषयक लेखों में कितना सार हो सकता है।

वास्तव में बात यह है कि परमाणु बम के विषय में जितने भी लेख लिखे गये हैं उन सबका आधार १२५ पेज की स्माइथ कमेटी की रिपोर्ट है। यह रिपोर्ट चार साल पहले लिखी गई थी। इसके पश्चात् कोई भी रिपोर्ट कहीं भी नहीं छपी है। आप इस रिपोर्ट को आदि से अन्त तक पढ़ जाइये आपको पहले बताये गये प्रश्नों का कोई उत्तर न मिलेगा। इस रिपोर्ट से परमाणु विज्ञान के ज्ञाता भले ही कुछ सूत्र प्राप्त कर सकें किन्तु किसी विषय के बारे में वह पूर्ण रूप से कुछ भी निश्चय नहीं कर सकते। इस विषय में शिकागो के सन टाइम्स में एक अज्ञात लेखक ने पारसाल लिखा था—

The man who writes about tho atomic bomb always .writes with the conscious knowledge that has information is sparse, that his most profound guesses may be so wrong as to be ludicurous. The facts that might enable him to correct his guesses are withheld from him."

भावार्थ—'परमाणु बम पर लिखने वालों को सदैव इसका भास रहता है कि उनका ज्ञान बहुत ही संकुचित है एवं उनके प्रौढ़तम अनुमान हास्यास्पद सिद्ध हो सकते हैं। जिन अनुसन्धानों के आधार पर सही अनुमान किये जा सकेत हैं वह उनको ज्ञात नहीं हैं।' बात तो कुछ ऐसी ही है।

संसार में प्रथम बार एक देश एक ऐसी योजना पर अरबों रुपया खर्च कर रहा है जिसके विषय में उस देश वासियों को भी वास्तविक ज्ञान नहीं है। परमाणु बम विषयक योजनाओं पर लगभग १० अरब रुपये अमरीका की सरकार खर्च कर चुकी है। और अब भी ऐसी योजनाओं पर लगभग डेढ़ अरब रुपये इस साल खर्च किये जायेंगे। कितने आश्चर्य की बात है कि इन छिपी हुई योजनाओं पर अरबों रुपये पानी की तरह बहाये जा रहे हैं और वहाँ की जनता को इसके बारे में कुछ जानने का भी अधिकार भी नहीं है।

परमाणु बम के विषय की जानकारी वास्तव में तीन प्रकार की है। प्रथम—परमाणु बम विषयक बृहत रूप से जानकारी है। सच कहा जाय तो सर्व साधारण को इसके बारे में रत्ती भर भी ज्ञान नहीं है। इस प्रकार की जानकारी पर अमरीकी सरकार की कड़ी निगरानी है। दूसरे—कुछ छिपे अनुसन्धानों के विषय की जानकारी है। बहुत से लोग समझते हैं कि हर देश के वैज्ञानिकों को इन अनुसन्धानों का अनुमान अवश्य है। वास्तव में परमाणु बम विषयक योजनाओं के उच्च कार्यकर्त्ताओं को छोड़कर अन्य किसी को भी इनका पता नहीं है। अन्य वैज्ञानिक कुछ छपी रिपोर्टों के आधार पर लम्बी उड़ान ले लेते हैं। वह प्राप्त ज्ञान के सहारे बात का बतंगड़ बनाकर अपने लेखों में जासूसी कहानी लेखकों की तरह एक रहस्य उत्पन्न कर देते हैं। इन लेखों में सत्यता केवल एक कहानी मात्र के समान होती हैं। तीसरे—परमाणु बम के कुछ बुनियादी बातों की जानकारी है। बुनियादी बातें इतनी अधिक हैं कि इनके विषय में सर्वसाधारण कोई अनुमान तक नहीं कर सकता। वैज्ञानिक यह जानते हैं कि सन् १९३९ के पश्चात् इस तरह की बुनियादी बातों के छपने पर कड़े नियन्त्रण लगा दिये गये हैं। उनकी जानकारी लगभग दस वर्ष पुरानी है। इस बीच में उन्हें पूर्ण विश्वास है कि अन्य बुनियादी बातों का पता लग चुका है किन्तु उनके विषय में बड़े संकुचित आधार पर केवल अनुमान मात्र किया जा सकता है।

अब यह देखना चाहिये कि हम परमाणु बम के विषय में क्या जानते हैं। पहले यह शब्द परमाणु बम ही लीजिये। एटौमिक ऐनर्जी कमीशन की रिपोर्ट में (atom bomb) अथवा परमाणु बम शब्द तक का भी कहीं प्रयोग नहीं किया गया है। जिस शब्द का प्रयोग किया गया है वह है (atomic weapons) अर्थात् परमाणु हथियार। इससे जान पड़ता है कि परमाणु बम कोई एक प्रकार का बम नहीं है किन्तु इस प्रकार के कई हथियार हैं।

साधारणतया यह समझा जाता है कि नागासाकी पर गिरने वाला बम हीरोशीमा पर गिरने वाले बम से अधिक शक्ति शाली था। कदाचित् यह दोनों बम विभिन्न प्रकार के थे। सरकारी तौर पर इस विषय पर भी हमें कुछ ज्ञात नहीं है।

हाल ही में ऐजी विटोक नामक स्थान पर परमाणविक हथियारों के कुछ प्रयोग हुये हैं। इन प्रयोगों के विषय में अखबारों में कई कल्पनायें छपी हैं। किसी में यह बताया गया है कि नवीन परमाणु बम बड़ी-बड़ी तोपों से छोड़े जा सकते हैं। किसी में यह छापा गया कि इनको टारपीडो के समान सब मशीनों से छोड़कर प्रयोग किये गये हैं। कहीं पर यह बताया गया कि पानी के नीचे इन बमों को चला कर देखा गया है। इतना ही नहीं वरन् कई समाचार पत्रों में तो इनके प्रभावों के रोमाञ्चकारी विवरण भी छपे हैं। यदि आप वास्तविकता का पता लगाना चाहते हैं तो जान ई० हना जो ऐजीविटोक में कमांडर थे, के शब्दों पर ध्यान दीजिये। संवाददाताओं के अनेक प्रश्नों के उत्तर में उन्होंने इतना ही बताया—"केवल तीन प्रयोग किये गये थे। तीनों में से कोई भी पानी के नीचे नहीं किया गया और न ऊपर से कोई बम गिराये गये। यह प्रयोग केवल प्रयोगशाला में किये गये प्रयोगों के समान थे।" इसके अतिरिक्त उन्होंने और कुछ बताने से साफ इनकार कर दिया। इससे स्पष्ट है कि इन प्रयोगों के जो भी विवरण छपे हैं वह केवल संवाददाताओं के मस्तिष्क की उड़ान हैं।

एक और बात पर ध्यान दीजिये। हीरोशीमा पर परमाणु-बम गिरने के उपरान्त जो खबरें छपीं उनसे ज्ञात होता था कि इस बम में विध्वंसकारी तत्वों (जिनका वास्तविक रूप से किसी भी लेखक को ज्ञात नहीं है) की मात्रा ४·४ से २२० पौंड तक है। बाद की इंगलैण्ड से छपी रिपोर्टों से पता चलता है कि इससे विध्वंसकारी तत्वों की मात्रा २२ से ६६ पौंड है। लुई फ़िशर नामक संवाददाता ने एक फुटबाल के नाप के परमाणु बम का जिक्र किया है। कदाचित् उसका अभिप्राय विध्वंसकारी तत्वों की मात्रा के नाप से है। यदि मान लिया जाय कि यूरेनियम तत्व का प्रयोग किया गया है तो एक घन फुट मात्रा का भार लगभग १४ मन होगा क्योंकि यूरेनियम का आपेक्षिक घनत्व १८ है। यह बम इतना भारी तो ज्ञात न ही पड़ता। कुछ वर्ष पहले यह खबर छपी थी कि डा० लुइस स्लोटिन की मृत्यु दो विध्वंसकारी तत्वों के टुकड़ों को हाथ से अलग करने में हो गयी। यह भी खबर छपी थी कि यह टुकड़े फटने ही वाले थे। साथ ही ध्यान में रखा जाय कि हीरोशीमा पर बी २६ टाइप का हवाई जहाज बम लेकर गया था तो कुछ ऐसा जान पड़ता है कि यह बम न तो इतना हलका है कि इसे एक मनुष्य उठा सके और न इतना भारी ही है कि एक छोटा हवाई जहाज इसे आसानी से न ले जा सके। सत्य का तो किसी को भी पता नहीं है।

परमाणु बम किस सिद्धान्त पर बनाया गया है, इस विषय पर भी कुछ कहना कठिन है। हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि इसके बनाने में रेडियो तत्वों का प्रयोग किया जाता है। कई रेडियो तत्व ज्ञात हैं। किस रेडियो तत्व का वास्तव में प्रयोग किया जाता है इस विषय में वैज्ञानिक पत्रों में बहुत से अनुमान छपे हैं। फ्राँस के सुप्रसिद्ध परमाणु वैज्ञानिक जोलियो क्यूरी के अनुसार इस बम में पोलोनियम नामक तत्व से निकले अल्फा कण यूरेनियम तत्व के एक टुकड़े पर प्रहार करते हैं और एक शृंखला-बद्ध विध्वंसकारी प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। अन्य वैज्ञानिक लेखकों ने अल्फ़ा कण के विभिन्न सूत्रों के उपयोग बताये हैं। विज्ञान को इस प्रकार के कई तत्व ज्ञात है जिनसे अल्फाकण निकलते रहते हैं। इनमें एक तत्व रेडियो थोरियम भी है जो भारतवर्ष में ट्रावनकोर में पाया जाता है। इसमें से कौन से तत्व का वास्तव में परमाणु बम बनाने में प्रयोग किया जाता है, इसका किसी भी लेखक को पता नहीं है। इन लेखकों के अनुमान इस प्रकार के हैं जैसे कि एक आतिशबाजी का पटाखा बनाने वाला एक आधुनिक बम जिसे उसने देखा तक नहीं है के विषय में अनुमान करे।

अमरीका के डिफेन्स सेक्रेटरी फौरस्टल् और डा० वनेवर बुश का कहना है कि रूसी वैज्ञानिकों को परमाणु बम बनाने का आधार ज्ञात है। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि रूस वाले परमाणु बम बना पाये है कि नहीं। इस विषय में डा० एफ० एच० स्पैडिंग के शब्दों

पर ध्यान दीजिये जो उन्होंने गत वर्ष शिकागो से कहे थे।

"There is no secret which could be written on a piece of paper and handed to an enemy, nor could any one man if he wished give away the secret of the atomic bomb. The so called secret which we wish to keep from a potential enemy consists of the technical know-how to produce nuclear reactions on a large scale in a chain reaction. It is the thousands of detail and industrial know-how which is widely scattered among our scientific and technical men, and no one man or group of men have all these details at their command."

भावार्थ—परमाणु बम के विषय में छिपी बातें ऐसी नहीं है कि कोई भी एक मनुष्य शत्रु को कागज पर लिखकर बता सकता है। जो बातें हम छिपाना चाहते हैं वह बड़े पैमाने पर परमाणु केन्द्र की विध्वंसकारी श्रृंखला बद्ध प्रतिक्रियायें करने की जानकारी है। इस कार्य में हजारों ऐसी बातों की जानकारी आवश्यक है जिनका ज्ञान हमारे कार्यकर्त्ताओं में फैला हुआ है। ऐसा कोई भी व्यक्ति या समूह नहीं है। जिन्हें सब बातों की जानकारी हो।

यदि ऐसा न होता तो क्या लगभग एक लाख कार्यकर्त्ताओं में से जो परमाणु-बम सम्बन्धी योजनाओं में काम कर रहे हैं कोई भी शत्रुओं से न जा मिलना।

अमरीका के पास कितने परमाणु बम हैं, इसका भी ठीक-ठीक पता नहीं है। बुलेटिन आफ एटॉमिक साइन्टिस्टस् के एक लेख में इस विषय पर अनुमान किया गया है। यदि एक परमाणु बम के बनाने में ४.४ से २२० पौंड तक यूरेनियम २३५ का प्रयोग किया जाता है तो तैयार परमाणु बमों की संख्या ३५०० से ७० तक कुछ भी हो सकती है।

अन्त में परमाणु केन्द्र सम्बन्धी विज्ञान के विषय में भी कुछ कहना आवश्यक है। परमाणु केन्द्र का ज्ञान अभी तक अधूरा ही है। उसके विषय में अभी तक बहुत सी बातें ज्ञात नहीं है। संसार के सर्व श्रेष्ठ परमाणु केन्द्र विज्ञान के ज्ञाता, वास्तव में परमाणु बम के जन्मदाता डा० जे० रार्बट ओपनहाइमर का कथन है—

"It is quite possible that we not only do not know what the elementary particles of matter are but the whole way of thinking about their interaction which we have derived from theory may be wrong."

भावार्थ—यह संभव है कि हमें इसका भी ज्ञान न हो कि तत्त्व के सूक्ष्मातिसूक्ष्म विभाग क्या हैं, साथ ही उनकी प्रतिक्रियाओं के विषय में जो प्रचलित धारणायें हैं वह सब गलत सिद्ध हों।

# गेरुई (Puccinia Graminis) की जीवन कथा

(ब्रह्मस्वरूप मेहरोत्रा, एम० एस-सी०)

प्राचीन काल में रोम निवासी हर साल २५ अप्रैल को रोबीगस (Rogibus) नामक अनाज के देवता की प्रतिष्ठा में एक त्योहार मनाया करते थे। इस त्योहार पर सज-धज कर एक जलूस निकाला जाता था और वह उन देवता के कुंज पर पहुँचता था। जहाँ वेदी (altar) पर शराब चढ़ाई जाती थी फिर एक लाल कुत्ता बलिदान किया जाता था। यह अन्तिम प्रथा सबसे आवश्यक समझी जाती थी। गेहूँ पर गेरुई करीब २५ अप्रैल के ही दिखाई पड़ती थी और ऐसा अनुमान किया जाता था कि कुत्ते वाला तारा (Dog Star) कुछ दुष्ट प्रभाव डालता है। इसलिए रोबीगस देवता को लाल कुत्ते को मार कर याद दिलाई जाती थी कि वह उस कुत्ते वाले तारे को बस में कर लें जिससे गेहूँ की खेती बच जाय।

चित्र १:(अ) गेरुई की धारियाँ गेहूँ के तने और पत्तियों पर। (ब) एक धारी बड़े आकार में।

सत्रवीं, अट्ठारवीं और उन्नीसवीं शताब्दी तक प्राचीन काल के प्रमुख अंधविश्वास चलते रहे। गेहूँ के खेत से किसी लाल कुत्ते का निकल जाना, एक बड़े अभाग्य की बात समझी जाती थी। गेहूँ के खेतों के पास बारबरी (barberry) नामक झाड़ियाँ बहुत पायी जाती थीं। इन झाड़ियों का सम्बन्ध गेरुई की बीमारी से समझा जाता था। बारबरी के जंग के समान रंग (rusty), उसके पीले फूल और लाल फलों के कारण ऐसा सोचा जाता था कि इसीके छूत से पीले लाल रंग की बीमारी गेहूँ के पौधों पर हो जाती है।

गेरुई से बचने की प्रथम युक्ति बारबरी थी झाड़ियों को नष्ट करना था। यह युक्ति कुछ तो तार्किक की और कुछ अँधविश्वास के कारण ही थी। फिर भी यह युक्ति कई जगह कानून से लागू की गई। १६६० ई० में ही बारबरी इरैडिकेशन ला (Barberry Eradication Law) रोयन (Roven) में लगा दिया गया था। यद्यपि विलायत में बारबरी के नष्ट करने का कोई कानून न बना फिर भी बेचारी बारबरी की झाड़ियाँ १८ वीं सदी में संदेहवश ही नष्ट की जाने लगीं।

१७६७ ई० में एक इटली निवासी वैज्ञानिक फेलिस फोन्टेना (Felice Fontana) ने गेरुई की धारियाँ (Streaks) गेहूँ के डण्ठल और पत्तियों पर देखीं। उनको अनुवीक्षण यन्त्र (microscope) से देखने से ज्ञात हुआ कि यह कोई छोटे पिछलगू पौधे (Small parasite Plants) से होती है। गेरुई की धारियों से जो धूल निकलती है वह दो प्रकार की होती है। एक तो अंडे की तरह उसका रंग जंग के रंग के समान होता है। दूसरी लम्बी छोटे कील के समान, जो रंग में बिलकुल काली होती है। १६वीं सदी में परसून (Persoon) ने फोनटैना के दोनों तरह के पिछलग्गू पौधों को देखा उसने सोचा कि वे दो प्रकार के शिलिंध्र (Fungi) हैं तथा गोल, अंडे के समान, वालों का नाम युरिडो लाइनेरिस (Uredo Linearis) और लम्बे कील के समान चीजों का नाम पकसीनिया ग्रेमिनिस (Puccinia graminis) रक्खा। सर जोसेफ बैंक्स ने सन् १८०७

में कृषकों के सामयिक विचार पर जोर दिया। उस समय कृषकों का कहना था कि गेरुई जो पहले लाल होती है वह ही फिर काली हो जाती है। सन् १८५४ तक में तुलेसने नामक भाइयों ने यह सिद्ध कर दिया कि पुरिड़ो और पक्सीनियाँ दो स्वरूप हैं। अन्त में एन्टन डीबारी ने यह स्पष्ट रूप से दिखा दिया कि एक ही माइसीलियम (mycelium) से दोनों प्रकार के स्पोर्स (spores) निकलते हैं।

यह डीबारी का ही प्रयास था जिससे गेरुई की जोवन कहानी धीरे-धीरे पूर्ण रूप से पता लग गई। बारबरी की पत्तियों पर दो तरह की वस्तुये दिखाई दी। पत्ती के ऊपरी भाग में बिन्दुओं की तरह चीजे देखी जो अनुवीक्षण यँत्र से देखने से स्पेनिश शराब के फ्लास्क (Spanish wine flask) की तरह दिखाई दीं। वे स्पर में गोनियाँ (Spermagonia) के नाम से पुकारे गये। इनके अन्दर तीसरे प्रकार के स्पोर्स (Spores) दिखाई पड़े जिनका नाम स्पर में शिया (Spermatia) रक्खा।

चौथे प्रकार के स्पोर्स तब दिखाई पड़े जब काले वाले स्पोर्स—टीलिटो स्पोर्स-का किला फूटा उनसे जो प्रोमाइ सीलियम (Promy Celium) निकलती है उससे जो स्पोर्स निकले उनका नाम स्पोरीड़िया (Sporidia) रक्खा।

बारबरी के नीचे वाले भाग में जो वस्तुये पाई गई वे एसीडिया के नाम से कहलाई। इनसे जो पीले स्पोर्स निकले उनका नाम एसीसियोस्पोर्स रक्खा गया। यही स्पोर्स बारबरी की पत्तियों से डड कर बसंत ऋतु में गेहूँ के ऊपर गेरुई का रूप धारण कर लेते हैं यह रूप पहले युरिडोस्पोर्स का रहता है।

इस प्रकार डी बारी ने गेरुई की जीवन कथा का पता १८६०-१८६५ ई० के बीच में ही लगा लिया। क्रेगी ने १९२७ ई० में स्पर में गोनियाँ के कार्य का भी ठीक पता लगालिया। संक्षेप में, डी बारी की खोज से, गेरुई का जीवन चक्र इस प्रकार से है:—बसंत ऋतु के अन्त में और गर्मी के शुरू होने पर गेहूँ के पौधों पर जंग के रंग के समान स्पोर्स होते हैं जो युरिडोस्पोर्स कहलाते हैं। गर्मी के अन्त में और शरद ऋतु के शुरू होने पर गेहूँ ही के ऊपर दूसरी प्रकार के स्पोर्स होते हैं इनका रंग काला होता है और टीलिटोस्पोर्स के नाम से पुकारे जाते हैं। यह टीलिटोस्पोर्स शीत ऋतु के अन्त में और बसंत ऋतु के शुरू होने पर बारबदी की पत्तियों पर दो प्रकार की वस्तुयें बनाते हैं, एसीडिया और स्परमेंगोनियाँ। एसीडिया से जो स्पोर्स निकलते हैं वह फिर गेहूँ की खेती पर पहुँच कर युरिडोस्पोर्स का रूप धारण कर लेते हैं। इस प्रकार गेरुई भिन्न रूप में साल भर जिन्दा रहती है।

अभी तक इस बीमारी से बचने का कोई उचित उपाय नहीं मालूम हुआ है। सिर्फ एक ही उपाय है, वह है। बारबरी की झाड़ियों को नष्ट करना।

## भारतवर्ष में बारबरी और गेहूं का सम्बन्ध

उपर लिखी गेरुई की कथा सिर्फ़ संसार के शीतल देशों की ही है। हमारे भारतवर्ष में हर साल गेरुई अपना दुष्ट परिणाम दिखाती है। परन्तु हमारे भारतवर्ष में गेहूँ खेती के साथ साथ मैदानों में कोई बारबरी की झाड़ियाँ नहीं पाई जाती हैं, वे सिर्फ पहाड़ियों पर ही पाई जाती हैं। मेहता की खोज से यह अब पूर्ण रूप से तय हो गया है कि यहाँ बारबरी का सम्बन्ध गेहूँ की गेरुई से बिलकुल नहीं है। यद्यपि यहाँ पहाड़ियों पर जो बारबरी की झाड़ियाँ पाई जाती हैं उन पर भी गेरुई के दो रूप, एसीड़िया और स्परमेंगोनियाँ पाये जाते हैं पर वे उस समय पर निकलते हैं जब मैदानों से गेहूँ की खेती करीब करीब कट चुकती है। गेहूँ की खेती मैदानों में और पहाड़ियों पर अक्टूबर-नवम्बर के बीच में बोई ज़ाती है। गेरुई गेहूँ पर दिसम्बर-जनवरी के महीनों में दिखाई देती है। बारबरी के ऊपर एसीडिया और स्परमेंगोनियां मार्च और अप्रैल से पहले नजर नहीं आते। गेहूँ की खेती मैदानों में इससे (मार्च-अप्रैल) पहले ही कट चुकती है। इसलिए यह कदापि नहीं सोचा जा सकता कि बारबरी से उड़कर एसीडियोस्पोर्स गेहूँ की खेती को नुकसान पहुँचाते हैं।

पहाड़ियों की तराइयों में गेहूँ की खेती और जगह से पहले होती है इस गेहूँ की खेती पर गेरुई का आक्रमण भी पहले ही होता है। इन गेहूँ की खेतियों से गेरुई के युरिडोस्पोर्स उड़कर मैदानों की गेहूँ की खेती पर

आक्रमण करते हैं। मैदानों में अधिक गर्मी होने के कारण हर साल जो युरिडोस्पोर्स और टीलिटोस्पोर्स बचते हैं वे वहीं पर मर जाते हैं इसलिए हम यह नहीं सोच सकते कि पिछले साल की खेती के युरिडोस्पोर्स गेहूँ की खेती पर आक्रमण कर सकते हैं। ऐसा सोचा जाता है कि योरप तथा उत्तरी अमरीका में इसको नष्ट करने में लाखों रुपये खर्च किए जाते हैं। मेहता का कहना है कि बारबरी की झाड़ियों को नष्ट करने में लाखों रुपये खर्च किए जाते हैं। मेहता का कहना है कि बारबरी की झाड़ियों को नष्ट करने में रुपया खर्च करना भारतवर्ष के लिए किसी प्रकार
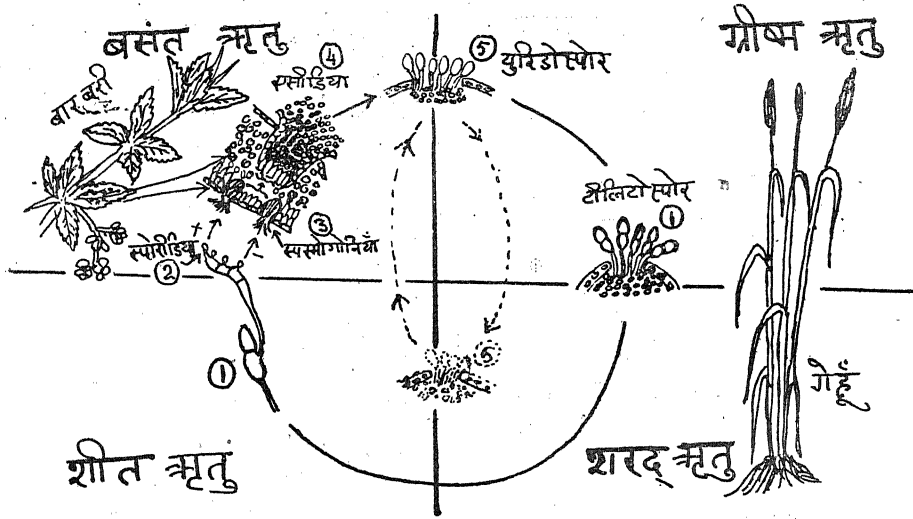
चित्र २:- गेरुई (*Puccinia graminis*) की जीवन कथा (संसार के शीतल देशों की)।

भारतवर्ष में नैपाल और नीलगिरी की तराइयों से मैदानों की गेहूँ की खेती को नुकसान पहुँचता है।

इससे स्पष्ट मालूम होता है कि भारतवर्ष में गेहूँ के ऊपर गेरुई की बीमारी फैलाने में बारबरी कोई भाग नहीं लेती। तो फिर बारबरी को नष्ट किया जाय या नहीं? लाभदायक नहीं होगा। अभी तक हमारे पास कोई ऐसा उचित साधन नहीं है जिससे हम गेरुई ऐसी दुष्ट बीमारी से अपने गेहुँओं को बचा सकें। वह मनुष्य संसार का सबसे बड़ा उपकार करेगा जो इस दुष्ट बीमारी से बचने का उचित प्रयोजन निकालेगा।

# समुद्री पौधा

## एक अकिंचन पदार्थ की असाधारण उपयोगिता

[ लेखक—जोज़ेफ़ कामर ]

प्रत्येक बार तूफ़ान के बाद समुद्र की लहरें स्काटलैंड के पश्चिमी किनारे, हेब्रिडीज और आयरलैंड के किनारे पर ढेर के ढेर समुद्री पौधे फेंक जाती हैं-अनुमान के अनुसार पचास लाख टन प्रति वर्ष। इन पौधों को काटने योग्य मशीनें अभी तक नहीं बनाई जा सकी हैं—यद्यपि इस ओर प्रयत्न हो रहे हैं-और यह कार्य अभी तक हाथों से किया जाता है।

यह जानने की उत्सुकता स्वाभाविक है कि आखिर इन पौधों को काटना क्यों आवश्यक है। समुद्री पौधों में आल्जीनिक एसिड नामक एक बहुत उपयोगी रसायनिक पदार्थ होता है। प्रस्तुत लेख में इसी विषय की संक्षेप में चर्चा की जाएगी।

ऊन तैयार करने की विधि में आल्जीनिक एसिड बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है तथा कांतिवर्धक वस्तुओं, आइस क्रीम, टूथ पेस्ट इत्यादि बनाने में कीटाणुओं की उत्पत्ति के लिए अगर-अगर नामक पदार्थ द्वितीय महायुद्ध के पूर्व जापान से मँगाया जाता था। युद्ध में इस साधन के बंद हो जाने पर वैज्ञानिकों ने पता लगया कि स्काटलैंड में उगने वाले समुद्री पौधों से एक मुरब्बे के समान वस्तु निकलती है जो अगर-अगर की पूर्ति करने योग्य है।

आल्जीनिक एसिड का पता १८८३ में ई० सी० स्टैनफोर्थ ने लगाया था और आगामी वर्षों में उद्योग तथा औषधियों में इससे बहुत काम लिए जाने लगे। धूल और गर्द से बचने के लिए कारखानों के मजदूर आल्जीनिक एसिड अपने हाथों पर चुपड़ लेते हैं।

### औषधि के क्षेत्र में

खाँसी के सभी मिक्सचरों में आल्जीनिक एसिड होता है; दवा की गोलियों पर इसे चुपड़ा जाता है; और गाज, जो घाव और फोड़ों के अन्दर भरे जाते हैं, आल्जीनिक एसिड के रेशों को बुनकर बनाए जा सकते हैं। कीटाणुओं से मुक्त होने के कारण इस प्रकार के गाज यदि डाक्टर द्वारा घावों के अंदर ही रहने दिए गए फिर भी मरीजों के लिए हानिप्रद नहीं होते क्योंकि वे शरीर में मिल जाते हैं। जैसा आप जानते हैं, पार्श्वशूल अथवा फेफड़ों की सूजन के रोग में फेफड़ों का विषैला पानी सूराख द्वारा बाहर निकाला जाता है। पानी खाल की दोनों तहों के बीच में जमा हो जाता है और उसके निकाले जाने पर तहें फिर आपस में जुड़ना प्रारम्भ करती हैं। इनकी रगड़ से मरीजों को पीड़ा होती है, विशेषतः मौसम बदलते समय। कैंब्रिज की स्ट्रेंजविज प्रयोगशाला के वैज्ञानिक डाक्टर बेल्न ने यह मालूम किया कि आल्जीनिक एसिड का इंजेक्शन लगाने पर दोनों तहों के बीच में एक पतली झिल्ली खड़ी की जा सकती है जो इन्हें आपस में जुटने से रोके। इस प्रकार पार्श्वशूल की बाद वाली कठिनाइयों से मरीजों को छुटकारा मिल गया और मौसम के बदलने पर उन्हें भयभीत होने की आवश्यकता भी नहीं रही।

कुछ कुछ अन्य रसायनिक पदार्थों के साथ मिला कर प्रयोग करने पर आल्जीनिक एसिड खून रोकने के काम में प्रयुक्त होता है और यह उसकी सबसे मुख्य विशेषता है। कैलसियम ऐलजिनेट के रूप में इससे एक झिल्लीदार वस्तु, गाज, अथवा लम्बी रेशों वाली रुई के समान चीज बनाई जाती है जो खून का बहाव अथवा उसे जमाने में सहायक होती है। कैलसियम आल्जीनेट पेनिसिलीन अथवा कीटाणु नाशक अन्य पदार्थों के साथ मिलकर घावों पर पट्टी और उन्हें भरने के काम भी आता है।

### नवीन उपयोग

डाक्टर बेल्न की धारणा है कि अनुसंधानों की सहायता से आल्जीनिक एसिड के कई नवीन उपयोगों का पता

लगाया जा सकता है। १६४४ तक वैज्ञानिक यह नहीं जानते थे कि आल्जीनिक एसिड में शरीर द्वारा ग्रहण किए जाने का गुण है

इस खोज के बाद हड्डियों के टूटने पर उन्हें नष्ट होने से बचाने में कैलसियम आल्जीनेट का प्रयोग बड़ी सफलतापूर्वक आरंभ किया गया। जहाँ अब तक पैराफीन नामक चर्बी के समान पदार्थ और ग्लिसरीन-तेल या चर्बी से निकाला हुआ एक तत्व-उपर्युक्त काम में प्रयुक्त होता था, मिडिलसेक्स अस्पताल ( लन्दन ) के डाक्टर मैथ्यूज के प्रस्ताव पर सोडियम और आल्जीन मिश्रित घोल से यह काम लिया जाने लगा।

आल्जीनिक एसिड के इस गुण-गान में हम यह न भूल जायँ कि उसकी प्राप्ति का आधार एक समुद्री पौधा है। ऊपर आल्जीनिक एसिड के कुछ चमत्कारों का ही उल्लेख किया गया है, पर उसका क्षेत्र विस्तृत है और उपयोग असंख्य।

---

# गाय बनाम भैंस

[ ले०—ठाकुर दूधनाथ सिंह, प्रधानाध्यापक, कृषि विद्यालय, बुलन्द शहर ]

आज कल किसी भी वस्तु विशेष की महत्ता उसकी प्राचीन मान्यता के नाते ही समाज स्वीकार नहीं करता। यदि उसके 'क्यों' और 'कैसे' का संतोषजनक उत्तर नहीं मिलता और उसकी शंकाओं का पूर्णतया समाधान नहीं हो जाता तो वह केवल पुरानी प्रथा और विश्वास के आधार पर ही अपने पूर्वजों की अनुसरित रीति रिवाजों को भी धर्मान्धता से आगे श्रेय देने को तैयार नहीं होता। अतएव ऐसे युग में समाज के हृदय में गाय के प्रति पुराने आदरणीय भावना को पुनरुत्पन्न करने के लिए यह आवश्यकीय है कि उसके प्रमाणसिद्ध गुणों से लोगों को परिचित किया जाय।

कुछ वर्षों से दूध तथा उससे उत्पन्न वस्तुओं के हेतु भैंस पालने की प्रथा अधिक प्रचलित हो गई है। उसके दूध का गाढ़ापन और उसमें घी की मात्रा का अधिक होना कुछ अंश तक इसका कारण हो सकता है परन्तु गाय की अपेक्षा भैंस के पाले जाने का प्रमुख कारण गाय से प्राप्त वस्तुओं की गुणकारिता की अनभिज्ञता है। उन्हीं-में से कुछ गुणों को पाठकों के सामने रख-कर गाय को 'गो माता' के पुराने उच्च पद पर स्थापित करना ही इस लेख का ध्येय है।

कुछ लोगों का यह कहना कि भैंस गाय से अधिक दूध देती है और उसमें घी की मात्रा भी अपेक्षित अधिक होती है ध्रुव सत्य नहीं। मिलन (Millen) साहब ने इस विषय की काफी छान-बीन की। अपने प्रयोगों के आधार पर उन्होंने निम्न लिखित मत प्रगट किया है :—

"भैंस भारी जानवर है और प्रति दूसरे वर्ष कई महीनों तक सूखी (दूध न देने वाली) रहती है। इसके पालने का खर्च भी कठिनता से ही निकल पाता है। व्यवसाय के दृष्टिकोण से किसी भी दुग्धशाला (डेयरी) में अधिक भैंसों का रखना ठीक नहीं।"

गाय तथा भैंस के अपेक्षित निम्नाङ्कित गुणों तथा अवगुणों पर विचार करने पर यह स्पष्ट हो जायगा कि गाय इतनी महत्व-पूर्ण क्यों है :—

भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है। खेती के लिए भैंसा बैल जैसा उपयोगी नहीं क्योंकि वह खाता तो बैल से कहीं अधिक है फिर भी हल अथवा गाड़ी में बैल की अपेक्षा बहुत धीमे चलता है। वर्ष के अधिक भाग में इस देश के मैदानों में पर्य्याप्त गर्मी होती है और भैंसे की दशा कड़ी धूप में और भी शोचनीय हो जाती है। जलवायु की इस प्रतिकूलता तथा अन्य कारणवश भैंसा प्रायः कम दिनों तक जीवित रहता है। गाय से दूध तो मिलता ही है साथ ही साथ उससे उत्पन्न बछड़े कृषि के काम आते हैं। दूध के लिये भैंस पालने का यह अर्थ हुआ कि दूध और कृषि कर्म के लिये भिन्न२ पशुओं का पालन पोषण किया जाय जिसमें लाभ के बदले हानि की ही अधिक सम्भावना है।

गाय भैंस की अपेक्षा शीघ्र युवावस्था को प्राप्त होती है और दूध देने लगती है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक ब्यांत में गाय भैंस की अपेक्षा अधिक दिनों तक दूध देती है और कम दिनों सूखी रहती है। गाय के सूखे काल (न दूध देने वाला समय) का पालन खर्च भी अपेक्षित बहुत ही कम है। बहुधा ऐसा देखा गया है कि भैंस के बच्चे बहुत मरते हैं और इस कारण बहुत सी भैंसें दो एक मास बाद ही एक समय दूध देने वाली (तोड़) हो जाती हैं। गाय भैंस की अपेक्षा लगभग तीन सप्ताह जल्दी ब्याती है।

भैंस को अधिक गर्मी और सर्दी दोनों सताती है परन्तु गाय की कष्ट सहन शक्ति अधिक है और वह गर्मी तथा सर्दी के कष्ट को मज़े में झेल लेती है और कम बीमार पड़ती है। यदि गाय को अच्छा चारा दिया जाय और उसकी उचित देख-रेख की जाय तो उसकी दुग्धोत्पादन शक्ति काफी बढ़ जाती है परन्तु उसी अनुपात में यह गुण भैंस में नहीं पाया जाता।

निम्नाङ्कित कोष्टक से ज्ञात होगा कि गाय का दूध जीवन सत्त्वों (vitamins) के दृष्टिकोण से भैंस के दूध की अपेक्षा उत्तम है :—

कोष्टक १—विभिन्न प्रकार के जीवन सत्त्वों की उपस्थिति

| नाम पदार्थ | जीवन सत्त्व | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| | अ | ब | स | द | ई |
| गाय का दूध | ××× | ×× | × | × | × |
| भैंस का दूध | ××× | × | × | × | × |

गाय के दूध में जीवन सत्त्व (ब) की मात्रा भैंस के दूध की अपेक्षा अधिक होती है और भैंस के दूध में जीवन सत्त्व (ई) का तो नितान्त ही अभाव होता है।

नीचे दिये हुए कोष्टक २ से यह साफ प्रकट है कि भैंस के दूध की अपेक्षा गाय के और स्त्रियों के दूध में अधिक सामञ्जस्य है और गाय के दूध में थोड़ा पानी और चीनी मिलाकर देने से मनुष्य के बच्चों का पालन मजे में हो सकता है। गाय और स्त्री की एक और भी सामञ्जस्यता अनोखी है। स्त्री और गाय दोनों ही के आठ मास के बच्चे साधारणतः जीवित नहीं रहते अपितु भैंस का ८ मास का बच्चा जिन्दा रहता है। गाय का ७ मास का बच्चा मनुष्य के बच्चे के समान जीता बच जाता है परन्तु भैंस का ऐसा बच्चा नहीं बचता।

कोष्टक २—स्त्री, गाय और भैंस के दूध में विभिन्न पदार्थों की प्रतिशत मात्रा

| पदार्थ का नाम | पानी | स्नेह पदार्थ | शक्कर | प्रोटीन | क्षार |
|---|---|---|---|---|---|
| गाय का दूध | ८६·२७ | ४·८० | ४·७८ | ३·४२ | ०·७३ |
| स्त्री का दूध | ८७·१४ | ३·७६ | ६·२६ | २·२३ | ०·८३ |
| भैंस का दूध | ८२·१४ | ७·४४ | ४·८१ | ४·७८ | ०·८३ |

गाय के दूध में स्थित क्षार भैंस के दूध के क्षार की अपेक्षा अधिक घुला हुआ और इस रूप में होता है कि बच्चे भी उसे सहज ही पचा सकते हैं। अस्थि-मार्दव rickets से पीड़ित बच्चों के लिए तो गाय का दूध बहुत ही गुणकारी है। इसके अतिरिक्त, प्रत्येक प्राणी के लिये गाय का दूध अधिक मधुर, बल तथा स्फूर्तिदायक, फेफड़े के लिए अत्योपयोगी और स्तम्भन शक्ति वर्द्धक है। नित्य गाय का दूध सेवन करने से नेत्रों की ज्योति बढ़ती है। इसके विपरीत भैंस का दूध बादी होता है और इसके पीने से सुस्ती आती है। बुद्धि को कुण्ठित करता है। जीवन सत्त्वों की दृष्टिकोण से गाय के घी से बढ़कर संसार में दूसरा पदार्थ नहीं। इसके प्रतिकूल भैंस के घी में जीवन सत्त्वों की कमी होती है और गर्म करने पर इसके जीवन सत्व(अ) का अत्यधिक भाग लोप हो जाता है। गाय के घी में आयोडिन Iodine भी पाया जाया है जिससे इसके सेवन करने वाले पोंते फूलने और घेघा की बीमारी कम होती है। पेचिश तथा उदर विकार के लिए गाय का मट्ठा बहुत ही गुणकारी है।

भारतवर्ष, चीन के दक्षिणी भाग और पूर्वी द्वीप समूह में ही भैंस पालने की प्रथा है। संसार के अन्य दूसरे देशों में भैंस के दूध का व्यवहार नहीं। यदि भैंस किसी भी रूप में गाय से अधिक उपयोगी सिद्ध हुई होती तो क्या इसे अब तक संसार के प्रगतिशील देशों ने अपना न लिया होता ?

उपरोक्त तथा और न जाने कितने गुण गाय के दूध तथा उससे उत्पन्न पदार्थों में पाये जाते हैं जिनका वर्णन इस छोटे से लेख में सम्भव नहीं।

गाय के मूत्र तथा गोबर में भी क्या क्या अद्भुत गुण वर्तमान हैं उसका भी संक्षेप रूप में वर्णन करना आवश्यक प्रतीत होता है। हिन्दू जाति तो इसके गुणों से आदि काल के ही इतनी परिचित थी कि उसने इसे गन्दी वस्तु न समझ कर पवित्रता का रूप दिया और प्रत्येक अवसरों पर घरों में इसका प्रयोग अनिवार्य्य कर दिया। यज्ञ, प्रायश्चित्त और प्रक्षालन आदि कर्मों के सम्पादन हेतु गोरोचन और पञ्चगव्य पेय का प्रयोग आवश्यक माना गया। इन दोनों पेय पदार्थों में गोमूत्र तथा उसके गोबर का सम्मिश्रण होता है। अब भी प्रत्येक हिन्दू घर शुभाशुभ अवसर पर गाय के गोबर से लीपा जाता है। गोमूत्र का प्रयोग वायशूल, उदर विकार, बवासीर तथा अन्य रोगों में किया जाता है। इंगलैण्ड के प्रोफेसर सीमर्स और कर्क और इटली के प्रोफेसर वेगैन्ड महोदयों ने गोमूत्र तथा उसके गोबर की वैज्ञानिक परीक्षा की जिसके आधार पर उनका कहना है कि

(१) गोमूत्र कीटाणु नाशक है। कटे हुए स्थान पर लगाने से घाव शीघ्र अच्छा होता है और पकने का डर नहीं रहता।

(२) गौ के गोबर में विशूचिका (हैजा), तपेदिक (राजयक्ष्मा), जूड़ीताप तथा टेटेनस tetanus कीटाणुओं के मारने की महान शक्ति है। सौर गृह को गोबर से लीपने की प्रथा ही के कारण भारतीय मातायें टेटेनस के आक्रमण से बची रहती हैं।

आशा है कि गाय के अनन्त गुणों में से कतिपय का ही उपरोक्त वर्णन पाठकों के हृदय में गाय की महत्ता स्थापित करने के हेतु पर्य्याप्त होगा।

भारत (अविभाजित) में लगभग २ करोड़ भैंस हैं। यदि इनके बदले हम गाय पालने लग जाँय तो गो-सेवा का फल मिलने के साथ-ही-साथ इसका हमारी कृषि और स्वास्थ्य पर भी अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

# भारतीय चिकित्सा विज्ञान के सम्बन्ध अनुसन्धान की आवश्यकता

भारत सरकार ने दिसम्बर ११४६ में कर्नल आर० एन० चोपड़ा की अध्यक्षता में जो 'देशी चिकित्सा-पद्धति समिति' नियुक्ति की थी, उसकी रिपोर्ट प्रकाशित हो गई है। इस रिपोर्ट में बताया गया है कि चिकित्सा-विज्ञान एवं कला की उन्नति के लिए भारतीय चिकित्सा-विज्ञान में अनुसंधान की परम आवश्यकता है। शताब्दियों से भारती यचिकित्सा-विज्ञान उपेक्षित हो रहा है। अनुसंधान के द्वारा यह पुनः इस देश की जनता का कल्याण कर सकता है। इस देश की ही नहीं, यह विश्व भर की जनता का कल्याण करने में समर्थ हो सकता है।

देशी चिकित्सा-पद्धति समिति ने जो परिणाम निकाले हैं, उनका सारांश नीचे दिया जाता है।

इस समय पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान से भारत को अत्यल्प लाभ हो रहा है। इसके विपरीत भारतीय चिकित्सा विज्ञान, उपेक्षित अवस्था में होते हुये भी, अधिकांश भारतीय जनता का हित-साधन कर रहा है। यहाँ के लोग इसी पद्धति को विशेष रूप से चाहते हैं।

## चिकित्सा विज्ञान का एकीकरण

समिति का विचार है कि जिस प्रकार भारतीय चिकित्सा विज्ञान, शल्य-शालाक्य तन्त्र, प्रजनन शास्त्र, निदान विधि एवं यन्त्र शस्त्र, आदि के सम्बन्ध में पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान से लाभ उठा सकता है, उसी प्रकार पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान भी भारतीय चिकित्सा विज्ञान की आध्यात्मिक साधारता, व्यापकता, आहार की प्रधानता और सिद्धान्त विशदता आदि से लाभ उठा सकता है।

समिति का विश्वास है कि पाश्चात्य और भारतीय चिकित्सा विज्ञान की दोनों पद्धतियाँ पृथक रूप में नहीं रह सकतीं। विज्ञान की भांति चिकित्सा विज्ञान भी समस्त विश्व की वस्तु है। सभी पद्धतियों का उद्देश्य स्वास्थ्य रक्षा और रोग प्रशमन है। अतः हमें इसका लाभप्रद सारभाग लेकर मनुष्य जाति की सेवार्थ प्रयुक्त करने में हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए।

समिति का विचार है कि भारतीय और पाश्चात्य चिकित्सा पद्धतियों का एकीकरण एवं संश्लेषण केवल सम्भव ही नहीं अपितु सुकर भी है। अतः इस दिशा में शीघ्र ही कदम उठाने की आवश्यकता है।

सबसे पहले पाठ्यक्रमों का एकीकरण इस प्रकार होना चाहिए की एक पद्धति में जो कमी हो वह दूसरी पद्धति से पूरी कर दी जाय। इसके बाद ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि एक ही अध्यापक दोनों पद्धतियों के विषय पढ़ाये। अन्त में ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए कि दोनों पद्धतियों के विशेषज्ञ एक साथ मिलकर अनुसन्धान करें। वे विभिन्न सिद्धान्तों की फिर से जाँच करें और या तो उन्हें छोड़ दें या समन्वित कर लें। यदि कोई दो सिद्धान्त न तो छोटे जा सकते हों और न समन्वित किये जा सकते हों तो उन दोनों को स्वीकार कर लेना चाहिए।

जिस प्रकार भारतीय चिकित्सा विज्ञान के विद्यालयों में पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा दी जा रही है, उसी प्रकार पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के विद्यालयों में भी भारतीय चिकित्सा की शिक्षा दी जानी चाहिए।

## अध्यापकों की प्राप्ति

समन्वित शिक्षा के लिए सबसे पहले भारतीय चिकित्सा विज्ञान के वर्तमान विद्यालयों से अध्यापक लेने चाहिए। इसके बाद दोनों पद्धतियों के सुयोग्य स्नातक लेने चाहिए। विद्यार्थियों को संस्कृत या अरबी का काम चलाऊ ज्ञान तथा अंग्रेजी और केमिस्ट्री, फिजिक्स एवं बायोलोजी (रसायन भौतिक तथा प्राणि विज्ञानों) का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।

पाठ्यक्रम ५ वर्ष का होना चाहिए। जब तक सुयोग्य अध्यापक शिक्षित हों, तब तक अन्तरिम काल के लिए ३ वर्ष का पाठ्यक्रम रखा जा सकता है।

प्राचीन ग्रन्थों के सम्पादन एवं प्रकाशन के लिए तथा प्राचीन एवं नवीन ज्ञान का समन्वय कर उपयुक्त नवीन पाठ्य पुस्तकें तैयार करने के लिए सरकार को विशेषज्ञों का एक बोर्ड बनाना चाहिए। नई पाठ्य पुस्तकें पहले हिन्दी और उर्दू में तैयार हों, बाद में प्रान्तीय भाषाओं में उनके अनुवाद प्रकाशित किये जायें।

प्रत्येक प्रान्त और रियासत में कम-से-कम एक सर्व साधन सम्पन्न विद्यालय होना चाहिए। विद्यालय के अध्यापकों का पर्याप्त वेतन होना चाहिए जिससे कि वे अपना निजी चिकित्सा व्यवसाय न कर सकें। विद्यालयों में अनुसन्धानों का प्रबन्ध भी होना चाहिए। प्रत्येक विद्यालय को सरकारी सहायता मिलनी चाहिए।

भारत में लगभग २ लाख वैद्य हैं। इसमें से लगभग २५,००० ट्रेनिंग के लिए तैयार हो जायेंगे। इसके अतिरिक्त ४,००० ऐसे वैद्य हैं, जो शिक्षा संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं। वे ग्राम औषधालयों में कार्य कर सकते हैं। इस सम्बन्ध में समिति ने निम्न सुझाव उपस्थित किये हैं: (१) इन वैद्यों को ६ मास तक स्वस्थवृत्त, उपशल्यविद्या, प्रजनन विद्या आदि की शिक्षा दी जाय, (२) जो रजिस्टर्ड वैद्य ऐसी शिक्षा प्राप्त करना चाहें, उन्हें ३०) महीने की सरकारी सहायता दी जाय, (३) भारतीय चिकित्सा विज्ञान के विद्यालयों के स्नातक यदि इस योजना में भाग लेना चाहें, तो उन्हें बिना ट्रेनिंग के ही परीक्षा में प्रविष्ट कर दिया जाय तथा (४) जो परीक्षा में उत्तीर्ण हो जायँ, उन्हें ग्राम्य चिकित्सा सहायता के लिए चुन लिया जाय।

### तीन इकाइयाँ

ग्राम चिकित्सा सहायता की तीन इकाइयाँ होंगी। पहली इकाई ३००० से ३५०० व्यक्तियों के लिए होगी। दूसरी इकाई १०,००० व्यक्तियों के लिए होगी। यह एक ऐसे चिकित्सक के आधीन रहेगी, जो किसी शिक्षा संस्था में शिक्षा प्राप्त कर चुका होगा, उसका औषधालय किसी बड़े ग्राम में रहेगा। यह इकाई पहली इकाई के कार्य की देखभाल भी किया करेगी। तीसरी इकाई पंचायत इकाई कहलाएगी। यह चलती फिरती रहेगी और इसमें संकटकाल के लिए आवश्यक सामान तथा दवाइयाँ रहेंगी। यह ५०,००० की जन संख्या के लिए होगी।

समिति का विचार है कि अब वह समय आ गया है जब कि सरकार को चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा और व्यवसाय पर नियन्त्रण लगा देना चाहिए, सरकार को एक ऐसी समिति बनानी चाहिए, जो अखिल भारतीय आधार पर नियन्त्रण पद्धति की खोज करे और इस सम्भावना पर विचार करे कि क्या केन्द्रीय सरकार के एक व्यापक कानून द्वारा समस्त स्वीकृत पद्धतियों के चिकित्सकों को एक ही रजिस्टर में रजिस्टर्ड करने की व्यवस्था की जा सकती है।

यदि स्वास्थ्य और चिकित्सा सहायता की समस्याओं को राष्ट्रीय आधार पर हल करना है, तो केन्द्रीय सरकार को देश की समस्त स्वीकृत चिकित्सा पद्धतियों को ध्यान में रखना होगा तथा उनके नियन्त्रण का काम प्रान्तीय सरकारों को न सौंप कर स्वयं एक व्यापक केन्द्रीय कानून द्वारा अपने हाथों में लेना होगा।

स्वीकृत पद्धतियों के नियन्त्रण के लिए कानून बनाते समय निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है: (१) सभी स्वीकृत पद्धतियों की शिक्षा, शिक्षा संस्थाओं और चिकित्सा संस्थाओं के निरीक्षण की समुचित व्यवस्था, (२) स्वीकृत पद्धतियों के चिकित्सकों का रजिस्ट्रेशन, (३) चिकित्सा व्यवसाय पर अनुशासनात्मक नियन्त्रण तथा (४) सार्वजनिक स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सहायता सम्बन्धी विषयों के लिए एक परामर्शदात्री समिति की नियुक्ति।

इन प्रस्तावों को कार्यान्वित करने के लिए कानून द्वारा एक 'राष्ट्रीय चिकित्सा बोर्ड' की स्थापना करनी होगी। इस बोर्ड के दो विभाग होंगे—एक का नाम भारतीय चिकित्सा परिषद् और दूसरे का नाम भारतीय चिकित्सा विज्ञान परिषद् होगा। भारतीय चिकित्सा परिषद् पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के लिए और भारतीय चिकित्सा विज्ञान परिषद् भारतीय चिकित्सा विज्ञान के लिए होगी। प्रान्तीय और प्रादेशिक शाखाएँ बोर्ड से सम्बद्ध रहेंगी और वे चिकित्सकों तथा संस्थाओं पर जो

अनुशासनात्मक कार्रवाई करेंगी, उनके विरुद्ध बोर्ड में अपील की जा सकेगी।

## कठवैद्यों की समाप्ति

कठवैद्यों की समाप्ति के लिए तथा भोली भाली जनता को उनके चंगुल से बचाने के लिए वैद्यों की रजिस्ट्रेशन अनिवार्य है। आरम्भ में पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति एवं भारतीय चिकित्सा पद्धति के चिकित्सकों के रजिस्ट्रेशन के लिए पृथक रजिस्टर रखे जायँ। परन्तु बाद में जब भारतीय चिकित्सा विज्ञान के विद्यालयों में शिक्षा का मानदन्ड ठीक हो जाए और शिक्षा संस्थाओं में शिक्षा न पाए हुए वैद्यों की प्रधानता नष्ट हो जाए, तब दोनों पद्धतियों के चिकित्सकों के लिए एक ही रजिस्टर रखने के प्रश्न पर विचार किया जाए।

जो वैद्य गुरु परम्परा द्वारा शिक्षा प्राप्त हैं, तथा ऐसी शिक्षा संस्थाओं द्वारा शिक्षा प्राप्त हैं, जो स्वीकृत नहीं है, उनमें रजिस्ट्रेशन के सम्बन्ध में तो भेद न किया जाए, पर निर्वाचन के सम्बन्ध में अवश्य भेद किया जाए।

समिति का यह दृढ़ विश्वास है कि भारतीय चिकित्सा विज्ञान में ऐसी अपार ज्ञानराशि एवं अनुभवपूंज विद्यमान हैं जिनकी छानबीन की अत्यन्त आवश्यकता है। इस ज्ञान और अनुभव को संग्रहित करके देश के हितार्थ उपस्थित करना अनुसन्धान का प्रधान लक्ष्य होना चाहिए। अनुसन्धान के लिए कल्पना-शक्ति और सहज-बुद्धि की सहायता की भी उतनी ही आवश्यकता समझनी चाहिए जितनी कि प्रयोगशाला की क्योंकि प्राचीन ऋषियों ने अपने ज्ञानबल से ही आयुर्वेद शास्त्र की रचना की थी।

अनुसन्धान निम्न विषयों का होना चाहिए : (१) भारतीय चिकित्सा शास्त्र को शताब्दियों की गन्दगी से मुक्त करके आधुनिक विद्वानों के समझने योग्य बनाना तथा (२) भारतीय जीवन की परिस्थियों के अनुकूल चिकित्सा सहायता एवं शिक्षा की समान पद्धति विकसित करने के लिए प्राच्य और पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान का संश्लेषण करना।

अनुसन्धान निम्न विषयों का होना चाहिए : (१) आयुर्वेद और यूनानी तिब्बी के आधारभूत सिद्धान्त, (२) प्राचीन चिकित्सा साहित्य, (३) चिकित्सा क्रिया, (४) भेषज द्रव्य, द्रव्य-विज्ञान, औषधि-निर्माण तथा वनस्पति विज्ञान (५) पोषणतत्व और भोजन-विज्ञान तथा (६) मनोविज्ञान।

भारतीय चिकित्सा विज्ञान की केन्द्रीय अनुसन्धान परिषद् शीघ्र ही स्थापित हो जानी चाहिए। यह परिषद् अनुसन्धान नीति का निर्धारण, केन्द्रीय अनुसंधानशाला के कार्य का निरीक्षण, कर्मचारियों की नियुक्ति तथा आर्थिक सहायता की स्वीकृति आदि कार्य किया करेगी। केन्द्रीय अनुसन्धानशाला के विभिन्न विभागों के कार्यों का विवरण एक मासिक पत्र में प्रकाशित हुआ करेगा। अनुसंधानशाला में स्नातकोत्तर-शिक्षण एवं अनुसंधान-कार्यकर्ताओं की ट्रेनिंग की व्यवस्था भी रहेगी।

भारतीय चिकित्सा में प्रयुक्त होने वाले अनेक औषधि-द्रव्यं को पहचानना कठिन है। संदिग्ध औषधि द्रव्यों के निश्चय का कार्य केन्द्रीय अनुसन्धानशाला की देखरेख में प्रान्तीय अनुसन्धान केन्द्रों में होना चाहिए। यदि एक वनस्पति-संग्रहालय स्थापित कर दिया जाय तो औषधि-विनिश्चय कार्य में विशेष सहायता मिलेगी। ऐसे संग्रहालय, वनानुसन्धानशाला, ट्रापिकल चिकित्सा, विज्ञान विद्यालय कलकत्ता और भेषज-अनुसन्धान प्रयोगशाला काश्मीर में मौजूद हैं।

भारतीय निघंटु साहित्य बहुत बिखरा हुआ और दुर्जेय है, अतः समस्त सुलभ ज्ञान को एकत्रित कर औषधि गुणधर्मशास्त्र पर एक अधिकृत पाठ्यपुस्तक बनाना आवश्यक है।

केन्द्रीय अनुसन्धानशाला को चाहिए वह अधिकृत निघंटुशास्त्र बनाने के लिए एक विशेष-समिति द्वारा आंकड़े एकत्रित कराये और उनकी सहायता से दो सूचियाँ बनाये—एक सूची में वे औषधि-द्रव्य रखे जायँ जो अकेले ही विशेष गुण-दायक हों और दूसरी सूची में वे द्रव्य रखे जायँ जो अन्य द्रव्यों के साथ मिल कर विशेष गुणदायक हो जाते हों। इन सूचियों के आधार पर निघंटुशास्त्र बनाया जा सकता है। रुचि, गुण, निर्माणविधि, मात्रा और अनुपान का पूरा विवरण होना चाहिए।

प्रामाणिक औषधियों की प्राप्ति के लिए यह

आवश्यक है कि कच्चे औषधि द्रव्यों का संग्रह, वितरण और क्रय विक्रय लाइसेंस द्वारा हो; अफीम, गाँजा, अल्कोहल, संखिया आदि विषैले द्रव्यों को प्राप्त करने के सम्बन्ध में भारतीय औषधि निर्माणशालाओं को भी वे ही सुविधाएँ मिलनी चाहिए जो पाश्चात्य चिकित्साविज्ञान की औषधि निर्माणशालाओं को मिली हुई हैं।

जनता को प्रामाणिक औषधि सुलभ बनने के लिए औषधि-निर्माणताओं का शिक्षित होना आवश्यक है। इनकी शिक्षा के लिए एक उपयुक्त पाठ्यक्रम होना चाहिए। उसके अतिरिक्त इनके रजिस्ट्रेशन की भी व्यवस्था होनी चाहिए।

इन प्रस्तावों को क्रियान्वित करने के लिए समिति ने अर्थ-व्यवस्था पर भी प्रकाश डाला है। समिति ने यह भी सिफारिश की है कि स्वास्थ्य मन्त्रालय में भारतीय चिकित्साविज्ञान के लिए एक पृथक् विभाग खोला जाय।

रिपोर्ट लिखने से पूर्व समिति ने समस्त प्रान्तों और रियासतों का भ्रमण किया, अनेक शिक्षा संस्थाओं और अस्पतालों का निरीक्षण किया, तथा बहुत से चिकित्सकों और शिक्षा संस्थाओं और प्रतिनिधियों से बातचीत की।

---

# धूमकेतु

लेखक : श्री नत्थनलालजी गुप्त

( गतांक से आगे )

अब हम कुछ प्रसिद्ध धूमकेतुओं की मनोरंजक कथा सुनाना चाहते हैं। पहले हम उन धूमकेतुओं का वर्णन करेंगे जिनका सम्बन्ध हमारे सौर साम्राज्य से है। उसके पश्चात् दूसरे प्रकार के धूमकेतुओं की कहानी सुनाएँगे।

## हेली का धूमकेतु

Halley's Comet

सन् १६८२ ई० में जब कि न्यूटन साहिब आकर्षण शक्ति के नियमों की जाँच-पड़ताल कर रहे थे, एक अत्यन्त प्रकाशित धूमकेतु उदय हुआ जिसने उस समय के तमाम ज्योतिषियों का ध्यान अपनी ओर खींच लिया। उनमें से इङ्गलिस्तान का एक प्रसिद्ध ज्योतिषि ऐडमण्ड हेली (Edmund Halley) भी था, जो उस समय इङ्गलेण्ड का राज्य ज्योतिषि (Astronomer Royal) था। सन् १६८० ई० में न्यूटन ने गणित द्वारा यह सिद्ध कर दिया था कि धूमकेतु भी ग्रहों के समान सूर्य की आकर्षण शक्ति के ही आधीन हैं और बराबर समय में बराबर क्षेत्रफल का नियम उन पर भी ठीक बैठता है; यद्यपि वह स्वयं किसी धूमकेतु का सूर्य की परिक्रमा करना सिद्ध नहीं कर सके थे। हेली के मन में विचार आया कि सम्भव है कि यह १६८२ ई० का धूमकेतु सूर्य की परिक्रमा करता हो। उसने इस बात की खोज आरम्भ कर दी। ज्योतिषियों का यह नियम है कि जब वह किसी धूमकेतु को आकाश में देखते हैं तो उसकी कक्षा के सम्बन्ध में कुछ आवश्यक बातें बड़ी होशियारी के साथ ठीक-ठीक माप कर अपने रजिस्टरों में लिख लेते हैं। जैसे उसकी कक्षा भू-कक्षा को कितने अंश के कोण पर छेदन करती है, उसके उत्तर सम्पात् (Ascending node) की स्थिति क्या है, वह कहाँ और कब सूर्य के निकटतम बिन्दु पर पहुँचता है और उस समय वह सूर्य से कितने अन्तर पर होता है तथा वह अपनी कक्षा पर सीधा गति करता है वा उल्टा इत्यादि हेली साहिब ने भी इस प्रकार की समस्त बातें बड़ी होशियारी से मालूम कर ली और फिर पुराने रजिस्टरों से उनका मिलान करने लगे। फलतः उन्हें मालूम हो गया कि सन् १५३१ ई० तथा १६०७ ई० में जो धूमकेतु दिखाई

दिये थे उनकी कक्षा भी लगभग वही है जो सन् १६८२ ई० के धूमकेतु की है। इससे उसे यकीन हो गया कि यह तीनों बार के धूमकेतु अलग-अलग नहीं है; किन्तु वही एक धूमकेतु बार-बार उलट कर आता रहा है। इसके पश्चात् उसने यह भी खोज निकाला कि सन् १५३१ ई० से ७५ वर्ष पूर्व अर्थात् सन् १४५६ ई० में भी एक बड़ा चमकीला धूमकेतु प्रगट हुआ था और सन् १३८० ई० तथा १३०५ में भी ऐसे ही प्रकाशित धूमकेतुओं का प्रादुर्भाव हुआ था। इससे उसे निश्चय हो गया, कि यह पुच्छल तारा हमारे ही सौर साम्राज्य से सम्बन्ध रखता है और यद्यपि उसकी कक्षा बहुत लम्बोतरी है पर वह ग्रहों के समान ही सूर्य के गिर्द घूमता रहता है और उसका भ्रमणकाल लगभग ७५ वर्ष है। अब उसने बे धड़क होकर भविष्यवाणी करदी कि यही पुच्छल तारा अब से ७५ या ७६ वर्षों के पश्चात् अर्थात् सन् १७५८ ई० के अन्त या १७५९ ई० के आरम्भ में, फिर दिखाई देगा। वह भली प्रकार जानता था कि वह अपने इस आविष्कार की सत्यता को जानने के लिए उस समय तक जीवित न रह सकेगा; इसलिये उसने अपनी भविष्यवाणी के साथ ही अपील की कि, मुझे आशा है, कि यदि यह धूमकेतु ठीक मेरी भविष्य-वाणी के अनुसार सन् १७५८ ई० के आस-पास फिर दृष्टि आया, तो मेरे पीछे आने वाले लोग इस बात को स्वीकार करने में आनाकानी न करेंगे, कि यह बात सबसे पहले एक अंग्रेज़ ने मालूम की थी।

लोगों ने पुच्छल तारों के सम्बन्ध में ऐसी भविष्य-वाणी पहले कभी नहीं सुनी थी। हेली की यह बात सुनकर वह अचम्भित रह गये। और जब सन् १७५८ ई० निकट आया, तो ज्योतिषियों के मन में बड़ी उत्कंठा उत्पन्न हुई, कि देखिये हेली की बात सत्य निकलती है या नहीं, हेली साहब का इससे लगभग १६ वर्ष पहले, स्वर्गवास हो चुका था। फ्रान्स के एक प्रसिद्ध गणितज्ञ क्लैराट (Clairat) नामी ने तथा दो और गणितज्ञों ने गणित द्वारा इस धूम केतु के निकालने की ठीक तिथि निश्चित करने का काम अपने जिम्मे लिया। उनके गणित से यह मालूम हुआ कि मार्ग में इस धूम-केतु की शनिश्चर तथा ब्रहस्पति से भेंट होगी; शनि से पीछा छुडाने में उसे लगभग १०० दिन, और ब्रहस्पति से छुटकारा पाने में ५१८-दिन लग जायेंगे गणितज्ञों ने यह भी विचार प्रगट किया कि सम्भव है कि उसके मार्ग में रोडा अटकाने वाले कुछ और पिण्ड भी हैं, जिनका हाल हमें मालूम नहीं है; इसलिए जिस दिन उसके दिखाई देने की आशा है, शायद वह उससे कुछ दिन पीछे प्रगट हो।

तमाम दुनिया के ज्योतिषि, अपने बड़े २ दूर दर्शकों से, इस पुच्छल तारे की खोज में लगे हुए थे। किन्तु कई मास तक लगातार खोज करने पर भी उसका कहीं कुछ पता नहीं लगा। इससे इन लोगों में एक प्रकार की निराशा सी छा गई। पर २३ दिसम्बर १७५८ ई० को दूरबीन में एक छोटी सी आकृति दृष्टि आने लगी; और उसके कई दिन पश्चात् तो उसने अपनी बड़ी पूँछ अकाश में फैला कर लोगों को आश्चर्य चकित कर दिया। १२ मार्च सन् १७५८ ई० को वह सूर्य्य के समीप जा पहुँचा, और फिर वह गहरे आकाश में गोता लगाकर दृष्टि से ओझल हो गया।

सन् १८३५ ई० में वह फिर दृष्टि आया और १६ नवम्बर सन् १८३५ ई० को सूर्य्य के समीप से गुजरा। इस बार वह सबसे पहले रोम (Rome) में देखा गया था। सर जॉन हरशल (Sir John Herschel) ने उसका अच्छे प्रकार निरीक्षण किया। ५ मई सन् १८३६ ई० तक वह अपने बड़े दूर दर्शक से उसे देखता रहा। इसके पश्चात् वह लुप्त हो गया।

गणित के अनुसार सन् १९१० ई० में उसे फिर प्रगट होना चाहिए था। सन् १९०८ ई० से ही लोगों ने उसकी खोज आरम्भ कर दी, नवम्बर सन् १९०८ ई० में आकाश के उस भाग के, जहाँ उसने दिखाई देना था, बहुत से फोटो उतारे गये, किंतु फोटो ग्राफी के प्लेटों पर उसका कोई चिन्ह दिखाई नहीं दिया। ११ सितम्बर सन् १९०९ ई० को हैडलबर्ग (Heidelberg) के डा० मैक्स वुल्फ (Dr. Max Wolf) के फोटो ग्राफी के प्लेट पर सब से पहले उसका हलका सा चिन्ह प्रगट हुआ; और उसके कुछ समय पश्चात् वह खाली आँख से भी दिखाई देने लगा। १९ अप्रैल सन् १९१० ई० को वह सूर्य्य के समीपस्थ बिन्दु पर से गुजरा। १८ मई को वह सूर्य्य और पृथ्वी के बीच में से गुज़रा। यदि उसकी नाभि ग्रहों के समान

ठोस होती तो सूर्य्य-बिम्ब पर से शुक्र की भाँति स्याह धब्बा सा गति करता हुआ प्रतीत होता, किन्तु ऐसी कोई चीज देखी नहीं गई। सूर्य्य के सामने से गुजरने से पहले, वह प्रति दिन प्रातः काल सूर्य्य उदय होने से पहले अत्यन्त तेजस्वी और शानदार दृष्टि आता था और सूर्य्य के बहुत समीप पहुँच कर उस की पूँछ इतनी लम्बी हो गई थीं, कि वह क्षितिज रेखा सूर्य्योदय स्थान से एक स्वस्तिका शिरोबिन्दु (Zenith) तक पहुँचती थी। १८ मई के पश्चात् वह सूर्य्य को पार गया और सायंकाल के समय दृष्टि आने लगा। जब वह सूर्य्य के सामने से गुजर रहा था उसकी पूँछ हमारी पृथ्वी से आ टकराई, और एक रात हमारी पृथ्वी को उस की पुच्छ के बीच में से ही अपना मार्ग बना चलना पड़ा।

## इङ्के का धूमकेतु

## (Enckey's Comet)

२६ नवम्बर सन् १८१८ ई० को पोन्स (Pons) नामी एक फ्रान्सीसी ज्योतिषि ने एक छोटा सा पुच्छल तारा देखा, जो केवल दूरबीन से ही देखा जा सकता था जर्मनी के रहने वाले इङ्के (Enckey) नामी एक प्रसिद्ध ज्योतिषि ने उसकी कक्षा के सम्बन्ध में खोज आरम्भ की। उसने मालूम कर लिया कि उसकी कक्षा उस पुच्छल तारे की कक्षा के बिलकुल समान है जो १८०५ ई० में थ्यूलिस (Thulis) ने देखा था। इससे उसे निश्चय हो गया कि १८०५ ई० और १८१८ ई० के धूमकेतु दो नहीं किन्तु एक ही हैं। अधिक छान-बीन करने से उसने यह भी पता लगा लिया, कि यही धूम-केतु सन् १७९५ ई० में केरोलिन हरशल (Caroline Herschel) ने और सन् १७८६ ई० में फ्रेंच ज्योतिषि मिशैन (Mechain) ने भी देखा था। उसने मालूम कर लिया कि इस धूमकेतु का भ्रमणकाल लगभग ३½ वर्ष (१२१० दिन) हैं और वह १८०५ ई० से १८१८ ई० तक चार बार सूर्य के गिर्द भ्रमण कर चुका है। यह धूमकेतु यद्यपि बहुत ही धुँधला था पर इतने थोड़े समय में सूर्य के गिर्द भ्रमण करने वाला पुच्छल तारा यह पहला ही मालूम हुआ था, इसलिए लोगों में इस खोज में बड़ी दिलचस्पी प्रगट की। इङ्के ने भविष्य-वाणी कर दी कि यही पुच्छल तारा १८२२ ई० में फिर दिखाई देगा और उस समय २४ मई को सूर्य के समीप से गुजरेगा तथा दक्षिणीय गोलार्द्ध में दिखाई देगा। यह भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई। क्योंकि १८२२ ई० में ठीक उसी स्थान पर जो इङ्के ने उसके लिए निश्चित् किया था वह न्यू साउथ वेल्ज (New South Wales) में देखा गया। सन् १८२५ ई० में वह फिर प्रगट हुवा। १८२८ ई० में जब वह फिर लौट कर आया, तो वह आँख से पाँचवें दर्जे के सितारे के समान प्रतीत होता था। १८३८ ई० में इङ्के ने उसके सम्बन्ध में यह नई खोज निकाली कि उसका भ्रमण काल क्रमशः कम हो रहा है और वह हर बार पहले की अपेक्षा लगभग २ घंटा पहले सूर्य के निकटतम बिन्दु पर पहुँच जाता है। इससे उसने यह अनुमान लगाया कि सूर्य के चारों ओर कोई बहुत ही पतला वाष्पीय पदार्थ फैला हुवा है। क्योंकि उसने कुछ ऐसा अनुभव किया कि यह धूमकेतु अपनी कक्षा के दूसरे भागों में तो बड़ी सुगमता तथा तेजी से फर्राटे भरता चला जाता है पर जब वह सूर्य के पास से गुजरने लगता है तो वहाँ इस हलके फुलके पुच्छल तारे को अपने मार्ग पर चलने में कुछ कठिनता प्रतीत होती है। इसी कारण, उसकी गति कुछ मन्द पड़ जाती है और उसको जिस स्थान से लौटना चाहिये था उस स्थान पर पहुँचने से पहले ही वह वापिस लौट आता है। इस प्रकार से उसकी कक्षा दिन प्रति-दिन छोटी होती चली जा रही है और इसीसे उसका भ्रमण काल भी कम हो रहा है। इङ्के का यह अनुमान सत्य प्रतीत नहीं होता क्योंकि दूसरे पुच्छल तारों की गति पर अभी तक इस हलके वाष्पीय पदार्थ का कोई प्रभाव देखने में नहीं आया।

सन १९०४ ई० में यह पुच्छल तारा स्पष्ट दिखाई दिया इस बार वह पहले की अपेक्षा अधिक प्रकाशित था किन्तु, १९०८ ई० में जब वह फिर वापिस लौटा तो बहुत ही धुँधला था, और उस साल केवल फोटो के प्लेट पर ही उसका हलका सा चिन्ह प्रगट हुआ था।

## बीला का धूमकेतु
## (Biela's Comet)

सौर साम्राज्य से सम्बन्ध रखने वाले दो प्रसिद्ध पुच्छल तारों का विवरण हम ऊपर दे चुके हैं, जिनमें से एक बहुत बड़ा और दुसरा बहुत ही छोटा है। अब हम एक और पुच्छल तारे की विचित्र कथा सुनाते हैं जो बीला का पुच्छल तारा कहलाता है।

२७ फरवरी सन् १८२६ ई० को एक प्रकाशित पुच्छल तारा उदय हुआ। आस्ट्रिया के एक प्रसिद्ध ज्योतिषि बीला (Biela) ने मालूम किया कि उसकी कक्षा अण्डा-आकृति की है और वह उस पर ६ वर्ष ९ मास में सूर्य के गिर्द एक बार घूमता है। वह पहले सन् १७७२ तथा १८०६ ई० में भी दृष्टि आ चुका था। उस की कक्षा एक स्थान पर भू-कक्षा के इतनी समीप है कि यदि पृथ्वी और वह पुच्छल तारा उस स्थान पर एक ही समय पहुँच जायें, तो उन दोनों में अवश्य मुटभेड़ हो जाये। सन् १८३२ ई० में इस पुच्छल तारे को फिर दिखाई देना था। सन् १८३१ ई० में किसी ने प्रसिद्ध कर दिया कि सन् १८३२ ई० में जब यह पुच्छल तारा लौट कर आयेगा तो पृथ्वी के साथ उसकी अवश्य टक्कर होगी। इससे लोग बहुत भयभीत हुए। किन्तु सौभाग्य से पुच्छल तारा उस निर्दिष्ट स्थान पर पृथ्वी की अपेक्षा एक मास पहले पहुँचा। उस समय पृथ्वी और पुच्छल तारे में कोई डेढ़ करोड़ मील का अन्तर था। इस वर्ष उसकी आकृति गोल मोल थी और उसकी पूँछ बहुत कुछ लुप्त हो चुकी थी।

सन् १८३९ ई० में जिस समय वह भू-कक्षा के पास से गुज़रा उस समय पृथ्वी अपनी कक्षा पर दूसरी तरफ थी इसलिये वह दृष्टि न आया। सन् १८४५ ई० में वह फिर दिखाई दिया। इस बार उसकी आकृति बड़ी विचित्र थी। उसकी नाभि गोल होने की अपेक्षा मोगली के समान लम्बोतरी थी और पूँछ बिल्कुल लुप्त हो चुकी थी। नवम्बर और दिसम्बर में वह ऐसा ही दिखाई देता रहा किन्तु जनवरी १८४६ ई० में पहले वह बीच में से पतला डम्बल के समान दृष्टि आने लगा और फिर बीच का भाग अधिक पतला होकर कुछ सप्ताह में उसके दो टुकड़े हो गये, जिनमें से एक टुकड़ा अधिक प्रकाशित था। मार्च मास में उसका छोटा टुकड़ा अदृश हो गया, परन्तु बड़ा भाग एक मास तक और दृष्टि आता रहा।

ज्योतिषियों को इससे बड़ा कौतूहल हुआ। उन्होंने इससे पहले इस प्रकार से किसी आकाशीय पिंड को टुकड़े होते कभी नहीं देखा था। वह बड़ी तत्परता से बाट जोहने लगे, कि १८५२ ई० में जब वह पुच्छल तारा फिर लौटेगा तब क्या दृश्य देखने में आता है। आखिरकार सन् १८५२ ई० में, जब वह पुच्छल तारा फिर प्रगट हुआ, तो उसमें दोनों टुकडे तो देखे गये किन्तु उनके मध्य में १० लाख मील से अधिक अन्तर हो गया था।

१८५९ ई० तथा १८६५ ई० में पृथ्वी उस स्थान से जहाँ उसे दिखाई देना था बहुत दूर थी, इसलिए उसका दृष्टि आना कठिन था। पर सन् १८७२ ई० में उसे पृथ्वी के बहुत समीप ही होना चाहिये था। उस समय उसकी बहुत खोज की गई, पर उसका एक टुकडा भी कहीं दृष्टि न आया। उसकी जगह २७ नवम्बर १८७२ ई० को जब पृथ्वी उस खोये हुए पुच्छल तारे की कक्षा के पास से गुजर रही थी, तो बड़े प्रकाशित उल्का पिंडों (टूटने वाले तारों) की एक शानदार बौछार हो गई। सन् १८८५ ई० में भी ऐसा ही दृश्य देखने में आया। इससे गुमान होता है कि बिचारा पुच्छल तारा टुकड़े २ होकर उल्का पिंडों का समूह बन गया है।

सूर्य्य के गिर्द घूमने वाले और भी बहुत से पुच्छल तारे हैं, जिनका विस्तार पूर्वक वर्णन करने के लिए यहाँ स्थान नहीं है। मिस्टर जी० एफ० चैम्बर्स (Mr. G. F. Chambers) ने अपनी पुस्तक "पुच्छल तारों की कहानी" (The Story of the Comets) में ऐसे १३ पुच्छल तारोंका वर्णन किया है, जिनका भ्रमण काल छोटा है। इनका भ्रमण काल ३ वर्ष से १३ वर्ष पर्यन्त है। इसके अतिरिक्त ६ ऐसे पुच्छल तारे हैं, जिनका भ्रमण काल लम्बा हैं। हेली का पुच्छल तारा भी इन्हीं में सम्मिलित है। इनके सिवा १४ पुच्छल तारे और भी हैं, जिनका भ्रमण काल ४ वर्ष से ९ वर्ष पर्यन्त है। किन्तु अभी तक निश्चयात्मक रीति से यह बात सिद्ध नहीं हुई है, कि उनका सम्बन्ध सौर साम्राज्य से है या नहीं। हम उनमें से कुछ का संक्षिप्त विवरण नीचे देते हैं।

सन १८४३ ई० में मिस्टर फे (Mr. Faye) ने पेरिस की वेध शाला से एक पुच्छल तारा आविष्कार किया, जिसके सम्बन्ध में ख्याल किया गया था, कि वह सूर्य्य के गिर्द भ्रमण करता है। उसका भ्रमण-पथ उन समस्त पुच्छल तारों के भ्रमण पथों से कम लम्बोतरा है जिनका भ्रमण काल छोटा है। वह ७ वर्षों से अधिक समय में भ्रमण करता है। अन्तिम बार वह सन १८६५ ई० में दृष्टि आया था। उसके पश्चात् वह कहीं लुप्त हो गया।

सन १८४४ ई० में हैडलबर्ग (Heidelberg) के डा० मैक्स वुल्फ (Dr. Max Wolf) ने एक छोटा सा पुच्छल तारा, जो केवल दूरदर्शक यन्त्र द्वारा ही दृष्टि आ सकता था मालूम किया। प्रतीत हुआ कि वह ६३/४ वर्षों में सूर्य्य के गिर्द एक चक्कर लगाता है। सन् १८७५ ई० से पहले वह बराबर अपने समय पर दिखाई देता रहा। किन्तु सन १८७५ ई० में ब्रहस्पति ने उसका मार्ग बिल्कुल बदल दिया। उसके पश्चात् उसने कभी दर्शन नहीं दिये। ऐसा प्रतीत होता है, कि वह हमारे सूर्य्य की आधीनता से निकल कर सौर साम्राज्य से कहीं बाहर चला गया है।

सन १८८६ ई० में मिस्टर ब्रुक (Mr. Brook) ने एक पुच्छल तारा मालूम किया था। वह ब्रुक का द्वितीय नियत कालिक पुच्छल तारा (Brook's Second Perodic Comet) कहलाता है। सन १८९६ ई० में वह फिर सूर्य्य के निकट आया। इससे पश्चात् वह सन् १९०३ ई० में फिर दिखाई दिया। पर, इस बार वह बहुत ही धुँधला सा दृष्टि पड़ा और केवल बड़ी-बड़ी दूर बीनों से ही देखा गया। उसके पश्चात् उसने फिर कभी दर्शन देने की कृपा नहीं की।

दीर्घ भ्रमण काल रखने वाले पुच्छल तारों में से वेस्टफाल का पुच्छल तारा (Westphal's Comet) ६७ वर्षों में सूर्य के गिर्द घूमता है। यह अन्तिम बार सन् १९१३ ई० देखा गया था। पोन का पुच्छल तारा (Pon's Comet) ७० वर्षों में भ्रमण करता है। वह सन् १८८३ ई० में अन्तिम बार दृष्टि आया था और सन् १९५५ ई० में उससे फिर दर्शन देने की आशा की जाती है। डी विको के पुच्छल तारे (Di Vico's Comet) का भ्रमण काल ७३ वर्ष है और ओलबर्ज (Olbers) का पुच्छल तारा ७४ वर्षों में सूर्य की परिक्रमा किया करता है। यह प्रथम बार सन् १८१५ ई० में देखा गया था, सन् १८८७ ई० में फिर वापिस लौटा, और सन् १९६० ई० में फिर लौट आने की आशा है। ब्रोरसेन का धूमकेतु (Brorsen's comet) लगभग ७५ वर्षों में घूमता हैं, और हेली के धूमकेतु का वर्णन पहले किया ही जा चुका है।

१४ जून सन् १७७० ई० को मिस्टर मेस्सियर (Mr. Messiers) ने एक धूमकेतु मालूम किया, और लेक्सेल (Lexell) नाम के एक रूसी गणितज्ञ ने उसकी कक्षा का गणित किया, प्रतीत हुआ कि वह ५१/२ वर्षों में सूर्य की एक बार परिक्रमा करता है किन्तु इसके पश्चात् वह कभी दृष्टि नहीं आया। लेक्सेल ने फिर खोज लगाई और मालूम किया कि सन् १७७७ ई० में वह बृहस्पति के पास से गुजरा था, उसने उसका रास्ता बिल्कुल बदल दिया। उसने फिर हिसाब लगाया और मालूम किया कि सन् १७८१ ई० में वह फिर दृष्टि आयेगा पर उसकी यह भविष्य-वाणी भी पूरी न उतरी। उसने मालूम किया, कि सन् १७७९ ई० में बृहस्पति ने उसका मार्ग फिर बदल दिया। लेक्सेल का पुच्छल तारा फिर कभी दृष्टि न आया।

सन् १८४४ ई० में रोम (Rome) में डीविको (Di Vico) ने एक पुच्छल तारा मालूम किया जिसका भ्रमण काल १९९३ दिन गणित किया गया था। किन्तु वह पुच्छल तारा फिर कभी दिखाई नहीं दिया। बीला के पुच्छल तारे के सम्बन्ध में पहले विस्तार पूर्वक वर्णन हो ही चुका। उसका अस्तित्व अब मिट चुका है।

अब तक हम ऐसे धूमकेतुओं का वर्णन करते रहे हैं जिनका सम्बन्ध हमारे सौर साम्राज्य के साथ है या कभी रहा है और जिनका भ्रमण काल भी छोटा है। अब हम कुछ ऐसे बड़े-बड़े धूमकेतुओं का वर्णन करना चाहते हैं, जो गहरे आकाश से निकलकर हमारे सौर साम्राज्य में सैर करने को चले आते हैं, और एक बार जाकर फिर कभी वापिस नहीं लौटते; और यदि लौटते भी हैं, तो उनकी वापिसी का समय इतना लम्बा है, कि हम उनके

सम्बन्ध में निश्चयात्मक रूप से कुछ भी नहीं कह सकते। उदाहरण के लिये सन् १८२४ ई० के पुच्छल तारे के सम्बन्ध में हिसाब लगाया गया है, कि उसका भ्रमण काल लाखों वर्षों का है। सन् १८६३ ई० के एक पुच्छल तारे के सम्बन्ध में कहा जाता है, कि वह लगभग २० लाख वर्षों के पश्चात् वापिस लौट सकता है। इसी प्रकार से सन् १६८० ई० का धूमकेतु भी १५ हजार वर्षों से पहले वापिस नहीं आ सकता। किन्तु इन अनुमानों पर क्या भरोसा किया जा सकता है। कौन जानता है कि इनके लम्बे मार्ग में इनको किन-किन आपत्तियों का सामना करना पड़ेगा? हो सकता है, कोई बुझा हुआ सूर्य्य अपनी आकर्षण शक्ति से इनके मार्ग को ही सदा के लिए बदल दे, या किसी घटना के कारण वह टुकड़े टुकड़े हो कर नष्ट हो जाये। अतः हम उन्हें सौर साम्राज्य की प्रजा नहीं कह सकते। इस प्रकार के पुच्छल तारे हैं तो बहुत, पर हम स्थाना भाव के कारण यहां केवल पिछली शताब्दी में दिखाई देने वाले कुछ पुच्छल तारों का ही वर्णन कर देना पर्याप्त समझते हैं।

सन् १८११ ई० में एक बड़ा धूमकेतु देखने में आया, जिसे हम कई विचार से एक अनुपम धूमकेतु कह सकते है, वह पहले पहल २६ मार्च १८११ ई० को दिखाई दिया और १७ अगस्त सन् १८१२ ई० तक लगातार दिखाई देता रहा। उसकी पूँछ की लम्बाई अक्तूबर के मध्य में, जब कि वह अपने कमाल पर पहुँची हुई थी, लगभग १० करोड़ मील और चौड़ाई १½ करोड़ मील थी, और उसकी नाभि का व्यास ४२८ मील पाया गया था। एक प्रसिद्ध जर्मन ज्योतिषि ने उसकी कक्षा के सम्बन्ध में गणना की थी और मालूम किया था, कि उस की कक्षा की लम्बाई उस अन्तर से, जो सूर्य और नैपच्यून के बीच में है, लगभग १४ गुणा अधिक है; और ३ हजार वर्षों से पहले उसके लौटने की आशा नहीं की जा सकती।

सन् १८४३ ई० में एक और वृहताकार पुच्छल तारा प्रगट हुआ और थोड़े ही समय से उसने लगभग एक तिहाई आकाश को घेर लिया। उसकी नाभि शुक्र के समान प्रकाशित दृष्टि आती थी। यह धूम केतु फर्वरी मास के अन्त में दक्षिणीय गोलार्द्ध में दिखलाई दिया था। आधा मार्च गुजरने के पश्चात् वह उत्तरीय गोलार्द्ध में भी दिखाई देने लगा। जब वह सूर्य के बहुत ही निकट पहुँच गया था, तो उसकी नाभि और सूर्य-पृष्ठ के बीच में केवल ३० हजार मील का अन्तर रह गया था। सूर्य की लपटें ५० हजार मील की ऊँचाई तक जाती हैं। इससे तुम अनुमान कर सकते हो, कि उसे कैसी भयानक गर्मी में से गुजरना पड़ा होगा। इस भयानक अग्नि काण्ड में से शीघ्र निकल भागने के लिये, उसने भी ३६६ मील प्रति सेकेण्ड की गति से दौड़ना आरम्भ कर दिया, और केवल २ घंटे ११ मिनिट में उसने अपनी दीर्घ वृत्ता कार कक्षा के आधे भाग (१८०° अंशों) को पार कर लिया। उसकी पूँछ की लम्बाई २० करोड़ मील के लगभग थी। यदि वह सूर्य्य के समीप पहुँच कर अपनी पूँछ को पृथ्वी की ओर फैला देता तो वह पृथ्वी और चन्द्रमा को बीच में लपेटती हुइ मंगल ग्रह से भी परे निकल जाती।

२ जून सन् १८५८ इ० को फ्लारेन्स (Florence) में डोनाटी (Donati) नाम के एक ज्योतिषि ने एक पुच्छल तार आविष्कार किया, जो उसीके नाम पर डोनाटी का पुच्छल तारा (Danati's Comet) कहलाता है। जुलाई मास से उसकी नाभि प्रगट हुई; अगस्त के अन्त तक वह खाली आँख से कठिनता से दिखाई दे सकता था। किन्तु, उसके पश्चात् उसने अपने पर व बाल निकालने आरम्भ किये और सितम्बर मास में वह भली प्रकार अपनी शान दिखाने लगा। उसकी चमक दमक प्रतिदिन बढ़ती जाती और पूँछ अधिक लम्बी होती जाती थी। अक्टूबर के अन्त में, जब वह अपनी पूरी शान को पहुँच गया, तो, उसकी पूँछ ४०° अंश लम्बी पायी गई थी।

इस पुच्छल तारे की पूँछ इतनी पार दर्शिक थी, कि ५ अक्टूबर को जब वह स्वाति नक्षत्र (Arcturus) के ऊपर से गुजरा तो उसकी पुच्छ के घने भाग में से वह सितारा स्पष्ट चमकता हुआ दिखाई देता था। यद्यपि, पतले से पतले बादल में से भी सितारे कुछ न कुछ धुँधले अवश्य पड़ जाते हैं; किन्तु, इस पुच्छल तारे की पूँछ में से वह सितारा जरा भी फीका न पड़ा और पूर्ण चमक के साथ चमकता रहा।

जब वह पुच्छल तारा सूर्य के पास से गुजरा तो उसके उत्ताप से उसमें कई प्रकार के परिवर्तन प्रगट हुए, पहले, अन्य पुच्छल तारों के समान, उसकी नाभि के गिर्द भी एक जगमगाता हुवा लपेट दृष्टि आता था—किन्तु, थोड़े ही समय में एक लपेट की जगह तीन लपेट हो गये और पहली पूँछ के पास ही एक और पूँछ निकल आई और बहुत समय तक सुन्दरता के साथ मोड़ खाती हुई एक कलगी के समन दृष्टि आती रही, फिर एक तीसरी पूँछ भी नजर पड़ी, जो बहुत फीकी थी। उसकी नाभि में से भी अग्नि के फव्वारे से छूटने लगे। जब वह सूर्य से दूर निकल गया, तो धीरे धीरे ठंडा पड़ता गया। ४ मार्च सन् १८५६ ई० तक वह बड़े बड़े दूर-दर्शकों में दृष्टि आता रहा, मगर उसके पश्चात् वह अदृश हो गया।

इसके भ्रमण काल के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न अनुमान लगाये गये हैं। यह काल, कुछ की सम्मति में, १८७६ वर्ष, कुछ के हिसाब में २०४० वर्ष और कुछ के विचार में २१३८ वर्ष है। किसी किसी का विचार ऐसा भी है, कि ईसा से १४६ वर्ष पहले जो बड़ा धूम केतु प्रगट हुआ था और जिस का वर्णन चीन देश की पुस्तकों में पाया जाता है, वह यही पुच्छल तारा था। उसकी पूँछ की बारे में अनुमान किया गया है, कि ३० अगस्त को उसकी लम्बाई एक करोड़ चालीस लाख (१४,०००,०००) मील थी, और १० अक्टूबर को पाँच करोड़ दस लाख मील (५१,०००,०००) मील मक पहुँच गई थी; और उसकी मोटाई भी ५० हजार मील से कम न थी, उसी तारीख को उसकी नाभि का व्यास ६३० मील पाया गया था।

इससे तीन वर्ष पश्चात्-अर्थात् सन् १८६१ ई० से, एक और बृहत धूम केतु का उदय हुआ, जो १३ मई सन् १८६१ ई० को न्यू साउथ वेल्ज (New South Wales) में प्रथम बार देखा गया था। ११ जून को वह सूर्य के निकटतम स्थान पर से गुजरा और २९ जून को वह उत्तरीय गोलार्द्ध में भी दिखाई देने लगा। सर जांन हरशल ने उसे केण्ट में हाकहर्स्ट से स्थान पर से निरीक्षण किया था। वह इसके सम्बन्ध में इस प्रकार वर्णन करते हैं :—

"यह पुच्छल तारा यहाँ पहले पहल २९ जून, शनिवार की तार को हाक हर्स्ट के एक ग्रामीण को दृष्टि आया था। अगले दिन ३० जून को जब मैंने उसे प्रथम बार देखा, तो वह अत्यन्त स्पष्ट दिखाई दे रहा था; और उसके पश्चात् तो उसकी चमक दमक किसी भी पुच्छल तारे से, जो मैंने कभी उससे पहले देखा था, अधिक हो गई। उसका प्रकाश शुक्र के सिवा, जब कि वह अपनी पूरीशान से चमक रहा हो, किसी भी ग्रह के प्रकाश से अधिक था।"

किन्तु, इस पुच्छल तारे के सम्बन्ध में अधिक विशेष बात यह है कि ३० जून को जब कि वह पृथ्वी और सूर्य के बीच में से गुजर रहा था, उसकी पूँछ की टक्कर हमारी पृथ्वी और चन्द्रमा के साथ हो गई। उस समय वह हमारी पृथ्वी से १ करोड़ ४० लाख मील के अन्तर पर था, और उसकी पूँछ बाहर की तरफ १ करोड़ ५० लाख मील तक फैली हुई थी। उस दिन हमारी पृथ्वी कोई २ घंटे तक उसकी पूँछ के बीच में से गुजरती रही; किन्तु आश्चर्य की बात यह है, कि इस अद्भुत घटना का किसी को पता तक न चला कुछ लोगों ने केवल इतना अनुभव किया कि आकाश का रंग कुछ पीला सा पड़ गया है और सूर्य का प्रकाश भी कुछ फीका पड़ गया है यद्यपि आकाश पर बादल का नाम निशान भी न था। इस घटना से यह भली प्रकार सिद्ध हो गया कि पुच्छल तारों की पूँछें यद्यपि बहुत ही बड़ी और भयप्रद प्रतीत होती हैं किन्तु वास्तव में वह ऐसी हलकी और झिर झिरी होती हैं, कि हमारी पृथ्वी को उनसे कभी कोई हानि पहुँचने का भय नहीं हो सकता।

१७ अप्रैल सन् १८७४ ई० को एक फ्रेंच ज्योतिषि कोगी (Coggia) ने मारसेल्ज (Marseilles) में एक पुच्छल तारा देखा जो उसीके नाम से प्रसिद्ध हो गया है। वह सन् १८६१ ई० वाले पुच्छल तारे की अपेक्षा बहुत धुँधला था तो भी वह आकाश पर एक अत्यन्त सुन्दर दृश्य उपस्थित करता था। जुलाई में वह खाली आँख से भली प्रकार दिखाई देने लगा। २१ जुलाई को वह पृथ्वी के अत्यन्त निकट पहुँच गया था। उस समय पृथ्वी से उसका अन्तर लगभग ६० लाख मील था। उसके भ्रमण-काल के सम्बन्ध मे बहुत से

अनुमान लगाये गये हैं। उनमें से एक अनुमान ५७११ वर्षों का और दूसरा १०४५५ वर्षों का है।

सन् १८८० ई० में एक पुच्छल तारा उत्तरीय गोलार्द्ध में देखा गया जो सन् १८४३ ई० के बड़े पुच्छल तारे के समान ही था और पीछे जब उसकी कक्षा का गणित किया गया, तो मालूम हुआ, कि वह भी उसी कक्षा पर भ्रमण कर रहा था, जिस पर सन् १८४३ ई० का पुच्छल तारा गति करता था। इसके २ वर्ष पश्चात्—अर्थात् सन् १८८२ ई० में रायोडी जनीरो (Rio de Janeiro) की वेध शाला के डाइरेक्टर को एक अत्यन्त आलोकित पुच्छल तारा दिखाई दिया। सर डेविड गिल्ल (Sir Deuid Gill) महोदय ने भी उसे आशा-अन्त रीप की वेधशाला में निरीक्षण किया था। वह बताते हैं कि उदय-काल में यह पुच्छल तारा अत्यन्त प्रकाशित प्रतीत होता था, और उसके कुछ मिनिट पश्चात् जब सूर्य निकल आता था तब भी उसकी चमक फीकी न पड़ती थी। यह पुच्छल तारा १७ सितम्बर को सूर्य और पृथ्वी के बीच में से गुजर गया और उसके अगले दिन वह सूर्य के प्रचण्ड प्रकाश में भी, सूर्य बिम्ब के पास स्पष्ट दिखाई दे रहा था। यह पुच्छल तारा भी ठीक उसी कक्षा पर गति करता हुआ पाया गया जिस पर सन् १८४३ ई० और १८८० ई० के पुच्छल तारे गति करते थे। इस बात ने ज्योतिषियों को कठिनाई में डाल दिया। यह तो सम्भव था कि सन् १८४३ ई० का पुच्छल तारा हो १८८० ई० में दुबारा लौट आया हो; पर यह बात कि वही पुच्छल तारा २ वर्ष के पश्चात् फिर लौट आया हो किसी प्रकार मानी नहीं जा सकती थी। यह बड़ा पुच्छल तारा लगभग ६ मास तक दृष्टि आता रहा। किन्तु, जब वह अदृश्य होगया, तो सर्व सम्मति यह थी कि यह १८४३ ई० और १८८० ई० का पुच्छल तारा नहीं हो सकता। इसके पश्चात् सन् १८८७ ई० में उसी कक्षा पर गति करता हुआ एक और पुच्छल तारा दृष्टि आ गया। अब इस समस्या का केवल एक ही हल समझ में आता था और वह यह है, कि यह तमाम पुच्छल तारे जो सन् १८४३, १८८० १८८२ और १८८७ ई० में प्रगट हुए थे, वह सब के सब किसी एक ही बड़े पुच्छल तारे के टुकड़े हैं जो इसी कक्षा पर पहले कभी भ्रमण करता होगा और किसी घटना से टूट कर टुकड़े-टुकड़े हो गया है। इससे यह बात फिर सिद्ध हो गई, कि पुच्छल तारे ग्रहों के समान कठोर पिण्ड नहीं हैं।

सन् १८८२ ई० के पश्चात् उत्तरीय गोलार्द्ध में कोई बड़ा और चमकीला पुच्छल तारा दृष्टि गोचर नहीं हुआ। सन् १९०१ ई० में दक्षिणीय गोलार्द्ध में एक प्रकाशित पुच्छल तारा प्रकट हुआ था। इसके पश्चात् १९०२ ई० में दक्षिणीय गोलार्द्ध में ही एक अत्यन्त धुँधला पुच्छल तारा दिखाई दिया, जो पेरिन का पुच्छल तारा (Perrine's Comet) कहलाता है। इसकी तरफ लोगों ने बहुत कम ध्यान दिया। किन्तु सन् १९१० ई० के जनवरी मास के अन्त में एक ऐसे प्रकाशित पुच्छल तारे का उदय हुआ कि वह दिन के प्रकाश में भी भली प्रकार दृष्टि आता था। उसने ज्योतिषियों तथा जन साधारण में फिर एक प्रकार की उत्तेजना उत्पन्न कर दी। इन्हीं दिनों में हेली के पुच्छल तारे की भी प्रतीक्षा की जा रही थी। अतः पहले इसे हेली का पुच्छल तारा ही समझा गया। किन्तु पीछे मालूम हो गया कि वह नहीं है।

दक्षिणी अफ्रीका में सबसे पहले १२ जनवरी बृहस्पतिवार को ट्रान्सवाल की हीरे की खानों में काम करने वाले मजदूरों ने ही इसे देख पाया था, यह पुच्छल तारा शीघ्र ही सूर्य के पास से गुजर गया और सायंकाल के समय पश्चिमी आकाश में बड़ा शानदार दिखाई देने लगा। इसकी नाभि बहुत स्पष्ट और चमकीली थी और शिर की रचना सन् १८७४ ई० के कोगी के पुच्छल तारे के शिर के समान थी। यर्केस की वेध शाला के डाइरेक्टर (Director of the Yerkes Obsercatary) प्रो० फ्रोस्ट (Prof Frost) ने उसके रश्मि-चित्र की परीक्षा की तो उसमें सोडियम की रेखाएँ स्पष्ट दृष्टि आती थीं। इसके अतिरिक्त साईअनोजन गैस (Cyanogen) भी पाई गई जो एक विषैली गैस है। सन् १९०८ ई० में मूर हौस के पुच्छल तारे (Moor House's Comet) में भी यह गैस पाई गई थी। २७ जनवरी को प्रकाश विश्लेषक यन्त्र द्वारा यह भी प्रतीत हुआ, कि उस समय वह पुच्छल तारा बड़े वेग से दूर जा रहा था, इसलिये उसका प्रकाश भी क्रमशः हलका पड़ता जा रहा

था। २६ जनवरी तक वह भली-भाँति दृष्टि आता रहा, किन्तु उसके कुछ दिनों के पश्चात् ही वह बिल्कुल अदृश्य हो गया।

पुच्छल तारों के सम्बन्ध में अब हम बहुत कुछ वर्णन कर चुके हैं, तुमने देख लिया है, कि पुच्छल तारे एक दृष्टि से तो प्रकृति की बहुत बड़ी चीजें हैं, किन्तु दूसरे दृष्टिकोण से वह बिल्कुल तुच्छ पदार्थ है। उनका आयतन तो इतना महान है, कि कभी-कभी सूर्य भी उनकी अपेक्षा अत्यन्त तुच्छ प्रतीत होने लगता है किन्तु उनमें सार पदार्थ कुछ भी नहीं होता, यही कारण है, कि वह इतने बड़े-बड़े पिण्ड होते हुए भी हमारे सौर साम्राज्य में कुछ भी गड़बड़ पैदा नह कर सकते। किन्तु देखा जाय तो सौर साम्राज्य सीमाओं में प्रवेश करने पर प्रायः उन्हीं को बहुत परेशानी उठानी पड़ती है। कभी-कभी तो वह इस जाल में ऐसे फँस जाते हैं, कि उन्हें अपना पीछा छुड़ाना कठिन हो जाता है और बहुत को तो तो आयु भर फिर कभी स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं होती और सूर्य की दासता में ही इनका अन्त हो जाता है। लापलास (Laplace) महोदय का विचार है, कि जो पुच्छल तारे अब हमारे सौर साम्राज्य से सम्बन्ध रखते हैं, वह इस साम्राज्य की प्राचीन प्रजा नहीं हैं किन्तु किसी समय वह सैर करते हुए इधर आ निकले थे और यहाँ आते ही पकड़ लिये गये।

जब कोई पुच्छल तारा दूर देश से आकर सौर साम्राज्य में प्रवेश करता है तो उसकी कक्षा परवलय आकृति की होती है। किन्तु जब वह वापिस लौटता हुआ किसी बड़े ग्रह के पास से गुजरने लगता है तो वह उसे आगे जाने से रोक लेता है और वहीं से फिर सूर्य्य की तरफ लौटने के लिये बाधित कर देता है, इस प्रकार से उसे राह से कुराह करके भटका देता है। अब उसे आकाश में अपना पुरातन मार्ग छोड़कर नवीन मार्ग निर्माण करना पड़ता है और वह एक ऐसा लम्बा दीर्घ वृत्त होता है जिसका उच्च बिन्दु (सूर्य्य से दूरस्थ बिन्दु) उस स्थान पर होता है जहाँ से उसे वापिस लौटना पड़ा था। इस प्रकार से वह सौर साम्राज्य में सदा के लिए पकड़ लिया जाता है। विद्वानों का विचार है कि साम्राज्य के चार बड़े ग्रहों—बृहस्पति, शनि, यूरेनस और नैपच्यून ने इसी प्रकार से बहुत पुच्छल तारों को पकड़-पकड़ कर सूर्य्य का दास बना दिया है। बृहस्पति ने लगभग ३० पुच्छल तारों को दास बनाया है। उनका भ्रमण काल
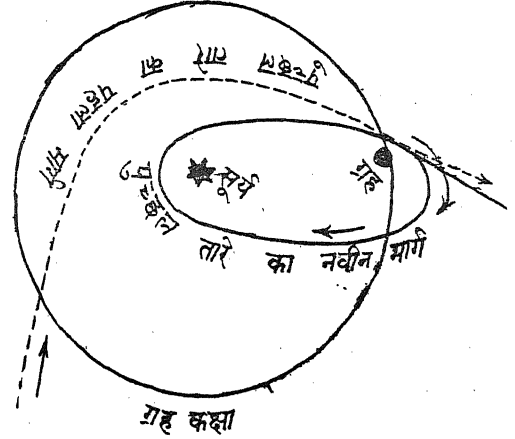
३ वर्ष से ८ वर्ष तक है और वह अपनी कक्षा पर भ्रमण करते हुए कहीं न कहीं बृहस्पति की कक्षा के पास से अवश्य गुजरते है; और यह वह स्थान होता है जहाँ पर वह पहले-पहल पकड़े गये थे। इसी प्रकार से शनि ने दो पुच्छल तारों को पकड़ा है, यूरेनस ने तीन को और नैपच्यून ने ६ को, जिनमें से एक हेली का पुच्छलतारा भी है।

इस प्रकार से जो पुच्छल तारे पकड़ कर दास बना लिये जाते हैं, उन्हें बार-बार सूर्य्य के पास से गुजरना पड़ता है, यह तो तुम पीछे देख ही चुके हो, कि जब कोई धूमकेतु सूर्य के पास से गुजरने लगता है तो उस पर कैसी मुसीबत आ पड़ती है। सूर्य के प्रचण्डताप से मानों उसका शरीर जल भुन कर कबाब हो जाता है, उसका शिर पिघल जाता है और उसके कुछ भाग गैस बन जाते हैं; और सूर्य की अपाकर्षण शक्ति से पीछे को धकेले जाकर उसकी पुच्छ में सम्मिलित हो जाते हैं। पूँछ लाखों मील में फैल जाती है और जब पुच्छल तारा किसी प्रकार अपनी जान बचाकर भाग निकलता है तो लाखों मीलों में फैले हुए उस द्रव्य को फिर इकट्ठा करना उसके लिये कठिन हो जाता है। इस प्रकार से उसका बहुत सा द्रव्य उसके शरीर

से अलग होकर नष्ट हो जाता है और प्रत्येक भ्रमण में वह अपने शरीर का कुछ न-कुछ भाग पीछे आकाश में छोड़ जाता है।

अपने प्रत्येक भ्रमण में पुच्छल तारे को कुछ ग्रह कक्षाओं के पास से भी गुजरना पड़ता है। यदि, उस समय वह ग्रह भी उसी स्थान पर हो, जहाँ से पुच्छलतारे को गुजरना है तो वह बिना कारण ही उस पुच्छल तारे के साथ खींचा तानी करने लगता है। उससे पीछा छुड़ाने के लिये पुच्छल तारे को बड़ा प्रयत्न करना पड़ता है। इस युद्ध में कभी-कभी तो उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं।

बीला के पुच्छल तारे की जो दुर्गति हुई थी—वह तो तो तुम पीछे पढ़ ही चुके हो। उसके अतिरिक्त और भी पुच्छल तारे आकाश में—टुकड़े-टुकड़े होते देखे गये हैं। सन् १८८२ ई० में एक बड़ा पुच्छलतारा देखा गया था। जब वह सूर्य के पास से गुजर गया, तो उसकी पूँछ के आठ छोटे-छोटे टुकड़े कट कर अलग हो गये थे और उसकी नाभि भी कई भागों में विभक्त हो गई थी। और समस्त भाग मोतियों के लड़ी के सदृश्य दृष्टि आते थे। ब्रुक का द्वितीय धूमकेतु (Brook's second Comet), जिसका सन् १८८९ ई० में आविष्कार हुआ था, उसकी भी यही गत बनी थी। उसके देखे जाने के कोई एक मास पश्चात् बृहस्पति ने उसे ऐसी बुरी तरह से झकझोड डाला कि उसके शरीर के चार टुकड़े हो गये जिनमें से दो बहुत धुँधले थे और शीघ्र ही अदृश्य हो गये किन्तु शेष दो भाग बहुत अधिक प्रकाशित थे और बहुत दिनों तक दृष्टि आते रहे। उनमें शिर और पूँछ दोनों भाग उपस्थित थे। सन् १९०८ ई० में अमेरिका के एक ज्योतिषि मूर हौस (Moor House) ने भी एक पुच्छल तारा आविष्कार किया था जिसकी पूँछ टूट कर उसके धड़ से अलग हो गई थी।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि सौर साम्राज्य में प्रवेश कर जाने के पश्चात् पुच्छल तारों को बड़ा अपमान सहन करना पड़ता है। उनको अपने मार्ग में सब दिन कोई-न-कोई भय उपस्थित रहता है। वह बेचारे डरते डरते अपना मार्ग तय करते हैं फिर भी किसी-न-किसी मुसीबत से दो चार हो ही जाते हैं जिससे उन्हें कठिन क्लेश उठाना पड़ता है। इन दुखों से घुल घुल कर अन्त में वह अपनी जान दे देते है और सदा के लिये लुप्त हो जाते हैं।

बहुत काल से खगोल शास्त्री इस बात को सोचते रहे हैं, क्या किसी समय किसी पुच्छल तारे से हमारी पृथ्वी को भी कुछ भय उपस्थित हो सकता है। तुम पीछे पढ़ चुके हो कि सन् १८६१ ई० में हमारी पृथ्वी एक पुच्छल-तारे की पूँछ में से गुजर चुकी है; किन्तु इस घटना से हमारी पृथ्वी पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ा। कारण यह है कि पुच्छल तारे की पूँछ बहुत ही सूक्ष्म होती है। हाँ! एक आशङ्का अवश्य है, किसी-किसी पुच्छल तारे के रश्मि-चित्र में कुछ विषैली गैसों के निशान पाये गये हैं। जिससे यह डर है कि यदि इस प्रकार के किसी पुच्छल तारे की पूँछ के साथ हमारी पृथ्वी की टक्कर हो जाये तो वह हमारे वातावरण को विषैला कर देगी। किन्तु वास्तव में यह डर भी फिजूल हैं क्योंकि पुच्छल तारे की पूँछ में द्रव्य की मात्रा बहुत न्यून होती है। जब एक वायु शोषक यन्त्र (air pump) से किसी बर्तन की हवा बाहर निकाल लेते हैं तब भी उसके भीतर भूले भटके वायु के कुछ कण रह ही जाते हैं। वह वायु कण एक दूसरे से जितने दूर रहते हैं पुच्छल तारे की पूँछ के कण उससे भी बहुत अधिक दूर दूर रहते हैं। अतः यदि हमारी पृथ्वी को किसी समय किसी ऐसी पूँछ के मध्य में से गुजरना भी पड़ जाय, तो उसके बहुत थोड़े कण हमारे वायुमंडल में अटके रह सकते हैं। इन थोड़े से कणों से हमारा समस्त वातावरण विषैला नहीं हो सकता।

इससे स्पष्ट है कि पुच्छल तारे को पूँछ के साथ टक्कर लग जाने से हमारी पृथ्वी को कोई हानि नहीं पहुँच सकती। अलबत्ता यदि किसी बड़े पुच्छल तारे के शिर के साथ टक्कर लग जाय तो कदाचित् कुछ भय हो सकता है। प्रो० पियर्स (Prof Pears) का विचार है कि पुच्छल तारे की नाभि (शिर का स्थूलतम भाग), यदि ठोस होती है तब तो यदि ऐसी टक्कर किसी समय हुई तो अवश्य सर्वनाश हो जायेगा। पुच्छल तारे का शिर ज्यूँ ही हमारे वायु मंडल में दाखिल होगा, वह एक दम जल उठेगा और आकाश ऐसा प्रकाशित हो जायेगा कि

हजारों सूर्यों के आलोक को भी मात कर देगा; इससे प्रत्येक की आँख अन्धी हो जायेगी, और उष्णता भी इतनी बढ़ जायेगी कि कठोर-से-कठोर चट्टान भी पिघल जायेगी।

किन्तु पुच्छल तारों का शिर तो नन्हें नन्हें द्रव्य कणों का ढेर होता है; इस लिये, इस प्रकार के भय का कोई कारण प्रतीत नहीं होता। हाँ, केवल इतना अवश्य होगा कि जिस रात पुच्छल तारे के साथ पृथ्वी की टक्कर होगी उस रात आकाश पर उल्का पिंडों की शानदार बौछार अवश्य देखने में आयेगी, जिससे प्रत्येक क्षण में हजारों उल्का टूट टूट कर पृथ्वी पर गिरते प्रतीत होंगे।

# सत्तर लाख कोढ़ियों की चिकित्सा

## भारत में लाखों कुष्ठ रोगी

[ लेखक—हेलन एस्ट ]

इस समय विश्व के सत्तर लाख मनुष्य कुष्ठरोग से पीड़ित हैं जिनके लिये चिकित्सा तथा औषधि क्षेत्र में मिलने वाली महान सफलता ने एक नवीन आशा को जन्म दिया है। ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने अपने सतत प्रयत्नों द्वारा इस भयंकर रोग की एक अद्वितीय दवा तैयार करली है जिसका नाम अभी घोषित नहीं किया गया है।

इनमें से लगभग १५ लाख कोढ़ी राष्ट्रसमूह के देशों में रहते हैं और भारत के कुष्ठरोगियों को सम्मिलित करने पर यह संख्या पहले लगभग तीस लाख थी। इसलिये यह स्वाभाविक था कि ब्रिटिश लोग इन क्षेत्रों में फैली इस भयंकर बीमारी को मिटाने का भरसक प्रयत्न करें।

ब्रिटेन और विदेशों में नवीन औषधियों की सहायता से अनेकों परीक्षायें की गई हैं। इस रोग के फैलाव को रोकने के लिये उन स्थानों के निवासियों को समझाया तथा शिक्षित किया जा चुका है। बच्चों को इसके प्रभाव से बचाने, निवास अवस्थाओं को सुधारने और रोगियों को चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाओं से पर्याप्त लाभ उठाने की सलाह भी दी गई है।

भारतीय चिकित्सा सर्विस के सदस्य सर लियोनार्ड रोजर्स ने सबसे पहले चॉलमोगरा अथवा हीपनोकार्पस तेल की सुइयाँ लगा कर कोढ़ियों का इलाज करना प्रारम्भ किया था। उन दिनों कोढ़ के इलाज के लिये केवल एक यही विधि मालूम थी कि ऐसा तेल शरीर के अन्दर प्रवेश कर दिया जाये। इस प्रकार की सुइयों ने काफ़ी असर किया लेकिन प्रोमिन तथा डिएसोन नामक अमेरिकन दवाओं के विकसित होने पर ही इस रोग की चिकित्सा में एक निश्चित सुधार हो सका। इनके पश्चात् वेलकम संस्था की सल्फेट्रोन नामक एक ब्रिटिश औषधि सामने आई जिससे कुष्ठरोगी बहुत लाभ उठाने लगे, क्योंकि यह दवा रोगी की सामान्य अवस्था पर बहुत कम बुरा असर डालती थी। इसलिये आजकल केवल इसी औषधि को राष्ट्र-समूह क्षेत्रों में अधिकाधिक प्रयुक्त किया जाता है।

### मनोवैज्ञानिक रूप

यह बात ध्यान में रखनी आवश्यक है कि उपचार काल में रोगी को अपनत्व का अनुभव हुए बिना बढ़िया से बढ़िया दवा भी पूर्णतया असर नहीं कर सकती। क्षयरोग चिकित्सा की तरह अनेकों परीक्षाओं से यह भी सिद्ध हुआ कि मनोवैज्ञानिक रूप की ओर ध्यान दिये बिना कोढ़ से रोगियों को मुक्त करना बहुत कठिन है। इसलिये रोगियों को बेकार बैठा रखने की अपेक्षा उसके लिये काम-काज, खेल-कूद, संगीत तथा पुस्तकें, और बच्चों के लिये विद्यालय का प्रबन्ध किया जाता है ताकि वे अपना मन बहलाते हुए शीघ्र स्वस्थ हो सकें। जब किसी दूसरों पर किसी रोगी

का बुरा असर पड़ने की सम्भावना नहीं दिखाई देती तो उसे उसके परिवार वालों से मिलने की अनुमति दे दी जाती है।

कोढ़ियों के अलग कृषिक्षेत्र हैं जहाँ वे खेतों तथा उद्यानों में काम करके अपना रोज़ी कमाते हैं। कई स्थानों पर उन्होंने अपने गन्दे तथा पुराने मकानों की जगह नवीन साफ सुथरे और आरामदायक मकान बना कर गाँव के गाँव बसा डाले हैं। वे लोग अपने को जातिभ्रष्ट नहीं मानते, कामधन्धे के लिये बेधड़क इधर से उधर घूमते फिरते हैं। यदि ऐसा न सोचा जाय तो रोग से स्थायी छुटकारा प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है।

ब्रिटिश गिनी महायका स्थित कोढ़ अस्पताल से प्राप्त होने वाली सूचनाओं में यह पता चलता है कि वहाँ लगभग दस वर्षों में तक यह बीमारी समाप्त हो जायेगी। नवीन ब्रिटिश दवा के सफल परिणामों को देखकर ही यह अनुमान लगाया गया है। इस चिकित्सालय में बहुत से रोगी स्वस्थ होकर बाहर जा चुके हैं, बहुत ठीक होते जा रहे हैं, और किसी नये रोग तथा कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। बाल-विद्यार्थियों की डाक्टरी परीक्षा तथा रोग लक्षण झलकते ही इलाज व्यवस्था के कारण कोढ़ फैलाव रुकता जा रहा है। एक लाख बच्चों की परीक्षा लेने पर २२० बच्चे इस मर्ज के मरीज पाये गये थे।

कोढ़ नाशक आन्दोलन को चालू रखने के लिये ब्रिटिश औपनिवेशिक कार्यालय पर्याप्त आर्थिक सहायता देता है। लन्दन स्थित ब्रिटिश साम्राज्य कोढ़ निवारण संस्था ने दर्जनों छोटे बड़े अस्पताल खोल रखे हैं जिनमें डाक्टरों, नर्सों और अन्य कर्मचारियों को शिक्षण मिलता है। ऐच्छिक चन्दों से चलने वाली इस संस्था के प्रतिनिधि सलाहकार रूप में विदेश जाकर निर्धारित स्थानों पर अपनी विशेष राय तथा अनुभव बतलाते हैं, सब तरह की आवश्यक औषधियाँ भिजवाई जाती हैं और राष्ट्रसमूह के ऐसे लोगों तथा संस्थाओं से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है जो इस महान कार्य में सहयोग देने की इच्छा रखते हैं।

---

# जानवरों की अनोखी बातें

[ लेखकः—श्री राममूर्ति मेहरोत्रा एम० ए० ]

आज मैं आपको जानवरों की कुछ अनोखी बातें बताऊँगा जिनको सुनकर आप चकित हो जायेंगे।

यह आप जानते होंगे कि मनुष्यों की भाँति जानवरों की भी शिक्षा होती है। सरकस में पशु-पक्षियों के खेल तमाशे तो आपने देखे होंगे, पर यह न सुना होगा कि जानवर सिनेमा में भी पार्ट लेते हैं। सिनेमा संसार में जिस प्रकार चार्ली-चैप्लीन, सहगल, इत्यादि एक्टरों का नाम है, उसी प्रकार कुछ पशु-पक्षी भी नाम पैदा कर चुके हैं। यह कहना अनुचित न होगा कि पश्चात्य देशों में मनुष्यों के फिल्मों की अपेक्षा पशु-पक्षियों के फिल्मों की अधिक धूम रहती है। अमेरिका में कई एक ऐसे चिड़िया खाने हैं जिनमें पशु-पक्षियों को सिनेमा में पार्ट करने की शिक्षा दी जाती है। हालीवुड इसका सबसे बड़ा केंद्र है। यहाँ सैकड़ों शिक्षित पशु-पक्षी हैं। हाथी-चीते आदि अनेकों खूँख्वार जानवर कैमरों के सामने पार्ट करते हुए दिखाई देते हैं। केलीफोर्निया में भी एक चिड़ियाखाना है जिसके उकावों ने 'Adventure of Marco polo' नामक फिल्म में पार्ट किया था। इनको मिहनताना भी अच्छा मिलता है। उदाहरणार्थ उक्त उकावों को १० पौंड प्रतिदिन प्रति उकाब के हिसाब से मिलता था।

जिस प्रकार बालकों की शिक्षा में अनेक स्वभाव आदि का अध्ययन करना पड़ता है, उसी प्रकार पशु-पक्षियों को शिक्षा देने के लिए उनके स्वभाव का भी

अध्ययन करना पड़ता है। जब कोई नया पशु-पक्षी आता है, तो वह किसी गुणी को सौंप दिया जाता है जो उसके स्वभाव का अध्ययन करके देखता है कि वह उछलने-कुदने, दौड़ने, बात करने, हँसने-रोने, इत्यादि किस योग्य है और उसे उसी प्रकार की शिक्षा देता है। सिनेमा में शेर, चीते आदि को कुत्तों की भाँति खुले हुए घूमते देख कर आश्चर्य होता है और सब फिल्म बनावटी मालूम होता है, पर ऐसा नहीं है। अधिकांश फिल्म वास्तविक होते हैं। एक उदाहरण से आप समझ जाएँगे कि इनको किस प्रकार पालतू बना शिक्षा दी जाती है। 'कुइआया' जङ्गली फिल्म के डायरेक्टर महोदय लिखते हैं "चित्र बनाना तय पाकर हम लोग सदल-बल कुइआया के जंगल में पहुँचे। दस एकड़ जमीन में घेरा डाला गया जिसमें बहुत से सिंह, बाघ, जंगली कुत्ते, हिरन, वानर और भेड़िये थे। पहरे के कारण वे उससे बाहर नहीं निकल सकते थे।

"अब प्रश्न था कि बाघ और हिरन में मित्रता कैसे पैदा की जाय। बाघ और हिरन पास ही पास दो पिंजड़ों में रक्खे गये। मैं नित्य उसके पास जाकर उन दोनों पर हाथ फेरता और अपने हाथ से खिलाता था।

"एक मास के भीतर बाघ और हिरन ऐसे हिलमिल गये कि मुझे और फिल्म की नायिका जेम-पार्कर को आते देखकर वे प्रसन्नता से खिल उठते। इसके बाद दोनों के गले में साँकल बाँध कर मैं उन्हें पिंजड़े से बाहर निकालने लगा। दोनों खेला करते, लेकिन मैं बराबर सतर्क रहता था। १०-१२ दिन में ही दोनों में भक्ष्य और भक्षक का संबंध जाता रहा। इसी प्रकार अन्य जानवर भी वशीभूत किये गये।

"तब पहरेदार नियुक्त करके सब जानवरों की सांकलें खोल दी गईं। अहाते के भीतर वे स्वतंत्रत पूर्वक घूमने-फिरने लगे। कुछ जानवर तो मेरे साथ बहुत अधिक हिल-मिल गये थे। अब चित्र लेने में कोई बाधा न थी और सहज ही उन पशुओं की फिल्म उतार ली गई।"

अब आप को सिनेमा संसार से कुछ प्रसिद्ध एक्टरों के विषय में बताता हूँ। केलीफोर्निया के चिड़ियाखाने में दो कौवे थे जो संकेत पाते ही लोटने-पोटने लगते थे और तोतों की भाँति अनेक सार्थक शब्द बोलते थे। एक भारतीय पक्षी तो अंगरेजी गाने तक गाता था। जैकी नाम का एक शेर तो कुत्तों के साथ खेलना, अपने मालिक या एक्टरों को देख कर दुम हिलाना, चूमना-चाटना, भयंकर रूप धारण करना, हँसना, इत्यादि अनेक पार्ट बड़ी सफाई से करता था।

'ली डांकन' एक हवाई अफसर के पास 'रिन-टिन-टिन' नाम का एक कुत्ता था जिसका लासएँ जिल्स में फिल्म लिया गया और वह सिनेमा संसार में एक प्रसिद्ध अभिनेता हो गया। डाँकन इसे इतना प्यार करता था कि अपनी स्त्री तक की परवाह न करता था। जब इसकी स्त्री ने अपने पति पर तलाक का मुकदमा चलाया, तो यह भी गवाही देने गया था।

'वार्कीज' नाम के कुत्ते हँसी-मजाक का पार्ट करने के लिए प्रसिद्ध थे। पीपर नाम की एक बिल्ली ने भी काफी रुपया पैदा किया था। 'जो मार्टिन' नाम शिम्पाजी ने भी काफी नाम पैदा किया था पर बाद में इसका दिमाग खराब हो गया था। गोनिट और साम नाम के शिम्पांजियों के पार्ट देख कर लोगों के हँसते हँसते पेट फूल जाते थे। टफ डो लायक नामक कुत्ता पुल से कूद कर आदमी की जान बचाना; ताश खेलना आदि के पार्ट बहुत सुन्दर करता था। भारत में भी पंजाब का 'बेटा घोड़ा' और 'बेटा कुत्ता' दो प्रसिद्ध पशु-अभिनेता हुए हैं। हाथियों के भी किपलिंग की कहानी के आधार पर 'एलीफेंट ब्वाय' और 'काला नाग' दो सुन्दर फिल्म तैयार किये गए थे। किंग काँग प्रसिद्ध फिल्म में जंगली जानवरों के फिल्म थे। चींटी और शहद की मक्खियों तक के फिल्म बने हैं। ये भी इस दौड़ में पीछे नहीं रही हैं।

## जानवरों की दौड़

आपने स्कूली बालकों की दौड़ तो देखी ही होगी, कछुए और हिरन की दौड़ की कहानी भी सुनी होगी, हिन्दू धर्म ग्रन्थों में हनुमान और गरुड़ की दौड़ की कथा भी दी है, गाँव वाले गाड़ियों में बैलों की दौड़ का आनंद लूटा करते हैं, वेदों में घुड़दौड़ का भी उल्लेख है, पाश्चात्य देशों में कुत्तों तक की दौड़ होती है। अतः दौड़ का शौक पुराना है, पर आपको यह पता न होगा

कि जानवरों की यह दौड़ मिनटों में लाखों के वारे न्यारे कर देती है और तनिक में ही राजा को रंक और रंक को राजा बना देती है और आजकल तो यह व्यवसाय इतना बढ़ गया है कि मेंढकों, कबूतरों, इत्यादि छोटे-छोटे पशु-पक्षियों तक की दौड़ होती हैं और दौड़ ही नहीं तीतर और बटेर तो बाजी लगा कर लड़ाए भी जाते हैं। अब मैं यहाँ कुछ प्रमुख जानवरों की दौड़ की चर्चा करूँगा।

## घुड़दौड़

भारतवर्ष के अतिरिक्त ग्रीस और रोम में इसका खूब प्रचार था। यहाँ भारतवर्ष की भाँति रथ में घोड़े जोते जाते थे और रथों में घुड़-दौड़ होती थी। जिस प्रकार हर्डल रेस (Hurdle race) में अनेक प्रकार की रुकावटें डाली जाती हैं, उसी प्रकार इन रथों की दौड़ के लिए भी दौड़ के मार्ग में ऊँचे-ऊँचे नुकीले पत्थर गाड़े जाते थे।

आजकल इंगलैंड की डर्बी दौड़ सबसे प्रसिद्ध घुड़-दौड़ है। इसका प्रारम्भ सन् १७८० में हुआ था। इसका इतिहास भी बड़ा मनोरंजक है। दौड़ जीतने के लिए लोग अनेक प्रकार के जाल रचते थे। एक बार श्री क्रोकफोर्ड महोदय के रतन नामक घोड़े को जिसके जीतने की सब को पूरी-पूरी आशा थी। किसी प्रतियोगी ने किसी प्रकार शराब पिला दी। फल यह हुआ कि वह दौड़ के आधा मिनट बाद ही गिर पड़ा। इसका उसके मालिक पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि दूसरे दिन उसका हार्टफेल हो गया।

इस दौड़ में तीन वर्ष से अधिक का घोड़ा भर्ती नहीं किया जाता, लेकिन मिस्टर गुडमैन लैमी ने अपने घोड़े मैकाब्यस के चार साल के हो जाने के कारण उसको दूसरे रंग में रंगवा कर नाम बदल दिया और उसे रनिंगरेन के नाम से दौड़ में उतार दिया और वह जीत भी गया, पर बाद में जब लैमी की मक्कारी का पता चला तो मुकदमा चला और इनाम दूसरे घोड़े को मिला।

हमारे भारतवर्ष में भी आगा खाँ और राजापिपला को घुड़दौड़ का बड़ा शौक है। १९३४ में राजापिपला और १९३६ में आगा खाँ दौड़ जीते थे।

डर्बी की दौड़ पहले बुधवार को आरम्भ होती है। इसमें भर्ती होने की फीस पाँच पौंड है। दौड़ के पहले और पीछे घोड़ों की तौल और नाप जोख होती है।

घोड़ों घोड़ों के अतिरिक्त घोड़े और आदमियों में भी घुड़दौड़ होती है। एक बार लंदन के क्रिस्टल पैलेस में सी० डब्लू० हार्ट एक ५९ साल बूढ़े और 'हौसी लाली' नामक घोडे में दौड़ हुई। प्रतिदिन १० घंटे तक दौड़ होती थी। आप यह सुनकर दंग रह जायेंगे कि पाँच दिन की दौड़ के बाद हार्ट घोड़े से ८ मील आगे निकल गया, घोड़ा ३३७ मील दौड़ा और हार्ट ३४५।

## चीतों की दौड़

गंडर डावर ने चीतों की दौड़ शुरू की थी।

## मेंढकों की दौड़

मि० डा फ्रेडरिक के दौड़ की, मेंढक की जिसने पाँच दिन में ७५ मील की दौड़ पूरी की थी, चर्चा तो की जा चुकी है। मेंढकों की सबसे पहली दौड़ न्यूयार्क में हडसन नदी के किनारे एक चबूतरे पर हुई थी। आप सोचते होंगे कि आखिर मेंढक दौड़ाए कैसे गए होंगे। मेंढकों को दौड़ाने की शिक्षा तो बीस-इक्कीस दिन पहले से ही दी जा रही थी। दौड़ के लिए ५०-५० फीट लम्बी छः गलियाँ बनाई गई थीं जो पतले कपड़े से घेरी गई थीं। मेंढकों को ललचाने के लिए गली के सिरे पर मक्खी, चींटी आदि कोई कीड़ा रखा और उनकी एक टांग पकड़ने की आज्ञा मेंढकों के मालिकों को थी। इनकी दौड़ आरम्भ करने को ज्यों ही बंदूक छोड़ी गई कि मेंढक छलांग मार कर कपड़े की दीवालों पर चढ़ गए। बाद में छड़ी से छेड़-छेड़ कर उनको दौड़ाया गया।

## कबूतरों की दौड़

बाजी लगा कर कबूतरों की उड़ान तो भारतवर्ष में होती हैं, परन्तु कबूतरों की दौड़ का बेलजियम में बहुत शौक है। यहाँ प्रत्येक रविवार को कबूतरों की दौड़ होती है। दौड़ के कबूतरों को हवाई जहाज पर ले जाकर एक निश्चित स्थान से उड़ाया जाता है। दौड़ आरंभ होने के

पहले हर एक कबूतर को एक रबर का छल्ला पहना दिया जाता है और उन्हें रोशनी में बैठा दिया जाता है। रोशनी का बंद होना दौड़ आरंभ होने का संकेत है। जब कबूतर नियत स्थान पर पहुंच जाता है तो छल्ले निकाल कर एक मशीन में डाल दिए जाते हैं जो कि यह बता देती है कि प्रत्येक कबूतर को वहाँ तक आने में कितना समय लगा है। दौड़ आरंभ होने और समाप्त होने के स्थानों के बीच की दूरी मालूम ही रहती है। बस सहज ही मालूम हो जाता है कि कौन-कौन कबूतर किस-किस गति से उड़ा है और जिसकी गति सबसे तेज होती है उसे इनाम मिलता है। कबूतर की ये दौड़ चार पांच सौमील से लेकर एक एक हजार मील तक की होती हैं। और बड़े बड़े इनाम मिलते हैं।

एक बार अमरीका में आयडिंग नामक स्थान में कबूतरों और शहद की मक्खियों में भी आध मील की दौड़ हुई थी जिसमें शहद की मक्खी जीती थी और उसने ५७ सेकंड में दौड़ पूरी की थी।

## घोंघा, गुबरीला, इत्यादि कीड़े-मकोड़ों की दौड़

रूमानियों में एक बार घोंघों की भी दौड़ हुई थी। इसके अतिरिक्त सन् १६१४ के यूरोपीय महायुद्ध में कुछ सिपाहियों ने गुबरीलों को भी दौड़ाया था।

## बातचीत करने वाले जानवर

बात-चीत अपनी-अपनी बोली में सभी कोई जानवर करते हैं। यह बात दूसरी है कि हम लोग न समझ सकें, पर वे सब समझते हैं। यदि ऐसा न हो, तो बच्चों की चँ-चूँ सुनकर चिड़िया चुग्गा देने क्यों दौड़ी आवे। किसी शिकारी अथवा शत्रु के आने पर अथवा अन्य किसी प्रकार का खटका होने पर नेता के आवाज लगाते ही सब उड़ कर फुर्र या भाग कर नौ दो-ग्यारह कैसे हो जायँ। बात चीत करने वाले जानवरों से मतलब है वे जानवर जो आदमियों की भाँति बोलते हैं और जिसे हम समझ सकते हैं, उदाहरणार्थ तोता और मैना। ये दोनों बिलकुल आदमियों की भाँति बात-चीत करते हैं। इनके विषय में भारतवर्ष में बहुत सी कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। धार्मिक पुस्तकों में दिया है कि एक गणिका अपने तोते को राम-राम रटाने के कारण ही स्वर्ग चली गई। तोता, मैना आदि के चोर-चोर, आग-आग, इत्यादि शब्द चिल्ला देने से अनेकों दुर्घटनाएँ बच जाने की तो बहुत सी कहानियाँ हैं। 'तोता-मैना' की सम्भल (मुरादाबाद) में एक कब्र है जो इनकी स्मृति में बनाई गई है। ये किस्से कहानी कहा करते थे। ये किस्से-कहानियाँ 'तोता-मैना के किस्से' के नाम से पुस्तक के रूप में प्रकाशित भी हो चुके हैं। जायसी के पदमावत में राजा रतन सेन के पास पद्मिनी की सुदंरता का बखान हीरामन तोते ने ही उपाय करके दोनों को मिलाया था, नल दमयंती की प्रेम गाथा भी हंस के द्वारा ही हुई, दमयंती का गुण गान हंस ने ही किया था, महमूद ने गाँव उजाड़ना उल्लू-उल्लनी की बात-चीत सुनकर ही छोड़ा था।

इनके अतिरिक्त भुचेंग एक काली चिड़िया भी बोलती है। कोयल की कू-कू, में कू-कू, कू-कू की होड़ तो प्रायः बचपन में सभी ने लगाई होगी। सुनते हैं नाम की नकल उल्लू भी करता है इसीलिए प्राय, स्त्रियाँ रात में बच्चों का नाम नहीं लेती हैं। उनका कहना है कि यदि उल्लू बच्चे का नाम रटने लगता है तो वह बच्चा सूखने लगता है। अब तनिक भारतवर्ष के बाहर के पक्षियों के विषय में सुनिए।

इंगलैंड में रबिन और स्टर्लिंग भी आदमी की बोली की नकल करने में बहुत चतुर हैं और साफ बोलते हैं।

आस्ट्रेलिया में 'मैगपाइ' और 'जे' पक्षी आवाज की नकल करने में बड़े निपुण होते हैं। अफ्रीका में एक भूरा तोता और ब्राजील देश में अमेजन चिड़िया भी खूब बोलती हैं।

यहाँ एक बात बता देना आवश्यक है। जिस प्रकार हम लोग दिल-बहलाव के लिए यूँ ही मुँह गाना-गुनगुनाया करते हैं ऐसे ही तोता-मैना आदि बोलने वाले पशु-पक्षी भी केवल मनोरंजन के लिए मनुष्यों की बोली की नकल किया करते हैं और अनेक शब्द बोली दोहराया करते हैं, पर वे उनको केवल रट कर ही

दोहराते है, समझते कुछ नहीं । यही कारण है कि हम उनकी बोली को भाषा नहीं कह सकते, यद्यपि उनकी भाषा है अवश्य । यही कारण है कि वे विभिन्न अवसर पर विभिन्न प्रकार की आवाजें निकालते हैं । उदाहरणार्थ कुत्ता, क्रोध के समय 'घेऊँ' 'बिल्ली' 'ओयाओ' ओयाओ' कहती है और साधारण दशा में तो 'म्याउ-म्याउ' करती ही है । रिडर्वन साहब ने भाषा समझने का प्रयत्न किया है और कुछ आवाजों के अर्थ भी निकाले हैं जैसे हाथी 'स-स क' 'स-स क' करके कहता है 'यह वही सज्जन है' 'आध-इः एः' के माने हैं 'नमस्ते' 'उ,-उ,-उ,-उ,' के अर्थ हैं शीघ्रता करो ।

## जानवरों का कब्रिस्तान

मनुष्य की भाँति ही मरते जीते तो पशु पक्षी भी हैं, परंतु मनुष्य के लिए तो केवल एक ही कब्रिस्तान होता है । अपना मनुष्य बनाता है, लेकिन जानवरों के लिए एक प्राकृतिक अर्थात् प्रकृति द्वारा बनाया हुआ भी होता है । आप सोचते होंगे मनुष्यों जैसा कब्रिस्तान पशु-पक्षियों के लिए कौन बनाता होगा । आप यह सुन कर दङ्ग रह जायेंगे कि पशु पक्षियों के शोक में भो लोग इसी प्रकार रोते हैं जिस प्रकार मनुष्यों के । प्राचीन मिस्र और बेव-लोनियाँ में तो इनके मरने में राजा और पुरोहित लोग तक सम्मिलित होते थे और कुनवे-गोते वालों की भाँति मूँछ और बाल तक मुड़वाते थे । पेरिस में तो इनकी स्मृति में मन्दिर भी बनाये जाते हैं । पेरिस में सीन नदी के किनारे एक बड़ा कब्रिस्तान है जिसमें हजारों कब्रें बनी हैं जिनमें से कुछ पर तो बड़े-बड़े सुन्दर पद लिखे हैं । इटली में 'कुइलीन' पहाड़ पर एक मक्खी की कब्र है जिसे कवि मार्जिल ने पाल रक्खा था । इसका अन्तिम संस्कार बड़े समारोह के साथ किया गया था और बरषी तो अभी तक हर साल मनाई जाती है जिसमें लाखों रुपये खर्च होते हैं । एक बार टोकियो की कीव यूनिवर्सिटी के विद्यार्थियों ने बहुत से मेंढक मार डाले थे जिनका वहाँ पर एक बड़ा भारी कब्रस्तान है । तोता-मैना की कब्र जैसी कुछ कब्रें तो भारतवर्ष में भी हैं, पर कोई बड़ा, कब्रिस्तान नहीं है । यहाँ जानवर नदियों में बहा दिये जाते हैं । अब प्रकृति द्वारा बनाये हुये कब्रिस्तानों को लीजिये ।

आपको यह जानकर विस्मय होगा कि जानवर मनुष्यों की भाँति खाट पर पड़े-पड़े नहीं मरते । उनको मरने के पूर्व पता हो जाता है कि अब वे मरने वाले हैं । बस वे एक निश्चित निर्जन स्थान में चले जाते हैं और वहाँ देह त्याग देते हैं, पर कहाँ जाते हैं और वे स्थान कहाँ हैं यह पता लगना कठिन है । हाथी इतना बड़ा जानवर है पर आज तक किसी को पता नहीं लगा कि यह कहाँ मरता है और न किसी को इसकी लाश ही मिली ।

जंगली जानवर मनुष्यों की भाँति अपने घरों में कभी नहीं मरते । हाल ही में पता चला है कि ईल मछली मृत्यु का समय निकट आने पर बरमूदा के तट पर मरने के लिये चली जाती है । अफ्रीका में इत्तोशा पान अर्थात् दलदल की झील इस प्रकार का एक बड़ा भारी ७५ मील लम्बा और ५० मील चौड़ा अँधेरिया कब्रिस्तान है जहाँ सूरज की किरण की पहुँच नहीं । इसमें अफ्रीका के बड़े-बड़े जंगली जानवरों की हड्डियाँ पड़ी हैं, जिन्हें देख डर लगता है । प्राकृतिक श्मशान भूमि का यह एक अच्छा उदाहरण है ।

( विश्ववाणी के सौजन्य से )

# भौतिक अध्ययन और रासायनिक संयोजना

[ लेखक—घनश्यामकृष्ण शुक्ल ]

वस्तुओं का अस्तित्व उनकी विशिष्ट अवस्थाओं में विद्यमान रहता है । भौतिकदृष्टि से हम किसी वस्तु की तात्कालिक अवस्था का परिचय पाते हैं । रासायनिक गुण किसी भी वस्तु की रासायनिक रचना पर ही अवलम्बित नहीं रहते; वस्तु की उपस्थिति दशा का भी परिचय उसके गुण विवेचन में नितांत आवश्यक है । इसके अतिरिक्त संयोजन के अध्ययन के लिये वस्तु की अवस्था विशेष का ज्ञान ही माध्यम होता है क्योंकि रासायनिक संयोजन पूर्णतः संयुक्त तत्वों और संयोजन की परिस्थिति पर निर्भर है । उदाहरणार्थ दो तत्व आपस में भिन्न प्रकार से संयोग कर सकते हैं और विभिन्न यौगिकों का निर्माण उन दो तत्वों की संयोजन परिस्थिति तथा संयोजन अवस्था पर निर्भर है । उनसे उत्पन्न यौगिकों में किसी भी भाँति का भौतिक साम्य होना सम्भव नहीं । केवल संयोजन में वे ही दो तत्व रहते हैं, उनसे उत्पन्न यौगिकों के रासायनिक गुणों को यौगिक की उत्पत्ति अवस्था और परिस्थिति नियत करती है। इस भाँति भौतिक अध्ययन से रासायनिक संयोजन का एक अटूट सम्बंध है ।

स्थूल दृष्टि से पदार्थ तीन अवस्थायें प्राप्त कर सकता है ठोस, द्रव अथवा वाष्प। ये अवस्थायें पदार्थ की विभिन्न परिस्थितियों की द्योतक हैं । भौतिक दृष्टि से परिस्थितियों को मुख्यतः ताप, दबाव, विद्युत, प्रकाश, और आकर्षण में विभक्त कर सकते हैं । प्रत्येक भौतिक अथवा रासायनिक परिवर्त्तन इन्हीं शक्तियों के अन्तरगत उपस्थित होता है । संयोजन में तत्वों का आपस में इन्हीं शक्तियों के अन्तरगत एक दूसरे से सम्बंध होता है तथा संयोजक तत्वों को आपस में एक विशिष्ट योजनानुसार एकत्र रखने के लिये उनका एक दूसरे से सामीप्य, तथा समीप रखने के लिये प्रेरक शक्तिकी आवश्यकता होती है। कही सामीप्य प्रेरक शक्तिही यौगिक की बंधनशक्ति के नाम से पुकारी जाती है तथा इसीके परिमाण पर यौगिक की स्थिरता अवलम्बित है । जब यौगिक अपने अवयव तत्वों में टूटता है तो यही शक्ति उपरोक्त में से किसी रूप में प्रस्तुत हो जाती है । भौतिक शक्तियाँ एक दूसरे की तुलना में पूर्णतः स्वतंत्र होती हैं और इनका नाश असम्भव है । विशेष परिस्थितियों में एक का दूसरे रूप में मुन्वरित होना सम्भव है । इस भाँति नाश के स्थान पर परिवर्त्तन हो सकता है । जिस प्रकार से एक स्थान पर नियमित दबाव, ताप की सृष्टि करता है तथा इस भाँति उत्पन्न ताप की मात्रा दबाव में व्यय शक्ति के अनुरूप ही होती है ।

अस्तु, पदार्थ की संयोजन अध्ययन के लिये उसकी अवस्था और उसकी उत्पत्ति तथा तात्कालिक वर्तमान परिस्थिति का वास्तविक ज्ञान होना आवश्यक है । यह तो निर्विवाद ज्ञात है कि वस्तुयें साधारणतः अपनी बाह्य स्थिति के अनुसार अवस्थायें प्राप्त करती हैं और प्रत्येक अवस्था की अपने निश्चित गुणोंके अनुसार पूर्ण रूप से व्याख्या की जा सकती है । ठोस की भौतिक स्थिति अन्य अवस्थाओं से सदा पृथक रहती है । ठोस की निर्माण संयोजन शक्ति उसके अवयवी परमाणुओं को अत्यंत सम्बंधी रखती है जिसके कारण ठोस का अपना स्वरूप रहता है । आघात अथवा निश्चित शक्ति के प्रयोग से ही केवल उसका आकार परिवर्त्तन सम्भव है । लचीलापन, दबाव से झुकना तथा टूट जाने पर पुनः टूटे भागों को मिलाने पर सुगमता से न जुड़ना ही ठोस की विशेषता होती है । द्रव का कोई निजी आकार नहीं होता । केवल वह वही आकार धारण करता है जिसमें द्रव स्थित रहता है । द्रव के अंशों में एक दूसरे के प्रति आकर्षण कम है। इसके कारण द्रव के भाग सरलता से अलग हो जाते हैं तथा पृथक भागों के एकीकरण से जुड़ना भी सुगम रहता है । स्निग्धता अथवा द्रवत्व द्रव के विशेष गुण हैं । वाष्प के अंशों में एक दूसरे के प्रति आकर्षण बिलकुल ही नहीं होता है तथा एक भाग दूसरे से पूर्णतः स्वतंत्र रहता है ।

द्रवों की भाँति इसका भी अपना कोई स्वरूप नहीं रहता और दबाव का वाष्प आयतन पर बड़ा ही प्रभाव पड़ता है क्योंकि वाष्प अणुओं में मध्यांतर अधिक होता है। इन गुणों के अतिरिक्त इन तीनों अवस्थाओं के कुछ गुण उभयनिष्ट होते हैं। भौतिक शक्तियों के प्रयोग का अवलोकन विभिन्न क्षेत्रों में इनके निर्माण और अवयवों पर प्रकाश डालता है।

पदाथ का निर्माण परमाणुओं की संयुक्ति से होता है। मूल रूप से हम पदार्थों को दो भागों में—तत्व और भौगिक—विभाजित कर सकते हैं। इन तत्वों का अंतिम स्वरूप परमाणु रूपक होता है। यौगिकों की उत्पत्ति तत्वों के परमाणु के योग से होती है उन्हें यौगिकों का अणु (molecule) कहा जा सकता है। परमाणु तत्व की इकाई है तथा तत्व के गुणों से पूर्ण संयुक्त रहता है। यौगिकों का छोटे से छोटा अंश अणु कहलाता है और उसमें यौगिक के सर्व रासायनिक तथा भौतिक गुण विद्यमान रहते हैं। यदि यौगिक के अणु का विश्लेषण किया जाय तो यौगिक अपने अवयवी तत्वों में टूट जाता है। इस भांति अणु यौगिक का सूक्ष्म तम स्थिति में पूर्ण परिचायक है। इस व्याख्या के अनुसार हम तत्व में भी अणु की उपस्थिति कह सकते हैं पर तत्व के अणु के विश्लेषण में तत्व के परमाणु बनते हैं जो तत्व के ही अनुकूल होते हैं। तत्व के परमाणु में विद्युत का समावेश होता है तथा परमाणु के दो मुख्य भागों में स्थित दो प्रकार की विद्युत शक्ति के रूप में किया जा सकता है। ऋण (negative) विद्युत भाग इलेक्ट्रान तथा घन (positive) भाग प्रोटान कहलाता है। परमाणु के मध्य में घन (positive) न्यूक्लियस होता है। इलेक्ट्रान एक नियमित गति से न्यूक्लियस की परिक्रमा करता है। दोनों का पारस्परिक आकर्षण ही इस नियम को केन्द्रीभूत रखता है। वाह्य इलेक्ट्रानों की संख्या ही तत्व की संयोजन शक्ति होती है क्योंकि संयोजन में यह इलेक्ट्रान ही आपस में एक दूसरे को प्रभावित कर एक नवीन मार्ग का अनुसरण करते हैं फलतः एक परमाणु दूसरे से मिल कर यौगिक अणु बनाता है। वस्तु की विशिष्ट अवस्था उसके परमाणुओं के योग की स्थिति को तय करती है तथा इन्हीं परमाणुओं के समन्वय के अनुसार ही पदार्थ के रासायनिक और यौगिक गुण भी प्रभावित होते हैं। इसके कारण भौतिक गुणों पर जो प्रभाव पड़ता है वह भौतिक अवस्था के स्थिर अवलोकनों से जाना जा सकता है, क्योंकि पदार्थ की अवस्था और उसके भौतिक गुणों में बहुत बड़ा सम्बन्ध है।

अब हम उन भौतिक अवलोकनों का वर्णन करेंगे जिनके द्वारा परमाणुओं तथा अणुओं की स्थिति, दशा, आकार और संयोजन के बारे में ज्ञान होता है।

अणु स्थिति ऋण और घन भाग एक स्थिति तक चलायमान रहते हैं अतः यदि विद्युत क्षेत्र के अन्दर अणु को रखा जाय, तो ऋण और घन भागों के पारस्परिक स्थिति में अन्तर आ जाता है। इस भाँति उनमें ध्रुवत्व का समावेश हो जाता है। इस जनित ध्रुवत्व का अणु के विद्युत विरोधी शक्ति से सम्बन्ध होता है। अणु में स्थिति ध्रुवत्व अणु में परमाणुओं की स्थिति पर निर्भर होता है। अतः यदि अणुजनित ध्रुवत्व को भौतिक उपकरणों से ज्ञात किया जाय तो अणु में परमाणुओं के संयोजन तथा नियमन का पूरा चित्र देखा जा सकता है। क्योंकि विभिन्न भाँति के संयोजनों का ध्रुवत्व मान अलग अलग होता है। इसी प्रकार यदि हम पदार्थ को चुम्बकीय क्षेत्र में रक्खें तो अपने गुणों के अनुसार चुम्बकीय ध्रुवों की अपेक्षा वह एक विशेष स्थिति ग्रहण कर लेता है। अणुओं की स्थिति ही उसकी चुम्बकीय क्षेत्र में स्थिति को निर्धारित करती है।

प्रकाश की किरणें पारदर्शी माध्यम पर पड़ कर अपने संयुक्त रंगों में विभाजित हो जाती है तथा इस भाँति वर्णानुक्रम ( spectrum) देखा जा सकता है। प्रत्येक पदार्थ, यदि उचित रूप से प्रकाशदायी बनाया जाय, एक निश्चित वर्णानुक्रम प्रदर्शित करता है। पदार्थ गत परमाणुओं की शक्तिस्तर के अनुसार ही वर्णानुक्रम की बनावट होती है। यदि परमाणु के अन्तः शक्ति-स्तर में परिवर्त्तन आ जाय तो वर्णानुक्रम के रंगों की क्रमिक रेखाओं में परिवर्त्तन आ जाता है। अतः किसी भी रासायनिक परिवर्त्तन के कारण जिसमें इलेक्ट्रानों में संयोग हो रहा हो, परमाणुओं के शक्तिस्तर में परिवर्त्तन

होता है, उसकी स्पष्ट छाया वर्णानुक्रम की क्रमिक रेखाओं के परिवर्त्तन से देखा जा सकता है क्योंकि परमाणु स्थित इलेक्ट्रानों की स्थिति, गति तथा परस्पर सांनिध्य के कारण विभिन्न शक्तिस्तरों का आविर्भाव होता है और यही विभिन्न प्रकार की रेखाओं का वर्णानुक्रम में निर्माण करता है। किसी निश्चित स्पन्दन(frequency) की प्रकाश किरण के वस्तुओं पर पड़ने से निकलने पर उसी प्रकाश किरण के स्पन्दन में अन्तर आ जाता है। यह अन्तर परमाणुओं की स्थिति पर निर्भर होता है तथा वाह्य प्रागत प्रकाश के स्पन्दन से अनुभव किया जा सकता है।

द्रवों की स्निग्धता द्रवों का एक विशेष गुण है। स्निग्धता का परिचायक द्रवों का द्रवत्व है अतः द्रवों के प्रवाह मापन से उनकी विशिष्ट स्थिति का पता चल सकता है। इस अवलोकन का उपयोग श्लेष्म रसायन में श्लेष्म कणों की अवस्था मापने में अत्यधिक हुआ है तथा श्लेष्म कणों के आकार प्रकार के बारे में भी इसके द्वारा अनुमान लगाया जा सकता है। द्रवत्व के साथ साथ द्रवों का तल अपने को प्रसारित करने की चेष्टा में रहता है। इसके फलस्वरूप उनके तल पर एक तलीय आकर्षण रहता है जिसका सम्बंध द्रव की आन्तरिक बनावट से होता है। अतः इस गुण के विवेचन से हम द्रव स्थित गुणों का अध्ययन कर सकते हैं जिनके कारण द्रवों का नियमन होता है।

यही नहीं, बल्कि ताप-क्रम और दबाव दो ऐसे से उपक्रम हैं जिनका प्रभाव रासायनिक प्रक्रिया पर पड़ता है। यह प्रभाव उसी तरह पूर्ण नियम बद्ध होता है जिस तरह किसी भी वस्तु के रासायनिक गुण। अतः रासायनिक परिवर्त्तन तथा विशेष रासायनिक स्थिति उपस्थित करने के लिये पदार्थों की भौतिक स्थिति का निरूपण तथा वांछित प्रकिया के उपयुक्त अवस्था का लाना नितांत आवश्यक है। भौतिक दृष्ट से ही हम पदार्थों के संयोजन का उचित अध्ययन कर पाते हैं तथा रासायनिक गुण और प्रक्रियायें केवल भौतिक परिस्थितियों से परिवर्त्तन के फल स्वरूप हैं। इस दृष्टि से पदार्थों की अवस्था की भौतिक अभिव्यक्ति वास्तविक रासायनिक अभिव्यक्ति है तथा पदार्थ गत ज्ञान में इसका समुचित अंश है।

---

# संयुक्त प्रान्त में चिकित्सा की व्यापक व्यवस्था*

## नवीन तथा प्राचीन चिकित्सा-प्रणालियों में समन्वय की आवश्यकता

युक्त प्रान्त के प्रत्येक ग्रामीण के निमित्त चिकित्सा की व्यवस्था तथा संक्रामक बीमारियों, तपेदिक आदि की रोक-थाम के लिये प्रान्तीय सरकार के प्रयासों का उल्लेख करते हुए प्रान्त के स्वास्थ्य मन्त्री, माननीय श्री चन्द्रभानु गुप्त ने २१ मार्च, १९४९ ई० को लखनऊ रेडियो स्टेशन से भाषण करते हुए कहा कि हमारा सूबा देश का सबसे बड़ा प्रान्त होता हुआ भी आधुनिक सुविधाओं में अभी कई प्रान्तों के पिछड़ा हुआ है। हमारा स्वास्थ्य विभाग भी और प्रान्तों से कई बातों में हीन है। अन्य समुन्नत प्रान्तों के मुकाबिले में अपने यहाँ जितना कम धन, हम इस विभाग में खर्च करते हैं वह इस बात का द्योतक है कि अभी हमें काफी तरक्की करनी है।

हमारे प्रान्त की छः करोड़ आबादी का ९० प्रतिशत भाग गाँवों में रहता है। लेकिन चिकित्सा की सहूलियत अब तक मुख्यतः नागरिक जनता को ही मिल सकी हैं। देहात में अर्द्ध-शिक्षित तथा उपयुक्त उपकरणों से हीन वैद्यों, हकीमों और नौसिखियों के ही क्षेत्र

*संयुक्त प्रान्त के मंत्री माननीय चन्द्रभान गुप्त के लखनऊ रेडियो स्टेशन से दिये गये भाषण के आधार पर।

रहे हैं। अब हम इस समस्या को नए और सुव्यवस्थित ढंग से हल करने में संलग्न हैं। हम अस्पतालों की संख्या इतनी अधिक कर देना चाहते हैं कि प्रत्येक देहाती भाई का इलाज ५ मील के भीतर ही हो सके। लगभग ४०० एलोपैथिक डिस्पेंसरियाँ प्रान्त के गावों में चल रही हैं। अगले पाँच वर्षों में ५०० और नई सरकारी डिस्पेंसरियाँ खोलने का निश्चय है। ५० तो चालू भी हो गई हैं, ३० शीघ्र ही स्थापित की जा रही ह और इस वर्ष के अन्त तक ७० और कार्य करने लगेंगी। प्रत्येक डिस्पेंसरी के लिये नई और उपयुक्त इमारत का आयोजन किया जा रहा है। किन्तु परिस्-ितियों के कारण प्रगति मन्द ही रही है। सरकार, अपनी पूर्व घोषित नीति के अनुसार, आयुर्वेदिक औषधालयों तथा यूनानी दवाखानों को भी प्रोत्साहित करने का प्रयत्न कर रही है। इस समय प्रान्त में लगभग ४०० औषधालय और दवाखाने देहाती भाइयों की सेवा कर रहे हैं। इस वर्ष के अन्त तक ७० नए औषधालय और खोले जायंगे। देहरादून के जौनसार-बावर सरीखे पिछड़े भागों पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

## गांवों में चिकित्सकों के लिये सुविधा

सरकारी साधन सीमित हैं, अतः यह आवश्यक है कि शिक्षित और नये साधनों से युक्त चिकित्सक गांवों में जाकर स्थायी रूप से बसें। सरकार ने डाक्टरों, वैद्यों और हकीमों को इस ओर प्रोत्साहित करने के लिए एक नया कदम उठाया है। प्रत्येक ऐसे डाक्टर, वैद्य और हकीम को गांव में जाकर बसने के लिए मासिक आर्थिक सहायता दी जाती है। इसके अतिरिक्त कम्पाउन्डर, दवाओं फर्नीचर आदि के लिए भी धन दिया जाता है। पाकिस्तान से आए हुए पुरुषार्थी डाक्टरों को इसके अलावा और भी सुविधाएँ देने का प्रबन्ध किया गया है। किन्तु दुःख का विषय है कि बहुत कम लोगों ने इन सुविधाओं से लाभ उठाया है। मैं डाक्टरों, वैद्यों और हकीमों से अपील करता हूँ कि वे गाँवों में बस कर मानवता की सच्ची सेवा करके गौरवान्वित हों।

## स्त्रियों की चिकित्सा

ग्रामीण स्त्रियों की चिकित्सा की ओर दृष्टि डालने पर हमारे सम्मुख एक असन्तोषजनक स्थिति आ उपस्थित होती है। सदियों से अशिक्षित और नितान्त साधनहीन दाइयों अथवा गांव की भंगिनों का इस क्षेत्र में एकछत्र राज्य चला आ रहा है। बच्चे जनने का कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण और नाजुक है। अन्य प्रकार के रोगों में भी स्त्रियों की कोई सन्तोष-जनक चिकित्सा नहीं हो पाती है। परन्तु अब सरकार का ध्यान स्त्री-चिकित्सा की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ है।

इस समय स्त्रियों के लिए देहातों की १९ डिस्पेंसरियों के संचालन को सरकार ने स्वयं ले लिया है। इसका काम सुचारु-रूप से न चल पाने के कारण उन्हें सरकार ने स्वयं अपने नियंत्रण में ले लिया है। इनके अतिरिक्त स्त्रियों के लिए ४ नये अस्पताल शीघ्र ही खोले जा रहे हैं। इलाहाबाद का कमला नेहरू अस्पताल सेवाओं का विशेष स्थान है। इस अस्पताल की सहायता इस वर्ष २०,००० रुपए से बढ़ा कर ६०,००० रुपये कर दी गई है और एक्सरे तथा इमारत के लिए पौने दो लाख रुपये दिए जा चुके हैं और एक लाख अगले वर्ष में दिया जायगा। सरकार इस विषय में बहुत कुछ करने की इच्छा रखती है और उसके मन्सूबे भी बड़े हैं, लेकिन लेडी डाक्टरों की कमी तथा अन्य कई कारणों से इस ओर अब तक केवल आंशिक सफलता ही मिल सकी है। हम गांव में २०० धाराशालाएं खोलने जा रहे हैं। साथ ही १,००० देहाती दाइयों को भी शिक्षित बनाने का आयोजन किया जा रहा है।

कुछ वर्षों पूर्व तक जिले के केन्द्रीय अस्पतालों का संचालन डिस्ट्रिक्ट बोर्डों के हाथ में ही था और विभिन्न कारणों से उनकी अवस्था शोचनीय थी। इन अस्पतालों का नियंत्रण भी प्रान्तीय सरकार ने अपने हाथ में ले लिया हैं। अब इन जिला अस्पतालों की दशा सुधारने तथा उन्हें आधुनिक साधनों से युक्त करने का कार्य बड़ी तेजी के साथ किया जा रहा है। पिछले वर्ष लगभग २० लाख रुपये एक्सरे रिफ्रेजिरेटरों

आदि आवश्यक साधन जुटाने में व्यय किए गए थे। इसी कार्य पर इस वर्ष के बजट में १६ लाख रुपए। का व्यय करने का आयोजन किया गया है। गांवों से रोगियों के लाने के लिए एम्बुलेंस कारों की व्यवस्था की जा रही है। कार्य अधिक है। अतः ३४ जिला केन्द्रीय अस्पतालों में एक-एक डाक्टर की वृद्धि कर दी गई है, जोकि सिविल सर्जन को सहायता देगा।

जिला केन्द्रीय अस्पतालों के प्रति जनता अधिक आकर्षित हो, इसके लिये सलाहकार समितियों का निर्माण किया जा रहा है। देहातों की डिस्पेंसरियों के लिये भी प्रत्येक जिले में सलाहकार समितियाँ नियुक्त की जा रही हैं।

इस सामान्य चिकित्सा के अतिरिक्त विशिष्ट रोगों की चिकित्सा के पुनःसंगठन की ओर भी सरकार ने ध्यान दिया है। नेत्र-चिकित्सा की चर्चा करते हुए मुझे प्रसन्नता होती है। इस सम्बन्ध में हमारे प्रान्त को गौरव प्राप्त रहा है। सीतापुर और अलीगढ़ एक अर्से से नेत्र-चिकित्सा के लिए जियारतगाह बन गए हैं। इन अस्पतालों में अनेक असाध्य रोगियों ने भी राहत पायी हैं। सीतापुर और अलीगढ़ के आँखों के अस्पतालों को सरकार ६४ हजार रुपये वार्षिक सहायता देती है। इन दोनों अस्पतालों की इमारतों तथा अन्य साधनों के लिए ५ लाख रुपये दिए गए हैं। इलाहाबाद में भी आँखों का एक सरकारी अस्पताल है। देहातों में नेत्र-रोगियों की चिकित्सा के लिए हमने एक योजना बनाई है, जिस पर ३० हजार रुपये वार्षिक व्यय हुआ करेंगे।

## तपेदिक की रोक-थाम

आपको यह सुनकर शायद आश्चर्य होगा कि लगभग ४० वर्ष पूर्व भारत में तपेदिक बहुत ही अल्प संख्या में था, लेकिन आज संसार में तपेदिक से मरने वालों की मृत्यु-संख्या सब से अधिक प्रान्त के औद्योगिक नगर, कानपुर में है।

तपेदिक मुख्यतः मकानों की दुर्व्यवस्था, गंदगी, गरीबी, अपर्याप्तपोषण आदि कारणों से उत्पन्न होती है। सरकार का ध्यान तपेदिक की चिकित्सा की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ है और इसके प्रभाव को मिटाने के लिये मजबूती से क़दम उठा रही है।

इस समय लखनऊ के महात्मा गांधी मेमोरियल अस्पताल के अन्तर्गत टी० बी० क्लिनिक तथा इलाहाबाद और झांसी में २ अन्य अस्पतालों को सरकार स्वयं चलाती है। भुवाली के के० ई० सेनेटोरियम तथा बनारस, बरेली और देहरादून के क्लिनिकों को भी सुचारु रूप से चलाने के लिए अपने हाथ में ले लिया है। इन अस्पतालों में डाक्टरों, नर्सों और रोगियों के बिस्तरों की संख्या बढ़ा कर उन्हें समुन्नत बनाने का पूरा प्रयत्न किया जा रहा है जिसमें काफी सफलता भी मिली है। सुप्रसिद्ध स्वर्गीय डा० कक्कड़ के गेथिया स्थित हिल क्रेस्ट सेनेटोरियम को भी सरकार अपने हाथ में लेने को सोच रही है। इसके अतिरिक्त अल्मोड़े के मिशन सेनेटोरियम, इलाहाबाद के करेलाबाग़ सेनेटोरियम और यू० पी० टी० बी० एसोसियेशन के ६ क्लिनिकों की उन्नति के लिए सहायता दी जा रही है। कानपुर में गंगा के तट पर एक टी० बी० सेनेटोरियम के निर्माण की योजना तैयार हो चुकी है और सरकार उसकी सहायता करेगी। लखनऊ के निकट भी जहाँगीराबाद में एक नये सेनेटोरियम की स्थापना के लिए योजना तैयार की जा रही है।

नए अस्पतालों की स्थापना तथा पुरानों की उन्नति करके अगली पीढ़ी में इस रोग को रोकने की व्यवस्था की जा रही है। शीघ्र ही डेनमार्क रेडक्रास तथा यू० आई० सी० ई० फंड के विदेशी डाक्टरों का एक जत्था प्रान्त के चुने हुए भागों का दौरा करेगा और बड़े पैमाने पर बच्चों के तपेदिक के टीके लगाएगा। इस बीच ये विदेशी डाक्टर प्रान्त के ३ डाक्टरों के जत्थों को भी तपेदिक के टीके लगाना सिखा देंगे। प्रति वर्ष कुछ डाक्टर देश व विदेश में तपेदिक की चिकित्सा में विशेष योग्यता प्राप्त करने के लिए भी भेजे जायँगे परन्तु हमारे लिए घर घर जाकर प्रचार द्वारा मनुष्यों को इस रोग से बचने का ज्ञान कराना अत्यन्त आवश्यक है। इस कार्य में ग़ैर सरकारी संस्थाओं से बहुत मदद मिल सकती है यू० पी० टी० बी० एसोसियेशन

का काय इस दिशा में सराहनीय है। फिर भी कार्य को पूर्ण करने के लिए ज़िले ज़िले में इसकी शाखाएँ खोलने का आयोजन हो रहा है और मुझे आशा है कि इस महत्वपूर्ण काय में सबका सहायोग होगा।

## मलेरिया की समस्या

दूसरी बड़ी समस्या मलेरिया की है। अखंडित भारत में प्रतिवर्ष लगभग १ करोड़ मनुष्य मलेरिया से पीड़ित होते थे। मलेरिया से बीमार मनुष्यों के निर्बल शरीर में अन्य रोगों की बुनियाद पड़ जाती है। मृत्यु सम्बन्धी आंकड़ों पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि प्रान्त में सबसे अधिक मौतें मलेरिया के ही कारण होती हैं। तराई का इलाक़ा इन रोग से विशेष प्रभावित है।

मलेरिया के लिए कुनैन और पेलुडरीन बड़े पैमाने पर बाँटी जा रही है। प्रान्त के छः जिलों में, जहां कि मलेरिया का अधिक प्रकोप है, मलेरिया विरोधी संस्था खोली गई हैं। मिर्ज़ापुर ज़िले में शीघ्र ही एक मलेरिया अस्पताल भी खोला जायगा। कालाज़ार को रोकने और उसकी चिकित्सा के लिए चलती फिरती डिस्पेंसरियां खोली गई हैं।

## मस्तिष्क रोगों और कुष्ठ रोग का इलाज

मस्तिष्क रोग के इलाज के लिए प्रान्त में ऐसे ३ अस्पताल आगरा, बरेली, बनारस में हैं जहां करीब १,५०० रोगियों का उपचार होता है। इनमें केवल एक कैदियों के लिए है। इन्हें पुनस्संगठित करने तथा इनके जेल-वातावरण को दूर करने की पूरी चेष्टा की जा रही है। इस रोग की विशेष शिक्षा प्राप्त करने के लिए सरकार ने एक डाक्टर को विदेश भेजा है।

कोढ़ की चिकित्सा के लिये प्रान्त में १६ अस्पताल हैं। इन्हें पौने दो लाख रुपये की वार्षिक सहायता दी जाती है। इनकी उन्नति के लिए ६ लाख रुपये व्यय किए जा रहे हैं लेकिन इस रोग के विस्तार को देखते हुए यह पर्याप्त नहीं है। इस बढ़ते हुए खतरे को रोकने के लिए एक पंचवर्षीय योजना बनाई गई है। इसमें १० लाख रुपये व्यय की जाने की आशा है। इसके अन्तर्गत इस रोग से बचने का प्रचार और रोगियों का उपचार होगा। इस पंचवर्षीय योजना के सफल होने पर इस व्यवस्था को स्थायी रूप दे देने का विचार है। लखनऊ मेडिकल कालेज में भी त्वचा विभाग के अन्तर्गत कुष्ठ विभाग खोला जा रहा है। पहाड़ी इलाके में कोढ़-रोगियों की अधिकता को देखते हुए ऋषिकेश में शीघ्र ही कुष्ठ-रोगियों का एक उपनिवेश स्थापित करने का निश्चय किया गया है।

## संक्रामक रोगों का नियन्त्रण

संयुक्त प्रान्त में तीर्थ स्थान अधिक हैं। प्रतिवर्ष अनेक मेले लगते हैं और हैजा, प्लेग आदि संक्रामक रोगों के फैलने का भय रहता है। शरणार्थी कैम्पों में भी इसका विशेष भय रहता है। इन रोगों को रोकने के लिए प्रत्येक जिले में गश्ती डिस्पेंसरियाँ खोली गई हैं। ये देहातों का दौरा करती हैं और तुरन्त ही डाक्टरी सहायता पहुँचाती हैं। बाढ़ के समय यह काय बड़े पैमाने पर सफलतापूवक किया गया था। इस सम्बन्ध में आगरा व लखनऊ मेडिकल कालेजों के विद्यार्थियों के कुछ जत्थे पहले-पहल बस्ती और इलाहाबाद भेजे गए थे और उनसे काफी सहायता मिली।

हमारे प्रान्त में प्रतिवर्ष एक लाख व्यक्ति छूत की बीमारियों से काल कवलित होते हैं। इन बीमारियों के लिये प्रान्त में चार अस्पताल हैं। सरकार ने छूत की बीमारियों के ख़तरे को देखते हुए इन चारों अस्पतालों को अपने नियन्त्रण में ले लेने का निश्चय किया है। ३६ ज़िला अस्पतालों में छूत के रोगों से पीड़ितों के लिए अलग ब्लाक बनाये जारहे हैं।

इन सरकारी अस्पतालों के अतिरिक्त प्रान्त में और भी विभिन्न संस्थाओं द्वारा संचालित अस्पताल हैं। इन्हें भी आर्थिक तथा अन्य प्रकार सहायता देकर उन्नत बनाने की चेष्टा की जा रही है।

## शिक्षित चिकित्सकों की आवश्यकता

हम चिकित्सा के लिए एलोपैथिक, आयुर्वेदिक और यूनानी प्रणालियों की सहायता लेते हैं। पर अभी तक एलोपैथिक पर ही ज्यादा ज़ोर रहा है। आवश्यकता इस

इस बात की है कि सुयोग्य और सुशिक्षित वैद्य और हकीमों को शिक्षित किया जाये तथा इन क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर खोज हो ताकि प्रणालियाँ समय के उपयुक्त हो सकें। सरकार पूर्णरूप से प्रयत्नशील है कि भारत की ये निधियाँ, जो भी कुछ समय के लिए राज्य की उपेक्षा से निर्बल पड़ गई थीं शीघ्र ही फिर उन्नत बन सकें।

शीघ्र, ही, आयुर्वेदिक स्टेट मेडिकल फैकल्टी की स्थापना, आयुर्वेदिक विभाग के प्रधान की नियुक्ति, वैद्यों और हकीमों की शिक्षा के लिए आयुर्वेदिक तिब्बिया कालेज की प्रतिष्ठा तथा सभी स्वीकृत संस्थाओं को और अधिक आर्थिक सहायता प्रदान करने का हमारा विचार है जिससे वे आधुनिक प्रणाली को अपनाकर समय के अनुकूल बन सकें।

सुशिक्षित डाक्टर, हकीम, वैद्य, कम्पाउंडर व नर्सों की कमी को दूर करने के लिए और उन्हें अधिक संख्या में उपलब्ध करने के लिये भी क़दम उठाया जा रहा है। लखनऊ में महात्मा गांधी मेमोरियल कालेज में इस वर्ष ७५ के स्थान पर १२५ विद्यार्थी भारती किये गए हैं। तथा रोग--शय्याओं की संख्या भी ३०० से बढ़ाकर ५०० करादी गई है। इस अस्पताल में हमारा लक्ष्य बिस्तरों की संख्या १,००० तक पहुँचा देने का है। इस सम्बन्ध में सरकार ने दस लाख रुपया मंजूर किया है। आगरा मेडिकल कालेज का विस्तार करने के लिये दो करोड़ लागत की नई इमारत बनवाई जा रही है। इसके बन जाने पर इस कालेज में भी लखनऊ के समान ही शिक्षा तथा रोगियों की परिचर्या की सुविधायें हो जायंगी। किन्तु इमारती सामान की दुर्लभता इसमें बाधक हो रही हैं।

लेडी डाक्टरों की कमी पूरी करने के लिये इन कालेजों में प्रतिवर्ष ३० स्थान छात्राओं के लिये सुरक्षित हैं और २० छात्राओं को ६० रु० प्रतिमास तक की अब छात्रवृत्ति दिये जाने का प्रबन्ध कर दिया गया हैं।

देहात के लाइसेंशएट डाक्टर जो अभी तक नूतन अनुसन्धानों से अनभिज्ञ थे, उन्हें दो साल की शिक्षा देकर नए एम० बी० बी० एस० के समकक्ष बनाने में भी सरकार प्रयत्नशील है। इससे चिकित्सा के नवीनतम रूप का लाभ देहात के भाइयों कोभी हो सकेगा।

महात्मा गांधी मेमोरियल मेडिकल कालेज के अन्तर्गत दांतों की डाक्टरी का एक स्कूल भी अगली जुलाई में खुलने जा रहा है।

कम्पाउन्डरों और नर्सों की कमी को दूर करने के लिए कम्पाउन्डरों के ६ और नर्सों के ६ शिक्षा केन्द्र खोले गये हैं। इन केन्द्रों में केवल १८ मास शिक्षा देकर व्यावहारिक नर्सें तैयार होंगी, जो केवल साधारण रोगियों की देख-रेख का कार्य करेंगी। इस प्रकार देहाती डिस्पेंसरियों में भी नर्सें रखी जा सकेंगी। और देहात की हमारी वे बहनें जो अधिक उच्च शिक्षा नहीं प्राप्त कर सकी हैं इस सेवा के योग्य बन सकेंगी। नर्सिंग में उच्च शिक्षा व विशेष योग्यता प्राप्त करने के लिये चार नर्सें विदेश भेजी गई हैं।

भविष्य में मुझे महिला वर्ग से अधिक से अधिक सहयोग की आशा है।

सन् १९४६ ई० से हम कुछ डाक्टरों को केन्द्रीय सरकार के सहयोग से विदेशों में उच्च शिक्षा प्राप्त करने भेजते रहे हैं। परन्तु अब केवल अपने ही व्यय पर इस वर्ष छः डाक्टरों को उच्च शिक्षा के लिए बाहर भेजने की हमारी इच्छा है। सुविधानुसार यह संख्या बढ़ा दी जा सकती है।

मेडिकल सर्विसेज़ से मेरा अनुरोध है कि वे यदि मानवता और निस्वार्थ भाव से सेवा कार्य करेंगे तभी वे देश का सच्चा हित कर सकेंगे, जिसकी मुझे उनसे आशा है।

## देशी और पाश्चात्य चिकित्सा प्रणाली

अन्त में मैं आपका ध्यान उस वाद-विवाद की ओर भी आकर्षित करना चाहता हूँ जो आज देशी और पश्चिमी चिकित्सा-प्रणालियों में चल पड़ा है और दिन-प्रतिदिन उग्र होता जा रहा है। हजारों वर्षों पूर्व चिकित्सा विज्ञान में हम अन्य देशों की अपेक्षा बहुत आगे बढ़े हुये थे।

परन्तु गुलामी के बढ़ते हुये शिकंजे ने हर क्षेत्र में

हमारी उन्नति रोक दी। समय का प्रवाह बड़ी तेजी से आगे बढ़ रहा था, किन्तु हमारे चिकित्सा विशारद संकुचित दृष्टिकोण के कारण जहाँ के तहाँ खड़े रह गये। हम बढ़ते-बढ़ते रुक गए और दूसरे हमारे ज्ञान को लेकर आगे बढ़ गये। इसीके साथ हम यह भी कह देना चाहते हैं कि यद्यपि हम आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सा प्रणाली के अन्तर्गत सर्जरी, बैक्ट्रियोलोजी, एक्स-रे, रेडियम, विटेमिन, हौरमन आदि पेनीसलीन स्ट्रेप्टो माइसीन तथा अन्य सलफा ड्रग्ज आदि दवाओं से पूर्ण लाभ उठाना बिलकुल उचित समझते हैं, फिर भी हमारा दृढ़ विश्वास है कि यह पाश्चात्य प्रणाली हमारे प्राचीन चिकित्सा शास्त्र का ही विकसित रूप है।

अतः हमें इस पैतृक सम्पत्ति में नई चेतना और स्फूर्ति का संचार करने के लिये बड़े पैमाने पर गवेषणा की आवश्यकता है। मैं समझता हूँ कि अब वह समय आ गया है जब कि हमारे आधुनिक चिकित्सा शास्त्र के विशेषज्ञ और अध्यापकगण तंगदिली से ऊपर उठकर अपने पुराने ज्ञान को अपना कर बदलते हुये समय की माँग को पूरा करें।

हमें यह समझ लेना चाहिये कि देशी और पाश्चात्य चिकित्सा प्रणालियाँ एक दूसरे की विरोधी नहीं हैं क्योंकि विज्ञान तथा उसके प्रकाश पर किसी देश-विदेश का एकाधिपत्य तथा निज की संपत्ति नहीं हो सकती। वे तो केवल चिकित्सा विज्ञान के उन्नति के विभिन्न स्तर हैं और आवश्यक रूप से एक ही हैं। हमें प्राचीन और नवीन चिकित्सा शास्त्रों का समन्वय करके एक नई प्रकार की व्यवस्था को जन्म देना होगा। मैं आशा करता हूँ कि दोनों प्रणालियों के चिकित्सक संकुचित दृष्टिकोण और संकीर्ण स्वार्थमय मनोवृत्तियों से ऊपर उठ कर इस महान मंजिल तक पहुँचने में सहयोग देंगे। मेरे विचार में उन्नति का यही एक उत्कृष्ट मार्ग है। और इसीके द्वारा हम अपने प्रान्त की स्वास्थ्य और चिकित्सा सम्बन्धी समस्यायें शीघ्रातिशीघ्र सुलझा सकेंगे और मानवता के कल्याण के पवित्र कर्त्तव्य को निभाने का संकल्प पूर्ण कर सकेंगे।

---

# कृत्रिम रेशम का रहस्य

लेखक—पाल वेस्ट

तैयार कपड़े के रूप में नकली रेशम कई वस्तुओं का सम्मिश्रण होता है जिनमें पतले तार की गणना मुख्य वस्तुओं में की जाती है। मकड़ी के जाल के सदृश बारीक यह वस्तु वैज्ञानिकों के लिए बड़ी कठिनाइयों का कारण है। बहुत समय से वे इसका प्रयत्न कर रहे हैं कि कताई की क्रिया में यह टूटने न पाए।

प्राकृतिक रेशों, उदाहरणार्थ ऊन, कपास तथा सन, को कातना कठिन नहीं है। ये कड़े होते हैं और यदि कताई की क्रिया में गट्ठियाँ पड़ भी जायँ तो तैयार कपड़ा देखने में भद्दा नहीं लगता क्योंकि रेशे टूटे हुए नहीं दिखते।

किन्तु कृत्रिम रेशम के रेशे कृत्रिम ही ठहरे!

इनकी प्राप्ति कई साधनों से होती है और "विस्कोस" (एक द्रव पदार्थ) इन साधनों में से एक है। इस द्रव को पतली धार के रूप में बाहर निकाला जाता है, यह धार तब ठोस बनकर रेशों के रूप में परिवर्तित की जाती है। स्वभावतः प्राकृतिक रेशों की तुलना में इसके टूटने का डर अधिक होता है; यह भी स्पष्ट है कि टूट जाने पर तैयार कपड़े की शोभा बहुत अंश तक नष्ट हो जाती है। धोने के समय में नकली रेशम का कपड़ा प्रायः उभर आता है। यह त्रुटि तो ठीक की जा सकती है पर यदि एक रेशा भी तागे लपेटने की गड़ारी पर फँस जाता है तो

उस त्रुटि को ठीक करना बहुत कठिन है—शायद इसलिये क्योंकि कताई के काम में इसका ठीक तौर पर पता भी नहीं लगता। परिणाम होता है तैयार कपड़े की सतह पर रेशों का भद्दी तौर पर लटकना और कताई करने वालों को असन्तोष—ग्राहकों को भी।

## नवीन सुविधा

एस० डब्ल्यू० बेकर नामक ब्रिटिश वैज्ञानिक ने सोलह वर्षों के परिश्रम के बाद एक ऐसी कताई की मशीन का आविष्कार किया जो अटूट रेशे तैयार कर सकेगी। कई प्रयोगों के बाद अब इस मशीन की उत्पत्ति बड़ी संख्या में की जा रही है। कताई की इस क्रिया को "नेल्सन क्रिया" कहते हैं। (लंकाशायर में नेल्सन नामक शहर कपड़े के उद्योग के लिए प्रसिद्ध है)। निरन्तर कताई इस मशीन की विशेषता है।

कताई की साधारण क्रियाओं में अनेकों उप-क्रियाएँ होती हैं—रेशे को तागे के रूप में लाते समय उनमें से गंधक निकालना आवश्यक होता है तथा उन्हें साफ करना, धोना, सुखाना इत्यादि। एक तो रेशा यों ही बारीक होता है और इन विविध क्रियाओं के कारण टूटना अनिवार्य ही समझ लीजिए। इसलिए ऐसी विधि की खोज की जा रही थी जिनमें इन उपक्रियाओं का संकट दूर हो जाए।

अब ये सारी क्रियाएँ मशीन करती है; "विस्कोस" द्रव को ठोस करने से लेकर कृत्रिम रेशे बनाने और अंत में उसे तागे का रूप देने तक। साफ करने, धोने तथा सुखाने का काम उसी समय हो जाता है जब तागे चलती मशीन के ऊपर होते हैं।

यह स्मरण रखना आवश्यक है कि इस क्रिया में गंधक निकालने और रेशों को निखरने की क्रियाएँ छोड़ दी जाती हैं क्योंकि अनुसन्धानों से यह पता चला कि यदि कताई की क्रिया लगातार हो तो तागों में गंधक का रहना कपड़े के लिए हानिप्रद नहीं होता और न इस कारण लपेटने और बुनने में ही कठिनाई हो सकती है।

इस विधि के अनुसार कपड़े के तैयार हो जाने पर गंधक निकाला जा सकता है। तैयार कपड़ों में रेशों के टूटने का भय उतना नहीं होता जितना उस समय जब यह काम पहले किया जाता है और प्रत्येक रेशे के साथ अलग-अलग। इस प्रकार, कताई के समय गंधक न निकालने से रेशे टूटने का एक कारण कम हो जाता है।

## क्रिया

रेशा मशीन के दो बेलनों पर पचास बार लपट जाता है और ठोस बन जाता है; इसके बाद बेलनों के मध्य में आने पर रेशा तीस बार लपट जाता है और तब बौछार के रूप में उसके अंदर वाले रासायनिक क्षार पदार्थ बाहर निकाल लिए जाते हैं। तब, बेलनों के अंत में पहुँचने पर रेशे फिर पचास बार लपट जाते हैं और इस प्रकार उनके सुखाने की क्रिया पूरी हो जाती है। बेलनों के किनारे के भाग धातु के होते हैं और बिजली द्वारा उन्हें गर्म रखा जाता है। इस कारण सूखने में आसानी होती है। बेलन का बाकी भाग आबनूस का होता है।

अनेकों प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया है कि नेल्सन क्रिया में रेशों के टूटने का डर बहुत कम हो जाता है और इस विधि से बारीक से बारीक रेशे बनाए जा सकते हैं।

इस प्रकार तैयार किए गए रेशे रेशम के कीड़ों के रेशों से भी बारीक होते हैं।

साधारणतः यह मशीन १५० "डिनायर" (परत) के तागे—जिनके रेशे चार "डिनायर" के होते हैं—तैयार कर सकती है और नेल्सन क्रिया से इस प्रकार के ७५ गज तागे तैयार किये जा सकते हैं।

# समालोचना

## मायावर्ग

[ लेखकः— डा० ब्रजमोहन, प्रोफेसर, काशी विश्वविद्यालय ]

हिंदी में लोकोपयोगी एवं लोकरंजन गणितीय साहित्य का सर्वथा अभाव है। लेखक की यह लोकरंजन पुस्तिका इस अभाव की पूर्ति में एक सराहनीय एवं सफल चरण है। विषय का विवेचन सरल और सुबोध है। गणितीय अंश को समझने के लिए इंटरमीडियेट गणित का ज्ञान पर्याप्त है। भाषा परिमार्जित और शैली हृदय ग्राहक है। ११५ पृष्ठों की इस पुस्तिका में १३ अध्याय हैं जिनमें विभिन्न प्रकार के माया वर्गों के दृष्टांत हैं, और कुछ के बनाने के नियमों की विवेचना की गई है। दो एक जगह व्याख्या में अस्पष्टता आ गई है। उदाहरणतः ५६ पृष्ठ की तीसरी रेखा में 'उसी विधि' का, ५८ पृष्ठ की ६वीं रेखा के 'विशिष्ट ढंग' और ५०५१ के सहायक वर्ग बनाने की विधि के उल्लेख देखने में नहीं आते। ४०४४ में तीसरी, चौथी, पाँचवीं रेखाओं में मुद्रण त्रुटियों भी हैं। पुस्तिका की मुद्रण की कठिनाइयों को देखते ये त्रुटियाँ नगण्य ही हैं। छपाई सुन्दर है।

'माया वर्ग' की अपेक्षा 'कौतुक वर्ग' Magic Squares के लिए अत्यन्त उपयुक्त पारिभाषिक शब्द लगता है; क्योंकि इन वर्गों में मायावी कोई बात नहीं है, कौतुक अवश्य है। Cross के लिए क्रूश (जिसका अर्थ सम्भवतः खंडिता नारी है) की अपेक्षा वज्र और Hypermagic के लिए परामाया की अपेक्षा अति कौतुक पर्यायवाची शब्द अधिक उपयुक्त प्रतीत होते हैं।

लेखक ने प्रत्येक प्रकार के वर्ग के साथ जो (मिथ्या) लोक-विश्वास है वे भी दे दिये हैं। आशा है कि लेखक को स्वयं उनमें विश्वास नहीं। इस वैज्ञानिक सत्य के युग में तो ऐसे विश्वासों का तो उल्लेख ही न हो तो अच्छा।

हरिश्चन्द्र गुप्त पी० एच० डी०

# विज्ञान-परिषद् की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकों की सम्पूर्ण सूची

१—चुम्बक—हाई स्कूल में पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी० सजि०; ।।।≈)

२—सूर्य-सिद्धान्त—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखने का सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१६; १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महाबीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; सजिल्द; दो भाग में, मूल्य ८)। इस भाष्य पर लेखक को हिन्दी साहित्य सम्मेलन का १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है।

३—वैज्ञानिक परिमाण—विज्ञान की विविध शाखाओं की इकाइयों की सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस-सी०, १)

४—समीकरण मीमांसा—गणित के एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।) द्वितीय भाग ।।≈),

५—निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)—गणित के एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गपाल कृष्ण गर्दे और गोमतीप्रसाद अग्निहोत्री बी० एस-सी०; ।।।),

६—बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित—इंटरमीडियेट के गणित के विद्यार्थियों के लिये—ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी०, १।),

७—गुरुदेव के साथ यात्रा—डाक्टर जे० सी० बोस की यात्राओं का लोकप्रिय वर्णन; ।≈)

८—केदार-बद्री यात्रा—केदारनाथ और बद्रीनाथ के यात्रियों के लिये उपयोगी; ।≈)

९—वर्षा और वनस्पति—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शंकरराव जोशी; ।≈)

१०—विज्ञान का रजत-जयन्ती अंक—विज्ञान परिषद् के २५ वर्ष का इतिहास तथा विशेष लेखों का संग्रह; १)

११—फल-संरक्षण—दूसरा परिवर्धित संस्करण-फलों की डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनाने की अपूर्व पुस्तक; २१२ पृष्ठ, २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्र नारायण सिंह एम० एस-सी०; २।।)

१२—व्यङ्ग-चित्रण—(कार्टून बनाने की विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी एम० ए०; १७५ पृष्ठ; सैकड़ों चित्र, सजिल्द; २)

१३—मिट्टी के बरतन—चीनी मिट्टी के बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र; सजिल्द; २)

१४—वायुमंडल—ऊपरी वायुमंडल का सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र सजिल्द; २)

१५—लकड़ी पर पालिश—पालिश करने के नवीन और पुराने सभी ढंगोंका ब्योरेवार वर्णन। इससे कोई भी पालिश करना सीख सकता है—ले डा० गोरखप्रसाद और श्रीरामयतन भटनागर, एम०, ए०; २१८ पृष्ठ; ३१ चित्र, सजिल्द; २)

१६—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश, आकार बड़ा विज्ञान के बराबर २६० पृष्ठ, २००० नुसखे, १०० चित्र; एक-एक नुसखे से सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हजारों रुपये कमाये जा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थ के लिये उपयोगी; मूल्य अजिल्द २।।)

१७—कलम-पेबंद—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ५० चित्र; मालियों, मालिकों और कृषकों के लिये उपयोगी; सजिल्द; २)

१८—जिल्दसाज़ी—क्रियात्मक और ब्योरेवार। इससे सभी जिल्दसाज़ी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०; १८० पृष्ठ, ६२ चित्र; सजिल्द २),

१६—त्रिफला—दूसरा परिवर्धित संस्करण-प्रत्येक वैद्य और गृहस्थ के लिये—ले० श्री रामेश वेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ; ३ चित्र, एक रङ्गीन; सजिल्द २।|≈)

यह पुस्तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय, की १३ श्रेणी के लिए द्रव्यगुण के स्वाध्याय पुस्तक के रूप में शिक्षापटल में स्वीकृत हो चुकी है।"

२०—तैरना—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगों को बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद पृष्ठ १०४ मूल्य १),

२१—अंजीर—लेखक श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, अंजीर का विशद वर्णन और उपयोग करने की रीति। पृष्ठ ४२, दो चित्र, मूल्य ।≈)

यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय के शिक्षापटल में स्वीकृत हो चुकी है।

२२—सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओं के विचित्र संसार, पेड़ पौधों की अचरज-भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र और तारों की जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिष के संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञान के आकार के ४५० पृष्ठ और २३० चित्रों से सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द मूल्य ६)

२३—वायुमण्डल की सूक्ष्म हवाएँ—ले० डा० सन्तप्रसाद टंडन, डी० फिल० मूल्य ।।।)

२४—खाद्य और स्वास्थ्य—ले० श्री डा० ओंकारनाथ परती, एम० एस-सी०, डी० फिल० मूल्य ।।।)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं :—

२५—विज्ञान हस्तामलक—ले० स्व० रामदास गौड़ एम० ए०। भारतीय भाषाओं में अपने ढंग का यह निराला ग्रंथ है। इसमें सीधी सादी भाषा में अठारह विज्ञानों की रोचक कहानी है। सुन्दर सादे और रंगीन पौने दो सौ चित्रों से सुसज्जित है, आज तक की अद्भुत बातों का मनोमोहक वर्णन है, विश्वविद्यालयों में भी पढ़ाये जाने वाले विषयों का समावेश है, अकेली यह एक पुस्तक विज्ञान की एक समूची लैब्रेरी है, एक ही ग्रंथ में विज्ञान का एक विश्वविद्यालय है। मूल्य ६)

२६—भारतीय वैज्ञानिक—१२ भारतीय वैज्ञानिकों की जीवनियाँ; ले० श्री श्यामनारायण कपूर, सचित्र ३८० पृष्ठ; सजिल्द; मूल्य ३।) अजिल्द ३)

२७—वैक्युम-ब्रेक—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवे में काम करने वाले फिटरों, इंजन-ड्राइवरों, फोरमैनों और कैरेज एग्ज़ामिनरों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ; ३१ चित्र जिनमें कई रंगीन हैं, २),

## विज्ञान-परिषद् बेली रोड, इलाहाबाद

मुद्रक—जगतनारायण लाल हिन्दी साहित्य प्रेस प्रयाग। प्रकाशक—विज्ञान-परिषद्, बेली रोड, इलाहाबाद

भाग ६९
संख्या ५, ६

संवत् २००६,
अगस्त, सितम्बर १९४९

वार्षिक मूल्य ३) ]

[ एक संख्या का मूल्य ।)

श्री हरिश्चन्द्र आई० सी० एस०, जज, प्रयाग हाईकोर्ट ( सभापति )
प्रो० सालिगराम भार्गव तथा डा० श्री रंजन ( उप सभापति ) डा० हीरालाल दुबे (प्रधान मंत्री )
डा० रामदास तिवारी तथा श्री महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव ( मंत्री ) श्री हरिमोहनदास टंडन (कोषाध्यक्ष )

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

प्रधान सम्पादक
**श्री रामचरण मेहरोत्रा**
विशेष सम्पादक
डाक्टर सत्यप्रकाश — डाक्टर विशंभरनाथ श्रीवास्तव
डाक्टर गोरखप्रसाद — डाक्टर ब्रजकिशोर मालवीय

## विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

### परिषद् का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

### परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमंत्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे, जिन के द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

### सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिये वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशन में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित, परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों विवरणों इत्यादि के बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उन का प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन-चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायेंगे।

## विषय-सूची

# विज्ञान

**विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र**

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

**भाग ६९ | सम्वत् २००६ अगस्त-सितम्बर १९४९ | संख्या ५-६**


# आइनस्टाइन—एक विचित्र व्यक्तित्व

[ लेखक:—श्रीरामचरण मेहरोत्रा ]

आज संसार में आइनस्टाइन के नाम से कौन परिचित नहीं है? परन्तु कितने लोग जानते हैं कि वर्त्तमान संसार का यह सब से महान वैज्ञानिक बचपन में अपनी पाठशाला का एक बुद्धिहीन बालक समझा जाता था। उसके गुरु उसको बात समझाते समझाते थक कर परेशान हो जाते थे और उसके माता पिता को उसकी बुद्धिहीनता के कारण उसके भविष्य के लिए बड़ी चिन्ता रहा करती थी।

ऐसा बालक लगभग २५ वर्ष हुए सहसा ही संसार का सब से कुशाग्र बुद्धि वाला व्यक्ति समझा जाने लगा। शायद मानव इतिहास में गणितज्ञ का यही एक दृष्टान्त है जिसने समाचार पत्रों के प्रमुख सतरों में स्थान पाया है।

इस महान वैज्ञानिक ने विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय कार्य्य किया है, परन्तु उनको इतनी ख्याति अपने 'सापेक्ष-वाद के सिद्धान्त' (Theory of Relativity) के कारण मिली है। आइनस्टाइन का कथन है कि संसार में कठिनाई से १२ मनुष्य ऐसे हैं जो उनके सापेक्ष-वाद सिद्धान्त को समझ पाते हैं; यद्यपि इस सिद्धान्त को समझाने का प्रयास १००० से अधिक पुस्तकों में किया गया है। यदि आइनस्टाइन से कोई कहता है "कृपया, सापेक्षवाद सिद्धान्त का सारांश मुझे समझा दीजिए," तो उनका तत्काल उत्तर होता है "इसे आप एक दृष्टान्त से समझ सकते हैं। जिस लड़की को आप प्यार करते हैं उससे घण्टा भर तक बात करके भी आपको ऐसा भास होता है कि आपने उससे एक क्षण ही बात की है और इसके विपरीत गरमी में भट्टी के सामने एक क्षण खड़े होने पर भी आपको ऐसा प्रतीत होगा कि घण्टों से आप खड़े हैं।" यदि आप उनके कथन में सन्देह प्रदर्शित करें, तो वे आप से कहेंगे "जी, यही सापेक्षवाद का सिद्धान्त है। यदि आपको सन्देह है तो आप एक क्षण के लिए भट्टी के सामने खड़े होकर देखलें और मैं घण्टा भर अपनी प्रेयसी से बात करता हूँ।" कितने आकर्षक हैं आइनस्टाइन महाशय!

आइनस्टाइन जब ५० वर्ष के हुए, तो समस्त जर्मनी ने

उनको सम्मानित किया और अपने हृदय में उनके प्रति आदर तथा प्रतिष्टा को प्रदर्शित करने के लिए उन्हें एक मकान तथा एक नाव भेंट की और उनकी एक प्रतिमा पोट्सडैम में बनवाई। परन्तु कुछ ही वर्ष बाद उनकी समस्त जायदाद ज़ब्त करली गयी और उनको अपने देश को छोड़ कर भागना पड़ा। कुछ हफ्ते वे बेलजियम में रहे और इन दिनों हर क्षण उनका जीवन आपत्ति में था। जब वे प्रिंसल में गणित के प्रोफेसर होने के लिए न्यूयार्क आये, तो उनकी सब से उत्कट इच्छा थी कि इस समाचार को विशेष महत्व न दिया जाये और समाचार पत्र के सम्वाददाता उन्हें परेशान न करें। उनकी इस इच्छा को पूरा करने के लिए उनके मित्रों ने बन्दारगाह आने के पहिले ही उन्हें उतार लिया और चुपचाप निकाल ले आये।

आइनस्टाइन

वैज्ञानिक आइनस्टाइन का चरित्र उनके गणितज्ञ के जीवन से भी महान है। एक बार जब वे एटलांटिक महासमुद्र की यात्रा कर रहे थे, तो जहाज़ की कम्पनी के मालिक ने प्रार्थना की कि वे जहाज़ के सब से सुन्दर कमरों को प्रतिष्ठित कर कम्पनी को अनुग्रहीत करें, परन्तु आइनस्टाइन ने साधारण कमरे में जाना ज़्यादा पसन्द किया।

आइनस्टाइन का जीवन बड़ा सादगीपूर्ण है। उनको कभी भी आप मुर्के मुर्के गन्दे कपड़े पहिने देख सकते हैं, हैट पहिनने की आदत तो आपकी है ही नहीं। नहाते समय गुनगुनाते या सीटी बजाते रहना आपका नित्य का अभ्यास है। हजामत बनाने में विशेष प्रकार का साबुन प्रयोग करना आप को पसन्द नहीं, आप दाढ़ी के लिए भी वही साबुन प्रयोग करते हैं जो नहाने के लिए। यह असाधारण व्यक्ति अपनी कुशाग्रबुद्धि से संसार की जटिल से जटिल समस्याएँ सुलझाने का प्रयत्न किया करता है, परन्तु उसका कथन है कि वास्तविक जीवन में दो प्रकार का साबुन-एक नहाने के लिए और एक दाढ़ी के लिए-प्रयोग करना जीवन को बहुत पेचीदा बना देना है। वायोलिन बजाना आपको बहुत पसन्द है। आप कहते हैं कि संसार में सबसे अधिक आनन्द मुझे वायोलिन बजाने में मिलता है। उनका विश्वास है कि सङ्गीत के बीच वे प्रायः बड़ी जटिल समस्याओं को सुलझा लेते हैं और सङ्गीत ही उनके जीवन की सबसे सुन्दर कल्पना है।

आइनस्टाइन ने दो बार विवाह किया है। पहिली स्त्री से आपके दो लड़के हैं—इनकी बुद्धि अपने पिता के समान ही कुशाग्र है श्रीमती आइनस्टाइन यह मानती हैं कि वे सापेक्षवाद का सिद्धान्त समझने में असमर्थ हैं परन्तु वे अपने पति को ठीक से समझ गई हैं। प्रायः वह अपने या अपने पति के मित्रों को चाय पर आमंत्रित करती हैं, तो पति को ऐसे अवसरों पर बुलाना एक कठिन कार्य्य होता है। जब वे अपने पति से कहती हैं, "आमन्त्रित सज्जन आगये हैं, कृपया नीचे चलकर चाय पी लीजिए," तो वह व्यस्त व्यक्ति झुल्ला उठता है "नहीं! इन व्यर्थ की बातों के लिए मेरे पास समय नहीं है। मैं यहाँ कार्य्य नहीं कर पाता, मैं यहाँ से ही चला जाता हूँ।" परन्तु श्रीमती आइनस्टाइन किसी प्रकार समझा बुझा कर उन्हें आमन्त्रित सज्जनों के बीच में ले आने में सदैव सफल हो ही जाती हैं। चाय मेज़ पर आते ही वे एक सरल मनुष्य बन जाते हैं।

आइनस्टाइन का जीवन बड़ा ही सुखी है। उनके जीवन के सुखी होने का रहस्य यह है कि इस महान व्यक्ति को किसी प्रकार की इच्छाएँ नहीं हैं। न तो वह पैसे का लोभी है, न किसी से कोई कृपा चाहता है, न ख्याति की उसे परवाह है। कार्य्य करना ही उसके जीवन का सबसे बड़ा सुख है और गणित के अतिरिक्त सङ्गीत तथा नाव खेना उसके लिए सब से आकर्षक कार्य्य हैं।

आजकल आइनस्टाइन वैज्ञानिकों पर आरोपित दोष को धोने के प्रयत्न में लगे हुए हैं। परमाणु बम का मूल बीज उनके सापेक्षवाद सिद्धान्त ही में उपस्थित था और यही वैज्ञानिक आज समस्त संसार के वैज्ञानिकों को ललकार कर कह रहा है कि अपनी समस्त शक्ति इस प्रयास मे लगा दो कि यह अलौकिक परमाणु-शक्ति मनुष्य के नाश का नहीं वरन् त्राण का अस्त्र बने।

---

# पारस पत्थर की खोज में

लेखक—गोवर्द्धन शर्मा, जोधपुर

पारस की कल्पना कोई नई चीज़ नहीं है। यह उतनी ही प्राचीन है जितनी कि मानवता। कई सदियों से इस पृथ्वी पर रहने वाला मानव आज भी अपने इस प्रयास में प्रयत्नशील है और कुछ आंशिक सफलता भी आधुनिक काल में प्राप्त कर चुका है। आदि मानव ने पाषाण काल के पश्चात् पशुओं की अस्थियों, दाँतों व सरिता और सरोवर के फेनिल कूलों पर एकत्रित सीप, घोंघों आदि से अपने को सजाना सवारना छोड़ दिया और रंग-रंगीले छोटे-छोटे पत्थरों व धातुओं के टुकड़ों ने उसकी प्रिय शृंगार सामग्री का स्थान ग्रहण किया। इस मोह को आज का सभ्य व सुसंस्कृत मानव भी नहीं त्याग सका है। आज भी वे ही चीजे रत्नों व आभूषणों का सुरुचिपूर्ण रूप धरे उसके लिये बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। अपने पूर्वजों की थाती भला वह कैसे भूले। सोने व चाँदी की चमक, लोहे व सीसे की कुरूपता के सामने उस प्रारम्भिक मानव को बड़ी भली लगी। और यहीं से पारस की कल्पना का प्रादुर्भाव हुआ। उसने भी सोचा होगा— काश! वह इन सभी कलूटी चीजों को सुनहला बना सकता। उसकी इस कल्पना के वृक्ष में एक फल लगा, जो पारस के रूप में बढ़ा। तब से पारस दिन प्रति-दिन अधिक से अधिकतर 'आकर्षण का केन्द्र' हो रहा है। आज के वैज्ञानिक युग में उस 'दार्शनिक के पत्थर' ने [Philosopher's Stone, जैसा कि पारस को संबोधित किया जाता है] दूसरा रूप अवश्य धारण कर लिया है, पर मूलतः पारस की धारणा में कोई अंतर नहीं आया। सोने की प्रमुखता के साथ ही 'पारस' का महत्व बढ़ रहा है। आज के युग में स्वर्ण केवल आभूषण की ही वस्तु नहीं रहा, सौन्दर्य और चमक का प्रतीक होने के साथ ही वह 'अर्थ' के महत्वपूर्ण स्थान पर अनायास ही पूर्ण अधिकार कर चुका है। इससे पारस की महत्ता में वृद्धि ही हुई है।

पारस की प्राप्ति के लिये, अज्ञात समय से सतत प्रयत्न होते रहे। पारस को हम साधारण शब्दों में, 'साधारण' धातुओं जैसे लोहा, पारद, ताम्र, सीसा आदि को स्वर्ण, रौप्य और प्लेटिनम आदि मूल्यवान और दमदार धातुओं में परिवर्तन करने का साधन कह सकते हैं। अथर्ववेद में भी एक स्थान पर इस प्रकार का आभास सा मिलता है। बुद्धकालीन प्रसिद्ध रसायन-शास्त्री नागार्जुन का इस क्षेत्र में बड़ा मान है। उनके द्वारा लिखित 'रस-रत्नाकर' में धातुओं के परिवर्तन का सांगोपांग वर्णन है। उन्होंने धातुओं के मारण और शोधन में भी आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त करली थी। इस काल में मिश्र में भी काफ़ी प्रगति हुई।

ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दी में अन्य प्रदेशों के कई प्रमुख वैज्ञानिकों ने इस उद्देश्य को सफल करने के लिये कठिन श्रम किया। अरिस्टोल, गैबर, वेसिल वेलेंटाइन

आदि इनमें से प्रमुख हैं। इसमें उन्हें कोई विशेष सफलता मिली हो, ऐसा ज्ञात नहीं होता। इस समय के प्रायः सभी रसायन शास्त्रियों ने 'पारस' की प्राप्ति में अपने को लगा दिया था, अतः इस समय के वैज्ञानिकों को कीमिया के विद्वान (स्वर्ण के शोधक) पुकारा जाता था।

जन साधारण में भी पारस के प्रति बहुत उत्कंठा थी। यह उत्कंठा कई रूपों में प्रगट हुई, और उससे दंतकथायें एवं धार्मिक विश्वास भी प्रभावित हुये बिना न रह सके। इसके परिणाम भी बड़े विचित्र निकले। लोगों के हृदयों में अनूठी भावनाओं और मस्तिष्क में विचित्र कल्पनाओं ने जन्म लिया। कोई पारस की खोज के लिये चीलों तथा इतर पक्षियों के घोंसले ही ढूँढ़ने लगा कि शायद कहीं किसी पक्षी ने पारस पत्थर लाकर अपने घोंसले में रख दिया हो। कोई हिमालय यात्रा के लिये चल पड़ा यह सोचकर कि मानसरोवर में रहने वाले हंस मोती चुगते हैं और उनके बच्चे पारस पत्थरों से खेलते हैं। कोई दिन भर नदियों में बहकर आने वाले पत्थरों से ही लोहे की चीजें छुवा-छुवा कर परीक्षा करने लगा, शायद भाग्य से कोई पारस पत्थर मिल जाय। इसी प्रकार अनेक विचित्र घटनायें घटीं। कई लोगों ने इसी धुन के पीछे अपने प्राण दे दिये।

केवल यही क्यों कुछ व्यक्तियों ने और भी अजीब प्रयोग करने आरम्भ किये। उल्लू की आँख, चमगीदड़ की बीट, पारा, अर्जुनवृक्ष की छाल, गो मूत्र, हाथी के नख और न जाने क्या-क्या चीजें मिलाकर विचित्र प्रयोग किये जाते रहे। पर किसी प्रकार की सफलता नहीं मिल सकी। लेकिन इसी प्रश्न का वैज्ञानिक पहलू भी है।

वैसे तो विगत चार शताब्दियों में विज्ञान का बहुत विकास हुआ परन्तु ईसा की उन्नीसवीं शताब्दी विज्ञान की प्रगति के लिहाज़ से बहुत ही महत्वपूर्ण है। इस समय में कई विचारवान वैज्ञानिकों द्वारा आधुनिक विज्ञान के मूलभूत तत्वों का निरूपण हुआ। उनमें से मुख्य है डाल्टन द्वारा प्रस्तुत परमाणु सिद्धांत। सन् १८०८ ईसवी में जॉनडाल्टन ने, जो एक चतुर अध्यापक, गणितज्ञ और आविष्कारक था, अपना प्रसिद्ध 'परमाणु-सिद्धान्त' प्रस्तुत किया, जो आज भी अपने संशोधित और परिवर्द्धित रूप में बड़े महत्व और सर्वमान्य का है। डाल्टन ने ग्रीक दार्शनिकों के प्राचीन सिद्धांत को आधुनिक रूप दिया। इसके अनुसार समस्त सृष्टि लघु परमाणुओं द्वारा निर्मित हुई हैं। इसके कुछ समय बाद ही एवेगेड्रो ने अपनी अव्याख्य Hypothesis रखी, जो आधुनिक विज्ञान की आधारशिला है। इन्होंने वैज्ञानिकों को सोचने के लिये नई विचारधारा दी और जैसा कि आगे देखेंगे— इन्हीं आधार शिलाओं पर 'पारस' की कल्पना कुछ अंशों तक सफलीभूत हुई।

पारस तक पहुँचने का द्वितीय सोपान परमाणु का निरूपण एवं विश्लेषण है। इस क्षेत्र में मदाम क्यूरी, सर जे० जे० थामसन्, रूदर फोर्ड, मोज़ले तथा कई अन्य वैज्ञानिकों का सतत परिश्रम है। इन सभी अध्यवसायी, मननशील और परिश्रमी वैज्ञानिकों की मानवता चिर ऋणी है जिन्होंने अज्ञान के धूमिल पर्दे को हटा यथार्थ वातायन का मानव को भान कराया। उसके सम्मुख सृष्टि की बारीकियाँ रख दीं एवं उसके मानसिक विकास में योग दिया।

लघु दबाव पर गैसीय पदार्थों पर विद्युत का प्रभाव ज्ञात कर तथा अन्य सहयोगियों के प्रयोगों एवं निष्कर्षों की सहायता से जे० जे० थामसन ने परमाणु के ढाँचे का अनुमान लगाया। अब यह भली प्रकार प्रमाणित हो गया है कि प्रत्येक परमाणु में एक केन्द्र होता है, जो घना और विद्युत शक्ति से युक्त होता है। उसके चारों ओर ऋण विद्युतशक्ति के कण 'एलेक्ट्रॉन' अबाध गति से परिभ्रमण किया करते हैं। यही परमाणु सारी सृष्टि की इकाई है। अलग अलग धातुओं के केन्द्र में ही विशेषतया उनका सारा अन्तर निहित है। यदि किसी तरह किसी भी धातु के परमाणु-केन्द्र का विकेन्द्रीकरण किया जासके तो स्वर्ण के परमाणु केन्द्र के निर्माण की सम्भावना हो सकती है। अर्थात् न्यूक्लियस (केन्द्र) का सफलतापूर्वक विकेन्द्रीकरण करके इतर धातुओं को स्वर्ण में परिवर्तन किया जा सकता है। परन्तु विकेन्द्रीकरण कोई आसान काम नहीं, केन्द्र का विन्यास करते समय जो शक्ति उत्पन्न होगी उसका अनुमान लगाना अचरजकारी है।

कुछ पदार्थ जैसे यूरेनियम, पोलोनियम, रेडियम आदि सदा कुछ तीव्र और सूक्ष्म रश्मियें फेंका करते हैं। ऐसे रेडियो क्रियाशील पदार्थ सब तापक्रमों पर समान रूप से किरणें फेंकते हैं और धीरे-धीरे सीसे (Lead) के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं; इससे वैज्ञानिकों को सोचने के लिये एक विशेष दिशा मिली। उन्होंने विचारा कि एक वस्तु को दूसरी में परिवर्तन करना असंभव नहीं है।

इन्हीं प्रयोगों के सिलसिले में विज्ञान जगत को एक बहुत ही उत्साहवर्द्धक सत्य ज्ञात हुआ। कुछ पदार्थ दो या तीन रूपों में विद्यमान होते हैं। रूपों से यहाँ मेरा तात्पर्य केन्द्र के विद्युतीय ढाँचे से है। उदाहरण के लिये प्राणवायु Oxygen के तीन रूप हैं जो वैज्ञानिक भाषा में Isotope कहलाते हैं। प्राणवायु के तीन रूप होने पर भी उसकी भौतिक और रासायनिक प्रक्रियाओं और गुणों में कोई अन्तर नहीं होता। इससे वैज्ञानिकों को यह आशा बंधी कि यदि स्वर्ण नहीं बन सका तो कम से कम उसके दूसरे रूप का निर्माण हो सकेगा। इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार के सतत प्रयत्नों से स्वर्ण की उपलब्धि की कल्पना साकार रूप धारण कर लेगी।

मानव ने अपनी सामाजिक और शारीरिक आवश्यकताओं के लिये अपनी आस-पास की वस्तुओं का प्रयोग प्रारम्भ किया। उनकी न्यूनता होने पर उसने कृत्रिम वस्तुओं के निर्माण की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया। वह उसमें सफल भी हुआ। युद्धकालीन जर्मनी कृत्रिम मक्खन, पेट्रोल और नत्रजन लवणों (शोरा) के उत्पादन में सफल रहा। यही हाल स्वर्ण के क्षेत्र में हुआ। ताम्र और केडमियम (एक धातु विशेष) को एक विशेष अनुपात में मिलाने पर जो मिश्रण तैयार होता है; वह चमक, रंग और तार खींचने के गुण में असली स्वर्ण जैसा ही होता है। एक पाश्चात्य वैज्ञानिक ने पारद से स्वर्ण बनाने की सम्भावना प्रकट की है।

संसार के सभी भागों में पारस की पुरानी घटनायें किंवदंतियों के रूप में प्रचलित हैं। कितना तथ्य उसमें है वह कभी तो प्रगट होगा ही। पर यह निर्विवाद मानना पड़ेगा कि स्वर्णप्राप्ति की इस कल्पना में कोई अत्युक्ति नहीं है। यह सर्वथा सम्भव है और कल के वैज्ञानिक उसे अवश्य ही पूरा कर लेंगे ऐसा मेरा विश्वास है। चाहे आज भी भारतीय अपने इसी स्वप्न में लित हो दौड़ें कि वे हिमालय में स्थित साधु संतो से पारस पत्थर प्राप्त कर लेंगे, जैसा कि आज भी कई लोगों का विश्वास है।

---

# गृहिणी के कार्य में विज्ञान का योग

लेखक—माइकेल ग्रान्ट

"उठिए, चाय तैयार है" मानों इन शब्दों में स्वतः काम करने वाला बिजली का यंत्र, जिसे बनाने का श्रेय ब्रिटिश वैक्युम क्लीनर कम्पनी को है, प्रातःकाल श्रीमती स्मिथ को जगाता है। एक घड़ी होती है जो निश्चित समय पर केटिल में पानी गरम कर देती है और पानी को चायदानी में डालने के बाद एक रोशनी जलाकर श्रीमती स्मिथ की प्रतीक्षा की जाती है।

चाय के बाद गृहिणी को स्नान के प्रबन्ध की चिंता होती है, पर यंत्रयुक्त इस गृह में चिंता के लिए स्थान नहीं क्योंकि बिजली के हीटर ने पानी पहले ही से गरम कर रक्खा है।

नाश्ते से निवृत्त होने के बाद श्रीमती स्मिथ दूसरे काम में लग सकतीं हैं, विशेषतः बच्चों का नाश्ता क्योंकि इन्हें स्कूल जाना है। मिडिलसेक्स, इंग्लैंड, की "एलेक्ट्रिक ऐण्ड म्यूज़िकल इन्डस्ट्रीज़" नामक कम्पनी ने एक रेडियो अँगीठी बनाई है जो पाँच मिनटों के अन्दर पूरा पौष्टिक और स्वादिष्ट नाश्ता तैयार कर सकती है। इस अंगीठी में एक मिनट में १२० डिग्री सेन्टीग्रेड तक उष्णता पहुँच जाती है।

## अन्य कार्य

घर की सफाई......में सरे, इंग्लैंड की हूवर लिमिटेड कम्पनी के वैक्युम क्लीनर—गर्द को चूस कर साफ करने

वाला यन्त्र--से उपयोगी सहायता ली जा सकती है और वैट्रिक कम्पनी, लन्दन, ने जो मशीन तैयार की है वह गृहिणी को ज़रा भी शारीरिक थकावट दिए बिना फर्श को साफ़ कर उसे धो सकती है।

उस अद्भुत यंत्र को "विद्युत मस्तिष्क" कहना उपयुक्त होगा जो रसोई में आग की उष्णता आवश्यकतानुसार कम या अधिक कर सकता है। इस यंत्र को, जिसकी ऊँचाई एक फुट है और व्यास सात इंच, दीवार पर टांग दिया जाता है। इसके साथ कई अन्य साधन लगे हुए होते हैं जिनमें तारों के द्वारा मुख्य यंत्र से बिजली पहुँचती है। घूमने वाले ब्रश रगड़ कर बर्तन साफ़ कर देते हैं। यह यंत्र तो जूते और कपड़े भी साफ कर सकता है, यहाँ तक कि तौलिया सुखाने के काम में भी आता है। रसोई में प्रयुक्त हो सकने वाला एक दूसरा यंत्र है जो गोश्त के टुकड़े, आलू के छिलके निकालने और नीबू निचोड़ने में प्रयुक्त हो सकता है।

ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने तीन वर्षों तक प्रयोग करने के बाद छोटे कमरे के सदृश एक रसोई तैयार की है जिसमें बर्तन और उन अन्य सामानों का सुन्दर समावेश है जो रसोई में यहाँ और वहाँ रक्खे जाने पर कमरे की शोभा बिगाड़ देते हैं। धोने की मशीन, खाना पकाने का चूल्हा, बर्तन सब इस नई रसोई में होते हैं और अन्य वस्तुएँ रखने के लिए स्थान भी।

रात्रि का भोजन श्रीमती स्मिथ उस "रेडियो अँगीठी" में पका सकती हैं जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है या एक नए प्रकार की गैस अंगीठी में।

### नया युग

यदि श्रीमती स्मिथ का मकान छोटा है और उसमें अलग भोजनालय के लिए स्थान नहीं है तो वे हार्किन्स कम्पनी लन्दन द्वारा निर्मित "डिनरवैगन"—भोजन सामग्री रखने की टेबुल—का उपयोग कर सकती हैं क्योंकि इससे खाने की टेबुल का काम भी लिया जा सकता है। तश्तरियों के रखने के स्थान में एक विशेष युक्ति है जिससे भोजन सदैव गरम रहता है। डिनरवैगन की एक ओर रोटी सेंकने का यंत्र और दूसरी ओर काफी छानने की मशीन लगी होती है। काँटा छुरी और तश्तरियाँ धोने के लिए श्रीमती स्मिथ एक दूसरे स्वतः काम करने वाले साधन से काम ले सकती हैं।

इस प्रकार नित्यप्रति के कार्य शारीरिक थकावट के बिना हो सकेंगे। इसके अतिरिक्त श्रीमती स्मिथ को अवकाश के दिन की आशंका करने की भी आवश्यकता नहीं, क्योंकि कपड़े धोने में उन्हें परिश्रम नहीं करना है; वेल्स, लन्दन, बर्मिघंम इत्यादि की फर्मों ने ऐसी मशीने बना ली हैं जो कपड़ों को धो सकती हैं। मशीन में कपड़े और साबुन रखकर स्विच खोल दिया जाता है। तब कपड़ों की सफाई, उन्हें निचोड़ना और सुखाना, ये सब मशीन के काम हैं, समाप्त होने पर मशीन अपने आप बन्द हो जाती है।

इस प्रकार ब्रिटिश वैज्ञानिक घर के दैनिक कार्य में अपना योग दे रहे हैं। स्त्रियों के मस्तिष्क और शरीर पर काम का प्रभाव जानने में भी वे आज जुटे हैं। उनके आविष्कारों की सफलता और लोकप्रियता पारिवारिक जीवन में एक नए युग का प्रारम्भ कर सकती है।

# धाय पिता

लेखकः— श्री राधाकृष्ण कौशिक, कोटा

जहाँ कहीं भी धाय पिता पाये जाते हैं वहाँ नैपथ्य में 'नर्तक माता" होती है। मनुष्य जाति में पालना झुलाने वाला, बच्चों की गाड़ी खींचने वाला, अथवा "चलचित्र तारिका" पत्नी का रसोइया पिता सदा से ही परिहास का लक्ष्य बना रहा है। कभी-कभी वह उन स्वार्थी पुरुषों से ईर्ष्या करने लगता है जो कि गृहस्थ के कोलाहल व झंझटों से पिंड छुड़ाने के लिये सभा-सोसाइटी व मित्र-मंडली में जा बैठते हैं, परन्तु उसको ऐसे दृष्टान्तों से विचलित नहीं होना चाहिये क्योंकि वह ही एक मात्र ऐसा अनुरक्त व्यक्ति नहीं है वरन् जन्तु-जगत में अनेकों ऐसे उदाहरण पाये जाते हैं जहाँ गृहस्थ का पूर्ण भार एक मात्र पिता को ही संभालना पड़ता है।

अनेकों जंतुओं के माता-पिता दोनों ही गृह-निर्माण में बराबरी से हाथ बटाते हैं, परन्तु प्रसव के पश्चात् नर कम दिखाई देता है। नर में स्वयं के बच्चे भक्ष्य करने की प्रवृत्ति होने के कारण उसके बच्चों के अति समीप पहुँचना शंका रहित नहीं है। परन्तु इस साधारण नियम के अपवादों का भी अभाव नहीं है।

## स्तन-धारियों (Mammals) में

स्तनधारियों में मारमोसेट बन्दरों (Marmoset Monkey) में शावक के लालन-पालन का भार पिता पर ही पूर्णतया निर्भर रहता है, केवल क्षुधा-पूर्ती करने के लिये ही माता शावक अल्प समय के लिये लेती है।

## पक्षियों (Aves) में

पक्षियों में "धाय पिता" के अनेकों दृष्टान्त पाये जाते हैं। बहुत से पक्षियों में दोनों ही सहचर नीड-निर्माण और बच्चों को खिलाने-पिलाने के कार्य में बराबरी से हाथ बटाते हैं। रीहा (Rhea) और राज-पेनग्विन (King Penguin) में नर को अत्यधिक भार संभालना पड़ता है। शुतुरमुर्ग-वर्ग के केवल तीन जीवित-पक्षियों में से रीहा भी एक है। यह केवल अर्जेन्टाइन (Argentine) में पाया जाता है और वहाँ भी यह अति-शीघ्रता से लुप्त होता जा रहा है। इस पक्षी में प्रति द्वन्दी से युद्ध करते समय दोनों की गर्दन सर्प की तरह लिपट जाती है और विजेता मनोवांछित सहचरी प्राप्त करता है और उसके अंडे देने को निहारता रहता है। यदि एक ही घोंसले में अत्यधिक अँडे दे दिये जाते हैं तो नर भी सुगमता से अंडे सेने का कार्य करने लगता है और यदि मादा सेते हुए नर का हाथ बटाने आगे बढती है तो नर उसे अकथनिय उग्रता से मार भगाता है।

राज-पेनग्विन (King Penguin) में नर अपनी अर्द्धाङ्गिनी के साथ-साथ बच्चों की देख-रेख करता है। माता अपने अंडों को उदर और पैरों के बीच में रख खड़े रह कर सेने का कार्य करती है, परन्तु थक जाने अथवा क्षुधातुर होने पर गधे के समान रेंकती है; जिसको सुन-कर नर तुरन्त ही सेवा में उपस्थित हो जाता है। तत्पश्चात् दोनों कंधे से कंधा भिड़ाकर खड़े हो जाते हैं और मादा अपने टखनों की गति द्वारा अंडों को पति के पैरों में लुढ़का कर चली जाती है। पति को यह भार उस समय तक निरन्तर संभाले रहना पड़ता है जब तक कि पत्नी में अपने कर्तव्य-भार को संभालने की उत्कट अभि-लाषा जाग्रति नहीं होती।

प्रायः नर पक्षी मनोनीत नारी के भी दिये हुये अंडों की कोई देख रेख नहीं करते, परन्तु संकटकाल के समय उनके मातृरूप धारण करने के प्रशंसनीय प्रयास के उदाहरण पाये जाते हैं। कुछ वर्ष पहिले जापान के एक कौतुकागार (Museum) में एक क्रेन (Crane) ने दो अंडे दिए जिनको मादा पूरे एक माह तक सेती रही। उस अवधि के पश्चात् एक में से तो "मुर्गाबी" निकली और दूसरा अँडा घोसले से बाहर निकाल दिया गया। सौभाग्य से पिता ने, जो इस समय तक सेने के कार्य-क्रम से बिल्कुल

परे था, इस बहिष्कृत अंडे को सेना आरम्भ कर दिया और कितने ही दिनों के परिश्रम के बाद अपने कार्य में सफल हुआ। माता केवल अपने पूर्वोत्पन्न बच्चे के पालन-पोषण में पूर्णरूप से व्यस्त रही।

इबिस (Ibis) नामक पक्षी में नर और नारी दोनों ही क्रमानुसार अंडे सेने का काम करते हैं, जिसकी अवधि प्रायः तीन सप्ताह होती है। पिता दिन में अंडे सेता है और माता रात्रि में। नये बच्चों को माता-पिता दोनों ही अपनी चोंच-में-चोंच लेकर अर्द्ध पचित "भोजन" अपने उदर से निकालकर "दुग्धपान" कराते हैं।

टीबे बनाने वालों के नाम से प्रख्यात विशाल पक्षियों का एक समूह मिट्टी के टीबे बनाकर उसमें अंडे देता है। नर गीली मिट्टी और गली-सड़ी वनस्पति से टीबे बनाता है जो कि प्रायः १५ फीट से ऊँचे और करीब ६० फीट के घेरे के होते हैं। पति का काम गृह-निर्माण तक ही सीमित नहीं है वरन् उसको अंडों की भी देख-रेख करनी पड़ती है।

## स्थलजलचर (Amphibians) में

"धाय-पिता" का सर्वोत्तम दृष्टान्त अलायटिज़ (Alytes) नामक दादुर में पाया जाता है। यह मध्यवर्ती व पश्चिमी योरुप का आदिवासी है और नर "अंड-श्रृंखला" को अपने पैरों में लपेट लेता है। यह "धाय-दादुर" (Midwife Toad) के नाम से भी बहुत प्रसिद्ध है। यह स्थलजलचर पानी में अँडे न देकर पृथ्वी पर देता है जो कि मटर-माला की तरह गुथे रहते हैं। अंडे देते ही नर उनको अपने पिछले अङ्गों (Hind-Limbs) में लपेट लेता है और ३-४ सप्ताह तक इस भार को लिये फिरता रहता है। अन्त में समीप के किसी ताल तलैया में चला जाता है जहाँ अंडे फूटने पर ५०-६० कठवेगची (Tadpoles) बाहर निकल कर पानी में तैरने लगते हैं।

संतती रक्षा का एक विचित्र उपाय चिली प्रदेश के सूक्ष्म मण्डूक में पाया गया है। पहिले यह जरायुज (Viviparous) माना जाता था, परन्तु अब यह स्पष्ट हो चुका है कि मादा के अंडे देते ही नर १०-२० अंडों को निगल कर कंठ-थैली में रख लेता है जहाँ उनका विकास होता रहता है। पूर्णरूप से स्वावलम्बी होने की क्षमता प्राप्त करने पर ही ये कंठ-थैली से उगल दिये जाते हैं इससे पूर्व ये उसमें पूर्णरूप से सुरक्षित रहते हैं।

## मत्स्यों (Fishes) में

"धाय पिता" के सबसे अधिक उदाहरण जल-मय-संसार से प्राप्त हुये हैं। स्टिकलबेक (Stickleback) नामक मत्स्य में नर अपनी कार्य कुशलता से पक्षियों के समान घास व तिनकों से एक अति उत्तम घोंसला बनाता है जिसके कारण एक के बाद एक अनेकों पत्नियाँ लोभित हो जाती हैं। प्रत्येक पत्नी उस घोंसले में अंडे दे देती है, जिनको सेने का उत्तरदायित्व पिता के सिर आ पड़ता है। वह अपने पूँछ और पंखों (Fins) को झलकर सेने का कार्य सम्पन्न करता है। माता की अंडे भक्षण प्रवृत्ति के कारण यह कार्य और भी कठिन हो जाता है। पिता की अंडों की चौकीदारी और सेवा-सुश्रुषा उस समय तक निरन्तर चालू रहती है जब तक की अंडे फूट कर नयी मछलियाँ कुछ सप्ताह की न हो जाय। शिशु पालन का भार इतना महान और दारुण होता है कि दीन पिता का शरीर दिन प्रतिदिन क्षीण हो जाता है और अंत में वह इन यातनाओं से सदा के लिये मुक्त हो जाता है। संतान के प्रति पिता की कर्तव्य परायणता की चरम सीमा के ऐसे उदाहरण जन्तु-जगत में बहुत ही कम मिलेंगे।

समुद्री घोड़ा मछली (Sea Horse) में नारी नर के उदर पर स्थित एक विशेष थैली में अंडे देती है जहाँ उसका शेष विकास होता रहता है। अंडे फूटने के पश्चात् जो बच्चे निकलते हैं, वे कुछ समय तक अपनी मुड़ी हुई पूँछ के द्वारा पिता के शरीर से लता की तरह चिपटे रहते हैं।

चीन की स्वर्गीय मत्स्य (Paradise-Fish) नामक एक छोटी मछली में नर पानी के बुलबुलों से "अप्सरा महल" का निर्माण करता है। नर के शरीर से एक चिपचिपा रस निकलता है जिससे बुलबुले दृढ़ और संयुक्त रहते हैं। इसके पश्चात् नर मनोवांछित नारी प्राप्त करने के लिये प्रगाढ़ प्रेम-प्रदर्शन में लीन

हो जाता है और अंत में उसके साथ विवाह गुत्थन में बद्ध हो जाता है। मनोनीत पत्नी भूमि पर इधर-उधर अंडे देती फिरती है और अकथ पति उनको चुन-चुन कर बुलबुलेदार "सूतिका-गृह" में पूर्ण विकसित होने के लिये रखता जाता है।

पत्र-पत्रिकाओं के कटाक्षों से मनुष्यों की मनोवृत्ति का पता लगता है कि निकट भविष्य में मनुष्य जाति में नर और नारी के कर्तव्यों में कोई अन्तर ही न रह जायगा और पिता यथार्थरूप से "धाय पिता" बन जायेंगे। बड़े-बड़े शहरों में स्त्रियों के स्वयं जीविकोपार्जन के श्री गणेश से व धारा सभाओं की सभ्य बन जाने से बच्चों की गाड़ी धकेलने वाले पिता इतनी साधारण सी बात हो गयी है कि अब उनको देखकर किसी के चेहरे पर मुसकराहट की रेखा भी नहीं दिखाई देती।

---

# मिट्टी में रसायन का महत्त्व

## (Importance of Chemistry in Soil)

डा० पृथ्वीनाथ भार्गव, बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी

कृषि, संसार में सबसे प्राचीन तथा लाभदायक कला (art) मानी गयी है। वैज्ञानिक उन्नति के साथ साथ कृषि कला की भी यथेष्ट उन्नति हुई है। रसायन के अध्ययन के प्रारंभिक काल में ही कृषक खाद्यान्न संबन्धी प्राकृतिक विधियों पर अपरिचित तथा अपूर्ण रूप में नियंत्रण करते रहे हैं। वैज्ञानिक उन्नति होने पर भी आधुनिक काल तक कृषकों ने इससे कोई विशेष लाभ नहीं उठाया। किन्तु इसका ऐसा प्रभाव पड़ा कि वर्षा कम होने से अकाल के समय तथा बढ़ती हुई जनता के हेतु यथेष्ट खाद्यान्न उत्पन्न करने की विधियों में सर्वदा उन्नति हुई। कृषक में मिट्टी को उपजाऊ बनाने तथा उसके प्रबन्ध करने की अब भी पूर्ण प्रवृत्ति है। जब मिट्टी की उत्पादन शक्ति क्षीण होगयी तथा उपज खराब होने लगी, उस समय खाद्यान्न उत्पन्न करने के हेतु मिट्टी के नियंत्रण की नवीन विधियों की आवश्यकता हुई। ऐसे संकट काल में यह रसायनज्ञों की सहायता से ही संभव था। रसायन के नूतन प्रयोग उस समय कृषि शास्त्र में अधिक लाभदायक सिद्ध होने लगे। परन्तु वैज्ञानिक विधियों के नियमों से अपरिचित रहने के कारण कृषकों को इसमें सफलता प्राप्त करने में अधिक कठिनाई ज्ञात हुई। अतएव उन्नीसवीं सदी के मध्य काल में जर्मनी के लीबिग नामक रसायनज्ञ और फ्रांस के बेसिंगाल्ट तथा इंगलैण्ड के लाज और गिलबर्ट ने रासायनिक विधियों को कृषि में प्रयोग करने के हेतु विशेष प्रयत्न किये।

सन् १८४३ ई० में इंगलैण्ड में राथेमस्टेड एक्सपेरिमेन्टल स्टेशन नामक प्रयोग-शाला की नींव डाली गयी थी। इसका निर्माण विशेषकर कृषि संबन्धी अनुसन्धान के लिए ही हुआ था। सन् १८४३ ई० में जे० बी० लाज ने अपने सहकारी जे० एच० गिलबर्ट के साथ मिट्टी को रासायनिक खाद (manure) द्वारा अधिक उपजाऊ बनाने के हेतु कार्य प्रारंभ किया और लगभग ५० वर्ष तक अनुसन्धान करते रहे जिससे वे वैज्ञानिक इतिहास में चिरस्मरणीय हो गये। इस अनुसन्धानशाला में जो कुछ कार्य हुआ है, उसमें कृषक तथा रसायनज्ञ दोनों ही संबन्धित हैं। आजकल भी यह अनुसन्धानशाला कृषि सम्बन्धी अन्वेषण के लिये प्रसिद्ध है। लाज महाशय ने अपने जीवन काल में इस प्रयोगशाला का कुल व्यय अपने पास से ही नहीं दिया किन्तु अपनी मृत्यु के पूर्व एक लाख पौंड से लाज एग्रिकल्चरल ट्रस्ट भी स्थापित किया। अभाग्यवश सन् १६०० में लाज और सन् १६०१ में गिलबर्ट का स्वर्गवास हो गया। इनकी मृत्यु के उपरान्त सन् १६०२-१६१२ तक सर ए० डी० हाल इस अनुसन्धान शाला के परिचालक रहे और इनके पश्चात सर ई० जे० रसेल ने सन् १६१२-१६४३ तक इसका परिचालन किया।

रसेल महाशय ने अपने जीवन में तन, मन और धन से इसकी उन्नति की और इसी अनुसंधान शाला में सबसे बड़ी और सुप्रसिद्ध कृषि लाइब्रेरी खोली जिसमें लगभग ३०,००० कृषि संबन्धी पुस्तकें हैं। वर्तमान काल में डब्ल्यू० जी० ओग इसके परिचालक हैं। इस अनुसन्धान शाला में देश विदेश के कुछ ही विद्यार्थियों को विशेष प्रकार की कृषि संबन्धी अन्वेषण शिक्षा दी जाती है। भारत के भी कुछ विद्यार्थी इसमें शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं।

इस अनुसन्धान शाला में प्रारंभ में मिट्टी को अधिक उपजाऊ बनाने के लिये अन्वेषण किया गया था किन्तु खाद की रचना ज्ञात करना उस समय एक कठिन प्रश्न था। कृषक इससे परिचित थे कि फसल (Crop) के उत्पादन में मिट्टी में से कुछ न कुछ भोजन (nourishment) अवश्य प्राप्त होता था जिसके कुछ समय पश्चात् अभाव के कारण फसल की उपज कम हो जाती थी। उन्हें यह भी पूर्ण रूप से ज्ञात था कि ऊसर भूमि की मिट्टी क्षेत्र वाटिका की खाद के प्रयोग करने पर फिर उपजाऊ हो जाती थी। लाज तथा गिलबर्ट ने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया कि क्षेत्र वाटिका की खाद की उत्पादन शक्ति नाइट्रोजन, पोटैसियम और फासफोरस इन्हीं तीनों तत्त्वों पर निर्भर है। इस समय क्षेत्र वाटिका की खाद मिट्टी को उपजाऊ बनाने के हेतु कृषकों की आवश्यकतानुसार अधिक मात्रा में नहीं प्राप्त होती थी, इसलिये उन्होंने विचार किया कि तीनों तत्त्वों के यौगिक-अमोनियम सल्फेट, लकड़ी तथा सागर मोथे (sea weed) की राख में से प्राप्त पोटैसियम के यौगिक और पिसी हुई हड्डियों तथा फास्फेट शिला के रूप में फासफोरस के यौगिकों का मिश्रण क्षेत्र वाटिका की खाद के बदले क्यों न प्रयोग किया जाय। प्रयोग करने पर उन्होंने इसे अधिक गुणकारी सिद्ध किया। इससे अतिरिक्त एक और लाभ यह था कि इसके अधिक संकेन्द्रित (concentrated) होने से इनके लाने व भेजने में कम व्यय होता था।

लाज ने कृत्रिम खाद की आवश्यकता समझकर इसे अधिक मात्रा में तैयार करने के लिये डेप्टफोर्ड (Deptford) नगर में एक कारखाना खोला। इसमें इतनी उन्नति हुई कि अब इसमें करोड़ों टन कृत्रिम खाद बनाई जाती है। इससे ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाने में यथोचित सहायता प्राप्त हुई है। यथार्थ में तो यह सत्य है कि मिट्टी को उपजाऊ बनाने तथा वृक्षों के लिए नाइट्रोजन, पोटैसियम और फासफोरस अत्यन्त आवश्यक हैं और इन्हीं तीनों तत्त्वों से बनी हुई कृत्रिम खाद से फसल की उपज अच्छी होती है। परन्तु अनुभवी कृषकों का विचार है कि कृत्रिम खाद से शोषित (dry) मिट्टी कुछ समय पश्चात खराब हो जाती है और क्षेत्र वाटिका की खाद दिन पर दिन अच्छी होती है। अतएव क्षेत्र वाटिका की प्राकृतिक खाद कृत्रिम खाद से अच्छी है। यह भी ज्ञात है कि मिट्टी में मृत वृक्षों और प्राणियों से उत्पन्न कार्बनिक पदार्थ रहते हैं और इनमें धातुओं के यौगिकों के मिश्रण भी सम्मिलित रहते हैं। कार्बनिक पदार्थ में 'ह्यूमस' नामक एक पदार्थ है जो मिट्टी को तीव्रता से जलाने से जल जाता है। मिट्टी में इतने सूक्ष्म कीटाणु (worms) तथा अतिसूक्ष्म जीवाणु (micro-organism) उत्पन्न होते हैं कि वे हमारे नेत्रों से नहीं दृष्टिगोचर होते वरन् एक घन सेन्टीमीटर स्थान में करोड़ों की मात्रा में पाये जाते हैं।

हमें अभी यह पूर्ण रूप से ज्ञात नहीं हो सका है कि वृक्षों की उत्पत्ति तथा फसल की उपज में इनकी क्या क्रिया है, किन्तु इतना अवश्य ज्ञात है कि ये खाद्यान्न का उत्पादन बढ़ाने में निश्चय ही प्रभावशाली हैं। क्षेत्र वाटिका की खाद के कारण ही भूमि के प्राणियों तथा उद्भिज पदार्थों के वायु की प्रतिक्रिया द्वारा उत्पन्न ह्यूमस की मात्रा बढ़ती है और सूक्ष्म कीटाणुओं के जीवन में परिवर्तन होता है। यही कारण है कि क्षेत्र वाटिका की खाद अधिक लाभदायक तथा अनमोल है। निपुण कृषक इससे परिचित हैं कि किस प्रकार की कृत्रिम खाद का किस प्रकार के वृक्ष अथवा फसल के लिए उपयोग हो सकता है। इसलिये वे क्षेत्र वाटिका की खाद के संग फसल की प्रकृति तथा मिट्टी की रचना के अनुसार कृत्रिम खाद भी मिला देते हैं। यह भली भाँति ज्ञात है कि नाइट्रोजन के यौगिकों की खाद से फसल का उत्पादन होता है और वृक्ष के हरे भाग बढ़ते हैं। पोटैसियम के

यौगिकों की खाद से स्टार्च तथा अन्य प्रकार के कार्बोहाइड्रेट्स उत्पन्न होते हैं, और फास्फेट की खाद से जड़ बढ़ती है तथा वृक्ष पकते हैं। वर्तमान युग के वैज्ञानिक प्रयोगों से अब यह ज्ञात हुआ है कि शकर बीट (Sugar beet) की फसल नाइट्रोजन तथा सोडियम पर निर्भर है और यदि फसल के उत्पादन में ७ मन नमक (common salt) प्रयोग हो तो इससे ७ मन अधिक चीनी प्राप्त होगी।

कृत्रिम खाद में साधारणतया नाइट्रोजन के यौगिक अधिकांश में फसल को बढ़ाने के लिये प्रयोग किये जाते हैं किन्तु फासफोरस तथा पोटैसियम के यौगिक इतने अधिकांश में नहीं। फासफोरस तथा पोटैसियम के यौगिक मिट्टी में से वृक्षों द्वारा न प्रयोग किये जाने पर लुप्त नहीं होते हैं परन्तु नाइट्रोजन के यौगिक जो कार्बनिक पदार्थों के क्षय होने से बनते हैं ऐसी अवस्था में शीघ्र लुप्त हो जाते हैं। खाद के तरल पदार्थ मिट्टी में से वृक्षों में जड़ द्वारा अति शीघ्र शोषित होते हैं और इसीलिये मिट्टी में घुले हुये ठोस पदार्थ वृक्षों को शीघ्र प्राप्त होते हैं। प्रकृति में नाइट्रोजन के यौगिक भूमि में जल में घुलने वाले नाइट्रोजन के यौगिक के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं और वृक्षों की आवश्यक मात्रा से अधिक होने पर नाली के पानी में घुल जाते हैं और बह जाते हैं। इसे सिद्ध करने के लिए मुन्ज तथा स्क्लोजिंग ने सन् १८७७ ई० में कई प्रयोग किये और यह ज्ञात किया कि क्षेत्र-वाटिका की खाद तथा मृत वृक्षों से प्राप्त नाइट्रोजन के जटिल यौगिक मिट्टी में सूक्ष्म जीवाणुओं से रसायनिक प्रतिक्रिया द्वारा नाइट्रेट में परिणत होते हैं। उन्होंने नालियों में बहते हुये मल (sewage) पर बालू से छानने (sand filter) की क्रिया देखने के लिये बालू तथा कैलशियम कार्बोनेट के स्तम्भ (column) के मध्य में से तरल मल की धारा बहाई और ज्ञात किया कि लगभग २० दिन के उपरान्त अमोनिया की मात्रा कुछ कम होने लगी तथा नाइट्रेट बनने लगा और अन्त में केवल नाइट्रेट ही शेष बचा। इस प्रकार उन्होंने सिद्ध किया कि अमोनियम का नाइट्रेट में परिवर्तन जीवाणुओं सम्बन्धी विधि है, रसायनिक नहीं। इसलिये उन्होंने सोचा कि स्तम्भ में अमोनिया के आक्सीकरण के हेतु जीवाणु की उत्पत्ति तथा गुणण अति आवश्यक है। इसे सिद्ध करने के लिये उन्होंने स्तम्भ में तनिक क्लोरोफार्म डाली। इसका परिणाम यह हुआ कि जीवाणु मृत हो गये तथा नाइट्रेट का उत्पादन रुक गया। किन्तु जब क्लोरोफार्म हटाकर जीवाणु बढ़ाने के लिये स्तम्भ में उन्होंने खाद रखी तो नाइट्रेट के उत्पादन की क्रिया फिर अविरल रूप से होने लगी। अब रसायनज्ञों ने इस पर विचार किया कि प्राकृतिक तथा कृत्रिम नाइट्रेजन के यौगिकों की खाद के अल्पव्ययी प्रयोग कैसे हों। इसके लिये उन्होंने प्रारम्भ में नाइट्रेट्स का उपयोग किया।

हमें यह ज्ञात है कि चिली के सोडियम नाइट्रेट का उपयोग अधिक मात्रा में बहुत दिनों से होता रहा है। यदि हम लोग इस खाद को खेत बोने के पहले अथवा वृक्षों की जड़ द्वारा उसे यथोचित रूप में शोषण करने के पूर्व प्रयोग करें तो वह व्यर्थ ही लुप्त हो जायगा। इससे यह स्पष्ट है कि सोडियम नाइट्रेट के प्रयोग में हमें सावधान रहना चाहिये। इसके अतिरिक्त वृक्ष जड़ द्वारा केवल अतिमन्द घोल ही शोषित कर सकते हैं। यदि सोडियम नाइट्रेट का प्रयोग ठीक न हो तो मिट्टी में जल द्वारा कदाचित् इसका संकेन्द्रित घोल बनेगा और जड़ में प्रवेश करने की अपेक्षा यह वृक्ष में से जल का शोषण करेगा तथा वृक्ष की पत्तियाँ सिकुड़ जायँगी। यही कारण है कि नाइट्रेट की थोड़ी-थोड़ी मात्रा प्रयोग करने से वृक्ष उसे शोषित कर सकते हैं। यह विधि केवल मालियों तथा काश्तकारों के ही लिये उचित है, कृषकों के लिए नहीं। विशेष कर कृषकों के लिए तो नाइट्रेट से अल्प मात्रा में घुलने वाले पदार्थ की आवश्यकता है जिसे वे खेत बोने के पहले प्रयोग कर सकें।

उन्नीसवीं सदी तक कृषक साधारणतया अमोनियम सल्फेट तथा सोडियम नाइट्रेट को खाद के रूप में प्रयोग करते थे। सन् १८९८ ई० में सर विलियम क्रुक्स ने ब्रिस्टल के ब्रिटिश एसोशियेशन में व्याख्यान दिया और अकाल की शीघ्र संभावना के बारे में कहा। इसका कारण यह था कि संसार की जन संख्या तीव्रगति से बढ़ रही थी और इनके भोजन के हेतु गेहूँ के यथेष्ट

मात्रा में उत्पादन की आवश्यकता थी। इसके अतिरिक्त मिट्टी को अधिक उपजाऊ बनाने के लिये खाद के रूप में नाइट्रोजन के यौगिकों की भी अधिकांश मात्रा में आवश्यकता थी। इसकी पूर्ति न तो क्षेत्र वाटिका की खाद से और न चिली के सोडियम नाइट्रेट तथा अमोनियम सल्फेट से हो सकती थी। इससे सारी भूमि ऊसर-हो जाती तथा नाइट्रोजन के वायुमंडल में रहते हुए भी नाइट्रोजन के यौगिकों की खाद के रूप में कमी रहती। इसका मुख्य कारण यह था कि नाइट्रोजन यौगिक के रूप में प्राप्त नहीं थी।

उस समय जब ऐसी समस्या उपस्थित हुई तो लाज तथा गिलबर्ट ने क्रुक्स को निराश न होने के लिए लिखा। यह पत्र 'दि टाइम्स' नामक पत्रिका में छापा गया था। क्रुक्स ने यह स्पष्ट कर दिया था कि यदि वायुमंडल की नाइट्रोजन किसी प्रकार यौगिक के रूप में संयुक्त हो जाय तो संसार में ये यौगिक प्रचुर मात्रा में होंगे। वास्तव में यह एक अत्यन्त कठिन कार्य था क्योंकि नाइट्रोजन कठिनता से संयुक्त होती थी। परन्तु इस समय इसके संयोजन की दो विधियाँ—(१) जीवाणु तत्त्व सम्बन्धी (biological) तथा (२) रासायनिक ज्ञात थीं। पहली विधि के अनुसार यह ज्ञात था कि सेम, बोड़ा, मटर इत्यादि के वृक्षों (pod bearing plants) से उनके उपजाने वाली मिट्टी की पुष्टि होती थी तथा ऐसी मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा भी अधिक होती थी। सन् १८८६ में जर्मनी के दो रसायनज्ञों ने यह ज्ञात किया कि फली वाले वृक्षों (leguminous plants) की जड़ की छोटी ग्रन्थाओं (nodules) में एक प्रकार के जीवाणु (बीजाणु) उपस्थित रहते हैं जो अपनी उपस्थिति में वायुमंडल की नाइट्रोजन से संयोजन द्वारा यौगिक बनाते हैं। ये यौगिक जीवाणुओं तथा वृक्षों की जड़ के लिए अधिक लाभदायक हैं। इस प्रकार वृक्ष तथा जीवाणु के पारस्परिक संयोग से वृक्ष तो आश्रय प्रदान करते हैं तथा जीवाणु भोजन। ये जीवाणु उनसे भिन्न हैं जो मिट्टी के नाइट्रोजन के जटिल यौगिकों को नाइट्रेट में परिणत क हैं रते। इस प्रकार मिट्टी के जीवाणु वरन् नाइट्रोजन संयोजक जीवाणु की समस्या अति मनोरंजक रही। यह भी ज्ञात हुआ कि ये विधियां प्रयोगशाला में रसायनिक रीति से प्रयोग की जा सकती थीं।

नार्वे में बर्कलैंड और आइडी ने यह ज्ञात किया कि विद्युत् कड़क के समय आकाश में विद्युत् की उत्पत्ति के कारण अधिक तापक्रम से नाइट्रोजन तथा आक्सीजन का संयोजन होता है और नाइट्रिक आक्साइड बनती है। उन्होंने प्राकृतिक विधि की नकल करने के लिए नार्वे की सस्ती विद्युत् शक्ति द्वारा मोटे ताँबे की नली के दो इलैक्ट्रोड के मध्य में शक्तिवान् विद्युत् डिस्चार्ज प्रवाहित किया और नलियों को ठंढा करने के लिये इनमें अविरल जल की धारा बहाई। फिर डिस्चार्ज की ज्वाला को चौरस फैलाने के लिये उन्होंने एक शक्तिवान विद्युतीय चुम्बक लगाया और सम्पूर्ण उपकरण को अंगार अभेद्य वाले चेम्बर में रखा। उन्होंने चेम्बर के अन्तर्गत वायु प्रवाहित की और देखा कि उष्ण डिसचार्ज के सम्पर्क से कुछ नाइट्रोजन नाइट्रिक आक्साइड में परिणित हो गयी। आजकल भी इस उपकरण का प्रयोग होता है और इसमें प्राप्त नाइट्रिक आक्साइड से नाइट्रिक एसिड बनती है जिससे या तो कैलशियम नाइट्रेट अथवा सोडियम नाइट्रेट बनाते हैं। इस विधि में वायुमंडल के नाइट्रोजन की केवल थोड़ी प्रतिशत् मात्रा का ही नाइट्रिक आक्साइड में आक्सीकरण होता है। इसलिये यह विधि वहीं सफलतापूर्वक कार्यान्वित हो सकती है, जहाँ पर विद्युत् जलशक्ति द्वारा यथेष्ट सस्ती प्राप्त हो सकती है। एक दूसरी विधि के अनुसार कैलशियम कार्बाइड तथा वायुमंडल की नाइट्रोजन को उँचे तापक्रम पर गरम करने से कैलशियम स्यानामाइड बनता है। इसी प्रकार कैलसियम आक्साइड तथा एन्थ्रासाइट से कैलशियम कार्बाइड तैयार करने के लिए जलशक्ति द्वारा प्राप्त अत्यल्प सस्ती विद्युत् की आवश्यकता है।

जर्मनी के रसायनज्ञ डा० हाबर ने नाइट्रोजन के संयोजन में कई प्रयोग करके युगान्तर उन्नति की है। उन्होंने सन् १९१३ ई० में वायुमंडल की नाइट्रोजन से आमोनिया बनाई और ज्ञात किया कि आयरन के यौगिकों की उपस्थित में नाइट्रोजन तथा हाइड्रोजन को अधिक दबाव में उँचे तापक्रम पर गरम करने से

अमोनिया तैयार हो जाती है। इस क्रिया में हम आयरन की अनुपस्थिति में चाहे जितना दबाव बढ़ावें किन्तु कोई प्रतिक्रिया न होगी। आयरन के ऐसे यौगिकों को प्रवर्त्तक (Catalyst) कहते हैं और अब भी ये मुख्य वैज्ञानिक रहस्य हैं। इस प्रकार के ठोस तरल व गैस पदार्थों से हम अधिकांश में परिचित हैं जिनकी अवस्था में तो तनिक भी परिवर्त्तन नहीं होता है किन्तु वे अपनी उपस्थिति में या तो प्रतिक्रिया का वेग बढ़ाते हैं अथवा विलम्ब करते या रोकते हैं। ऐसे पदार्थ प्रवर्त्तक कहलाते हैं। यह भी भली भाँति ज्ञात है कि विशेष प्रतिक्रिया के लिए विशेष प्रकार के प्रवर्त्तक प्रयोग किये जाते हैं। इस पर भी ध्यान देना अति आवश्यक है कि प्रवर्त्तक को विषैले पदार्थों से सुरक्षित रखना चाहिये नहीं तो वे निष्क्रय तथा व्यर्थ हो जायँगे। हाबर ने अमोनिया तैयार करने का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग किया है। और उनकी विजय इसीमें है कि उसने ऐसे प्रवर्त्तक का उपयोग किया जिससे नाइट्रोजन तथा हाइड्रोजन की प्रतिक्रिया का वेग बढ़ा। हाबर की विधि में वायु की नाइट्रोजन तथा हाइड्रोजन को १ : ३ के अनुपात में मिलाकर प्रवर्त्तक के संस्पर्श से ३००० पौं० प्रतिवर्ग इंच के दबाव पर ५००° से० तापक्रम पर गरम करने से अमोनिया तैयार होती है। अमोनिया की तैयारी में उपकरण बनाने में अधिक कठिनाई ज्ञात हुई। इस विधि से यह लाभ हुआ कि जब सन् १९१४ के पहले महायुद्ध में जर्मनी में चिली के सोडियम नाइट्रेट्र की प्राप्ति बन्द हो गई तो वहाँ हाबर की विधि से ही आमोनियम सल्फेट तथा नाइट्रोजन के यौगिकों से विस्फोटक पदार्थ बनाये गये। इस प्रकार खाद के उत्पादन से गेहूँ के उत्पादन में अभाव और अकाल की सम्भावना कम हो गई। वर्तमान काल में अमेरिका में अमोनिया का केवल नाइट्रोजन तथा हाइड्रोजन से कई सौ वायुमंडल के दबाव पर ही उत्पादन होता है।

साधारणतया पोटैसियम के यौगिक खाद के रूप में मिट्टी को उपजाऊ बनाने के लिए प्राकृतिक अवस्था में ऋतु परिवर्तन (Weathering) से प्राप्त होते हैं। इन यौगिकों के उत्पादन की समस्या रसायनज्ञों के लिये अति सरल है। फसल के उत्पादन में इनका उपयोग मिट्टी में से इतनी तीव्रता से होता है कि शिलाओं के ऋतु-परिवर्तन से ये इतने शीघ्र नहीं प्राप्त हो सकते हैं। भाग्यवश संसार में कई स्थानों पर पोटैसियम के यौगिकों के ढेर हैं और ये हमें पोटैसियम सल्फेट के रूप में प्राप्त हैं। संसार में अत्यल्प लोगों ने पोटैसियम देखा होगा। वायु में इसका आक्सीकरण शीघ्र होता है, इसके यौगिकों को कार्बोहाइड्रेट्स के उत्पादन में तथा वृक्ष और आलू की फसल के लिये खाद के रूप में प्रयोग करते हैं। ये यौगिक खानों से न प्राप्त होने पर समुद्रतल से भी प्राप्त हो सकते हैं। ऐसा अनुमान है कि प्रतिवर्ष पोटैसियम के यौगिक लगभग ५०,०००,००० टन की गति से सरिताओं द्वारा सागर में प्रवाहित होते हैं।

इसके अतिरिक्त फासफोरस के यौगिक भी खाद के रूप में प्रयोग किये जाते हैं। फासफोरस एक मोम सा अधातु तत्त्व है। यह वायु में स्वाभाविक रूप से शीघ्र जलता है जिससे एक श्वेत आक्साइड बनती है। श्वेत आक्साइड धातुओं से संयुक्त होती है और धात्विक फास्फेट बनते हैं। फासफोरस को अधिकांश में दियासलाई बनाने में प्रयोग करते हैं। उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में कृषकों को यह ज्ञात था कि अधिक उपजाऊ भूमि फासफोरस के यौगिकों के लुप्त होने से ऊसर हो जाती है। एक बार की गेहूँ की फसल में लगभग २०० पौं० कैलसियम फास्फेट प्रति एकड़ व्यय होता है। कैलसियम फास्फेट हड्डियों से प्राप्त होता है, इसलिये पहले हड्डियों के चूर्ण का उपयोग हुआ। किन्तु जल में इसके अघुलनशील होने से इसकी क्रिया अधिक धीमी रही। लावीज ने हड्डी के चूर्ण तथा सल्फ्यूरिक एसिड से घुलनशील फास्फेट तैयार किया। इस प्रकार फास्फेट से फिर घुलनशील आम्लिक सुपरफास्फेट तैयार किया गया। अब संसार में खाद के लिये लावीज का फास्फेट अत्यन्त सस्ता है। थामस तथा गिलक्रिस्ट ने पिग आयरन से स्टील बनाने के अन्तर्गत फास्फोरस को हटाने के लिये अंगार के भट्ठे में कैलसियम अक्साइड का स्तर लगाया और पिग आयरन को पिघलाया। इससे स्तर पिघला और फास्फोरस से संयुक्त होकर आयरन के ऊपर तैरने

लगा। आधुनिक काल में हम लोग इसी खाद का प्रयोग करते हैं। यद्यपि यह जल में अघुलनशील है, किन्तु वृक्षों की जड़ के निकट की मन्द एसिड में यह थोड़ी मात्रा में घुल जाता है। यही कारण है कि इसकी क्रिया आम्लिक सुपरफास्फेट से धीमी होती है। अब यह ज्ञात हुआ है कि एक नये प्रकार की फास्फेट खाद 'सिलिको फास्फेट' इतनी ही तीव्रता से प्रतिक्रिया करती है जैसे सुपरफास्फेट।

इसी प्रकार फसल के उत्पादन के लिए एक समय कैलसियम कार्बोनेट को अधिकांश में प्रयोग करते थे और कहीं-कहीं आजकल भी इसका प्रयोग होता है। इससे मिट्टी की खाद समाप्त हो गई, इसलिए इसका प्रयोग हानिकारक सिद्ध हुआ। प्राकृतिक वरन् कृत्रिम खाद के अविरल उपयोग से ही यह ठीक हो सकती है। हम लोग इससे भलीभाँति परिचित हैं कि गरम करने से कैलसियम कार्बोनेट का कैलसियम आक्साइड तथा कार्बन-डाइ-आक्साइड में विघटित हो जाता है और कैलसियम आक्साइड वायु की कार्बन-डाइ-आक्साइड तथा नमी से फिर कैलसियम कार्बोनेट में परिणत होजाती हैं। कैलसियम के इन दोनों यौगिकों की क्रिया ऐसी अवस्था में एक समान हैं। यदि केवल कैलसियम आक्साइड का ही प्रयोग हो तो फसल झुलस जाती है। कैलसियम आक्साइड आम्लिक मिट्टी अथवा कले (Clay) की रचना सुधारने में प्रयुक्त होती है।

भारत में तो विशेषकर गोबर की खाद या कृत्रिम खाद का ही प्रयोग होता है। कृत्रिम खाद का प्रयोग कम ही है। इसका कारण यह है कि कृषक धनहीन हैं। परन्तु वर्तमान भारतीय सरकार फसल के उत्पादन के लिए कृत्रिम खाद के उपयोग का विशेष प्रयत्न कर रही है।

अब यह स्पष्ट है कि मिट्टी में रसायन का महत्त्व है। रसायनज्ञों का कार्य अत्यन्त विशाल है। उन्हें निरन्तर प्राणि तत्त्ववित्तों के संग कार्य करना है और मिट्टी की खाद से फसल का उत्पादन बढ़ाना है। इससे वे कृषकों की फसल का अधिक उत्पादन करके उनकी कृषि आय बढ़ाने में सफल होंगे तथा सुख सम्पत्ति प्रदान कर सकेंगे।

---

# "जबलपुर—भूगर्भ शास्त्रज्ञों का तीर्थस्थान"

लेखकः श्री प्रभाकर वि० देहादराय, भूगर्भ विभाग, सागर विश्वविद्यालय

साधारण परिचयः—खनिज संपत्ति की दृष्टि से मध्य-प्रदेश एक संपन्न प्रान्त है। इस प्रान्त का नगर जबलपुर भी भूगर्भ शास्त्र की दृष्टि से अत्यंत महत्व का है। इस शहर के निकटवर्ती हिस्सों में कई प्रकार की शिलाएँ मिलती हैं। इनमें तीन मुख्य प्रकार की ये हैं :—

(१) प्राचीन शिलाएँ—(Archaean Rocks)

(२) मध्य-युगीन शिलायें—(Jurassic Rocks) तथा (३) आधुनिक काल की शिलाएँ—(Recent formations)

इन मुख्य प्रकारों के अन्तर्गत और कई प्रकार की शिलाओं का समावेश होता है। इन सभी शिलाओं को भूगर्भ-शास्त्र में उनकी बनावट के अनुसार तीन विभागों में बाँटा गया है।

(१) प्राथमिक शिलाएँ या अग्निजन्य शिलाएँ—(Primary or Igneous Rocks)—भूगर्भ में स्थित शिला को मैग्मा (magma) कहते हैं। इसका तापमान बहुत ऊँचा रहता है। परन्तु अत्यधिक दबाव के कारण यह कुछ अंश में अर्ध-तरल स्थिति में रहती है। पृथ्वी के अन्तर्गत भाग में होनेवाले परिवर्तन से मैग्मा पर पड़नेवाला दबाव कम हो जाता है और तब ऐसी अवस्था में मैग्मा तरल होकर पृथ्वी की सतह पर आने के लिये मार्ग ढूँढ़ता है। इस क्रिया के साथ ही साथ तापमान

के घटने से यह तरल पदार्थ जमकर शिलाओं के रूप में जम जाता है। चूँकि इस तरल मैग्मा का तापमान बहुत ही अधिक ( २०००°C ) रहता है इन्हें आग से बनी हुई—अग्निजन्य (Igneous) शिलाएँ कहते हैं। प्राचीन शिलाएँ अधिकांश ऐसी ही बनी हैं इसलिये इन्हें प्राथमिक शिलाएँ भी कहते हैं।

(२) दोयम शिलाएँ—या तलछट वाली शिलाएँ—(Secondary or Sedimentary rocks) समुद्र की तह में नदियों द्वारा तथा अन्य प्रकार से लायी हुई मिट्टी की तथा तलछट की सतहों से बनी हुई शिलाओं को दोयम शिलाएँ या—तलछट से बनी हुई शिलाएँ कहते हैं। प्राथमिक शिलाओं के अनावृत्तिकरण से यह तलछट तथा मिट्टी समुद्र की तह में जम जाती है इसीलिये इन्हें दोयम शिलाएँ कहते हैं।

(३) परिवर्तित-शिलाएँ—(Metamorphic Rocks) अत्यधिक तापमान तथा अत्यधिक दबाव के कारण प्राथमिक तथा दोयम शिलाओं में आंशिक या पूर्ण रूप से रासायनिक या खनिज परिवर्तन हो जाता है। इस परिवर्तन के परिणामस्वरूप बनी हुई शिलाओं को परिवर्तित शिलायें कहते हैं। शिलाओं के इन तीन प्रकारों के अन्तर्गत और भी कई प्रकार हैं।

## स्थान वर्णन—

(१) छुई पहाड़ी—जबलपुर शहर के समीप रेल्वे स्टेशन से उत्तर-पूर्व की दिशा में स्थित है। इस पहाड़ी से लगी हुई बर्न कंपनी की चीनी मिट्टी की खानें हैं। पास ही में चीनी मिट्टी का सामान तथा आग में भी सुरक्षित रहने वाली ईंटें बनाने का कारखाना है। इस काम में आने वाली मिट्टी छुई पहाड़ी से ही ली जाती है। जबलपुर केंद्रीय जेल के पिछले हाते के बाहर ही प्राचीन शिलाएँ दिखाई देती हैं। इस स्थान से पहाड़ी की ओर जाने वाली सड़क के नीचे और दोनों ओर बालू के पत्थर तथा सफेद मिट्टी की तह है। बालू के पत्थर का रंग लाल है। ये पत्थर तथा सफेद मिट्टी की तह जुरासिक काल के हैं। छुई पहाड़ी की शिलाओं का वर्गीकरण इस प्रकार से है :—

| | | |
|---|---|---|
| (ई) | ज्वालामुखी के लावा से बनी हुई चट्टानों की मिट्टी— | आधुनिक कालकी |
| (ड) | ज्वालामुखी के लावा से बनी हुई शिलाएँ—बेसाल्ट | |
| (स) | बालू की सतह<br>चूने के पत्थर की सतह नं० २.<br>छल्लेदार बालू की सतह<br>चूने के पत्थर की मुख्य सतह नं १<br>हरे रंग की बालू की सतह | लमेटा (Lameta विभाग के अन्तर्गत —क्रिटेशियस काल का उत्तरार्ध |
| (ब) | सफेद मिट्टी की सतह-चीनी मिट्टी<br>लाल बालू के पत्थर की सतह | जबलपूर विभाग के अन्तर्ग— जुरैसिक (Jurassic) काल का उत्तरार्ध |
| (अ) | अत्यंत प्राचीन काल की शिलाएँ— | आर्कियन काल |

इस पहाड़ी का दक्षिण-पूर्वी भाग बर्न कम्पनी की हद में है। इस भाग में ऊपर की सभी सतहें हटाकर ( जबलपूर विभाग के अन्तर्गत ) नीचे की चीनी मिट्टी खोदकर निकाली जाती है। इस मिट्टी से भट्टियों के फर्श और दीवारों में लगायी जाने वाली ईंटें बनायी जाती हैं। ये ईंटें भारी तापमान में भी ठीक काम देती हैं।

इस भाग में ऊपरी सभी सतहें स्पष्ट रूप से दिखायी देती हैं। इनमें तीन स्तर दोष (faults) दिखायी देते हैं। और ध्यानपूर्वक देखने से सिकुड़न भी कई जगह स्पष्ट दिखायी देती है। इस पहाड़ी के उत्तर-पश्चिम भाग

में सफेद बालू की सतह है। ये बालू कांच बनाने के काम में आती है। सफेद मिट्टी जो पास हो में मिलती है, मकानों में पुताई करने के काम में लायी जाती है। इसीसे इस पहाड़ी को छुई पहाड़ी कहते हैं।

(२) सिद्धबाला और पटबाला की पहाड़ियाँ—ये पहाड़ियाँ स्टेशन के उत्तर-पूर्व में स्थिति है। इसमें आर्कियन काल की शिलाएँ हैं। इनमें अधिकांश परिवर्त्तित हैं। इन्हें नाइस (gneiss) कहते हैं। अनावृत्तिकरण (weathering) की क्रिया से इनका आकार गोल और कहीं-कहीं अंडे की तरह हो गया है। ये शिलाएँ इमारतों की नींव भरने के काम में लायी जाती हैं।

(३) छोटा और बड़ा सिमला की पहाड़ियाँ:—ये पहाड़ियाँ जबलपूर की गनकैरेज़ फैक्टरी की दक्षिण-पूर्व दिशा में स्थित हैं। इन पहाड़ियों पर लमेटा विभाग की सभी सतहें (जिनका वर्णन पहिले किया गया है) स्थित हैं। बड़ा सिमला की पहाड़ी पर ज्वालामुखी के लावा से बनी हुई शिला का एक टुकड़ा मुख्य शिला से कुछ दूर चूने के पत्थर द्वारा घिरी हुई स्थिति में है। ऐसी स्थिति को जब नयी शिला का एक टुकड़ा, मुख्य शिला से दूर, पुरानी शिला द्वारा घिरी हुई स्थिति में हो तो नयी शिला का वह टुकड़ा बहिर्स्थित (out lier) कहलाता है। इसी पहाड़ी की पश्चिमी भाग से प्राचीन प्राणियों के शरीर के ढाँचे खोदकर निकाले गये हैं। ये जीवावशेष (Fossil) लाखों वर्ष पुराने प्राणियों के हैं। इनमें डायनोसारियन (Dinosaurian) वंश के टिटानो सारस (Titanosaurus) और मेगालोसारस (Megalosaurus) के ढाँचें उल्लेखनीय हैं।

(४) मदन महल की पहाड़ी—इस पहाड़ी में ग्रेनाइट (Granite) शिलाएँ हैं। इस ग्रेनाइट की विषेशता यह है कि इसके खनिज—फेल्सपार (Felspar), क्वार्ट्स (Quartz) और अभ्रक (mica)—के रवे (grains) काफी बड़े हैं। ये शिलाएँ बहुत कठोर होने के कारण इमारतों की नींव में तथा पुल की कोठियां बनाने के काम में लायी जाती हैं। इस शिला पर गोंडराजा मदनसिंह का "मदन महल" बना हुआ है।

## भेड़ाघाट संगमरमर की शिलाएँ (Marble Rocks Bheraghat)

भेड़ाघाट गाँव नर्मदा नदी के किनारे बसा है। यह गांव जबलपूर शहर से लगभग १६ मील दूर है। इस गाँव के पास नर्मदा नदी लमेटा विभाग की शिलाओं की सतह पर बहती हुई थोड़ी ही दूर पर धारवार (Dharwar) काल की शिलाओं पर बहती हुई आती है और यहीं पर प्रसिद्ध जल-प्रपात है। जल-प्रपात के पास नदी का मार्ग बहुत ही संकुचित हो गया है। दोनों ओर धारवार काल की शिलाएँ और उसके बीच से बहती हुई नर्मदा का सुंदर दृश्य देखते ही बनता है। ये शिलाएँ जो पहिले चूने के पत्थर की थीं—परिवर्तित होकर संगमरमर बन गयी हैं। जलप्रपात के पास ही नदी के प्रवाह को काटती हुई एक काले रंग की शिला है। यह सेतुशिला (Dyke Rock) कहलाती है। यह शिला जिस मैग्मा से बनी है, उस मैग्मा के अत्यधिक तापमान के कारण तथा उसके तत्कालीन रासायनिक प्रभाव के कारण संगमरमर की शिलाओं में और परिवर्तित होकर कहीं कहीं ऐसी शिलाएँ संगजिरे की शिलाओं में परिवर्तित हो गयी हैं। इस विभाग की धारवारी शिलाएँ अत्यंत सिकुड़ी हुई हैं। इनकी सतहें तथा सिकुड़न बहुत स्पष्ट दिखायी देती हैं। ये प्रचंड शिलाएँ एक के ऊपर एक ऐसी स्थित हैं मानों किसी पुस्तक के पन्ने एक के ऊपर एक रखकर बाद में मरोड़ दिये गये हों।

लमेटाघाट के पास ही दक्षिण दिशा की ओर (ज्वालामुखी के) लावा से बनी बेसाल्ट की शिलाएँ हैं। ये शिलाएँ लमेटा विभाग की शिलाओं के ऊपर स्थित हैं। उत्तर दिशा की ओर जबलपुर विभाग की सतहों में—बालू की शिला, रंगीन मिट्टी की सतह तथा कांग्लोमरेटिक (conglomeratic) या पिण्डीदार पत्थर की सतहें विशेष उल्लेखनीय हैं। इन सतहों के बीच कोयले की एक पतली सतह भी है। ये कोयला कच्चा है और उपयोग में नहीं लाया जाता। किसी किसी बालू की शिला पर तथा कोयले की सतह पर प्राचीन काल के पौधों की पत्तियों की छाप स्पष्ट रूप से दिखायी देती है।

पूर्व दिशा की ओर पिण्डीदार—बालू के पत्थर और लोह मिश्रित मिट्टी की सतहें हैं। इन सतहों में भी कहीं कहीं पुराने पौधों की छाप अंकित है।

भेड़ाघाट तथा लमेटा घाट में स्थित शिलाओं का अनुक्रम इस प्रकार से है :—

अनुक्रम

( ई ) बाढ़ से लायी हुई मिट्टी तथा बालू —आधुनिक

असंगति

( ड ) बेसाल्ट —क्रिटैशियस का उत्तरार्ध

( स ) लमेटा (Lameta) की शिलाएँ—क्रिटैशियस का उत्तरार्ध

( ब ) जबलपुर विभाग की शिलाएँ —जुरैसिक का उत्तरार्ध

असंगति

धारवार (Dharwar) की शिलाएँ तथा संगमरमर —आर्कियन काल

# असामान्य तत्वों के नवीन उपयोग

लेखक:— डा० रामचरण महेरोत्रा

सदैव से इस प्रकार के परिवर्तन मुझे आश्चर्य-चकित करते रहे हैं। एक पदार्थ की शीशी दीर्घकाल तक रसायनज्ञ की आलमारी को सुशोभित करती रहती है। उस पदार्थ का मानव जीवन में कोई विशेष महत्व नहीं होता, वह केवल विशेषज्ञों के कौतूहल की वस्तु रहती है। सहसा ही उसका भाग्य पल्टा खाता है और शीघ्र ही वह पदार्थ मानव जीवन के नित्य प्रयोग की वस्तु बन जाता है। हर स्थान पर, हर केन्द्र में उसकी चर्चा होने लगती है और—व्यवसायिक जगत की निगाहें उस ओर लोलुपतापूर्ण दृष्टि से देखने लगती हैं।

इस प्रकार के अनुभव नये नहीं हैं। नित्य ही ऐसे दृष्टान्त हमारे सामने आते रहते हैं। रसायनज्ञ की आलमारी में करोड़ों ऐसे यौगिक हैं जिनकी हैं उपयोगिता एक दीर्घकाल तक निहित रहती है। डी० डी० टी० का नाम आज कौन नहीं जानता, परन्तु उसके आलौकिक गुण का पता अभी निकट भूत का ही विषय है यद्यपि रसायनज्ञ इस पदार्थ से लगभग ८० वर्षों से परिचित हैं। इस प्रकार के भाग्य परिवर्त्तन यौगिकों तक ही सीमित नहीं हैं, परन्तु तत्वों में भी ऐसे दृष्टान्त दिखलाई देते हैं। तत्व तो इने गिने हैं—सब मिलाकर आज भी ९६-९७ से अधिक तत्व नहीं मालूम हैं, परन्तु इन थोड़े से तत्वों के गुणों से भी हम शताब्दियों तक अपरिचित से रहते हैं और तब तक वह तत्व बेचारा रासायनिक के कार्य का ही रहता है। सहसा ही उसके किसी अलौकिक गुण का आभास होते ही वह तत्व सर्व-साधारण के लिये अपनी उपयोगिता प्रदर्शित कर देता है।

अपने कथन की सत्यता प्रमाणित करने के लिए मुझे बहुत पुराना इतिहास नहीं उलटना पड़ेगा। सन् १९३८ तक यूरेनियम तत्व का कोई विशेष व्यापारिक महत्व न था। इसका मुख्य उपयोग काँच या चीनी मिट्टी के बर्तनों को रङ्गने में होता था। आज १० साल में ही यह तत्व कितना उपयोगी हो गया है। परमाणुक शक्ति तथा परमाणुक बम की समस्त योजना इसी पर आधारित है और प्रत्येक राष्ट्र इस तत्व को अधिक से अधिक मात्रा में पाने के लिए इच्छुक हैं। हर देश में इसके उत्पादन को नियंत्रित किया जा रहा है। १० वर्ष के छोटे काल में इस तत्व के प्रति जन-साधारण का दृष्टि कोण कितना बदल गया है। जिस वस्तु की ओर

१० वर्ष पहिले शायद ही किसी राष्ट्र की दृष्टि जाती थी वह आज प्रत्येक राष्ट्र के लिए कितनी महत्व-पूर्ण हो उठी है। यह मानव इतिहास में एक अलौकिक भाग्य परिवर्त्तन है।

इस प्रकार के अन्य उदाहरणों की भी कमी नहीं है। सामान्य तत्व फ्लोरीन को ही ले लीजिए। यह कोई अप्राप्य या कठिनता से प्राप्य तत्व नहीं है। विभिन्न खनिजों में यह तत्व बहुतायत से पाया जाता है। परन्तु कुछ काल पहिले तक यह तत्व केवल एक रसायनिक कौतूहल का विषय था और इस पदार्थ का कोई भी व्यापारिक महत्व न था। कारण भी स्पष्ट है। यह इतना क्रियाशील पदार्थ है कि इससे कार्य करना बड़ा ही कठिन कार्य्य था। यह लगभग किसी भी वस्तु से प्रक्रिया करने लगता है। कागज, काँच, कपड़ा और ज्यादातर धातुएँ इसके छूते ही जल उठती हैं। शरीर पर यह गहरे और देर में अच्छे होने वाले घाव कर देता है। सबसे बड़ा प्रश्न यह था कि इस पदार्थ को किस बर्तन में जमा किया जाये कि इसके साथ प्रयोग करना सम्भव हो सके।

युद्ध ने फ्लोरीन के उपर्युक्त चित्र को ही बदल दिया। इंजीनियर अन्त में एक ऐसे हौज़ बनाने में सफल हुए जिसमें यह पदार्थ बिना क्रिया किये एकत्रित किया जा सकता है। फिर टनों में इसका प्रयोग होने लगा और आज फ्लोरीन का व्यापारिक क्षेत्रों में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। विशिष्ट कैटेलेटिक एजेण्टों की उपस्थिति में यह कार्बन के यौगिक फ्लुओरोकार्बन देता है। इन फ्लुओरोकार्बनों की उपयोगिता अलौकिक नवीन गुण वाले तेलों, रबर, प्लास्टिक आदि के रूप में बहुत तेजी से बढ़ रही है।

जर्मेनियम भी एक ऐसा ही तत्व है। यह वस्तु भी निकट भूतकाल में केवल रसायनज्ञ के प्रयोग की वस्तु थी परन्तु आज इसकी उपयोगिता तेज गति से बढ़ रही है। जर्मेनियम एक अर्द्धधातु या मेटेलायड पदार्थ है और इसमें धातु तथा अधातु दोनों ही के गुण विद्यमान हैं। इसका सबसे अलौकिक गुण यह है कि यदि इसे आलटरनैटिङ्ग करेण्ट में रख दिया जाये तो यह उस विद्युत धारा को डिरेक्ट करेण्ट में परिवर्तित कर देती है। इसी कार्य्य को बहुत से उपकरणों में रेडियो वाल्वों द्वारा किया जाता है। युद्ध में इस पदार्थ के इस गुण का बहुत ही विस्तृत प्रयोग राडर टेलीविजन, आदि में किया गया और रेडियो के इञ्जिनियरों का कथन है कि शीघ्र ही ऐसे रेडियो बनने लगेंगे जिनमें वाल्वों के स्थान पर जर्मेनियम के मणिभ प्रयुक्त किये जायेंगे। इस नये प्रयोग से रेडियो सेट बहुत छोटे, हल्के तथा ज्यादा टिकाऊ हो जायेंगे।

तत्व पोलोनियम की उपयोगिता भी आजकल तेजी से बढ़ रही है और सबसे आश्चर्य की बात यह है कि इन सब उपयोगों में प्रयुक्त होने के बाद भी इस तात्विक पदार्थ की केवल इतनी थोड़ी मात्रा ली जाती है कि किसी ने आज तक इस तत्व को अपनी आँख से नहीं देख पाया है।

पोलोनियम एक ऐसा तत्व है जो रेडियो-सक्रियता के कारण रेडियम के परमाणुओं के विध्वंस से बनता है और इसके परमाणु स्वयं रेडियो-सक्रिय होते हैं। इस सक्रियता के कारण यह वैद्युत् विकिरण देता है और इसी गुण के आधार पर इसका मुख्य प्रयोग अवलम्बित है। मशीनों आदि में घर्षण के कारण प्रायः बिजली पैदा हो जाती है और यदि यह उनसे हटाई न जाए तो कभी-कभी आग लग जाने का डर रहता है। यदि मशीन पर पोलोनियम की बहुत थोड़ी मात्रा भी लगी हो तो इसके परमाणु आस-पास की वायु को विद्युत् वाहक बना देते हैं और इस प्रकार पोलोनियम की उपस्थिति में वायु इस उत्पादित बिजली को बहा ले जाती है। इस प्रकार मशीन को विद्युत् रहित करने के लिये निकेल या किसी अन्य धातु की एक ऐसी प्लेट मशीन के किसी कोने में लगा दी जाती है जिस पर पोलोनियम द्वारा कलई की गई है। इस कार्य्य को सम्पन्न करने के लिये पोलोनियम की बहुत ही सूक्ष्म मात्रा की आवश्यकता होती है और दूसरी आवश्यक बात यह है कि इस तत्व के विकिरणों से आस-पास के मनुष्यों को कोई हानि नहीं पहुँचती। इस प्रकार इस उपयोगी तत्व की एक अदृश्य मात्रा हमारे कारखानों

को अग्नि आदि से सुरक्षित रखती है।

इण्डियम एक ऐसे अन्य तत्व का उदाहरण है जिसके उपयोगों से हम हाल ही में परिचित हुए हैं। कुछ ही काल पहले रसायन शास्त्र की सब पुस्तकों में इण्डियम के बारे में लिखा जाता था कि यह एक ऐसी धातु है जिसका कोई उपयोग आज तक मानव समाज के लिए सम्भव नहीं है। आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि युद्धकाल में यह तत्व एक महत्वपूर्ण भाग ले रहा था। इण्डियम एल्यूमिनियम के समूह का एक तत्व है और गुणों में सीसे से समानता रखता है, परन्तु इसका मुख्य गुण— जिसने इस निरर्थक समझे जाने वाले तत्व को भी उपयोगिता प्रदान की है— यह है कि इस पर वायु, पानी, तेजाब आदि किसी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। मशीनों में एक यह कठिनाई दीर्घकाल से चली आती है कि उनमें प्रयुक्त ग्रीज आदि में जो तेजाब होते हैं वे उसके बाल बियरिङ्ग को काट देते हैं और किस समय मशीन काम करना बन्द कर देगी यह कहना कठिन होता है। युद्ध में मशीनों के इस अवगुण पर विजय पाने को बहुत आवश्यकता हुई, क्योंकि प्रायः वायुयान की मशीनों क्षणिक असफलता युद्ध के चित्र को ही परिवर्तित कर सकती है। वैज्ञानिकों ने इस तत्व की शरण ली और बाल बियरिङ्ग आदि ऐसे भागों के ऊपर इस धातु की कलई की गई तो उन पर साधारणतया किसी भी तेजाब आदि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रायः विज्ञान तेजी के साथ बढ़ता जाता है और प्रयोगशालों में उत्पादित इन तात्विक पदार्थों को 'निरर्थक' का लेबिल दे देता है, फिर सहसा ही कोई कुशल वैज्ञानिक पीछे घूमकर इन निरर्थक तत्वों के भी कुछ उपयोगी गुण का पता लगाता है और शीघ्र ही इस गवेषणा से प्रायः अपने भाग्य तथा उस निरर्थक तत्व के भाग्य दोनों को ही परिवर्तित कर देता है।

---

# उदजनीकरण का प्रवर्त्तक

लेखक : श्री मदनमोहन, प्रयाग विश्वविद्यालय

भौतिक शास्त्रविद ही आधुनिक विज्ञान के रङ्गमञ्च का प्रधान पात्र है, जबकि अब तक रसायनाचार्य ही था। जबसे बीसवीं शताब्दी में रसायन शास्त्र द्वारा प्राकृतिक पदार्थों का कृत्रिम निर्माण सम्भव हो गया है तब से वह लगभग अर्द्धशताब्दी तक अन्धकारावरण में अदृश्य रहा। यद्यपि वह अपूर्व परमाणु शक्ति का अन्वेषण कर चुका है जिसके द्वारा इतर मानव-समाज विशिष्ट रूप से प्रभावित भी है। तथापि तथ्य यह है कि हम आज भी संश्लेषणात्मक रुई, रेशम, तेल, रबर, सुगन्ध, भूवरिक्त, खाद्यान्न ही नहीं बल्कि संश्लेषणात्मक विटामिन एवं शरीरस्थ शक्तितत्त्व के युग में निवास कर रहे हैं।

वस्तुतः यह एक विचारणीय गूढ़ विषय है कि इन नवीन अनुसन्धानों ने हमारे दैनिक जीवन को कहाँ तक प्रभावित किया है और उसे क्या रूप दिया है। साथ ही हमें इस बात पर ध्यान देना है कि हम कहाँ तक रासायनिक संश्लेषण और अधिक शुद्ध तथा स्पष्टतया प्रवर्त्तकीय संश्लेषण के युग में निवास करते हैं। कारण, स्पष्ट है कि बिना प्रवर्त्तकों के प्रयोग किये हुए बहुतसी संश्लेषणात्मक विधियाँ ऐसी हैं जिनसे अधिक परिमाण में रासायनिक पदार्थ निर्माण किये जाते है और जिनके परिणाम स्वरूप विगत पचास वर्षों में रासायनिक उद्योग-धन्धों में जो आश्चर्यजनक उन्नति हुई है वह असम्भव ही नहीं प्रत्युत अव्यावहारिक भी हो जाती। यथार्थ में, इस प्रयोगशालिक रासायनिक संश्लेषण को इतने उच्च-कोटि के उद्योग धन्धों में उन्नत करने का एकमेव कारण प्रवर्त्तन-विकास में ही अन्तर्निहित है।

सन् १८११ ई० में करचौफ़ महोदय ने ही सर्व प्रथम वैज्ञानिक ढंग से ऐसी रासायनिक प्रक्रियाओं के

मर्म को ज्ञात किया जो केवल ऐसे पदार्थों की उपस्थिति से सञ्चालित अथवा वृद्धिगत होती हैं जो प्रत्यक्ष रूप से उस प्रक्रिया विशेष में कोई भाग नहीं लेते प्रतीत होते। सन् १८३६ ई० में बरज़ीलियस ने ही सर्वप्रथम प्रवर्त्तन शब्द की परिभाषा की। निस्सन्देह, प्रवर्त्तकीय प्रक्रियात्मक घटनाओं की संख्या १९वीं शताब्दी में क्रमशः उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई किन्तु उनकी आधार-शिला पूर्णरूपेण सैद्धांतिक ही थी, व्यवहारिक नहीं। फ्रान्सीसी रसायनज्ञ Pane Sabatier ने सन् १८९७ ई० में तद्विषयक अनुसन्धान को प्रयोग प्रारम्भ किये जो लगभग ३० वर्षों के अथक परिश्रम के उपरान्त प्रवर्त्तकीय रसायन में एक नवीन युग के सूत्रपात के कारण हुये। यह उसीके अन्वेषणों का परिणाम था कि ऐसी सैद्धान्तिक प्रक्रियाओं को जो केवल प्रयोगशालाओं तक ही सीमित थीं उन्हें वास्तविक और व्यवहारिक रूप दिया जिसके फल-स्वरूप वर्त्तमान औद्योगिक एवं व्यावसायिक जगत में एक क्रान्ति सी मच गई।

यद्यपि Sabatier ने कार्बनिक तथा अकार्बनिक दोनों ही रसायनों में समान रूप से कार्य किया तथापि कार्बनिक रसायन में विशेषतः अधिक कार्य किया और उसमें भी उसके कार्य-विषय का स्फूर्ति-केन्द्र कार्बनिक यौगिकों का प्रवर्त्तकीय उदजनीकरण था। उन्होंने यह भी प्रमाणित कर दिया कि बहुत सी धातुयें निकिल, कोबाल्ट, लोहा, ताँबा और प्लेटीनम आदि अपनी सुविच्छिन्नावस्था में उदजनीकरण की प्रक्रिया में सर्व श्रेष्ठ कार्य कर सकते हैं। उदजनीकरण के अतिरिक्त भी उन्होंने प्रवर्त्तन सम्बन्धी अन्य अनेक परीक्षण किये और उनके आधार पर अनेकों प्रवर्त्तकों की शक्ति को ज्ञात किया जिसमें Thoria विशेष उल्लेखनीय है। अपने प्रमुख शिष्यों— Abbe Senderens, Mailhe, Murat, Espil और Gaudian की सहायता से उन्होंने शतशः विभिन्न प्रकार की क्रियाओं का अध्ययन किया जिनमें उदजनीकरण तथा उदजनीहरण की क्रियाएँ हो प्रधान थीं।

Sabatier के अनुसन्धानों में सर्वश्रेष्ठ और ज्वलन्त दृष्टान्त सुचयित प्रवर्त्तन का है। उदाहरणार्थ, फोर्मिकाम्ल (Formic Acid) का विच्छेदन दो प्रकार से निर्दिष्ट किया जा सकता है— (१) धातुओं को प्रवर्त्तक के समान प्रयोग करने से कार्बन-द्वि-ओषद् तथा उदजन में; (२) जल वियोजक ओषदों Oxides के प्रवर्त्तक के रूप में प्रयोग करने से कार्बनेक ओषद (CO) तथा पानी में। इसका अनुसंधान (Sabatier) के प्रवर्त्तकीय-प्रक्रिया के रहस्य सम्बन्धी विचारो से ही अनुप्राणित है। वे तत्कालीन प्रचलित प्रवर्त्तन के भौतिक-सिद्धान्त में विश्वास नहीं करते थे प्रत्युत रसायनिक-सिद्धान्त के पक्ष में थे और उसीका समर्थन भी करते थे। उनका विश्वास था कि सर्वत्र प्रवर्त्तक ही किन्हीं एक प्रतिकारकों अथवा प्रतिक्रिया जनित पदार्थों से रासायनिक संयोग करके एक क्षणिक अस्थायी यौगिक का सृजन करते हैं जो मध्यवर्ती प्रतिक्रिया का एक अंश होता है। अतएव इससे स्पष्ट है कि प्रवर्त्तक के रासायनिक-संयोग का यह गुण ही प्रतिक्रिया के दिशा-निर्देशन का मूल कारण है।

उन्होंने ही सर्वप्रथम आजकल कहे जाने वाले (Promotors) की ओर अपना ध्यान आकर्षित किया अर्थात् ऐसे पदार्थों की ओर जो यदि प्रवर्त्तकों में जोड़ दिये जायँ तो उनकी शक्ति में और अधिक वृद्धि कर दें।

Sabatier के अन्वेषणों में उपकरण की असाधारण सामान्यता ही उत्कृष्टता है। केवल मात्र काँच की एक नालिका जिसमें प्रवर्त्तक की एक पतली सी पर्त्त थी उनका उपकरण था। उस नालिका का एक मुँह द्वि-मार्ग युक्त— एक उदजन और दूसरा निरीक्षण करने के लिये द्रव या गैस के प्रचलन के हेतु डाट से बन्द किया हुआ था। नालिका का दूसरा मुँह एक दूसरी डाट से बन्द था जिसमें प्रतिक्रिया-जनित पदार्थों के बहिर्निष्कासन के लिये एक मार्ग था। इसी समान्य उपकरण से ही (Sabatier) ने प्रवर्त्तकीय उदजनीकरण विधि को ज्ञात किया जो रसायन में एक महत्त्वपूर्ण अध्याय का सदैव प्रतिनिधित्व करेगी।

विशुद्ध विज्ञान के प्रति इन अनुसंधानों की महत्ता तो है ही, परन्तु इसके अतिरिक्त इनके द्वारा अनेक ऐसे व्यापक निष्कर्षों पर पहुँचाया जा सकता है जो प्रत्यक्ष

या अप्रत्यक्ष रूप से व्यवहारिक-क्षेत्र में अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं।

प्रत्यक्ष रूप से, इन अनुसंधानों का उपयोग औद्योगिक एवं व्यावसायिक क्षेत्र में अनायास ही सिद्ध हो गया। इनके परिणाम-स्वरूप ही विशुद्ध रासायनिक कला में ऐसिटिकाम्ल (Acetic Acid) तथा ऐसीटोन (Acetone) इत्यादि अनेक यौगिकों के बृहत् परिमाण में निर्माण करने की सरल विधियाँ ज्ञात की जा सकीं। प्रवर्त्तकीय उदजनीकरण-विधि का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण उपयोग तेलों के विशुद्धीकरण और फिर उन्हें जमाने की कला के व्यवसाय के स्थापन में हुआ है। इस कला का ज्ञान अर्वाचीन युग में कृत्रिम घृत तथा साबुन निर्माण के लिये अत्यन्त आवश्यक है। वानस्पतिक तेल एवं पाशविक चर्बी में जो साधारण तापक्रम पर द्रव पदार्थ हैं (जो कृत्रिम घृत तथा साबुन निर्माण के लिये कच्चे-माल की तरह प्रयुक्त होती है) ठोस चर्बी से केवल इतनी ही भिन्न हैं कि उनमें उद्रजन की मात्रा न्यूनतर है। अतः इन वानस्पतिक द्रवीय तेलों को ठोस चर्बी में परिणित करने का एकमेव उपाय उनका सुविच्छिन्न निकिल की उपस्थिति में उदजनीकरण है। वर्त्तमान युग में वनस्पति घी की जितनी खपत है, उस सब की पूर्ति Sabatier की विधि द्वारा निर्माण कर ही की जाती है।

पेट्रोलियम के विशुद्धीकरण तथा उच्च-श्रेणी के ईंधन और यान्त्रिक तेल की प्रवर्त्तकीय उदजनीकरण विधि का विकास भी इसी विधि का अन्य महत्त्व-पूर्ण परिणाम है।

इन प्रत्यक्ष परिणामों से भी अधिक उपयोगी Sabatier के कला-कौशल में प्रयुक्त होने वाली प्रवर्त्तकीय विधियों के सर्वाङ्गीण विकास सम्बन्धी अप्रत्यक्ष परिणाम है। इस फ्रान्सीसी रसायनज्ञ ने एक ही विधि से २०० से अधिक उदजनीकरण के भिन्न-भिन्न उदाहरण प्रस्तुत किये और उनके द्वारा प्रवर्त्तकीय विधियों की महान उपादेयता को प्रमाणित किया। इस प्रकार उन्होंने औद्योगिक क्षेत्र में प्रवर्त्तक के अनेक अज्ञात किन्तु महत्त्वपूर्ण उपयोगिताओं को सम्भाव्य बतलाकर अन्वेषकों की आँखें खोल दीं। कुछ वर्षों के अनुसन्धान के उपरांत Sabatier ने अपने प्रार्थमिक प्रायोगिक परिणामों को प्रकाशित किया जिसके फल-स्वरूप Ostwald ने एमोनिया Ammonia गैस के प्रवर्त्तकीय ओषदीकरण पर प्रयोग करने प्रारम्भ किये, और Haber ने Ammonia के प्रवर्त्तकीय संश्लेषण पर। इन दोनों के अनवरत प्रयत्नों ने वायु मंडलीय नत्रजन (Nitrogen) की भौतिक उपादेयता की कला का श्रीगणेश किया। अस्तु! यह भी निर्विवाद सत्य होने के कारण हमें स्वीकार करना होगा कि Sabatier के अनुसन्धानों ने समन्वयात्मक पेट्रोलियम-जनित पदार्थों के निर्माण की औद्योगिक विधियों को भी यथेष्ट प्रोत्साहन दिया। Sebatier ने स्वयं Acetylene गैस के निकिल की उपस्थिति में और भिन्न-भिन्न तापक्रमों पर उदजनीकरण तथा संहनन के द्वारा पेट्रोलियम के मुख्य प्रकारों Pensyevauions Caucasion और गैलिशियन संश्लेषण किया। यद्यपि यह विधि औद्योगिक क्षेत्र में अधिक उपादेय न सिद्ध हो सकी तथापि निस्सन्देह इसने Bergius एवं Fischer-Tropsch की विधियों में सुपर्याप्त परिष्कार किया। पहली विधि Heavy-oil के साथ लेई या लुग्दी बने हुये कोयले के एक विशेष दबाव में प्रवर्त्तकीय उदजनीकरण में है और दूसरी कार्बन एक ओषद का प्रवर्त्तकीय उदजनीकरण का विधान है। किन्तु इन दोनों विधानों का स्फूर्ति-केन्द्र Sabatier के मूल्यवान प्रायोगिक परिणाम ही हैं।

वस्तुतः, यदि एक प्रकार से देखा जाय तो प्रवर्त्तकीय विधियों के इस द्रुत विकास में Sabateir ने स्वयं एक प्रवर्त्तक का काम किया है। उनके अनुसन्धान उद्योग तथा कला कौशल के क्षेत्र में अद्भुत उन्नति के हेतु सिद्ध हुये। इस कारण वे आधुनिक प्रवर्त्तकीय रसायन के जन्मदाताओं में से एक हैं।

उनका ५ नव० १८५४ को शुभजन्म एक १००० वर्ष प्राचीन विलक्षण मध्ययुगीन नगर में हुआ। नगर की एक पाठशाला में ही उनकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध था। तदन्तर प्रतियोगितात्मक प्रवेश-परीक्षा की तैयारी के लिये Toulouse Ecob के विद्यालय में भर्ती

हो गये। वहाँ उनके विषय Ecole Polytechnique और Normale थे जो फ्रान्स के विद्यालयों सबसे कठिन समझे जाते थे। २० वर्ष इस अल्पायु में वे इस परीक्षा में पूर्णतः उत्तीर्ण हुये और दोनों विषयों में क्रमशः १८वीं और ४था स्थान भी उपलब्ध किया। Ecole Nermale को अपनी उच्च-शिक्षार्थ विषय रखा और Agrege des Sciences Physiques की परीक्षा में सर्वप्रथम उत्तीर्ण हुये। इस विशेष योग्यता से यह प्रगट ही था कि वे शीघ्र ही फैकल्टी के सदस्य हो जायेंगे।

Nimes की एक कालिज में वे एक वर्ष तक प्रोफ़ेसर रहे। तत्पश्चात् वे पेरिस के De France College के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक Bethelot के संरक्षता में कार्य करने के लिये चले गये और वहीं १८८० में उन्होंने धातुवीय सलफाइडों पर डाक्टरेट की पदवी के लिये अपनी थीसिस भी प्रस्तुत की। तुरन्त ही इसके बाद Bordeaux के विश्वविद्यालय में उन्हें भौतिक शास्त्र में रीडर के पद पर नियुक्त किया गया और शीघ्र ही पुनः Toulouse की यूनीवर्सिटी में इसी पद पर उनका तबादला कर दिया गया। जहाँ वे ३० वर्ष की अवस्था में रसयान के प्रोफेसर हो गये।

उस समय तक और उससे भी बारह वर्ष आगे तक उनकी अभिरुचि विशेषतः अकार्बनिक रसायन ही रही। उन्हें पीछे इस बात का अनुभव हुआ कि यदि कोई उनके विद्यार्थी-काल में उनका सही मार्ग-दर्शन करता और उनको यह बता देता कि वे कार्बनिक रसायन में अधिक महत्वपूर्ण कार्य कर सकते हैं तो वे इन २० वर्षों में आश्चर्य जनक कार्य कर सकते थे। वे प्रायः अपने अध्ययन काल के कुछ संस्मरण कि उनका ध्यान प्रवर्त्तकीय-प्रक्रियाओं की ओर किस प्रकार आकृष्ट हुआ, अपने ज्येष्ठ शिष्यों को सुनाते थे। American Chemical Society को भी १९२६ में उन्होंने अपने क्रम-विकास की गाथा सुनाई।

Sabatier के प्र० उद्जनीकरण-सम्बन्धित अन्वेषणों का स्फूर्ति-केन्द्र १८९० में Moud, Langer और Quinake कृत निरीक्षण—अपने आक्साइडों के लघ्वीकरण Reduction से निर्मित निकिल अथवा लोहा अपनी सुविच्छिन्नावस्था में Carbon monoxide से संयोग करके निकिल या लोहे के Corbonyl बनाते हैं, था। इस प्रयोग से ही निकिल निकालने की मौन्ड-विधि का आविष्कार हुआ। इस प्रयोग से ही प्रेरित हो सैबेटियर ने यह खोज की कि क्या गैस के अन्य असंतृप्त अणु उसी प्रकार निकिल अथवा लोहे पर आरूढ़ स्थित किये जा सकते हैं। Jean Baptiste Senderens की सहायता से नाइट्रिक आक्साइड और नाइट्रस आक्साइड के साथ इस विषय में जो प्रयोग किये गये थे व्यर्थ निष्फल हो गये, किन्तु यह अवश्य ही ज्ञात हो गया कि नाइट्रोजन परआक्साइड शीघ्र ही लघ्वीकृत ताम्र पर स्थित की जा सकती है।

ये प्रयोग १८९६ में सम्पूर्ण हो पाये। तदनन्तर Sebatier उन्हीं धातुओं पर ऐसिटिलीन गैस को भी स्थित करने के लिये प्रयत्नशील हो गये। तुरन्त ही उन्हें एक विश्वस्त सूत्र से पता चला कि ठीक यही प्रयोग (जिसे वे स्वयं करना चाहते थे) Moisson और Moureu नामक दो वैज्ञानिकों ने तभी कर डाले हैं।

इन दोनो वैज्ञानिकों ने यह ज्ञात कर लिया था कि लोहा, निकिल और कौबाल्ट (जो शीघ्र ही उदजन द्वारा उनके आक्साइडों के लघ्वीकरण से प्राप्त किये गये हैं) पर ऐसिटिलीन गैस के प्रभाव से तापक्रम बढ़ जाता है जिसके फलस्वरूप ऐसिटिलीनका एक बहुतबड़ा भागकार्बन और उदजन में विभाजित हो जाता था। इसके अतिरिक्त प्रभुनावयवीकरण (Polymerisation) द्वारा गैस का अवशिष्ट भाग बेंजीन और चक्रीय हाइड्रो-कार्बनों में परिणत हो जाता था। इनकी धारणा थी कि वे छिद्र-युक्त धातुयें ऐसिटिलीन गैस का अवशोषण कर लेती हैं और उसके कारण इतनी गर्मी उत्पन्न होती है कि जो गैस के विनष्टीकरण तथा प्रभुनावयवीकरण के लिये यथेष्ट होती है। किन्तु उन्होंने इस प्रक्रिया का अध्ययन इतना अल्प किया कि वे इस प्रक्रिया-जनित गैसीय अथवा द्रवीय पदार्थों का भली प्रकार विश्लेषण न कर सके। यदि उन्होंने ऐसा कर लिया होता तो उन्हें यह ज्ञात हो गया होता कि उदजन अत्यल्प तथा संतृप्त-हाइड्रोकारबन

अत्यधिक मात्रा में विद्यमान हैं। इसके अतिरिक्त यदि उन्होंने धातवीय आक्साइडों को लध्वीकृत करने के उपरान्त उदजन को निकाल देने का भी ध्यान रख लेते तो उन्हें यह पता चल गया होता कि ऐसीटिलीन गैस के प्रवाह से साधारण तापक्रम पर स्वयं-ज्वलन उत्पन्न नहीं होता।

सैबेटियर जानते थे कि निकिल पर ऐसीटिलीन का स्थितिकरण असम्भव है अतः Morisson एवं Moureu के विशुद्ध भौतिक मत से सर्वथा असन्तुष्ट थे। प्रवर्तन के रासायनिक सिद्धान्त में आस्था रखते हुए, उन्हें ज्ञात हुआ कि इस प्रक्रिया का कारण निकिल की ऐसिटिलीन कार्बन अथवा उदजन जो ऐसीटिलीन के विभाजन से उद्भूत होती है के प्रति रासायनिक प्रीति ही है। वे इन प्रयोगों को करने के लिये कृत-संकल्प थे और जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि Moisson तथा Moureu इन प्रयोगों को नहीं कर रहे हैं तो १८९० में उन्होंने इनको प्रारम्भ करने का निश्चय किया। इस बार उन्होंने ऐसिटिलीन के साथ नहीं वरन् इथिलीन के साथ कार्यारम्भ किया जो ऐसिटिलीन की अपेक्षा कम प्रभावोत्पादक है। अब भी वे निकिल पर इथिलीन के स्थितिकरण का विचार कर रहे थे जिसके परिणामस्वरूप निकिल—कारबोनाइल के समकक्ष ही कोई यौगिक हो।

जब सारडेन्स के साथ सैबेटियर ने लध्वीकृत निकिल पर इथिलीन की एक धारा प्रवाहित की तो उन्होंने देखा कि जब तक तापक्रम ३००° सैन्टीग्रेड नहीं हो गया तब तक कोई क्रिया नहीं हुई। ३००° सैन्टी० पर निकिल बड़ा ज्वलनशील हो गया और इथिलीन उदजन और कार्बन में विभक्त हो गई। परन्तु नली से जो गैस निकलती थी वह मुख्यतः उदजन तथा इथेन गैस ही थी। अतः इससे स्पष्ट ही है कि जो अविभाजित इथिलीन गैस शेष रह गई थी वही इथेन में उदजनीकरण के फलस्वरूप परिणित हो गई और इथिलीन गैस का उदजनीकरण निकिल की उपस्थिति में और भी अधिक वर्द्धमान हो गया। इस तथ्य की सत्यता की परख दोनों वैज्ञानिकों ने इथिलीन और उद्रजन गैसों के समान आयतन को लध्वीकृत निकिल पर प्रवाहित करने से ३०° से लेकर ४०° सैन्टी० तक विशुद्ध इथेन प्राप्त कर की।

इसके दूसरे ही वर्ष उन्हें यह ज्ञात हुआ कि लध्वीकृत निकिल और इससे कुछ कम अंशों में सुविच्छिन्न कोबाल्ट लोहा, ताँबा और प्लैटिनम सब के अन्दर ही ऐसिटिलीन गैस के उदजनीकरण के निमित्त प्रवर्त्तक होने की समान समान शक्ति विभान है। साधारण तापक्रम पर ऐसिटिलीन इथिलीन अथवा इथेन में उदजनीभूत की जा सकती है।

तब यह प्रश्न उठा कि निकिल की उदजनीकरण की शक्ति क्या सर्वतोमुखी है? दोनों वैज्ञानिकों ने इसका निश्चित रूप से निर्णय करने के लिए की बेंजीन को साइक्लोहैक्सेन में परिणित करने का प्रयत्न किया। यह उदजनी करण का एक विशिष्ट कठिन उदाहरण है जो इसके पूर्व कभी नहीं अनुभव किया गया। इसका प्रयोग पूर्ण रूपेण सफल हो गया। ३० वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी सैबेटियर को नैराश्य की वे घड़ियाँ स्मरण थीं जब उन्होंने अपना प्रयोग आरम्भ किया था किन्तु उन्हें उसके अन्दर कोई क्रिया ही नहीं दृष्टिगत होती थी। किन्तु अब उन्होंने नली को खोला तो साइक्लोहैक्सेन की विशिष्ट गन्ध अपार हर्ष के साथ सूंघी।

यथार्थ में वे प्रवर्त्तक, बेंजीन तथा उद्रजन को विशुद्ध प्राप्त करने में सौभाग्यशाली थे। यदि उनमें कहीं क्लोरीन, ब्रोमीन, आयोडीन आदि प्रवर्तकीय विष मिले होते और इस कारण वे अशुद्ध होते तो उदजनीकरण असम्भव था और विशेषकर जब कि निकिल ऐसे ही प्रवर्त्तकीय विषों से व्याप्त रहती। ऐसी स्थिति में उस समय यही परिणाम निकाला जाता कि यह उदजनीकरण निकिल की उपस्थिति में नहीं होता। यह प्रथम अवसर था जब कि साइक्लोहैक्सेन अकस्मात् ही विशुद्ध अवस्था में पृथक किया जा सका।

निकिल का उदजनीकरण के सार्वभौम प्रवर्त्तक होने का तथ्य सिद्ध हो ही चुका था; अब तो केवल उसकी अन्य भिन्न-भिन्न यौगिकों के साथ परख करना ही शेष रह गया था।

सैबेटियर की प्रवर्त्तकीय—उदजनीकरण की यह खोज इस बात का ज्वलंत प्रमाण है कि विज्ञान की खोज

में किस प्रकार संयोगवश ही इतने महत्त्व-पूर्ण वैज्ञानिक-अन्वेषण हो जाया करते हैं। सैबेटियर महोदय के प्रयोगों का विषय प्रवर्त्तन न था और न ही था प्रवर्त्तकीय उदजनीकरण; किन्तु उनकी खोज का उद्देश्य था असंतृप्त गैसाणुओं का निकिल और लोहे पर स्थितिकरण की सम्भावना। इसी विषय पर अनुसन्धान करते हुए उन्हें सुविच्छिन्न धातुओं की प्रवर्तकीय शक्ति का ज्ञान हुआ। इस तथ्य का अनुसन्धान जब मोंइजन जैसा दक्ष और कुशल वैज्ञानिक नहीं कर सका तो इससे अधिक और क्या आश्चर्य हो सकता है कि उसको अकस्मात् ही सैबेटियर ने खोज निकाला।

इस खोज के उपरान्त कार्बनिक यौगिकों के उदजनीकरण की ओर सैबेटियर महोदय का ध्यान आकृष्ट हुआ। किन्तु सैबेटियर को तद्विषयक प्रयोग करने में ३० वर्ष की जो लम्बी अवधि लगी वह इस बात का द्योतक है कि उन्होंने अपनी खोजों की आधार-शिला औद्योगिक एवं व्यावसायिक उपादेयता पर ही रखी। सन् १६०३ में वारिङ्गटन के क्रौसले नामक एक अंग्रेज ने सैबेटियर को तेलों के कठोरीकरण का सुझाव दिया जिससे उनकी बहुमूल्य खोजों का व्यवहारिक जगत में उपयोग किया जा सके।

क्रौसले को शङ्का हुई कि क्या निकिल द्रवीय तेलों को उदजनीकरण के द्वारा ठोस चर्बी में परिवर्तित करने के लिए उपयुक्त प्रवर्त्तक सिद्ध होगा? सैबेटियर ने प्रवर्त्तन की प्रक्रिया के सिद्धान्त पर आस्था रख "हाँ" में उत्तर दे दिया। प्रवर्त्तन के रसायनिक सिद्धान्त में विश्वास रखते हुए उन्होंने यह निरीक्षण किया कि उदजनीकरण की प्रक्रिया में निकिल हाइड्राइड बनता है जो विभाजित होने पर उदजन को स्वतन्त्र कर देता है जिसे तद्ग्राही पदार्थ अवशोषित कर लेते हैं और इस प्रकार निकिल पुनः अपनी पूर्वावस्था में आ जाती है और फिर उदजन से संयोग कर निकिल-हाइड्राइड निर्माण करती है। यही क्रम इस प्रकार चलता रहता है। सैबेटियर के इस आनुमानिक सिद्धान्त की परिपुष्टि अन्य वैज्ञानिकों ने भी निकिल-हाइड्राइड बना कर की जिसमें उदजनीकरण की अपूर्व शक्ति विद्यमान है। प्रवर्त्तन के रासायनिक सिद्धान्त में ऐसी कोई भी बात नहीं थी जो द्रवों के उदजनीकरण से असङ्गत हो। इसी आधार पर द्रव में डूबा हुआ सुविच्छिन्न निकिल उदजन के सम्पर्क में निकिल हाइड्राइड में परिवर्तित हो जाता था। अतएव सैबेटियर का परिवर्तन यह निष्कर्ष पूर्णतः युक्तियुक्त ही था। इससे स्पष्ट ही है कि द्रवों का प्रवर्त्तक उदजनीकरण प्रवर्त्तन के भौतिक सिद्धान्त के आधार पर असम्भव तथा असङ्गत है क्योंकि इस सिद्धान्त के अनुसार गैस प्रवर्त्तक के छिद्रों के साथ प्रवर्त्तक शक्ति प्राप्त करती है।

यहाँ से इस प्रकार तेलों के कठोरीकरण के इस विशाल व्यवसाय का श्री गणेश हुआ किन्तु सैबेटियर ने कदापि अपने इस अनुसन्धान से धन संचय नहीं किया।

उनकी ख्याति निरन्तर उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही थी। सन् १६०१ में Academy of Sciences के वे सदस्य निर्वाचित हुए, सन् १६०५ Toulouse विश्वविद्यालय में विज्ञान विभाग के अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित किये गए। उनकी यश कीर्त्ति चहुंओर व्याप्त हो गई और मौइजन की मृत्यु होने पर १६०७ में उन्होंने सौरबौन में रसायन के अध्यक्ष पद को सुशोभित करने के लिए आग्रह किया गया किन्तु उन्होंने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। इसके कुछ ही पश्चात् College de france में बर्थोले की मृत्यु द्वारा रिक्त अध्यक्ष के आसन को ग्रहण करने के लिए कहा गया किन्तु उन्होंने इसे भी अस्वीकार किया। इससे १ वर्ष पूर्व उन्होंने Toulouse की यूनीवर्सिटी में Institute of Engineering chemistry नामक एक संस्था स्थापित की थी जहाँ रसायन के इंजीनियरों को शिक्षा दी जाती थी। बर्थोले आदि के उच्च पद उन्हें यूनीवर्सिटी के प्रेम से विचलित न कर सके।

तात्कालिक प्रचलित विधान के अनुसार वे इस प्रकार की अस्वीकार से Academy of Sciences के पूर्ण सदस्य नहीं हो सकते थे। किन्तु १६१२ में उस नियम में संशोधन किया गया और इस प्रकार सैबेटियर एवं ग्रिगनार्ड को साथ-साथ नोबेल-पुरस्कार प्रदान किया गया। उसी वर्ष उन्होंने अपनी पत्रिका ea Catalyse en chime organipue प्रकाशित का।

इसके उपरान्त भी उन्हें अनेक सोसाइटियों द्वारा सम्मानित किया गया। १६१५ में रायल सोसायटी का डेवी— पदक भी आपको पुरस्कार-स्वरूप दिया गया। इसके तीन वर्ष पश्चात् वे रायल सोसायटी के वैदेशिक सदस्य भी बनाये गये। इसके अतिरिक्त वे एम्सटर्डम, वाशिंगटन, रोम, स्टाकहोम तथा मैड्रिड की ऐकेडेमीज के भी वैदेशिक सदस्य बनाये गये।

जहाँ तक अनुसन्धानिक-कार्य का सम्बन्ध है, बीसवीं शताब्दी के मध्य में उनका क्रियात्मक-जीवन समाप्त हो गया। तब से उन्होंने अपने संस्थापित रसायन-शिक्षणालय में अपना सम्पूर्ण शेष जीवन समर्पित कर दिया जिसमें शिक्षा प्राप्त करने के लिए संसार के प्रत्येक कोने के विद्यार्थीगण आते थे। १६३० में ७५ वर्ष की अवस्था में विज्ञान-विभाग के अध्यक्ष पद तथा रसायन शिक्षणालय के डाइरेक्टर के पद से अवकाश ग्रहण किया परन्तु भाषण वे मृत्यु-पर्य्यन्त करते ही रहे।

वे Toulouse में १४ अगस्त, १६४१ को ८७ वर्ष की चिरायु प्राप्त कर इस संसार से प्रयाण कर गये। उनकी मृत्यु ने बर्थोले के साथ सम्बद्ध अवशिष्ट शृंखला को छिन्न-भिन्न कर डाला। उनका जीवन इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि किस प्रकार वैज्ञानिक खोजों का अनुसन्धान किया जाता है क्योंकि इसके ठीक प्रकार करने से न मालूम कितने महत्त्वपूर्ण तथ्य ज्ञात हो जाँयजो मानव-जाति के लिए कल्याणकारक सिद्ध हों।

---

# हमारा नक्षत्रमण्डल

लेखकः—श्री अरविन्द व्यास

रात्रि के निर्मल आकाश की ओर एक क्षणिक दृष्टि डालने पर भी असंख्य नक्षत्र टिमटिमाते दृष्टिगत होते हैं। यह नक्षत्र आकाश गंगा की ओर सबसे अधिक सघन और अन्य दिशाओं में इसकी अपेक्षा अल्प संख्या में दिखाई पड़ते हैं। रात्रि को क्षुद्र प्रतीत होने वाले यह अगणित प्रकाशबिन्दु क्या हैं? उनका वास्तविक आकार अथवा स्वरूप क्या है? वे कितने हैं और शून्य में कहाँ तक वितरित है?—यह कुछ अत्यन्त रोचक प्रश्न हैं।

विलियम हरशेल नामक वैज्ञानिक ने सर्वप्रथम आकाश में भिन्न-भिन्न दिशाओं में नक्षत्रों को आंकना प्रारंभ किया। इस वैज्ञानिक ने अपने निरीक्षण द्वारा यह निर्धारित किया कि रात्रि को दीख पड़ने वाले नक्षत्र का यह विराट समूह वास्तव में सीमित है। यहाँ तक कि आकाश-गंगा की ओर भी एक सीमा है जिसके आगे नक्षत्रों का अभाव है। अन्य दिशाओं में तो यह सीमा और भी समीप है। अतएव उसने इस तारा-समूह को एक पहिए का रूप दिया। इसके अधिकांश भाग में नक्षत्र समान रूप से सर्वत्र व्याप्त हैं। केवल सीमान्त भागों में उनकी संख्या धीरे धीरे कम होती जाती है। हमारे सूर्य का स्थान कहीं पर इस चक्र के व्यास के मध्य में है। इस रचना की दृष्टि से यह स्वाभाविक है कि हम अपने इस स्थान से बाहर की ओर देखते हुए नक्षत्रों की परिधि की ओर सबसे अधिक सघन देखें—यह सघन स्थान हमको आकाश—गंगा के रूप में दृष्टिगत होते हैं। मोटे रूप से इन नक्षत्रमण्डल का व्यास ५०,००० प्रकाश-वर्ष है।

हमारे नक्षत्रमण्डल में सहस्त्रों नक्षत्रों का सदैव प्रकाश हुआ करता है— वास्तव में उनकी संख्या अगणित है। इन नक्षत्रों की आकृतियाँ एवं विस्तार भिन्न-भिन्न हैं परन्तु उनकी मात्राओं में विशेष अन्तर नहीं हैं। आकाश में अनेकों नक्षत्र ऐसे मिलते हैं कि यदि उन्हें अपने परिचित सूर्य के स्थान पर स्थापित कर दिया जाय तो हमारी पृथ्वी तो क्या मंगल ग्रह तक उसकी सीमा मेंसमाविष्ट हो जांय। ऐसे नक्षत्र विशेषकर अधिक भारयुक्त नहीं हैं क्योंकि उनका घनत्व (Density) बहुत ही कम है—इतना कम कि मात्रा में यह पृथ्वी पर

वैज्ञानिक साधनों द्वारा उत्पन्न किए हुए प्रखरतम वैकुअम (Vacuum) के घनत्व से भी बहुत ही कम है। इसकी दूसरी ओर ऐसे नक्षत्र भी मिलते हैं कि जिनका आकार तथा विस्तार तो हमारी पृथ्वी के ही समान है परन्तु भार सूर्य से भी अधिक है। उनमें पदार्थ इतना अधिक सघन है कि उसका एक टन सुगमता से एक डिबिया में आ सकता है। वैज्ञानिकों का मत है कि ऐसे नक्षत्र में दबाव एवं तापक्रम की विचित्र अवस्थाओं के कारण पदार्थ अपने उस रूप में नहीं हैं जिसमें हम उसे अपनी पृथ्वी पर देखते और अनुभव करते हैं। वहाँ अणु और परमाणु तहस-नहस हो चुके हैं। केवल उनके खण्ड प्रोटोनों (Protons) और एलेक्ट्रोनों (Electrons) के रूप में ठसाठस भरे हुए हैं।

तापक्रम के अनुसार नक्षत्र में विशेष अन्तर है। कुछ का तापक्रम तो अरबों डिगरी सेन्टीग्रेड है और कुछ केवल पिघले हुए लोहे के समान कम गर्म हैं। वैज्ञानिक प्रमाणों से पता चलता है कि कुछ का तापक्रम तो इतना कम है कि वे प्रकाश-रश्मियाँ तक नहीं फेंक सकते।

इन सब विषयों में हमारा सूर्य अत्यंत क्षुद्र है। इसका न तो विशेष भार है, न विशेष आकार है और न विशेष तापक्रम ही है। इसके आकार प्रकार के असंख्यों नक्षत्र इस तारा-समूह में मिलते हैं। यदि हम अन्तरिक्ष में जा कर दूर से अपने नक्षत्र-मण्डल का निरीक्षण करें तो ज्ञात होगा कि हमारे सूर्य का इस बृहत रचना में वही स्थान है जो कि एक सूक्ष्म रजकण का इस पृथ्वी पर है।

यह समस्त नक्षत्रमण्डल द्रुत-गति से घूम रहा है। जिस प्रकार हमारे सौरमण्डल में भिन्न ग्रह भिन्न भिन्न गतियों से सूर्य की परिक्रमा किया करते हैं—ठीक उसी प्रकार यह सब नक्षत्र संम्भवतः किसी महान नक्षत्र को केन्द्र में रख उसके चारों ओर निरन्तर भ्रमण किया करते हैं। साधारण ज्ञान की बात है कि गाड़ी के पहिए में परिधि के समीप वाले भाग केन्द्रीय भागों की अपेक्षा तीव्र गति से घूमते हैं। उसी प्रकार जो नक्षत्र इस तारा-चक्र की परिधि के समीप हैं व अधिक वेग से भ्रमण करते हैं और जो केन्द्र में हैं वे कम वेग से। सब नक्षत्र एक ही दिशा में भिन्न भिन्न गतियों से दौड़ रहे हैं। और उनके केन्द्र के चारों ओर पूर्ण परिक्रमा की अवधियाँ भी पृथक पृथक है। यह अवधियाँ बहुत ही बड़ी हैं और उनकी गणना हजारो वर्षों में होती है। इस रहस्य का पता अभी हाल ही में चला है, अतएव ठीक संख्याओं का देना कठिन है, परन्तु अनुमान किया जाता है कि हमारे सूर्य के लिए यह अवधि लग भग २००,०००,००० वर्ष है।

रात्रि को सूक्ष्म प्रतीत होने वाले नक्षत्र वास्तव में हमसे इतने दूर हैं कि हम इसका अंदाजा भी नहीं लगा सकते। प्रकाश की गति १८६,००० मील प्रति सेकिण्डा है और सूर्य रश्मि को हम तक पहुँचने में ८ मिनट लगते हैं। प्रोक्षिमा सेन्टारी (Proxima centauri) हमसे निकटतम नक्षत्र है। समीप होने पर भी वह हमसे इतना दूर है कि वहाँ से प्रकाश आने में ४.३ वर्ष लग जाते हैं। इसके आगे अनेकों नक्षत्र ऐसे मिलते हैं जिनसे प्रकाश आने में लगभग एक लाख वर्ष लग जाते हैं। हमारा स्थानीय नक्षत्र मण्डल यहीं तक सीमित है। इस दृष्टि से दो नक्षत्रों के बीच की दूरी उनके आकारों को देखते हुए बहुत ही अधिक है। कुछ तारा गुच्छों में यह दूरी कम भी है परन्तु फिर भी उनके आकारों की दृष्टि से यह दूरी बहुत ही अधिक निकलती है।

अतएव हमारे नक्षत्रमण्डल में विशेषकर शून्य ही है। (शून्य—यानी, पदार्थ—कणों के नितान्त हलके मेघों और शक्ति—रश्मियों के अतिरिक्त।) इस रचना में हमें इधर उधर पदार्थ के चमकते हुए, बहुत ही गर्म सूक्ष्म-कण बिखरे मिलते हैं। हम यह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि इनमें से कम से कम एक के चारों ओर शीतल पदार्थ के कुछ और भी सूक्ष्म टुकड़े भ्रमण कर रहे हैं, और उनमें से एक हमारा घर (पृथ्वी) है।

हम यह नहीं कह सकते कि अन्य नक्षत्रों के चारों ओर भी हमारे सूर्य ही के समान ग्रह अथवा उपग्रह परिभ्रमण कर रहे हैं अथवा नहीं। यह जानने के लिए अनेकों प्रयत्न किए गए परन्तु अभी तक कोई फलीभूत नहीं हुआ। प्रोक्षिमा सेन्टारी हमसे निकटतम नक्षत्र है।

यह अनुमान किया जाता है कि यदि इसके चारों ओर कोई ग्रह वर्तमान हो तो भी आधुनिक साधनों द्वारा उसका आभास होना कठिन है। इस नक्षत्र के समीप होने के कारण वह उसके तीव्र-प्रकाश में इतना नगण्य हो जायगा कि उसका ज्ञान होना असम्भव है। फिर यदि इससे और दूर के नक्षत्रों में ग्रह वर्तमान हों तो उनका पता चलना तो और भी कठिन है।

हमारे नक्षत्रमण्डल में नक्षत्रों के अतिरिक्त कुछ सघन तारा-गुच्छ, सूक्ष्मकणों तथा गैसों के मेघ आदि भी सम्मिलित हैं। कहीं कहीं तो यह मेघ इतने सघन हैं कि अपने पीछे स्थित नक्षत्रों अथवा अन्य पिण्डों से आने वाली प्रकाश एवं अन्य रश्मियों को बिल्कुल रोक देते हैं। यहाँ वहाँ यह मेघ प्रकाश में चमक उठते हैं-ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि हमारी पृथ्वी का वायु-मण्डल सूर्यप्रकाश में चमक उठता है और हमें नीले आकाश का ज्ञान प्रदान करता है। दूर दर्शक यंत्र में यह चमक हलकी हरी सी प्रतीत होती है। रश्मि विश्लेषक (Spectroscope) द्वारा रश्मि-विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि यह मेघ वास्तव में अधिकतर आक्सीजन और नाइट्रोजन का सम्मिश्रण हैं। अत्यंत विघन होने के कारण उनके अणु उस प्रकाश नहीं कार्य करते जिस प्रकार कि वे सघन रूप में पृथ्वी पर करते हैं।

रात्रि को दीख पड़ने वाले सब नक्षत्र हमारे इसी नक्षत्रमण्डल के सदस्य हैं। परन्तु इसी प्रकार के अनेकों नक्षत्रमण्डल शून्य में वितरित हैं और वे सब भी इसी प्रकार अपनी सीमा में वर्तमान ग्रहों को आबद्ध तथा गतिशील रखते हैं। अत्यंत दूर होने के कारण यह सर्वोत्तम दूरदर्शक यन्त्र द्वारा भी केवल सूक्ष्म वाष्प-चक्र से प्रतीत होते हैं।

अतएव हमारा नक्षत्रमण्डल एक बृहत और विशाल पैमाने पर निर्मित है। यह स्वाभाविक है कि कुछ लोगों को यह चित्र आकर्षक प्रतीत न हो, परन्तु फिर भी हम यथार्थ की अवहेलना नहीं कर सकते।

---

# समाज-शास्त्र सम्बन्धी पाश्चात्य अनुसन्धान

ले०—श्री गणेशप्रसाद अग्रवाल

व्यापक अर्थों में समाज-शास्त्र का मतलब है मानव-प्रकृति सम्बन्धी विशेष ज्ञान और मनुष्य की समूह-प्रवृत्तियों के मूलगत सिद्धान्त। इस विषय पर गत ३-४ शताब्दियों में पाश्चात्य वैज्ञानिकों एवं विचारकों ने अत्यंत महत्त्वपूर्ण गवेषणायें और अनुसन्धान किए हैं और इतना अधिक साहित्य प्रस्तुत किया है कि शायद ही और किसी विषय पर मिले। इसका मुख्य कारण यह है कि यह शास्त्र विज्ञान की प्रत्येक शाखा से सम्बन्धित है और विभिन्न वैज्ञानिकों ने विभिन्न विषयों पर जो भी कुछ खोजा, कहा या लिखा, उस सबका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस विषय पर प्रभाव पड़ा। फिर बदले में इस विषय के विद्वानों ने जो विचार व्यक्त किए, उनसे आकर्षित होकर समय समय पर अलग अलग विद्वानों द्वारा नए सिद्धान्तों की खोज होती रही। यही कारण है कि समाज-शास्त्र के सम्बन्ध में इतनी अधिक शाखायें और इतने अधिक सिद्धान्त आज हमारे सामने उपस्थित किए जाते हैं कि यह एक कहावत सी हो गई है कि जगत में जितने समाज-शास्त्री हैं उतने ही समाज शास्त्र हैं और उतनी ही कार्य-प्रणालियाँ। इसीसे इस शास्त्र की अनेक रूपता और व्यापकता समझी जा सकती है। कुछ भी हो, इस विज्ञान की महत्ता और उपयोगिता सर्व-स्वीकृत है।

यद्यपि समाज-शास्त्र की शाखाओं का सूचीपत्र तैयार करना असंभव है, फिर भी मोटे तौर पर इसकी निम्नलिखित शाखाएँ की जा सकती हैं :—

(१) प्राकृतिक-नियमबद्ध-समाज-शास्त्र
(२) प्राकृतिक-विज्ञान पर आधारित समाज-शास्त्र
(३) ऐतिहासिक-समाज-शास्त्र
(४) दार्शनिक-(ऐतिहासिक)-समाज-शास्त्र
(५) वाह्य-स्वरूप पर आधारित भौतिक-समाज-शास्त्र
(६) जर्मन समाज-शास्त्र
(७) सांस्कृतिक-समाज-शास्त्र

इन शाखाओं का ब्यौरेवार वर्णन करने से पूर्व यह कह देना उचित होगा कि उक्त शाखायें तो केवल नाम-मात्र की शाखाएँ हैं; वास्तव में तो वे अपने अपने क्षेत्रों में, समाज-शास्त्र-विज्ञान के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालनेवाली पूर्ण इकाइयाँ ही हैं।

( १ ) प्राकृतिक-नियमबद्ध-समाज-शास्त्र---यह शाखा समाज-शास्त्र की प्राचीनतम शाखा है और इसके सिद्धान्त प्राकृतिक-नियमों पर आधारित हैं। इस शाखा के अनुसार समाज-शास्त्र का कार्य मानव-जाति के जीवन-वृत्त में वर्तमान क्रियात्मक, निर्माणात्मक और सहयोगी सिद्धान्तों का निरूपण करना है। अरस्तू और प्लेटो इसके आदि-प्रवर्त्तक माने जाते हैं और इसके आधुनिक विचारकों पर प्रसिद्ध दार्शनिक कॉन्ट का प्रभाव है, जिसने अरस्तू और प्लेटो के सिद्धान्तों की ही प्रगतिशील व्याख्या की है।

(२) प्राकृतिक-विज्ञान पर आधारित समाज-शास्त्र समाज-शास्त्र की यह विचार-धारा मूलत: तो प्राकृतिक नियमों पर ही आधारित है, किन्तु व्यवहार में सिद्धान्तों से इसकी उतनी संगति नहीं है। इस वैषम्य का मुख्य कारण यह है की इसके सिद्धान्तों की कार्यप्रणाली केवल प्राकृतिक-नियमों में आवद्ध रह कर नहीं बनाई गई है; क्योंकि १७ वीं और १८ वीं शताब्दि में जब यह विचार-धारा अस्तित्व में आई थी उस समय मनुष्य की जानकारी प्राकृतिक-नियमों की परिधि की सीमा लांघकर प्राकृतिक-विज्ञान के सम्बन्ध में भी काफी आगे बढ़ चुकी थी।

१७वीं शताब्दि में यूरोप के विभिन्न राष्ट्रों के साहसी नाविकों ने समुद्र-मार्ग से दूर-दूर के प्रदेशों की यात्रायें कीं, नये नये देशों और भूखंडों का पता लगाया और वहाँ के निवासियों के सम्पर्क में आए। ये लोग जब वहाँ से नया ज्ञान और दृष्टिकोण लेकर लौटे और अपने अनुभवों से पाश्चात्य-जगत को अवगत कराने लगे तो पुराने विचारों में परिवर्तन और संशोधन होना स्वाभाविक एवं अनिवार्य था।

फलतः अब समाज-शास्त्र के विद्वानों ने इस बात पर ज़ोर देना प्रारम्भ कर दिया कि समाज-शास्त्र का कार्य यह निश्चित करना नहीं है कि समाज कैसा होना चाहिए; बल्कि उसका काम तो केवल यह बतलाना है कि समाज वास्तव में क्या है? उन्होंने कहा कि "ऐतिहासिक-समाज एक प्राकृतिक रूप है, इतिहास एक प्राकृतिक कार्य-प्रणाली है और ये दोनों उन्हीं नियमों द्वारा शासित होते हैं जिन पर मानवेतर-जगत चलता है।" सेंट साइमन ने बतलाया कि "समाज-शास्त्र का कार्य विभिन्न तथ्यों का समन्वय कर,ऐसे साधारण नियमों और निष्कर्षों का निरूपण करना है, जिन पर समाज आधारित है। अध्यान्य-विज्ञान के अंतर्गत ही मनोविज्ञान और शरीर-विज्ञान आते हैं। इसलिए धर्म, कला, भाषा, राज्य, परिवार संगठन आदि निरपेक्ष सत्त्व न होकर प्रातिभ-सत्त्व ही हैं यानी ये ऐसे मौलिक गोचर पदार्थ हैं जो किसी न किसी मूलभूत प्राकृतिक तत्त्व से ही उद्भूत हैं।

इस विचार-धारा के फलस्व प रूढ़-नैतिकता का समाज में जो प्रमुख स्थान था, उसमें शिथिलता आने लगी और जीवन के नैतिक-दृष्टिकोण में भी परिवर्तन हुआ। गाँवों के लोग नगरों में, नगरों के और भी बड़े नगरों में और इन बड़े नगरों के निवासी सुदूर विदेशों में भारी संख्या में पहुँचने लगे। मध्य-युगीन-सामन्तशाही-सभ्यता के स्थान पर उपनिवेशवाद और पूँजीवाद फैलने लगे।

समाज-शास्त्र की इस शाखा के अंतर्गत निम्नांकित उपशाखाएँ उत्पन्न हुईं। इन पर भी संक्षेप में प्रकाश डालना अत्यंत आवश्यक है :—

(अ) रसायन-विज्ञान पर आधारित समाज-शास्त्र
(ब) भौतिक-विज्ञान पर आधारित समाज-शास्त्र
(स) जातीय-समाज-शास्त्र

(द) मनोवैज्ञानिक-समाज-शास्त्र

(अ) रसायन-विज्ञान पर आधारित समाज-शास्त्र अब तक तो जीवन के नैतिक दृष्टिकोण में केवल शिथिलता ही आ पाई थी, किन्तु १८ वीं शताब्दि में न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त की खोज ने जीवन के सभी दृष्टिकोणों में आमूल परिवर्त्तन कर दिए। इस युग में शायद ही ऐसी कोई पुस्तक लिखी गई हो जिसमें न्यूटन और उसके सिद्धान्तों की चर्चा न हो। यह 'न्यूटन वाद' का युग था। समाज-शास्त्र भी इस युग-प्रवाह से अछूता न रह सका।

अतः समाज-शास्त्र-विज्ञान के क्षेत्र में भी इस आधार पर प्रयोग प्रारम्भ हुए कि मानव-समाज पर भी आकर्षण और प्रत्याकर्षण का न्यूटन का सिद्धान्त लागू होता है और "आकाश-अवकाश क्षेत्र" की तरह उसमें भी एकता पाई जाती है। इस विचार-धारा का मुख्य प्रतिपादक पेरेटो था। उसने खोज कर यह सिद्धान्त निकाला कि समाज-शास्त्र उस सामाजिक-रीति का विज्ञान है जो रासायनिक-प्रक्रियाओं और सौर-मंडल की राशियों पर आधारित है। इसलिए यह ज़रूरी है कि सभी सामाजिक-सत्त्वों को परिमाण-रूप में बदल दिया जाए ताकि समाज पर आर्थिक-गणित की कार्य-प्रणाली लागू की जा सके। स्पर्श-ज्ञान, अनुभूति और इच्छाएँ आदि ही ऐसे सामाजिक-परमाणु हैं तथा ऐसे तथाकथित अवशेष हैं जो मानवीय-प्रवृत्तियों के मूल कारण हैं और सभी आदर्शों और उनके सिद्धान्तों के बीच सर्वत्र निरंतर कार्यरत दिखाई देते हैं।

(ब) भौतिक-समाज-शास्त्र—१९वीं शताब्दि में चार्ल्स डार्विन की प्राणि-शास्त्र सम्बन्धी गवेषणाओं ने विज्ञान के क्षेत्र में नई क्रांति की और फलस्वरूप समाज-शास्त्र में भी एक नई विचार-धारा ने प्रवेश किया। "सामाजिक न्यूटनवाद" की जगह "सामाजिक डार्विन-वाद" अस्तित्व में आया। इस नई विचार-धारा का आधार यह था कि मानव-समाज एक संजीवी पिंड है—जिसके कुछ अंग तो अंश-समता रखते हैं और कुछ समरूपता। शारीरिक-जीवन और सामाजिक-जीवन की कार्यप्रणाली में जो अनुरूपता है वह पारिमाणिक न होकर केवल आकस्मिक सादृश्य-मात्र है।

इस विचार-धारा के विद्वान अवयवी-समाज के सम्बन्ध में "जीवन प्रणाली", "अनुवांशिकता", "उत्पत्ति", "वृद्धि", "अनुरूपता" और "मृत्यु" के बीच जो सम्बन्ध हैं उनका अध्ययन करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि हमारा समाज, मानवेतर-जगत (प्राकृतिक-जगत) की प्रारंभिक अवस्था की ही "क्रमिक उन्नति" है। उनका मानना है कि आज भी मनुष्य संपूर्णता प्राप्त करने की प्रक्रिया में से गुजर रहा है।

इस विषय में हर्बर्ट स्पेन्सर ने सबसे अधिक छानबीन की है और उसका मत है कि वनस्पतियों और पशुओं के समान ही मानव-समाज में ऐसे सिद्धान्त संदर्भित रहते हैं जो "जीवन" "वृद्धि" और "मृत्यु" के नियमों को अभिव्यक्त करते हैं। इसलिए सावधानी से तुलना और वियोजन करने के बाद, एक हद तक, दृश्य-पदार्थों के मूलगत सिद्धान्तों को अनारम्भ में ही स्पष्टतया निश्चित किया जा सकता है। स्पेन्सर के विचारों का समाज-शास्त्र, तथा अन्य विज्ञानों के विद्वानों पर व्यापक प्रभाव पड़ा है।

(स) जातीय-समाज-शास्त्र—जातीय-समाज-शास्त्र भौतिक-शास्त्र की ही देन है। इसका आधार रक्त की एकता एवं विभिन्न ऐतिहासिक संघर्ष हैं। इसका इतिहास में महत्त्वपूर्ण ही नहीं बल्कि निर्णायक भाग रहा है।

(द) मनोवैज्ञानिक-समाज-शास्त्र—इस विचार-धारा के प्रवर्त्तकों का कहना है कि मानव-मस्तिष्क की विशेष चैतन्य-शक्तियों से ही मानव-समाज की उत्पत्ति हुई है। गिडींग्स के मतानुसार सामाजिक तथ्य वास्तव में मनोवैज्ञानिक ही हैं। अतः समाज-शास्त्र मनोविज्ञान की ही एक शाखा है। मानव-समाज विभिन्न प्रेरणाओं का एक जाल है। मस्तिष्क स्वयं एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है और भूख, प्रेम, अपनी रक्षा की प्रवृत्ति, लिंग-भेद-ज्ञान, शक्ति प्राप्त करने की इच्छा, व्यक्तित्व, जाति, कला, खेल-कूद आदि उसकी ही दी हुई प्रेरणायें हैं।

शाफ्टसबरी और हचिंसन इस विचार धारा के प्रतिनिधि हैं। इस विचार-धारा के फलस्वरूप यूरोप में जातिय अभिमान और उपनिवेश-स्थापना की भूख और भी बढ़ी

जर्मनी में तो सभी सांस्कृतिक विज्ञान मनोवैज्ञानिक-समाजशास्त्र के शिकार हुए।

इस सम्बन्ध में फर्डिनन्ड टोन्मीज़ ने इच्छा शक्ति के दो प्रकारों के आधार पर एक और नई व्याख्या की। उसने कहा इच्छा शक्ति दो प्रकार की हैं। एक तो स्वाभाविक "होने की इच्छा" और दूसरी प्रयत्नकृत "चुनने की इच्छा"। "चुनने की इच्छा" बौद्धिक कला है और "होने की इच्छा" स्वयं भू प्राकृतिक शक्ति।

हमने देखा है कि प्राकृतिक-विज्ञान पर आधारित समाज-शास्त्र और उसकी अनेक उपशाखाओं की विभिन्न विचार-धाराओं ने मानवीय-संगठन और मानव के पारस्परिक सम्बन्धों के हमारे ज्ञान-कोष में बहुत अधिक वृद्धि की है। जिसका संक्षिप्त सारांश इस प्रकार है :—

(१) अनुभव पर आधारित होने के कारण इससे पहले पहल यह सिद्ध हुआ कि समाज-शास्त्र एक स्वतंत्र विषय और विज्ञान है।

(२) मानव के समूह प्रवृत्तियों के वैज्ञानिक अध्ययन और विश्लेषण की ओर इससे जगत का ध्यान आकर्षित हुआ और हमें यह ज्ञात हुआ कि समूह-प्रवृत्ति की भावना इस तथ्य से नष्ट नहीं होती है कि "मानव" एक दूसरे के नज़दीक रहते हुए भी "एक दूसरे के लिये", "एक दूसरे के साथ" और "एक दूसरे के विरुद्ध" रहता है।

(३) इससे हमें संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों में, एक दूसरे पर पड़ने वाले प्रभावों को देखने, जानने और समझने के लिये एक नई अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई।

(३) ऐतिहासिक समाज-शास्त्र— १७वीं शताब्दि के पश्चात् ऐसी पुस्तकों की एक बाढ़ सी आई, जिनके शीर्षक थे "मनुष्य जाति का इतिहास", "नागरिक-समाज का इतिहास", "विश्व इतिहास", "सभ्यता और संस्कृति का इतिहास" इत्यादि। इस प्रकार की पुस्तकों के लेखकों में आदम स्मिथ, आदम फर्ग्युसन, जॉन मिलर तथा वॉल्टेयर के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

ये विचारक इस निष्कर्ष तक पहुँचे कि समाज-शास्त्र एक विशेष दृष्टिकोण को सामने रखकर, कुछ निश्चित कार्यप्रणालियों द्वारा, मानव-इतिहास का अनुसंधान मात्र है। समाज-शास्त्र, इस प्रकार के ऐतिहासिक लेखों के सिवाय और कुछ नहीं है जो इतिहास की घटनाओं में पाये जाने वाले "समूह तत्व" और "जाति-सम्बन्धों" को विशेष रूप से उभार कर हमारे सामने रखते हैं और इस प्रकार "लोकोत्तर-व्यक्तित्व" की खोज करने का प्रयत्न करते हैं। ऐसा करने में उनका उद्देश्य "वस्तुओं के बीच के सम्बन्धों को स्थिर करना" और "मानव-समाज के प्रश्नों और समस्याओं की गुत्थिओं को सुलझाना" होता है।

कुछ लोग इस सम्बन्ध में इतिहास के दो विभाग करते हैं। एक तो वह जो "घटनात्मक" है और दूसरा वह जो "परिस्थितियों से सम्बन्धित अर्थात कारणात्मक" है। यह दूसरा "कारणात्मक" विभाग ही उनकी राय में समाज-शास्त्र है।

(४) दार्शनिक— (ऐतिहासिक)— समाज-शास्त्र यह विचार-धारा लोकोत्तर एवं इतिहासोत्तर चिंतन के आधार पर निर्मित है। इसमें मानव-अस्तित्व के कुछ ऐसे सिद्धान्तों पर विशेषरूप से जोर दिया जाता है जो प्रत्यक्ष दृष्टिगत न होकर केवल मानसिक अनुभव (अनुभूतियों) के विषय हैं और जो भूत और वर्तमान के विविध अनुभवों के आधार पर भविष्य की तर्क-सम्मत कल्पना हैं। यह एक आश्चर्य की बात है कि किसी भी विद्वान ने दार्शनिक-समाज-शास्त्र का शुद्ध दार्शनिक-आधार पर निरूपण नहीं किया। सबने किसी न किसी अन्य विज्ञान का सहारा लेकर ही दार्शनिक-समाज-शास्त्र की सत्ता सिद्ध करने की कोशिश की है। लेकिन चूँकि अधिकतर विद्वानों ने इतिहास का ही सहारा लिया है, इसलिए इस शाखा को दार्शनिक — (ऐतिहासिक)— समाज-शास्त्र कहना ही अधिक उपयुक्त होगा।

इस शास्त्र का प्रतिपादन मुख्यतया ऑगस्ट कॉम्टे ने किया है। उसने अपने सिद्धान्तों का आविष्कार सुप्रसिद्ध इतिहासकार टरगॉट की "स्थिति-मय" की इस भित्ति पर किया है कि मानव जाति का इतिहास धार्मिक-युग से प्रारम्भ होता है, लोकोत्तर-भावनाओं के युग से गुजरता है और अन्त में वैज्ञानिक-युग में आकर समाप्त होता है। यह विचार-धारा कार्ल मार्क्स के भौतिकतावादी

(Materialistic) सिद्धान्तों से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। इस विचार-धारा के समर्थकों में ऑगनटर, शेलर तथा स्पॉन के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

(५) बाह्य स्वरूप पर आधारित भौतिक-समाज-शास्त्र— कुछ विद्वानों की भावना है कि समाज-शास्त्र इन्द्रियों के विषयगत बाह्य स्वरूप और आकार-प्रकार पर ही आधारित है। इस मंतव्य का जनक जॉर्ज सिम्मेल है। इसका मूल सिद्धान्त यह है कि समाज-शास्त्र का प्रयोजन मानव जाति के विभिन्न स्वरूपों का पता लगाना है। इसका अध्यात्म या संस्कृति से कोई सम्बन्ध नहीं है। समाज-शास्त्र का कार्य तो केवल समाज की प्रकृति को समझाना है। अन्तर्मानवीय (सम्बन्धों) को छोड़कर जो भी कुछ होता है उस सबके महायोग का नाम ही समाज-शास्त्र है। समाज-शास्त्र में मानव के पारस्परिक सम्बन्धों के सिवाय और कुछ भी नहीं है।

(६) जर्मन-समाज-शास्त्र— वैसे तो जर्मन-समाज-शास्त्र पूर्वोल्लिखित समाज-शास्त्र की तीसरी और चौथी शाखाओं के अन्तर्गत ही आता है, फिर भी इसमें कुछ ऐसी विचित्रताएँ हैं, जिनसे इसे समाज-शास्त्र की अलग शाखा माना जा सकता है। इसका प्रारम्भ जर्मन मस्तिष्क से ही हुआ है। हेगल इसका प्रवर्त्तक है। इसकी विशेषताएँ हमें आगे चलकर स्पष्ट ज्ञात हो जायँगी।

हेगल की विचार-धारा इन तथ्यों पर आधारित है कि समाज-शास्त्र के तीन अङ्ग हैं। (१) जनगत-समाज, (२) परिवार-गत समाज और (३) राज्य-गत समाज। जनगत-समाज व्यक्ति की मानवीय-सम्बन्धों और संगठनों के प्रति निश्चित वह भावना है जो उसके अपने "हित" के दृष्टिकोण को लेकर "आवश्यकताओं की कार्य-प्रणाली" से उत्पन्न होती है और विशेष अवसरों पर विशेष रूप से उसके व्यक्तित्व की विशेषताओं को स्वयंमेव प्रकट करती है। यह एक ऐसी स्थिति है जो मनुष्य को सम्पूर्ण नैतिकता के मार्ग की ओर अग्रसर होने के लिए प्रेरित करती है। साथ ही यहीं वह कड़ी भी है जो मूलतः परिवार-गत समाज को नैतिकता के मार्ग से विकास की ओर बढ़ाती हुई, अन्त में जाकर "व्यक्ति" को "राज्य" से जोड़ देती है। हेगल की मानव-समाज की इस नई व्याख्या से प्रभावित होकर तीन और जर्मन विद्वानों ने नए सिद्धान्तों की रचना की है। वे हैं वॉन मॉल, लोरेंज वॉन स्टीन और कार्ल मार्क्स।

रोबर्ट वॉन मॉल एक स्वतंत्र सिद्धान्त का प्रवर्त्तक माना जाता है। उसके अनुसार समाज "व्यक्ति के जीवन" और "राज्य" के बीच का रास्ता है। समाज व्यक्तियों के प्राकृतिक संगठन का फल है और यह संगठन परस्पर की "हित-साधना" के उद्देश्य से प्रेरित है। सामाजिक स्थिति इन शक्तिशाली "हितों" के कार्यों का ही परिणाम है, जो समाज के सदस्यों पर प्रत्यक्ष रूप से तथा अन्य वस्तुओं और जनों पर परोक्ष प्रभाव डालती है। इन सबके अन्त में समाज आता है, जो एक निश्चित दायरे में, वस्तुतः उक्त तमाम समाज के स्वरूपों को अपने आप में समन्वित कर लेता है।

किन्तु लोरेंज वॉन स्टीन की व्याख्या और भी अधिक विशद और सरल है। उसने ठीक ही कहा है कि "राज्य" और "समाज"। सम्बन्धी सभी विचार इसी आधार पर किया जाना चाहिए कि प्रत्येक "राज्य" एक "समाजिक संगठन" भी है और इसी प्रकार प्रत्येक "सामाजिक संगठन" एक 'राज्य' समाज और राज्य एक दूसरे से इस प्रकार सम्बन्धित हैं कि एक के अस्तित्व के बिना दूसरे की कल्पना भी असम्भव है। हाँ यह सत्य है कि इन दोनों के आपसी सम्बन्ध स्थिर न होकर गतिशील हैं। "राज्य" और "समाज" के संघर्ष ही मनावता के इतिहास के सार हैं और जगत के तमाम "राज्य" मानवता के अन्तवर्त्ती-इतिहास।

कार्ल-मार्क्स का समाज-शास्त्र सबसे पहले इस बात को मानने से इन्कार करता है कि "राज्य" एक स्वतंत्र तत्थ्य है और सामाजिक-विकास के लिए अनिवार्य है। उसका कहना है कि आर्थिक-हित ही इतिहास-रचना करते हैं। मार्क्स से पहले रूसो यह कह चुका था कि "सामाजिक-समस्यायें" ही मुख्य हैं और "ऐतिहासिक घटनाएँ" तो उनके परिणाम-मात्र हैं।

इस प्रकार हमने अब यह देख लिया कि जर्मन-विचारकों के सिद्धान्तों में कौनसी विचित्रताएँ हैं और क्या-क्या विशेषताएँ हैं जिनके कारण इसे जर्मन- समाज-

शास्त्र कहा गया। जर्मन-विद्वानों की समाज-शास्त्र को सबसे बड़ी देन यह है कि वे यह भली प्रकार जानते थे कि विभिन्न सिद्धान्तों का नियमित-रूप से विश्लेषण कर उससे प्राप्त परिणामों के आधार पर नए सिद्धान्तों की किस प्रकार रचना की जा सकती है।

(७) समाज-शास्त्र पर एक नया और अधुनिक-दृष्टिकोण—पिछले कुछ वर्षों से समाज-शास्त्र पर एक नए दृष्टकोण से विचार किया जा रहा है। इसका श्रेय वर्नर संम्ब्राट को से है। सँम्ब्राट महोदय का कहना है कि अब तक समाज-शास्त्र पर जितनी भी व्याख्याएँ मिलती हैं वे थोड़े या बहुत अंशों में एक या एक से अधिक विज्ञान की अन्य शाखाओं के आधार पर रची गई हैं। इनमें से कोई भी समाज-शास्त्र के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने में पूर्णतया सफल नहीं हुई हैं। ये तमाम सिद्धान्त और परिभाषाएँ (जिनका उल्लेख किया जा चुका है) देखने में सम्पूर्ण मालूम देते हुए भी दोष-पूर्ण हैं। कुछ तो समाज-शास्त्र पर ऐसे कार्यों की जिम्मेदारियाँ लादती हैं जो वास्तव में विज्ञान की अन्य शाखाओं के हैं; कुछ उसके लक्ष्य के लिए ऐसे उद्देश्यों को चुनती हैं, जिनका अस्तित्व ही नहीं है और कुछ ऐसी हैं जो अपना लक्ष्य और उद्देश्य तो ठीक ठीक चुनती हैं लेकिन उसकी प्राप्ति के लिए ऐसी कार्य-प्रणाली बतलाती हैं जो प्राकृतिक-विज्ञान पर आधारित होने के कारण अभीप्सित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अनुपयुक्त है।

सँम्ब्राट महोदय इस आधार पर आगे बढ़ते हैं कि हमें यह मान लेना चाहिए कि "सभी समाज चेतना है" और "सभी' चेतना समाज"।

"सभी समाज चेतना है" इसकी व्याख्या वे इस प्रकार करते हैं :—

"समाज का प्रारंभ मानव पारस्परिक संबंधों से हुआ है। ये सम्बन्ध "एक दूसरे के साथ", "एक दूसरे के लिए" और "एक दूसरे के विरुद्ध" इन तीन आधारों पर स्थित हैं। जगत में परस्परता का संस्कार सव पाया जाता है। यहाँ तक कि पत्थर, पशु और वनस्प आदि भी विशेष प्रकार से एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। इसलिए अब प्रश्न यह उठता है कि मनुष्य के ही पारस्परिक संबंधों में कौनसी विशेषता है?

"इसका उत्तर यह है कि मानव के परस्पर सम्बन्ध न तो केवल शारीरिक ही हैं जो कि पत्थर आदि जड़-पदार्थों में पाए जाते हैं और न मनोवैज्ञानिक ही हैं जो वनस्पतियों आदि में पाए जाते हैं; बल्कि वे तो आध्यात्मिक हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि वे मनुष्य चेतना द्वारा ही शरीर और मन से एक दूसरे से परस्पर सम्बन्धित होता है। यह सम्बन्ध सदैव और सर्वथा आध्यत्मिक ही होता है। अतएव हम इस सम्बन्ध को प्रयत्नकृत अथवा कलात्मक भले ही कह लें, किंतु अप्राकृतिक नहीं कह सकते, क्योंकि यह सर्व-मान्य सिद्धान्त है कि "कला मनुष्य का स्वभाव है"।

"सभी चेतना समाज है" इसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है :—

"सभी चैतन्यों के कार्य-कलाप सामाजिक स्तर से ही होते हैं। उदाहरणार्थ हम भाषा दूसरे से ही सीखते हैं। मनुष्यों में बुद्धि या ज्ञान दूसरों के सम्पर्क के ही परिणाम हैं। अकेला व्यक्ति वाणी, भाषा और विचार-हीन प्राणी ही रह जाएगा। यह तो हम दिन रात देखते हैं कि सभी मानवीय-कार्य और अभीप्सित संस्कार समाज में, समाज द्वारा ही पूर्णता प्राप्त करते हैं। धर्म, कला, नियम, राज्य, अर्थकरण आदि समाज के अस्तित्व के बिना असंभव हैं। या यों कहिए कि ये सब मानवीय-संगठन के विभिन्न आध्यात्मिक क्षेत्र हैं"।

सँम्ब्राट महोदय का कहना है कि अध्यात्म-विज्ञान के विद्वानों ने सबसे बड़ी गलती यह की है कि उन्होंने "चेतना" और "समाज" को पृथक-पृथक रूपों में देखा है। उन्होंने इस सत्य की अवहेलना की है कि "सभी चेतना समाज है" और इसलिए सभी अध्यात्म-विज्ञान भी समाज-विज्ञान है। मनुष्यसमाज और उसकी संस्कृति स्वयं मनुष्य ने—अपनी बुद्धि और ज्ञान द्वारा निर्मित की है। लेकिन प्रकृति का निर्माता न तो मनुष्य है और न उसके बारे में उसे संपूर्ण ज्ञान ही है। संस्कृति के क्षेत्र में "मानव" यानी हम "अभिनेता हैं जबकी प्रकृति के क्षेत्र मे केवल "दर्शक" मात्र।

अभी तक इस नई और आधुनिक विचार-धारा पर पूरी खोज नहीं हो पाई है और न इसे बहुत अधिक विद्वानों का समर्थन ही प्राप्त है।

# गन्दे पानी की सफाई

## अपवित्र जल की शुद्धता के लिये ब्रिटिश अनुसन्धानों की सफलता

लेखकः—डा० बी० ए० साउथगेट

ब्रिटेन के वैज्ञानिक नालियों तथा औद्योगिक सडांद से उत्पन्न होने वाली देश के अपवित्र जल की गम्भीर समस्या को हल करने में अग्रसर हो चुके हैं।

भारत में भी ऐसी ही समस्या उपस्थित है जिसको वहाँ की जल अपवित्रता अनुसन्धान प्रयोगशाला के कार्य की सहायता से हल किया जा सकता है।

राष्ट्रीय महत्व की समस्याओं पर अनुसन्धान करने के अभिप्राय से स्थापित होने वाले ब्रिटेन के वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसन्धान विभाग ने १९२७ में प्राकृतिक जल की मलिनता के कारणों का पता लगाने के लिये जल अपवित्रता अनुसन्धान प्रयोगशाला चालू की थी।

ब्रिटेन में गन्दे पानी की समस्या बहुत ही गम्भीर है। उन्नीसवीं शताब्दी के पहले पचास वर्षों में जब कि नगरों का आकार आबादी तथा उद्योगों के कारण आये दिन बढ़ने लगा था, नाली-परनालों के मुहानों तथा औद्योगिक गन्दी धारा को ठिकाने लगाने के लिये कोई सन्तोषप्रद व्यवस्था नहीं थी और हर तरह की सडांद-गन्दगी नदियों में गिरने के कारण उनका जल बिल्कुल दूषित हो गया था।

इसके परिणाम स्वरूप सड़े पानी के कारण बीमारी फैलने लगी और निर्माण के लिये सुविधा पूर्वक पानी की प्राप्ति के विचार से नदी किनारे पर स्थापित एक-आध कारखाने को विवश हो वहाँ से हट कर दूसरे स्थान पर जाना पड़ा क्योंकि दूसरे कारखाने से गिरने वाली गन्दी धार ने नदी के जल को अनुपयोगी बना दिया था। ऊनी माल की कई मिलें भी योर्कशायर से उठाकर स्काटलैंड में खोली गई थीं।

यह स्पष्ट था कि पानी सम्बन्धी उचित व्यवस्था के बिना नगरों की आबादी और उद्योग में वृद्धि नहीं हो सकती। इसलिये बहुत से अनुसन्धानों के पश्चात दोनों प्रकार के गन्दे पानियों की सफाई के लिये व्यवहारिक विधियाँ खोजी गई थीं।

### महान सफलता

१९२७ में खुलने वाली स्थायी तथा विशेष साधनों से लैस इस प्रयोगशाला में बहुत सफलता मिली, लेकिन अनुसन्धानों को भविष्य में निरन्तर चालू रखना जरूरी था; इसलिये नहीं कि अधिकाधिक उद्योग चालू हो रहे थे, बल्कि घरेलू, औद्योगिक और खेतीबाड़ी के लिये स्वच्छ जल की व्यवस्था का प्रश्न अधिकाधिक आवश्यक होता जा रहा था। इक्कीस वर्ष पूर्व खुलने वाली यह छोटी सी प्रयोगशाला एक ऐसे संगठन में परिवर्तित हो चुकी है जिसमें अब ४५ वैज्ञानिक काम करते हैं। इस प्रयोगशाला में मुख्यतया सब प्रकार के गन्दे पानी को साफ करने वाली विधियों में सुधार और विकास किया जाता है और धरती तथा धरती तल के पानी पर कीचड़, सडांद आदि के असर का अध्ययन भी किया जाता है।

यद्यपि इस प्रकार के अनुसन्धानों का कार्य अधिकतर ब्रिटेन में ही किया जाता है, लेकिन यह प्रयोगशाला ब्रिटिश राष्ट्र समूह के अन्य भागों की पानी सम्बन्धी समस्या के समाधान में भी सहायता पहुँचा चुकी है। इसका एक कार्यकर्ता अभी हाल ही में पूर्वी अफ्रीका से लौटा है जहाँ कि वह पूर्वी अफ्रीका के औद्योगिक अनुसन्धान बोर्ड के कार्यकर्ताओं के साथ मिल कर सिसाल तैयारी से भ्रष्ट जल शोधक एक विधि को विकसित कर रहा है। शुष्क ऋतु आने पर अफ्रीका की नदियों में बहुत थोड़ा पानी होता है और सिसाल तथा काफी की तैयारी के कारण अपवित्रता की समस्या गम्भीर हो गई है।

सिसाल के कारखाने में किरचनुमा कड़े पत्तों को एक

मशीन में डालकर गुद्दा और रेशे अलग किये जाते हैं। गुद्दा पानी के जोर से आगे बहाया जाता है जो सामान्यतया एक नाले में होकर बहता है। गुद्दा धरती पर बैठ जाता है जिसे बाद में हाथ से निकाल लिया जाता है और बचने वाला रसा (गन्दा पानी) अन्त में एक नदी की ओर गिरने लगता है। इसलिये ऐसा कोई सस्ता ढंग पता लगने की आवश्यकता पैदा हुई जिससे बिना किसी कुशल देखरेख के नदी की मलिनता कतई दूर अथवा कुछ कम हो सके।

यहाँ की छानबीन का तरीका उन विधियों से विचित्र था जो कि, औद्योगिक सड़ांद को दूर करने के लिये प्रयोगशाला में प्रयुक्त होती रही थी। नेरोबी स्थित प्रयोगशाला में सबसे पहले रसे (बचने वाले पानी) के कई नमूनों का विश्लेषण किया गया और फिर लघुरूप से पानी सफाई की विभिन्न सम्भव विधियों की परीक्षा के पश्चात यह पता चला कि यद्यपि इस तरह का गंदा पानी पूर्णतया शुद्ध तो नहीं हो सकता लेकिन छानने से उसमें मिले गुद्दे के सूक्ष्म अंशों के दूर होने पर कृत्रिम झरने-तालाबों को बनाने में दोबारा प्रयुक्त किया जा सकता है। इस तरह उद्योगों का यह गन्दा पानी बहकर नदियों में बिल्कुल नहीं गिरा करेगा।

ऐसे पानी की सफाई बूंद-बूंद करके टपकाने वाली छलनी के द्वारा की जाती है जिसमें छः फुट गहरी पत्थरों या अन्य किसी कड़ी सामग्री की एक तह बनानी पड़ती है। इसके सारे टुकड़े एक ही आकार के होते हैं और तह पर हर ओर से बराबर का पानी बहता है। जब ऐसा पानी तह में से धीरे-धीरे नीचे की ओर बहता है तो, उसका गंदा अंश छनाई साधन के टुकड़ों पर उगने वाले जल सूक्ष्म जीवाणु तथा कुकुरमुत्ता की गतिविधि के कारण दूर होने लगता है। घरेलू मल-मैल के लिये इस प्रकार की जीव-विद्या सम्बन्धी साधन ही सबसे पहले सन्तोषप्रद प्रमाणित हुआ था और आज तक उसीको अधिकतर प्रयुक्त किया जाता है।

### भ्रष्ट जल की छनाई

ब्रिटेन में उद्योगों के बदबूदार रस को बहाने की अपेक्षा अच्छी तरह साफ करके निर्माण सम्बन्धी कार्य के लिये अधिकाधिक प्रयुक्त किया जा रहा है। अधिकतर सड़ांद चुकन्दर चीनी के कारखानों से बहने वाले भ्रष्ट गाढ़े पानी के कारण पैदा होती है। ऐसे भ्रष्ट रस के कारण उतनी ही अपवित्रता फैलती है जितनी कि दो लाख बस्ती वाले नगर का एक नाला उत्पन्न करता है, इतनी अधिक मात्रा की सफाई करने में लागत बहुत बैठती है। अनेकों टेक्निकल कठिनाइयाँ भी सामने आती हैं, क्योंकि वर्ष में लगभग तीन महीने ही चुकन्दर की चीनी बनाने का काम चलता है।

इसलिये वहाँ अब ऐसे पानी को छानकर कृत्रिम झरने-तालाब बनाने, चुकन्दर धोने और फैलाव बैटरियों में चीनी खींचने के लिये दोबारा प्रयुक्त किया जाता है। द्वितीय युद्ध काल में ब्रिटेन की प्रयोगशाला ने सन मुलायम करने के बाद वाले रसे को साफ करने की एक ऐसी ही विधि विकसित की थी, जो इसी काम में दुबारा प्रयुक्त हो सकता है। इस ढंग के अनुसार ऐसे कारखाने की मलिनता बाहर फैलने नहीं पाती।

फिर भी ऐसे अनेकों औद्योगिक भ्रष्ट पानी होते हैं जिन्हें इस प्रकार दोबारा प्रयुक्त नहीं किया जा सकता, इस लिये नालों की ओर बहाने से पूर्व इनमें मिले वनस्पति या गोबर आदि जैसे विषैले अंशों को दूर करना आवश्यक है ताकि दूसरा पानी बेकार न हो। पानी की सफाई-छनाई के अनेकों ढंग हैं जिनके विकास-सुधार में प्रयोगशाला के अनुसन्धानकर्त्ता दिन-रात तल्लीन रहते हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ पर संसार के सारे भागों की अपवित्र जल शोधन सम्बन्धी सूचना एकत्रित होती रहती है, महत्वपूर्ण सूचनाओं का संक्षिप्त रूप तैयार करने पर प्रकाशित किया जाता है और गन्दे पानी की सफाई के बारे में आने वाली हर एक घरेलू तथा विदेशी पूछताछ का सन्तोषप्रद उत्तर भी दिया जाता है।

# हिमालय की चोटी पर वैज्ञानिकों की बस्ती

## प्रयोगशाला स्थापित करने के लिए स्थान की खोज

*इस वर्ष ग्रीष्म ऋतु में ६ भारतीय वैज्ञानिकों का एक दल भारत सरकार की ओर से यह पता लगाने के लिए हिमालय पहाड़ की यात्रा करेगा कि उसकी किसी चोटी पर वैज्ञानिक प्रयोगशाला स्थापित की जा सकती है या नहीं। गत वर्ष भी एक दल इसी उद्देश्य से हिमालय गया था और उसने कई चोटियों की जांच-पड़ताल की थी। उस दल की यात्रा का विवरण और परिणाम इस लेख में दिया जाता है।*

भारत सरकार हिमालय पहाड़ में एक ऐसी वैज्ञानिक प्रयोगशाला स्थापित करना चाहती है, जिससे कई काम निकल सकें। यह प्रयोगशाला स्विटजरलैंड की जुंग-फ्रेंजोक प्रयोगशाला के ढंग की होगी, और लगभग १५ हजार फुट की ऊँचाई पर स्थापित की जायगी। इस प्रयोगशाला में निम्नलिखित विषयों के अलग-अलग विभाग होंगे—(१) हिम और हिम नदी तथा उनसे भारतीय नदियों को लाभ, (२) नक्षत्रों और तारागणों की चाल तथा बनावट आदि का निरीक्षण, (३) ब्रह्मांड किरणें (कास्मिक रेज़), (४) ऊपर के वायुमंडल की बनावट, सूर्य से प्रकाश का निकलना, उल्का-पात, सीपी के रंग के बादलों आदि का अध्ययन, (५) भूगर्भ विज्ञान और भूगर्भ-स्थित वस्तुओं की बनावट का निरीक्षण, (६) मध्य एशिया की उच्च सम भूमि सम्बन्धी अन्तरिक्ष विज्ञान और (७) पशुवर्ग तथा वनस्पतिवर्ग का अध्ययन।

इस प्रयोगशाला की स्थापना के लिये ऐसे स्थान की आवश्यकता है, जो समुद्र की सतह से कम-से-कम १४ हजार और अधिक से अधिक १६ हजार फुट ऊँचा हो। यह स्थान चौरस और इसका विस्तार कम से कम १० एकड़ होना चाहिए, जिससे इस पर सातों विभागों के लिए भवन बनाये जा सकें। इस स्थान के समीप पहाड़ की कोई चोटी इतनी ऊँची नहीं होनी चाहिए, जो १० डिगरी से अधिक का कोण बनाती हो।

प्रयोगशाला में काम करने वाले वैज्ञानिकों के लिए एक छोटी सी बस्ती, प्रयोगशाला से अलग, नीचे की ओर बसाई जायगी, जिससे वह पर्वत के भयानक शीत से अपनी रक्षा कर सकें। इस बस्ती के समीप एक ऐसा स्थान होना चाहिए, जहाँ हवाई अड्डा बनाया जा सके।

### बिजली की आवश्यकता

वैज्ञानिकों के घरों में तथा प्रयोगशाला में प्रयुक्त किये जाने के लिए बिजली की आवश्यकता होगी। इस लिये बिजली तैयार करने के लिए एक बिजली-घर भी बनाना पड़ेगा।

वैज्ञानिकों को प्रयोगशाला तक पहुँचाने और घर वापस लाने के लिए यातायात की व्यवस्था करनी होगी। या तो मोटर चलने योग्य सड़क तैयारी की जायगी, अथवा बिजली से चलाने वाली रेलगाड़ी या ठेले की व्यवस्था होगी। ठेले द्वारा एक बार में दो या तीन आदमी ऊपर नीचे आ जा सकेंगे। पानी की व्यवस्था और देश के साथ यातायात और बेतार का सम्बन्ध स्थापित करना आदि विषय भी विचारनीय हैं।

प्रयोगशाला के लिए उपयुक्त स्थान की खोज करने के लिए भारत सरकार ने वैज्ञानिकों का एक दल जून १९४८ में बद्रीनाथ भेजा था। इस दल में ६ वैज्ञानिक थे—एक अन्तरिक्ष विज्ञान विशेषज्ञ, एक खगोलविज्ञान विशेषज्ञ, दो हिम एवं हिम नदी विषयक विशेषज्ञ, एक भूगर्भ विज्ञान विशेषज्ञ और एक प्राणि विज्ञान विशेषज्ञ।

शिखरों के चित्र

इस दल ने लगभग एक मास तक हिमालय के विभिन्न शिखरों का निरीक्षण किया। उसने इन शिखरों के अनेक चित्र भी लिये। दल ने जो स्थान पसंद किये, उनमें से दो बद्रीनाथ के समीप—(नारायण पर्वत—
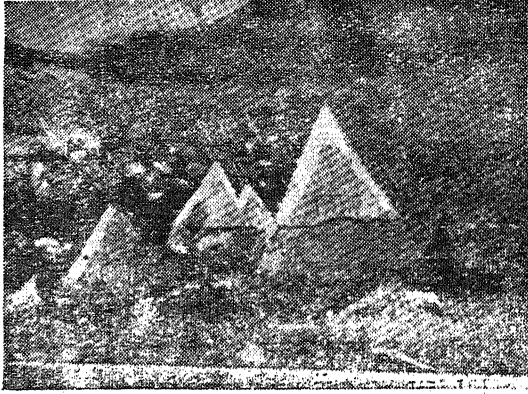
यहाँ १३,६०० फुट की ऊंचाई पर पगरचूल में भारतीय वैज्ञानिकों ने पड़ाव डाला था। प्रयोगशाला के लिए उन्हें यह स्थान उपयुक्त न लगा।

१९,५७० फुट और नर पर्वत—१९,२१० फुट) और तीन कुमारी दर्रे के समीप (१२,००० फुट के १५,००० फुट) हैं।

दल ने कुमारी दर्रे के समीपवर्ती शिखरों को प्रयोगशाला के स्थान के लिए अधिक उपयुक्त समझा। 'पंगरचूल' शिखर १५,००० फुट ऊँचा है और उसके समीप कोई भी शिखर उसके बराबर ऊँचा नहीं है। पंगरचूल शिखर और कुमारी दर्रे के मध्य एक अन्य उपयुक्त स्थान है, जो १४,००० फुट ऊँचा है। परन्तु दल ने 'घोरसोआँ' शिखर की, जो १२,४५८ फुट ऊँचा है, विशेष रूप से सिफारिश की है। दल का कहना है कि एक मोटर सड़क द्वारा इस स्थान को 'जोशीमठ' से बड़ी आसनी से मिलाया जा सकता है। 'जोशीमठ' से एक मार्ग सीधा मैदानों को जाता है। शिखर से ५०० फुट नीचे की ओर 'आलिबुगियाल' नाम का एक विशाल समतल स्थान वैज्ञानिक बस्ती के लिये सर्वथा उपयुक्त है।

वैज्ञानिकों की बस्ती

दल इस पक्ष में नहीं था कि वैज्ञानिकों को प्रयोगशाला तक लाने और वहाँ से घर पहुँचाने के लिए बिजली के तार से चलने वाली रेल बनाई जाय। उसका विचार था कि वैज्ञानिकों की बस्ती और प्रयोगशाला एक ही स्थान पर हो, जिससे प्रतिदिन आने-जाने का झंझट न रहे। बिजली और पानी का प्रबन्ध बड़ी सरलता से किया जा सकता है। परन्तु हवाई अड्डे के लिए स्थान का निर्णय तब करना ठीक होगा, जब प्रयोगशाला के लिए स्थान निश्चित हो जाय।

प्रयोगशाला के लिए उपयुक्त स्थान की खोज में दल को बड़ी कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं। सबसे बड़ी कठिनाई खाने पीने का सामान तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ साथ ले जाने में हुई। सामान ले जाने के लिये लगभग ४० कुली और ६ खच्चर रखे गये थे। कुल सामान का वजन लगभग ६० मन था। इसमें अनाज से लेकर पिनों और टिंचर आइडान तक की सभी प्रकार की छोटी मोटी वस्तुएँ सम्मिलित थीं, जो संकट काल के लिए प्रयोजनीय समझी गयी थीं।

दल को मार्ग में छोटी-मोटी कई अन्य कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ा। कुछ मनोरंजक घटनाएँ भी हुईं। पहाड़ की पैदल चढ़ाई ने तो छक्के छुड़ा दिए। पर यह सब होते हुए भी दल अपने उद्देश्य में सफल हो ही गया।

सिफारिशें

सरकार ने दल की सिफारिशों पर विचार कर लिया है, परन्तु अभी स्वीकृति नहीं दी। प्रयोगशाला की योजना बहुत व्ययसाध्य है, अतः अपनी स्वीकृति देने से पहले वह इस सम्बन्ध में पूरी छान बीन कर लेना चाहती है। सरकार यह जानना चाहती है कि वैज्ञानिकों के दल ने जिन स्थानों के लिए सिफारिश की है, उनसे भी अधिक उपयुक्त कोई स्थान मिल सकता है या नहीं। इस उद्देश्य से वह ६ वैज्ञानिकों का एक दूसरा दल इसी ग्रीष्म ऋतु में हिमालय पहाड़ में स्थान की खोज के लिए फिर भेज रही है।

# भोजन को स्वादिष्ट बनाने का एक नवीन साधन—सोडियम ग्लूटामेट

लेखक : डा० रामचरण मेहरोत्रा

मानो सोडियम ग्लूटामेट का नाम कदाचित् आपके लिए नया है, परन्तु भोजन के विशेषज्ञों का विश्वास है कि शीघ्र ही यह साधारण पदार्थ प्रत्येक घर में मसालों के डिब्बे में एक प्रमुख स्थान ले लेगा।

देखने में शकर सा, खाने में नमकीन सा, यह एक साधारण लवण है। यह एक प्राकृतिक पदार्थ है जो लगभग किसी वनस्पति या हरे पौधे से निकाला जा सकता है। साधारणतया इसे गेहूँ या जौ की भूसी से निकालते हैं। चीन के लोग शताब्दियों पूर्व से इसके प्रयोग को जानते हैं परन्तु आज के वैज्ञानिक समाज में सन १९३४ में संयुक्त प्रदेश अमरीका में यह सब से पहिले शुद्ध रूप में तैयार किया गया।

शीघ्र ही इसकी समस्त मात्रा सेना के राशन के लिए नियंमत्रित कर ली गई। युद्ध के बाद इसका उत्पादन ६,०००,००० पाउण्ड के स्थान पर १२,०००,००० पाउण्ड होने लगा, परन्तु आज भी या लगभग सब का सब भोजन सम्बन्धित व्यवसायों या केवल बड़े बड़े होटलों में ही पहुँचने पाता है और नित्य इसकी माँग तेजी से बढ़ रही है। आजकल अमरीका में यह साधारण जनता के लिए भी थोड़ा बहुत मिल ही जाता है।

इस पदार्थ का मुख्य गुण जिसके कारण यह इतना लोक प्रिय हो उठा है यह है कि यह भोजन के स्वाद में वृद्धि कर देता है। भोजन के समस्त विशेषज्ञ इस ओर एक मत हैं कि यह पदार्थ भोजन पदार्थ की सुगन्ध को बढ़ा देता है। इसकी इस शक्ति परीक्षा की आसानी से की जा सकती है। यदि आप कोई सुगन्ध लेकर उसे पानी से हलका करते जायें और जब उसकी सुगन्ध कठिनाई से आती प्रतीत हो तो एक चुटकी इस अलौकिक पदार्थ की डाल दीजिए। आप देखियेगा कि सुगन्ध फिर बहुत तीव्र हो उठती है। वैज्ञानिकों का कहना है कि सुगन्ध तो उतनी ही रहती है परन्तु यह पदार्थ स्वाद शक्ति अधिक तीव्र बना देता है।

साधारण मनुष्य के लिए यह सौभाग्य की बात है कि यह पदार्थ महँगा नहीं है। इसका ४ औंस का डिब्बा १ डालर (लगभग ५ रुपये) के मिल जाता है और ५-६ आदमियों के खाने को स्वादिष्ट बनाने के लिए इसकी एक चुटकी भर मात्रा पर्याप्त है। इसका विशेष गुण यह है कि यह लगभग किसी भी प्रकार के खाने के स्वाद को बढ़ा सकता है। इसका कोई रङ्ग नहीं होता न स्वयं अपनी कोई गन्ध होती है और साथ ही भोजन के साथ पकाने पर इसकी इस शक्ति में कोई कमी नहीं आती। कुछ काल तक रक्खा रहने पर भी इसकी शक्ति में कोई कमी होती नहीं देखी गई है। इस प्रकार यह किसी भोज्य पदार्थ को अधिक स्वादिष्ट बना देने की शक्ति रखने वाला एक अलौकिक पदार्थ है। इसका मुख्य उपयोग ऐसे पदार्थों की सुगन्ध फिर से तीव्र कर देने में है जो बासी होने के कारण गन्धहीन हो गये हों। या जो ज्यादा उबाले जाने के कारण बेस्वाद हो गये हों इसे या तो आरम्भ में या खाना तैयार हो जाने के बाद डाला जा सकता है।

रासायनिक दृष्टिकोण से यह ग्लूटामिक अम्ल का सोडियम लवण है। ग्लूटामिक अम्ल एक अमीनो अम्ल है और इसकी गवेषणा लगभग ७० वर्ष पूर्व एक जर्मन रसायनज्ञ ने की थी। एक जापानी रसायनज्ञ 'इकेदा' ने सबसे पहिले इसका सोडियम लवण बनाया। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से चीनी लोग इसका उपयोग शताब्दियों से कर रहे हैं। वे एक प्रकार के समुद्री पौधे से जिसमें यह बहुतायत से होता है इस पदार्थ को निकालते थे और स्वादहीन भोजनों को स्वादिष्ट बनाने के लिए इसका प्रयोग करते थे।

इस पदार्थ को बनाने का पहिला पैटेण्ट जापान में १९०८ में लिया गया और पैटेण्ट में इसको 'एजीनमोटो' नाम दिया गया, इस शब्द के अर्थ है 'सुगन्ध वर्धक'।

द्वितीय युद्ध के आरम्भ में इस पदार्थ को बनाने का व्यवसाय चीन, जापान, तथा संयुक्त प्रदेश अमरीका में चल रहा था। अमरीका में इसका उत्पादन मुख्यतः निर्यात के लिए किया जाता था, परन्तु शीघ्र ही अमरीका वालों को इसके अद्भुत गुण का परिचय मिला और आज यह अमरीका में बहुत ही लोकप्रिय हो गया है और समस्त बड़े अच्छे होटलों तथा व्यापारिक केन्द्रों ने इसका प्रयोग किया है।

भारतवर्ष में अभी तो यह पदार्थ सर्व साधारण की पहुँच के बाहर है परन्तु आशा है कि शीघ्र ही यह लवण यहाँ भी प्रत्येक घर के मसाले के डिब्बे में अपना प्रमुख स्थान बना लेगा।

# हवाई जहाज़*

लें०—डा० सत्यप्रकाश

जब श्री रामचन्द्रजी ने रावण को मार कर लंका का राज्य विभीषण को दे दिया तो पुष्पक विमान में चढ़कर विभीषण ने आकाश से फूलों की ही वर्षा न की परंतु वस्त्र और मणि भी बरसाये और लोगों ने इन्हें खूब लूटा।

चढ़ि विमान सुनु सखा विभीषन।
गगन जाइ बरषहु पट भूषन॥
नभ पर जाइ विभीषन तबहीं।
बरषि दिये मनि अंबर सबहीं॥

बाद को रामचन्द्र जी इसी विमान पर चढ़कर बहुत से वानर और विभीषणादि राक्षस सहित अयोध्या लौटे। जब महात्मा गान्धी की अस्थियाँ त्रिवेणी जी में प्रवाह के लिये आयी थीं, तब हवाई जहाज से अस्थियों के विमान पर फूल बरसाये गये थे। तुम्हें अब तो हवाई जहाज प्रतिदिन ही आकाश में उड़ते देखने को मिलते हैं। आजकल प्रयाग से अगर तुम्हें दिल्ली जाना हो तो हवाई जहाज से जा सकते हो; दो-ढाई घन्टे से काम में ही यह तुम्हें दिल्ली पहुँचा देगा। इसी तरह अगर मदरास जाना चाहो तो तीन दिन की रेल की यात्रा तीन-चार घन्टे में ही तुम पूरी कर सकते हो। तुम यह जानना चाहोगे कि चील की तरह उड़ने वाले यह हवाई जहाज कैसे तैयार कर लिये गये। सन् १७८३ की बात है कि मौनगौलफीय नाम के दो फ्रान्सीसी भाइयों ने आकाश में उड़ने की बात सोची। तुमने आकाश में उड़ते गुब्बारे देखे होंगे इसी तरह के गुब्बारे मौनगौलफीय ने बनाये। यह गुब्बारे २५ गज ऊँचे और ५० गज चौड़े घेरे के थे। इतने बड़े गुब्बारे जब उठे तो अपने साथ आदमियों को भी ऊपर उठा कर ले चल सके। सन् १७६५ में ऐसे ही गुब्बारे में इंगलैन्ड और फ्रान्स के बीच के समुद्र इंगलिश चैनल को लोगों ने पार किया। इन गुब्बारों में हाइड्रोजन या उसी तरह की कोई हलकी गैस भी भरी गई। शायद तुमने हवाई घरों से ऊपर उड़ाये गये हाइड्रोजन गैस वाले गुब्बारे अब भी देखे होंगे जो कि ऊपर की हवा का हाल चाल लेने के लिये भेजे जाते हैं। लगभग ५० वर्ष की बात है कि गुब्बारों द्वारा यात्रा करने का काम बड़ी तेज़ी से आगे बढ़ने लगा। तुमने सुना होगा कि सन् १६१७ में दुनियाँ का प्रसिद्ध युद्ध हुआ था उसमें ज़ेपलिन नामक एक जर्मन व्यक्ति ने इतना बड़ा हवाई जहाज बनाया जो डेढ़ सौ गज लम्बा और ४० गज घेरे का था। यह हवाई जहाज एक घन्टे में ६० मील की गति से चलता था। जेपलिन के बनाये हवाई जहाज का नाम भी ज़ेपलिन रक्खा गया। सन् १६२८ में ऐसे ही एक जेपलिन हवाई जहाज ने ११२ घन्टे में जरमनी से अमरीका तक की यात्रा

*आल इंडिया रेडियो इलाहाबाद के ग्राम पञ्चायत के अन्तर्गत दी गई एक बातचीत के आधार पर।

थी। यह हवाई जहाज वह था जिसमें हाइड्रोजन या इसी तरह की दूसरी हलकी गैसों से भरे थैले रखे जाते थे। तुम यह समझ सकते हो कि मानो बहुत से गुब्बारे मिलकर के किसी एक हवाई जहाज को ऊपर उठा रहे हों।

आजकल जो हवाई जहाज तुम देखते हो उनको ऊपर उठाने के लिये गुब्बारों की जरूरत नहीं है, यह तो हवा में वैसे ही चलते हैं जैसे सड़कों पर मोटरें दौड़ती हैं। तुम यह जानना चाहते होगे कि इतने भारी हवाई जहाज हवा में कैसे टिक पाते हैं। असली बात तो यह है कि यह तेज़ी से चलते हैं और उनकी यह तेजी ही इन्हे आकाश में नीचे गिरने से बचाये रखती है। तुमने बाइसिकिल चलते देखी है। जब तक यह चलती रहती है, तब तक सीधी खड़ी रहती है पर जैसे ही इसे चलाना बन्द कर दो तो यह नीचे गिर पड़ती है। हवा में तुम तीर बड़ी दूर तक फेंक सकते हो। जमीन पर गिरने से पहले यह हवा में कैसे इतनी देर टिक सका। तुम जानते हो कि यह तेजी से चल रहा था और इसीलिये नीचे गिरने से बचा रहा। बस यही बात हवाई जहाज के चलाने में भी है। जैसे मोटर गाड़ी के अन्दर पेट्रोल जलता है उसी तरह इन हवाई जहाजों में भी पेट्रोल जलाया जाता है। और पेट्रोल के जलने पर हवाई जहाज की मोटर इसे आगे और ऊपर की ओर उठाने लगती है और धीरे-धीरे यह हवाई जहाज हवा में ऊपर उड़ने लगता है।

पेट्रोल की मोटर बराबर चलती रहती है और जैसे पैरगाड़ी चलाने वाला आदमी पैडिल की गति से साइकिल को तेज और धीमी कर सकता है उसी तरह पेट्रोल कम या ज्यादा जला कर हवाई जहाज की चाल भी वश में रखी जाती है। सन् १९०० के लगभग राइट नाम के दो भाइयों ने इस तरह के हवाई जहाज बनाने का प्रयत्न किया और तब से आजतक हवाई जहाज बनाने और उनके चलाने में बराबर उन्नति होती रही है।

तुमने एरोड्रोम अर्थात हवाई जहाजों के अड्डे को देखा होगा। ऐसे अड्डे इलाहाबाद, लखनऊ, कानपुर, दिल्ली और दूसरे बड़े शहरों में बनाये गये हैं। दूर से देखो तो चील के घोंसलों की तरह इन हवाई जहाजों के घोसले इन अड्डों पर दिखलाई पड़ेंगे। हवाई जहाजों के उतरने के लिये बड़ा भारी मैदान होता है। जहाज जब उतरता है तो ज़मीन पर थोड़ी दूर अपने पहिएदार पैरों पर यह दौड़ता है। इन अड्डों में इस दौड़ के लिये एक सड़क बनी होती है। तुमने यह भी देखा होगा कि रात के समय हवाई जहाजों के इन अड्डों पर बड़ी तेज़ बत्ती चारों ओर घूमती रहती है। यह इस तरह घूमती है कि ऊपर से उड़ते हुए जहाज इसके प्रकाश को देखकर समझ जाते हैं कि हवाई अड्डा पास में आ गया है। अगर रोशनी का यह प्रबन्ध न हो तो रात में जहाज उतर ही न सकें।

सात-आठ वर्ष पहले जो महायुद्ध हुआ था उसमें इन हवाई जहाजों ने बड़ा भारी काम किया। तुमने रामायण में पढ़ा होगा कि जब सीता जी को चुरा कर रावण हवा में ऊपर उड़ा चला जा रहा था तब जटायु ने ऊपर उड़ कर रावण से युद्ध किया। रावण ने जटायू के पंख काट डाले और बेचारा जटायु जमीन पर गिर पड़ा। जैसे रावण और जटायु की लड़ाई आकाश में हुई थी वैसी ही इस युद्ध में भी अंग्रेज, रूस, जापान और जर्मनी वालों की लड़ाई हुई। हवाई अड्डों में रखे हुए हवाई जहाज ऐसे ही मालूम होते हैं मानों बहुत से जटायु वहाँ पर धरे हुए हों। इन हवाई जहाजों ने शहरों पर बम के गोले बरसाये और बड़े-बड़े नगरों को तहस-नहस किया। युद्ध के दिनों में इन हवाई जहाजों को नष्ट करने के लिये हवामार तोप भी बनाई गई। यह ऐसी तोपें थीं जो जमीन पर से ही उड़ते हुए हवाई जहाजों का निशाना लगा सकती थीं।

तुमने शायद यह सुना हो कि लड़ाई के दिनों में लोगों ने छतरी के सहारे जहाजों से नीचे उतरना भी सीखा। जर्मनी की बहुत सी फौजें दुश्मनों के नगरों में ऐसी ही छतरी के सहारे नीचे अनजाने उतर आई और उन्होंने शत्रुओं को बहुत नुकसान पहुँचाया। इन छतरियों को पैराशूट कहते हैं। यह ख़ास कपड़े की बनी होती है और हवाई जहाज से कूदते समय जब आदमी इस छाते को खोल लेता है तो वह उसके सहारे जमीन पर इतने धीरे-धीरे उतरता है कि उसको चोट नहीं लगती। जब लड़ाई ख़तम हो गई और पैराशूट की जरूरत न रही तो तुमने देखा होगा कि बाजारों में पैराशूट का यह कपड़ा बहुत बिकने

आया। हवा में उड़ने वाले यह हवाई जहाज चील या कबूतरों के झुण्ड के समान आकाश में मण्डराते हुए किसी देश पर से जब जाते थे तो वहाँ का दृश्य देखने योग्य होता था। लोगों को खतरे के घण्टे से सूचना दी जाती थी कि शत्रुओं के जहाज आ रहे हैं और तुम लोग घुसकर मकानों के अन्दर छिप जाओ। तुम्हें यह सुन कर आश्चर्य होगा कि लड़ाई के जमाने में एक आध ऐसे भी हवाई जहाज बनाये गये जो बिना किसी आदमी के चलाये अपने आप चलते थे और उनमें ऐसी चाभी भरी होती थी कि ठीक जगह पर जाकर दुश्मनों के शहरों पर बम-बारी कर सकते थे। कहा जाता है कि कुछ हवाई जहाज तो ऐसे भी बने थे जो एक ख़ास तरह की किरण के द्वारा एक जगह से दूसरी जगह ठीक मार्ग से पहुँचाये जा सकते थे।

तुम शायद जानते हो कि दुनिया की वह भयंकर लड़ाई जापान में किस तरह समाप्त हुई। अमरीका से एक हवाई जहाज चला। उसमें एक ख़ास तरह का बम था। इस हवाई जहाज ने बहुत ऊपर से यह बम जापान के एक शहर हीरोशिमा के ऊपर छोड़ दिया। इस बम में केवल आधा सेर बम का मसाला था पर वह इतना भयंकर था कि उसने क्षण भर में सारा हीरोशिमा नगर तहस-नहस कर डाला। इस तरह से हवाई जहाज और इस बम ने मिलकर दुनिया में ऐसा डर फैला दिया कि फिर लड़ाई बन्द कर देनी पड़ी।

अब जब से लड़ाई बन्द हो गई है हवाई जहाजों से दूसरे काम लिये जाने लगे हैं। सब से बड़ी बात तो यह है कि हवाई जहाज के द्वारा अब यात्रा करना बड़ा आसान हो गया है। सरकार की ओर से जैसे रेल की लाइने खुली हैं उसी तरह से हवाई लाइने भी खोली गई हैं। इन लाइनों पर कई कम्पनियों के हवाई जहाज ठीक समय पर यात्रियों को एक जगह से दूसरी जगह पर ले जाते हैं। जैसे रेल के टिकट मिलते हैं वैसे ही हवाई जहाज की यात्रा के भी टिकट मिलते हैं। जैसे रेल समय पर आती है और ठीक समय पर छूटती है उसी तरह हवाई जहाज भी समय पर अपने अड्डों पर आते हैं और ठीक समय पर सवारियों को लेकर दूसरे अड्डे की ओर बढ़ जाते हैं। तुमने भारत एअर वेज़ का नाम शायद सुना होगा। तुम इससे टिकट खरीद कर बरमा या श्याम देशों की यात्रा कर सकते हो।

सब से बड़ी सुविधा तो हवाई जहाजों से यह हो गई है कि चिट्ठियाँ बड़ी जल्दी इनसे एक जगह से दूसरी जगह भेजी जा सकती हैं। इलाहाबाद के डाकखाने में अगर तुम ठीक वक्त पर चिट्ठी डाल दो तो यह दो तीन घन्टे में दिल्ली या कलकत्ता पहुँच जायगी। पहले दिनों में हिन्दुस्तान से विलायत चिट्ठी जाने में १५-२० दिन लगते थे पर अब तो विलायती चिट्ठयाँ हवाई डाक से जाती है और तीन चार दिन में पहुँच जाती हैं।

तुम जानते होगे कि आकाश में जो हवाई जहाज उड़ते है उनमें बैठने की जगह भी होती है। जो हवाई जहाज यात्रियों को ले जाते हैं उनमें १०-२० व्यक्तियों के बैठने के लिये अच्छी कुर्सियाँ लगी होती हैं और यात्री बड़े सुख से इन पर बैठता है। हवाई जहाज जब ऊपर उठते हैं तो उनके पंखों की इतनी तेज़ आवाज़ होती है जिससे आदमी के कान बहरे पड़ जाते हैं। इसी लिये हवाई जहाज में बैठने वाले यात्रियों को कान में लगाने के लिये ख़ास तरह की रुई दी जाती है। यात्रियों को बीच में खाने के लिये बिसकिट और चाय का भी प्रबन्ध होता है क्योंकि हवाई अड्डे शहर से दूर होते हैं। हवाई कम्पनियाँ अपनी मोटर गाड़ियों में यात्रियों को स्टेशन से शहर पहुँचा देती हैं। अब तो राज्य के बड़े-बड़े अफसर, देश के नेता और बड़े-बड़े व्यापारी समय बचाने के लिये हवाई जहाज से ही यात्रा करते हैं। ज्यों-ज्यों हवाई जहाज का प्रचार बढ़ेगा त्यों-त्यों हवाई जहाज से यात्रा करना सस्ता और सहल हो जायगा। अब तो शीघ्र ही हमारे देश में हवाई जहाज बनने लगेंगे।

# विज्ञान-परिषद् की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकों की सम्पूर्ण सूची

१—चुम्बक—हाई स्कूल में पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी० सजि०; ।।।≈)

२—सूर्य-सिद्धान्त—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखने का सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१५; १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; सजिल्द; दो भाग में, मूल्य ८)। इस भाष्य पर लेखक को हिन्दी साहित्य सम्मेलन का १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है।

३—वैज्ञानिक परिमाण—विज्ञान की विविध शाखाओं की इकाइयों की सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस-सी०, १)

४—समीकरण मीमांसा—गणित के एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।) द्वितीय भाग ।।≈),

५—निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)—गणित के एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमतीप्रसाद अग्निहोत्री बी० एस-सी०; ।।।),

६—बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित—इंटरमीडियेट के गणित के विद्यार्थियों के लिये—ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी०, १।),

७—गुरुदेव के साथ यात्रा—डाक्टर जे० सी० बोस की यात्राओं का लोकप्रिय वर्णन; ।≈)

८—केदार-बद्री यात्रा—केदारनाथ और बद्रीनाथ के यात्रियों के लिये उपयोगी; ।≈)

९—वर्षा और वनस्पति—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शंकरराव जोशी; ।≈)

१०—विज्ञान का रजत-जयन्ती अंक—विज्ञान परिषद् के २५ वर्ष का इतिहास तथा विशेष लेखों का संग्रह; १)

११—फल-संरक्षण—दूसरा परिवर्धित संस्करण-फलों की डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनाने की अपूर्व पुस्तक; २१२ पृष्ट, २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्र नारायण सिंह एम० एस-सी०; २।।)

१२—व्यङ्ग-चित्रण—(कार्टून बनाने की विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी एम० ए०; १७५ पृष्ठ; सैकड़ों चित्र, सजिल्द; २)

१३—मिट्टी के बरतन—चीनी मिट्टी के बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र; सजिल्द; २)

१४—वायुमंडल—ऊपरी वायुमंडल का सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र सजिल्द; २)

१५—लकड़ी पर पालिश—पालिश करने के नवीन और पुराने सभी ढंगोंका ब्योरेवार वर्णन। इससे कोई भी पालिश करना सीख सकता है—ले डा० गोरखप्रसाद और श्रीरामरतन भटनागर, एम०, ए०; २१८ पृष्ठ; ३१ चित्र, सजिल्द; २)

१६—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश, आकार बड़ा विज्ञान के बराबर २६० पृष्ठ, २००० नुसखे, १०० चित्र; एक-एक नुसखे से सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हजारों रुपये कमाये जा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थ के लिये उपयोगी; मूल्य अजिल्द २।।)

१७—कलम-पेबंद—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ५० चित्र; मालियों, मालिकों और कृषकों के लिये उपयोगी; सजिल्द; २)

१८—जिल्दसाज़ी—क्रियात्मक और ब्योरेवार। इससे सभी जिल्दसाज़ी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०; १८० पृष्ठ, ६२ चित्र; सजिल्द २),

१९—त्रिफला—दूसरा परिवर्धित संस्करण-प्रत्येक वैद्य और गृहस्थ के लिये—ले० श्री रामेश वेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ; ३ चित्र, एक रङ्गीन; सजिल्द २।।।=)

यह पुस्तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय, की १३ श्रेणी के लिए द्रव्यगुण के स्वाध्याय पुस्तक के रूप में शिक्षापटल में स्वीकृत हो चुकी है।"

२०—तैरना—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगों को बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद पृष्ठ १०४ मूल्य १),

२१—अंजीर—लेखक श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, अंजीर का विशद वर्णन और उपयोग करने की रीति। पृष्ठ ४२, दो चित्र, मूल्य ।।=)

यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय के शिक्षापटल में स्वीकृत हो चुकी है।

२२—सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओं के विचित्र संसार, पेड़ पौधों की अचरज-भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र और तारों की जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिष के संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञान के आकार के ४५० पृष्ठ और २३० चित्रों से सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द मूल्य ६)

२३—वायुमण्डल की सूक्ष्म हवाएँ—ले० डा० सन्त प्रसाद टंडन, डी० फिल० मूल्य ।।।)

२४—खाद्य और स्वास्थ्य—ले० श्री डा० ओंकारनाथ परती, एम० एस-सी०, डी० फिल० मूल्य ।।।)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं :—

२५—विज्ञान हस्तामलक—ले० स्व० रामदास गौड़ एम० ए०। भारतीय भाषाओं में अपने ढंग का यह निराला ग्रंथ है। इसमें सीधी सादी भाषा में अठारह विज्ञानों की रोचक कहानी है। सुन्दर सादे और रंगीन पौने दो सौ चित्रों से सुसज्जित है, आज तक की अद्भुत बातों का मनोमोहक वर्णन है, विश्वविद्यालयों में भी पढ़ाये जाने वाले विषयों का समावेश है, अकेली यह एक पुस्तक विज्ञान की एक समूची लैब्रेरी है, एक ही ग्रंथ में विज्ञान का एक विश्वविद्यालय है। मूल्य ६)

२६—भारतीय वैज्ञानिक—१२ भारतीय वैज्ञानिकों की जीवनियाँ; ले० श्री श्यामनारायण कपूर, सचित्र ३८० पृष्ठ; सजिल्द; मूल्य ३।।) अजिल्द ३)

२७—वैक्युम-ब्रेक—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा। पुस्तक रेलवे में काम करने वाले फिटरों, इंजन-ड्राइवरों, फोरमैनों और कैरेज एग्जामिनरों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ; ३१ चित्र जिनमें कई रंगीन हैं, २),

## विज्ञान - परिषद् बेली रोड, इलाहाबाद

मुद्रक—जगतनारायण लाल हिन्दी साहित्य प्रेस प्रयाग। प्रकाशक—विज्ञान-परिषद्, बेली रोड, इलाहाबाद

भाग ७०
संख्या १, २

संवत् २००६,
अक्टूबर, नवम्बर १९४९

वार्षिक मूल्य ३) ]

[ एक संख्या का मूल्य ।)

श्री हरिश्चन्द्र आई० सी० एस०, जज, प्रयाग हाईकोर्ट ( सभापति )
प्रो० सालिगराम भार्गव तथा डा० श्री रंजन ( उप सभापति ) डा० हीरालाल दुबे (प्रधान मंत्री )
डा० रामदास तिवारी तथा श्री महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव ( मंत्री ) श्री हरिमोहनदास टंडन (कोषाध्यक्ष)

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

प्रधान सम्पादक
**श्री रामचरण मेहरोत्रा**
विशेष सम्पादक
डाक्टर सत्यप्रकाश डाक्टर विशंभरनाथ श्रीवास्तव
डाक्टर गोरखप्रसाद डाक्टर ब्रजकिशोर मालवीय

## विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

### परिषद् का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

### परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उपसभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमंत्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे, जिन के द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

### सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिये वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशन में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित, परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों विवरणों इत्यादि के बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उन का प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन-चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायेंगे।

## विषय-सूची

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुखपत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ६६ | सम्वत् २००६ अक्टूबर-नवम्बर १६४६ | संख्या १-२

# भारत में रसायन की परम्परा और औद्योगिक धन्धे

श्री डॉ० सत्यप्रकाश डी० एस-सी०

हमारा गत दो सहस्र वर्षों का इतिहास उत्थान, पतन, विप्लव, अवसान, उदासीनता और अन्ततोगत्वा परवशता का इतिहास है। बहुत दिनों बाद देश की स्वतंत्रता के अवसर पर श्रद्धाञ्जली अर्पित करते समय इस लेख में हम अपने देश की रासायनिक परम्परा और उद्योग-धन्धों के सम्बन्ध में सिंहावलोकन करने का प्रयास करेंगे। राज्य बनते और बिगड़ते हैं, शासन-पद्धतियों में परिवर्तन होता है, पर यह नितान्त आवश्यक नहीं है कि उसी परम्परा के साथ-साथ कलाकौशल या उद्योग व्यवसाय में भी कोई परिवर्तन हो जाय। शासन की व्यवस्था के आन्तरिक परिवर्तन के अवसर पर ऐसे परिवर्तन बहुधा कम होते हैं, पर जब कभी बाहर से नई संस्कृति के वाहक बनकर कुछ शासक देश में अपना आधिपत्य स्थापित करते हैं, तब बहुधा ऐसा हुआ करता है कि विदेशी और स्वदेशी पद्धतियों के सम्पर्क से एक नई स्वदेशी पद्धति का विकास होता है। इस प्रकार युग-युग की स्वदेशी पद्धतियाँ पृथक् होती हैं। व्यापारिक आयात-निर्यात का भी पद्धतियों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। हमारे व्यापारी अन्य देशों में जाते, और अन्य देश में आते, इस प्रकार के आवागमन से पारस्परिक आदान-प्रदान, और कला कौशल में परिवर्तन होता है। इसके अतिरिक्त युग-युग की नयी प्रवृत्तियाँ-धर्म, भक्ति, राजनीति, दर्शन आदि से प्रभावित प्रवृत्तियाँ—कभी किसी समय किसी विशेष कला को प्रोत्साहन देती हैं और कभी किसी दूसरी को। हमारे पास अपने उद्योग-धन्धों का कोई क्रम-बद्ध इतिहास नहीं है। प्रदर्शनालयों में संगृहीत सामग्री तैयार वस्तुओं का दिग्दर्शन अवश्य कराती है, पर वे वस्तुएँ किस प्रकार बनायी गयीं, और किन मूल्यों पर बनीं और बिकीं, इसका कोई विवरण हमें प्राप्त नहीं है। औद्योगिक विधियों को लेखबद्ध करने की परम्परा हमारे देश में कभी नहीं रही थी, और न इन विषयों का शिक्षण लिखित ग्रंथों द्वारा होता था। यही कारण है कि हमारे पास युग-युग के धन्धों का साहित्य विद्यमान नहीं है। इस लेख में यह तो सम्भव नहीं है कि ऐतिहासिक

काल-क्रम के अनुसार सिंहावलोकन किया जाय, केवल कुछ विशेष स्फुट विषयों का सामान्यतः ही दिग्दर्शन कराया जा सकेगा। रसायनशास्त्र का प्रयोग इस देश में आयुर्वेद और उद्योग धन्धों—दोनों में हुआ है। पहले हम आयुर्वेदिक विवरण देंगे।

आयुर्वेद और रसायन—आयुर्वेद की दृष्टि से चरक और सुश्रुत हमारे देश के प्राचीन और मान्य ग्रंथ हैं। भारतीय आयुर्वेद के ये ग्रंथ अत्यन्त प्रामाणिक हैं। इन दोनों में चरक अधिक प्राचीन और सम्भवतः ब्राह्मणकालीन हैं, और सुश्रुत धन्वन्तरि के शिष्य सुश्रुत ने लिखा था। सुश्रुत के मौलिक ग्रंथ का नाम "वृद्ध सुश्रुत" है, और वर्तमान सुश्रुत नागार्जुन द्वारा परिवर्द्धित संस्करण है। दृढबल ने चरक के मौलिक ग्रंथ में भी कुछ विशेष बातें सम्मिलित कर दीं। चरक और सुश्रुत का ठीक रचनाकाल चाहे जो भी कुछ रहा हो, पर ऐसा कोई समय बाद को नहीं आया, जब कि इन ग्रंथों का प्रभाव न रहा हो। सुश्रुत के बाद ही जो सबसे प्रमुख नाम हमको मिलता है वह नागार्जुन का है। तीन नागार्जुनों का उल्लेख है—सिद्ध नागार्जुन, लोहशास्त्र के रचयित नागार्जुन और माध्यमिक सूत्रवृत्ति के रचयिता बौद्ध नागार्जुन। बहुत सम्भव है कि ये तीनों एक ही हो हों। इस साहित्य के सम्बन्ध में चक्रपाणि, माधव और वाग्भट्ट के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

प्राचीन ग्रंथों में पतञ्जलि का लोहशास्त्र भी अत्यन्त प्रामाणिक माना जाता है। इस ग्रंथ में नमक और शोरे के तेजाबों का और इनके मिश्रण "विडम्" का (aqua regia) उल्लेख है। पतञ्जलि का लोहशास्त्र इस समय उपलब्ध नहीं है, पर इसके अवतरण बाद के लिखे आयुर्वेद और रसायन के ग्रंथों में मिलते हैं। नागार्जुन ने पारद धातु के सम्बन्ध में विशेष प्रयोग किए। चक्रदत्त ने नागार्जुन के ग्रंथ का जो सारांश दिया है, उसमें शुद्ध लोहे के पहिचान की रासायनिक विधि दी हुई है। वासवदत्ता नामक ग्रंथ में पारदपिण्ड का उल्लेख है—पारदपिण्ड इव कालधातु वादिनः। वृन्द (६५० ई०) ने रसामृत चूर्ण का उल्लेख किया है जो पारे का सलफाइड है। इसी ने पर्पटीताम्र (cuprous Culphide) का भी उल्लेख किया है। चक्रपाणि ने (१०५० ई०) पारद और गन्धक की बराबर मात्रा लेकर पारे के काले सलफाइड (कज्जली) बनाने का विस्तार दिया है।

रसार्णव ग्रंथ में ज्वालाओं का रंग देखकर धातुओं को पहिचानने की विधि दी है :—

आवर्त्तमाने कनके पीता तारे सिता सुभा।
शुल्वे नीलनिभा तीक्ष्णे कृष्णावर्णा सुरेश्वरि ॥
वंगे ज्वाला कपोता च नागे मलिनधूमता।
शैले तु धूसरा देवि आयसे कपिलाप्रभा ॥
अयस्कान्ते धूमवर्णा सस्यके लोहिता भवेत्।
वज्रे नानाविधा ज्वाला सस्यके पाण्डुरप्रभा ॥
(रसार्णव, यंत्रमूषा० चतुर्थ पटल, ४६-५७)।

अर्थात् ताँबे की ज्वाला नीली, वंग की कपोतवर्ण, सीसे की मलिन धूम, लोहे की कपिलवर्ण, सस्यक की लाल इत्यादि।

इसी रसार्णव में तीन तरह के क्षारों का उल्लेख आता है :—

त्रिक्षाराष्टंकणक्षारो यवक्षारश्च सर्जिका ॥ (पंचम पटल ३५)।

अर्थात् टंकण या सुहागा (borax), यवक्षार (potash carbonate) और सर्जिका (trona, soda)।

आठ महारस निम्न गिनाए हैं :—

माक्षिकं विमलं शैलश्चपलो रसकस्तथा।
सस्यको दरदश्चैव स्रोतोऽञ्जनथाष्टकम् ॥

माक्षिक (copper pyrites), विमल, शैल (silica) चपल, रसक (calamine), सस्यक (bluevitriol), दरद (cinnabar) और स्रोताञ्जन ये आठ महारस हैं।

रसरत्नसमुच्चय ग्रंथ ने आठ रसों का विभाग इस प्रकार किया है:—

अभ्रवैक्रान्त माक्षीक विमलाद्रिज-सस्यकम्।
चपलोरसकश्चेति ज्ञात्वाष्टौ सग्रहेद्रसान् ॥ (२, १)

अभ्र (mica), वैक्रान्त, माक्षिक, विमल, अद्रिज (शिलाजीत या bitumen), सस्यक, चपल और रसक; ग्रंथकार ने इन आठों का विस्तृत उल्लेख भी किया है जिसका कुछ अंश हम यहाँ उद्धृत करेंगे।

१. पिनाकं नागमंडूकं वज्रमित्यभ्रकं मतम् ।
श्वेतादिवर्णभेदेन प्रत्येकं तच्चतुर्विधम् ॥

अभ्रक तीन तरह का होता है—पिनाक, नागमंडूक, और वज्र। श्वेतादि वर्णभेद से (सफेद, लाल, पीला, काला) यह चार प्रकार का और होता है।

प्रतप्तं सप्तवाराणि निक्षिप्तं काञ्जिकेऽभ्रकम् ।
निर्दोषं जायते नूनं प्रक्षिप्तं वापि गोजले ॥
त्रिफलाक्वथिते चापि गवां दुग्धे विशेषतः ॥(२,१७-१८)

सात बार अभ्रक को गरम करके यदि खटाई में या गोमूत्र में छोड़ा जाय, अथवा त्रिफला के रस में या गाय के दूध में रक्खा जाय तो यह शुद्ध हो जाता है।

२. अष्टास्रश्चाष्टफलकः षट्कोणो मसृणो गुरुः ।
शुद्ध मिश्रित वर्णैश्च युक्तो वैक्रान्त उच्यते ॥
श्वेतोरक्तश्च पीतश्च नीलः पारावतच्छविः ।
श्यामलः कृष्णवर्णश्च कर्बुरश्चाष्टधा हि सः ॥५५-५६॥
विन्ध्यस्य दक्षिणे वाऽस्ति ह्युत्तरे वाऽस्ति सर्व्वतः ।
विक्रामयति लोहानि तेन वैक्रान्तकः स्मृतः ॥६१॥

वैक्रान्त में आठ फलक, और ६ कोण होते हैं। यह चिकना और भारी होता है। यह रंगों का--सफेद, लाल, पीला, नीला, पारावत, छवि, श्यामल और कृष्ण--होता है। विन्ध्य पर्वत के उत्तर और दक्षिण में सभी जगह पाया जाता है।

३. सुवर्णशैल प्रभवो विष्णुना काञ्चनो रसः ।
तापी किरातचीनेषु यवनेषु च निर्मितः ॥
माक्षिकं द्विविधं हेममाक्षिकन्तार माक्षिकम् ।
तत्राद्यं माक्षिकं कान्यकुब्जोत्थं स्वर्ण संनिभम् ॥
पाषाण बहुलः प्रोक्तस्ताराख्योऽल्पगुणात्मकः ।७७-८१।

सोनेवाले पर्वतों में माक्षिक रहता है। तापी नदी के किनारे, किरात देश में, चीन में और यवनदेश में पाया जाता है। यह सोने का सा और चाँदी का सा, दो तरह का होता है। कन्नौज में सोने का सा पाया जाता है। दूसरा माक्षिक पत्थरों के साथ मिश्रित पाया जाता है और कम गुणवाला है।

क्षौद्र गन्धर्व तैलाभ्यां गोमूत्रेण घृतेन च ।
कदलीकन्दसारेण भावितं माक्षिकं मुहुः ॥
मूषायां मुञ्चतिध्मातं सत्त्वं शुल्वनिभं मृदु ॥८६०॥

शहद, गन्धर्वतेल, गोमूत्र, घी और कदलीकन्द के रस से भावित करके मूषा (crucible) में गरम करने पर यह माक्षिक शुद्ध ताँबा देता है।

४. विमलस्त्रिविधः प्रोक्तो हेमाद्यस्तारपूर्वकः ।
तृतीयः कांस्य विमलस्तत् तत् कान्त्या स लक्ष्यते ॥९६॥
वर्त्तुलः कोणसंयुक्तः स्निग्धश्च फलकान्वितः ॥९७॥
विमलं शिग्रु तोयेन कांक्षीकासीसटंकणैः ।
वज्रकन्दसमायुक्तं भावितं कदली रसैः ।
मोक्षकक्षारसंयुक्तं ध्मापितं मूकमूषगम् ।
सत्त्वं चन्द्रार्क संकाशं प्रयच्छति न संशयः ॥१०३-४॥

विमल तीन तरह का होता है—सोने, चाँदी और काँसे की सी आभा वाला। यह वर्तुलाकार, कोणों से संयुक्त और फलकान्वित होता है। इसे शिग्रु के जल से एवं कांक्षी (alum फिटकरी), कासीस (green vitriol) और टंकण (borax) से, और फिर वज्र-कन्द और कदलीरस से भावित करके मूकमूषा (covered crucible) में गरम किया जाय तो चन्द्रक धातु (एक प्रकार का ताँबा) मिलती है।

सम्भवतः विमल रस भी ताम्रमाक्षिक का ही कोई भेद हो अथवा सम्भवतः इसमें कुछ और धातुओं के भी मिश्रण हों।

५. शिलाधातुर्द्विधा प्रोक्तो गोमूत्राद्यो रसायनः ।
कर्पूरपूर्वकश्चान्यस्तत्राद्यो द्विविधः पुनः ॥१०६॥
ग्रीष्मेतीव्रार्कतप्तेभ्यः पादेभ्यो हिमभूभृतः ।
स्वर्ण-रूप्यार्क गर्भेभ्यः शिलाधातुर्विनिःसरेत् ॥११०॥

शिलाजीत दो तरह का होता है, एक में गोमूत्र की सी और दूसरे में कपूर की सी गन्ध होती है। गर्मी की ऋतु में हिमालय की पादस्थ चट्टानों से यह पिघलकर बह आता है।

६. मयूरकण्ठवच्छायं भाराढ्यमतिशस्यते ॥१२१॥
लकुचद्राव गन्धाश्म टंकणेन समन्वितम् ।
निरुध्य मूषिकामध्ये ध्रियते कौक्कुटैः पुटैः ॥१३२॥
सस्यकस्य तु चूर्णं तु पाद सौभाग्यसंयुतम् ।
करंजतैलमध्यस्थं दिनमेकं निधापयेत् ॥
मध्यस्थमन्धमूषायां ये ध्मापयेत् कोकिलत्रयम् ।
इन्द्र गोपाकृति चैव सत्त्वं भवति शोभनम् ॥१३३-१३४॥

खर्पर का नाम मयूरतुत्थ भी है क्योंकि मोर के कण्ठ के रंग का सा होता है। इस नीले थोथे (तूतिया) से ताँबा प्राप्त करने की विधि इस प्रकार दी है—नीला-थोथा में भाग $\frac{1}{4}$ सुहागा मिलाओ। इसे करंजतैल में एक दिन रक्खो और फिर बन्द मूषा में कोयले की आग पर गरम करो। इन्द्रवधूटी के रंग की धातु प्राप्त होगी।

७. गौरः श्वेतोऽरुणः कृष्णश्चपलस्तु चतुर्विधः।
हेमाभश्चैव ताराभो विशेषाद् रसबन्धनः ॥१४३॥
शेषौ तु मध्यौ लाचयावच्छीघ्रद्रावी तु निष्फलौ।
वंगवद् द्रवते वह्नौ चपलस्तेन कीर्त्तितः ॥१४४॥
चपलः स्फटिकच्छायः षडस्रः स्निग्धको गुरुः ॥१४६॥

चपल चार रंगों के होते हैं—पीला, सफेद, लाल और काला। रसबन्धन अर्थात् पारे के स्थिरीकरण में चाँदी और सोने की सी आभावाले चपल अधिक उपयोगी हैं। अन्तिम दो (लाल और काले) लाख की तरह शीघ्र गलनेवाले और बेकार हैं। आग पर गरम करने से चपल शीघ्र गल जाते हैं और इसीलिए इनका नाम चपला पड़ा है। चपलों में ६ फलक, और स्फटिकों की सी आभा होती है।

यह कहना कठिन है कि चपल वस्तुतः कौनसा रस है।

८. रसको द्विविधः प्रोक्तो दुर्दुरः कारवेल्लकः।
सदलो दुर्दुरः प्रोक्तो निर्दलः कारवेल्लकः ॥१४९॥
हरिद्रा त्रिफला राल सिन्धुधूमैः सटंकणैः।
सारुष्करैश्च पादांशैः साम्लैः संमर्द्य खर्परम् ॥
लिप्तं वृन्ताकमूषायां शोषयित्वा निरुध्यच ॥
मूषां मूषोपरि न्यस्य खर्परं प्रधमेत् ततः।
खर्परे प्रहृते ज्वाला भवेन्नीला सिता यदि ॥
तदासंदंशतो मूषा धृत्वाकृत्वा त्वधोमुखीम्।
शनैरास्फालयेद् भूमौ यथा नालं न भज्यते ॥
वंगाभं पतितं सत्वं समादाय नियोजयेत् ॥१५७-१६१॥

रसक (calamine) दो तरह का होता है, एक दुर्दर (laminated) और दूसरा कारवेल्लक (non-laminated)। इसे हल्दी, त्रिफला, राल, नमक, धुआँ, सुहागा, और चौथाई भाग सारुष्कर और अम्लरसों के साथ संमर्दन करके और वृन्ताकमूषा (tubulated crucible) में रखकर धूप में सुखावे, और इस पर दूसरी मूषा ढाँककर गरम करे। पिघले रसक से निकली ज्वाला जब नीली से सफेद पड़ जाय, तो सदंश (pair of tongs) से मूषा को पकड़ कर उल्टा करे, फिर सावधानी से जमीन पर इस तरह गिराए कि मूषा की नाल (tube) न टूटे। ऐसा करने पर वंग के समान आभावाला सत्त्व नीचे गिरेगा। यह धातु जस्ता (zinc) है। खर्पर रसक का ही दूसरा नाम है।

रसरत्नसमुच्चय के तीसरे अध्याय में उपरसों का विवरण दिया है जिसका उल्लेख हम स्थानाभाव के कारण विस्तार से नहीं कर सकते। आठ उपरस निम्न हैं:—

गन्धाश्म गैरिकासीस कांक्षीताल शिलाञ्जनम्।
कंकुष्टं चेत्युपरसाश्चाष्टौ पारद कर्म्मणि ॥३।१॥

गन्धक (sulphur), गेरू (red ochre), कसीस (green vitriol), कांक्षी (alum), ताल (orpiment), मनःशिला (realgar), अंजन और कामकुष्ठ ये आठ उप-रस हैं जिनका व्यवहार पारे की रसायन में किया जाता है।

गन्धक तीन तरह का होता है—लाल (तोते की चोंच सा), पीला और सफेद। कुछ लोग काले गन्धक का होना भी बताते हैं। गैरिक (गेरू) के दो भेद हैं—पाषाण गैरिक, स्वर्ण गैरिक। कासीस भी दो तरह का है—वालुक कासीस (हरा), पुष्पकासीस (कुछ पीला सा)। कांक्षी, तुवरी या फिटकरी सूरत या सौराष्ट्र में प्राप्त होती थी—सौराष्ट्राश्मनि संभूता मृत्स्ना सा तुवरी मता। इसके एक दूसरे भेद को फटकी, या फुल्लिका कहते हैं जो कुछ पीली होती है। एक फुल्लतुवरी होती हैं जो सफेद है। हरिताल या तालक (orpiment) दो तरह का होता है—पत्राख्य (पत्तेसा) और पिंडसंज्ञक (गाली-नुमा)। मनःशिला लोहे के जंग (किट्ट), गुड़, गुग्गुल और घी के साथ कोष्ठि-यंत्र में गरम करने पर सत्व देता है। अंजन कई तरह के होते हैं—सौवीरांजन या सुरमा (galena or lead sulphide), रसांजन, स्रोतांजन, पुष्पांजन, नीलांजन। सफेद सुरमा या स्रोतांजन सम्भवतः आइसलैण्ड स्पार है। रसांजन आजकल रसौत के नाम

से प्रसिद्ध है। कामकुष्ठ क्या है यह कहना कठिन है। यह हिमालय के पाद शिखर में पाया जाता था। यह नवजात हाथी की विष्ठा है, ऐसा कुछ का विचार था। यह तीव्र विरेचक है।

उपरसों के अतिरिक्त कुछ अन्य साधारण रसों का भी वर्णन आता है—

**कम्पिल्लश्चपरो गौरी पाषाणो नवसारकाः।**
**कपर्दो वह्निजारश्च गिरिसिन्दूर हिंगुलौ॥**
**मृद्दारश्रृंगमित्यष्टौ साधारण रसाः स्मृताः॥३।१२०-१२१॥**

कम्पिल्ल (ईंट के रंग का विरेचक), गौरीपाषाण (स्फटिक, शंख और हल्दी के रंगों का), नवसार या नौशादर (sal ammoniac) जिसे चूलिका लवण भी कहते हैं, कपर्द (वराटक या कौड़ी), अग्निजार (समुद्र-नक्र के जरायु से निकला अज्ञात पदार्थ), गिरि सिन्दूर (rock vermillion), हिंगुल (cinnabar) जिसे दरद भी कहते हैं, मृद्दार श्रृंगक (गुजरात में और आबू पर्वत पर प्राप्त), और राजावर्त्त (lapis lazuli) ये साधारण रस हैं।

इसी ग्रंथ में रत्न या मणियों का उल्लेख भी है :—

**मणयोऽपि च विज्ञेयाः सूतबन्धस्य कारकाः।**
**वैक्रान्तः सूर्य्यकान्तश्च हीरकं मौक्तकं मणिः।**
**चन्द्रकान्तस्तथा चैव राजावर्त्तश्च सप्तमः।**
**गरुडोद्गारकश्चैव ज्ञातव्या मणयस्त्वमी।**
**पुष्पराग महानील पद्मरागं प्रवालकम्।**
**वैदुर्य्य च तथा नीलमेते च मणयो मताः॥४।१-३॥**

पारे के बन्धन के सम्बन्ध में ही इन मणियों का उल्लेख है। मणि ये हैं—वैक्रान्त, सूर्य्य कान्त (sun-stone), हीरक (diamond), मौक्तिक pearl), चन्द्रकान्त (moon-stone), राजावर्त (lapis lazuli), गरुडोद्गार (emerald)। इनके अतिरिक्त पुष्पराग, महानील, पद्मराग, प्रवाल (coral), वैदुर्य्य और नील ये मणि और हैं।

हीरे को वज्र भी कहते हैं। इसका विवरण इस प्रकार है—

**अष्टास्रं चाष्टफलकं षटकोणमति भासुरम्।**
**अम्बुदेन्द्रधनुर्वारित' पुंवज्रमुच्यते॥४।२७॥**

इसमें ८ फलक और ६ कोण होते हैं और इसमें से इन्द्र धनुष के से रंग दीखते हैं। वज्र नर, नारी और नपुंसक भेद से तीन प्रकार के बताए गए हैं जिनके विस्तार की यहाँ आवश्यकता नहीं है।

रसरत्नसमुच्चय ग्रंथ के पाँचवें अध्याय में धातुओं का उल्लेख है। धातुओं का सामान्य नाम 'लोहा' है।

(क) शुद्ध लोह अर्थात् शुद्ध धातु तीन हैं—सोना, चाँदी और लोहा।

**शुद्धं लोहं कनकरजतं भानुलोहाश्म सारम्।**

(ख) पूती-लोह (दुर्गन्ध देनेवाले धातु) दो हैं—सीसा (नाग) और राँगा या वंग (lead and tin)।

**पूती लोहं द्वितयमुदितं नागवंगाभिधानम्।**

(ग) मिश्र लोह (धातुओं का मिश्रण-alloy) तीन हैं—पीतल (brass), कांसा (ball-metal) और वर्त्त लोह—

**मिश्र लोहं त्रितयमुदितं पित्तलं कांस्यवर्त्तम्।**

सोना पाँच प्रकार का माना गया है—प्राकृतिक, सहज, वह्निसंभूत, खान से निकला, रस-वेध से प्राप्त।

**प्राकृतं सहजं वह्नि संभूतं खनिसंभवम्।**
**रसेन्द्र वेध संजातं स्वर्णं पंचविधं स्मृतम्॥५।२॥**

चाँदी तीन प्रकार की है—सहजं खनि संजातं कृत्रिमं च त्रिधामतम्। अर्थात् सहज, खान से निकली और कृत्रिम। इसके शोधन की विधि यह है :—

**नागेन टंकनेनैव वापितं शुद्धिमृच्छति।**

सीसे और सुहागे के संयोग से यह शुद्ध होता है। किसी खपड़े पर चूने और राख का मिश्रण धरे, और फिर बराबर बराबर चाँदी और सीसा। फिर तब तक धमन (roast) करे जब तक सीसा सब खतम न हो जाय ऐसा करने पर शुद्ध चाँदी रह जायगी (५।२२-४१)।

ताँबा दो प्रकार का होता है; एक तो नैपाल का शुद्ध, और दूसरा खान से निकला जिसे म्लेच्छ कहते हैं:—

**म्लेच्छं नेपालकं चेति तयोर्नेपालमुत्तमम्।**
**नेपालादन्यखन्युत्थं म्लेच्छमित्यभिधीयते॥५।४४॥**

लोहा तीन प्रकार का होता है--मुण्ड (wrought iron), तीक्ष्ण और कान्त। मुण्ड के भी तीन भेद हैं—

मृदु, कुण्ठ और कडार।

मुण्डं तीक्ष्णं च कान्तंच त्रिप्रकारमयः स्मृतम्।
मृदु कुण्ठं कडारं च त्रिविधं मुण्डमुच्यते ॥७०॥
द्रुत द्रावमविस्फोटं चिक्कणं मृदु तच्छुभम्।
हतं यत् प्रसरेद् दुःखात् तत्कुण्ठं मध्यमं स्मृतम् ॥
यद्धतं भज्यते भंगे कृष्णं स्यात् तत् कडारकम् ॥७१-७२

मृदु (soft iron) वह लोहा है जो आसानी से गलता है, और टूटता नहीं, और चिकना होता है। कुण्ठ लोहा वह है जो हथौड़े से पीटने पर कठिनता से बढ़ता है। जो हथौड़े से पीटने पर टूट जाय उसे कडारक कहते हैं।

तीक्ष्ण लोहा (cast iron) के छह भेद हैं। इनमें एक परुष है और भंग होने पर पारे का सा चमकता है, और झुकाने पर टूट जाता है। दूसरे प्रकार का लोहा कठिनता से टूटता है और तेज धारवाला है।

कान्तलोहा (magnetic iron) पाँच प्रकार का है—भ्रामक, चुम्बक, कर्षक, द्रावक और रोमकान्त—

भ्रामकं चुम्बकं चैव कर्षकं द्रावकं तथा।
एवं चतुर्विधं कान्तं रोमकान्तं च पंचमम् ॥८८॥

यह लोह एक, दो, तीन, चार या पाँच अथवा अधिक मुखवाला होता है, और रंग भी किसी का पीला, किसी का काला या लाल होता है। जो कान्त-लोहा सभी प्रकार के लोहों को घुमादे उसे भ्रामक कहते हैं। जो लोहे का चुम्बन करे उसे चुम्बक, जो लोहे को खींचे उसे कर्षक, जो लोहे को एकदम गलादे उसे द्रावक, और जो टूटने पर रोम ऐसा स्फुटित हो जाय उसे रोमकान्त कहते हैं (८४-८९)।

लोहे के जंग को लोहकिट्ट (iron rust) कहते हैं।

वंग (tin) दो प्रकार का होता है--खुरक और मिश्रक।

खुरकं मिश्रकं चेति द्विविधं वंगमुच्यते ॥ (५।१५३)

इसमें में खुरक (white tin) उत्तम है। यह सफेद, मृदु, निःशब्द और स्निग्ध होता है, दूसरा मिश्रक (grey tin) श्यामशुभ्रक वर्ण का है।

सीसे के सम्बन्ध में ग्रंथकार का कथन है—

द्रुतद्रावं महाभारं छेदे कृष्णं समुज्ज्वलम्।
पूतिगन्धं बहिः कृष्णं शुद्धसीसमतोऽन्यथा ॥१७१॥

यह शीघ्र जलता है, बहुत भारी होता है, छेदन करने पर (fracture) काले उज्ज्वल रंग का होता है, यह दुर्गन्धयुक्त और बाहर से काले रंग का होता है।

पीतल दो प्रकार की होता है—रीतिका और काकतुण्डी। रीतिका वह है जो गरम करके खटाई (कांजी) में छोड़ी जाय तो ताम्र रंग की हो जाय, और ऐसा करने पर जो काली पड़ जाय वह काकतुण्डी है।

रीतिका काकतुण्डी च द्विविधं पित्तलं भवेत्।
सन्तप्ता काञ्जिके क्षिप्ता ताम्राभा रीतिका मता ॥
एवं या जायते कृष्णा काकतुण्डीति सा मता ॥१९२-१९३॥

आठ भाग ताँबा और दो भाग वंग (tin) साथ-साथ जलाने से काँसा बनता है—

अष्ट भागेन ताम्रेण द्विभाग कुटिलेन च।
विद्रुतेन भवेत् कांस्यं.................. ॥२०५॥

वर्त्तलोह पाँच धातुओं के मिश्रण से बनता है—काँसा, ताँबा, पीतल, लोहा और सीसा।

कांस्यार्करीति लोहाहिजातं तद्वर्त्तलोहकम्।
तदेव पंच लोहाख्यं लोहविद्भिरुदाहृतम् ॥२१२॥

धातुओं और रसों के सम्बन्ध में अब तक हमने जो लिखा है वह रसरत्नसमुच्चय के आधार पर। पर इस ग्रंथ से पूर्व भी अनेक ग्रंथ थे जिनमें लगभग इसी प्रकार के अनुभव दिए गए हैं। इस सम्बन्ध में नागार्जुन का "रसरत्नाकर" नामक ग्रंथ भी बड़े महत्व का है। यह महायान सम्प्रदाय का एक तंत्रग्रंथ है। इस ग्रंथ में शालिवाहन, नागार्जुन, रत्नघोष और मांडव्य के बीच का संवाद दिया है और संवाद द्वारा रासायनिक विषय स्पष्ट किए गए हैं। महाराज नेपाल के पुस्तकालय में छठी शताब्दी की नकल की हुई एक तंत्र पुस्तक "कुब्जिकामत" की है। यह भी उस सम्प्रदाय का एक तंत्र ग्रंथ है जो महायान का समकालीन है। इस ग्रंथ में शिवजी पारद को अपना वीर्य्य घोषित करते हैं, और छह बार मारने के बाद पारद की उपयोगिता की ओर संकेत करते हैं:—

मद्वीर्यं: पारदो यद्‌ पतित: स्फुटितं मणि: ।
मद्वीर्य्येण प्रसूतास्ते तावार्य्या सुनके वहि ।
तिष्ठन्ति संस्कृताः सन्तः भस्मा षड्‌विप्रजारणाम्‌ ॥

तंत्र मंत्र के काल में रसायन विद्या का विशेष प्रचार हुआ। इस विद्या में निपुण व्यक्तियों को मंत्रवज्राचार्य्य कहा जाता है। यह युग प्रसंग और धर्मकीर्ति के समय के मध्य में चला। छठी शताब्दी से १२ वीं शताब्दी तक तंत्र-सिद्धान्तों का विशेष प्रचार रहा। उदयपुर और विक्रमशिला के मठों के विध्वंस के बाद बौद्धों का इस देश में पतन हुआ, बौद्ध भिन्न भिन्न हो गए। उनके तंत्र ग्रंथ कालान्तर में हिन्दू तंत्र ग्रंथों में समाविष्ट भी कर लिए गए। मौलिक बौद्ध ग्रंथों के संवाद तारा, प्रज्ञापारमिता और बुद्ध के बीच में थे, और बाद के ग्रंथों में ये ही संवाद शिव और पार्वती के मुख से कहलाए जाने लगे।

माधव का रसार्णव पारद के सम्बन्ध में एक मुख्य ग्रंथ है। यह ग्रंथ १२ वीं शताब्दी का है। माधव का एक ग्रंथ "रस हृदय" भी है। रसरत्नसमुच्चय, जिसके उद्धरण हमने ऊपर दिए हैं, १३ वीं या १४ वीं शताब्दी की रचना है। इस पुस्तक में सोमदेव नामक ग्रंथकार का उल्लेख आता है। इसकी एक पुस्तक रसेन्द्रचूड़ामणि दक्षिण-कालेज, पूना के पुस्तकालय में प्राप्त है। यह ग्रंथ रसरत्ननसमुच्चय से बहुत मिलता जुलता है। यह रचना १२-१३ वीं शताब्दी की है। इस ग्रंथ में यह उल्लेख है कि नन्दिन्‌ नामक कलाकार ने ऊर्ध्वपातन यंत्र (sublimation apparatus) और कोष्ठिकायंत्र (चित्र १) का निर्माण किया—

ऊर्द्धपातनयंत्रं हि नन्दिना परिकीर्त्तितम्‌ ।
कोष्ठिका यंत्रमेतद्धि नन्दिना परिकीर्त्तितम्‌ ॥

रसरत्नसमुच्चय ग्रंथ में २७ रसायनज्ञों का उल्लेख आता है—

आगमश्चन्द्रसेनश्च लंकेशश्च विशारदः ।
कपाली मत्त मांडव्यौ भास्करः शूरसेनकः ॥
रत्नकोषश्च शंभुश्च सात्विको नरवाहनः ।
इन्द्रदो गोमुखश्चैव कम्बलिर्व्याडिरेवच ॥
नागार्जुनः सुरानन्दो नागबोधिर्यशोधनः ।
खण्डः कापालिको ब्रह्मा गोविन्दो लमपकोहरिः ।
सप्तविंशति संख्यका रससिद्धि प्रदायकाः ॥

आगम, चन्द्रसेन, लंकेश, विशारद, कपाली, मत्त, मांडव्य, भास्कर, शूरसेनक, रत्नकोष, शंभु, सात्विक, नरवाहन, इन्द्रद, गोमुख, कम्बलि, व्याडि, नागार्जुन, सुरानन्द, नागबोधि, यशोधन, खंड, कापालिक, ब्रह्मा, गोविन्द, लमपक, और हरि ये २७ पूर्ववर्ती रसायनज्ञ थे। रसरत्नसमुच्चय के रचयिता वाग्भट्ट का पिता सिंहगुप्त भी प्रसिद्ध चिकित्सक था। ऊपर २७ व्यक्तियों के जो नाम दिए हैं, उनमें एक व्यक्ति यशोधन है। सम्भवतः इसका शुद्ध पाठ यशोधर हो। यशोधर का एक ग्रंथ रसप्रकाशसुधाकर मिलता है। यह ग्रंथ रसरत्नसमुच्चय से मिलता जुलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि रसरत्नसमुच्चय कोई मौलिक ग्रंथ नहीं है। यह रसार्णव एवं सोमदेव और यशोधर के अन्य ग्रंथों का संग्रह मात्र है।

यशोधर को ही जस्ता धातु बनाने की विधि का श्रेय देना चाहिए। इस विधि का उल्लेख हम ऊपर कर आए हैं। यशोधर ने अपने ग्रंथ में साफ साफ लिखा है, कि उसने ये प्रयोग स्वयं अपने हाथ से किए, और अतः ये अनुभवसिद्ध हैं—

स्वहस्तेन कृतं सम्यक्‌ जारणं न श्रुतं मया ।
स्वहस्तेन भवयोगेन कृतं सम्यक्‌ श्रुतं नहि ॥
धातुबन्धस्तृतीयोऽसौ स्वहस्तेन कृतो मया ।
इष्ट-प्रत्यय-योगोऽयं कथितो नात्र संशयः ॥

यशोधर के ग्रंथ "रसप्रकाश सुधाकर" की प्रतिलिपि रणवीर-पुस्तकालय काश्मीर में सुरक्षित है।

इसी समय का एक ग्रंथ रसकल्प है जो रुद्रयमाल तंत्र का एक भाग है। इसमें गोविन्द, स्वच्छन्द भैरव आदि रसायनज्ञों के नामों का उल्लेख भी है। रसकल्प में पारे मारने की विधि, महारस, रस, उपरस, ४ प्रकार के गन्धक, अनेक प्रकार की फिटकरी (सौराष्ट्री) ३ प्रकार के कासीस (कासीस, पुष्पकासीस और हीरकासीस), २ प्रकार के गैरिक, सोना मारने का विड (नौसादर-चूलिकलवण, गन्धक, चित्राद्र भस्म, और गोमूत्र के योग से), ताम्रसत्व और रसकसत्व (जस्ता) आदि

का उल्लेख है। इस ग्रन्थ में भी ग्रंथकार ने साक्षात् अनुभव के महत्व पर बल दिया है—

इति सम्यादितो मार्गो द्रुतीनां पातने स्फुटः।
साक्षादनुभवैर्दृष्टो न श्रुतो गुरुदर्शितः॥

विष्णुदेव विरचित एक और ग्रंथ रसराजलक्ष्मी है। इसमें इसने पूर्ववर्ती तंत्रों और रसायनज्ञों का उल्लेख है, और इस दृष्टि से इस ग्रंथ का ऐतिहासिक महत्व है।

दृष्ट्वेमं रससागरं शिवकृतं श्रीकाकचण्डेश्वरी-
तंत्रं सूतमहोदधिं रससुधाम्भोधिं भवानीमतम्।
व्याडिं सुश्रुतमूत्रमीशहृदयं स्वच्छन्दशक्त्यागमम्।
श्रीदामोदरवासुदेवभगवद्गोविन्दनागार्जुनान्॥१॥
आलोक्य सुश्रुतं वृन्दहारीत चरकानिकान्।
आत्रेयं वाग्भट्टं सिद्धसारं दामोदरं गुरुम्॥३॥

विष्णुदेव ने निम्न आचार्यों और ग्रंथों के प्रति इन श्लोकों में कृतज्ञता प्रदर्शित की है—रसार्णव, काकचण्डीश्वर, नागार्जुन, व्याडि, स्वच्छन्द, दामोदर, वासुदेव, भगवद् गोविन्द, चरक, सुश्रुत, हारीत, वाग्भट्ट, आत्रेयादि। ये सब तेरहवीं शताब्दी तक के आचार्य हैं।

संवत् १५५७ आश्विन कृष्ण ५ सोमे को मथनसिंह ने रसनक्षत्रमालिका ग्रंथ पूर्ण किया। इस ग्रंथ में पहले पहल अफीम का उल्लेख आता है :—

चतुश्चतुः शंख कपर्द्दिकानां, सतक जम्बीरविमर्द्दितानाम्।
आफेन माक्षीकविषद्वयानां, पलंपलंदान्त फलान्वितानाम्।२१।

स्वच्छन्द नामक आचार्य का उल्लेख विष्णुदेव के ग्रंथ में आ चुका है। इनके नाम पर एक स्वच्छन्द भैरव रस है, जिसका उल्लेख रसनक्षत्रमालिका में मिलता है—स्वच्छन्दभैरवाख्यो रसः समस्तामयध्वंसी (१२५)। इससे स्पष्ट है कि रसायनज्ञों के नाम पर पहले भी रसों के नाम रक्खे जाने की प्रथा थी।

लगभग इसी समय का एक ग्रंथ पार्वतीपुत्र नित्यनाथ विरचित रसरत्नाकर है। इस ग्रंथ में शिव रचित रसार्णव, रसमंगलदीपिका, नागार्जुन, चर्पटिसिद्ध, वाग्भट्ट और सुश्रुत का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त—

यद्यद् गुरुमुखज्ञातं स्वानुभूतञ्च यन्मया।
तत्तल्लोकहितार्थाय प्रकटीक्रियतेऽधुना॥

नित्यनाथ के इस ग्रंथ के अन्दर रसेन्द्रचिन्तामणि का उल्लेख किया जा सकता है। इसके रचयिता कालनाथ के शिष्य ढुंढुकनाथ हैं। इस ग्रंथ का सम्पादन उमेशचन्द्र सेनगुप्त, संस्कृत कालेज कलकत्ता ने किया है। इस ग्रंथ में रस-कर्पूर शब्द कैलोमल (calomel) के लिए प्रयुक्त हुआ है जिसका उल्लेख रसार्णव में भी है। इस ग्रंथ में रसार्णव, नागार्जुन, गोविन्द, नित्यनाथ, सिद्धलक्ष्मीश्वर, त्रिविक्रमभट्ट और चक्रपाणि का उल्लेख है। रसेन्द्र चिन्तामणि कब लिखा गया यह कहना कठिन है।

इसके बाद के एक ग्रंथ रससार में पारे पर की जाने वाली १८ प्रक्रियाओं का उल्लेख है- इसके रचयिता गोविन्दाचार्य हैं। इस ग्रंथ में बौद्ध रसायनाचार्य्यों के प्रति विशेष कृतज्ञता प्रकट की है—भोटदेश (भूटान या तिब्बत) के बौद्धों का उल्लेख महत्व का है।

एवं बौद्धा विजानन्ति भोटदेशनिवासिनः।
बौद्धमतं तथा ज्ञात्वा रससारः कृतो मया॥

रससार ग्रंथ में अफीम (अहिफेन) का वर्णन आता है। समुद्र में चार तरह की विषैली मछलियाँ होती हैं, जिनके फेन से ४ तरह की अफीम निकलती है—सफेद, लाल, काली और पीली। कुछ का कहना है कि अफीम साँप के फेन से निकली है--

समुद्रे चैव जायन्ते विषमत्स्याश्चतुर्विधाः।
तेभ्यः फेनं समुत्पन्नं अहिफेनो विषस चतुर्विधं।
केचिद्वदन्ति सर्पाणां फेनं स्यादहिफेनकम्॥

पर सम्भवतः यह अहिफेन आजकल पोस्ता से निकली अफीम न हो। प्राणियों के फेन से निकले सभी विष (मत्स्य, चाहे साँप के) सम्भवतः अहिफेन कहलाते हों।

शार्ङ्गधर संग्रह के रचयिता शार्ङ्गधर का एक ग्रंथ "पद्धति" भी है जो संवत् १४२० वि० में रचा गया। शार्ङ्गधर संग्रह की आढमल्ल ने एक बृहद् टीका भी की। राजा हम्मीर शार्ङ्गधर के बाबा राघवदेव को बहुत मानता था। इसके समय में सौगतसिंह नाम का भी एक वैद्य था जैसा कि निम्न वाक्य से स्पष्ट है—

एषा सौगतसिंह नाम भिषजा लोके प्रकाशीकृता ।
हम्मीराय महीभुजे.............संभोजभाजे भृशम् ॥

रसमंजरी, चन्द्रिका आदि तंत्र ग्रंथ के आधार पर गोपालकृष्ण ने रसेन्द्रसारसंग्रह नामक एक ग्रंथ लिखा। इसमें अनेक खनिज रसायनों के बनाने की विधि दी हुई है। सिन्धु चिन्तामणि और इस ग्रंथ में बहुत स्थल समान हैं। इस ग्रंथ का टीकाकार रामसेन कवीन्द्रमणि मीर जाफर का राजवैद्य था। यह ग्रंथ बंगाल में बहुत प्रचलित है।

इसी समय का एक ग्रंथ रसेन्द्रकल्पद्रुम है। यह ग्रंथ रसार्णव, रसमंगल, रत्नाकर, रसामृत और रसरत्नसमुच्चय के आधार पर लिखा गया है। चौदहवीं शताब्दी का एक ग्रंथ धातुरत्नमाला भी है जिसका रचयिता देवदत्त गुजरात का रहनेवाला था।

अब हम आधुनिक काल में आते हैं। सोलहवीं शताब्दी में पुर्तगालवासी इस देश में आने लगे। उनके सम्पर्क से एक नए रोग की वृद्धि हुई जिसका नाम "फिरंग रोग" रक्खा गया। यद्यपि उपदंश का उल्लेख पुराने ग्रंथों में है, पर यह नया रोग (सिफलिस) बड़े प्रकोप से यहाँ फैलने लगा। इस समय "रसप्रदीप" नामक ग्रंथ की रचना हुई। इस ग्रंथ में फिरंग-व्याधि का इलाज इस प्रकार लिखा हुआ है—

गैरिकं रसकर्पूरमुपला च पृथक् पृथक् ।
टंकमात्रं विनिक्षिप्य ताम्बूली दलजैः रसैः ॥
वट्यश्चतुर्दशास्तेषां कर्त्तव्या भिषगुत्तमैः ।
सायं प्रातः समश्नीयात् एकैकां दिनसप्तकम्
सघृता योलिका देया भोजनार्थं निरन्तरम् ।
फिरंगव्याधिनाशाय वटिकेयमनुत्तमा ॥

फिरंग रोग के निवारणार्थ चोपचीनी का प्रयोग भी इस ग्रंथ में मिलता है जोकि एक नई बात थी—

चोपचीनी भवं चूर्णं शाणमानं समाक्षिकम् ।
फिरंगव्याधिनाशाय भक्षयेल्लवणं त्यजेत् ॥

त्रिमल्लभट्ट की "योग तरंगिणी" में कर्पूर-रस का प्रयोग फिरंग रोग के लिए दिया है। यह ग्रंथ संवत् १८१० में बम्बई में छपा—फिरंग रूप हाथी के लिए कर्पूररस शेर का काम करता है—

फिरंग करिकेशरी सकलकुष्ठ कालानलः ।
... ... ... ...
समस्तगद तस्करो रसपतिः स कर्पूरकः ॥६६॥

फिरंगरोग में चोपचीनी और रसकपूर का प्रयोग, गोआ निवासी पुर्तगालवालों को चीनदेश के व्यापारियों से सन् १५३५ ई० के लगभग मालूम हुआ था, ऐसी फ्लूकिगर और हैनबरी की सम्मति है। रस प्रदीप में शंखद्रावरस के बनाने की भी विधि दी है जो ऐसा खनिज-ऐसिड (mineral acid) है जिसमें शंख घुल जाता है, और धातुएँ भी जिसमें घुल जाती हैं। सम्भवतः यह नाइट्रिक या हाइड्रोक्लोरिक ऐसिड है। इसकी विधि इस प्रकार है—

स्फटिका नवसारश्च सुश्वेता च सुवर्च्चिका ।
पृथक् दशपलोन्मानं गन्धकः पिचुसंमितः ॥
चूर्णयित्वा क्षिपेत्भाण्डे मृन्मये मृदविलेपिते ।
तन्मुखं मुद्रयेत् सम्यक् मृद्भाण्डेनापरेण च ॥
सरन्ध्रोदरकेणैव चुल्ल्यां तिर्यक् च धारयेत् ।
अधः प्रज्वालयेद्वह्निं हठाद् यावद्रसः स्रवेत् ॥
कपर्दिकाश्च लोहानां यस्मिन् क्षिप्ता गलन्ति हि ॥

माधव की रसकौमुदी और गोविन्ददास के रसरत्न-प्रदीप और भैषरत्नावली में भी इस खनिजाम्ल का विवरण आता है। इसे बनाने के लिए फिटकरी (स्फटिक), नवसार (नौसादर), सुवर्च्चिक (शोरा) या सौवर्च्चल, गन्धक, टंकण (सुहागा) आदि के मिश्रण को साथ-साथ गरम करते हैं, और स्रवण (distil) करके ऐसिड प्राप्त करते हैं। इस ऐसिड-मिश्रण का (शंखद्रावरस का) आविष्कार रस-प्रदीप के समय से (१६ वीं शताब्दी के आरम्भ से) ही हुआ। यह विशेष उल्लेखनीय है कि भावप्रकाश (जिसकी रचना रस प्रदीप के बाद की है) के रचयिता को शंखद्रावरस का ज्ञान नहीं था, क्योंकि उसने कहीं इसका उल्लेख नहीं किया।

भावप्रकाश का रचयिता भावमिश्र है। यह आयुर्वेद का विस्तृत ग्रंथ है। इसमें चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट, हारीत, वृन्द और चक्रपाणि का उल्लेख है। इसमें रसप्रदीप, रसेन्द्र चिन्तामणि, शार्ङ्गधर आदि ग्रंथों के आधार पर धातु सम्बन्धी योगों का वर्णन है। फिरंगरोग के उपचार

में चोपचीनी और कर्पूररस का प्रयोग इसने भी स्वीकार किया है। भावमिश्र अकबर के समय में हुआ था, और उसके ग्रंथ पर मुसलमानी प्रभाव भी स्पष्ट दीखता है।

१६ वीं शताब्दी के लगभग ही धातु-क्रिया या धातुमञ्जरी नामक एक उपयोगी ग्रंथ का संग्रह हुआ। इसे रुद्रयामलतंत्र के अन्तर्गत ही समझा जा सकता है। इसमें फिरंगों का और रूम (कुस्तुनतुनिया) का उल्लेख है। अन्य ग्रंथों की अपेक्षा इस ग्रंथ में कुछ विशेष बातें हैं, अतः हम इनका उल्लेख कुछ विस्तार से करेंगे। महादेव-पार्वती संवाद के रूप में विषय का प्रतिपादन हुआ है।

**(१) मुख्य प्राधान्यतया एते रंगलोहक ताम्रकैः ।**

रांगा, लोहा और ताँबा ये मुख्य धातु हैं। यहाँ वंग (tin) के लिए रंग (रांगा) शब्द का प्रयोग उल्लेखनीय है।

**(२) रजतेनैव संयुक्ता धातोरुत्तमता सदा ॥१२॥**

सभी धातुएँ चाँदी के साथ संयुक्त होकर उत्तम हो जाती हैं।

**(३) मध्यमा सत्वजा धातः नीचा च त्रपुसीसयोः॥१३॥**
**त्रपुताम्रसंयोगेन जाता धातश्च मध्यमा ॥१५॥**

सत्वजा धातु (जो त्रपु और ताँबा के संयोग से बनती है) मध्यम है। सीसा और त्रपु के संयोग से बनी धातु निकृष्ट है।

**(४) शुल्वखर्परसंयोगे जायते पित्तलं शुभम् ॥६३॥**

शुल्व (ताँबा) और खर्पर (calamine, जस्ता) के संयोग पीतल बनती है।

**(५) वंग ताम्र संयोगेन जायते तेन कांस्यकम् ॥६४॥**

वंग और ताँबे के संयोग से काँसा बनता है।

**(६) खर्परैःसहपारदं दिव्यं किंचित् प्रमेलयेत् ।**
**जायते रसको नाम नाना रोगहरो भवेत् ॥६८॥**

खर्पर और पारे के संयोग से रसक बनता है। वैसे तो रसक और खर्पर दोनों ही एक पदार्थ के नाम हैं। पर यहाँ खर्पर का अर्थ जस्ता धातु से है, और पारे के मेल से जो रसक बना वह ज़िंक-एमलगम है।

**(७) नागस्तु रहते हीनो मृतधातुस्तु जायते ।**
**स एव कोमलाग्निस्थः सिन्दूरं जायते ध्रुवम् ॥६१॥**

कोमलाग्नि में गरम करने से सीसा (नाग) सिंदूर (red lead) में परिणत हो जाता है।

(८) स्वर्ण के पर्य्याय नाम—स्वर्ण, सुवर्ण, हाटक, वह्निरोचन, देवधातु, हेम इत्यादि ॥३६-४२॥

(९) चाँदी के पर्य्याय नाम—रजत, रूप्य, चन्द्र, चन्द्रदीपक इत्यादि ॥४३ ४६॥

(१०) ताँबे के पर्य्याय नाम—ताम्र, त्र्यम्बक, शुल्व, नागमर्दन, आदि ॥४७-४६॥

(११) जस्ते के पर्य्याय नाम—जासत्व, जरातीत, राजत, यशद (यशदायक), रूप्यभ्राता, चर्मक, खर्पर, रसक आदि ॥५०-५२॥

(१२) वंग या रांगा के पर्य्याय नाम—त्रपु, तापहर, वंग, रजतारि, इत्यादि ॥५३-५४॥

(१३) सीसे के पर्य्याय नाम—सीसक, धातुभंग, नाग, नगालय, इत्यादि ॥५५-५८॥

(१४) लोहे के पर्य्याय नाम—लोह, आयस, स्वर्णमारक, ताटक, रुधिर, आदि ॥५६-६२॥

**(१५) ताम्रदाहजलैर्योगे जायते तुत्थकं शुभम् ॥७१॥**

इस श्लोक में पहली बार "दाह-जल" (जलानेवाला पानी) शब्द आया है जो गन्धक का तेजाब (sulphuric acid) है। ताँबा इसके योग से नीलाथोथा या तूतिया (तुत्थक) देता है।

(१६) ताँबा प्राप्त होने के स्थान—

नेपाले कामरूपे च वंगले मदनेश्वरे ।
गङ्गाद्वारे मलाद्रौ च म्लेच्छदेशे तथैव च ॥१४३॥
पावकाद्रौ जीर्णदुर्गे, रूमदेशे फिरङ्गके ।

(१७) जासत्व (जस्ता) प्राप्त होने के स्थान—

कुम्भाद्रावथ काम्बोजे रूमदेशे बलत्पति ॥१४६॥
जासत्वं वंगले नागं नेपाले च सदैव हि ॥१४७॥

(१८) १०० भाग वंग (tin) में १ भाग पारद मिलाने से शुद्ध चांदी बन जाती है जिसको बेचकर मालामाल हो सकते हैं (वस्तुतः यह नकली चांदी है) ॥८४-८५॥

(१९) इसी प्रकार सीसे और तांबे के संयोग से नकली सोना बनाने की विधि इस प्रकार है—

नागस्य सम्भवं ताम्रं मध्ये मेलापनं कृतम् ।
विभागे तु कृते तत्र जायते कुम्पिका शुभा ॥१७॥
तन्मध्ये गालयेन्नाग त्रिवारं यत्नपूर्वकम् ।
जायते निर्म्मलं स्वर्णम् उदितं चैव कुम्पिके ॥१८॥

रासयन बनाने के यंत्र—वाग्भट्ट के रसरत्नसमुच्चय के ६ वें अध्याय में रासायनिक यंत्रों का उल्लेख मिलता है। यह विवरण सोमदेव के ग्रंथ के आधार पर लिया
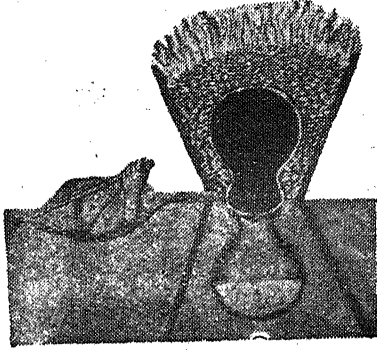
चित्र १—कोष्ठिका यंत्र
( रसक से जस्ता निकालने के लिये )

गया है—"समालोक्य समासेन सोमदेवेन साम्प्रतेन",और सोमदेव ने भी अन्य अनेक ग्रंथों को देखकर यह विवरण लिया था।

१. दोला यन्त्र (चित्र २)—

द्रवद्रव्येन भाण्डस्य पूरितार्द्धोदरस्य च ।
मुखमुभयतो द्वारद्वयं कृत्वा प्रयत्नतः ॥३॥
तयोस्तु निक्षिपेद्दंडं तन्मध्ये रसपोटलीम् ।
बद्धास्तु स्वेदयेदेतद् दोलायन्त्रमिति स्मृतम् ॥४॥

( चित्र २—दोला यंत्र )

हांडी या मटकी को द्रव से आधा भरते हैं। मुँह पर एक दंड ( rod ) रखकर उसके बीच से रसपोटली बांधकर द्रव में लटकाते हैं। ऊपर से ढकने से मटकी बन्द कर देते हैं। द्रव को उबालकर स्वेदन करते हैं।

२. स्वेदनी यन्त्र ( चित्र ३ )—

साम्बुस्थाली मुखाबद्धे वस्त्रे पाक्यं निवेशयेत् ।
पिधायपच्यते यत्र स्वेदनी यंत्रमुच्यते ॥५॥
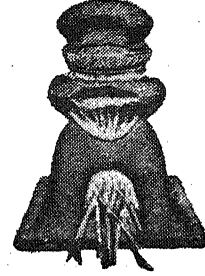
चित्र ३—स्वेदनी यंत्र

उबलते पानी की हांडी के मुँह पर कपड़ा बांधते और उस पर पदार्थ को रखते और ऊपर से दूसरी हांडी उलटकर रखते हैं।

३. पातना यन्त्र—

अष्टांगुल परिणाहमानाहेन दशांगुलम् ।
चतुरंगुलकोत्सेधं तोयाधारं गलादधः ॥
अधोभांडे मुखं तस्य भांडस्यो परिवर्त्तिनः ।
षोडशांगुल विस्तीर्णं पृष्टस्यास्ये प्रवेशयेत् ॥
पार्श्वयोर्महिषी क्षीरचूर्णमंडूरफाणितैः ।
लिप्त्वा विशोषयेत् सन्धिं जलाधारे जलं क्षिपेत् ॥
चुल्ल्यामारोपयेदेतत् पातनायन्त्रमीरितम् ॥६-८॥

एक हाँडी पर दूसरी हाँडी उलटकर इस तरह रखते हैं कि एक का गला दूसरे के भीतर आ जाय। गले के जोड़ों पर भैंस के दूध, चूना, कच्ची खाँड और लोहे के जंग का मिश्रण लेप देते हैं। यह यंत्र ऊर्ध्वपातन (sublimation ) और स्रवण (distillation) दोनों का काम देता है।

४. अधःपातना यन्त्र—

अथोर्द्ध्वभाजने लिप्तंस्थापितस्यजले सुधीः ।
दीप्तैर्वनोपलैः कुर्यादधः पातं प्रयत्नतः ॥९॥

यह यंत्र पातना यंत्र के समान ही है। ऊपर की हाँडी के पैंदे में पदार्थ लेप देते हैं, और कंडों से गरम करते हैं। नीचेवाली हाँडी में पानी रखते हैं। पदार्थ से निकली भापें नीचे वाले पानी में घुल जाती हैं।

५. दीपिका यन्त्र—

कच्छपयन्त्रान्तर्गत मृण्मयपीटस्थदीपिकासंस्थः।
यस्मिन्निपतति सूतः प्रोक्तं तद्दीपिकायंत्रम् ॥१०॥

६. ढेकी यंत्र (चित्र ४)—

भाण्डकंठादधश्छिद्रे वेणुनालं विनिक्षिपेत्।
कांस्यपात्रद्वयं कृत्वा संपुटं जलगर्भितम् ॥
नालिकास्यं तत्र योज्यं दृढं तत्रापि कारयेत्।
युक्त द्रव्यैर्विनिक्षिप्तः पूर्वं तत्र घटे रसः॥
अग्निना तापितो नालात् तोये तस्मिन् पतत्यधः॥
यावदुष्णं भवेत् सर्वं भाजनं तावदेव हि॥
जायते रससंधानं ढेकीयन्त्रमितीरितम् ॥११-१४॥
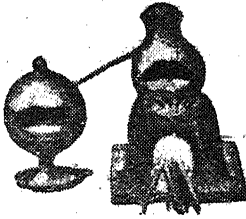
चित्र ४—ढेकी यंत्र

घड़े या हाँडी की गर्दन के नीचे एक छेद करके इसमें बाँस की नली लगाते हैं। नली का दूसरा सिरा काँसे के पात्र से जुड़ा रहता है। इस पात्र में पानी रहता है। काँसे का पात्र दो कटोरों से मिलकर बनता है। एक कटोरा दूसरे पर औंधा होता है। घड़े को भट्टी या चूल्हे पर गरम करते हैं।

७. वालुका यंत्र—(Sand bath) (चित्र ५)

सरसां गूढ वक्त्रां मृद्वस्त्रांगुलघनावृताम्।
शोषितां काचकलसीं पूरयेत् त्रिषु भागयोः॥
भांडे वितस्तिगम्भीरे वालुका सुप्रतिष्ठिता।
तद्भाण्डं पूरयेत् त्रिभिरन्याभिरव गुण्ठयेत्॥
भांडवक्त्रे मालिकया सन्धिं लिपेन्मृदा पचेत्॥
चूल्ल्यां तृणस्य चादाहान्मालिकापृष्ठवर्तिनः।
एतद्धि वालुकायंत्रं तद् यंत्रं लवणाश्रयम् ॥३४-३६॥
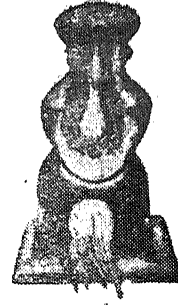
चित्र ५—वालुका यंत्र

लम्बी गर्दन की काँच की कलसी (glass flask) में पारद योगवाले द्रव्य रखते हैं, और इस पर कपड़े के कई लपेट चढ़ाते हैं। फिर मिट्टी ऊपर से लेपकर धूप में सुखा लेते हैं। कलसी का तीन चौथाई भाग बालू में गाड़ देते हैं। (बालू मिट्टी के चौड़े घड़े में ली जाती है।) बालू वाले घड़े को भट्टी पर रखते हैं। घड़े के मुँह पर एक और हाँडी उलटकर रख देते हैं। तब तक गरम करते हैं, जब तक ऊपर पृष्ठ पर रक्खा हुआ तिनका जल न जाय।

८. लवण यंत्र—

एवं लवणनिक्षेपात् प्रोक्तं लवण यंत्रकम् ॥३८॥

अगर ऊपर के यंत्र में बालू की जगह नमक भरा जाय तो इसे लवणयंत्र (salt bath) कहेंगे।

९. नालिका यंत्र—

लोहनालं गतं सूतं भाण्डे लवणपूरिते।
निरुद्धं विपचेत् प्राग्वन्नालिका यंत्रमीरितम् ॥४१॥

ऊपर के वालुकायंत्र में काँच की कलसी के स्थान में लोहनाल ली जाय और बालू की जगह नमक लिया जाय।

१०. तिर्यकपातन यंत्र (चित्र ६)—

क्षिपेद् रसं घटे दीर्घनताधोनाल संयुते।
तन्नालं निक्षिपेदन्य घटकुक्ष्यन्तरे खलु॥
तत्र रुद्धा मृदा सम्यग् वदने घटयोरधः।
अधस्ताद् रसकुंभस्य ज्वालयेत् तीव्रपावकम्॥
इतरस्मिन् घटे तोयं प्रक्षिपेत् स्वादुशीतलम्॥
तिर्यक् पातनमेतद्धि वार्त्तिकैरभिधीयते ॥४८-५०॥
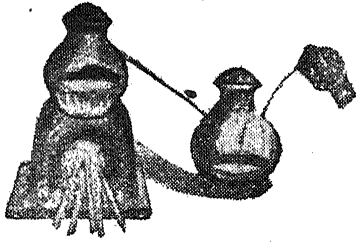
चित्र ६—तिर्यक्पातन यंत्र

यह आजकल के भभके के समान है। एक घड़े के पेट में लम्बी नाल ( tube ) लगाते हैं, और इस नाल का दूसरा सिरा दूसरे घट की कुक्षी में जुड़ा होता है। जोड़ के स्थानों पर मिट्टी लेप देते हैं। दोनों घड़ों के मुंह भी मिट्टी से बन्द कर देते हैं। पहले घड़े के नीचे आग जलाते हैं, और दूसरे पर पानी डालते रहते हैं जिससे ठंढा रहे।

११. विद्याधर यंत्र—

स्थालिकोपरि विन्यस्य स्थालीं सम्यङ्निरुध्य च।
ऊर्ध्वस्थाल्यां जलं क्षिप्त्वा वह्निं प्रज्वालयेदधः॥
एतद् विद्याधरं यंत्रं हिंगुलाकृष्टिहेतवे ॥२७-२८॥

हिंगुल (cinnabar) से पारद निकालने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। एक हांडी के ऊपर दूसरी हांडी सीधी रखते हैं। ऊपरवाली हांडी में पानी और नीचे वाली में हिंगुल रखते हैं। नीचेवाली हांडी के नीचे आग जलाते हैं। पारा नीचेवाली से उड़कर ऊपरवाली ठंढी हांडी के पेंदे में जमा हो जाता है।

इनके अतिरिक्त धूपयंत्र का भी विस्तृत वर्णन दिया गया है (७०-७६)॥

१२. मूषा (crucible)—निम्न पदार्थों की मूषा बनाने का उल्लेख है :—

१२. मूषा—

मृत्तिका पांडुरस्थूला शर्करा शोणपाण्डुरा।
तदभावे हि वाल्मीकी कौलाली वा समीर्यते॥
या मृत्तिकादग्धतुषैः शणेन शिखित्रकैर्वा हयलद्दिना च।
लोहेन दण्डेन च कुट्टिता सा साधारणी स्यात्
खलुमूषिकार्थम् ॥१०५-६॥

पीली मिट्टी, शक्कर, दीमक के घरों की मिट्टी, या धान की तुषा जलने पर बची राख से मिली मिट्टी, कोयला और लीद और लोहे के जंग के मिश्रण से मूषा बनाते हैं।

रसरत्नसमुच्चय के दशम अध्याय में मूषा और उसके प्रयोगों का विस्तृत वर्णन है।

**प्राचीन औद्योगिक परम्परा**—अब तक हमने आयुर्वेद और चिकित्साशास्त्र के अन्तर्गत रसायन की परम्परा में जो उन्नति हुई उसका सिंहावलोकन किया। इस विकास का उल्लेख तो आयुर्वेदिक ग्रंथों के आधार पर किया जासका पर उद्योग धन्धों के सम्बन्ध में जो रासायनिक उन्नति हुई उसका लिखित विवरण कहीं नहीं मिलता है। खनिज पदार्थों में से धातुएँ कैसे निकाली जाती थीं, और उन धातुओं में क्या-क्या मिलावटें करके काम के योग्य पदार्थ तैयार किए जाते थे, इस बात की शिक्षा इस देश में मौखिक ही होती थी, न कि लिखित ग्रंथों द्वारा। परम्परा से कुलों में सन्तानें अपने पूर्वजों से उद्योग धन्धों को सीखती थीं। इन धन्धों को सिखलाने की यह प्रथा आज तक इस देश में पूर्ववत् चली आ रही है। पर पाश्चात्य कला कौशल की पद्धति के साथ-साथ अब इसमें परिवर्तन हो रहे हैं, और कुल-परम्परायें इस युग में शीघ्र नष्ट हो रही हैं।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में निम्न चीजों पर शुल्क या चुंगी ली जाने की व्यवस्था है :—

पुष्पफल शाकमूल कन्द वाल्लिक्य बीज शुष्क-
मत्स्यमांसानां षड्भागं गृह्णीयात् ॥२।२२।४॥

शंखवज्र मणि मुक्ता प्रवालहाराणां तज्जातपुरुषैः
कारयेत्कृतकर्म प्रमाणकाल वेतनफल निष्पत्तिभिः ॥५॥

क्षौमदुकूल क्रिमितान कंकट हरिताल मनःशिला हिंगुलु-
कलोहवर्णधातूनां चन्दनागरुकटुक किण्वावराणां सुरादन्ता-
जिनक्षौम-दुकूलनिकरास्तरण प्रावरण क्रिमिजातानामजैलकस्य
च दशभागः पंचदशभागो वा ॥६॥

वस्त्र चतुष्पद द्विपद सूत्रकार्पासगन्ध भैषज्यकाष्ठवेणुव-
ल्कलचर्म मृद्भाण्डानां धान्यस्नेहक्षारलवण मद्य पक्वान्ना-
दीनां च विंशतिभागः पंचविंशतिभागो वा ॥७॥

१. फूल, फल, शाक, मूल, कन्द, वाल्लिक्य (बेल पर लगनेवाले पेठा, लौकी आदि) (fruits, flowers and vegetables)।

२. बीज (seeds)।

३ सूखी मछली और मांस dry fish and meat)।

४. शंख (conch), वज्र (diamond), मणि (jewels), मुक्ता (pearl), प्रवाल (coral), हार।

५. क्षौम, दुकूल, क्रिमितान (Silk).

६. कंकट।

७. हरताल, मैनसिल, हिंगुल, लोह, वर्णधातु (ochre)—(minerals).

८ चन्दन (Sandal), अगर, कटुक (मसाले)—oil producing.

९ सिरका, सुरा और मद्य (vinegar, wine and liquor)

१०. दाँत (ivory)

११. चमड़ा (tannery products)

१२. क्षौम, दुकूल-निकर, आस्तरण (bed sheets), प्रावरण (blankets)—cotton textiles.

१३. अजैलक—(woolen)

१४. वस्त्र, सूत्र, कार्पास।

१५. चौपाये, दुपाये (cattle and fowl)

१६. गन्ध (cosmetics)

१७. ओषधि (medicines)

१८. काष्ठ वेणु, वल्क (wooden products)

१९. धान्य (cereals and grain)

२०. क्षार, नामक (salt and alkali)

२१. मद्य (alcohol)

२२. मिट्टी के बर्तन (pottery)

२३. घी-तेल (oils and butter)

इस सूची से स्पष्ट है कि प्राचीन भारत का व्यापार कितना व्यापक था। वस्तुतः सभी प्रकार के आवश्यकीय धन्धे देश में वर्त्तमान थे। कौटलीय अर्थशास्त्र का प्रभाव इस देश में कई शताब्दियों तक रहा, और जो धन्धे चाणक्य के समय प्रचलित थे, वे लगभग परम्परा से आज तक चले आ रहे हैं। आर्य्य राज्यों के छिन्न भिन्न होने पर शुल्क-व्यवहार में चाहे परिवर्तन क्यों न हो गया हो, पर जिन पदार्थों पर शुल्क लगाया था, उनका बनना एवं उनका व्यापार इस देश में बराबर रहा।

कौटिल्य का समय विक्रम से पूर्व का है, पर कोई कारण नहीं कि कौटिल्य के समय की परम्परा अनेक शताब्दियों तक देश में वर्त्तमान न रही हो। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में अनेक ऐसे विषयों का उल्लेख है जिनका सम्बन्ध रसायनशास्त्र और रासायनिक धन्धों से है। स्थानाभाव के कारण हम सबका विस्तार से उल्लेख नहीं कर सकते, पर कुछ का नाम निर्देश नीचे किया जाता है। इस विषय से रुचि रखने वालों से हमारा आग्रह है कि इन विषयों के लिये अर्थशास्त्र को अवश्य देखें।

(१) अन्न, व्यंजन, द्रव्य (रसदार तरकारी), रस (घी, तेल, रस आदि), मद्य, दूध, जल, दही, मधु, फल, बिछौने, ओढ़ने आदि में मिलाए गए विष की पहिचान॥ १।२१ १०-२२॥

(२) दुर्ग में सदा एकत्रित रहनेवाली सामग्री—

**सर्पिस्नेह धान्य क्षार लवण भैषज्य, शुष्कशाकयवसव-ल्लूरतृण काष्ठलोह चर्मांगारस्नायु विषविषाण वेणुवल्कल सारदारु प्रहरणाश्मनिचयाननेकवर्षोपभोगसहान्कारयेत् ॥२।४।३४॥**

घी, तेल, अन्न, क्षार, नमक, दवाई, सूखी तरकारी, भुस, सूखा माँस, घास, जलाने की लकड़ी, लोहा, चमड़ा, कोयला, स्नायु (ताँत), विष, सींग, बाँस छाल, सारदारु (अच्छी लकड़ी), हथियार, कवच और पत्थर अनेक वर्षों के उपयोग के लिए रक्खे।

(३) खनि द्रव्य (खान से निकाले जानेवाले)—

**सुवर्ण रजत वज्र मणिमुक्ता प्रवाल शंख लोह लवण भूमि प्रस्तर—रसधातवः खनिः ॥२।६।४॥**

(४) मोतियों के उत्पत्ति स्थान, मोतियों की उत्पत्ति के कारण, दूषित मोती, उत्तम मोती, मोती और मणियों के अनेक तरह के हार ॥२ ११।२ २१॥

(५) मणियों के उत्पत्ति-स्थान, ५ प्रकार, वैदूर्यजाति के ८ प्रकार के मणि, ८ प्रकार के इन्द्रनील

मणि, ४ प्रकार के स्फटिक, मणियों के स्फटिक गुण (crystallography), मणियों के दोष, १८ अवान्तर जातियाँ ॥२।११।२२-३७॥

( ६ ) वज्र अथवा हीरे का वर्णन, उत्पत्ति स्थान, हीरे के भेद, हीरे के रंग, प्रशस्त और दूषित हीरा ॥२।११।३८-४२॥

(७) मूंगों में भेद ॥२।११।४३॥

(८) चन्दन, अगर, तैलपर्णिक आदि सुगन्धित काष्ठों का वर्णन ।२।११ ४४-७५॥

(९) चमड़ों का विवरण ॥२।११।७६-१०१॥

(१०) ऊनी कम्बल, दुशाला आदि ॥२।११।१०२-११९॥

(११) कपास ॥२।११।१२०-१२१॥

(१२) सोने की खान की पहिचान, तांबा और चांदी को सोने का रूप देना, धातुओं को शुद्ध करने की विधि, धातुओं को मृदु बनाना, मृदुता का लोप करना, त्रपु (रांगा) का उत्पत्ति-स्थान, लोहधातु निरूपण, और लोहाध्यक्ष के कर्त्तव्य ॥३।१२।१-२६॥

आकराध्यक्ष(superintendent of mines) की व्यवस्था में क्या क्या हो यह नीचे के सूत्र से स्पष्ट है।

आकराध्यक्षः शुल्वधातु शास्त्ररस पाकमणि रागज्ञस्तज्ज्ञसखो वा तज्जातकर्म करोपकरणसंपन्नः किट्टमूषांगारभस्म लिंगं वाकरं भूतपूर्वमभूतपूर्वं वा भूमि प्रस्तररसधातुमत्यर्थवर्णगौरवमुग्रगन्धरसं परीक्षेत ॥२।१२।१॥

(१३) ताँबे, सोने की मिलावट के सम्बन्ध में दूसरे अधिकरण के १३ और १४वें अध्याय महत्त्व के हैं। इनमें टकसाल (mint) का भी उल्लेख है।

(१४) स्नेह (fats) चार तरह के—घी, तेल, वसा और मज्जा ॥२।१५।१४॥

(१५) क्षारवर्ग, फाणित (राब), गुड़, मत्स्यंडिका, खंड, शर्करा (शक्कर के व्यवसाय के ५ पदार्थ) ॥२।१५।१५॥

(१६) ६ तरह के लवण ॥२।१५।१६॥

(१७) सिरका (शुक्त वर्ग) बनाने की विधि—ईख के रस, गुड़, मधु, राब, आम्रफल और आमलक से ॥२॥ १५-१८॥

(१८) तिलहन में से तेल कितना निकलता है ॥२। १५।४९-५१॥

(१९) लिखने के काम के पत्ते-ताली, ताल (ताड़) भूर्ज (भोजपत्र) ॥२।१७।९॥

(२०) रंगने के साधन-किंशुक (ढाक), कुसुम्भ, कुंकुम ॥२।१७।१०॥

(२१) विषों का वर्णन ॥२। ७।१२-१३॥

(२२) धातुओं के भेद—कालायस (काला लोहा), ताम्रवृत्त (ताँबा), काँस्य (काँसा), सीस (सीसा), त्रपु (राँगा), वैकृन्तक (एक तरह का लोहा), आरकूट (पीतल) ॥२।१७।१५॥

(२३) हथियार आदि के निर्माण के लिए द्वितीय अधिकरण का १८ वाँ अध्याय उल्लेखनीय है।

(२४) शराब बनाने की विधि, अनेक भेद और स्वादिष्ट करना ॥२।२५।१७-३४॥

यद्यपि प्राचीन ग्रन्थों के विस्तार का लेखबद्ध साहित्य हमारे पास नहीं है, फिर भी हमारे संग्रहालयों में ऐसे पदार्थ संगृहीत हैं जिनसे उन ग्रन्थों का प्रमाण हमें मिलता है। इस सम्बन्ध में हम पाठकों का ध्यान ज्यार्ज सी० ए० एम० बर्डवुड की प्रसिद्ध पुस्तक 'दी इण्डस्ट्रियल आर्टस् ऑफ इण्डिया' की ओर आकर्षित कराना चाहते हैं। यह पुस्तक सन् १८८० में चैपमन एण्ड हौल द्वारा प्रकाशित की गई थी। इस पुस्तक के दूसरे खण्ड The Master Handicrafts of India (मास्टर हैंडिक्राफ्टस ऑफ इण्डिया) में अनेक विषयों का सचित्र विवरण है। इस पुस्तक के आधार पर हम कुछ विवरण नीचे देंगे।

(१) सोने की सबसे पुरानी प्राप्त चीज एक कैस्केट रत्नपेटिका है जो बौद्धकालीन है और इण्डिया आफिस लायब्रेरी में सुरक्षित है। सन् १८४० के लगभग मैसन (Masson) महोदय को काबुल उपत्यका में जलालाबाद के पास मिली थी। विल्सन के १८४१ के एरियाना-इण्डिका में इसका विस्तृत वर्णन है। यह विल्सन के मतानुसार ५० वर्ष ई० से पूर्व अर्थात् विक्रम की समका-

लीन है।※ इसका कुछ उल्लेखनीय वर्णन नीचे टिप्पणी में दिया जाता है।

(२) बर्डवुड ने चाँदी के एक प्राचीन पात्र का उल्लेख किया है जिसका व्यास ९ इञ्च, गहराई १२/३ इञ्च और तौल २९ औंस से कुछ अधिक है। यह बदख्शाँ के मीरों की सम्पत्ति थी, जो सिकन्दर के वंशज थे। यह संवत ४००-५०० वि० का रहा होगा। बर्डवुड की सम्मति है कि पंजाब में सोने और चाँदी का काम सदा से कुशलतापूर्वक होता आया है।* काश्मीर की चाँदी की सुराहियाँ आदि प्राचीनकाल से महत्त्व पाती रही हैं।

लखनऊ की सुराहियाँ भी काश्मीर की सुराहियों की समता कर सकती थीं।† चाँदी और सोने की थालियों के लिए ढाका, कलकत्ता और चिटगाँव भी अब तक प्रसिद्ध रहे हैं। मध्य-भारत में बाँदा जिला सभी प्रकार के धातुओं के काम के लिए प्रसिद्ध था। कच्छ और गुजरात भी चाँदी और सोने के बर्तनों के लिए उल्लेखनीय है। बर्डवुड का कहना है कि मद्रास में सोने और चाँदी का काम हर जगह ही बड़ी कुशलता से किया जाता है। मद्रास धार्मिक कृत्यों के लिए सोने की प्रतिमाएँ समस्त देश में बनाई गई हैं। रघुनाथराव (राघोबा) ने दो ब्राह्मण इंग्लैण्ड भेजे थे। जब १७८० ई० में वे वापिस आए तो उनके प्रायश्चित्त के लिए शुद्ध सोने की एक विशाल 'योनि' बनाई गई, जिसमें होकर वे निकाले गए। ऐसा करने के अनन्तर वे जाति में सम्मिलित किए जा सके। लगभग उसी समय

---

※The tope in which it was found is known as No. 2 of Bimaran. Dr. Honigberger first opened this monument, but abandoned it, having been forced to hastily return to Kabul Mr. Masson continued Honigberger's pursuit, and in the centre of the tope, discovered a small apartment, constructed as usual, of squares of slate, in which were found several most valuable relics. One of these was a good sized globular vase of steatite, which with, its carved cover or lid, was encircled with inscriptions, scratched with a style, in Bactro-Pali-characters. On removing the lid, the vase was found tocontain a little fine mould, mixed up with burnt pearls, sapphire beads, etc., and this casket of pure gold, which was also filled with burnt pearls, and beads of sapphire, agate, and crystal and burnt coral and thirty small circular ornaments of gold, and a metallic plate, apparently belonging to a seal engraved with a seated figure. By the side of the vase were found four copper coins, in excellent preservation, having been deposited in the tope freshly minted. They were the most useful portion of the relics, for they enabled Prof. H. H. Wilson to assign the monument to one of the Azes dynasty of Craeco-Barbaric kings who ruled in this part of India about 50 B. C. (P. 145).

*The Punjab has ever maintained a high reputation for the excellence of its gold and silver work. (P. 149).

†The silver sarais mabe at Lucknow are very like those of Kashmere. (P. 150).

महाराजा ट्रावनकोर ने युद्ध में की गई हत्या का प्रायश्चित्त किया--सोने की एक बड़ी सी गाय बनाई गई, और इसके उदर में राजा को कुछ समय तक रक्खा गया, इसका फिर 'पुनर्जन्म' हुआ और इस प्रकार वह पूर्व पापों से मुक्त समझा गया। राज सिंहासन पर बैठते समय यह प्रक्रिया ट्रावनकोर के सभी राजाओं को करनी पड़ती रही है।

(३) पीतल, तांबे और टीन के काम—भारतवर्ष में गृहस्थी के सभी बर्तन इन धातुओं के बनते रहे हैं। सन् १८५७ में मेजर हे (Hay) ने कुण्डला ( कूलू ) में एक बौद्ध-गुफा में दबा हुआ तांबे का एक लोटा पाया जो सन २००-३०० ई० का प्रतीत होता है। यह लोटा आजकल के लोटों से मिलता जुलता है। इसके ऊपर गौतम बुद्ध के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली चित्रकारी भी है।

सुलतानगंज में पाई गई बृद्ध की ताम्र-मूर्ति (जो बर्मिंघम के किसी व्यक्ति के पास चली गई है ) तांबे की बनी सबसे बड़ी प्रतिमा है। दिल्ली की कुतुब मीनार के निकट बना लोहस्तम्भ भारतवर्ष के लोह-निर्माण-कौशल का जीता जागता नमूना है। यह २३ फुट ८ इञ्च ऊँचा, नीचे की ओर १६.४ इञ्च व्यास का और ऊपर चलकर १२.०५ इञ्च व्यास का है। यह लगभग ४००ई० में बनाया गया था, और आज १५५० वर्ष बाद भी उतना ही दृढ़ बना हुआ है, और धूप-पानी में बिलकुल खुला रहने पर भी इसमें जंग कहीं नहीं लगा।[1] अहमदाबाद में शाह आलम के मकबरे के फाटक सुन्दर पीतल के बने हुए हैं और भारतीय कारीगरी के अद्भुत नमूने हैं। करनाल, अमृतसर, लाहौर, लुधियाना, जालंधर आदि स्थानों में धातुओं का काम कुशलतासे होता रहा है। काश्मीर में तांबे के बर्तनों पर रांगे की कलई बड़ी सुन्दरता से शताब्दियों से की जाती रही है। मुरादाबाद के कलई के बर्तन (पीतल पर रांगे की कलई) सदा से प्रसिद्ध रहे हैं। बनारस में धातु के बर्तनों का काम बहुत पुराना है। यहाँ पीतल में सोना, चाँदी, लोहा,राँगा, सीसा और पारा मिलाकर अष्ट-धातु तैयार की जाती है (पीतल में तांबा और जस्ता होता है) और यह धातु मिश्रण बड़ा पवित्र समझा जाता रहा है। पारा और रांगा के मिश्रण से बना शिवलिंग बड़ा पवित्र माना जाता है। बर्दवान और मिदनापुर में कांसे के बर्तन अच्छे बनते आए हैं। नरसिंह पुर (मध्य प्रान्त) के तेंदूखेरा में बहुत सुन्दर इस्पात बनती रही है। नासिक, पूना, अहमदाबाद आदि स्थलों में भी सभी प्रकार की धातुओं का काम होता रहा है। तंजौर के बर्तन सदा प्रसिद्ध रहे हैं।

(४) कुफ्त और बीदरी का काम (damascened work)—कलई मुलम्मे से नहीं, बल्कि एक धातु के तार को दूसरी धातु पर पीटकर लगाने का नाम कुफ्त है। यह प्रथा दमस्कस (Damascus) नगर के नाम पर अंग्रेजी में डेमेसेनिंग (damascening) कहलाती है और पूर्वी देशों की ही प्रथा है। काश्मीर, गुजरात,सियालकोट, और निजाम राज्य में यह विशेषतया होता है। जब चाँदी का कुफ्त करना होता है, तो इसी का नाम बीदरी हो जाता है (बीदर नगर के नाम पर)। कभी-कभी इस्पात के प्लेट पर नक्काशी करके और फिर उस पर सोने का पत्र पीटकर भी कुफ्त करते हैं। बिहार के पूर्निया और भागलपुर में भी यह कार्य कुशलता से होता

[1] Mr. Fergusson assigns to it the mean date of A.D. 400, and observes that it opens our eyes to an unsuspected state of affairs to find the Hindus at that age capable of forging a bar of iron larger than any that has been forged in Europe up to a late date, and not frequently, even now. After an exposure of fourteen centuries, it is still unrusted, and the capital and inscription are as clear and as sharp as when tne pillar was first erected (P. 155).

है। इन सबकी नक्काशी और चित्रकारी देखने योग्य होती है।

(५) एनेमेल या मीना—एनेमेल की प्रथा संसार भर में महत्त्व की समझी जाती है, और यह काम जयपुर में अति प्रारम्भिक समय से होता आ रहा है। [1]महाराज एडवर्ड जब इस देश मे प्रिन्स ऑफ वेल्स के रूप में आए थे, तो उन्हें (चित्र १०) एनेमेल किया हुआ जो थाल भेंट किया गया था उसके बनाने में चार बरस लगे थे। लेडी मेयो के पास इस कला का बना हुआ एक चम्मच और प्याला था। एण्डरसन को जो इत्रदान मिला था, वह साउथ केनसिंगटन म्यूजियम में सुरक्षित है और जयपुर की कुशलता का स्मारक है। इण्डिया म्यूजियम में कलमदान, हुक्का आदि अनेक चीजें इस प्रकार के कामों की रक्खी हैं।

(६) काँच का काम-चूड़ियाँ—रायपुर की मणिहारिन बहुत समय से प्रसिद्ध हैं। काँच के आभूषण होशियारपुर, मुलतान, लाहौर, पटियाला, बाँदा, डलमौ, लखनऊ, बम्बई, काठियावाड़, मैसूर आदि में बनते रहे हैं। काँच की गंगाजली नगीना (बिजनौर जिला) की प्रसिद्ध रही हैं।

(७) अस्त्र शस्त्र और इस्पात—निर्मल से २० मील की दूरी पर जो ोहे का खनिज मिलता है, उससे दमस्कस-इस्पात बहुत दिनों से बनती चली आ रही है। इस्पात बनाने का विवरण बर्डवुड के शब्दों में नीचे दिया गया है। [2]गोदावरी की दिमदुर्ती खानों से भी यह इस्पात बनाया जाता रहा है।

भारतवर्ष के अस्त्रशस्त्रों पर भी चित्रकारी की जाती थी। लाहौर, स्यालकोट, काश्मीर, मुंगेर, चिटगाँव, पिहानी (सीतापुर जिला), मध्य प्रान्त के अनेक स्थान, मैसूर, गोदावरी प्रान्त आदि में इस्पात की तलवारें, चाकू, भाला आदि बनते रहे हैं। सतारा और कोल्हापुर में शिवाजी के अस्त्र शस्त्र अब तक सुरक्षित रक्खे हुए हैं और वे पवित्र माने जाते हैं। [3]उसकी भवानी नामक तलवार की बराबर पूजा होती है। एगरटन ने इण्डिया

---

[1]Enamelling is the master art-craft of the world, and the enamels of Jaipur in Rajputana rank before all others, and are of matchless perfection. The Jaipnr enamelling is champleve (in which pattern is cut out of the metal it self). (P. 165)

[2]The Dimdurti mines on the Godawari were also another source of Damascus steel, the mines here being mere holes dug through the thin granitic soil, from which the ore is detached by means of small iron crowbars. The iron ore is still further separated from its granitic or quartzy matrix by washing and the sand thus obtained is still manufactured into Damascus Steel at Kona Samundram near Dimdurti. The sand is melted with charcoal, without any flux and is obtained at once in a perfectly tough and malleable state, superior to any English iron, or even the best Swedish... In the manufacture of the best steel, three-fourths of Samundram ore is used, and one fourth of Indore, which is a peroxide of iron (p. 170).

[3]Every relic of his, his sword, daggers, and, seal, and the wagnak or "tigerclaw" with which he foully assassinated Afzal Khan, have all been

आफिस से अस्त्रशस्त्रागार की एक सूची तैयार की—"Handbook of Indian Arms" इसमें उसने साँची के लेखों के आधार पर सन् २५०ई० से पूर्व के अस्त्रों के चित्र दिए हैं। उदयगिरि और अजन्ता की चित्रकारी में (सन् ४००), भुवनेश्वर के मन्दिरके चित्रों में (सन् ६५०), सेन्रोन (राजपूताना) के मूर्ति-चित्रों में (सन् ११००), इत्यादि जो अस्त्रशस्त्र चित्रित हैं उनके आधार पर पूर्ण विवरण दिया है। अस्त्रों के बनाने की विधि भी दी है। खेद है कि मद्रास सरकार ने अपने प्रान्त के पुराने अस्त्र-शस्त्रों को धातु की लालच में गलवा डाला, और इसलिए अब हमारे अजायबघरों में इस प्रान्त के अस्त्र-शस्त्र देखने को नहीं मिलते। [1] (चित्र ७)

चित्र ७—सिन्ध में पलँग के हाथों पर लाख द्वारा की गई चित्रकारी

(८) राजसी ठाठ के सामान—चँवर, छत्र, मोरछल, सिंहासन, हौदे, हाथी और घोड़ों की झूलें, शामियाने, तोरण आदि ठाठबाट के सामान प्राचीन प्रथा के अनुसार आज तक राजघरानों और महन्तों के यहाँ चले आ रहे हैं। बहुत सी श्रृंगार सामग्री कई पीढ़ियों पुरानी है। आईने अकबरी में राज्य-चिह्नों का—औरंग, छत्र, सायेबान, अलम, नक्कारे आदि का वर्णन है। मुहर्रम के जलूसों की श्रृंगार-सामग्री का उल्लेख हेरक्लोट (Herklot) की पुस्तक कानून-इस्लाम (१८३२) में पाया जाता है। सन् १८७५ में राजेन्द्रलाल मित्र ने एक पुस्तक "एंटीक्विटीज आफ उड़ीसा" लिखी थी, जिसमें "युक्तिकल्पतरु" नामक ग्रंथ का उल्लेख है। इस ग्रंथ में तरह-तरह के छत्रों के बनाने का विस्तृत विधान है—जैसे (चित्र ८) प्रसाद-छत्र(जो बाँस और लकड़ी और लाल कपड़े का बनता है। यह राजाओं को भेंट देने योग्य है), प्रताप-छत्र (नीले कपड़े पर सुनहरे किनारे का), कनक-दण्ड छत्र (चन्दन की डंडी, और उस पर स्वर्ण-कलश) और नव दंड छत्र (राज्याभिषेकादि महत्त्वपूर्ण अवसरों के लिए), यह स्वर्ण और रत्न-जटित होता है।)

(९) बर्तनों को रँगना और चमकाना—भारत के सभी प्रान्तों में मिट्टी के बर्तन बनते रहे हैं। इनको पकाने की विधि भी स्थल-स्थल पर अलग-अलग है। जैसी लकड़ी जहाँ मिली वहां वैसा ही व्यवहार किया गया। इन बर्तनों पर चमक लाने के लिए दो चीजों का उपयोग होता रहा है—(१) कांच (२) सिक्का। पंजाब में दो तरह के कांचों का प्रयोग होता रहा है—अंग्रेजी कांची, और देशी कांची।

---

religously preserved at Sattara and Kolhapur ever since his death in 1680 (p. 174)

[1] In his prefce, Mr. Egerton expresses a regret, in which every one will concur,... ... ...that the Government of Madras should have recently allowed the old historical weapons from armouries of Tanjore and Madras to be broken up and sold for old metal. This act of vandalism is all the more to de deplored, as neither the tower, nor the India museum collections are, as Mr. Egerton points out, rich in Southern Indian arms (p. 178).

चित्र ८—दिल्ली का बहुत पुराना बना मिट्टी का बर्तन

अंग्रेजी कांची में २५ भाग संग-ए-सफेद, ६ भाग सज्जी, ३ भाग सोहागतेलिया, और १ भाग नौसादर लिया जाता है। सब चीजों को महीन पीसा जाता है, और फिर छानकर थोड़ेसे पानी के साथ गूंथा जाता है, और नारंगी के आकार की सफेद गेंद तैयार की जाती है। इन्हें फिर गरम करके लाल कर लिया जाता है। फिर ठंढा करके पीसते हैं और कलमीशोरा मिलाकर भट्टी पर गलाते हैं। ऊपर उठा हुआ भाग अलग कर लेते है, और काम में लाते हैं।

देशी कांची में भी संग-ए-सफेद, सोडा और सुहागा काम में लाते हैं।

सिक्का चार तरह के काम आते हैं—सिक्का सफेद (White oxide), सिक्का जर्द, सिक्का शर्बती (litharge), सिक्का लाल (red oxide)। सिक्का-सफेद सीसा में आधा भाग रांगा मिलाकर बनाते हैं, सिक्के जर्द में सीसे को चौथाई भाग रांगा से अपचयित करते हैं, सिक्का शर्बती में रांगा की जगह जस्ता लेते हैं, और सिक्का लाल बनाने के लिए सीसा को हवा में उपचित करते हैं।

कांच और सिक्का-सफेद मिलाकर सफेद रंग तैयार करते हैं। दक्षिण भारत में रेत या कोबल्ट का काला ऑक्साइड (rita or zaffre) मिलता है। इसे गरम करके सफेद रंग के साथ पीसकर नीला रंग तैयार करते हैं। इस तरह इन्हें तांबे के साथ मिलाकर हरा रंग भी तैयार करते हैं। इनके विस्तार के लिए बर्डवुड महोदय की पुस्तक (पृ० ३०७-३१२) देखनी चाहिए।

हमने इस लेख में कुछ थोड़े धन्धों का ही दिग्दर्शन कराया है। सुवर्णकारी सम्बन्धी रसायन का विस्तृत उल्लेख सर प्रफुल्लचन्द्रराय की हिन्दू कैमिस्ट्री में देखा जा सकता है। १९वीं शताब्दी के अन्त से इस देश में पाश्चात्य विधियों का समावेश हुआ है। पाश्चात्य ढंग के विश्व-विद्यालयों में रसायन शास्त्र की नए ढंग से शिक्षा आरम्भ हुई है। लगभग सभी चीजों के बड़े-बड़े कारखाने देश में खुल गए हैं, जिनके फलस्वरूप देशी विधियों का लोप होता जा रहा है। विदेशों से तैयार रंग, औषधियां और जीवन की अन्य आवश्यक सामग्री हमारे बाजारों में आने लगी हैं। फिर भी अब भी बहुत से प्राचीन धन्धे देश में पूर्ववत् विद्यमान हैं। पाश्चात्य ढंग पर खुले कारखानों का इतिहास केवल गत पचास वर्षों का इतिहास है पर इतने थोड़े से समय में ही देश की काया पलट गई है और जो पद्धतियां सहस्रों वर्षों से प्रचलित थीं, वे बहुत शीघ्र नष्ट होती जा रही हैं।

# कीटाणु और निदान

लेखकः श्री घनश्यामकृष्ण शुक्ल, एम० एस० सी०

कीटाणु जगत में जीवित अवस्था के सूक्ष्मतम द्योतक है। पर उनका आचार, वृद्धि तथा नाश भी मनुष्यों की जीवन कहानी से अधिक सामंजस्य रखता है। प्रारम्भ से ही मनुष्य की चेष्टा जीवन को सुखी और उन्नत बनाने की रही है। कीटाणुओं से तो उसका एक प्रकार का युद्ध अनादि युग से चला आता है। आधुनिक रोगों में अधिकांश व्याधियों की उत्पत्ति केवल कीटाणुओं के कारण होती है तथा संक्रामक रोगों के प्रसार में इनका बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है।

शरीर के किसी प्रकार के रोग ग्रस्त होने पर विष एकत्र होने की सम्भावना रहती है। घावों में दूषित पदार्थों की उपस्थिति से रक्त दोष के कारण विष उत्पन्न होता है। किसी भी विषैले स्थान पर कीटों की उत्पत्ति हो जाने पर विष फैलता ही जाता है। संक्रामक रोगों के एक मात्र कारण कीटाणु ही हैं। शरीर में प्रविष्ट होने पर उनकी स्वतः वृद्धि होती है। ये कीटाणु अधिकतर सम्पर्क से फैलते हैं तथा मनुष्य के बिना जाने ही ये शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं। केवल मनुष्य के शरीर पर ही नहीं वल्कि पेड़ पौधों पर भी इनका संहारक रूप देखा जा सकता है। ये पेड़ों के लिये उसी भाँति नाशकारी होते हैं जिस तरह कि मनुष्यों के लिये। पेड़ों में कीटाणुओं के प्रविष्ट होने पर उनकी जीवन शक्ति अधिकांशतः इन कीटाणुओं का भोजन हो जाती है और इस तरह वे उन्हें जर्जर कर देते हैं। अतः उपज की रक्षा के लिये कीड़ों का नाश बहुत ही आवश्यक होता है।

कीटाणुओं का नाश सदा से ही एक बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न रहा है। आधुनिक चिकित्सा रसायन में कई प्रकार के कीटाणु नाशकों के उदाहरण मिलते हैं। स्थूल दृष्टि से वे दो भागों में विभक्त किये जा सकते है। यह विभाजन उनकी क्रिया के अनुकूल किया जा सकता है। कुछ रासायनिक द्रव्य ऐसे हैं जिनका स्पर्श मात्र ही कीटाणु के लिये घातक होता है। इनके अतिरिक्त कुछ पदार्थ ऐसे हैं जो कीटाणु के भीतर पहुँचकर उनका नाश करते है क्योंकि कीटों के लिये भी विष होते हैं और साधारण चीजों की भाँति वे विष के अन्दर पहुँचने पर जीवित नही रह सकते।

साधारणतः अन्तःविषों में संखिया के यौगिकों का उपयोग होता है। लेड आरसेनाइट का भी इस कार्य के लिये बहुतायत से उपयोग होता है। लेड आरसेनाइट महीन स्तर के रूप में उपस्थित किया जा सकता है। यह सरलता से रासायनिक क्रिया द्वारा नष्ट नहीं होता और इसका उपयोग पेड़ों की रक्षा के लिये अधिक उपयुक्त है। कभी-कभी इसके साथ कैलसियम आरसेनाइट कम मूल्यवान होने की दृष्टि से प्रयुक्त होता है। इसके अतिरिक्त कापर आरसेनाइट तथा एसीटेट (acetate) का मिश्रण जो पेरिस ग्रीन के नाम से विख्यात है, काम में लाया जा सकता है, पर यह मच्छरों की वृद्धि को रोकने के लिये ही पूर्ण लाभदायक होता है। इसके लिये इसे धूलि के साथ मिश्रित करके स्थिर जलाशयों पर मच्छर वंश के नाश के लिये प्रयुक्त हो सकता है।

घरेलू मक्खी के विरोध में फ्लोरीन (fluoine) के यौगिक, फ्लोराइड, फ्लूओसिलीकेट, बोरेट, तथा अल्यूमिनेट अधिक सफल पाये गाये है। फ्लोरीन के घुलनशील यौगिक घरेलू कीटों के नाश में तथा अघुलनशील यौगिक पौधों की रक्षा में प्रयुक्त होते हैं क्योंकि फ्लोरीन के यौगिक किसी भी तरह के जीवन के लिये हानिकारक है। बहुत से रंग भी कीटाणुओं के जीवन को नष्ट करने वाले होते हैं। मार्टिन पीत का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ये रंग पेड़ों को बचाने में सर्वथा अनुपयुक्त देखे गये हैं यद्यपि इनका उपयोग कपड़ों आदि को कीटाणुओं से सुरक्षित करने में सुविधानुसार किया जा सकता है।

अब हम ऐसे कीटनाशकों का वर्णन करेंगे जिनका स्पर्श मात्र कीटाणुओं का विनाश कर सकता है।

इस कार्य के लिये तम्बाकू के यौगिकों का उपयोग बहुत समय से होता आया है। किन्तु तम्बाकू का जलीय रस कुछ कीटाणुओं के जाति विशेष के ही विरुद्ध अधिक सफल हो सका है। पाइरेथ्रम का उपयोग अधिकतर घरेलू कीटाणुओं के लिये किया जाता है क्योंकि यह उष्णरक्त के जीवन के लिये हानिकारक नहीं होता। मिट्टी के तेल के साथ मिश्रित पाइरेथ्रम मच्छरों तथा मक्खियों को मारने के लिये वाष्प रूप में प्रयोग किया जा जाता है। पाइरेथ्रम की शक्ति उसमें उपस्थित पाइरेथ्रिन 'प्रथम' और पाइरेथ्रिन 'द्वितीय' के कारण ही मुख्यतः है। इसके अतिरिक्त "रौटेनोन" नामक रासायनिक पदार्थ का उल्लेख भी आवश्यक है क्योंकि यह भी उष्णरक्त जीवन के लिये हानिकारक नहीं है और इस दृष्टि से सर्वथा आदर्श कीटनाशक है। पाइरेथ्रम में संयुक्ति-जनित पदार्थ In९३० का मिश्रण करने पर उसकी कीट-नाशक शक्ति में आश्चर्यजनक वृद्धि होती है तथा आजकल इसे पाइरिन के नाम से प्रयोग करते हैं।

इन स्पर्श-घातकों के प्रयोग में सबसे बड़ा प्रश्न इनकी प्रयोग विधि के बारे में आता है। इन्हें जितना ही अधिक धरातल पर प्रसारित किया जाय उतना ही लाभ-दायक होता है। अधिकांशतः फ्रीआन वाष्प के साथ इन्हें प्रयोग किया जाता है क्योंकि इसका वाष्प पूर्ण रूप से इस विधि से प्रसारित होता है।

प्रत्येक भाँति के कीटनाशक के लिये यह आवश्यक होता है कि उसका प्रभाव मनुष्यों पर कभी हानिकारक न हो, साथ ही वह कीटों को मारने में पूर्ण शक्ति वाला हो। इस विषय में रसायन संयुक्ति से जनित डी०डी०टी० विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसका पूर्ण नाम डाई क्लोरो डाइ फिनाइल ट्राइ क्लोरोइथेन है। इसके निर्माण का श्रेय स्ट्रासवर्ग को दिया जा सकता है। डी०डी०टी० का प्रयोग लगभग प्रत्येक प्रकार के कीड़ों के विरुद्ध हो सकता है। पर अनुभव से ज्ञात होता है कि यह तीव्रता से कीड़ो पर प्रभाव नहीं डालता बल्कि उन्हें धीरे-धीरे मारता है तथा कीड़ों की स्नायुशक्ति पर आघात करता है। उसके प्रयोग से कीड़े अन्तः धीरे-धीरे मर जाते हैं। किन्तु विनाशक शक्ति में यह मिट्टी के तेल, पेरिस ग्रीन, अथवा पाइरेथ्रम से कहीं बढ़चढ़ कर है। इसके प्रयोग में खाने पीने की वस्तुओं तथा आग से विशेष सावधानी रखनी चाहिये।

भारतीय बीमारियों में मुख्यतः कीड़े ही उत्तरदायी हैं। मलेरिया, प्लेग, टाइफाइड, डेंगू, फाइलेरिया आदि कष्टकर व्याधियों के फैलने में कीटनाशकों के उचित प्रयोग से उनसे बचाव हो सकता है। रोग के पकड़ने पर उनकी उचित चिकित्सा से रोग का न होने देना ही उत्तम है क्योंकि संक्रामक रोग की चिकित्सा उसे रोकने से अधिक कष्टकर तथा कठिन है। डी०डी०टी० का प्रयोग इस क्षेत्र में आदर्श रूप से हो सकता है। अतः उसके उत्पादन के लिये उचित यत्न भारतीयों के स्वास्थय की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक है। केवल उत्पादन ही नहीं किन्तु इसे सर्व साधारण के प्रयोग के स्तर पर वितरित होने योग्य बनाने से वास्तव में भारतवर्ष में एक बहुत बड़ी जन संख्या को अकाल ग्रास होने से बचाना सम्भव है।

---

# भोजन के प्रमुख खनिज तत्व

लेखक—रमेशचन्द्र कपूर, डी० फिल०

हमारे भोजन में कुछ तत्व जो कार्बनिक पदार्थों में संयोजित रहते हैं, जैसे कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन तथा नाइट्रोजन, बहुत मात्रा में विद्यमान हैं। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे तत्व हमारे भोजन में रहते हैं जिनकी हमारे शरीर को आवश्यकता होती है। हमारा प्रयोजन यहाँ पर उन तत्वों से है जो भोजन को जलाने के पश्चात राख में बचते हैं।

यह तो बहुत समय से लोगों को ज्ञात था कि कुछ खनिज तत्वों की शरीर को आवश्यकता होती है जैसे कैलसियम की दाँतों और हड्डियों के लिए और लोहे की रक्त के लिए। कुछ समय से इस दिशा की ओर बहुत अनुसंधान हुआ है और इसमें बहुत से तत्वों की उपयोगिता का ज्ञान हुआ है। इनमें कुछ तत्व तो अधिक मात्रा में उपयोगी होते हैं जिन्हें हम प्रमुख तत्व

कह सकते हैं और कुछ न्यून मात्रा में ही आवश्यक होते हैं। इस समय यहाँ पर प्रमुख खनिज तत्वों का वर्णन किया जाएगा।

मनुष्य के दातों तथा हड्डियों के लिए कैलसियम तथा फासफोरस दोनों की आवश्यकता होती है। यह तत्व कैलसियम कार्बोनेट तथा फासफेट की अवस्था में दातों तथा हड्डियों में उपस्थित रहते हैं हमारे भोजन में यह दोनों तत्व साथ ही साथ रहते हैं। एक के बिना दूसरा तत्व हमारे शरीर के उपरोक्त अंगों की वृद्धि में लाभकारी नहीं हो सकता। हड्डियों तथा दाँतों की लगभग सारी फासफोरस तथा कैलसियम की आवश्यकता मज्जा (Fats), प्रोटीन तथा कार्बोहाईड्रेट से पूरी हो जाती है। यह दोनों तत्व हमारे रक्त में सदा प्रवाहित होते रहते हैं। इनकी रक्त में कमी या अधिकता से शरीर में अनेक रोग सूचक चिन्ह प्रकट होने लगते हैं। शरीर में कैलसियम तथा फासफोरस का निरंतर परिवर्तन पृष्ठवंशधारी (Vertebrate) जीवों के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

मैगनीशियम जो कि हमारे भोजन का एक प्रमुख तत्व है, मनुष्य के लिये आवश्यक है। शरीर में इसका परिवर्तन भी उपरोक्त तत्वों से बहुत सम्बंधित है। शरीर के स्नायुओं और रक्त वाहिनियों (Blood vessels) से इसका अधिक सम्बन्ध है।

लोहा हमारे शरीर का एक अत्यन्त प्रभावशाली तत्व है। यह रक्तग्लोबिन (Haemoglobin) का एक आवश्यक अंग है। रक्त में लोहे की कमी हो जाने से एनीमिया नामक रोग के चिन्ह प्रकट होने लगते हैं। मनुष्य के शरीर में लोहा-अनेक कार्बनिक पदार्थों के साथ यौगिक अवस्था में रहता है जिसमें प्रधान रक्तग्लोबिन है। वर्तमान अनुसंधानों से प्रतीत होता है कि अनाज, हरी तरकारियाँ, फली, तथा अंडा लोहे के सर्वश्रेष्ठ खाद्य पदार्थ है। पका हुआ मांस भी शरीर में लोहे की कमी को दूर करने के लिए अच्छा खाद्य है। लोहा गेहूँ तथा अन्य अनाजों में किसी एक जगह स्थित नहीं रहता है वरन् सब ओर फैला रहता है और ऊपरी छिलके में सबसे अधिक मात्रा में रहता है। गेहूँ के ऊपरी छिलके पर एक अम्ल रहती है जो लोहे से संयुक्त होकर एक लवण बनाती है। भोजन में आवश्कता से अधिक लोहे का शरीर में कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता है, क्योंकि शरीर में कई स्थानों पर यह जमा होता रहता है और कुछ मल के साथ बाहर निकल जाता है। परन्तु भोजन में अपर्याप्त लोहा रहने से अत्यन्त हानि होने का डर रहता है और इससे उत्पन्न रोगों की चिकित्सा में बहुत समय लगता है।

साधारण नमक, सोडियम क्लोराइड, हमारे भोजन तथा शरीर के प्रधान खनिज तत्वों का एक प्रमुख अंग है। रक्त तथा कोई भी शारीरिक द्रव इससे अछूत नहीं है और इनमें सोडियम से अधिक मात्रा में कोई भी धातु नहीं रहती है। क्लोरीन की मात्रा हमारे शरीर में इससे भी अधिक रहती है।

क्लोरीन उदर में नमक के तेज़ाब (Hydrochloric acid) के रूप में भी रहती है। यह वहाँ पर भोजन के पचाने में सहायक होती है। यद्यपि इसकी मात्रा यहाँ पर अधिक नहीं होती है परन्तु इसका उपयोग बहुत महत्वशाली है। पोटैसियम भी रक्त का एक अंग है जो रक्तकणों में रहता है। इसकी मात्रा शरीर में, सोडियम से न्यून होती है और हमारे नित्यप्रति भोजन में इसकी कमी हो जाने से शरीर में रोग चिन्ह प्रकट हो जाते हैं। मामूली भोजन में सोडियम, पोटैसियम तथा क्लोरीन तीनों ही आवश्यक मात्रा में मिल जाते हैं। कठिन शारीरिक कार्य करने वालों को सोडियम की अधिक आवश्यकता होती है क्योंकि उनके अधिक पसीना निकलने से सोडियम साधारण नमक के रूप में बहुत निकल जाता है और इस कमी को पूरा करना आवश्यक हो जाता है।

इस प्रकार हमें यह ज्ञात होता है कि यह खनिज तत्व, जिनकी मात्रा हमारे भोजन में ५ प्रतिशत से भी कम होती है, हमारे शरीर की वृद्धि तथा पालन के लिए अत्यंत महत्वशाली है। इन प्रधान तत्वों के अलावा कुछ और तत्व भी हमारे शरीर में न्यून मात्राओं में प्रयोजित होते हैं जिनका वर्णन कभी आगे करेंगे।

---

# भारतवर्ष में काँच के व्यवसाय का भविष्य

लेखक—मदन मोहन बी० एस० सी० (प्रथम वर्ष), प्रयाग विश्वविद्यालय

आज का युग विज्ञान का युग है। विज्ञान के चमत्कारिक अन्वेषण ने संसार की आँखें चौंधिया दी हैं। जिधर देखिये, उधर ही विज्ञान की विजय-पताका अपनी विलक्षणता के साथ ही अबोध गति से अनन्त नभ-मंडल में फहरा रही है। यदि हम विज्ञान की इस आश्चर्य-जनक उन्नति के कारण का पता लगायें तो हमें सहज में ही ज्ञात हो जायगा कि उसकी उन्नति का रहस्य काँच, रबर और लोहे के व्यापक प्रयोग में अन्तर्निहित है। यदि और अधिक गहराई से विचार किया जाये तो हमें यह स्वस्पष्ट हो जायगा कि लोहे के पश्चात् दूसरा नम्बर विज्ञान के परम सहायक काँच का ही आता है। इसने शान्ति और युद्ध दोनों ही अवसरों पर जो सहायता प्रदान की है वह मानव-मस्तिष्क से कभी भुलाई नहीं जा सकती। हम अपने दैनिक जीवन में काँच की न मालूम कितनी वस्तुओं का प्रयोग करते हैं। इसके वर्तमान व्यापक प्रयोग ने यह सिद्ध कर दिया है कि सूक्ष्म धागे से लेकर ब्लेड तक समस्त वस्तुएँ काँच की बनाई जा सकती है। अपने विशेष गुण—प्रकाशीय-विशेषता, क्षारीय अथवा अम्लीय पदार्थों की प्रभाव-शून्यता, अदहनशीलता, विद्युत की कुचालकता, पारदर्शकता एवं स्वच्छता के कारण यह और भी अधिक सर्वप्रिय व्यवसायिक वस्तु हो गया है। प्रयोगशाला के समस्त के उपकरण, दैनिक व्यवहार में आने वाले समस्त पात्र, विद्युत-प्रदीप और इस व्यवसाय में अन्य उपयुक्त वस्तुएँ, भवन निर्माण की बहुत सी चीजें और नेत्रविहीनों को नेत्र यह परम हितैषी काँच ही देता है। अतः ऐसे लाभदायक और हितकारी काँच का अध्ययन विज्ञान और मानव-जाति के उत्कर्ष के लिए परमावश्यक है। आइये, जरा थोड़ी देर भारत के 'शीश महल' की झाँकी लीजिए और उसमें विहार कर भावी कार्य-क्रम निश्चित करिये।

भारत में सर्व-प्रथम काँच निर्माण-कला का श्रीगणेश विगत शताब्दी के अन्तिम दिनों में झेलम नगर में जर्मन कला-विशेषज्ञों की सहायता से म्यूरी ब्रेवरी ने किया किन्तु उनका यह प्रयास निष्फल ही रहा। उनके द्वारा स्थापित बोतल का कारखाना अपने शैशव-काल के कुछ ही दिनों में मृतप्राय होगया किन्तु यह अपने निर्वाण से अन्य अनेक काँच के कारखानों को जन्म दे गया। इन सब में विदेशीय कलाविदों का प्रमुख हाथ था। काँच की कला के प्रचार, प्रसार एवं चिरस्थापन के लिए अनेक असफल प्रयत्न किये गये, किन्तु भारत में इसकी उन्नति के शुभ लक्षण प्रकट न हुए। पर हाँ, प्रथम विश्व महायुद्ध उसके लिए शुभ-वरदान बन गया। विदेशों से काँच की वस्तुओं का आयात एक दम बन्द हो जाने से भारत में काँच के व्यवसाय को पनपने का स्वर्ण अवसर मिल गया। युद्ध की परिस्थिति से लाभ उठने के हेतु पहले कारखानों ने अपने उत्पादन में वृद्धि की और उसके अतिरिक्त नवीन कारखाने स्थापित हुए। इन कारखानों में विशेष उल्लेखनीय चूड़ी और इसी प्रकार की दैनिक व्यवहार की वस्तुओं के कारखाने हैं। जापान ने भी भारत की तरह इस स्थिति का उचित लाभ उठाया। उसने भी सुसंगठित रूप में काँच के व्यवसाय को बड़े पैमाने पर आरम्भ किया और इस प्रकार उसने भारत में अपनी वस्तुओं की खपत बढ़ाने के लिये सफल प्रयास किया जो भारतीय काँच के व्यवसाय में एक रोड़ा बना।

इस प्रकार काँच की यह नवजात कला भारतवर्ष में परिपक्व होती गई और आज इस अवस्था को पहुँच गई है कि भारतीय कारखानों में निम्न लिखित वस्तुएँ यथेष्ट परिमाण में उत्पन्न की जाती हैं जिनसे अपने देशवासियों की आवश्यकताओं की पूर्ति भलीभाँति की जा सकती है—

१.—चूड़ियाँ।

२.—फूँक कर बनाये जाने वाले खोखले पदार्थ।

३.—बोतलें।

४.—काँच की चादरें।

५.—दवाब डाल का बनाई हुई चीजें और मोहक वस्तुएँ।

६.—वैज्ञानिक उपकरण, परख-नली, छड़ियाँ, अम्ल रखने के पात्र, विद्युत बल्ब और ताप-फ्लास्क इत्यादि

७.—कृत्रिम मोती।

अब हमें यह देखना है कि भारतीय कारखानों में बनी उपरोक्त वस्तुओं की क्या मात्रा है, कैसी हैं, कहाँ मुख्यतया बनती हैं, उनके सुधार के क्या साधन हैं।

१—चूड़ियाँ :—भारतवर्ष में चूड़ी का व्यवसाय सबसे अधिक उन्नति एवं विकसित है। इसका व्यवसाय मुख्यतः फिरोजाबाद में केन्द्रीभूत है। इस छोटे से नगर की सम्पूर्ण जन-संख्या ४०,००० के है जो प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से इस व्यवसाय से सम्बन्ध रखती है। यद्यपि यहाँ चूड़ियाँ हाथ से बनाई जाती हैं तथापि अनवरत चिर-अभ्यास के कारण वे अत्यन्त उच्च कोटि की होती हैं और ऐसी प्रतीत होती हैं मानों वे मशीन से बनाई गई हैं। यहाँ के प्रसिद्ध शीशगार, इस कला में पूर्ण पारङ्गत और अधिकार रखते हैं। यह वहाँ के कारीगर के अभ्यास, नैपुण्य और कला-चातुर्य्य पर ही निर्भर है कि वे चूड़ियों में १०० से २०० तक लचकदार घुमावदार चक्र बना सकते हैं। उनके उपकरण भी सब देसी हैं जो उनके अपने अनुभव के आधार पर निर्मित ( बनाये गये ) हैं। काँच के उत्पादन से लेकर चूड़ी की अन्तिम अवस्था तक भिन्न-भिन्न विधियाँ हैं जो भिन्न-भिन्न शिल्पियों द्वारा ही सम्पादित की जाती हैं। चूड़ियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार और रंगों की होती हैं और भिन्न-भिन्न विधियों से बनाई भी जाती हैं। भिन्न-भिन्न चूड़ियों के लिए कैसे काँच की आवश्यकता होती है वह भी निरन्तर परिश्रम और प्रयोगों के बाद ज्ञात किया गया है।

युद्ध आरम्भ हो जाने पर भारत में चूड़ियों के व्यवसाय का बहुत प्रसार और विकास हुआ क्योंकि जापान और जैकोस्लोवेकिया से काँच के सामान का आयात बिलकुल बन्द हो गया। साथ ही कोयला और अन्य रसायनों का भी अभाव हुआ जिससे परिस्थिति पर बुरा प्रभाव पड़ा।

२—फूँक-निर्मित खोखले पदार्थः—इस श्रेणी में शीशे के गिलास, जार, लालटेन की चिमनियाँ और हरीकेनलैम्प आदि सम्मिलित हैं। इन पदार्थों के उत्पादन में भारतीय-उद्योग ने आश्चर्यजनक उन्नति की है। उत्पादन की मात्रा और उसकी श्रेणी में विगत ३० वर्षों में क्रान्तिकारी उन्नति हुई है। भारत-निर्मित लालटेन की चिमनियाँ और हरीकेन-लैम्प अब जापान या संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका या अन्य किसी योरोपीय देश में बनी उपर्युक्त चीजों से टक्कर ले सकती हैं। इस क्षेत्र में भी पहले की तरह भारतीय-काँच-उद्योग आत्म-निर्भर है, और समस्त देश की माँग को पूरा करता है।

३—बोतलें :—काँच की चीजों में बोतलों का ही निस्सन्देह सबसे अधिक महत्त्व है। विगत महायुद्ध से पूर्व इस क्षेत्र में भारतीय-उद्योग बहुत ( काफ़ी ) पिछड़ा हुआ था, किन्तु युद्ध के उपरान्त देश के विभिन्न भागों में बोतलों के कई कारखाने स्थापित किये गये जिनमें भिन्न-भिन्न प्रकार, आकार और आयतन की बोतलें बनाई जाने लगी हैं। आधुनिक काँच के कारखानों में बोतलों का मृदुकरण स्वयं-चालित मशीनों के आधार पर किया गया है। किन्तु उत्तम कोटि के कच्चे माल और रसायन के अभाव से अभी भारत में उत्तम-श्रेणी की बोतलें जो रासायनिक-क्षेत्र में और सुगन्धित तैलादि रखने के काम में आती हैं नहीं बन पाई हैं। आशा है निकट-भविष्य में स्वतन्त्र भारत की प्रजातन्त्र सरकार इस ओर ध्यान देगी और उपयुक्त तथा श्रेष्ठ कच्चे माल, रसायन और तत्सम्बन्धित शिक्षा, संरक्षण और सहायता प्रदान कर इस कमी को पूर्ण करेगी।

४—काँच की चादरें :—युद्ध से पूर्व काँच की चादरें समस्त भारत में केवल एक संयुक्त प्रान्त के बहजोई के काँच के कारखाने में बनाई जाती थीं। जब युद्ध काल में इनकी माँग बढ़ी तो दो (और) नये कारखाने जमशेद पुर और बंगाल में खोले गये इन तीनों कारखानों में फोरकोल्ट की विधि से ही चादरें बनाई जाती है। आजकल भारत में काँच की चादरों का वार्षिक उत्पादन लगभग १ करोड़ ३० लाख वर्ग फीट है।

५—दबाव डालकर बनाई हुई वस्तुएँ:—कलमदान, जार, छोटी छोटी तश्तरियां, प्लेट और कागज़-दाब आदि भी अपने देश में हाथसे ही अत्यल्प मात्रा में तैयार की जाती हैं। इनका वार्षिक उत्पादन भी बहुत कम है और उनकी श्रेणी भी अत्यन्त निम्न है।

६—वैज्ञानिक उपकरण :—इस क्षेत्र में भारतीय उद्योग बिल्कुल नया है और अविकसित है। युद्ध-कालीन यातायात की असुविधा ने भारत में इस उद्योग का श्रीगणेश किया। तत्कालीन मांग की पूर्ति के लिये भारत में वैज्ञानिक उपकरणों पूर्ति कई एक का कारखाने खोले गये। तब से अब तक यहां के कारीगरों ने इस उद्योग में काफी अनुभव और नैपुण्य प्रप्त किया है, और अब आशा है कि वे भविष्य में वांछित-स्तर की वस्तुएं बना सकेंगे जो विदेशी उपकरणों से किसी भी दशा में हेय होंगे।

७—कृत्रिम मोती :—मनुष्य बड़ा महत्वाकांक्षी है। वह सदैव प्रकृति का अनुकरण कर उस पर अपना श्रेष्ठत्व और प्रभुत्व स्थापित करना चाहता है। यह महत्वाकांक्षा ही कृत्रिम मोतियों की भी प्रसवितृ है। एक समय था जब बहुमूल्य मोतियों को केवल रोज-महाराजे ही खरीद सकते थे किन्तु आज निर्धन भी वैसे ही सुन्दर और आकर्षक मोतियों को आसानी से खरीद सकता। यह सब कांच की ही देन है।

युक्त-प्रान्त के कुछ उत्तरी भागों में इन कांच के कृत्रिम मोतियों के बनाने का प्रयास किया गया हैं किन्तु वे अत्यन्त निम्नकोटि के हैं। संयुक्त-प्रान्त यू०पी० के उद्योग विभाग के ग्लास टैकनोलौजी सैक्शन ने बनारस में इसका एक शिक्षण-केन्द्र स्थापित किया है जहाँ मोती बनाने की विधियाँ सिखलाई जाती हैं। यहाँ कुछ शिक्षित व्यक्तियो ने इसका स्वतन्त्र रूप से व्यवसाय आरम्भ किया है। और सरकार ने भी उन्हें सहायता प्रदानकी है। किन्तु इस प्रकार का उद्योग केवल संयुक्त प्रान्त में सीमित है। अतः देश की समस्त मांग इनके द्वारा पूरी नहीं हो पातीं। इस व्यवसाथ में अभी विकास की आवश्यकता है।

८—विद्युत-बल्ब के काँच के शैल्स :—विद्युत-बल्ब के लिये काँच के शैल की आवश्यकता है। ये शैल्स भारत में कुछ ही दिनों से बनाये जाने लगे हैं। युद्ध के पूर्व विद्युत-बल्ब के निर्माण हेतु समस्त शैल विदेशों से ही मँगाने पड़ते थे। १९२८ से १९४२ तक भारतवर्ष में बंगाल इलैक्ट्रिक वर्कस लिमिटेड ही केवल शैल निर्माण करता था। किन्तु युद्ध के कारण बाहर से माल न आ सकने के कारण और बढ़ती हुई माँग के कारण यू० पी० और कलकत्ता में शैली-निर्माण की ओर कई कारखानों ने ध्यान दिया और देश की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति की। वह अनुमान किया जाता है कि सन् १९४५ ई० में शैल उत्पादन की संख्या लगभग १ करोड़ तक पहुँच गई थी। उत्पादन की संख्या तीव्र गति से ही भारत विद्युत-बल्ब के निर्माण में इतनी शीघ्र आत्म-निर्भर हो सका है।

## वर्त्तमान उत्पादन-स्तर

अभी तक काँच की वस्तुओं के उत्पादन के निश्चित आँकड़े प्राप्त करने के हेतु कई एक प्रयास किये गये हैं किन्तु कोई विशेष सफलता नहीं मिली है। अभी हाल में ही डाइरेक्टर जनरल आफ कोमर्शियल इन्टैलीजैंस एण्ड स्टैटिस्टिक्स ने काँच के मासिक उत्पादन के आँकड़े प्रकाशित करने का प्रयत्न किया किन्तु इसके व्यवसाइयों से उचित सहयोग न मिलने के कारण यह शुभ कार्य बन्द कर देना पड़ा। इस प्रकार का असहयोग काँच के उद्योग में हानिकर और प्रगति रोधक है।

इण्डियन टैरिफ बोर्ड द्वारा दिया गये सन् १९३१ ई० के आँकड़ों से पता चलता है कि उस वर्ष कुल १,४०,००,००० रु० का काँच और काँच का सामान उत्पन्न किया गया। किन्तु बाद के अनुमानों से ज्ञात होता है कि काँच के उत्पादन में द्रुत गति से वृद्धि हुई। द्वितीय युद्ध से पूर्व डा० पी० जे० टोमस की रिपोर्ट के आधार पर तत्कालीन काँच का वार्षिक उत्पादन २०० लाख रुपये के मूल्य का था। इस उत्पादन से देश की केवल चूड़ियों की माँग की ही पूर्ति की जा सकती थी। काँच की अन्य वस्तुयें देश की मांग के लिये अपर्याप्त थी, और ६० प्रतिशत के लगभग अन्य देशों से मंगाई जाती थीं।

दि ग्लास इन्डसिट्रयल सिन्डीकेट ऑफ़ फ़िरोजाबाद के अनुमान स्वरूप काँच की चूड़ियों का दैनिक उत्पादन लगभग ८० टन था जिसका मूल्य १,३०,००० रु था। इस प्रकार २५ प्रतिशत की कमी करके वर्ष में ३०० दिन का उत्पादन लगभग १८,००० टन हुआ जिसका मूल्य ३ करोड़ रुपया होता है। यह तो केवल चूड़ियों के ही आंकड़े हैं।

पैनेल औन ग्लास इन्डस्ट्रीज़ की रिपोर्ट के अनुसार कुछ आंकड़े निम्न-लिखित तालिका में इस प्रकार है:—

| विभाग | पूर्व-युद्ध-उत्पादन १९३७-३८ | पूर्व-युद्ध-आयात | पूर्व-युद्ध-खपत | लक्ष्य (५ वर्षों में) | वर्त्तमान उत्पादन-शक्ति |
|---|---|---|---|---|---|
| १—चूड़ियाँ .... | ८० लाख रु० (१२०००टन) | २९·३ लाख रु० (३,००० टन) | १०९·३ लाख रु० (१५,००० टन) | १६,८०० टन | १८,००० टन |
| २—कृत्रिम मोती ... | ... | १८·६ लाख रु० (४,२०० टन) | ४२,०० टन | ४,२०० टन | १२० टन |
| ३—बोतलें ... | १० लाख रु० (२०,००० टन) | २६·३ लाख रु० (६०,००० टन) | ३६·३ लाख रु० (८०,००० टन) | १००,००० टन | १००,००० टन |
| ४—लैम्पादि ... | २० लाख रु० (७,५०० टन) | ६·६ लाख रु० (२,००० टन) | २६·६ लाख रु० (९,००० टन) | १४,००० टन | १०,००० टन |
| ५—टेबिल वेयर ... | ८ लाख रु० (२,५०० टन) | ६·० लाख रु० (२,५०० टन) | २२ लाख रु० (५,००० टन) | ७,५०० टन | ५,००० टन |
| ६—दाबक ... | २ लाख रु० (१००० टन) | ५ लाख रु० (१,५०० टन) | ७ लाख रु० (२,५०० टन) | ४,००० टन | २,००० टन |
| ७—चादरें ... | ६० लाख वर्ग फीट | २८० लाख वर्ग फीट | ४२० लाख वर्ग फीट | ४२० लाख वर्ग फीट | २०० लाख वर्ग फीट |
| ८—वैज्ञानिक काँच के उपकरण | नगण्य | १·६ लाख रु० | १·६ लाख रु० | १० लाख रु० | ... |
| ९—ग्लास शैल ... | ... | .... | ... | २५० लाख | १४० लाख |

नोट :—कोष्टांकित टनों के आँकड़े केवल अनुमानित हैं।

## काँच के व्यवसाय के अविकसित होने के कारण

जैसा कि पहले बताया जा चुका है भारतवर्ष में चूड़ियों के अतिरिक्त अन्य जो चीजें उत्पादित की जाती हैं वे सब देश की मांग पूरी नहीं कर सकती। वे चीजें बाहर से माँग पूरी करने के लिये मंगाई जाती हैं। आत्म-निर्भर और पर मुखापेक्षी न रहने के लिये यह परमावश्यक है कि बाहर से मंगाई जाने वाली वस्तुओं को अपने ही देश में उत्पन्न किया जाय, अर्थात् दूसरे शब्दों में उन चीजों का उत्पादन बढ़ाया जाय जो अभी तक अपने देश में

या तो कम मात्रा में उत्पन्न की जाती हैं या बिल्कुल ही नहीं।

काँच का उत्पादन बढ़ाने के साधन खोजने से पूर्व यदि इस बात पर विचार किया जाय कि अब तक अपने देश में काँच का व्यवसाय क्यों नहीं पूर्ण विकसित हो पाया; उसके पिछड़ने के क्या क्या कारण हैं, वे कैसे दूर किये जा सकते हैं; तो अधिक श्रेयस्कर होगा। ध्यान-पूर्वक विचार करने पर ज्ञात होगा कि भारत में कांच के व्यवसाय के पिछड़े होने के निम्न-लिखित कारण हैं :—

१—विदेशी माल का भारत में आधिक्य और दूषित, नाशकारी प्रतिवादिता जब भारत में अन्य देशों में काँच का सस्ता माल अधिक मात्रा में आने लगा तो फिर यहाँ की गरीब जनता स्वदेशी मँहगे माल को ही क्यों खरीदने लगी ? वह तो विदेशी, उत्तम और सस्ते माल को ही खरीदना पसन्द करेगी। इस प्रकार के व्यवहार ने भारतीय उद्योग धंन्धों को बड़ा धक्का पहुँचाया और उसे पनपने से वंचित किया। ऐसे समय में सरकार का यह कर्त्तव्य था कि बाहर के माल पर अत्यधिक कर लगा कर स्वदेशी माल से मंहगा कर देती और इस प्रकार भारतीय नवजात उद्योग को पनपने में सहायता देती। किन्तु तब तो थी विदेशी सरकार। वह कब और क्यों इस प्रकार कर लगा कर भारतीय-उद्योग को प्रोत्साहन देती ? किन्तु अब तो परमेश्वर की कृपा से स्वतन्त्र भारत में स्वतंत्र और स्वदेशी ही सरकार है। अब अपनी सरकार का यह प्रथम कर्तव्य है कि काँच के इस पिछड़े हुए उद्योग को हर प्रकार की सहायता प्रदान कर इसे समुन्नत और विकसित करे।

२—उचित आन्तरिक संगठन का अभाव—देश में ऐसी सुव्यवस्था के अभाव के कारण, जिससे कि काटेज इन्डस्ट्री और उच्च-स्तर की इन्डस्ट्रीज में पारस्परिक सम्बन्ध और संगठन स्थापित हो सके, भी भारत में काँच का उद्योग नहीं पनप पाया। अतः अब स्थिति सुधारने के लिये यह आवश्यक है कि देश के अन्दर जितनी भी विभिन्न प्रकार की इन्डस्ट्रीज हों, उन सबका एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध हो जाय। ऐसा करने से प्रत्येक एक दूसरे के अधिक सन्निकट हो जायेंगे और एक दूसरे की कठिनाइयों को अच्छी तरह समझ सकेंगे और उसे दूर करने का प्रयत्न करेंगे। इस प्रकार सहयोग की भावना बलवती होगी जो राष्ट्र-हित साधन में कल्याणकारी होगी।

३—औद्योगिक शिक्षण-संस्थाओं का अभाव—अब तक ऐसी शिक्षण-संस्थाओं का पूर्ण अभाव रहा है जहाँ औद्योगिक शिक्षा का समुचित प्रबन्ध हो। बिना औद्योगिक शिक्षा दिये हुए भारतीय-उद्योग का पिछड़ना पूर्णतः स्वाभाविक ही है। दूसरे देशों ने औद्योगिक शिक्षा के कारण ही इतनी उन्नति की है। उदाहरणार्थ जापान ने अपने काँच के व्यवसाय के स्तर और उत्पादन-शक्ति को टैकनिकल-शिक्षा की समुचित व्यवस्था के आधार पर ही किया है।

४—आवश्यक सामग्री का अभाव—भारत में अभी तक काँच के व्यवसाय के लिये उपयुक्त सामान-जैसे कच्चा माल, विभिन्न प्रकार के रसायन जैसे सोडा आदि उचित प्रमाण में नहीं मिल सके। इसीलिए भारत चश्मों के लैन्स, वैज्ञानिक उपकरण, कांचकी चादरें, कृत्रिम मोती आदि अनेक वस्तुओं के लिये अन्य देशों पर निर्भर रहता था। इन सब चीजों के बनाने की न तो किसी को औद्योगिक-शिक्षा ही दी जाती थी और न तो उचित परिमाण में उपयुक्त पदार्थ और रसायन ही उपलब्ध होते थे। इसके अतिरिक्त आन्तरिक यातायात के साधनों की असुविधा भी काँच के उद्योग के विकास में बाधक रही है। बहुत सी रेलवे कम्पिनियाँ तो काँच के माल का किराया प्रथम श्रेणी के किराये से भी अधिक वसूल करती थीं। ऐसी अवस्था में काँच के तैयार माल को देश के एक भाग से दूसरे भाग तक ले जाने में बहुत मार्ग व्यय देना पड़ता था जिसके कारण काँच की वस्तुओं का मूल्य बहुत बढ़ जाता था और फिर ऐसी दशा में विदेशी सस्ते और अधिक उत्तम माल के सम्मुख उनकी खपत नहीं के बराबर ही होती थी अतः अब भारत की स्वतन्त्र सरकार को काँच के उद्योग के विकास के लिये यातायात की समस्त सुविधायें प्रदान करना चाहिये। सरकार की सहायता प्राप्त करके ही अन्य देशों ने अपने कांच के व्यवसाय को आगे बढ़ाया है।

विगत कुछ वर्षों में उपरोक्त कारणों को दूर करने

का जो कुछ प्रयत्न किया गया उससे यह स्पष्ट हो गया है कि भारत में काँच के व्यवसाय ने निश्चित रूप से उन्नति की है और उसका भविष्य भी बड़ा आशाप्रद, गौरवपूर्ण और उज्ज्वल प्रतीत होता है। क्योंकि देश की समस्त आवश्यकताएँ देश में ही पूर्ण हो जाती हैं। बाहरी देशों से बहुत ही कम चीजें अब मँगाई जाती हैं। यही नहीं, भारतीय निर्मित काँच की चीजें अब किसी दशा में विदेशी चीजों से निम्न श्रेणी की नहीं हैं। किन्तु हमें इतने से ही संतुष्ट होकर अपनी प्रगति से विराम तो नहीं लेना है ! अब हमारा ऐसा प्रयत्न होना चाहिए कि हमारा उत्पादन इतना बढ़ जाय कि उससे न केवल समस्त देश की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके प्रत्युत कुछ दूसरे देशों को भी निर्यात किया जा सके। जिससे देश में धन-धान्य की वृद्धि हो। इस प्रकार काँच का भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल हो सकता है। यदि कुछ अन्य अधोलिखित उपायों पर भी गम्भीर दृष्टि से विचार किया जाय और उन्हें कार्य रूप में परिणित किया जाय :—

१—औद्योगिक शिक्षण-संस्थाएँ—समस्त प्रान्तीय विभागों को दि सेन्ट्रल ग्लास एण्ड सिरेमिक रिसर्च इंस्टीट्यूट, कलकत्ता के संरक्षण में कर देना चाहिए जिससे वे स्थानीय कार्यों में स्वतंत्र रहें पर सर्व देशीय सार्वजनिक कार्यों में उसके आधीन रहे। इस प्रकार देश के उद्योग को सुसंगठित और सुव्यवस्थित रूप दिया जा सकेगा। ऐसी संस्थाओं को धन और कला-विशारद की राजकीय सहायता मिलनी अनिवार्य है जिससे ये अपने उत्तरदायित्व पूर्ण कर सकें।

इसके अतिरिक्त जैकोस्लोवेकिया के गैबलोंज की तरह फिरोजाबाद में भी राजकीय प्रयोगशालाएँ और शिक्षणालय होने चाहिए जहाँ विदेशी कलाविदों के निरीक्षण में कार्य हो सके। उनके प्रयोगों के परिणामों और अनुभव से व्यवसाइयों को अवगत किया जाय और और इस प्रकार व्यवसायके अनेक उपयोगी और महत्त्वपूर्ण रहस्यों का उद्घाटन किया जाय जिससे उत्पादन स्तर और परिमाण दोनों ही बढ़ सकें। इस प्रकार की संस्थाओं का निर्माण कृत्रिम मोती, उत्तम कोटि के वैज्ञानिक उपकरण आदि-आदि के व्यवसाय में अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध होंगी। इसके अतिरिक्त सरकार को अपने देश के कुछ व्यक्तियों को जापान, जैकोस्लोवेकिया आदि उन्नत देशों में शिक्षा प्राप्त करने के हेतु भेजे जो फिर यहाँ आकर काँच के उद्योग में सुधार और उन्नति करें।

२—पर-राष्ट्रों से सहयोग—दूसरे देशों से सम्पर्क रखने और उनके अनुभव से लाभ उठाने के लिए विदेशी कम्पनियों से सम्बन्ध स्थापित किया जाय। किन्तु यह सम्बन्ध देश की प्रगति में किसी प्रकार बाधक न हो। ऐसा भी सम्भव है कि वे कम्पनियाँ देश में अपना प्रभुत्व जमा लें और देश के व्यवसाय को चौपट कर दें। इस प्रकार का संबंध सर्वथा अवाञ्छनीय है।

३—राजकीय हस्तक्षेप—ऐसे उद्योग जैसे ऑप्टीकल ग्लास इन्डस्ट्री जिनमें अधिक पूँजी और अनुभव की आवश्यकता होती है और जो एक व्यक्ति या एक से अधिक व्यक्तियों से संचालित नहीं किये जा सकते अथवा उसमें सफलता की कम आशा प्रतीत होती है तो सरकार को उन्हें अपने संरक्षण में ले लेना चाहिए जिससे वह उसका विकास कर सकें।

इसके अतिरिक्त उत्पादित वस्तुओं की कोटि (quality) पर नियन्त्रण रखने के लिये सरकार को प्रमाणीकरण और ट्रेड-मार्क भी निर्धारित करना चाहिए। ऐसे व्यावसायिक समुदाय भी स्थापित किये जायँ जिससे समस्त देश के व्यवसाय को संगठित और समुन्नत किया जा सके। ये सब समुदाय एक विशिष्ट समुदाय—अखिल भारतवर्षीय काँच व्यवसाय संघ के अन्तर्गत सम्मिलित और सुसंगठित होने चाहिए। उत्पादन के नवीनतम आंकड़े और समस्त सूचनाएँ प्राप्त करने में बड़ी सुविधा हो जायगी जिससे काँच के उद्योग के विकास में बड़ी सहायता मिलेगी।

# फलों के उपयोग

ले०—बालकृष्ण अवस्थी, एम० एस सी०

भारतवर्ष में जितने फल पाये जाते हैं वह सब मौसम तक ही रहते है और उनके मौसम निकल जाने पर वह खराब हो जाते हैं। यही नहीं बल्कि मौसम में भी वह अधिक दिन तक नहीं रक्खे जा सकते, कुछ दिनों तक तो ठीक रहते है, फिर उसके बाद सड़ने लगते है। यदि हम उनको पेड़ से तोड़ने के बाद ही किसी ऐसी वस्तु बनाने में उपयोग कर लें जो कि कई महीनों तक रक्खी जा सके तो हम उनकी आयु को बढ़ा सकते हैं। इस विधि को फल संरक्षण या Fruit Preservation कहते हैं। आजकल यह अति आवश्यक है कि देश की कोई भी वस्तु बेकार न जाय क्योंकि अब हमे जो कुछ हमारे देश में होता है उसीसे संतोष करना है। अनाज (मुख्यत: गेहूँ) जो बाहर से मंगाया जाता था, वह अब बन्द हो जायगा। अत: हमें ऐसी बातों पर ध्यान देना है जिससे कि हम खाने की बरबादी (spoilage of food) को बचा सकें। इस लेख मे मैं बतलाऊंगा कि फलों में क्या क्या खराबियां हो सकती हैं और कैसे हम उन्हें उनसे बचा सकते हैं। फिर यह भी बतलाया जायगा कि हम उनको किन किन वस्तुओं में बदल कर उनकी उनकी आयु को बढ़ा सकते हैं।

खाने पीने की वस्तुओं के खराब होने के कारण तीन प्रकार की क्रियायें होती है जिनके द्वारा वस्तुओं में परिवर्तन होते है :—

(१) इनज़ाइम (Enzymes) के द्वारा परिवर्तन-
(२) रासायनिक परिवर्तन-
व (३) कीटाणुओं से होने वाले परिवर्तन-

इनज़ाइम ऐसे रासायनिक पदर्थ हैं जो कि किसी मुख्य परिवर्तन या क्रिया में सहायता देते हैं और जिनके बिना उस क्रिया का होना सम्भव नहीं। जैसे पाचन क्रिया में कुछ रस पाये जाते हैं जो कि खाने को पचाने में या घुलाने में सहायता देते है। इनमे प्रकार प्रकार के इनज़ाइम होते हैं जिनके द्वारा ही यह क्रियायें होती हैं एक दूसरा उदाहरण मदिरा उत्पादन का है जिसमें इनज़ाइम जोइमेस की वजह से शकर से शराब बनती है यह इनज़ाइम एक खमीर (yeast) मे पाया जाता है। इसी प्रकार से अन्य कई जगहों पर यह अपना काम करते रहते हैं। फलो मे पेक्टोज़ (pectose) से पेक्टिन (pectin) और पेक्टिन से पेक्टिक अम्ल (pectic acid) भी इनज़ाइम के द्वारा ही बनता है।

इसके अतिरिक्त वस्तुओं का रंग महक और स्वाद भी रक्खे रक्खे बिगड़ने लगता है। यह रासायनिक क्रियायों द्वारा होता है।

ऊपर कहे गये दो प्रकार के परिवर्तन मनुष्य के लिये हानिकारक नहीं हैं; पर अब जो तीसरे प्रकार का परिवर्तन है, उससे फलो और तरकारियों में खराबी आ जाती है और कुछ दिनो पश्चात् वह खाने योग्य नहीं रह जाते। इसे अंग्रेजी में spoilage कहते हैं। यह कीटाणुओं द्वारा होता है। यदि हम इनको अपने इच्छानुसार नियंत्रित कर लें तो इस खराबी को रोका जा सकता है। फलों में खराबी पैदा होने का मुख्य कारण कीटाणु ही हैं। इन्हें अंग्रेजी मे सूक्ष्मजीव (microorganism) कहते क्योंकि यह सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा ही दिखलाई देते हैं। यह निम्नलिखित प्रकार के होते हैं—

(अ) बैक्टीरिया—इनको फिशन फ़ञ्जी (fission fungi) भी कहते हैं, उदाहरणार्थ क्लास्ट्रिडम बातुलिनम (clostridium botulinum)। जो समान डब्बों में रक्खे जात है और ठीक प्रकार से कीटाणु रहित नहीं किये जाते उनमें यह कीटाणु पैदा हो जाते हैं। उबलते हुये पानी में २० से ३० मिनट तक रखने से यह मर जाते हैं।

(ब) खमीर (yeast)—जिन पदार्थों में शकर की मात्रा ६६ प्रतिशत से कम होती है उसमे यह पैदा हो जाता है। इसके बढ़ने के लिये उचित तापक्रम ७० से ८०° फाहरेनहाइट है। इसका मुख्य उपयोग शकर वाले

पदार्थों से शराब बनाने में होता है और इसकी कई भिन्न जातियां व प्रकार होती हैं जो प्रथक् प्रथक् कामों में प्रयोग किये जाते है। उनकी शक्ति १६० से १८० फा० पर आध घंटे गरम करने पर मर जाती है। ईस्ट एक प्रकार की फफूंदी (fungus) है।

(स) फफूँदी (fungi)—खमीर के अतिरिक्त भी कई प्रकार के कीटाणु इस समूह में गिने जाते हैं जैसे मोल्ड। इसके बढ़ने के लिए हवा, नमी और ताप, तीन चीजों की आवश्यकता होती है। जिन पदार्थों में खटास अधिक होती है उनमे यह तेज़ी से बढ़ती है। बिगड़ी हुई चीज़ों पर बहुधा यह देखा जाता है कि फफूँदी लग गई है।

फलों क संरक्षण के तरीके—फलों को कई महीनों तक रक्खा जा सकता है यदि हम कोई ऐसा उपाय सोचें जिससे हम उनको इन कीटाणुओं की क्रिया से बचा सके इसको दो भागों में बांटा जा सकता है—

(१) अस्थायी संरक्षण तथा (२) स्थायी संरक्षण।

(१) अस्थायी संरक्षण—(कुछ दिनों से ले कर कुछ महीनों तक)

(i) कीटाणुनाश (Aespsis)—यदि फलों के तोड़ने में, उड़ाने में तथा बक्सों में रखने में सावधानी रक्खी जाय तथा प्रत्येक स्थान पर कीटाणु रहित सामान प्रयोग में लाया जाय तो कीटाणुओं की संख्या को कम किया जा सकता है। फलों को प्रयोग करने से पूर्व अच्छी तरह से धो लेना चाहिये क्योंकि धूल जो इनमें लगी रहती है बहुत से कीटाणुओं का घर होती है।

(ii) कम तापक्रम—प्रायः यह देखा जाता है कि खाने पीने के सामान गर्मियों की अपेक्षा जाड़ों में अधिक देर तक रक्खे जा सकते है और वह बिगड़ते नहीं। इसका कारण यह है कि हर एक कीटाणु के बढ़ने के लिये एक खास तापक्रम होता है जिसे उपयुक्त तापक्रम कहते हैं। यदि उनको गरमी नहीं मिलती तो वह अपनी क्रिया करने के योग्य नहीं रह जाते और कहा जाता कि वे निष्क्रय (inactive) हो गये। ताप की कमी से रासायनिक परिवर्तन भी नहीं हो पाता। जब कीटाणु की क्रिया ही नहीं होगी तो फल बिगड़ नहीं सकते। रेफ्रीजरेटर इसी सिद्धान्त पर काम करता हैं। साधारणत. ५०° फ़० सेनीचे तापक्रम पर कीटाणु क्रियाहीन हो जाता है। इसी लिये प्रायः रेफ्रीजरेटर में ४० फ़० का तापक्रम रक्खा जाता हैं इसमें कुछ सप्ताह तक चीजे बिना बिगड़े रक्खी जा सकती हैं। फल, तरकारी तथा अंड़े इसमें अक्सर रक्खे जाते है। आलू और प्याज तो ३ माह तक भी बिना बिगड़े रह सकते हैं। यदि बहुत अधिक मात्रा में सामान रखना है तो उसके लिए एक बड़े ठण्ड स्टोर (cold storage) की आवश्यकता होती है जिसके लिए अमोनिया प्लाण्ट (ammonia plant) लगाना पड़ता है। यूरोप व अमरीका में हिम-सरक्षण (freezing preservation) भी काम में लाया जाता है जो कि अधिक लाभदायक सिद्ध हुआ है। इसमें तापक्रम ३२° फ़ा० से भी कम रक्खा जाता है जिससे जो पानी उस पदार्थ में होता है वह जम जाता है। जिन देशों मे बिजली सस्ती मिलती है वहां पर यह तरीका अपनाया जाता है।

(iii) कीटाणु नाशकों (antisepotics) का प्रयोग—शक्कर नमक, मसाले, सिरका, सरसों का तेल, आदि ऐसे पदार्थ है जो कि चीजों को कुछ काल तक बिगड़ने से बचा सकते हैं।

(iv) पास्चराइजेशन—इसमें तरल पदार्थों को इतना गरम किया जाता है कि उनमें स्थित कुछ कीटाणु मर जायं और फिर एक दम से ठंडा किया जाता है। दूध एक या दो दिन तक ठीक प्रकार से रक्खा जा सकता है। फलों के रसों के लिए भी तरीका इस्तेमाल करते हैं। गरम करने का तापक्रम तथा समय भिन्न भिन्न होना हैं। १६५° फा० पर आध घंटे तक गरम किया जाता है, तापक्रम बढ़ने पर समय कम हो जवेगा।

कीटाणु रहित करना (Sterilization)—यह तरीका सबसे अधिक प्रयोग में लाया जाता है, इसमे उस वस्तु को इतना गरम करते हैं कि कोई भी जीवित कीटाणु न रह सके। फिर ऐसे डब्बों या शीशियों में बन्द कर दिया जाता है जिससे उनके अन्दर बाहर से कीटाणु न पहुँच सके प्रत्येक वस्तु के लिये तापक्रम भिन्न है। जिन पदार्थों मे खटास (acidity) कम होती है और स्पोर (spore) वाले बैक्टीरिया

होते हैं उनके कीटाणु रहित करने में कठिनता होती है। इन्हीं बैक्टीरिया को मारने के लिए यह क्रिया की जाती है।

फलों के रसों को प्रायः ६५ से ८५° फ० तक गरम करते है।

फलों य उनसे बनाये पदार्थों को २१२° फा० (उबलते हुये पानी) में रखते है १० से ३० मिनट तक (फलों के अनुसार)। तरकारियों को १० पौंड दबाव पर ५० से ७० मिनट तक कीटाणु रहित करते हैं। यह समय अलग अलग तरकारी पर निर्भर है। इस दबाव पर तापक्रम २४०° फा० होता है। इस ताप पर बैक्टीरिया के स्पोर सरलता से नष्ट हो जाते है। इसलिए तरकारियों के लिए एक विशेष उपकरण की आवश्यकता होती है जिसके कई और नाम है जैसे pressure cooker या autoclave या retort।

(ii) रसायनिक पदार्थों द्वारा—पहले जो रासायनिक पदार्थ इस काम के लिए प्रयोग मे लाये जाते थे वे थे बोरिक एसिड, सुहागा, सेलीसिलिक एसिड, फ़ार्मल्डीहाइड इत्यादि। पर यह देखा गया कि यह मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। अब जो पदार्थ प्रयोग किये जाते हैं उनमे बेंजोइक एसिड (benzoic acid) और उनके लवण, तथा सलफ़्यूरस एसिड (sulphurous acid) और उनके लवण। जो लवण मुख्यतः प्रयोग किये है वह है सोडियम बेंजोएट (sodium benzoate), पोटैसियम मेटाबाई सलफाइट (potassium metabisulphite) तथा सोडियम मेटाबाई सलफाइट (sodium metabisulphite)। यह बहुत थोड़ी मात्रा में लिये जाते है। रंग वाले पदार्थों में केवल सोडियम बेंजोएट ही प्रयोग किया जाता है क्योंकि अन्य दो पदार्थ रंग को उड़ा देते हैं।

(iii) शक्कर द्वारा—जिस वस्तु में शक्कर की मात्रा ६६ प्रतिशत से अधिक हो जाती है वह खराब नहो होती। पर साधारणतः ६८ से ऊपर की शक्कर रक्खी जाती है, मुरब्बा, जाम, जेली, मार्मलेड, शरबत सब में यही गुण होता है। ऐसा करने से पानी की मात्रा कम हो जाती है और कुल घुलित ठोसों की मात्रा बढ़ जाती है।

(iv) नमक द्वारा—१० से १५ प्रतिशत नमक भी वही काम करता है। बरसात के मौसम में यह सफल नहीं होता।

(v) सिरका द्वारा—इस सिरके में एसीटिक एसिड की मात्रा १ से ३% तक होनी चाहिए। यह शक्कर व नमक दोनों ही से अच्छा तरीका है।

(vi) सुखाना—इसमें हम पानी की मात्रा बहुत कम कर देते हैं और ऐसा करने से शक्कर और स्टार्च ६६% या इससे अधिक हो जाते हैं जिससे उन पर कीटाणुओं का कोई प्रभाव नहीं होता। पानी की मात्रा फलों में प्रायः ८० से ९०% तक होती है—बाकी में कार्बोहाइड्रेट तथा अन्य रासायनिक पदार्थ होते हैं।

यह दो प्रकार से हो सकता है। एक तो धूप में रखने से, जिसे सुखाना (drying) कहते हैं—और दूसरा अनार्द्री करण (dehydration) जो हम उस वस्तु को एक बन्द बक्से में रखकर नीचे अंगीठी जलाकर करते हैं। अनार्द्रीकरण में हवा की नमी व बहाव का प्रभाव भी होता है। तापक्रम १४०° से १६५° फा तक रखते हैं।

ऐसा करने से एक लाभ और होता है कि इंजाइमों (enzymes) का भी कोई प्रभाव खाने की वस्तु पर नही होता।

(vii) फरमेण्टेशन (Fermentation) द्वारा—कीटाणुओं का उपयोग इसमें किया जाता है। इस क्रिया द्वारा ऐसी चीज हम बना लेते हैं कि उसमें फिर और किसी कीटाणु की क्रिया न हो सके। यह शर्कराओं पर होता है।

तीन प्रकार के फरमेण्टेशन होते हैं :—

(अ) आलकोहल के लिए फरमेंटेशन (alcoholic fermentation)—ईस्ट (खमीर) की क्रिया शक्कर पर होती है और वह एलकोहल (शराब) के रूप में परिवर्तित हो जाती है तथा कार्बनडाई आक्साइड गैस निकलती है। ऐसे पदार्थों में एलकोहल की मात्रा पर ही उसके न बिगड़ने का गुण निर्भर है। अन्य बैक्टीरिया और मोल्ड से बचाने के लिए उनका वायु से प्रथक रखना चाहिए। उदाहरण—तरह-तरह की

शराबें, वाइन, बियर, साइडर आदि।

(ब) सिरके के लिए फरमेण्टेशन (Acetic fermentation)—शक्कर से शराब बन जाने पर शराब सिरके के रूप में बदल जाती है। यह क्रिया एसीटिक बैक्टीरिया के कारण होती है। सिरके के अन्दर जो रसायनिक पदार्थ है और जिसके कारण उसमें यह गुण प्राप्त है, उसे एसीटिक एसिड कहते हैं। यह कीटाणु नाशक (antiseptic) की तरह काम करता है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, सिरका एक मुख्य स्थाई संरक्षकों में से है। अधिकतर अचारों में इसका प्रयोग किया जाता है।

(स) लैकरिक एसिड के लिए फरमेण्टेशन (Lactic fermentation)—इसका उपयोग अचारों में, saverkraut में तथा कई अन्य जगहों में किया जाता है। शक्कर (ग्लूकोज) लैक्टिक एसिड बैक्टीरिया की क्रिया से लैक्टिक एसिड में परिवर्तित हो जाती है।

(vii) गैस द्वारा—सोडावाटर इसी सिद्धान्त पर बनाये जाते हैं। यद्यपि शक्कर की मात्रा इनमें १४ या १५ प्रतिशत ही रहती है तथापि यह खराब नहीं होते—कारण कि जो गैस इन बोतलों में भरी जाती है, वह उसको बिगड़ने से बचाती है। कार्बनडाई आक्साइड (carbon-di-oxide) और नाइट्रोजन यहाँ काम में लाई जाती हैं। बाहरी देशों में फलों के रस भी इसी प्रकार रक्खे जाते हैं। उनको बोतलों में भर कर गैस दबाव द्वारा ऊपर से भर दी जाती है और फिर बोतलें बन्द कर दी जाती हैं।

ऊपर कहे गये उपायों के अतिरिक्त कुछ ऐसे तरीके हैं जो केवल बाहरी देशों में ही काम में लाये जाते हैं और भारत में उनका उपयोग नहीं किया जाता।

---

# विश्वस्वास्थ्य सम्मेलन और भारत

के० एल० राजन

द्वितीय महायुद्ध के बाद जब संयुक्तराष्ट्र संगठन का निर्माण हुआ, तो यह अनुभव किया गया कि केवल राजनैतिक क्षेत्र में ही अंतर्राष्ट्रीय सहयोग से काम नहीं चलेगा, बल्कि राजनीति से दूर बहुत से ऐसे क्षेत्र हैं, जिनमें अंतर्राष्ट्रीय सहयोग की उतनी ही आवश्यकता है जितनी और किसी क्षेत्र में सहयोग की आवश्यकता है। स्वास्थ्य का एक ऐसा क्षेत्र है, जिसमें पाश्चात्य और प्राच्य सभी जातियां खुशी से सहयोग कर सकती हैं। स्वास्थ्य सम्बन्धी इसी शेषोक्त विचार को रूप देने के लिये विश्व स्वास्थ्य संगठन की सृष्टि हुई। यह संगठन स्वास्थ्य का बहुत व्यापक दृष्टिकोण लेकर चला जैसे कि इसके संविधान में आये हुए इन वाक्यों से प्रगट होता है।

"स्वास्थ्य का अर्थ सम्पूर्ण रूप से शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक स्वस्थता की व्यवस्था है, न कि केवल रोग या अपाहिजपन की अनुपस्थिति।

"स्वास्थ्य का उच्च से उच्च मानदंड का उपभोग नस्ल, धर्म, राजनैतिक विश्वास आर्थिक या समाजिक व्यवस्था में भेद किये बगैर प्रत्येक व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है।

"सभी जातियों को शान्ति तथा सुरक्षा की प्राप्ति के लिये स्वास्थ्य अत्यावश्यक है; और यह व्यक्तियों तथा राष्ट्रों के अधिक से अधिक सहयोग पर निर्भर है।"

संविधान में से ऊपर जो अंश उद्धृत किया गया, उसीसे यह स्पष्ट है कि विश्व स्वास्थ्य सगठन के सामने कितने ऊँचे उद्देश्य हैं। चौंसठ जातियों ने इसके विधान पर अपनी सहमति दे दी है, और यह आमतौर से माना जाता है कि राजनैतिक शांति की रक्षा के लिये भी स्वास्थ्य के मोर्चे पर लड़ाई जरूरी है।

इस बीच में कई बार अंतर्राष्ट्रीय पैमाने पर विश्व स्वास्थ्य संगठन ने किसी एक देश में फैली हुई महामारी

का सामना किया। मिश्र में में बड़े जोर से जब हैजा फैला, तो दस जातियों ने फौरन उस देश की सहायता की। इन देशों के नाम यों हैं—ब्राजील, फ्रांस, इराक, इटली, स्विटज़रलैंड, ट्युनेशिया, ब्रिटेन, रूस तथा संयुक्तराष्ट्र अमेरिका। इसके अतिरिक्त चीन ने विश्व स्वास्थ्य संगठन के जरिये से बीस लाख सेंटीमीटर हैजा निवारक वैक्सीन भेजा। यह वैक्सीन संयुक्त राष्ट्र के सैनिक हवाई-जहाजों के द्वारा जल्दी से जल्दी पहुँचाया गया। विश्व स्वास्थ्य संगठन की देख-रेख में अमेरिका के दवा बनानेवालों ने दिन-रात काम करके हैजा निवारक वैक्सीन की दस लाख खुराकें मिश्र को भेज दी। इसी प्रकार से विश्व स्वास्थ्य संगठन मलेरिया तथा तपेदिक के क्षेत्र में बहुत जबर्दस्त काम कररहा है। अभी-अभी जिस बी० सी० जी० नामक दवा का आविष्कार हुआ है, उसका भी विश्व स्वास्थ्य संगठन प्रचार तथा प्रसार कर रहा है।

बी० सी० जी० के सम्बन्ध में पहले तो सब से बड़ी बात यह थी कि लोगों को इसके सम्बन्ध में विश्वास उत्पन्न किया जाता। विज्ञान के क्षेत्र में भी कुसंस्कार का बोल बाला कुछ कम नहीं हैं, और अच्छे-अच्छे डाक्टर यह मानने के लिये तैयार ही नहीं थे कि जिस तपेदिक को वे असाध्य रोग समझते थे, उसकी भी कोई उपयोगी दवा हो सकती है। इसलिये बी० सी० जी० का स्वागत बहुत धीरे-धीरे हुआ है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने अपनी चेष्टाओं के द्वारा इस सम्बन्ध में जितने प्रयोग हो रहे थे, उनका प्रचार किया, जिससे डाक्टर स्वयं अपना निर्णय आप कर सकें।

इसी प्रकार से स्टेप्टोमाइसीन की दवा के सम्बन्ध में देखा गया कि कई क्षेत्रों में वह तपेदिक की बहुत उपयोगी दवा साबित हो रही है। इसलिये इसका भी प्रसार करना आवश्यक समझा गया। इस सम्बन्ध में भी विश्व स्वास्थ्य संगठन ने बड़े उपयोगी कार्य किये। इसी प्रकार मलेरिया, उपदंश, सब तरह की महामारी, बच्चों तथा माताओं का स्वास्थ्य, पुष्टि के मानदंड का उन्नयन सफाई तथा मानसिक स्वास्थ्य की उन्नति आदि क्षेत्रों में इसने बहुत सुन्दर काम किया।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इस बात पर भी ध्यान दियाकि जो दवायें तथा वैक्सीन आदि बनते हैं, उनका एक मानदंड कायम किया जाय। इस कार्य के लिये विश्व स्वास्थ्य संगठन की ओर से कोपेनहगेन की राष्ट्रीय सेरम संस्था तथा लंडन के हेम्पस्टेड स्थित मेडिकल रिसर्च कौंसिल लेबोरेटरीज को सहायता दी गई इन दो सस्थाओं में इस प्रकार से दवाइयां तैयार की गई कि वे बाहर की अन्य सस्थाओं के लिये एक आदर्श के रूप में हो गई। जिस पेनिसिलिन का हम इतना नाम सुनते हैं और जिसका प्रयोग कई रोगों में बड़ी खुशी के साथ होता है। उसको भी विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा सहायता प्राप्त संस्थाओं में ढंग से तैयार किया जाता है। इस प्रकार से जैसा कि डाक्टर चीशोलम ने कहा है दवाओं का भी उसी प्रकार से एक मानदंड कायम करने की चेष्टा की जा रही है जैसे नाप तथा तोल के क्षेत्र में मीटर, लीटर आदि है।

विश्वस्वास्थ्य संगठन की ओर से कुछ बहुत उपयोगी तथ्य तथा आंकड़े एकत्र किये जा रहे हैं। रोगों तथा मृत्यु के कारणों का विश्व पैमाने हर दस साल वर्गीकरण भी इस संस्था का ध्येय है। इस प्रकार से बहुत से रोगों के सम्बन्ध में उपयोगी तथ्य प्राप्त हो सकते हैं। अक्तूबर १९४७ में विश्व स्वास्थ्य संगठन के रोग वर्गीकरण विशेषज्ञों की एक बैठक जेनेवा में हुई थी। इन विशेषज्ञों ने दीर्घकाल तक विचार विनिमय करने के बाद कुछ रोगों का नवीन वर्गीकरण किया और उनके मंतव्य विचारार्थ विभिन्न सरकारों के पास भेज दिये गये

विश्व स्वास्थ्य संगठन की तरफ से चौदह राष्ट्रों को टेकनीकल सहायता दी जा रही थी। तब से यह संख्या और बढ़ी है। चीन में इस सस्था की तरफ से २८ व्यक्तियों का एक कमीशन काम कर रहा है। इनका काम है कि वहाँ हर साल फैलने वाले हैजा, ताऊन कालाज्वर पर नियंत्रण प्राप्त करे। ग्रीस में इस संस्था की तरफ से जो टुकड़ी काम कर रही है वह मुख्यतः मलेरिया और तपेदिक से लड़ाई कर रही है।

हवाई जहाजों से डी० डी० टी० फैलाकर देश को रोगमुक्त करने की चेष्टा की जा रही है। ग्रीस के हर घर

में डी० डी० टी० का छिड़काव किया गया। इसका नतीजा यह हुआ है कि जहाँ ग्रीस में अस्सी प्रतिशत लोग मलेरिया से कष्ट पाते थे, अब वहाँ केवल पाँच प्रतिशत लोग मलेरिया के पंजे में फँसते हैं।

विशेषकर युद्ध विध्वस्त देशों में इस संस्था की तरफ से बहुत काम किया गया। इन देशों के होनहार छात्रों को सहायता देकर विशेषज्ञ डाक्टर बनने की शिक्षा दी जा रही है। विभिन्न पिछड़े हुये देशों से सैंकडों छात्र इस प्रकार जाकर चिकित्सा विद्या की दृष्टि से आगे बढ़े हुये देशों में शिक्षा पा रहे हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के सामने क्या क्या कार्य क्रम है, इसका कुछ अनुमान उसके सामने रक्खे हुये उद्देश्यों से पता लगता है। तपेदिक के क्षेत्र में स्केन्डेनेविया की लाल क्रास समिति तथा अन्य संस्थाओं की तरफ से जो कार्य हुआ है उसको आगे बढ़ाया जा रहा है जगह-जगह पर पेनिसिलिन उत्पादन के लिये व्यवस्था की जा रही है क्योंकि पेनिसिलिन के बगैर उपदंश तथा इस प्रकार के अन्य कई भयंकर रोगों को कब्जे में नहीं लाया जा सकता। इस संगठन की तरफ से मानसिक स्वास्थ्य की उन्नति के नये मानदण्ड स्थापित करने की चेष्टा की जा रही है। इसमें संदेह नहीं कि विश्व स्वास्थ्य संगठन बहुत उपयोगी कार्य कर रहा है।

जब से भारतवर्ष स्वतन्त्र हुआ है तब से यहाँ के नेताओं का ध्यान स्वाभाविक रूप से इस देश के स्वास्थ्य की उन्नति की ओर गया है। केन्द्र में स्वास्थ्य विभाग की बागडोर माननीया श्रीमती राजकुमारी अमृतकौर ऐसे सुयोग्य महिला के हाथों में हैं। हमारे नेताओं के लिये यह बहुत ही बुद्धिमत्ता की बात है कि उन्होंने इस काम का भार एक महिला के हाथों सौंपा है। राजकुमारी को स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्यायों में बहुत दिलचस्पी है। वे यह समझती हैं कि स्वास्थ्य के मोर्चे पर हमारी लड़ाई बहुत ही महत्वपूर्ण है।

केवल यही नहीं, वे यह भी समझती हैं कि रोगों से अंतर्राष्ट्रीय पैमाने पर जो युद्ध विश्व स्वास्थ्य संगठन के तत्त्वावधान में जारी है, भारत के इस सम्बन्धी संग्राम की उसके साथ जोड़ देने की आवश्यकता है। यही कारण है कि वह बार बार विश्व स्वास्थ्य संगठन की बैठकों में खुद गईं।

उन्होंने इस सम्बन्ध में जो कार्य किये, उसका न केवल देश में बल्कि विदेशों में भी बड़ी प्रशंसा हुई। विश्व स्वास्थ्य संगठन के डाइरेक्टर जनरल ने उनके कार्य को बड़ी प्रशंसा की है। उन्होंने एक बार बोलते हुये यह कहा था कि विश्व स्वास्थ्य संगठन का जो द्वितीय अधिवेशन हुआ था, उसमें राजकुमारी तथा उनके अधीन प्रतिनिधि मंडल ने जो कार्य किया, वह बहुत ऊँचे दर्जे का था। "उनके कार्यों से यह ज्ञात होता है कि उन्हें न केवल अपने देश के लोगों के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में बल्कि सारे विश्व के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में बड़ी चिन्ता है। सम्मेलन में जो साठ जातियों के स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रतिनिधि थे उन्होंने सब ने भारत की इस महान नेत्री की प्रशंसा की।"

भारत के प्रतिनिधियों विशेषकर राजकुमारी की चेष्टा के कारण नयी दिल्ली के पटियाला हाउस में विश्वस्वास्थ्य सम्मेलन का एक आंचलिक केन्द्र स्थापित हुआ है। कर्नल सी० मनी इसके डाइरेक्टर है। इस आंचलिक केन्द्र ने दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों में बहुत हितकर कार्य किया है। इस केन्द्र के कारण विश्व के बड़े बड़े मलेरिया, बी० सी० जी० तथा उपदंश आदि रोगों के विशेषज्ञों ने भारत में पदार्पण किया। इस केन्द्र के कारण भारत को धीरे धीरे बहुत बड़े फ़ायदे हो रहें हैं, और यहाँ के डाक्टरों को अपने अपने विषय में विशेषज्ञ बनने का मौका मिल रहा है।

भारत ने विश्व स्वास्थ्य सम्मेलन को कितनी गंभीरता के साथ ग्रहण किया यह राजकुमारी ने विभिन्न अवसरों पर जो राजकुमारी ने भाषण दिया उससे ज्ञात होता है। उन्होंने अपने एक भाषण में इस प्रयत्न की अंतर्राष्ट्रीयता को सराहते हुये कहा था— "यह जानकर बहुत खुशी होती है कि अब इस संगठन में ६० देश शामिल हैं, और इनमें दक्षिण अमेरिका के अधिकतर देश आ जाते हैं। यह बहुत ही अभिनन्दनीय बात है इसके साथ ही हमारे कुछ मित्रों ने और ये मित्र बहुत महत्वपूर्ण हैं यह सूचना दी है कि वे इस संगठम से

अलग हो जाना चाहते हैं।

"मुझे विश्वास है कि यहाँ उपस्थित सभी लोग इस फैसले पर दुख प्रगट करेंगे। कोई भी संगठन पूर्ण नहीं है, और जो संगठन केवल एक साल का है उससे पूर्णता की आशा कैसे की जा सकती है? यह तभी उन्नति कर सकता है जब उसे उचित रूप से खिलाया पिलाया जाय, और इसका लालन-पालन किया जाय। सबसे निश्चित तरीका इसे सुधारने का यह है कि हम सब मिलकर काम करें, और यह देखें कि किन क्षेत्रों में सुधार की आवश्यकता है। मनुष्य की कमजोरियों का यह एक अंग है कि हम खामोख्वाह डरते हैं, और आपस में अविश्वास तथा सन्देह रखते हैं।

"इनको दूर करने का उपाय यही है कि हम पारस्परिक मंगल में लग जाँय। मैं व्यक्तिगत रूप से निश्चित हूँ कि हम यदि इस सुन्दर पृथ्वी पर शांति की स्थापना करनी है तो यह परोपकारी कार्यों से ही हो सकता है, और जैसा कि चिकित्सा शास्त्र के सम्बन्ध में सभी को मालूम है इसमें न जाति पाँति का भेद है और न नस्ल का भेद है, और ये कार्य राजनैतिक कारणों से बाधा प्राप्त नहीं हो सकते। इस क्षेत्र में याने किसी भी देश के स्वास्थ्य की उन्नति, उसे कायम रखने तथा उसे सब तरह से स्वस्थ बनाने में रूस को सोवियट राष्ट्र भी उतना ही कार्य कर सकता है जितना और देश कर सकते है और सच्ची बात तो यह है कि हम लोग जो औरों से पिछड़े हुये हैं, सभी देशों से सीख सकते हैं। इसलिये मेरी आशा तथा प्रार्थना यहहै कि जिन देशों ने यहाँ से जाने का विचार किया है वे फिर से लौट आवें, और हमारे काम में हाथ बटावें।"

अभी रोम में विश्व स्वास्थ्य सम्मेलन की जो बैठक हुई थी उसमें राजकुमारी ने किस प्रकार का कार्य किया यह वहाँ के सुप्रसिद्ध प्राच्य विद्या विशारद अध्यापक टुक्की ने उन्हें जो पत्र लिखा था, उससे ज्ञात होता है। अध्यापक टुक्की ने उनको लिखा है—

"इटली से आपके चले जाने के बाद बहुत दिन बीत गये, फिर भी जिन लोगों ने आपके व्याख्यान सुने उनके मन में आपकी स्मृति ताजी है। दुख है कि आप बहुत थोड़े दिन रहीं और यहाँ के लोगों को भारत के सम्बन्ध में ज्यादा जानने का मौका नहीं हुआ। हम आपको यह भी बता देना चाहते हैं कि हमारी पीठिका की तरफ से बराबर महान् व्यक्तियों का स्वागत किया जाता है, पर आपके स्वागत समारोह के अवसर पर जितना जोश था इतना पहले कभी देखा नहीं गया। उस अवसर पर छात्रों तथा अध्यापकों ने यह अनुभव किया कि भारत उनके हृदय के उतना ही निकट है जितना इटली है, और आपकी उपस्थिति से भारत का परिचय उन्हें मिला।"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि विश्व स्वास्थ्य सम्मेलन में भारत के शामिल होने से न केवल भारतीयों को अधिकतर वैज्ञानिक चिकित्सा को सुविधायें प्राप्त हो रही हैं बल्कि अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत की मर्यादा में वृद्धि हो रही है। हम इन सब बातों को देखकर उस समय की कल्पना कर सकते हैं जब सब देशों के लोग रोगहीन होकर परस्पर के साथ भ्रातृत्व के सूत्र में बंध जायेंगे।

[ विश्व दर्शन के सौजन्य से ]

---

# दूध का अद्वितीय तन्तुकर तत्व-केसीन

लेखक : श्री आनन्दलाल मिश्र एम० एस-सी०

तन्तुकर तत्व (Proteins) वह मिश्रण सार है जिन में परिमाणुओं की रचना बहुत ही अधिक उलझी हुईहै। इनका व्यूहाणु-भार ३०००० और इससे ऊपर तक होता है। इनमें कारबन (Carbon), उज्जन (Hydrogen), नत्रजन (Nitrogen), गंधक, फासफोरस का मिश्रण होता है। इनका प्रतिशत तरह-तरह की चीजों के लिए भिन्न २ है। पौधों और प्राणियों के जीवन धारण करने और उसमें वृद्धि करने में इन तत्वों का विशेष भाग है। मूल जीवाणु और ग्रंथि-समूह, मांस-पेशियां आदि प्राणी के प्रत्येक भाग में ये तत्व कुछ न कुछ होते हैं।

एक जीव जहाँ बहुत समय तक कारबोहाइड्रेट (Carbohydrate) और स्नेह पदार्थों (Fats) के बिना जीवित रह सकता है, वहाँ इन तत्वों के बिना उसकी मृत्यु जल्दी ही निश्चय है। कुछ समय तक लोगों की यह धारणा थी कि जीवन-शक्ति को बनाये रखने में केवल यह ही पर्याप्त हैं पर हाल के अनुसंधान ने यह बात निर्मूल ठहराई है।

इन तत्वों को और भी कम मिश्रण वाले सार में परिवर्तित किया जा सकता हैं, जिन्हें द्वि-अम्लक (Amino acids) कहते हैं। अब तक लगभग २५ प्रकार के द्वि-अम्लकों को तन्तुकर तत्वों से अलग किया जा चुका है परन्तु यह सब एक ही तत्व में इकट्ठे रूप से नहीं मिलते। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि तन्तुकर तत्वों की एक इकाई का निर्माण करने के लिये अंगों को विभिन्न प्रकारों द्वारा ये तत्व अवश्य मिलने चाहिये। कुछ द्वि-अम्लक ऐसे भी है जिन्हें मनुष्य-शरीर तैयार नहीं कर सकता जैसे फ़िनाइल एलानीन (Phenyl alanine), ल्यूसीन (Leucine) इत्यादि, इन्हें आवश्यक अम्लक भी कहते हैं।

केसीन दूध में ल्यूसीन (Leucine) के रूप में फैला रहता है। अपनी प्राकृतिक अवस्था में यह दूध के केलसियम से तीन प्रकार से मिला रहता है (१) पहला अंश (Mono-calcium salt) जिसमें केलसियम आक्साइड CaO का ०·८७% होता है। (२) दूसरा अंश (Di calcium salt) जिसमें केलसियम आक्साइड १·५५% और तीसरे अंश (Tri calcium salt) में २.४६% होता है।

इसे दूध से दो तरह से पृथक किया जा सकता है। एक तो दही या मट्ठे से और दूसरा अम्ल (Acid) से। दही या मट्ठे का पाचक-रस (Enzyme) जिसे (Rennin) कहते हैं इसे अलग करता है। इस तरह से अलग किये हुये केसीन में अम्ल द्वारा अलग किये गये केसीन की अपेक्षा ज्यादा खनिज पदार्थ होते हैं। केसीन भी एक ऐसा पदार्थ है जिसमें २० प्रकार के द्वि-अम्लक मिले रहते है। इनमें फासफोरस की कमी तो नहीं परन्तु गंधक की कुछ कमी जरूर रहती है। आहार में इसका मुख्य स्थान उसमें मौजूद तन्तुकर तत्वों पर ही है जिन का प्राणी-विज्ञान के लिए बहुत ही महत्व है।

केसीन में जहाँ यह गुण है वहाँ कुछ ऐसे भी हैं जिनसे यह एक महत्वपूर्ण व्यवसायिक पदार्थ बन गया है। हाल में ही केसीन को कुछ विशेष परिस्थितियों के अंतर्गत आयोडीन (Iodine) से मिलाने पर थाइराक्सिन (Thyroxine) नामक हारमोन (Hormone) तैयार किया गया है। यह उत्तेजक रस शरीर की विशेष ग्रंथियों से निकलकर रक्त में मिलते हैं और शरीर के विभिन्न आन्तरिक कार्यों में सहायक होते है।

केसीन नाना प्रकार के स्वास्थ्य कर्त्ता खाद्य पदार्थों के काम तो आता ही है पर आजकल दूसरे उपयोगों ने इसका मूल्य और भी बढ़ा दिया है। पहले वर्ग में तो इसके कुछ संयोजक जैसे प्लेसमान (Plasmon) संयोजक जिसमें दूधके सभी खनिज पदार्थ होते हैं, न्यूट्रोज (Neutrose) सैनोटोजन Sanatogen (सफेद पानी घुलनशील पाउडर जिसमें ५% सोडियम ग्लेसरो फासफेट (Sodium-glycerophosphate) होता है। इत्यादि आते हैं। दूसरा वर्ग व्यवसायिक है जब केसीन-फारमेलडीहाइड प्रयोग द्वारा इसका जल सुखा दिया जाता है तो इसका रूप सींग के समान कड़े पदार्थ जैसा हो जाता है। यह पदार्थ कई महत्वपूर्ण उपयोगों में लाये गये जैसे कंघे बनाना, चित्रकारी में, बिजली की धारा रोकने में, प्लास्टिक (Plastic) बनाने में, मिट्टी के बर्तन बनाने में, रंग, वार्निश में, सूती कपड़ों के उद्योग-धंधों में इत्यादि।

इस अद्वितीय तन्तुकर तत्व के ये उपयोग देश की एक अच्छी खासी व्यवसायिक उन्नति करवा सकते हैं, इसमें लेशमात्र भी संदेश नहीं है।

# बाल-संसार

## नवयुवक की खोज

### एल्यूमीनियम

लेखक—डा० हीरालाल दुबे

एल्यूमीनियम की कहानी भी बड़ी ही रोचक है। यह धातु नई है और सोने तथा चाँदी के समान प्राचीन काल में इसका पता भी न था। इसका उपयोग अभी केवल ६० वर्षों से ही हो रहा है। इससे पूर्व यह धातु वैज्ञानिकों के लिये चमत्कार की एक वस्तु थी। धातुओं में एल्यूमीनियम धातु ही सबसे अधिक मात्रा में पृथ्वी की सतह पर पाई जाती है। लोहे का नम्बर इसके बाद ही आता है। ताँबा, चाँदी और सोना तो और भी कम मात्रा में मिलते हैं। परन्तु यह आश्चर्य की बात है कि जब एल्यूमीनियम का पता भी न था, उसके सैकड़ों वर्ष पूर्व ही से सोने आदि धातुओं का प्रयोग हो रहा था। इसका मुख्य कारण यह है कि प्रकृति में सोना आदि धातुयें पवित्ररूप में मिलती हैं और खनिज से सरलता के साथ निकाली जा सकती हैं परन्तु एल्यूमीनिम धातु का निकालना कठिन काम है।

लोहे से मिश्रित इस विचित्र धातु को सन १८०९ ई० में डेवी नामक एक वैज्ञानिक ने ढूँढ़ तो निकला, लेकिन वे उसे अलग न करसके। सर्व प्रथम अर्स्टेड नामक वैज्ञानिक ने सन् १८२४ ई० में इस धातु को पृथक किया परन्तु वह शुद्ध रूप में न मिल सकी। इसके पश्चात् प्रसिद्ध जर्मन-वैज्ञानिक व्हूलर तथा डेविल ने इस धातु को शुद्ध रूप में बनाने का प्रयत्न किया और वे सफल भी हुए। परन्तु यह बहुत मँहगी पड़ी। उस समय सेर भर एल्यूमीनियम का मूल्य ४००) रुपए के लगभग था। अर्थात् यह चाँदी से कहीं अधिक मूल्यवान थी और इस कारण, यह केवल अजायब घर की ही वस्तु थी। जिस धातु की खोज में डेवी, व्हूलर डेविल आदि कई चतुर तथा अनुभवी वैज्ञानिक हार मान चुके थे, उसमें दो नवयुवकों ने सफलता प्राप्त की। इनमें से एक तो अमेरिका के विद्यार्थी चार्ल्स मारटिन हाल थे और दूसरे फ्रान्स के नवयुवक हेरुल्ट थे। इन दोनों युवकों की खोज के कारण आज एल्यूमीनियम बहुत बड़ी मात्रा में बनाया जाता है और साथ ही वह सस्ता भी बहुत है।

चार्ल्स मारटिन हाल अमेरिका में ओवालिन कालेज का विद्यार्थी था। १४ वर्ष की अवस्था से ही उसे विज्ञान में रुचि थी और वह नाना प्रकार के प्रयोग किया करता था। एक दिन उसके गुरू जीवेट महोदय ने अपने विद्यार्थियों से क्लास में कहा कि यदि तुममें से कोई एल्यूमीनियम धातु के बनाने की कोई ऐसी विधि निकालले जिससे अधिक मात्रा और कम मूल्य में यह धातु बनाई जा सके तो वह न केवल संसार ही का कल्याण कर सकेगा वरन् इसके साथ ही वह बड़ा धनवान भी हो सकेगा। इस वाक्य को सुन कर चार्ल्स हाल ने उत्तेजित होकर अपने एक सहपाठी से कहा कि इस धातु का आविष्कार मैं करूँगा। बस उस दिन से वह इस धातु के पीछे पड़ गया।

उसने कई विधियों का प्रयोग किया, परन्तु वह उसमें असफल ही रहा, तब अन्त में उसका ध्यान बिजली के द्वारा प्रयोग करने की ओर गया। वह इस प्रयत्न में जी तोड़ कर लग गया। उसने अपने गुरु से बेटरी आदि उधार लीं और कुछ बेटरियाँ उसने खुद भी बनाईं, जिनसे उसने बिजली की शक्ति ली। उस समय आज की सी अच्छी प्रयोग-शालाएँ न थीं। इसलिये अपने घर में ही उसने इसका प्रयोग करना आरम्भ कर दिया।

सन् १८८६ ई० की २३ वीं फरवरी को यह २२ वर्ष का नवयुवक अपने गुरु के कमरे में आया और अपनी हथेली पर लगभग एक दर्जन एल्यूमीनियम के छर्रे दिखाता हुआ कहने लगा कि गुरु जी मुझे यह धातु मिल गई।

एल्यूमीनियम धातु की कहानी बहुत ही आश्चर्य-जनक है। इधर तो अमेरिका में चार्ल्स हाल अपनी विधि में उन्नति कर रहा था और उधर यूरोप में एक दूसरा नवयुवक भी इसी ओर तेजी से बढ़ रहा था। यह हेरुल्ट नामक नवयुवक था इसने भी एल्यूमीनियम धातु को उसके खनिज से निकाल लिया। युवक की भी उम्र २२ वर्ष की ही थी और इसकी भी उन्हीं तरीकों पर थी, जिनका उपयोग चार्ल्स हाल ने किया था। विज्ञान में ऐसा चमत्कार कभी न हुआ था कि एक ही उम्र के दो नवयुवकों को एक ही समस्या के हल करने में करीब-करीब उसी समय सफलता प्राप्त हुई हो। यही नहीं, किन्तु इन वैज्ञानिकों की मृत्यु भी उसी वर्ष १९१४ ई० में हुई।

एल्यूमीनियम के बनाने में बाक्साइट नामक खनिज का उपयोग होता है। बाक्साइट को शुद्ध करके उसे पिघले हुए क्रायोलाइट नामक पदार्थ में घोल देते हैं और फिर बिजली का प्रवाह इस घोल में करते हैं। इस क्रिया के द्वारा एल्यूमीनियम धातु पिघल कर पवित्र अवस्था में नीचे बैठ जाती है तब उसको अलग निकाल लेते हैं।

इस धातु का प्रधान गुण हल्कापन है। यह साधारण धातुओं में सबसे अधिक हल्की होती है। लोहा इससे तिगुना भारी होता है। यह अम्लों में घुल जाती है परंतु इमली, नींबू, सिरका आदि की खटाइयों का असर इस पर कुछ भी नहीं होता। इस कारण एल्यूमीनियम के बर्त्तनों का उपयोग भोजन के बनने में बिना किसी के भय के किया जा सकता इसका रङ्ग कुछ नीलापन लिये हुए चांदी के ही समान चमकीला होता है।

एल्यूमीनियम धातु बिजली की अच्छी चालक है। यह धीरे धीरे तांबे का स्थान ले रही है क्योंकि इसके तार हल्के और सस्ते होते हैं। इस धातु से कई प्रकार की वस्तुएँ बनाई जाती हैं, जो देखने में सुन्दर, हल्की और सस्ती होती हैं। यह धातु हवाई जहाज, रेल, ट्राम और मोटर आदि के कई हिस्सों के बनाने के उपयोग में आता है।

एल्यूमीनियम कई धातुओं से मिलकर कई प्रकार के धातु-मिश्रण बनाता है। इस धातु में तांबा मिलाकर जो मिश्रण बनाया जाता है वह बहुत चिमड़ा और मजबूत होता है। डुरैलुमिन नामक धातु-मिश्रण में ९५ प्रतिशत एल्यूमीनियम, ४ प्रतिशत तांबा और थोड़ी मात्रा में मेगनीशयम और मैंगनीज धातुएँ होती हैं। इसमें इस्पात की सी मजबूती होती है और उससे यह एक तिहाई हल्का होता है। यह मिश्रण हवाई जहाज और मोटर आदि के बनाने में काम आता है।

इस धातु के चांदी के समान पतले वर्क भी बनाए जाते हैं, जिनका उपयोग खाने-पीने की वस्तुओं को लपेटने में होता है, जिससे वे खराब नहीं होने पातीं और देखने में भी सुन्दर लगती हैं। एल्यूमीनियम की बुकनी में अलसी का तेल मिलाकर रोगन बना लेते हैं। इस रोगन को लोहे की चीजों पर लगा देने से वे जंग से बच जाती हैं और चांदी के समान चमकीली दीखती हैं।

बाक्साइट भारतवर्ष में बहुत पाया जाता है। यह मध्यप्रान्त में कटनी और बालाघाट के जिलों में मिलता है। इसके अलावा मण्डला, सिनान,

कालाहाँडो, सरगूजा, महाबलेश्वर, भूपाल आदि में भी पाया जाता है। काश्मीर में जम्मू के पास भी यह पाया जाता है। भारत में इसका उपयोग सन् १८९८ ईसवी के आरम्भ हुआ है। उस समय मद्रास में अंग्रेजों के द्वारा बनाए हुए एल्यूमीनियम के बर्तन नमूने के तौर पर मिलते थे। उनकी उपयोगिता और चमक को देखकर लोग इनकी ओर आकर्षित हुए और धीरे धीरे इनका प्रचार इतना अधिक बढ़ गया कि कुछ ठिकाना ही न रहा। इस समय तो भारत में एल्यूमीनियम के बर्तनों के बनाने की कई फैक्टरियाँ बम्बई, कलकत्ता, अमृतसर और बनारस में हैं। इनके लिए एल्यूमीनियम की चादरें विदेश से आती हैं।

भारत में बहुत सा बाक्साइट है, और बिजली की शक्ति भी सरलता से उत्पन्न की जा सकती है। परन्तु अभी हाल ही तक हमारे देश का बाक्साइट विदेशों में भेजा जाता था। अब हमारी लोकप्रिय सरकार का ध्यान इस ओर गया है, और मध्य-प्रान्त की सरकार कटनी के पास एक एल्यूमीनियम का कारखाना खोलने जा रही है। आसनसोल, जो बंगाल में है और ट्रावनकोर में इस धातु के कारखाने हैं। बिहार प्रान्त में मरी में भी इसका एक कारखाना है। भारतवर्ष में सन् १९४८ ई॰ में ३३६२ टन एल्यूमीनियम बनाया गया था।

इस धातु ने अब अपना अधिकार सर्वत्र ही जमा लिया है। राज-महलों से लेकर गरीबों की झोपड़ियों तक में यह वर्तमान है। परन्तु असल में यह गरीबों की ही धातु है। सस्ती होने के कारण यह प्रायः सड़क पर भूखे-नंगे भिखमंगों के पास दिखाई देती है। यदि उनका कोई सहारा है तो वह एल्यूमीनियम का एक छोटा सा कटोरा ही है। उसी बर्तन में वह 'दाता का भला हो' कह कर भिक्षा पा जाता है और उसी को बजा कर 'रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन सीताराम' का भजन भी कर लेता है।

इस धातु की आश्चर्य-जनक खोज करने वाले नवयुवक, चार्ल्स मारटिन हाल की एल्यूमीनियक में ढली हुई एक सुन्दर प्रतिमा आज भी ओबरलनि कालेज में खड़ी हुई है, जो प्रत्येक युवक को यह याद दिलाती है कि तुम बड़ी-बड़ी खोजों के करने की शक्ति रखते हो।

---

# समालोचना

## मट्ठा या छाछ के उपयोग

(ले॰ श्री प्रवासीलाल वर्मा, मालवीय)

भारत में मट्ठा या छाछ का उपयोग बहुत प्राचीन समय से होता है। छाछ स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त उपयोगी है। शरीर में तरी और स्फूर्ति लाने तथा पाचन शक्ति को बढ़ाने के लिये मट्ठे का नियमित उपभोग करना चाहिये। यह सुलभ एवं सरल उपाय है। प्रस्तुत पुस्तक में श्री प्रवासीलाल वर्मा, मालवीय ने मट्ठा या छाछ के भेद, गुण तथा सेवन-विधि के सम्बन्ध में आयुर्वेदाचार्य चरक, सुश्रुत, आर्य शार्ङ्गधर आदि के विचार संग्रहीत किये हैं तथा उनका हिन्दी अनुवाद भी दिया है। व्यावहारिक दृष्टि से पुस्तक विशेष उपयोगी है।

## सिद्ध मृत्युञ्जय योग

(ले॰ पं॰ केदारनाथ पाठक)

इस पुस्तक में ग्रामीण चिकित्सकों, वैद्यों तथा अनुभवी व्यक्तियों के प्रयोगों के आधार पर अनेक प्रकार के रोगों को दूर करने के उपाय बताये गये हैं, लेखक ने प्रत्येक रोग के लक्षण, उसके निवारणार्थ औषधि बनाने की विधि, औषधि के गुण तथा व्यवहार-विधि का स्पष्ट निरूपण किया है। योग की प्राप्ति का प्रमाण भी दिया है। भारतीय ग्रामों में जहाँ बीमारी के इलाज का समुचित प्रबन्ध नहीं है, इस प्रकार के घरेलू, सरल तथा सस्ते उपाय बहुत लाभकारी हैं।

# विज्ञान-परिषद् की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकों की सम्पूर्ण सूची

१—चुम्बक—हाई स्कूल में पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी० सजि०; ।।।=)

२—सूर्य-सिद्धान्त—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखने का सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१४; १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; सजिल्द; दो भाग में, मूल्य ८) । इस भाष्य पर लेखक को हिन्दी साहित्य सम्मेलन का १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है ।

३—वैज्ञानिक परिमाण—विज्ञान की विविध शाखाओं की इकाइयों की सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस-सी०, १)

४—समीकरण मीमांसा—गणित के एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।) द्वितीय भाग ।।=),

५—निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)—गणित के एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमतीप्रसाद अग्निहोत्री बी० एस-सी०; ।।।),

६—बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित—इंटरमीडियेट के गणित के विद्यार्थियों के लिये—ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी०, १।),

७—गुरुदेव के साथ यात्रा—डाक्टर जे० सी० बोस की यात्राओं का लोकप्रिय वर्णन ; ।=)

८—केदार-बद्री यात्रा—केदारनाथ और बद्रीनाथ के यात्रियों के लिये उपयोगी; ।=)

९—वर्षा और वनस्पति—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शंकरराव जोशी; ।=)

१०—विज्ञान का रजत जयन्ती अंक—विज्ञान परिषद् के २५ वर्ष का इतिहास तथा विशेष लेखों का संग्रह; १)

११—फल-संरक्षण—दूसरा परिवर्धित संस्करण-फल की डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनाने की अपूर्व पुस्तक; २१२ पृष्ट, २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्र नारायण सिंह एम० एस-सी०; २।।)

१२—व्यङ्ग-चित्रण—(कार्टून बनाने की विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी एम० ए०; १७५ पृष्ठ; सैकड़ों चित्र, सजिल्द; २)

१३—मिट्टी के बरतन—चीनी मिट्टी के बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र; सजिल्द; २)

१४—वायुमंडल—ऊपरी वायुमंडल का सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र सजिल्द; २)

१५—लकड़ी पर पालिश—पालिश करने के नवीन और पुराने सभी ढंगों का ब्योरेवार वर्णन । इससे कोई भी पालिश करना सीख सकता है—ले डा० गोरखप्रसाद और श्रीरामरतन भटनागर, एम०, ए०; २१८ पृष्ठ; ३१ चित्र, सजिल्द; २)

१६—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश, आकार बड़ा विज्ञान के बराबर २६० पृष्ठ, २००० नुसखे, १०० चित्र; एक-एक नुसखे से सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हजारों रुपये कमाये जा सकते हैं । प्रत्येक गृहस्थ के लिये उपयोगी; मूल्य अजिल्द २।।)

१७—कलम-पैबंद—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ५० चित्र; मालियों, मालिकों और कृषकों के लिये उपयोगी; सजिल्द; २)

१८—जिल्दसाज़ी—क्रियात्मक और ब्योरेवार । इससे सभी जिल्दसाज़ी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०; १८० पृष्ठ, ६२ चित्र; सजिल्द २),

१६—त्रिफला—दूसरा परिवर्धित संस्करण-प्रत्येक वैद्य और गृहस्थ के लिये—ले० श्री रामेश वेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ; ३ चित्र, एक रङ्गीन; सजिल्द २॥।≈)

यह पुस्तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय, की १३ श्रेणी के लिए द्रव्यगुण के स्वाध्याय पुस्तक के रूप में शिक्षापटल में स्वीकृत हो चुकी है।"

२०—तैरना—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगों को बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद पृष्ठ १०४ मूल्य १),

२१—अंजीर—लेखक श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, अंजीर का विशद वर्णन और उपयोग करने की रीति। पृष्ठ ४२, दो चित्र, मूल्य ।≈)

यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय के शिक्षापटल में स्वीकृत हो चुकी है।

२२—सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओं के विचित्र संसार, पेड़ पौधों की अचरज-भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र और तारों की जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिष के संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञान के आकार के ४५० पृष्ठ और ३२० चित्रों से सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द मूल्य ६)

२३—वायुमण्डल की सूक्ष्म हवाएँ—ले० डा० सन्तप्रसाद टंडन, डी० फिल० मूल्य ।॥)

२४—खाद्य और स्वास्थ्य—ले० श्री डा० ओंकारनाथ परती, एम० एस-सी०, डी० फिल० मूल्य ।॥)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं :—

२५—विज्ञान हस्तामलक—ले० स्व० रामदास गौड़ एम० ए०। भारतीय भाषाओं में अपने ढंग का यह निराला ग्रंथ है। इसमें सीधी सादी भाषा में अठारह वैज्ञानों की रोचक कहानी है। सुन्दर सादे और रंगीन पौने दो सौ चित्रों से सुसज्जित है, आज तक की अद्भुत बातों का मनोमोहक वर्णन है, विश्वविद्यालयों में भी पढ़ाये जाने वाले विषयों का समावेश है, अकेली यह एक पुस्तक विज्ञान की एक समूची लैब्रेरी है, एक ही ग्रंथ में विज्ञान का एक विश्वविद्यालय है। मूल्य ६)

२६—भारतीय वैज्ञानिक—१२ भारतीय वैज्ञानिकों की जीवनियाँ; ले० श्री श्यामनारायण कपूर, सचित्र ३८० पृष्ठ; सजिल्द; मूल्य ३॥) अजिल्द ३)

२७—वैक्युम-ब्रेक—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवे में काम करने वाले फिटरों, इंजन-ड्राइवरों, फोरमैनों और कैरेज एग्जामिनरों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ; ३१ चित्र जिनमें कई रंगीन हैं, २),

# विज्ञान-परिषद् बेली रोड, इलाहाबाद

मुद्रक—जगतनारायण लाल हिन्दी साहित्य प्रेस प्रयाग। प्रकाशक—विज्ञान-परिषद्, बेली रोड, इलाहाबाद

# विज्ञान

भाग ७०
संख्या ३, ४

सवत् २००६,
दिसम्बर, जनवरी १९४९-५०
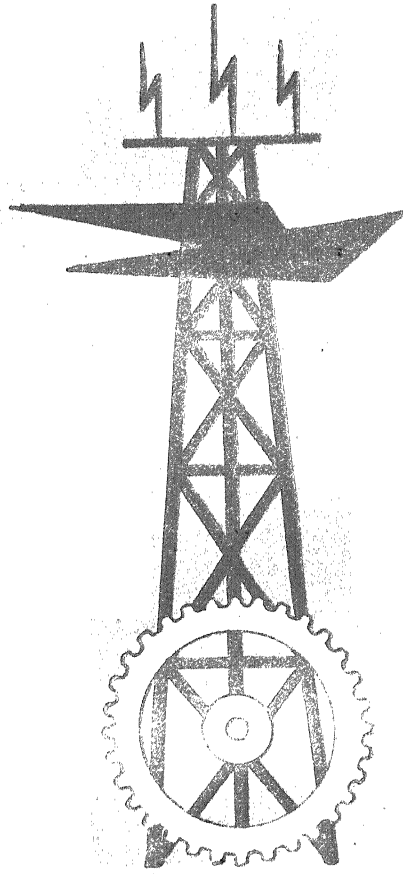
वाषिक मूल्य ३) ]

[ एक संख्या का मूल्य ।)

**श्री हरिश्चन्द्र आई० सी० एस०, जज, प्रयाग हाईकोर्ट** ( सभापति )
प्रो० सालिगराम भार्गव तथा डा० श्री रंजन ( उप सभापति ) डा० हीरालाल दुबे (प्रधान मंत्री )
डा० रामदास तिवारी तथा श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव ( मंत्री ) श्री हरिमोहनदास टंडन (कोषाध्यक्ष)

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

प्रधान सम्पादक

**श्री रामचरण मेहरोत्रा**

विशेष सम्पादक

डाक्टर सत्यप्रकाश
डाक्टर गोरखप्रसाद
डाक्टर विशंभरनाथ श्रीवास्तव
डाक्टर ब्रजकिशोर मालवीय

## विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

### परिषद् का उद्देश्य

१—१६७० वि० या १६१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

### परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उपसभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमंत्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे, जिन के द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

### सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिये वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशन में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित, परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों विवरणों इत्यादि के बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उन का प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन-चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायेंगे।

## विषय-सूची

**विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुखपत्र.**

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ७० | सम्वत् २००६ दिसम्बर-जनवरी १९४९-५० | संख्या ३-४

# अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन

## के ३७वें अधिवेशन, हैदराबाद, के अवसर पर विज्ञान परिषद के सभापति डा० श्री रञ्जन का भाषण

मुझे इस बात का गर्व है कि मेरा सम्बन्ध हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन नामक इस लोक-सम्मानित संस्था से बराबर ही रहा है। यह सम्मेलन एक साधारण संस्था के रूप से प्रारम्भ होकर एक महान देश-व्यापी संस्था के रूप में उसी प्रकार आ गया है जैसे एक विशाल वृक्ष केवल एक लघु बीज से प्रगट होकर विशदोन्नत हो जाता है।

संसार की कोई भी आत्म-सम्मान रखने वाली स्वतंत्र जाति (राष्ट्र) किसी विदेशी भाषा के द्वारा न तो अपने राज्य का ही कार्य चलाती है और न अपनी शिक्षा का ही। इसलिए भारत की शासन-विधायिनी Constituent Assembly (व्यवस्थापिका सभा) ने देवनागरी लिपि के साथ हिन्दी भाषा को देश की राजभाषा (राष्ट्र-भाषा) के बनाने का प्रशस्त प्रस्ताव स्वीकृत कर देश-काल की स्थिति के सर्वथा समनुकूल ही किया है।

इंगलैंड के भूतपूर्व प्रधान मंत्री श्री विन्स्टन चर्चिल महोदय ने एक बार यह कहा था और ठीक ही कि इंग्लैंड और संयुक्त राज्य अमेरिका को परस्पर सम्बद्ध करने का एक प्रधान कारण दोनों देशों में राज-भाषा का एक होना है। अतः हमें पूर्ण आशा है कि हमारी व्यवस्थापिका सभा का यह महत्वपूर्ण निर्णय भाषा को एक व्यापक सूत्र से सारे देश को बाँध देगा। यह अब तक के विस्तृत भारतीय इतिहास के लिए एक अभूतपूर्व उदाहरण है, किन्तु प्रस्ताव का स्वीकृत हो जाना तो एक बात है और देश की बहुसंख्यक सुपठित जनता का उसे मान लेना एक दूसरी बात है। मनुष्य स्वभावतः परम्परानुयायी होता है और बड़ी कठिनाई के साथ परम्परागत रूढ़ियों को छोड़ पाता है। इसीलिए अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी विचार-धारा से परम्परागत पुरानी शैली में शिक्षित लोग इतने समय के उपरांत अपने दृढ़ीभूत स्वभाव को एक

नई भाषा और एक नई विचार-धारा के साथ परिवर्तित नहीं करना चाहते, किन्तु यदि हम अपने देश को एकताबद्ध और सशक्त करना चाहते हैं तो इसके अतिरिक्त और कोई भी अन्य उपाय हमारे लिये नहीं कि हम अब परस्पर कन्धा मिलाकर इस व्यापक राष्ट्रभाषा को सर्वथा लोकव्यापी और सम्पन्न बनाने का संयुक्त प्रयत्न करें। इस कार्य में सर्वतः कठिनाइयाँ हैं अवश्य, किन्तु इन कठिनाइयों को हमें किसी न किसी प्रकार दूर ही हटाना होगा। अन्य क्षेत्रों की चर्चा न करते हुए मैं यदि प्रथम विज्ञान के ही क्षेत्र को देखता हूँ तो ज्ञात होता है कि इस क्षेत्र में सबसे बड़ी कठिनाई, मेरे विचार से, पारिभाषिक शब्दावली की है।

पाश्चात्य पारिभाषिक शब्दावली लैटिन भाषा पर ही आधारित है और वह सरलता-पूर्वक पाश्चात्य देशों में समझी जाती है, यद्यपि उन विभिन्न देशों में विभिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं, किन्तु उन भाषाओं का मूल वही लैटिन भाषा ही है, उदाहरणार्थ लीजिये लैटिन का—कैपिलस (Capillus) शब्द, इसी शब्द से अंग्रेजी के कैपिलरी ( Capillary ) और फ्रेंच के कैपिलेर (Capillaire) शब्द निकले हैं। इसी प्रकार :—

लैटिन भाषा के—फासिलियम ((fossilium = खोदना ) से अंग्रेजी के फॉसिल (fossil) और फ्रेंच तथा जर्मन भाषाओं के फासीले (fossile) शब्द बने हैं। यों ही लैटिन भाषा के डेहिस्को (Dehisco खुलना) धातु से अंग्रेजी का पुष्पार्थ में डेहिसेन्स (dehisence) शब्द बना है, साथ ही इन्फ्लोरेसेन्स (inflorescence) अथवा एक विशेष प्रकार के पुष्पार्थ में लैटिन के कोरिम्बस (Corymbus—पुष्प-स्तवक) शब्द से अंग्रेजी भाषा का कॉरिम्ब (Corymb) शब्द बना है।

इस प्रकार लैटिन-भिज्ञ व्यक्ति लैटिन से रूपान्तरित होनेवाले अंग्रेजी भाषा के शब्दों को सरलतया समझ सकता है, किंतु लैटिन अभिज्ञ अन्य व्यक्तियों के लिए वे शब्द केवल अस्पष्ट-ध्वनि समूह से ही रहते हैं।

भारत में इस शब्दावली के लिए संस्कृत भाषा को ही आधार बनाना पड़ेगा, क्योंकि बंगाली, गुजराती, हिंदी पंजाबी, मराठी प्रभृति अनेक प्रांतीय भाषायें इसी भाषा से प्रस्फुटित हुई हैं। हाँ तामिल, मलयालम, कोंकणी आदि दक्षिण प्रांतीय भाषाओं के सम्बन्ध में अवश्यमेव बड़ी कठिनाई होगी, क्योंकि ये भाषायें सीधे संस्कृत से उद्भूत न होकर उससे सम्बन्ध भी नहीं रखती है। इस लिए दक्षिण प्रांतीय भाषा-भाषियों को इस संस्कृतोद्भुत पारिभाषिक शब्दावली को समझने के लिए प्रथम संस्कृत से परिचय प्राप्त करना अनिवार्य होगा और यह उनके लिये बहुत कठिन कार्य होगा, किन्तु देश-भक्ति की भावना से भरे हुए भावुक व्यक्ति के लिए यह कठिनाई कुछ भी नहीं है, क्योंकि इसके ही द्वारा भाषा के एकीकरण और गौरवीकरण का प्रश्न बहुत कुछ हल हो जाता है।

अब तक हमारी सरकार की ओर से सर्वमान्य व्यापक पारिभाषिक शब्दावली के निर्माणार्थ एक विद्वद्-वर्ग के बनाने का यथेष्ट प्रयत्न नहीं किया गया। सुतरां अधुना अनेक लेखकों ने विविध पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है, फलतः भाषा में कुछ गड़बड़ी सी हो गई है। इसीलिए मेरा सुझाव यह है कि या तो केन्द्रीय सरकार ही, या तत्प्रेरणा से हिन्दी-साहित्य सम्मेलन ही पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण के लिए एक उपसमिति या कई उपसमितियों की योजना करे, जिससे यह कार्य सुचारु रूप से हो सके।

इसीके साथ मेरा एक सुझाव यह भी है कि पेंसिल सीमेंट राशन, मैच, अलमोनियम जैसे शब्द, जो अब चिर प्रचलित हो गये हैं, हिन्दी भाषा में ऐसे ही खपा लिये जाएँ क्योंकि संसार की प्रत्येक जीवित भाषा प्रगतिशील होने के लिए साधारण प्रयोग प्रचलित शब्दों को इसी प्रकार खपा ही लेती है। पेंसिल को पंकिनी और कागज जैसे साधारण शब्द को पत्र कहना, मस्तिष्क में एक प्रकार से उलझन ही का पैदा करना है।

भारतीय वैज्ञानिक की भय-भावना की जटिलता एक दूसरी कठिनाई में और भी है। उसे कुछ दूर तक यह भय है कि कहीं वह पाश्चात्य वैज्ञानिक विचारधारा से सर्वथा बहिष्कृत न हो जाए, क्योंकि पाश्चात्य लोगों को अभी एक पीढ़ी का समय हमारे प्रकाशित ग्रन्थों की भाषा को यथेष्ट रूप से समझने में लग जाएगा। किन्तु इस

कठिनाई के कारण हमें अपने कार्य से विचलित न होना चाहिए। हम उन जापान और रूस के उदाहरण ले सकते हैं, जिनकी भाषायें शेष संसार में सरलतया नहीं समझी जातीं। इन देशों में सुयोग्य अनुवादक विभिन्न भाषाओं में लिखे गये मौलिक ग्रंथों अथवा लेखों को अनुवादित करने के लिए रहते हैं। बहुधा एक ही पत्र में एक ही लेख जापानी, अंग्रेजी और जर्मनी भाषा में इसलिये प्रकाशित किया जाता है, जिससे वह देश के बाहर और भीतर समानतया समझा जा सके। रूस वासियों ने अपने कितने ही प्रकाशनों के अनुवाद अंग्रेजी और अन्य विदेशीय भाषाओं में इसी लिए कराये हैं, जिससे उनके वैज्ञानिक कार्य विश्व में पूर्णतया प्रसारित हो सकें।

इस संक्षिप्त कथन के उपरान्त मुझे आपका ध्यान उस विषय की ओर आकर्षित करना अभीष्ट है, जिस विषय का सम्बन्ध मुझसे सीधा और सर्वथा अधिक है। यह विषय विज्ञान अथवा भौतिक विज्ञान है। आधुनिक समय में यद्यपि इस विषय की कतिपय शाखाओं के क्षेत्रों में विशेष वृद्धि और प्रगति हुई है, किन्तु भौतिक विज्ञान के क्षेत्र की प्रगति अपेक्षाकृत विशेष उल्लेखनीय है। सैद्धान्तिक गवेषणा से चलकर अणुओं, कणों और परिमाणुओं तथा इनके द्वारा बने हुए ध्वंसकास्त्रों और उनके गुणों की अभूतपूर्व गवेषणा हुई है। इधर की ओर ऐसे ऐसे महत्व-पूर्ण नये-नये आविष्कार हुए हैं, जो सारे संसार को चकित करने वाले हैं।

एक शताब्दी पूर्व तक विज्ञान-विशारद जिन सम्भावनाओं के स्वप्नों तक के देखने का साहस न कर सकते थे, उनका ज्ञान अब दैनिक व्यवहार-जगत में व्यापक हो चुका है। इस दिशा में हम भारतीयों का भी लोकमान्य भाग है। हमारे देश में भी लोक-विश्रुत विज्ञान विशारदों का एक अच्छा वर्ग है। उदाहरणार्थ श्री सर चन्द्रशेखर वेंकट रमन महोदय के अभूतपूर्व और अद्वितीय आविष्कार तथा उनके सहयोगी श्री सर कार्य-माणिक्कम कृष्णन के रवों में चुम्बक शक्ति के प्रयोग तथा आचार्य मेघनाद साहा की खगोल-ज्ञानात्मक गवेषणायें, श्री भाभा महोदय की खगांशु (cosmic rays) ज्ञान के क्षेत्र में नयी देनें संसार में बहुत ही उत्कृष्ट महत्व मूल्य और गौरव-पूर्ण स्थान रखती हैं।

यद्यपि इस प्रकार सैद्धान्तिक क्षेत्र में इन भारतीय प्रशस्त विज्ञानवेत्ताओं ने विश्व-विस्मयकारक आर्य कार्य कर दिखाये हैं अवश्य, किन्तु कहना न होगा कि प्रयोगात्मक विज्ञान के क्षेत्र में हमारा देश अभी इतना अग्रसर नहीं हुआ। इसका मूल कारण प्रयोग-शालाओं को आधुनिक वैज्ञानिक यन्त्रों से सुसज्जित करने और उनके लिये उपयुक्त साधनों को उनमें उपस्थित करने के लिये आवश्यक धन का अभाव ही है, किन्तु आशा है कि अब राष्ट्र के नवजन्म से ऐसी न्यूनतायें शीघ्र ही दूर हो जायेंगी।

देश की सरकार एतदर्थ विशेष धन सहायता के रूप में दे रही है। युक्तप्रांतीय सरकार ने वैज्ञानिक गवेषणा-समिति के द्वारा, जिसका कार्य सहायता देने योग्य आयोजनाओं का चुनना है इस कार्य में पैर अब अपना आगे बढ़ाया है, किन्तु आर्थिक संकट के प्रभाव से उसका कार्य अभी सुचारु रूप से नहीं चल सका। फिर भी राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला की जो सम्भवत: प्राच्य संसार की सर्वश्रेष्ठ प्रयोगशाला होगी, दिल्ली नगर में स्थापना के हो जाने से एक बहुत बड़ा कार्य हुआ है। इसमें अब नाप-तौल इत्यादि के निश्चितीकरण का विभाग कार्य भी करने लगा है। और आशा है कि अन्य विभाग भी शीघ्र ही कार्य करने लगेंगे। ऐसी ही स्थिति के आ जाने पर सैद्धान्तिक और प्रायोगिक भौतिक विज्ञान के क्षेत्र सहयोग के साथ सराहनीय कार्य कर सकेंगे।

विज्ञान के आधुनिक विकास का सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य परमाणु शक्ति (atomic energy) की खोज है, जिसके कारण जापान के हीरोशीमां नगर का अस्तित्व ही विलीन हो गया और इसीलिए इस शक्ति का अनुमान करके आज समस्त संसार त्रास-त्रासित और भय-कम्पित हो रहा है। प्रश्न अब यह है कि क्या ये नवजात परिमाणुक अस्त्र नियंत्रित कर दिये जाँय अथवा सदा के लिए प्रयोग-बहिष्कृत ही कर दिये जाँय, यदि उत्तर में हाँ हो तो प्रश्न यह है कि यह कार्य यदि हो तो कैसे हो। इन्हीं प्रश्नों के परमाणु शक्ति-

समिति आज सुलझाने का प्रयत्न कर रही है। किन्तु भौतिक विज्ञानार्थ प्रदत्त नोबेल पुरस्कार-विजेता आचार्य श्री प्रो० एम० एस० ब्लैकेट महोदय की यह धारणा कि परमाणु बम्ब के सैनिक प्रयोग उतने भयावह नहीं हैं, क्योंकि परमाणु बम्ब वायु-सेना के द्वारा ही प्रयुक्त होंगे; उनके एतत् सम्बन्धी निबंध का विषय भी यही है कि "वायु सेना अकेले ही युद्ध नहीं जीत सकती", अस्तु हम भारतीय वैज्ञानिक परमाणु शक्ति के शान्ति-पूर्ण प्रयोगों के लिये शीघ्र ही एक विशाल यन्त्रालय की स्थापना करने जा रहे हैं।

भौतिक वैज्ञानिकों का एक ऐसा विभाग और भी है जिसकी ओर हमारे देश ने वैमुखी वृत्ति सी ही रखी है। यह विभाग औद्योगिक विज्ञान-विभाग है। इसी विभाग को वस्तुतः उत्पन्न करना चाहिये मुख्य यन्त्र सामग्री, एक्स-रे सामग्री, वाल्व आदि, जिनकी महती आवश्यकता है। भौतिक विज्ञान केवल अपने ही क्षेत्र में इस औद्योगिक विभाग की सहायता कर सकता है। एक्स-रे के प्रयोग और ऋणाणु कृत वितरण विधि को, जिसका उपयोग धातुपटलगत दोषों के ज्ञात करने में होना है, पाश्चात्य संसार में अधिकाधिक प्राधान्य दिया जा रहा है, किन्तु अभी भारत इस दिशा में कुछ अधिक आगे नहीं बढ़ पाया।

गत महायुद्ध के कारण भी विज्ञान का बहुत विशेष विकास हुआ है। राडर नामक अस्त्र, तमदर्शक दीप (इंफ्रा-रेड लैम्प) आदि के नव-प्रयोग इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं। हम भारतीय वैज्ञानिक ऐसे अस्त्रों की निर्माण कला में अभी पिछड़े हुए तो हैं ही, किन्तु फिर भी हताश होने का यह विषय नहीं, सूक्ष्म-दर्शक प्रखर बुद्धि वाले वैज्ञानिक हमारे देश में भी हैं जो बहुत कुछ अभूतपूर्व कार्य कर सकते हैं। कमी केवल पुष्कल धन की ही है। यदि यथेष्ट धन और विज्ञानाचार्य दोनों मिल जायें तो भारत इस वैज्ञानिक दौड़ में दूसरों को अवश्यमेव शीघ्र ही पकड़ लेगा। इसीके साथ एक आवश्यकता यह और भी है कि हमारे देश की जनता में विज्ञान के प्रति चेतना, सद्भावना और सुरुचि की भी पूरी जाग्रति हो जाय, जिससे वह विज्ञान के उद्देश्यों को चाहने और सराहने लगे और विज्ञान के क्षेत्र में अपनी जान पर खेलने वाले वैज्ञानिकों के सम्मुख उपस्थित होने वाले विघ्नों पर विजय पाने के लिये सब प्रकार सहायक हो सके।

आधुनिक काल में भौतिक विज्ञान के साथ ही साथ रसायन शास्त्र की भी अप्रतिम उन्नति हुई है। आज भौतिक विज्ञान अथवा रसायनशास्त्र के मध्य में किसी भी प्रकार की सीमा-रेखा का निश्चित रूप से खींचना असम्भव सा ही हो गया है। भौतिक शास्त्र की आधुनिकतम देन परिमाणुक-शक्ति की गवेषणा में भी रसायन शास्त्र ने बहुत बड़ा प्रमुख भाग लिया है। विज्ञान के अन्य क्षेत्रों के ही समान गत महायुद्ध के समय में रसायन शास्त्र के विभिन्न विषयों का बड़ा ही गूढ़ और गम्भीर अध्ययन किया गया है। और उनका यदि एक ओर मानव-विनाशकारी उपयोग किया गया है तो साथ ही दूसरी ओर उनका मानव-जीवन रक्षक प्रयोग भी किया गया है। दुर्भाग्य की बात यह है कि भारतवर्ष ने इन गवेषणाओं में कोई भी उल्लेखनीय भाग नहीं लिया। सत्य स्थिति तो यह है कि भारतवर्ष में आधुनिक काल में रसायन शास्त्र की उन्नति उस गति से ता नहीं हो पायी, जिस गति से उन्नति भौतिक विज्ञान की अन्यान्य शाखाओं में हुई है। इसके कतिपय मुख्य कारण कहे जा सकते हैं। प्रथम और प्रधान कारण तो यह है कि रसायन शास्त्र मुख्यतः एक प्रायोगिक विज्ञान है और हमारे यहाँ प्रयोगशालाओं के साधनों का नितान्त अभाव सा ही है। इस अभाव के होते हुए भी कुछ रसायनाचार्यों के महत् कार्य बहुत ही सराहनीय हुए हैं। ऐसे प्रशस्ताचार्यों में से आचार्य श्री० प्रफुल्लचन्द्र जी राय, श्री० सर शान्तिस्वरूप भटनागर, श्री० आचार्य ज्ञानेन्द्रचन्द्र घोष के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। रसायनशास्त्र के इन विद्वानों ने प्रतिकूल अवस्थाओं में भी जो स्तुत्य कार्य किया है वह बहुत ही उच्चकोटि का है।

आचार्य श्री० प्रफुल्लचन्द्र राय ने तो एक दृष्टि से भारतवर्ष में रसायन शास्त्रीय गवेषणा की नींव ही सी डाली है और इस शास्त्र की कई दिशाओं में बड़ी ही महत्वपूर्ण गवेषणाएँ की हैं। उनके अध्यवसायकृत

कार्यों में से दो कार्य विशेष मूल्य और महत्व रखते हैं। प्रथम तो है बङ्गाल केमिकल व फारमास्यूटिकल वर्क्स की स्थापना का कार्य और द्वितीय है भारतीय नवयुवकों में रसायनशास्त्र के प्रति अभिरुचि के उत्पन्न करने का कार्य। श्री राय महोदय के कतिपय शिष्य भी उनका अनुसरण करते हुए रसायन-विभाग में कार्य कर रहे हैं और कुछ ने सुन्दर भौतिक रासायनिक गवेषणाएँ भी की हैं। फिर भी एक यह बात मुझे बहुत समय से बराबर खटकती रही है कि आचार्य राय के समान उनके अनुयायी शिष्यों ने उनसे रासायनिक गवेषणा के लिये यथेष्ट प्रेरणा प्राप्त करके भी देश की अब तक कोई बहुत बड़ी ऐसी उपयोगी सेवा नहीं की, जिससे देश का आर्थिक और व्यावहारिक हित हो सका हो।

आज रसायनशास्त्र की औद्योगिक उपयोगिता भी बहुत ही बढ़ गई है। लगभग कोई भी आधुनिक ऐसा उद्योग-धन्धा नहीं है, जो रसायन शास्त्र की सहायता के बिना भलीभाँति इस नये युग में चल सके। भारतवर्ष में इसलिये कहना चाहिये, इस ओर अभी नगण्य सा ही कार्य हुआ है। श्री० सर शांतिस्वरूप भटनागर के प्रयत्नों के फल-स्वरूप इधर के १० वर्षों से "कौंसिल आफ साइन्टिफिक ऐन्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च" नामक संस्था इस ओर कुछ कार्य्य अवश्यमेव करती रही है। इसके अतिरिक्त हर्ष की बात यह है, कि पूना में एक अन्य नई "आधुनिक रसायन-प्रयोगशाला" सरकार की संरक्षता में स्थापित हो गयी है। अतएव अब आशा है कि यह प्रयोगशाला देश में रसायन शास्त्रीय गवेषणा में नवीन वृद्धि और समृद्धि उत्पन्न कर सकेगी और साथ ही साथ देश की औद्योगिक समस्याओं को सुविधा के साथ सुलझा कर भारतीय उद्योगों में सहायक सिद्ध हो सकेगी।

विज्ञान के इन दो प्रमुख विभागों पर इस प्रकार साधारण दृष्टिपात करके अब मैं तनिक आपको कृषि-विज्ञान की ओर भी आने के लिए आमन्त्रित करता हूँ। हमारे देश के लिये कृषि का बहुत बड़ा महत्व है। इस पर दो मत नहीं हो सकते। भारत सदैव से कृषि-प्रधान देश ही रहा है और इसीलिये कृषि व्यापार को एक सुदृढ़ नींव पर स्थापित करना इसके लिए अतीव आवश्यक है।

१९३५ ई० से पहले इस देश की जन-संख्या और उपज का अनुपात अपेक्षाकृत बहुत ही कम था, किन्तु ३५ से ३९ तक में इन दोनों में बहुत अधिक निकटतम अनुपात आ गया है। १९३९ ई० से अब तक में यहाँ की जन-संख्या उपज की अपेक्षा अधिक बढ़ गयी है। यह कोई आश्चर्य का विषय नहीं, क्योंकि भारतीय जन-संख्या अनुपाततः प्रतिवर्ष ५० लाख के लगभग बढ़ती है।

राज्य के विभाजन के पश्चात् भारत जैसे महादेश में जन-संख्या का घनत्व और भी अधिक बढ़ गया है। इसका कारण पाकिस्तान का भारत से विच्छिन्न होना और दोनों राज्यों में जन संख्या का आदान-प्रदान होना है। भारतीय यूनियन की जन संख्या अविभक्त मूल भारत की जन-संख्या से ७८% ही है, फिर भी कृषि के लिये उपयुक्त भूमि ६८ से ७०% ही रह गयी है। इस प्रकार जन-संख्या का घनत्व प्रति वर्ग मील बहुत बढ़ गया है और उपज प्रति एकड़ अनुमानतः वही बनी हुई है।

परिणाम इसका यह हुआ है कि पर्याप्त वर्ष भारत को १०० करोड़ रुपयों से अधिक के खाद्य पदार्थ बाहर से मँगाने पड़े हैं। गत वर्ष यही आँकड़े १५० करोड़ की बृहत् धन-राशि तक पहुँच गये। यदि ऐसी दशा बनी रही तो बहुत ही शीघ्र भारत दिवालिया हो जायेगा। मुद्रा के अवमूल्यन ने इस दशा को और भी अधिक बिगाड़ दिया है। इसकी औषधि केवल यही है कि भारत सब प्रकार से खाद्य पदार्थों के लिये आत्म-निर्भर बनने का ही पूर्ण प्रयत्न करे।

हमारी सरकार इस जटिल समस्या के प्रति निस्सन्देह सचेत है और उसने श्री पाटिल को देश में व्यापक रूप से अधिक उपज करने के लिये नियुक्त भी किया है। भारतीय सरकार का भारत को १९५१ ई० तक सर्वथा आत्मनिर्भर बनने का विचार केवल एक आदर्श विचार ही नहीं है, जो कभी पूर्ण ही न होगा। स्थूल हिसाब से देश की उपज ४ करोड़ २५ लाख टन है और विशेषज्ञों का विचार यह है कि इस उपज के साथ भारत में केवल ४० लाख टन खाद्य पदार्थ की ही न्यूनता रहेगी। यदि १०% अथवा ७ मन के स्थान पर ७ मन २८ सेर अथवा १० मन के स्थान पर ११ मन प्रति एकड़ उपज बढ़ जाय

यह वृद्धि एक प्रकार से नगण्य ही है, तो भी भारत आत्म-निर्भर हो सकता है।

साथ ही इसके ९२ लाख एकड़ ऐसी भूमि पड़ती भी पड़ी हुई है जो जोती बोई जा सकती है—जैसे हिमालय की तराई। और इसी प्रकार बहुत सी अर्ध उर्वर भूमि भी पड़ी है जो कृषि-कार्य में आ सकती है। अधिक दशाओं में ऐसे भू-भाग बड़े बड़े क्षेत्रों के रूपों में फैले हुए हैं और यान्त्रिक-कृषि के योग्य हैं। इतनी भूमि का इस प्रकार व्यर्थ ही पड़ा रहना हमारे जैसे बहुसंख्यक जनता के देश के लिये विचित्र सा ही है, किन्तु इसका मुख्य कारण नगर और ग्राम के क्षेत्रों में श्रमिकों की संकीर्णता है।

उक्त भू-भागों को कृषि-क्षेत्रों में रूपान्तरित करने के लिये परिश्रम की आवश्यकता है और श्रमिकों की कमी में उसकी पूर्ति के लिये यान्त्रिक-कृषि-विधान का क्रमिक वर्धन ही एक मात्र उपाय है। मैं वह व्यक्ति नहीं, जो यह मानते हैं कि पूर्ण यान्त्रिक-कृषि व्यवस्था ही इस देश के लिये उपयोगी और समीचीन है, क्योंकि भारत न तो ट्रैक्टर ही बनाता है, न उसके पास उनके संचालनार्थ पर्याप्त ईंधन ही है और न उसकी आर्थिक दशा ही ऐसी है अथवा न उसकी कृषि-क्षेत्र-विभाजन-व्यवस्था ही ऐसी है कि ट्रैक्टरों का बृहत् रूप में प्रयोग किया जा सके। फिर भी यान्त्रिक उन्नति की प्रगति का युग आ ही गया है।

स्थूल रूप से यदि ६० लाख एकड़ अतिरिक्त भूमि यान्त्रिक कृषि व्यवस्था में आ जाय तो अनुमानतः २० लाख टन अधिक अन्न की उपज होने लगेगी और शेष २० लाख टन की कमी सिंचाई आदि के द्वारा पूरी हो जायेगी, जहाँ कहीं भी इस प्रकार की सुविधायें प्राप्त हो सकती हैं और फर्टिलाइजर का उपयोग किया जा सकता है, किन्तु यह भगीरथ-प्रयत्न है। क्योंकि ६० लाख एकड़ की अतिरिक्त भूमि के लिये ४० हजार ट्रैक्टरों की आवश्यकता है और इतने ट्रैक्टर कुछ वर्षों में ही प्राप्त हो सकते हैं। साथ ही यान्त्रिक-कृषि-व्यवस्था भी धीरे ही धीरे चलायी जा सकती है, फिर भी इससे भी अधिक कठिनाई यह है कि इसी भूमि के लिये १२ लाख अधिक बैलों की आवश्यकता होगी, जिनका प्राप्त करना अब एक प्रकार से असम्भव ही है।

इस कठिनाई की अपेक्षा यान्त्रिक-कृषि-व्यवस्था में ट्रैक्टरों का उपयोग आदि एक प्रकार से अधिक लाभप्रद है। यहाँ बैलों के द्वारा जोते गये, और ट्रैक्टरों के द्वारा बनाये गये ४५ हजार एकड़ की तुलनात्मक उपज नीचे दिखलायी गयी है। ट्रैक्टरों के प्रयोग के साथ आधुनिक नवसिंचन-रीति का उपयोग नहीं भी किया गया। जुताई के लिये बैलों की अपेक्षा ट्रैक्टरों का उपयोग अधिक लाभदायक है, क्योंकि मिट्टी का उलटना, खाद देना और निराने का कार्य करना ट्रैक्टरों के द्वारा अधिक अच्छा हो सकता है, यद्यपि इस सम्बन्ध के कोई आँकड़े प्राप्त नहीं हैं फिर भी यह अनुमान किया जा सकता है कि बैलों की अपेक्षा ट्रैक्टरों से जोते हुए खेतों की उपज अधिक ही होगी।

बैलों के द्वारा जोती हुई भूमि के एक एकड़ में ८ मन अन्न और १६ मन भूसे की प्राप्ति यदि मानी जाय और ट्रैक्टरों के द्वारा जोते हुए एकड़ में ९ मन अन्न और १८ मन भूसे की प्राप्ति मान ली जाय तो प्रथम वर्ष में उपज इस प्रकार हो सकेगी—

| | उपज | लागत खर्च | मूल लाभ |
|---|---|---|---|
| बैलों से | ५०४०००० रु० | २०२४०००रु० | ३०१५००० रु० |
| ट्रैक्टरों से | ८१०००००रु० | ७८२८००० रु० | २७२००० रु० |

उक्त आँकड़ों में बैलों की शक्ति से प्राप्त होने वाले लाभ में भूसे की बिक्री से होने वाला लाभ सम्मिलित नहीं क्योंकि जब विस्तृत जोताई होगी तब चरागाह न बचेंगे और सारा भूसा बैलों के ही खर्च में आ जायेगा।

उक्त आँकड़ों से यह स्पष्ट है कि प्रथम वर्ष में तो ट्रैक्टरों के उपयोग से कम लाभ होगा, किन्तु आगे के वर्षों में लागत खर्च चूँकि कम हो जाएगा इसलिये यांत्रिक कृषि आगे अधिक लाभप्रद सिद्ध होगी। प्रथम पाँच वर्षों का अनुमान-पत्र इस प्रकार होगा—

बैलों के द्वारा

| | लागत | लाभ (प्राप्ति) | लाभ |
|---|---|---|---|
| १ वर्ष | २०२५००० रु० | ५·४१००० रु० | ३०१५००० |
| २ ” | ११२५००० रु० | ५०४०००० रु० | ३६१५००० |
| ३ | ” | ” | ” |
| ४ | ” | ” | ” |
| ५ | ” | ” | ” |

कुल प्राप्ति (लाभ) १८६७५००० रु०

ट्रैक्टरों के द्वारा

| लागत | प्राप्ति | लाभ |
|---|---|---|
| ७८२८००० रु० | ८१०००८० रु० | २७२७०० रु० |
| २८४१००० ” | ” | ५२५८३०० ” |
| २६६५५७० ” | ” | ५४३४४३० ” |
| २५१५८६० ” | ” | ५५८४१४० ” |
| २३८८४०० ” | ” | ५७११६०० ” |

कुल प्राप्ति (लाभ) २२२६०४७० रु०

इस प्रकार ट्रैक्टरों के प्रयोग से बैलों और श्रमिकों की ही समस्या नहीं हल होती, वरन मूल लाभ भी बैलों से की गयी कृषि की अपेक्षा अधिक हो जाता है, आधुनिक सिंचन की विधियों के उपयोग से भी उपज अधिक हो जाती है, चाहे ट्रैक्टरों का उपयोग किया जाय अथवा बैलों का। ३०० पम्पों का लागत-खर्च, जो भूमि के लिये आवश्यक होंगे, उनके लगाने, चलाने आदि के खर्च को काट देने पर भी एक करोड़ रुपये का लाभ देश को पाँच वर्षों में और अधिक होगा, चाहे उपयोग ट्रैक्टरों का हो अथवा बैलों का।

आंशिक रूप से यांत्रिक-कृषि-व्यवस्था और आधुनिक सिंचन विधियों के देश में चला देने के साथ ही बीजों के उत्कृष्ट करने की भी महती आवश्यकता है, क्योंकि ये उत्कृष्ट बीज देशी बीजों की अपेक्षा अधिक उपजकारी, शीघ्र पकने वाले, ईति-भीति के भय से रहित और अच्छे अन्न के देने में उपयुक्त होते हैं, जब इन्हें समान सुविधायें भी दे दी जायें।

बीजों की उत्कृष्ट जातियों के उत्पन्न करने के लिये वैज्ञानिकों का दायित्व आता है। पाश्चात्य देशों में इस प्रकार का बहुत सा कार्य अब तक किया जा चुका है। रूस के विस्तृत कृषि क्षेत्रों में गेहूँ की ३०००० जातियाँ तक उपस्थित हैं। इसके प्रमुख वैज्ञानिक श्री० वेविलोफ़ महोदय ने और कृषि संबन्धी असंख्य प्रकार के गेहुँओं के दाने अफगानिस्तान और दूसरे स्थानों में, जो गेहूँ के मातृ भू-भाग कहे जाते हैं, भ्रमण करते हुए एकत्रित किये और उन्हें वे रूस ले आये, जहाँ उनके नये-नये बीजों के उत्पन्न करने के प्रयोगों का क्रम चल रहा है।

इस रोचक विषय पर कुछ और भी कहने की इच्छा मैं रखता था, यदि समय का लाघव न होता, किन्तु यहाँ अब इतना ही कहना पर्याप्त है कि आज गेहूँ का सब से अधिक उत्पादक रूस ही है। उसने सायबेरिया के दुर्गम क्षेत्रों में भी, जहाँ लगभग वर्ष के दस महीनों तक बर्फ जमी रहती है, गेहूँ उत्पन्न किया है। भारत में तो बीजों की उन्नति के लिये बहुत थोड़ा ही कार्य हुआ है। मैं कुछ उल्लेख ऐसे कार्य का आपके सम्मुख यहाँ करता हूँ जो मेरी कृषि-प्रयोग-शाला में हुआ है।

यह हमें ज्ञात ही है कि गेहूँ की बालों के रेशों से गेहूँ की विविध जातियाँ बहुत-कुछ पहचानी जा सकती हैं। कुछ रेशे तो कटीले होते हैं और कुछ नहीं। कृषक कटीले रेशों के गेहूँ को अधिक अच्छा मानते हैं क्योंकि यह कटीले रेशे दाने को चिड़ियों से बचाते हैं, जिस समय खेत में फ़सल तैयार रहती है। इसी प्रकार कुछ रेशे और बीज भी बहुत कुछ लाल होते हैं और कुछ दूसरे प्रकार के सफेद होते हैं। गेहूँ की ऐसी कतिपय जातियों के नाम उनके उत्पादक अनुसन्धान शालाओं के नामों के आधार पर रखे गये हैं, जैसे कानपुर १३ एक जाति का नाम है। इस जाति के गेहूँ के रेशे कटीले और सफेद होते हैं। कुछ वर्ष पूर्व आई० पी० ५२ जाति के गेहूँ के बीजों से एक नयी और अच्छी जाति के बीजों के उत्पन्न करने का प्रयास करते हुए उन्हें

मेरी प्रयोगशाला में एक्सरे के सम्मुख रक्खा गया था और वे बीज प्रौढ़ होकर दूसरे ग्यारह प्रकार के नयी जाति के बीज उत्पन्न कर सके। इनमें से कुछ के रेशे तो कटीले थे और कुछ के न थे।

इनके वर्ण भी कुछ श्वेतता से रक्तता की ओर चलते थे। इनमें से कुछ बीज तो आगे के वर्षों में नयी नयी जातियों के बीज प्रकट करते गये, किन्तु कुछ अन्य बीज अपने उसी रूप में बने रहे। तब से बराबर इन नई जातियों का प्रयोग प्रति वर्ष हमारी प्रयोगशाला में किया जा रहा है। अब तो न केवल हमारे ही कृषि क्षेत्र में, वरन् नैनी कृषि-क्षेत्र और दूसरे कृषि क्षेत्रों में भी इनका उपयोग हो रहा है। परिणाम यह देखा गया है कि यह उपजातियाँ गुणों के विचार से बहुत आगे बढ़ गयी हैं। इनके बीज अधिक दाने देते हैं, शीघ्र पक जाते हैं और रोटी बनाने के लिये अच्छे होते हैं।

इन उपजातियों में से दो के नाम श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित और श्रीमती सरोजिनी नायडू के नामों पर 'विजया' और 'सरोजिनी' रक्खे गये हैं। ये दोनों प्रकार के बीज सभी कृषि-क्षेत्रों की प्रयोग-शालाओं में अति उत्तम सिद्ध हुए हैं। कृषकों में इन बीजों के प्रचार के लिये हम सरकार की सहायता पर ही निर्भर करते हैं। इस प्रकार का प्रयोग-कार्य अब भी हमारे यहाँ बराबर चल रहा है।

उपर्युक्त 'एक्सरे'-उपचार के परिणाम-स्वरूप तथा विजातीय सम्मिश्रण (Cross breeding) सम्बन्धी प्रयोगों के द्वारा लगभग २०० प्रकार के गेहूँ हमारे कृषि-क्षेत्र में सुरक्षित हैं। राष्ट्र के हित में भारतीय वैज्ञानिकों के लिये यह अनिवार्य है कि अपने देश में गेहूँओं की अधिक और अच्छी उपज के लिये पूरा कार्य करें, और दूसरे व्यक्ति हमारे सिद्ध प्रयोगों का सदुपयोग भी करें।

इस प्रकार विज्ञान और उसके विविध क्षेत्रों पर विहंगम दृष्टि के डाल चुकने पर मैं आपका ध्यान अब उस ओर आकृष्ट करता हूँ जिसकी ओर ध्यान देना तात्कालिक आवश्यकता के रूप में है। इसमें तो सन्देह ही नहीं की वैज्ञानिक लोग सैद्धान्तिक और प्रायोगिक क्षेत्रों में सरकार और जनता से सहायता और सहानुभूति पाकर प्रोत्साहन के साथ कार्य करेंगे ही, किन्तु सम्मेलन जैसी संस्थाओं के लिये भी उनके साथ ही बहुत कुछ करणीय है।

सम्मेलन ने अपनी इस थोड़ी अवस्था में हिन्दी भाषा और हिन्दी-साहित्य के प्रवर्धन और प्रसारण का कार्य तो सराहनीय सफलता के साथ किया है, किन्तु अपनी परीक्षाओं के पाठ्य-क्रम में विज्ञान के विषय को स्थान देते हुए भी भौतिक विज्ञान-साहित्य के विकास का अनिवार्य कार्य अभी तक यथेष्ट रूप में कदाचित कुछ भी नहीं किया। सम्भवतः इस कार्य की अपेक्षा उसके लिये प्रथम कार्य ही देश-काल की परिस्थितियों को देखते हुए अधिक आवश्यक और वांछनीय था। किन्तु अब वह समय आ गया है जब उसे इस कार्य में भी हाथ बँटाना चाहिए।

इस क्षेत्र में सम्मेलन का कर्त्तव्य होगा कि वह शीघ्रातिशीघ्र अपनी संरक्षता में देश से विज्ञान-विशारदों तथा भाषा-विशारदों की एक सुयोग समिति बना कर वैज्ञानिक शब्दावली-कोष का व्यापक और सर्वमान्य कार्य करे और विविध प्रकार के विज्ञानों के सुन्दर सुन्दर ग्रन्थों का प्रकाशन भी बढ़ा दे। अन्य प्रकाशक यह कार्य इसलिए नहीं कर सकते, क्योंकि उनका दृष्टिकोण व्यापारिक रहता है और महत्वपूर्ण वैज्ञानिक ग्रन्थ हिन्दी भाषा में प्रकाशित होकर इतनी संख्या में अभी नहीं खप सकते कि उनसे प्रकाशकों को लागत के निकल आने पर कुछ लाभ भी हो सके।

सम्मेलन एक औद्योगिक विज्ञान की प्रयोगशाला भी स्थापित कर सकता है। जहाँ दैनिक व्यवहार की वस्तुओं के सम्बन्ध में नये आविष्कार किये जा सकें और स्वल्प मूल्य के साथ अधिक मात्रा में दैनिक जीवन सम्बन्धी आवश्यक वस्तुयें बनायी जा सकें।

जहाँ तक मुझे ज्ञात है कार्यों के प्रारम्भ के लिये सम्मेलन के पास पर्याप्त धन है अथवा उसे मिल सकता है। वैज्ञानिकों का सहयोग भी उसे सरलता से प्राप्त हो सकता है। आवश्यकता केवल उसे सचेष्ट होकर कार्य के प्रारम्भ करने की ही है। मुझे आशा है कि सम्मेलन

और आप सभी महानुभाव एतदर्थ प्रयत्नशील होने का श्रेय लेने के लिये सन्नद्ध होंगे। अन्त में अब मैं आप सब सज्जनों को हार्दिक धन्यवाद आपकी इस कृपा के लिये देकर अपना भाषण समाप्त करता हूँ, जिस कृपा से आपने मुझे इस गौरव-पूर्ण आसन पर आसीन होने तथा अपने कुछ विचारों को व्यक्त करने का अवसर दिया है। भगवान शीघ्र वह दिन लाये जब सम्मेलन के द्वारा भी ज्ञान-विज्ञान का विश्व-विस्मयकारी विकास हो सके।

---

# कीटाणुओं के उपयोग

[ लेखक—श्री० जनार्दन प्रसाद शुक्ल ]

जन्म जन्मान्तर से मनुष्य बहुत सी चीजें बनाने के लिए जाने अथवा अनजाने कीटाणुओं की सहायता लेता आया है। दही बनाना, शराब बनाना, सिरका बनाना, चीज़ बनाना, अचार रखना इत्यादि प्रायः सभी घरों में सदैव से मालूम हैं। समयानुसार जैसे-जैसे मनुष्य को कीटाणुओं की विद्या का अधिक ज्ञान प्राप्त हुआ, कीटाणुओं की मदद से बड़े-बड़े व्यवसाय प्रचलित हो गये। इन व्यवसायों ने घरेलू नुस्खे ही प्रधानतः विस्तृत कर अब बड़े-बड़े ऐसे व्यवसाय निकल पड़े हैं जिनको देख कर आश्चर्य होता है।

कीटाणुओं की विद्या की विशेषता यह है कि यदि एक बार ठीक प्रकार से यह समझ लिया जाय कि कौन सा कीटाणु कौन काम करता है और कैसे उस कीटाणु को शुद्ध रूप से बढ़ाया जा सकता है तो ऐसी बड़ी बड़ी रासायनिक क्रियायें इतनी सरल रूप से सिद्ध हो जाती हैं कि जिसका कुछ कहना नहीं। कीटाणुओं के व्यवसाय में दो चार बातें पूर्ण रूप से जानना आवश्यक है। एक यह कि कौन-सा कीटाणु क्या बनाता है, दूसरे कि उस कीटाणु के लिए क्या-क्या पदार्थ हैं जिन पर उसकी क्रिया हो सकती है। तीसरा, उसी प्रकार का कीटाणु छोटे या बड़े रूप में कैसे बढ़ाया जा सकता है और उस कीटाणु के लिए कौन सा ताप और पी० एच० और माध्यम की सान्द्रता (Concentration of substrate) सब से अच्छा रहता है।



ऊपर कहे गये कीटाणु (Micro-organism) शब्द से अनेक प्रकारों का बोध होता है जिनका आज-कल भिन्न-भिन्न व्यवसायों में उपयोग किया जाता है। नीचे दी हुई सूची (Table) से यह विदित हो जायेगा कि कौन सा कीटाणु क्या बनाता है। व्यवसायों में प्रायः ३-४ समूह के कीटाणु प्रयोग में आते हैं, पहला ईस्ट, दूसरा मोल्ड, तीसरा बैक्टीरिया। साथ ही साथ इन्हीं व्यवसायों में बहुत कुछ क्रियायें ऐसी सम्बन्धित हैं कि जिनमें कीटाणुओं का प्रयोग तो नहीं होता पर ऐसे रसों (Enzymes) का प्रयोग किया जाता है जो कि कीटाणुओं की वृद्धि (otolize) करके बनाये जाते है, या यों कहिये कि वह रसादि प्रकृति में कीटाणु के अन्दर या फलों में स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होते हैं। उदाहरणतः आक्सीडेज़, इनवर्टेज़, डायसटेज, प्रोटाएज़ आदि (oxidase, invertase, diastase, Protaase etc)। कीटाणुओं की क्रियायें खाद्य-पदार्थ या रासायनिक चीजों के बनाने तक ही सीमित नहीं हैं। आजकल बहुत सी ऐसी उपयोगी दवायें भी ढूँढ़ निकाली गई हैं जिनका चमत्कार कथनीय है।

**व्यवसायिक कीटाणुओं के कार्यों का क्रमानुसार वर्णन**—(१) ईस्ट—इनसे व्यवसायिक एलकोहल, बियर, वाइन, ईस्ट व विटामिन बी कम्प्लेक्स, ग्लिसरोल, चरबी व डबल रोटी बनाये जाते हैं।

| किन वस्तुओं पर उसकी क्रिया होती है (substrate) | व्यवसाय और उनमें क्या बनता है | किस कीटाणु का प्रयोग होता है |
|---|---|---|
| शीरा, माल्ट, महुआ, गुड़, आटा या कोई भी मीठे रस | व्यवसायिक एलकोहल, ग्लिसरोल | (अ) ईस्ट<br>Saccharomyces cerevisae |
| फलों के रस, स्टार्च (hydrolysed) माल्ट | वाइन, बियर, शैम्पेन, चेरी, व्हिस्की इत्यादि | S. ellipsoidens |
| शीरा, मीठी वस्तुयें जैसे ग्लूकोज़, एलकोहल व आटा | ईस्ट, मारमाइट, विटामिन बी कम्प्लेक्स, डबल रोटी | Torula entilis, Willia anomala, Endomyces Vernalis, Tolulopsis giant |
| शक्कर | चर्बी जिसमें फ़ास्फ़ो लिपिड, लेसीथीन, स्टिरोल, पामिटिक, ओलीइक और लिनोलीइक एसिड | Endomyces vernalis<br>"ospora lactis |
| शक्कर, सैकेरोज़ अथवा फ्रूक्टोज़, ग्लूकोज़ | साइट्रिक व ग्लूकोनिक एसिड | (ब) मोल्ड<br>Aspergillus niger |
| आटा | कोजिक एसिड, डायस्टेज़ और एमाइलेज़ | A. oryzae |
| शक्कर | फ्यूमारिक एसिड | Rhizopus oryzae<br>Nigricans |
| मामूली शक्कर (सूक्रोज़) | मैनिटोल | A. nidulans |
| —— | पेनीसिलीन | Penicillium notatum |
| आटा, गुड़, चीनी | एसीटोन, ब्यूटाइल एलकोहल | (स) बैक्टीरिया<br>clostridium acetobutylicrem. Bacillus macerans |
| आटा गुड़, चीनी | एसीटोन, इथाइल एलकोहल | B. acetobacter aceti |
| चीनी, शराब | सिरका, एसीटिक एसिड | Acetobacter aceti |
| डेक्सट्रोसारबिटाल | सारेवोज़ | A. xylinium,<br>A. suboxidans |
| गुड़, चीनी, माल्टोज़ आदि | लैक्टिक एसिड | Lactobacillus delbruccpii |
| दूध | दही | |
| गोभी | खट्टा स्कउट | Mixture of lactic bacteria |
| दूध | पनीर | Mixture of milk bacteria |

(२) बैक्टीरिया—इनसे अचार, दही, सिरका, लैक्टिक एसिड, ब्यूटाइल एलकोहल, एसीटोन और प्रोपिओनिक ऐसिड बनते हैं।

(३) मोल्ड—यह साइट्रिक, ग्लूकोनिक, गैलिक, कोजिक और फ्यूमारिक एसिड, मेनिटोल, सार्बिटोल, पेनीसिलीन, व स्ट्रेप्टोमाईसीन बनाते हैं।

ऊपर के वर्णन को देखने से यह विदित होगा कि कीटाणु मनुष्य मात्र के लिए कितने उपयोगी हो गये हैं। उनकी सहायता से ऐसी ऐसी वस्तुयें जैसे विटामिन बी, सी, पेनिसिलीन, स्ट्रेप्टोमाइसीन आदि भी बनने लगे हैं; जिनसे मनुष्य को सताने वाली बहुत बड़ी-बड़ी व भीषण बीमारियों के जो उपचार मिल गये है। इनसे मनुष्य का जीवन अब बड़ी सरलता से सुखमय बनाया जा सकता है। कीटाणुओं के व्यवसाय अन्य देशों में काफी बड़े रूप में प्रचलित हैं और यह खेद का विषय है कि भारत में व्यवसाय रूप में इस विद्या का प्रचार अभी तक अधिक नहीं अपनाया गया। यदि इन सब व्यवसायों का अलग अलग पूर्ण रूप से वर्णन किया जाय तो एक बड़ी पोथी तैय्यार हो जावेगी। विज्ञान के एक पिछले अंक में श्री बालकृष्ण अवस्थी ने खमीर के व्यवसायों का वर्णन किया था। आजकल अपने देश में ऊपर कहे गये और व्यवसायोंमें सबसे प्रारम्भिक व्यवसाव यानी औद्योगिक और पावर ऐलकोहल बनाने की योजना काफी उन्नति कर रही है। संयुक्त प्रान्त, मैसूर आदि प्रान्तों में बहुत सी डिस्टिलरियों में शराब तैय्यार की जाती है जिसको पेट्रोल के साथ मोटर, ट्रैक्टर आदि चलाने के काम में लाने की व्यवस्था समस्त भारत में प्रचलित होने का रूप लेने वाली है और इसमें अपनी सरकार का पूरा हाथ है। इस व्यवसाय से हमारी शक्कर मिलों का शीरा जो कुछ ही वर्षों पहिले तक मारा मारा फिरता था सबका सब एक ऐसी उपयोगी वस्तु के बनाने में लगने लगा है जिसकी अपने देश में काफी कमी है।

बम्बई प्रान्त में अपनी सरकार ने सी० टी० एफ० प्रयोगशाला (C. T. F Laboratories) को एक बहुत बड़े आयोजन के लिए, जिसमें पेनीसिलीन बनाई जावेगी मदद देने की व्यवस्था की है जिससे अपने देश की पेनीसिलीन की माँग पूरी की जा सके। इन व्यवसायों में अभी और भी कितनी ऐसी व्यवस्थायें हैं जिनकी उन्नति अपने देश में पूर्ण रूप से होनी चाहिए। शीरे से खमीर बनाना और उसको विटामिन बी कामप्लेक्स की कमी पूरी करने के लिए खाने में किसी न किसी रूप में अपने समस्त भारतीय लोगों के लिए भी अपनी सरकार आयोजन कर रही है। हमारी शक्कर मिलों में तथा छोटे-छोटे रूप में कई जगहों में ऐसे व्यवसाय जैसे फल, संरक्षण अचार रखना, शीरा, सास और मार्मलेड बनाना आदि भी उन्नतिशील हैं और आशा है कि अपना देश भी शीघ्र ही अन्य देशों की भाँति इन व्यवसायों में प्रथम श्रेणी को पहुँच सकेगा।

नीचे अपने देश में प्रचलित कुछ व्यवसायों का वर्णन किया जायेगा।

(१) पावर एलकोहल का बनाना
(२) खाने वाले ईस्ट का बनाना
(३) पेनीसिलीन का बनाना
(४) सिरका और एसीटिक एसिड का बनाना
(५) ब्यूटाइल एलकोइल और एसीटोन का बनाना
व (६) फर्मेंटेशन द्वारा सार्बिटाल, एमाइलेज, साइट्रिक एसिड, लैक्टिक एसिड तथा अन्य रासायनिक पदार्थ (Fine chemicals) का बनाना।

**पावर एलकोहल का बनाना**—शक्कर एलकोहल बनाने की व्यवस्था के ऊपर कुछ दिनों से अपने देश में विचार हो रहा है पर, इस मतभेद पर कि पावर एलकोहल मोटरों में उपयोग हो भी सकता है या नहीं और यदि ८०:२० के अनुपात से पेट्रोल मिलाकर चलाया जाये तो इंजन को किसी प्रकार की क्षति तो नहीं होगी, काफी विचार किया गया है। बहुत देशों में जहाँ पेट्रोल नहीं होता पावर एलकोहल का इस प्रकार से उपयोग पूरे रूप से किया जाता है। जैसे-जैसे शक्कर बनाने की मिलें हमारे देश में बढ़ती गईं और अधिक मात्रा में रद्दी शीरा (waste molasses) होने लगा तो उसका उपयोग करने के लिए अपने देश में वैज्ञानिक

सब प्रकार की व्यवस्थाओं पर जाँच करने के लिए प्रस्तुत हुये। जब तक यह पूर्ण रूप से सिद्ध नहीं हुआ कि पावर एलकोहल के बनाने से ही हमारा सभी शीरा उपयोग में लाया जा सकेगा कितनी ही व्यवस्थायें निकली गई और उन पर उन्नतिशील विचार किया गया। इन्हीं विचारों के फलस्वरूप हमारे माननीय श्री नीलरत्नजी धर ने शीरा का एक ऐसा विलक्षण उपयोग निकाला कि जिससे अपने देश की ऊसर पृथ्वी उपजाऊ बनाई जा सके।

हमारे देश में पेट्रोल बाहर से मंगाया जाता है और आजकल दिनोदिन आन्तरिक ज्वलन एञ्जिन ( internal combustion engines ) जैसे मोटर, वायुयान इत्यादि जिनमें पेट्रोल का प्रयोग किया जाता है, बढ़ते जाते हैं। अपने देश का बहुत सा धन पेट्रोल के लिए प्रति वर्ष बाहर जाता है और यदि पेट्रोल के साथ किसी वस्तु का उसी प्रकार उपयोग किया जा सके जिससे पेट्रोल की मात्रा बढ़ सके तो उससे अपने देश को बहुत बड़ा लाभ होगा। इसी का विचार करते हुये अपनी सरकार ने पावर एलकोहल बनाने के लिए पूरा आश्वासन और सहायता पहुँचाने के लिए जो कुछ भी आयोजना हो सकती है करवाई। इसके फलस्वरूप अब समस्त भारत में ४६ डिस्टिलरी काम कर रही हैं। इनमें से १२ ऐसी हैं जो शीघ्र ही १२ लाख गैलन एलकोहल बनायेंगी। अपने देश में जैसा कि नीचे दिया है, करीब ९,८२८,००० मन शीरा प्रति वर्ष होता है और यदि सब का सब पावर एलकोहल बनाने में उपयोग कर लिया जाय तो एक गैलन शीरे से दो गैलन पावर एलकोहल के हिसाब से १९,६५६,००० गैलन बनाने की योजना हो सकती है। यदि इतनी ही पेट्रोल की बचत हो जाय तो अपने देश का २ करोड़ रुपया हर साल बचा करेगा जिसको अन्य आवश्यक कार्यों में लगाया जा सकता है।

अब इस लेख को दो भागों में बाँटा जायगा।

(१) विदेशी निपुणों की एलकोहल पेट्रोल मिलावट के बारे में राय,

(२) पावर एलकोहल, डिस्टिलरी में पैदा करने का विवरण।

## विदेशी निपुणों की राय–

एक मोटर में ईंधन (Fuel) डालने से कितनी शक्ति पैदा हो सकती है यह बहुत कुछ मोटर के कार्ब्यूरेटर की बनावट के ऊपर-निर्धारित है। रिकार्डो (Rickardo) और ह्यूबेनडिक (Hubendick) आदि ने कहा कि इंजन चलाने के लिए पाँच बातें लाभदायक हैं। पहली कि जब इंजन धीरे-धीरे चलाया जाय, तो पहले शक्ति जल्दी से बढ़ती है फिर एक हद तक पहुँच कर जब इंजन के चक्कर (revolution) बढ़ा दिये जाते हैं तो नीचे गिरने लगती है और सब से अधिक शक्ति पैदा करने के लिए ईंधन वाष्प का अनुपात पूरी तरह जलने के लिए जितनी हवा चाहिए उससे ४ से ६ प्रतिशत अधिक अच्छा होगा। दूसरे, कि जब इंजन

भिन्न भिन्न प्रदेशों में शीरे की वार्षिक पैदावार ( टन में )

| वर्ष | यू० पी० | बिहार | उड़ीसा | मद्रास | बम्बई | बंगाल व आसाम | रियासतें | कुल |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १९४३-४४ | २६२६०० | ६८३०० | ८०० | १७९०० | २८७०० | ८२०० | ४६७०० | ४३३२०० |
| १९४४-४५ | १७४८०० | ५३९०० | १२०० | २०९०० | २७३०० | ४९०० | ४१६०० | ३२४६०० |
| १९४५-४६ | १७६३०० | ५९९०० | १००० | २३३०० | २४०६० | ९९०० | ३७५०० | ३३४३०० |

मामूली ( normal ) चाल पर चले तब यह हवा अनुपात उचित अनुपात से ४ प्रतिशत कम होना चाहिए। तीसरे, कि एलकोहल डालने से शक्ति की वृद्धि १० प्र० श० बढ़ जाती है । चौथे, कि कई सिलिण्डर वाले इंजन आसानी से चलने के लिए थोड़ा सा अधिक सान्द्र मिश्रण होना चाहिए।

प्रोफेसर ह्यूबेनडिक (Hubendick) ने बहुत से प्रयोग पेट्रोल और एलकोहल मिश्रण पर किये जिनमें ईंधन का व्यय प्रति हार्स पावर निकाला गया तथा कई प्रकार के काब्यूरेटर जेट प्रयोग किये गये। उनके प्रयोगों से यह पता चला कि सबसे कम ईंधन का खर्च खाली पेट्रोल पर तथा पेट्रोल एलकोहल मिश्रण (१०%. १५% और २०%तक) पर लगभग एक ही रहता है और अधिक से अधिक २३% पावर एलकोहल पेट्रोल में मिलाया जा सकता है। इससे अधिक मिलाने पर काब्यूरेटर में परिवर्त्तन करने की आवश्यकता पड़ने लगती है। ऊपर के प्रयोगों से यह स्थापित कर दिया गया है कि २०% मिश्रण तक बिलकुल किसी प्रकार के कष्ट व अड़चन के बिना प्रयोग किया जा सकेगा और मोटर वाले को इसका पता भी न लगेगा कि एलकोहल मिलाया गया है। कुछ वैज्ञानिकों का यह मत है कि एलकोहल प्रयोग करने से अधिक दबाव का अनुपात मिल सकता है और ईधन की उपयोगिता बजाय घटने के बढ़ जावेगी और ईंधन का व्यय भार घट जावेगा। केवल रेक्टीफाइड स्पिरिट प्रयोग करने से ईंधन का व्यय बढ़ जाता है।

यदि शुद्ध स्पिरिट ही पेट्रोल में मिला दी जाय तो जितनी ही उसकी शक्ति कम होगी उतना ही पेट्रोल एलकोहल का समरूप मिश्रण बनने में कठिनाई होगी और जितना ही तापमान कम रहेगा उतनी ही अधिक इस बात की सम्भावना रहेगी कि पानी अलग हो जाय। ऐसी दशा में मिश्रण जब समाप्त होने लगेगा तो कष्ट होगा। इसीलिए पावर एलकोहल (९९.५% एलकोहल) बनाकर ही पेट्रोल में मिलाना उचित समझा जाता है। अपने देश में जो आयोजना इस प्रकार के मोटर के ईंधन बनाने की हो रही है, उसमें ८०:२० पावर एलकोहल का मिश्रण यानी ८० भाग पेट्रोल और २० भाग पावर एलकोहल ही तै किया गया है।

**डिस्टिलरी में पावर एलकोहल बनाने का विवरण**—(अ) फ़र्मेंटेशन (ब) डिस्टिलेशन (स) डिहाइड्रेशन और रेक्टीफ़िकेशन। अपने देश में जो पावर एलकोहल डिस्टिलरियाँ हैं उनमें पावर एलकोहल बनाने के लिए निम्नविधियाँ प्रयोग की जाती हैं।

(i) शीरे को सड़ा कर खमीर द्वारा शराब पैदा करना।

(ii) पेटेंट स्टिल द्वारा अधिक-से-अधिक ताकत की, यानी ९५ से ९६% की रेक्टीफ़ाइड़ स्पिरिट बनाना।

(iii) रेक्टीफ़ाइड़ स्पिरिट को अनार्द्र (डिहाइड्रेट) कर प्रतिशत एलकोहल बनाना।

**(१) डिस्टिलरी में फ़र्मेंटेशन**—शक्कर मिलों में शक्कर पूर्ण रूप से निकालने के पश्चात् एक ऐसी दशा आ जाती है जब कि इससे अधिक शक्कर नहीं निकाली जा सकती। ऐसे गाढ़े और चिपचिपे पदार्थ को waste molasses यानी शीरा कहते हैं जो शक्कर मिल के किसी भी काम का नहीं रहता। इसके अन्दर प्रायः निम्नलिखित वस्तुयें होती हैं:—

परवर्त्तित शक्कर (Invert sugar)—१८-२५%
मामूली शक्कर (Sucrose)—२८-३५%
नमी (Moisture)—१८-२२%
राख (Ash)—१५%
शक्कर रहित पदार्थ (Non-sugars)—१०-१२%
नाइट्रोजन (Nitrogen)—२—४%

जो शीरा शक्कर मिल से बाहर किया जाता है वह कोल तार की तरह गाढ़ा व चिपचिपा होता है और इस रूप में हटाया नहीं जा सकता। उसके सड़ाने के लिए पहले खमीर का लाहन तैय्यार करना पड़ता है।

लाहन तैय्यार करना—(culture of yeast)—कुछ लोग तो विशेष प्रकार के कलचर (culture) प्रयोग करते हैं—उदाहरणार्थ Gorgense strain,

Sccharomyces cereviseae hansan या Carl sberg। इन कलचरों की खास बात यह है कि सड़ने पर १२% एलकोहल बनाने पर भी अपना काम करते रहते हैं। जो ईस्ट कि प्रकृति में स्वतः पाये जाते हैं वह एलकोहल की अधिक सान्द्रता होने पर मर जाते हैं परन्तु धीरे-धीरे यदि उनका शुद्ध कलचर चुन करके परिस्थिति अनुकूल किया जाय तो यह भी अच्छा काम देते हैं।

कल्डचर बनाने के लिए गन्ने का रस, अंगूरों का रस, यदि स्वतः सड़ने को रख दिया जाय तो उसमें बहुत अच्छा ईस्ट ऊग आता है जिसको प्लेट कलचर से शुद्ध कर सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा साफ़ saccharomyces cereviseae का प्रदेश अगर प्लेट पर उठाकर निकाल लिया जाता है और वह अगर, गुड़ या माल्ट अगर माध्यम पर तिरछे खींच कर उसकी नलियाँ बना ली जाती हैं। इन नालियों को एकत्रित रख कर उनका ईस्ट शीरे के सड़ाने के लिए बार-बार प्रयोग किया जाता है। १०-१२ बार शीरे पर ही चलाकर कीटाणु प्रदेश निकालने पर ऐसा समूह (Strain) बन जाता है जो हमेशा डिस्टिलरी चलाने के काम में लाया जा सकता है।

ऊपर कहे गये नियमानुसार ईस्ट का कलचर बनाकर पहले २५ घ० से० साफ़ और कीटाणु रहित कर शीरे के हल्के घोल में छोड़ दिया जाता हैं। इस पतले शीरे के घोल में इतना पानी मिलाया जाता है कि कुल शक्कर की मात्रा ६-८% तक हो जाय और उसमें एमोनियम सलफेट छोड़ कर नाइट्रोजन भी पहूँचा दी जाती है जिससे ईस्ट की वृद्धि सरलता से होने लगती हैं। जब शीरा २४ घंटे बाद सड़ने लगता है और उसमें कार्बोनिक एसिड गैस जोर से निकलने लगती है तो उसको २०० घ० से० पतले शीरे में मिला दिया जाता है। इसी प्रकार २०० घ० से० का १००० और १ लिटर से ६ लिटर लाइन उठा लिया जाता है। यह क्रिया प्रयोगशाला में की जाती है और सूक्ष्मदर्शक यंत्र से इस बात का ध्यान रखा जाता है कि ईस्ट के लाइन में अन्य किसी प्रकार के कीटाणु न आने पावें अथवा आगे चल कर शराब बनने में प्रति मात्रा कम हो जाती है। देशी शराब बनाने में तथा देशी तरीकों में शुद्ध कलचर कोई नहीं बनाता और इसी कारण उसमें भिन्न प्रकार के अन्य पदार्थ उत्पन्न हो जाते हैं और शराब बदबूदार तथा कम बनती है। डिस्टिलरी में लाइन उठाने के लिए ईस्ट के कलचर के बर्त्तन

१. कीटाणु—रहित हवा जाने का मार्ग। २. शीरा डालने व भाप प्रवेश करने का मार्ग। ३ दवाव मापक। ४. दर्शक शीशा। ५. सफाई का द्वार। ६. सेफ्टी वाल्व। ७. सक्रिय ईस्ट का कलचर डालने का द्वार। ८. ताप मापक। ९. धोवन का द्वार। १०. कार्बन डाई आक्साइड के बाहर आने का द्वार।

उपयोग में लाये जाते हैं जिनमें २५ गैलन, २५० गैलन, १००० गैलन लाइन आवश्यकतानुसार उठाया जाता है।

इनमें शीरा ७ हिस्से पानी से पतला कर, पका कर कीटाणु रहित कर चलते हुवे लाइन में ठंडा होकर ये हर १८ घंटे बाद डाल दिया जाता है जिससे हर समय बड़े रूप में कलचर या लाइन तैय्यार करने के लिए छनी हुई हवा प्रवेश की जाती है। यह लाइन फिर मुख्य फरमेंटिङ्ग बर्त्तनों में, जो कि बहुत बड़े-बड़े हौदे होते हैं, डाल दिया जाता है।

एक हिस्सा सक्रिय लाइन पर पतला किया हुआ शीरा जिसमें ६ से लगाकर १२ प्रतिशत तक कुल शक्कर रहती है, १४ हिस्सा भर दिया जाता है यानी १००० गैलन लाइन पर १४००० गैलन पतला शीरा मिलाते हैं उसमें थोड़ा अमोनियम सलफेट भी छोड़ना पड़ता है जिससे शीरा दो एक दिन में हौदे (vat) में सड़ कर सब शक्कर को शराब के रूप में परिणित कर देता है। इस क्रिया में ४८ से लगाकर ७२ घंटे तक लगते हैं और शराब बनने के साथ बहुत सी कार्बन डाई आक्साइड भी निकलती है जो बेकार हो जाती है, कहीं कहीं उससे शुष्क बर्फ (solid corbon di oxide) भी बना लेते हैं। जब लाइन चलना अर्थात् फर्मेण्टेशन होना बन्द हो जाता है तो माल टपकाव (डिस्टिलेशन) के लिए भेज दिया जाता है।

## (२) रेक्टीफ़ाइड स्पिरिट बनाना—

दी हुई तस्वीर में ऊपर कही गयी रीति का पूरी तरह ज्ञान हो सकता है। जब शीरा सड़कर तैयार हो जाता है और उसमें से कार्बन डाई आक्साइड निकलना बन्द हो जाता है तब उस माल को सड़ा हुआ धोवन (fermented wash) कहते हैं। इसमें ६ से ८ प्रतिशत शराब तैयार हो जाती है। इसको पम्प द्वारा बियर फीड तालाब (beer feed tank) में भेज दिया जाता है जहाँ से यह गर्म होकर विश्लेषक स्तम्भ (analyser column) में बीचों-बीच धीरे धीरे छोड़ा जाता है। इसके सबसे निचले भाग में भाप दी जाती है। स्तम्भ के अन्दर बहुत से कटोरे डगों पर जड़े रहते हैं जिनके ऊपर एक तरल पदार्थ की तह रहती है। जब भाप ऊपर उठती है तो हर एक डग पर उसको तथा शराब के वाष्प (vapours) को बबूला बन कर गुजरना पड़ता है। इस क्रिया से एलकोहल ऊपर की ओर और पानी नीचे की ओर पृथक् होने लगता है और जब तक धोवन नीचे पहुँचता है, उसके भीतर से सब एलकोहल निकल कर ऊपर उड़ जाती है।

धोवन नीचे पहुँच कर बह जाता है और उसमें बाकी बचे हुये शीरे का कूड़ा करकट सब निकल जाता है। इसे बचा हुआ धोवन (Spent wash) कहते हैं और यह जानवरों को खिलाने के काम आता है। विश्लेषक स्तम्भ से कुछ एलकोहल द्रवीकारक से (जो ऊपर लगा रहता है) निकाल लिया जाता है। जो मैला होता है और इसको एकत्रित कर पिरिडीन, कुचसीन आदि मिलाकर स्टोव में जलाने वाली स्पिरिट अर्थात् मिथाइलेटेड स्पिरिट तैयार कर ली जाती है जो पालिश बनाने के काम में भी लाई जाती है। इन चीजों को मिला देने से शराब जहरीली अथवा विषैली हो जाती है और पीने के काम में नहीं लाई जा सकती। इस शराब में एलकोहल के अतिरिक्त एल्डीहाइड और ईथर मिले रहते हैं।

इस स्तम्भ के बीच से अधिकतर शराब को वाष्प के रूप में उड़ा कर दूसरे स्तम्भ में जिसको सान्द्रक स्तम्भ (rectifying column) कहते हैं पहुँचाया जाता है जिसमें ऊपर कहे गये क्रिया के अनुसार रेक्टीफाइड़ स्पिरिट बनती है। इसमें शराब की भाप ऊपर की ओर उठती है और ऊपर तक पहुँचते-पहुँचते रेक्टीफाइड स्पिरिट हो जाती है जो ९५% एलकोहल और ५% पानी का एक मिश्रण होता है। इसे अब और स्रावन करने से न तो स्पिरिट की ताकत ही बढ़ाई जा सकती है और न उसमें से पानी ही निकाला जा सकता है। ऐसे मिश्रण को एक तापक्रम पर उबलने वाला मिश्रण (alcohol azeotropic mixture) कहते हैं। यह स्पिरिट की भाप पूर्वउष्मक (preheater) और द्रवीकारक में ले जाई जाती है। पूर्वउष्मक में लम्बी-लम्बी ट्यूबें होती हैं जो एक सिलिंडर

की भाँति बर्तन में जड़ी रहती हैं। उन ट्यूबों के भीतर से घोवन निकलता रहता है और बाहर रेक्टीफाइड स्पिरिट की भाप द्रवित होती रहती है। घोवन इसी के अन्दर से होकर गर्म हो विश्लेषक स्तम्भ में छोड़ा जाता है जिससे वह गरम हो जाता है और कोयले के खर्चे में व गर्मी बचाने में काफी मदद मिलती है। जो एलकोहल पूर्वउष्मक में द्रवित होती है वह तथा जो बच जाती है वह पानी द्वारा द्रवीकारक में ठंडी कर सब की सब फिर सान्द्रक स्तम्भ में वापस कर दी जाती है। यह ऊपर से गिराई जाती है जिससे स्तम्भ की डेकों पर माल हमेशा पहुँचता रहता है और भाप बुलबुले बना कर क्रिया जारी रखती है इस तरल पदार्थ को Reflux Liquid कहते हैं और बिना इसके एलकोहल सान्द्रित नहीं हो सकती है। ऊपर से दूसरी या तीसरी डेक(Deck) में, ऊपर से रेक्टीफ़ाइड स्पिरिट एक शीतक (Cooler)में ठंडी हो कर निकलती रहती है। यहाँ पर इसको नाप कर स्टोर मे ले लेते हैं। यह शुद्ध रेक्टीफ़ाइड़ स्पिरिट रहती है जिसको पीने के काम में लाया जाता है और इससे प्रकार प्रकार की दवाइयाँ, टिंक्चर तथा पीने की शराबें जैसे जिन्, रम, विस्की इत्यादि तैयार की जाती हैं तथा इसी रेक्टीफाइड स्पिरिट को यदि और अनार्द्र कर लिया जाय अर्थात जो ५ प्रति-शत पानी उसमें रह गया है, वह निकाल लिया जाय तो प्रतिशत एलकोहल या पावर एलकोहल तैयार हो जाती है।

इस प्रकार से सड़े हुये शीरे से रेक्टीफाइड स्पिरिट बनाने की रीति को सतत स्रवण कहते हैं और यह बड़ी भारी-भारी कोठरियों (Stills) में क्रिया जाता है।

## (३) पावर एलकोहल बनाना—

अनार्द्रीकरण ( Dehydration )—ऊपर जैसा कहा गया है, रेक्टीफाइड स्पिरिट चाहे कितनी ही स्रवित क्यों न की जाय उसका पानी अलग न हो सकेगा पर यदि उसमें कोई ऐसी वस्तु मिला दी जाय जो उस पानी के साथ कोई रासायनिक यौगिक (Chemical compound) बना ले तो वह पानी निकाला जा सकता है। इस प्रकार से पानी निकालने के २ तरीके हैं जो व्यवसाय में प्रचलित हैं—(अ) लवण द्वारा अनार्द्रीकरण ( Salt dehydration process )—जिसमे ग्लिसरीन या पोटासियम या सोडियम एसीटेट आदि मिला कर पानी सोख लिया जाता है और एब्सोल्यूट एलकोहल टपकाव की रीति से बाहर निकाल लेते हैं। यह रीति कुछ थोड़ी महँगी पड़ती है और भारतवर्ष में अधिक प्रचलित नहीं है।

(ब) बेंज़ीन के साथ निश्चित तापक्रम पर स्रवण द्वारा (Benzene azeotropic distillation)—रासायनिक प्रमाणों से यह पता लगा है कि यदि बेंज़ीन या टालुईन आदि रे० स्पिरिट में डाल दिये जायं और फिर स्रवित किया जाय तो एक निश्चित तापक्रम पर उबलने वाला मिश्रण बन जाता है जिसका क्वथनाङ्क रे० स्पिरिट के क्वथनांङ्क से और भी कम होने के कारण जल्द ही उबलने लगता है। इसका मिश्रण का क्वथनाङ्क ६४° ८५° से० होता है। इसकी वाष्प में १८.५ % एलकोहल, ७.४ % पानी और ७४.८% बेंज़ीन होती है। जब यह भाप ठंडी हो कर नीचे गिरती है तो इसकी २ सतहें बन जाती हैं। ऊपर की सतह में १४.५% एलकोहल १% पानी और ८४.५% बेंज़ीन होती है तथा नीचे वाली सतह मे ५३% एलकोहल ३६% पानी व ११% बेंज़ीन होती है। इससे पानी अधिकतर नीचे की सतह में निकल जाता है। ऊपर की सतह में मुख्यतः बेंज़ीन होती है और इस बेंज़ीन को निकालने के बाद पानी निकालने के लिए फिर रे० स्पिरिट में मिला दी जाती है। इस प्रकार बराबर रे० स्पिरिट से पानी निकलता रहता है और एब्सोल्यूट एलकोहल तैयार होता रहता है।

अनार्द्रक स्तम्भ (Dehydration column) में एलकोहल और बेंजीन ऊपर से दसवें डेक पर छोड़ा जाता है और नीचे से बन्द भाप की गर्मी लगाई जाती है। उस स्तम्भ से ऊपर से त्रि-मिश्रण की भाप ६५° से० पर उड़ कर द्रवीकारकमें ठंडी होती है। ए० एलकोहल जो ७८-३° पर उबलता है वह नीचे की ओर आता जाता है और अनार्द्रिक स्तम्भ के पेंदे से ठंडा कर पावर एलकोहल के रूप में परिवर्तित हो

इकट्ठा कर लिया जाता है जिसे २०% के अनुपात में पेट्रोल में मिलाकर मोटर का ईंधन तैयार कर लिया जाता है। जो त्रि- मिश्रण द्रवीकारक में ठंडा होता है वह एक टैंक में जिसे बेंजीन निथारक(Benzene decanter) कहते हैं में इकट्ठा होता है और उसके अन्दर दो तहें बन जाती हैं। ऊपर की तह तो अनाद्रक स्तम्भ फिर (Dehydration Column) में चली जाती है तथा नीचे की तह एक छोटे कालम में भेज दी जाती है। इसमें ११ प्रतिशत बेंजीन अपने साथ उसी अनुपात में एलकोहल और पानी का मिमिश्रण बनाकर ऊपर निकलती है जो द्रवीकारक में चली जाती है। चौथे स्तम्भ (Benzene recovery column) के नीचे से बाकी बचा पानी और एलकोहल निकलता है जो एक अन्य स्तम्भ ( Alcohol recovery column ) में भेज दिया जाता है। यह एक छोटा Rectifying column होता है जिसमें नीचे से तो पानी निकल जाता है और ऊपर फिर रे० स्पिरिट बन जाती है जो पहले कालम में भेज दी जाती है। इस प्रकार रे० स्पिरिट का पानी बराबर अलग होता रहता है और एब्सोल्यूट एलकोहल बनती रहती है। ए० एलकोहल बनाने का यह तरीका सस्ता होता है और इसमें १००० गैलन पावर एलकोहल तैय्यार होने में एक अथवा दो गैलन बेंजीन तो हवा में उड़ जाती है, बाकी सब कालमों के अन्दर घूमती रहती है तथा इस क्रिया में Steam (भाप) का भी खर्चा ऊपर कहे गये Salt process से कहीं कम होता है। पावर एलकोहल बहुत जल्दी हवा से पानी सोख लेता है और फिर उसमें वह गुण नहीं रह जाते—अतः उसको अच्छी प्रकार से कार्क लगाकर air tight कर के रखना चाहिये।

पेट्रोल के मुकाबिले में पावर एलकोहल जितनी ही सस्ती बनाई जा सके उतना ही लाभकर होगा। इसीलिए दूसरी रीति भारत में सभी डिस्टिलरियों में अपनाया गया है। इस क्रिया में एलकोहल १० आने या ११ आने फी गैलन पर तैय्यार हो जाती है और पेट्रोल के साथ मिलाने का आयोजन हमारी सरकार पूरी तौर से हमारे देश में प्रचलित करने की व्यवस्था करा चुकी है। पहले पहल यह व्यवस्था बिहार और संयुक्त प्रान्त में ही प्रचलित हुई पर अब इस व्यवसाय को समस्त भारत में प्रचलित करने का आयोजन हो रहा है। आशा की जाती है कि शीघ्र से शीघ्र अपने देश का अधिक से अधिक शीरा पावर एलकोहल बनाने के उपयोग में लाया जा सकेगा और अपने देश का काफी धन अन्य देशों में जाने से रोका जा सकेगा। यह व्यवस्था १५-२० वर्षों से अन्य देशों में प्रचलित थी और कितना ही समय निकल गया पर अपनी विदेशी सरकार इसको उत्साहित न कर सकी। अपनी सरकार ने जो इस विषय को प्रोत्साहन दिया उसके लिए वह सराहनीय है। अपने देश के व्यापार को भी यदि प्रोत्साहन मिले तो कितनी ही समस्यायें इस प्रकार से अपने देश में प्रचलित हो सकती हैं। कहा जाता है कि इन व्यवसायों के लिए मशीनो और Columns विदेश से ही मंगाने पड़ेंगे पर जब से अपनी सरकार का हाथ इधर उठा, वे Column और मशीनरी इधर ३-४ साल अपने ही देश में तैय्यार की गई हैं और हर्ष का विषय है कि वे पूर्ण सफलता से अपने देश में काम कर रही हैं।

अब अगले लेख में कीटाणुओं के अन्य उपयोग बतलाये जायेंगे।

# पेड़ का विकाश तथा पेड़ का काटना

ले०—श्री त्रिवेणीराय शर्मा (साहित्यरत्न)

*कटिबन्धीय पेड़ों का सूक्ष्म परिचय* :—पृथ्वी के सम्पूर्ण धरातल को जलवायु तथा वनस्पति-उत्पत्ति के अनुसार पाँच भागों में विभाजित किया गया है। उष्ण-कटिबन्ध, उ० शीतोष्ण कटिबन्ध, द० शीतोष्ण कटिबन्ध, उ० शीत कटिबन्ध, और द० शीत कटिबन्ध। इन कटिबन्धों के विषय में मुझे अधिक नहीं लिखना है। केवल कुछ पेड़ों के विषय में मोटी रेखाओं का ज्ञान कराना है।

पेड़ों की कटिबन्धीय-उत्पत्ति का ज्ञान करने के लिए अति आवश्यक है कि पेड़ के विकास में किन किन वस्तुओं का विशेष हाथ है :—

*ताप*—ताप और वनस्पति का गहरा संबंध है। बनस्पति की भिन्न-भिन्न जातियाँ ताप पर ही निर्भर हैं। सहारा में अधिक ताप के कारण एक ऐसी वनस्पति होती है जिसमें केवल जड़ का अपेक्षतया अधिक विकास होता है। उसकी जड़ मोटी, लम्बी, फैलीं, परन्तु पत्तियाँ कम तथा छोटी होती हैं। किन्तु टुन्ड्रा में जहाँ कि बरफ सदैव ढकी रहती है ताप बहुत कम है। वहाँ एक ऐसे जाति की बनस्पति होती है जो भूमि के ऊपर ही आच्छादित हो कर विकसित होती है। उसकी जड़ कम, पत्तियाँ अधिक होती हैं, जड़ें पतली और धरातल के ऊपर ही फैली हुई होती हैं। इसी प्रकार अत्युष्ण कटिबन्ध के चौड़ीपत्ती वाले वृक्षों तथा शीतोष्ण-स्थलों के नुकीली पत्तों वाले पेड़ों की भिन्नता ताप पर ही निर्भर है।

*जल*—के द्वारा पेड़ों को विकासोत्पादक सामग्रियाँ प्राप्त होती हैं। पेड़ को रस पर्य्याप्त मात्रा में मिल जाता है। इस कारण से जहाँ अधिक वर्षा होती है वहाँ पेड़ समुचित रूप से विकसित होकर ऊँचे बढ़ जाते हैं। अफ्रीका की कांगो नदी तथा द० अमरीका की आमेजन नदी की घाटियों में अतिवृष्टि होती है। अस्तु वहाँ वनस्पति की बहुतायत है। वहाँ के घने जंगलों को पार करना अभी आज की इस विज्ञान से जगमगाती सदी के लिए भी रहस्य बना हुआ है। कनाडा के कोलम्बिया प्रान्त में वर्षा की अधिकता के कारण पूर्वीय प्रान्तों से अधिक लम्बे पेड़ होते हैं। वहाँ का 'डगलस' नामक पेड़ संसार में सबसे बड़ा पेड़ है।

*प्रकाश*—यह वनस्पतियों के भोजन का साधन है। पत्तियों का हरा रंग प्रकाश का ही कारण है। उसके द्वारा पेड़ को शक्कर मिलती है। अधिक प्रकाश तथा ताप होने के कारण ही गर्मी में ध्रुवों के निकट तक भी काफी वनस्पतियाँ उग आती हैं।

*पवन*—से बनस्पतियों को एक प्रकार का भोजन मिलता है। पवन का मुख्य प्रभाव वनस्पतियों के जल की मात्रा को कम करना है। वह वृक्ष की पत्तियों के जल को अपने साथ उड़ा ले जाता है। जितनी ही सूखी तथा गरम हवा होगी उतनी ही मात्रा में अधिक जल उड़ाने में वह समर्थ होगी। परन्तु जब पवन गीली और आर्द्र हो तो वह पेड़ों से (जिनकी पत्तियाँ छोटी हों) कम मात्रा में जल प्राप्त करती है। यही कारण है कि अत्युष्ण कटिबन्ध में जहाँ पर वायु और पेड़ों दोनों में जल की मात्रा अधिक रहती है, पेड़ों की पत्तियाँ बहुत चौड़ी होती हैं—फल स्वरूप पेड़ का पानी अधिक मात्रा में पवन उड़ा ले जाती है।

लेकिन शीतोष्ण कटिबन्ध में जहाँ वायु और पेड़ों, दोनों में पानी कम होता है, पेड़ों की पत्तियाँ नुकीली तथा कम चौड़ी होती हैं जिससे पेड़ों का अधिक जल नहीं निकल पाता। परन्तु शीतोष्ण कटिबन्ध में

भी जहाँ पर चिकनी मिट्टी होती है—पेड़ों की पत्तियाँ चौड़ी होती हैं; क्योंकि ऐसी मिट्टी में पानी अधिक मात्रा में वर्तमान रहता हैं। जहाँ कहीं अधिक स्थायी पवन अधिक वेग से चला करती है, ऊँचे पेड़ नहीं उगते। आरकनी द्वीप के पश्चिमीय भागों में पवन के वेग के ही कारण पेड़ नहीं पाए जाते हैं। इन स्थलों पर तो अकेला पेड़ होता भी नहीं क्योंकि वह पवन के जंगली झोंकों को सहने में असमर्थ होता है। हाँ, जंगलों के समूह में वह पवन-प्रहारों को रोकते हुए बढ़ सकते हैं। वायु के द्वारा पेड़ सांस भी लेते हैं।

*मिट्टी*—से ही वनस्पतियों को भोजन मिलता है। मिट्टी के गर्भ में मिले हुए अनेक प्रकार के लवण पदार्थ पानी में घुलकर भोजन का काम देते हैं। किन्तु अधिक मात्रा में लवण होने से-मिट्टी पेड़ों को विष की तरह नुकसान देती है। अधिक लवणों वाली मिट्टी में पैदावार भी कम होती है। कणों की बनावट के अनुसार मिट्टी में जल की मात्रा कम या अधिक होती है। छोटे कण वाली अर्थात् चिकनी मिट्टी में पानी अधिक मात्रा में वर्तमान होता है। इसके विपरीत मोटे कण वाली में जल कम रहता है। यदि मिट्टी मोटी या रेतीली हो तो वहाँ पर के पेड़ों को जल बहुत ही कम मिलता है। और पेड़ों का पूर्णतया विकास नहीं हो पाता। कारण यह है कि जहाँ पर मिट्टी के कण छोटे-छोटे होते हैं वे आपस में अपेक्षतया अधिक सन्निकटता के साथ होते हैं। इसलिए उनसे छनकर वह बरसाती पानी पृथ्वी की सतह में नीचे नहीं जा पाता है। इसके विपरीत मोटे कण वाली मिट्टी में सतह का पानी शीघ्रता से छनता हुआ भूमि के भीतर दूर चला जाता है।

इन्हीं कणों की बनावट के अनुसार मिट्टी में मिली हुई वायु की मात्रा भी निर्भर रहती है। चिकनी मिट्टी में परमाणुओं के पास-पास होने के कारण वायु तो कम पर जल अधिक होता है। मोटी मिट्टी में विपरीत परिणाम होता है। पेड़ के पूर्ण विकास के लिए मध्यस्थ प्रकार की मिट्टी ही उपयुक्त होती है। मोटी मिट्टी में हवा अन्दर सरलता से घुस जाती है। यदि तापक्रम अधिक गरम हुआ तो यह हवा पृथ्वी के अन्दर घुस कर उसकी नमी को धीरे-धीरे दूर करती है। इस तरह जल की मात्रा न्यून हो जाती है। साथ ही साथ सूर्य्य-किरणों का ताप भी इस प्रकार की मिट्टी में प्रवेश कर जाया करता है। वास्तव में मोटे कण वाली मिट्टी किसी भी वनस्पति के लिए अनुपयुक्त है। वनस्पतियों के सीधे खड़े रहने का सहारा भी मिट्टी पर निर्भर होता है। बारीक मिट्टी में पेड़ों की जड़ें जमीन के भीतर घुसकर खूब अच्छी तरह मिट्टी को पकड़े रहती हैं। इस प्रकार का पेड़ हवा के तेज से तेज झोंको को सहने में समर्थ होता है। इन प्रकार की मिट्टियों के अनुसार ही पेड़ों की जड़ में भी विभिन्नता पाई जाती है। छोटे कण वाली मिट्टी में पेड़ को अपनी पोषक सामग्री ऊपर ही आसानी से मिल जाया करती है। इसलिए उसकी जड़ें अधिक दूर न जाकर अपेक्षतया बहुधा चारों दिशाओं की ओर जाल-सी फैलती जाती हैं। इस तरह की जड़ें पेड़ को आँधी से गिरने में बचाती हैं। परन्तु इसके विपरीत रेतीली जमीन में पेड़ की जड़ को पानी की खोज अधिक नीचे की ओर दूर तक जाना पड़ता है। ऐसी जड़ें बहुधा एक तने के रूप अर्थात् कम प्रशाखाओं के साथ लम्बी दूर तक चली जाती हैं। ऐसे पेड़ आसानी से हवा के द्वारा गिर जाते हैं।

वैसे तो संसार की समस्त वनस्पति जाति तीन विभागों में बाँटी जा सकती है: प्रथम वन-खंड, द्वितीय घास के मैदान तथा तृतीय मरु-भूमि। मुझे केवल प्रथम खंड के विषय में ही यहाँ पर कुछ सूक्ष्म ज्ञान कराना है। क्योंकि अन्य दो खंडों से काष्ठ-कला का कोई संबंध नहीं है। केवल प्रथम खंड के द्वारा ही काष्ठ फरनीचर के लिए निकाला जा सकता है।

अ—उष्ण कटिबन्धीय वनस्पति खंड—इसके अंतर्गत ही भूमध्य रेखीय वन-प्रान्त पाए जाते हैं।

में पेड़ दिन-प्रतिदिन बढ़ता है। यह उसका विकास काल है। यदि उर्वरा मिट्टी के साथ-साथ पेड़ को अपनी आवश्यकतानुसार भोजन, पौष्टिक द्रव-पदार्थ आदि मिल जाते हैं, तो वह अति उत्तम, कान्तिमान काष्ठ उत्पन्न करने में समर्थ होता है। यदि जमीन पथरीली कंकड़ीली हुई तो पेड़ के पूर्ण विकास में बाधा पहुँचती है। पेड़ को भोजन कम मिलता है। जो कुछ मिलता भी वह एक विशेष खराबी काष्ठ में पैदा करता है। वह कि पेड़ के 'रस' ( Sap ) के साथ-साथ पृथ्वी के पथरीले परमाणु भी वृक्ष के शरीर में चले जाते हैं। और जब ये परिमाणु काष्ठ में शेष रहकर सूख जाते हैं तो काष्ट को भी पथरीली बना देते हैं। जिससे रंदाई करने में औजार शीघ्र ही बेकार हो जाते हैं।

द्वितीय अवस्था में पेड़ अपनी परिपक्व दशा को प्राप्त कर लेता है। इसके अल्प-काल पश्चात् ही पेड़ काटना उपयुक्त है। इस समय यदि ध्यान से देखा जाय तो पेड़ों की हरियाली उनकी प्रसन्नता प्रकट करती है। उनमें एक कान्ति झलकती है। पर पश्चात् जरा काल में पैर रखते ही उसके शरीर में एक उदासी दिखाई पड़ती है। वह मनोहर हरापन कुछ लालिमा लिए हुए पीत-वर्ण में परिवर्त्तित होता जाता है। उसके पुष्प छोटे होने लगते हैं। उसकी प्रशाखायें और अंकुर पहले की तरह उत्साह लेकर नहीं निकलते हैं। उसकी टहनियाँ छोटी होती हैं। अधिक बुढ़ापा आने पर पेड़ कमजोर हो जाता है। उसका गाभा भी हृदय-काष्ठ (heart-wood) से विलग हो जाता है। पेड़ धीरे-धीरे खोखला हो जाता है। इस समय उस पर पवन के जंगली झोकों का असर सरलता से पेड़ जाता है। अधिक कमजोर वृक्ष तो आँधियों में धराशायी हो जाते हैं। पर कुछ तो इस आक्रमण को सहने में समर्थ होते हैं। परन्तु हवा के दबाव से पेड़ में प्रकम्पन आ जाते हैं। जिससे कि उसके अंतरवर्त्ती काष्ठ में फटान आ जाती है। पेड़ की इस बुराई को (heart shake) 'हृदय कंम्प' कहते हैं।

पेड़ काटने की ठीक आयु—इस विषय में अधिक मतभेद है। फिर भी प्रत्येक पेड़ की उसकी जाति के अनुसार तथा उसकी विशेषता को देखते हुए अनुमानानुसार आयु नियुक्त कर दी गई है। यह आयु पेड़ों के अपने व्यक्तित्व, उसकी भूमि तथा जल-वायु आदि पर निर्भर रहती है।

पेड़ काटने से पहले—उसकी सारी डालियाँ तथा टहनियाँ पहले ही काटलेना चाहिए। यदि ऐसा बिना किए ही पेड़ काटा जाय तो बड़ा ही हानिप्रद है। क्योंकि जब पेड़ पृथ्वी पर गिरेगा तो पेड़ की डालियाँ जमीन पर गिरते ही टूट जाया करती हैं। जहाँ से भी वह टूटती हैं वहाँ लकड़ी के रेशों को खराब कर देती हैं। पृथ्वी के ऊपर जोर से धक्का लगने के कारण रेशों की प्राकृतिक दिशा छिन्न-भिन्न होकर विभिन्न दिशाओं की ओर मुड़ जाया करती है। रेशे आपस में उलझ जाते हैं। लकड़ी को फरनीचर बनाने के अभिप्राय से रँदते समय ये घुमावदार टूटे रेशे बड़ी ही अड़चन डालते हैं। यदि लकड़ी किसी ओर से भी रँदी जाया तो वह उखड़तीरहती है। इस तरह ऐसे स्थलों पर काष्ठ के सतह को पूर्णतया चिकना बनाना मुश्किल हो जाता है।

इसके अतिरिक्त डालियाँ जहाँ पर टूटती हैं धक्का लगने के कारण पेड़ के मुख्य तने भी फट जाया करते हैं। इस तरह अधिक काष्ठ व्यर्थ हो जाया करता है। और यदि संयोगवश कहीं पेड़ का गाभा खाली हुआ अर्थात् पेड़ खोखला है तो उस समय तो यह क्रिया बड़ी ही लाभ-प्रद सिद्ध होती है। तना का तना ही फट जाता है।

इसके अतिरिक्त इस क्रिया, जिसको 'नंगा पेड़' Naked tree) कहते हैं, से एक विशेष लाभ यह भी है। कभी ऐसा हो सकता है कि हम किसी विशेष बात से बाध्य होकर किसी पेड़ को काटने के पश्चात यह चाहते हों कि वह किसी एक विशेष दिशा की ही ओर गिरे। यथा—एक पेड़ के पश्चिम

दिशा की ओर एक मिट्टी का मकान है। पेड़ मकान की ही ओर स्वभावतया झुका हुआ है। पेड़ के उत्तर तरफ तालाब है और पूरब की तरफ रास्ता है। यदि पेड़ को हम बिना कुछ किए ही काट डालें तो वह अवश्य मकान पर गिरेगा। और वह घर भी चकनाचूर कर देगा। रास्ता अथवा तालाब में गिरने से भी हानि ही होगी। इस समय हम चाहेंगे कि पेड़को दक्षिण दिशा की ओर गिराया जाय जहाँ खुला मैदान है। इस अभीष्ट फल को प्राप्त करने के लिए पेड़ के तनों में मोटे-मोटे रस्से बाँध लिए जाया करते हैं। पेड़ के झुकाव के विरुद्ध दिशा की ओर इन रस्सों का तनाव रक्खा जाता है। पेड़ पश्चात अभीष्ट दिशा की ओर गिरा लिया जाया करता है। यदि इस क्रिया के करने के पहले ही पेड़ को नग्न ( Naked ) न कर क्रिया जाय तो पेड़ का दबाव अधिक होगा। और उसको अभीष्ट दिशा की ओर खींचने में अधिक बल की आवश्यकता होगी। इसलिए पेड़ को नंगा कर ही लेना उचित है।

पेड़ के तने के पश्चात् ऊपर विभिन्न दिशाओं को बहुधा मोटी-मोटी डालियाँ जाती हैं। इसलिए इन डालियों के जड़ में ( तने के ठीक ऊपर ) एक चारों ओर से अन्दर को छिछला गंद्‌डा बन जाता है। इस जगह में बरसाती पानी बड़ी ही सरलता से एकत्रित हो जाता है। उसका बाहर गिर जाना भी असम्भव है। यदि उस पानी को शीघ्रतया निकाल न दिया जाय तो वहाँ पर वह काष्ठ को सड़ाना प्रारम्भ कर देता है। पश्चात् उस जगह ऐसे कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं जो कि पेड़ के तने को सडाकर खोखला कर देते हैं। इससे बचने का उपाय यही है कि उस गड्ढा को भर दिया जाय तथा उसकी सतह ऐसी कर दी जाय कि पानी वहाँ ठहर न सके। कंकड़-पत्थर के रोड़ों को चूने के साथ वहाँ भर देते हैं। फिर ऊपर से सीमेन्ट के द्वारा धरातल बीच में ऊँचा तथा बाहर की ओर शुण्डाकार करते हैं। इस तरह काष्ठ सड़ने से बच जाता है।

यदि हवा के द्वारा किसी पेड़ की डाली टूट जाती है तो उसके टूटने के स्थान पर शेष पेड़ में कुछ खाली जगह छूट जाया करती है। इस जगह में भी यदि बरसाती पानी भरता जाये तो वह पेड़ को सड़ाने का बायस होता है। इस बुराई से पेड़ को सुरक्षित रखने के लिए वही प्रथम विधि काम में लायी जानी चाहिए। वास्तव में जहाँ पानी पृथ्वी के गर्भ में पहुँचकर विभिन्न लवण-पदार्थों के साथ घुल-मिलकर पेड़ के लिए एक पौष्टिक पदार्थ बन जाता है—यदि वही ऊपर से बरसाती पानी के रूप में काष्ठ में विद्यमान रह जाय तो नष्ट कारी सिद्ध होता है।

आधुनिक विज्ञान युग में एक ऐसे यंत्र का निर्माण हुआ है जिसके द्वारा हम यह ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं कि पेड़ की ठीक आयु क्या है। अस्तु इस तरह हम पेड़ के उचित अवसर पर काटने में सफल हो सकते हैं। इस यन्त्र के द्वारा जो कि खड़े पेड़ के तने में एक सूक्ष्म छेद करती है, पेड़ के वार्षिक चक्रों की संख्या ज्ञात की जाती है। इस यंत्र में इन वार्षिक-चक्रों के निशान स्पष्टतया लग जाते हैं। उन्हें गिनकर पेड़ की ठीक आयु जानी जा सकती है। यदि पेड़ पूर्णरूपेण जवान न हुआ हो तो भी इस यंत्र के द्वारा किया गया छेद कोई हानिप्रद भविष्य में पेड़ के विकास-कार्य्य में नहीं होता। क्योंकि यह छेद बहुत ही पहला होता है।

पेड़ काटने के पश्चात् ही फरनीचर के प्रयोग में नहीं लाया जा सकता है। इस परिस्थिति में पेड़ के काष्ठ के अन्दर 'रस' (Sap) वर्तमान रहता है। यदि इस सेप का बिना निष्कासन किए ही काष्ठ के फरनीचर बनाए जायँ तो वे व्यर्थ तथा कम टिकाऊ होंगे। कारण कि इस सेप के सूखने के साथ काष्ठ भी भविष्य में सूखेगा। फलतः फरनीचर में कटान आदि बरी खराबियाँ आ जायेंगी। दूसरी बात यह है कि यदि पेड़ काटने के पश्चात् कुछ दिनों तक यों ही लापरवाही के साथ जमीन पर छोड़ दिया जाय तो काष्ठ खराब हो जायगा। इस सेप में कुछ ऐसे तत्त्व होते हैं कि इन पर 'कुकुरमुत्ता' उत्पन्न हो

जाया करते हैं जो कि निकट भविष्य में ही पूर्ण काष्ठ को सड़ाकर व्यर्थ बना देते हैं।

'रस'—पेड़ों में ज्यों-ज्यों नई पत्तियों तथा कोंपलों का विकास होता है क्रमशः पेड़ का रस भी न्यून मात्रा को पहुँचने लगता है। क्योंकि रस की सारी शक्ति नये विकास में व्यय होती जाती है। इस समय छिलके नीचे हृदय-काष्ठ में नई परत बननी आरम्भ हो जाती है। और फिर जून के मध्य से और अगस्त के मध्य तक प्रकृति में एक विश्राम-काल दिखाई पड़ता है। पौधा-वर्ग का विकास नहीं होता है। रस समय पेड़ का छाल ( bark ) आन्तरिक काष्ठ से सन्निकट होकर चिपक रहता है। उसको अलग करना कठिन होता है। परन्तु अगस्त के पश्चात् यह रस अपनी मात्रा में वृद्धि पाने लगता है। उसका संचार दिनप्रतिदिन अधिक होना आरम्भ हो जाता है। इस समय हम चाहें तो छाल को सरलता से अलग कर सकते हैं।

पेड़ में यह रस दो प्रकार का पाया जाता है। पहला 'साधारण रस' ( Common Sap ) तथा दूसरा 'मुख्य-रस' ( Proper Sap )। पहला रस पेड़ के छाल के द्वारा उत्पन्न होकर काष्ठ का विकास करता है। हृदय-काष्ठ के ऊपर नया परत बनाता है। दूसरा रस पेड़ का भोजन है जो कि पृथ्वी के गर्भ से पेड़ों की जड़ों के द्वारा प्राप्त कर ऊपर चढ़ाया जाता है। साधारण रस—यह रस लगभग पानी-सा तरल पदार्थ होता है। साधारणतया इसका स्वाद मीठापन लिए हुए होता है। इसमें शक्कर की मात्रा अधिक वर्तमान रहती है। यह सरल पदार्थ लसदार गोंद के डल्प होता है। सदैव खट्टापन लिए हुए तेजाब ( acid ) विद्यमान रहती है। कभी कभी तो केवल एक यही पाई जाती हैं; परन्तु कभी कभी इसके साथ चूना तथा पोटाश ( क्षार-विशेष ) भी मिश्रित रहता है।

यदि इस रस को यों ही एक स्थान पर छोड़ दिया जाय तो इसमें अपने आप एक जोश ( खमीर ) उठती है। और पश्चात् रस अधिक खट्टा होता जाता है। यदि इसमें अनुपाता नुसार शर्करा विद्यमान हुई तो यह रस का उबाल ( Fermentation ) शनैःशनैः मद्यवत् बन जाता है।

मुख्य-रस—यह रस प्रथम पृथ्वी के अन्दर से ऊपर चलता हुआ पेड़ के शिखर तक पहुँच जाता है। इसकी परिभाषा भिन्न-भिन्न अवस्था में भिन्न-भिन्न होती है। इसकी बनावट पेड़की स्थिति, मिट्टी, जलवायु आदि बातों पर निर्भर रहती हैं। यही कारण है कि प्रत्येक पेड़ के मुख्य रस में असमानता है। परन्तु फिर भी कुछ साधारण गुण एक से इस रस पाया जाता है। यह साधारणतया कम तरल अथवा 'साधारण रस' से अपेक्षतया अधिक गाढ़ा रहता है। इसमें बनस्पति के विकास के लिए भोज्य-पदार्थ अपेक्षतया अधिक मात्र में होता है। वास्तव में अधिकतर केवल इसी पर पेड़ का विकास निभर करता है। जहाँ भी यह कम में मिला, चाहे पेड़ कितना भी क्यों न पुराना हो, उसका घेरा अथवा काष्ट नहीं बढ़ेगा। इस रस के कारण से ही काष्ठ में लचक उत्पन्न होती है। यह लचक काष्ट-काल में अति लाभप्रद है।

इन दोनों, साधारण रस तथा मुख्य रस के समिश्रण के कारण ही पेड़ के काष्ठ में एक गोंद से चिपचिपा पदार्थ रहता है जिसको 'राल' कहते हैं। किन्हीं पेड़ों में यह अधिक मात्रा में पाया जाता है। जिससे पेड़ों से तेल भी निकाला जाता है। तारपीन का तेल एक उसी किस्म की वस्तु है। इन दोनों वस्तुओं के द्वारा पालिश करने में फर्नीचर की उपयोगिता बढ़ जाती है। यही कारण है कि पालिश में इस राल का समिश्रण अति अवश्यक है। वास्तव में यह चूँकि पेड़ से निकाली गई होती है। अस्तु पेड़ में ( काष्ट में ) दुबारा लगायी जाने पर अपना प्रभाव आसानी से जमा लेती है।

# पार्थिव विज्ञान

## २—भूतल परिवर्तन—पुरानी चट्टानों के तोड़ने तथा पसीने और नवीन चट्टानें बनाने वाली शक्तियाँ

ले० नत्थनलाल गुप्त, जगाधरी, हरिद्वार।

प्रत्यक्ष में ऐसा प्रतीत होता है, कि पृथ्वी तल, जैसा कि वह हमें अब दृष्टि आता है, सदा से वैसा ही चला आया है और अन्त तक ऐसा ही चला जायेगा; क्योंकि, यह प्रायः ठोस और कठोर चट्टानों से बना हुआ है; इस कारण उसमें किसी असाधारण परिवर्तन का होना सम्भव प्रतीत नहीं होता किन्तु, ऐसा सोचना ठीक नहीं है। पृथ्वी की सतह सदा से ऐसी ही नहीं थी, जैसी कि वह अब दृष्टि आती है और न वह आइन्दा ऐसी ही रहेगी। क्योंकि पृथ्वी पर कितनी ही प्राकृतिक शक्तियाँ सदा से काम कर रही हैं, जो कठोर से कठोर चट्टानों को भी तोड़ती फोड़ती और पीस कर चूर्ण बनाती रहती हैं और उसी चूर्ण से फिर नवीन चट्टानों की रचना करती रहती हैं इससे पृथ्वीतल की रूप-रेखा हर समय बदलती रहती है। जल स्थल में बदल जाता है और स्थल के स्थान पर समुद्र लहरें मारने लगता है; समतल भूमियों में पहाड़ियाँ और टीले पैदा हो जाते हैं और किसी किसी स्थान पर पृथ्वी ऐसी नीचे को धसक जाती है, कि वहाँ झील बन जाती हैं। समुद्र तट पर ऊँची ऊँची चट्टानों से बड़े-बड़े टुकड़े टूट-टूट कर समुद्र में गिरते रहते हैं और इस प्रकार से कुछ समय में समुद्र स्थल के बड़े-बड़े भागों को खा जाता है; इसके विपरीत समुद्र के बीच में बड़े-बड़े टापू पैदा हो जाते हैं; इस प्रकार के परिवर्तन, हर समय, हमारी आँखों के सामने होते रहते हैं। किन्तु यह परिवर्तन ऐसे धीरे-धीरे होते हैं कि हम उन्हें बहुत कम ध्यान में लाते हैं। हाँ, एक दीर्घकाल के पश्चात् हमें मालूम हो जाता है, कि जिन बातों को हम अत्यन्त तुच्छ समझते हैं उन्हीं के कारण दुनियाँ की रूप रेखा बहुत कुछ बदल गई है।

भू-तल परिवर्तन के बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं। बंगाल का वह भाग, जहाँ आज कल कलकत्ता बसा हुआ है, कभी समुद्र के नीचे डूबा हुआ था; इसके विपरीत इङ्गलिस्तान का बहुत सा किनारा समुद्र में डूब गया है। अफ्रीका का मरुस्थल-सहारा तथा सहारा गोबी भी कभी समुद्र से नीचे डूबा हुआ था। भू-मध्य सागर से उत्तरीय हिम सागर तक भी एक समुद्र लहरें मारता था जो एशिया को योरुप से अलग कर देता था; किन्तु, अब, उसकी यादगार में, केवल मारमोरा सागर, कृष्ण सागर, कश्यप सागर (Caspian Sea) तथा एराल सागर ही शेष रह गये हैं। शेष भाग सब सूख गया है। इसके विपरीत एशिया दक्षिण में बहुत दूर तक फैला हुआ था, किन्तु, वह समस्त भूमि समुद्र में डूब गई है और केवल जहाँ तहाँ कुछ टापू शेष रह गये हैं। इस प्रकार के परिवर्तन प्रत्येक महाद्वीप में हुए हैं और अब भी हो रहे हैं।

पृथ्वी की ऊपरी रूप-रेखा को बदलने वाले बहुत से कारण हैं। वह सब के सब दो श्रेणियों में विभक्त हो सकते हैं :—

१—बाह्य परिवर्तक शक्तियाँ।

२—आन्तरिक परिवर्तक शक्तियाँ।

१—भूतल परिवर्तन बाह्य शक्तियाँ—

जब हवा वेग से चलती है तो उसके साथ बहुत सा रेत मिट्टी उड़ जाता है। और जब वह रेत से भरी हुई हवा कठोर चट्टानों के ऊपर गुजरती है, तो उनको इस प्रकार से छीलती है जिस तरह रेती लकड़ी को छीलती है, और इस प्रकार चट्टानों के ऊपर की तह को रेत बना देती है। कभी-कभी हवा इतनी

तेज चलती है, कि उसके धक्के से चट्टानों के बड़े-बड़े टुकड़े टूट कर घाटियों के बीच में गिर जाते हैं और चूर-चूर हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त, हवा कभी बहुत गर्म होती है और कभी बहुत ठंडी, गर्मी से चट्टानें फैलती और सर्दी से सुकड़ती हैं। इस प्रकार बार-बार फैलने और सिकुड़ने से उनके जोड़ बन्द ढीले पड़ जाते हैं और फिर वह वायु के एक ही धक्के से टूट कर चूर-चूर हो जाती है।

इस प्रकार से हवा कठोर से कठोर चट्टानों को हर समय तोड़ती फोड़ती और घिसती रहती है। किन्तु, इसके अतिरिक्त उसका एक और भी काम है। वह यह, कि चट्टानों के घिसने से जो बारीक रेता बनता है हवा उसे अपने साथ उड़ा ले जाती है और कहीं का कहीं पहुँचा देती है। इससे बड़ी हानि यह होती है, कि मरुभूमि के आस-पास जो उपजाऊ भूमियाँ होती हैं, वह धीरे-धीरे रेत के नीचे दब जाती है। मध्य एशिया में प्रायः ऐसे जोर की आँधियां चलती हैं, और उनके साथ इतना रेत उड़ कर आता है, कि उससे दो पहर के समय भी अँधेरा हो जाता है। वह रेत जब पृथ्वी पर गिरता है, तो उसकी एक खासी मोटी तह जम जाती है; तेनवा, वेबिलोन और कई अन्य पुरातन नगर इसी प्रकार रेत के नीचे दब गये हैं। इस प्रकार वायु मरुभूमि के विस्तार को बढ़ाती रहती है।

जब हवा समुद्र से स्थल की तरफ चलती है, तो उससे वह बारीक रेत, जो समुद्रतट पर फैला हुआ होता है, देश के भीतर फैल जाता है और उपजाऊ भूमि के बड़े बड़े भागों को ढक लेता है। कभी-कभी उससे ऊँचे-ऊँचे टीले बन जाते हैं, जिनकी ऊँचाई ६० फुट से १०० फुट तक होती है। बर्तानिया में इस प्रकार के टीले बहुत पाये जाते हैं। वहां पिछली चन्द शताब्दियों में हजारों एकड़ जमीन समुद्री रेत के नीचे ढक गई है। इसी प्रकार बिसके खाड़ी के तट पर भी हर साल रेत के टीले साठ सत्तर फुट देश के भीतर घुस जाते हैं और उनसे बहुत से खेत, जंगल और ग्राम दब जाते हैं।

रेतीले देशों में हवा, प्रायः, रेत को इकट्ठा करके ऊँचे-ऊचे ढेर लगा देती हैं। उनका लम्बा ढलान तो हवा के रुख होता है और खड़ा ढलान दूसरी तरफ, यह ढेर स्थान परिवर्तन करते रहते हैं। इसी कारण मरुभूमियों में बटोही प्रायः मार्ग भूल जाया करते हैं। राजपूताना और सिंध प्रान्त में ऐसे बहुत से ढेर देखने में आते है।

२—पानी—(क) वर्षा के पानी का कार्य—पानी में दो प्रकार की शक्तियां हैं, (१) बहा ले जाने वाली शक्ति—प्रवाहकशक्ति, (२) पदार्थों में रासायनिक परिवर्तन करने की शक्ति। जब मेह बरसता है तो चट्टानों के टूटे फूटे टुकड़ों तथा रेत मिट्टी को अपनी प्रवाहक—शक्ति द्वारा बहा ले जाता है, और कहीं का कहीं पहुँचा देता है। विशेष करके ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों पर जब वर्षा बड़े जोर से पड़ती है, तो पानी, बड़ी-बड़ी धारें बनकर, ऊपर से नीचे को गिरता है, और तमाम छोटे बड़े पत्थरों को, जो उसके मार्ग में आ जाते है, धकेल कर नीचे गिरा देता हैं। बड़े-बड़े पत्थर तो नीचे, पहाड़ के दामन में, पड़े रह जाते हैं, किन्तु छोटी-छोटी कन्तलों तथा बरीक रेते को पानी अपने साथ बहा ले जाता है और अन्त में किसी नदी में जा डालता है।

प्रायः देखा होगा, कि वर्षा की बूँदें जब रेत पर पड़ती हैं, तो रेत में उनकी चोट से गोल-गोल निशान बन जाते हैं। इस प्रकार की चोटों से, किसी किसी स्थान पर बड़े बड़े परिणाम निकलते हैं। जब किसी उच्च भूमि की मिट्टी बहुत पथरीली होती है, तो वहां मिट्टी के ऊँचे-ऊँचे मीनार से बन जाते हैं, जिनकी चोटियों पर एक-एक बड़ा पत्थरर खा होता है (देखो चित्र सं० १)। वह मीनार इस प्रकार बनते हैं, कि वर्षा के बूँदों की लगातार चोटों से मिट्टी के कण उखड़-उखड़ कर बहते रहते हैं। जहाँ कहीं कोई बड़ा पत्थर होता है, वहाँ उस पत्थर के नीचे की मिट्टी इन चोटों से बची रहती हैं, अतः, आस-पास की मिट्टी तो बह जाती है और पत्थरों के नीचे मिट्टी के मीनार से खड़े रह जाते और यह बताते हैं, कि वर्षा की बूँदों ने कहाँ से कितनी मिट्टी उखाड़ कर बहा दी है।

साबित और मजबूत चट्टानों पर वर्षा का पानी अपनी रासायनिक शक्ति से काम लेता है। तुम जानते

चित्र १—मिट्टी के मीनार

हो, कि हवा में ऑक्सिजन (Oxygen) और कारबोनिक एसिड गैस (Carbonic acid gas) मिली हुई होती हैं। जब वर्षा का पानी हवा में से गुजरता है तो उसमें वह दोनों गैसें मिल जाती हैं। कारबोनिक-एसिड गैस के कारण, पानी में बहुत सी चट्टानों को घुला लेने की योग्यता आ जाती है। इसलिए वर्षा का पानी जहाँ से बहता है, या जिस स्थान पर खड़ा हो जाता है, वहाँ से चट्टानों का कुछ न कुछ भाग अपने साथ घुला-मिला लेता है। चूने के पत्थर तथा कुछ अन्य चट्टानें तो उसमें सारी की सारी ही घुल मिल जाती हैं, किन्तु, कुछ चट्टानों का केवल वह भाग घुलता है, जो उनके कणों को चिपकाये रखता है, अतः जब वह पानी में घुल कर बह जाता है, तो चट्टानों का चूरा-चूरा हो जाता है और वह धड़ाम से पृथ्वी पर गिर कर रेत का ढेर हो जाती है। दूसरी गैस ऑक्सिजन का यह गुण है कि वह चीजों को जलाती है और इस प्रकार उन्हें राख बना देती है। मतलब यह है, कि वर्षा का जल कठोर से कठोर चट्टानों को भी तोड़-फोड़ कर रेत बनाता रहता है।

(ख) स्रोतों का कार्यः—जब वर्षा का पानी पृथ्वी के भीतर घुस जाता है, तो वहाँ भी वह चट्टानों को इसी प्रकार घुलाता रहता है; और जब वह स्रोतों (Springs) के रूप में बाहर निकलता है तो वह पानी में घुला हुआ पदार्थ भी बाहर आ जाता है। इस प्रकार जमीन के भीतर बड़े-बड़े गड्ढे पैदा हो जाते हैं। इङ्गलिस्तान में इस प्रकार के गड्ढे उन जमीनों में बहुत पाये जाते हैं, जो चूने के पत्थरों से बनी हुई हैं।

(ग) पाले का कार्यः—जब ओस पड़ते ही जम जाती है तो उसे पाला कहते हैं। पानी में यह विशेषता है, कि वह जमते समय फैलता है। वर्षा का पानी प्रायः चट्टानों के अन्दर घुस जाता है। जब इन चट्टानों पर पाला पड़ता है और सर्दी पाकर वह भीतर का पानी भी जमने लगता है, तो वह फैलता है, और चूंकि अब उसे पहले की अपेक्षा अधिक स्थान की आवश्यकता होती है, इसलिये वह इन चट्टानों को फाड़ डालता है। इस प्रकार की लगातार क्रिया से बड़ी-बड़ी कठोर चट्टाने कण-कण हो जाती हैं।

(घ) नदी का कार्यः—बड़ी-बड़ी नदियाँ भी पृथ्वी पर बड़े-बड़े परिवर्तन लाती हैं। उनका कार्य दो भागों में विभक्त हो सकता हैः—(१) भूमि का काटना और घिसना छीलना, (२) नई भूमि बनाना।

नदी के तीन भागः—प्रत्येक नदी के तीन भाग होते हैंः—प्रथम पहाड़ी व ऊपर का भाग—इसमें नदी पहाड़ों की घाटियों में से हेर फेर खाती हुई गुजरती है, उसका पाट बहुत कम होता है और गति अत्यन्त तीव्र होती है तथा स्थान-स्थान पर पानी झाल बनकर गिरता है। इस भाग में नदी चट्टानों को काटने और घिसने का काम बड़ी तेजी से करती है। दूसरा मैदानी व बीच का भाग—इसमें नदी समभूमि (मैदानों) पर से गुजरती है। अब उसका बहाव पहले की अपेक्षा कम रह जाता है और पाट बहुत चौड़ा हो जाता है। इस भाग में नदी दोनों काम करती है अर्थात् पृथ्वी को काटती भी है और बनाती भी है। तीसरा नीचे वाला भाग—अब नदी प्रायः अत्यन्त सम और नीची भूमि पर से बहती है। यहाँ उसका पाट और भी फैल जाता है और चाल बहुत धीमी पड़ जाती है, इसलिये इस भाग में, नदी केवल नई जमीन बनाने का कार्य करती है (चित्र सं० २)।
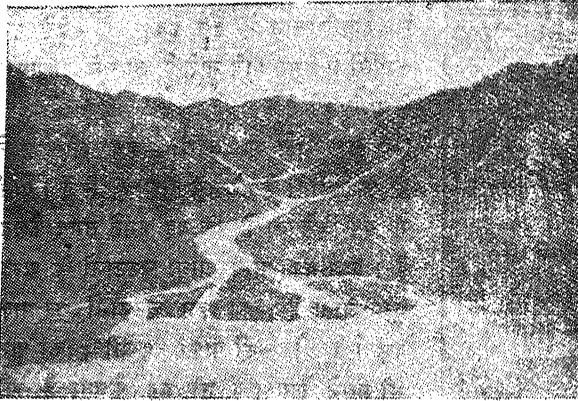
चित्र २—नदी के तीन भाग

नदी का जमीन को काटने तथा छीलने का कार्यः—पहाड़ी भाग में नदी की गति अति तीव्र होती है और उसमें इतना जोर होता है कि जो चीज़ सामने आ जाती है उसे तोड़-फोड़ डालती है और बड़े-बड़े पत्थरों को अपने साथ नीचे बहा लाती है। पत्थर आपस में भी बार-बार टकराते हैं और अन्य चट्टानों से टक्कर खाके उन्हें भी तोड़-फोड़ डालते हैं। अन्त में, जब नदी पहाड़ी भाग को समाप्त करके मैदान में उतर आती है, तो ढलान के कम रह जाने के कारण, उसका वेग भी कम हो जाता है और जोर भी घट जाता है। इसलिये भारी-भारी पत्थर पहाड़ के दामन के निकट ही रह जाते हैं। यह पानी के जोर से परस्पर टकराते हैं। रगड़-रगड़ कर घिसते रहते हैं। इस तरह उनकी तमाम नोकें टूट और घिस जाती है। और पत्थरों की आकृति गोल-मोल साफ-चिकनी हो जाती है इन पत्थरों के टूटने और घिसने से जो रेत पैदा होती है, वह और छोटे-छोटे पत्थर

चित्र ३—पानी से घिस हुए गोल-गोल पत्थर

पानी के साथ बहकर आगे पहुँचते हैं। कुछ दूर जाकर पत्थरों के छोटे-छोटे टुकड़े भी ठहर जाते हैं और वह भी बराबर आपस में घिसकर रेत बनते रहते हैं। रेत पानी में मिलकर साथ-साथ बहता है। इस रेत की सहायता से नदी अपनी तह और किनारों को कुरेदती हुई चलती है, और अपने मार्ग को सर्वदा खोदती रहती है। नदी का बहाव किनारों के निकट बहुत कम और बीच में अधिक होता है। इसी कारण नदी का मार्ग बीच में से अधिक खुर्चा जाता है और किनारों पर से कम (देखो चित्र संख्या ४)।

अपना मार्ग काटने की शक्ति कुछ नदियों में अधिक होती है, और कुछ में कम। जिन नदियों के पानी में दरदरे पदार्थ (रेतादि) अधिक होते हैं और वेग तीव्र होता है, वह
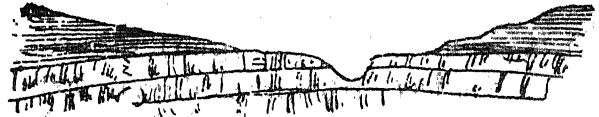
चित्र ४—नदी का मार्ग बीचमें से अधिक खुर्चा जाता है

अपना मार्ग अधिक तेजी से काटती है। दूसरे—जो नदियां नर्म जमीन पर से गुजरती हैं, वह अपना मार्ग अधिक काटती है और जो कठोर चट्टानों पर से गुजरती है, वह कम।

कुछ नदियों ने अपने मार्ग में बड़ी गहरी घाटियाँ काट ली है। वह घाटियाँ भिन्न-भिन्न आकृति की हैं; कुछ निहायत गहरी और तंग होती हैं, और कुछ चौड़ी और कम गहरी होती हैं। सबसे अधिक अद्भुत और शानदार घाटी कोलोरेडो (Colorado) नदी की है जो उसने उच्चभूमि में से काटी है और ग्राण्ड केनन (Grand Canon) अर्थात् महान घाटी कहलाती है। उसकी लम्बाई ३०० मील से अधिक है, चौड़ाई १५० गज से तक और गहराई ३००० फीट से ६००० फीट तक है, इस घाटी के दोनों तरफ और भी बहुत सी गहरी घाटियां हैं, जो उसके सहायकों ने काटी है, जब किसी नदी का पानी किसी ऊँची चट्टान पर से चादर बनकर गिरता है, तो उस चट्टान के किनारे को पानी हर समय रगड़ता और घिसता रहता है। इस प्रकार से वह चट्टान हर समय थोड़ी-थोड़ी कटती रहती है और काल पीछे को हटती रहती है। इस का सब अच्छा उदाहरण सेंट लारेन्स नदी है, जो हजारों

वर्षों से अपने मार्ग को पीछे की तरफ काट रही है। इस प्रकार से उसने उच्च-भूमि में से एक गहरी खाई बना ली है, जो नियागरा झाल से क्वीन्स टाउन (Queen's Town) तक सात मील लम्बी है! इस गड्ढे की चौड़ाई २०० फुट से ४०० फुट तक है, और उसके दोनों तरफ दीवारें लम्ब रूप से खड़ी हुई हैं। विद्वानों का विचार है, कि नदी ने खाई को नौ या दस सहस्र वर्षों में काट के तय्यार किया है।

### नदी का नई रचना करने का कार्य

अब तक हमने नदी का काटने छीलने तथा नष्ट करने का कार्य्य वर्णन किया है, अब हम उसका रचना का कार्य वर्णन करते हैं। जैसे ही नदी अपने पर्वतीय मार्ग को समाप्त करके मैदान में उतरती है, उसका निर्माण कार्य आरम्भ हो जो हो जाता है। भारी भारी पत्थरों को वह पहाड़ के नीचे इकट्ठा कर देती है; छोटी-छोटी बटियाँएँ कुछ दूर जाकर रह जाती हैं; रेत और मिट्टी के बारीक कण अधिक दूर तक बहते चले जाते हैं; किन्तु, आखिरकार, जब नदी की गति बहुत मंद पड़ जाती है, तो वह भी नीचे बैठ जाते हैं। इस प्रकार से कुछ नदियों का मार्ग कुछ समय में अपने आस-पास की भूमि से ऊँचा हो जाता है और नदी उस जगह को छोड़कर दूसरी जगह बहने लगती है। चीन का प्रसिद्ध दरिया ह्वाङ्गह इस प्रकार से अपना मार्ग कई बार *बदल चुका है।

समभूमि (मैदान) में नदी, भूमि के ढलान के अनुसार, प्रायः सर्प के समान घूमती फिरती चलती है। इस सूरत में नदी का पानी नतोदर तट के भीतरी सिरे से टकराता और रगड़ खाता हुआ चलता है, इसलिये वह तट धीरे-धीरे कटता जाता है; किन्तु उन्नतोदर तट के पास पानी का बहाव धीमा पड़ जाता है इसलिये वहाँ बहुत सी निथरन इकट्ठी हो जाने से नवीन भूमि बन जाती है। इस प्रकार जो भूमि दरिया खाजाता है, उसे बुर्द और जो जमीन दरिया बनाता है उसे *बरामद कहते हैं।

अब नदी चढ़ाव पर आती है तो उसका पानी अपने किनारों से बाहर निकल कर दूर-दूर तक फैल जाता है। चूंकि इस प्रकार फैले हुए पानी का बहाव धीमा हो जाता है, इसलिये उसमें मिली हुई तमाम रेत मिट्टी नीचे बैठ जाती है; और जब पानी उतर जाता है, तो नई मिटी मैदान में बिछी रह जाती है[1]। इस प्रकार नदी अपने आप पास की भूमि को हमेशा ऊँची करती रहती है और साथ ही अपने मार्ग को खोदती भी रहती है। परिणाम यह होता है कि कुछ समय में आस-पास की भूमि नदी की सतह से इतनी ऊँची हो जाती है, कि फिर चढ़ाव के समय भी नदी का पानी उस तक नहीं पहुँच सकता। अब नदी उससे नीचे वाली जमीन पर हर साल मिट्टी की तह जमाती है और साथ ही अपने स्थान को भी खोद-खोद कर
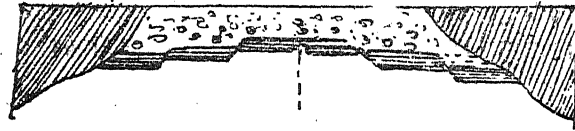
चित्र ५—नदी आसपास की भूमि को ऊँचा कर देती है

गहरा करती रहती है। कुछ काल के पश्चात्, वह भूमि भी ऊँची होकर पानी की पहुँच से बाहर हो जाती है। कुछ नदियाँ अपने पथ के दोनों तरफ ऊँचे ऊँचे चबूतरे से बनाती रहती है, जो सीढ़ियों के समान एक दूसरे से ऊँचे होते चले जाते है। (देखो चित्र सं० ५)।

जब कोई नदी किसी झील में से गुजरती है, तो झील में उसकी गति अति मन्द पड़ जाती है। इसलिये,

---

*समाचार पत्रों से विदित हुआ है, कि अब हाल ही में पंजाब में रावी नदी ने भी अपना मार्ग बदल लिया है जिससे बहुत सी भूमि जो पहले भारत की सीमा में थी अब पाकिस्तान में चली गई है।

*बुर्द और बरामद दोनों फारसी भाषा के शब्द है मुझे इनके लिये हिन्दी भाषा के शब्द नहीं मिले। यदि कोई महानुभाव हिन्दी भाषा के शब्द बनाने की कृपा करेंगे तो अनुग्रहीत हूँगा।

[1]इस प्रकार की भूमि को, जिसपर हर साल चढ़ाव आता है, खादर भूमि कहते हैं।

जितना रेत मिट्टी उसके पानी से मिला होता है, वह सब का सब झील की तली-तली में बैठ जाता है; और जब नदी झील के किसी दूसरे किनारे से बह निकलती है, तो उसका पानी बिलकुल स्वच्छ होता है। इस प्रकार से नदी झील को सर्वदा आँटती रहती हैं और कुछ समय के पश्चात् सूखी जमीन बना देती है। रोन (Rhone) नदी झील जनेवा को इसी प्रकार भर रही है।
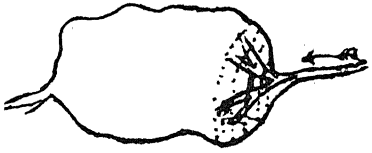
चित्र ६—नदी झील को भरती रहती है

यद्यपि नदी स्थान-स्थान पर रेत मिट्टी को छोड़ती चली जाती है, तो भी बहुत सी रेत मिट्टी समुद्र में ले जाती है और इस प्रकार अपने मुहाने के निकट समुद्र में, नवीन भूमि का निर्माण करती रहती है। गंगा के सम्बन्ध में अनुमान किया गया है, कि जितनी रेत मिट्टी वह समुद्र में फेंकती रहती है, उससे १५०० जहाज प्रति दिन भरे जा सकते हैं। इसी मिट्टी से बंगाल का बहुत सा भाग बना है। इस प्रकार जो जमीन बनती है वह डेल्टा[1] (Delta) कहलाती है। इसकी आकृति त्रिकोण होती है जिस की नोक नदी की ओर और आकार रेखा समुद्र की ओर होती है। नदी उसके ऊपर अनेक शाखाओं में विभक्त हो जाती है। (देखो चित्र ७) गंगा, ब्रह्मपुत्र, नील मिससिपी, राइन, रोन और पो के डेल्टे बहुत प्रसिद्ध हैं।
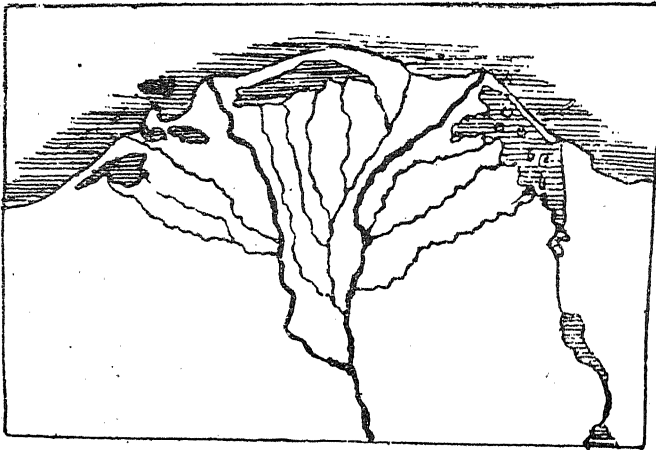
चित्र ७—नील नदी का डेल्टा

प्रत्येक दरिया, चाहे वह कितना ही रेत अपने साथ बहा कर लाता हो, डेल्टा नहीं बनाता। क्योंकि, यदि नदी के मुहाने के निकट समुद्र बहुत गहरा हो, या नदी का बहाव तेज हो अथवा ज्वार भाटे के लहर प्रवेश करती हो, तो डेल्टा नहीं बनेगा। जैसे नदी टेम्ज़ डेल्टा नहीं बनाती, यद्यपि वह बहुत सा रेत बहा कर लाता है। कारण यह है कि जितनी निथरन तली में बैठती है, ज्वार भाटा का पानी उसे समुद्र में दूर बहा ले जाता है। इस निथरन के इकट्ठा होते रहने से कभी-कभी मुहाने से कुछ परे, समुद्र में रेत का एक चबूतरा सा बन जाता है जो बार* ( Bar ) कहलाता है। इसके कारण नदी में जहाजों का प्रवेश करना कठिन हो जाता है।

( ङ ) हिम नदी का कार्य:—ऊँचे ऊँचे पर्वतों पर शर्द ऋतु में खूब बर्फ पड़ती है। बहुत से पहाड़ों पर तो वह बर्फ गर्मियों में पिघल जाती है; किन्तु, जो पहाड़ बहुत ऊँचे होते हैं, वहां गर्मियों में भी हवा इतनी ठंडी होती है, कि वह बर्फ को गला नहीं सकती और हर साल उसी पर और नई बर्फ पड़ जाती है। इस प्रकार बर्फ

[1]डेल्टा का अर्थ त्रिकोण है इसलिये हिन्दी भाषा में इसे त्रिकोण भूमि कह सकते हैं परन्तु त्रिकोण भूमि और भी हो सकती हैं इसलिये यदि डेल्टा को नदभूमि अर्थात् नदी द्वारा निर्माण की हुई भूमि कहें तो अच्छा होगा।

*'बार' को हिन्दी भाषा में 'बाड़' कह सकते हैं जो उससे मिलता-जुलता शब्द है।

का ढेर साल-साल बढ़ता ही रहता है, यहां तक कि पहाड के ऊपर सब जगह बर्फ के बड़े-बड़े ऊँचे टीले बन जाते हैं। जब बर्फ बहुत अधिक हो जाती है, तो भू-आकर्षण के कारण नीचे की तरफ फिसलने लगती है, और समस्त ढलानों की बर्फ आपस में मिलकर एक बहुत बड़ा अटूट प्रवाह सा बन जाता है। इस प्रकार की बर्फीली नदियाँ ग्लेशियर ( Glaciar ) या हिम नदी कहलाती है।

हिम नदी का प्रवाह मीलों लम्बा और कभी-कभी कई सौ फीट गहरा होता है। दुनिया में सब से बड़ी हिम नदी कराकरम पर्वत में ग्रेट बालटोरो नामी है, जिसकी लम्बाई ३६ मील है। हिम नदी की गति अतिमन्द होती है। स्वेटजरलैण्ड ( Switzerland ) में जो सब से बड़ी हिम नदी है उसकी दैनिक गति केवल ५ इंच से ३६ इंच तक पाई गई है। जब हिम नदी फिसलती हुई इतनी नीचे उतर आती है। जहाँ हवा हिम को गलाने के लिये काफी गर्म होती है, तो हिम पिघल-पिघल कर बहने लगती है।

जब हिम नदी पहाड़ की घाटी से धीरे धीरे घिसटती हुई चलती है, तो उसमें इतना बल होता है, कि मज़बूत से मजबूत चट्टान भी उसके सामने नहीं ठहर सकती, अतः जो चीज़ उसके सामने आती है, उसे तोड़ फोड़ डालती हैं। घाटी में जो बड़े-बड़े पत्थर, रोड़े और संगरेजे पड़े हुए होते हैं, उनके ऊपर से जब हिम फिसलती है, तो उनको खूब रगड़ती और पीसती हुई चलती है और अन्त में उनको बारीक रेत बना डालती है। यही रेत और संगरैज घाटी की तह को खुरचने और चट्टानों को घिसने में भी सहायता देते हैं। इस प्रकार नीचे की चट्टाने घिस घिस कर साफ, सपाट और चिकनी हो जाती हैं, और कभी-कभी नुकीले पत्थरों से उनके ऊपर लकीरें वा नालियाँ सी भी खुर्ची जाती हैं, जिनका मुँह हिम नदी के फिसलाव की दिशा में होता है।

हिम नदी के ऊपर घाटी के दोनों तरफ से पत्थर आदि टूट-टूट कर गिरते रहते हैं। यह पत्थर थोड़ी देर तक तो ऊपर दृष्टि आते रहते हैं, किन्तु उसके पीछे अपने दबाओ की गर्मी से बर्फ को पिछला कर उसके भीतर घुस जाते हैं। हिम नदी की हिम ऊँची नीची चट्टानों पर से गुजरते समय फट जाती है और बहुत से पत्थर उसकी दरारों में घुस जाते हैं और धीरे-धीरे उसकी तह तक पहुँच जाते हैं और फिर वह नीचे की चट्टानों को खूब खोदते हैं। इसी प्रकार पार्श्वों में भी हिम नदी खुरचती हुई चला करती है। हिम नदी के खोदने से पहाड़ों की घाटियाँ गहरी होती चली जाती है।
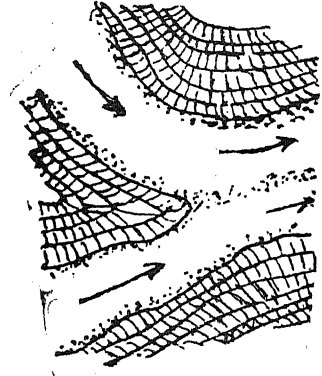
चित्र ८—मध्य की मुडेर किस प्रकार बनती है

हिम नदी के ऊपर पत्थर मिट्टी और इतनी अला बला गिरती रहती है, कि उसका ऊपरी तल लगभग बिल्कुल ढक जाता है; और उसके किनारों पर तो पत्थरों के ढेरों की लगातार मुडेरें बन जाती हैं, जो मॉरैन (Moraines) कहलाती हैं। जब दो हिम नदियाँ आपस में मिल जाती है, तो दोनों के किनारों की दो मुडेरें परस्पर मिलकर बीच में एक बड़ी मुडेर बन जाती है और रीढ़ की हड्डी के समान प्रतीत होती है (चित्र सं० ८)। इसे मध्य की मुडेर ( Central Moraine ) कहते हैं; किसी किसी बड़े हिमनद में ऐसी बहुत सी मध्य की मुडेरें पाई जाती हैं जिन से मालूम हो जाता है कि वह कितनी छोटी हिम नदियों से मिल कर बना है।

इससे समझ में आ गया होगा, कि हिम-नदियाँ केवल खुदाई का काम ही नहीं करतीं, वरन ढुलाई का काम भी करती हैं, क्यों कि, वह लाखों मन मलवा अपनी पीठ पर लाद कर ऊँचे ऊँचे पहाड़ों पर से नीचे घाटी में ला डालती हैं। वहाँ आकर बर्फ तो गलकर

बह जाती हैं, और मलवे के ढेर के ढेर जमीन पर छोड़ जाती है। कभी-कभी इतने बड़े बड़े पत्थर घाटियों में पाये जाते हैं, जिन्हें देख कर बुद्धि चकरा जाती है, कि इन्हें कौन यहाँ लाया होगा! वास्तव वह हिम नदी की पीठ पर सवार होकर ही वहाँ पहुँचे हैं।

ध्रुवीय प्रान्तों में, जहाँ सर्दी अत्यन्त कठोर होती है, वहाँ मैदान में उतर कर भी हिम नहीं पिघलती, वरन उसी तरह भूमि पर रेंगती हुई समुद्र में पहुँच जाती है और वहाँ पानी की लहरों से टूटकर टुकड़े टुकड़े हो जाती है और बड़े बड़े हिम के टीलों के रूपमें बहती फिरती है। यह टीले हिम-टापू ( Icebergs ) कहलाते हैं। जब
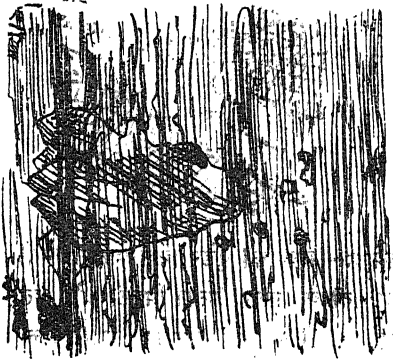
चित्र ६—हिम टापू

वह बहते बहते किसी समुद्री बहाव में पड़कर गर्म समुद्रों में पहुँच जाते हैं तो पिघलकर पानी बन जाते हैं और वह सारा मलवजो इनके साथ चिपका रहता है, समुद्र की तली में बैठ जाता है। इस प्रकार हर साल पत्थर मिट्टी के तली में बैठने से बड़े बड़े टापू बन जाते हैं। न्यूफो-गड लैंड ( Newfoundland ) नाम का टापू इसी प्रकार बना है। स्कॉट लैंड में भी बहुत से ऐसे पत्थर पाये जाते हैं, जो किसी समय जब वह पानी के नीचे था, हिम-टापुओं द्वारा ही नारवे से बहकर आये होंगे।

(च) समुद्र का कार्य :— समुद्र में जब तूफान आता है, तो बड़ी बड़ी लहरें उठने लगती हैं। उन लहरों के बल का क्या ठिकाना है। वह बड़े बड़े जहाज़ों को उलट पलट कर देती हैं, और जो चीज़ उनके मार्ग में आ जाती है उसे विध्वन्स कर डालती हैं। यह लहरें जब किनारों से जाकर टकराती है, तो उनके धक्के से किनारे टूट टूटकर पानी में गिरने लगते हैं। जो किनारें नर्म चट्टानों के बने होते हैं। वह तो शीघ्र ही टूट फूट जाते हैं, किन्तु पथरीले तथा ऊँचे किनारों को तोडने में लहरों को बड़ा काम करना पडता है। वह पहले उनकी जड़ों को खोखला करती है, नीचे से पत्थर मिट्टी आदि को तोड़ फोड़कर बहा देती है और उसके भीतर पानी भर देती हैं। जब दूर तक जड़ खोखली हो जाती है, तो पृथ्वी की आकर्षण शक्ति के कारण चट्टान का बहुत सा टुकड़ा टूटकर पानी में गिर जाता है और लहरों की लगातार टक्करों से उसके टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। अब, जब कोई लहर आती है, तो उन टुकड़ों को किनारे की तरफ धकेल कर ले जाती है, और जब वापस जाती है तो पत्थरों को लुढ़काती हुई वापस ले आती है। इतने ही में दूसरी आती है और उनको फिर किनारे की तरफ़ धकेलती हुई वापिस ले जाती है। इस प्रकार से बड़े बड़े पत्थर आपस में रगड-रगड कर बारीक रेत बन जाते हैं और वह रेत समुद्र की तली में, दूर फैल जाता है। यह कार्य लगातार चालू रहता है और किनारे से बड़ी बड़ी चट्टाने टूट टूटकर गिरती और पिसती रहती हैं। इस प्रकार समुद्र स्थल को हमेशा खाता रहता है और जमीन के बड़े बड़े टुकड़े समुद्र के पेट में समा जाते हैं। नीचे और सम किनारों को समुद्र की लहरों से कम हानि पहुँचती है। कारण यह है कि जब लहरें जोर से भरी हुई आती हैं, तो वह किनारों के ऊपर चढ़ जाती हैं और स्थल पर दूर तक फैल जाती हैं। इससे उनका तमाम बल नष्ट हो जाता है। अतः समुद्र तट दो अवस्थाओं में अधिक ध्वन्स होता है—(१) जब कि ऊँचा हो (२) जब कि नर्म चट्टानों से बना हुआ हो और दो अवस्थाओं में विध्वन्स कार्य कम होता है—(१) जब की किनारा नीचा और सम हो (२) जब कि वह अत्यन्त कठोर चट्टानों से बना हुवा हो। इस ध्वन्स कार्य से समुद्र तट पर खाड़ियाँ व अन्तरीप बन जाते हैं।

# विज्ञान-परिषद् के ३६वें अधिवेशन का संक्षिप्त विवरण

## पं० गोविन्द मालवीय जी द्वारा उद्‌घाटन

"किसी वस्तु का विशेष ज्ञान ही "विज्ञान" है, आज की आवश्यकता है कि वर्तमान वैज्ञानिक अन्वेषणों का उपयोग संसार के कल्याण के लिए हो, विज्ञान में मानवता का मिश्रण हो—ऐसा प्रयास आजकल प्रत्येक देश में हो रहा है, विज्ञान-परिषद जो भारतीय भाषा में विज्ञान के प्रचार तथा प्रसार में अग्रिणी है, इस भारतीय आदर्श को प्रतिपादित करके भव-मंगल में सहायक होगी, यही मेरी आशा है" उपयुक्त महत्वपूर्ण शब्दों से बनारस विश्वविद्यालय के उपकुलपति पं० मालवीय ने विज्ञान-परिषद के ३७ वें अधिवेशन का उद्‌घाटन किया। गत १८ दिसम्बर को काशी की पुण्यस्थली में हिन्दू विश्वविद्यालय के उद्योग-रसायन विभाग में परिषद का ३७वां अधिवेशन-सम्पन्न हुआ, दिवस के प्रथम प्रहर में ही परिषद के उद्‌घाटन के प्रसंग में मंत्री जी डा० हीरालाल दुबे के वार्षिक विवरण के पश्चात् पं० मालवीय ने भाषण देते हुए कहा कि "विज्ञान-परिषद को यह श्रेय है कि देश जो आज १६४६ में करने जा रहा है वह परिषद ने १६१३ में ही यानी ३० वर्ष पूर्व निश्चय कर लिया था। स्पष्ट है कि देश का सब कार्य अपनी भाषा ही में होना चाहिए, विश्वविद्यालयों में शीघ्रातिशीघ्र शिक्षा का माध्यम हिन्दी होना चाहिये, जैसा कि वाईस-चांसलरों की सभा ने निश्चित किया था, कम से कम प्रयाग विश्वविद्यालय तो ५ वर्ष में यह काम कर लेगा, इसकी मुझे पूर्ण आशा है।"

मालवीय जी ने बनारस विश्वविद्यालय में हिन्दी को अपनाने में कठिनाइयाँ बताते हुए कहा कि "काशी विश्वविद्यालय की सार्वभारतीयता के कारण हिन्दी को अपनाना कठिन है।" "हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के अभाव को पूरा करना ही हमारे विज्ञान प्रेमियों का परम कर्त्तव्य है, इस लांछन को मिटाने के लिए हमारी प्राचीन पुस्तकों से बड़ी सहायता प्राप्त हो सकती है क्योंकि भारत में प्राचीन काल में विज्ञान की बड़ी उन्नति थी, प्रमाणार्थ हम यह कह सकते हैं कि आज के आधुनिकतम ज्ञान का भाण्डार हमारी पुस्तकों में उपस्थित है, "ऐटम बाम्ब" व ब्रह्मास्त्र के वर्णन में लेशमात्र ही अन्तर पड़ेगा" इस प्रकार प्राचीन भारत की विद्याओं का वर्णन करते हुए व्याख्यानदाता ने यह बताया कि "हमारा प्राचीन समाज ऐसी विद्या की संहारकारी प्रवृत्तियों को राक्षसी विद्या कहकर रोकने का प्रयत्न करता था, आज भी यह आवश्यक है कि वैज्ञानिक चन्द्र के ऊपर विनाशकारिता रूपी राहु के कलंक को मिटाया जाय, इस कार्य के लिए संसार की एक प्रतिनिधि संस्था बनाई जाय" अन्त में "वाइस चांसलर मालवीय जी ने विज्ञान-परिषद के कार्यकर्त्ताओं को यह आश्वासन दिलाया कि आवश्यकता पड़ने पर काशी में विज्ञान-भवन बनवाने तथा "विज्ञान" के लिए विशेष सुविधायें देने का भार उनका रहेगा। अधिवेशन में उपस्थित विद्वद्-मण्डली ने, जिसमें प्रयाग काशी विश्वविद्यालयों के प्रवक्ता, आचार्य-गण तथा सुदूर के आए हुए अन्य विज्ञान-प्रेमी सम्मिलित थे, मालवीयजी के इस महत्वपूर्ण वक्तव्य तथा विज्ञान की सहायता के आश्वासन का करतल ध्वनि से स्वागत किया, परिषद की ओर से डा० सत्यप्रकाश ने वक्ता को धन्यवाद देते हुए यह बताया कि परिषद के इतिहास में यह पहला अवसर है जब कि अधिवेशन प्रयाग से अन्य किसी स्थान में मनाया जा रहा है, काशी वास्तव में परिषद के अधिवेशन मनाये जाने के लिए विशेष उपयुक्त हैं क्योंकि यहाँ के कई विद्वानों (स्वर्गीय रामदास जी गौड़, प्रिन्सपल फूलदेव सहाय वर्मा, डा० बृजमोहन) का "विज्ञान" की उन्नति में विशेष हाथ रहा है।

इसके पश्चात डा० गोरखप्रसादजी ने अपना भाषण आरम्भ किया, विषय था—"नागरी लिपि में सुधार"। सुझाव रखने के पहले डा० साहब ने भूमिका में यह स्पष्टीकरण किया कि लिपि में सुधार की

आवश्यकता क्यों है।

डा० गोरखप्रसाद् जी का भाषण

"लिपि बहुत काल से प्रचलित है, किन्तु छपाई में रोमन व अंग्रेजी लिपि से कहीं अधिक कठिनाइयाँ पड़ती हैं। विशेष रूप से अ, आ, आदि स्वर व क, ख, ग, आदि व्यञ्जनों में कठिनाई है, इसके सिवा मात्रा में गू, गे, गै, चन्द्र स्वर में गेँ, गें, मात्रा चढ़ाने में गं, गूँ, आदि में भी बड़ी कठिनाई है" इन कठिनाइयों का उचित बोध कराने के लिए वक्ता ने यह बताया कि "कम्पोजिंग" में अक्षर एक के बाद एक रखने का तरीका है, हिन्दी में मात्राएँ दो प्रकार से लगाई जाती हैं—एक तो 'बम्बैया' तरीका है जिसमें एक अक्षर के लिए 'लाइनों' की 'कम्पोजिंग' होती है, स्थान अधिक घिरता है, समय भी अधिक लगता है; दूसरा 'कलकतिया' तरीका है जिनमें कटे हुए 'टाइप' यानी 'कर्न' अक्षर लगाए जाते हैं, इस तरीके में मात्राएँ छूट जाती हैं और समय भी अधिक लग जाता है। इसके सिवा "डिक्शनरी" की 'कम्पोजिंग' अंग्रेजी में १२ 'प्वाइंट' की हो सकती है, हिन्दी में केवल ६ 'प्वाइंट" की ही हो सकती है जिससे दाम, समय व स्थान, सभी चीजों का अपव्यय होता है" स्पष्ट है कि इस रोड़े के कारण हिन्दी के प्रचार-कार्य में विशेष बाधा पड़ती है, एक अक्षर के लिए चार तरह के अक्षर रखने पड़ते हैं, लगभग ६०० खानों (केसों) की आवश्यकता हिन्दी के टाइप में पड़ती है, यह बात ध्यान देने योग्य है कि क, ख, ग, पढ़े आदमी भी हिन्दी की 'कम्पोजिंग' कर लेते हैं इसलिए श्रमिक की दृष्टि से अभी भी हिन्दी की छपाई सस्ती होती है किन्तु शीघ्र ही साक्षर भारतीय जनता के बीच यह अधिक व्ययी सिद्ध होगा।" उपर्युक्त कठिनाइयों को दृष्टिगत रखते हुए निम्न बातें विचारणीय हैं —

(१) छपाई, (२) टेली प्रिन्टर, (३) टाइप राइटर, (४) लिपि की अवैज्ञानिकता, (५) सरलता व शीघ्रता

इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए डा० गोरख प्रसाद ने यह सुझाव दिया कि मात्रायें एक अक्षर हटा कर लगाई जाय यानी "सूक्ष्म" शब्द को "सूक्ष्म" लिखा जाय। यह प्रस्ताव कोई मौलिक प्रस्ताव नहीं है वरन् काशी नागरी प्रचार समिति ने, हरिजी गोखले ने, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने, भी ऐसे ही सुझाव रखे थे जिसमें यही सबसे महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। वक्ता ने इसकी उपयोगिता को स्पष्ट करते हुए बताया "कि इस तरीके को अपना लेने में ६०० के स्थान पर केवल १५० अक्षर ही रखने पड़ेंगे, कटे हुए अक्षर या मात्रा अलग से रखने की अवश्यकता न पड़ेगी, स्थान भी नीचे के बजाय बगल में छुटने से कोई बहुत न लगेगा, प्रयागोत्मक रूप से देखने से पता चलेगा कि बच्चों को ऐसी लिपि पढ़ने में कोई कठिनाई नहीं होती।"

"अंगरेजी में लाइनो तथा मोनो दो प्रकार की विधियाँ 'मशीन' द्वारा "कम्पोजिंग" के लिए उपयोग में लाई जाती हैं। टेलीप्रिन्टर्स में "लाइनो टाइप" का प्रयोग कर के बिजली की सहायता से दूर दूर के देशों में एक साथ समाचार छप जाते हैं। कुल ६० चाभियाँ होती हैं, जिनके दबाने से "मैट्रिसेज" निकल आते हैं, इन ६० चाभियों में हिन्दी के १५० अक्षर लगाने में कठिनाई होगी"। इसलिए मेरा सुझाव यह है कि कोई 'कोड' बना लीजिए, जो कि सम्बन्धी कम्पोजीटर को ही जानने की आवश्कता होगी)" टाइप राइटर के लिए तो मात्रा वगैरह का प्रश्न पीछे हटा कर या नीचे दबा कर हल किया जा सकता है।" अपने भाषण में डा० गोरख प्रसाद ने इस बात पर जोर दिया कि अभी लिपि की अवैज्ञानिकता दूर करने का प्रयास न किया जाय, गान्धीजी ने यह सुझाव रखा था कि इतने प्रकार के अक्षर ही न रखे जाँय जैसे क, ख, के स्थान पर क, क" रख लेने से समस्या हल हो सकती है, किन्तु इन सब सुधारों का रूढ़िवादी जनता विरोध करेगी और प्राचीन साहित्य के पढ़ने में भी कठिनाईयां आने लगेंगी। वक्ता महोदय के मत में सरलता व शीघ्रता के लिए शिरे की रेखा आदि हटा कर प्रश्न का हल निकालना अधिक उचित होगा। डा० साहब के इस शिक्षाप्रद भाषण से अधिवेशन में उपस्थित विज्ञान प्रेमी लाभान्वित हुए और उनकी विधियों को स्पष्टतर कराने के लिए कुछ प्रश्न भी किए गए। एक महत्वपूर्ण बात यह थी कि श्रीनिवास जी ने लिपि को बदलने की एक

ज़ोरदार 'अपील' विद्वद मण्डली से की। इसके अनन्तर विज्ञान-परिषद् के सभापति जस्टिस हरिशचन्द्र जी ने अपना भाषण दिया। भाषण में सभापति ने "विज्ञान-परिषद्" का संक्षिप्त इतिहास बताते हुए इस परिषद् के कार्य में पड़ने वाली बाधाओं को बताया, अर्थ तथा उत्साह के अभाव से यह परिषद अपना इष्ट सिद्ध करने में समर्थ नहीं हो सकी, हमारी पूर्व गुलामी भी इस मार्ग में विशेष बाधक रही है किन्तु स्वतंत्र भारत में यह संस्था जनता तथा राष्ट्रीय सरकार के अधिकाधिक सहयोग से देश की उचित सेवा कर सकेगी, इसमें सन्देह नहीं।

"आज का दिन विज्ञान परिषद के लिए बड़े गौरव का है कि उसको पवित्र काशी के अन्तर्गत इस महान विश्वविद्यालय में अपना वार्षिक अधिवेशन मनाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इस विश्वविद्यालय के जन्म दाता माहामन श्री मदन मोहन मालवीजी का भी सम्बन्ध इस परिषद से था और वह इसके उपसभापति प्रारम्भिक चार वर्ष तक रहे थे। मुझे आशा है कि इस कार्य से उनकी आत्मा को प्रसन्नता प्राप्त होगी और उनके पवित्र आशीर्वाद से इस परिषद को सहायता मिलेगी।

इस परिषद का जन्म सन् १९१३ में हुआ था। वह समय बहुत कठिन था। किन्तु उस समय कुछ ऐसे सज्जन इस कार्य में लग गये थे कि थोड़े ही काल में परिषद ने एक उच्च और प्रतिष्ठित पद प्राप्त कर लिया और तब से यथा सम्भव वह मातृ भाषा में विज्ञान की सेवा करता रहा है। किन्तु खेद है कि जितनी सहायता परिषद को सर्व समाज से मिलनी चाहियेवह भी नहीं मिलती रही और सभ्यों और विज्ञान पवित्रता के ग्राहकों की संख्या कभी संतोष जनक नहीं रही। और जो कुछ काम हुआ भी वह अनेक सज्जनों के प्रेम और उत्साह से ही हुआ।

आज समय बदल गया है और राष्ट्रभाषा हिन्दी हो जाने से इस परिषद को विज्ञान की सेवा करने का बहुमूल्य अवसर प्राप्त हुआ है। किन्तु धन के अभाव से कार्य में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

भाषा में वैज्ञानिक साहित्य की बड़ी कमी है और इसी कारण अनेक विश्वविद्यालय हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाने में संकोच करते हैं। इस बात के कहने की इस सभा में आवश्यकता नहीं है कि अन्य भाषा की अपेक्षा विद्यार्थी को अपनी मतृभाषा द्वारा शिक्षा प्राप्त करने में अत्यन्त सुगमता होती है और मातृ-भाषा शिक्षा का माध्यम न होना ही एक विशेष कारण है कि जिससे हमारे सामान्य ग्रेजुएट में उतनी योग्यता नहीं होती कि जितनी होनी चाहिये और हो सकती है।

मेरा विचार है कि इस परिषद का विशेष कार्य हिन्दी में विज्ञान सम्बन्धी उपयोगी पुस्तकों को तैयार कराना है। इसके लिये विशेष धन की आवश्यकता है अनेक प्रकाशन स्थानों से वैज्ञानिक विषयों पर पुस्तके निकलीं और निकल रही हैं और परिषद को पहले-पहल एक जाँच (सर्वे) करनी होगी कि किस किस विषय पर और किस किस श्रेणी की पुस्तकों की इस समय सब से अधिक आवश्यकता है और उसे यह भी देखना होगा कि कहाँ कहाँ ऐसे सज्जन हैं जो उन पुस्तकों को तैयार कर सकते हैं।

विज्ञान पत्रिका का उद्देश्य समाज में वैज्ञानिक जानकारी और भाव का प्रचार करना है। उसमें भी धनाभाव से कठिनाई हो रही है। हमारी सरकार ने इस वर्ष ३०००) रू० का दान देकर हमारे इस कार्य्य में बड़ी सहायता दी है किन्तु यह हमारे काम के लिये पर्याप्त नहीं हैं।

इन सब कार्य्यों के लिये धन की आवश्यकता है। इस प्रान्त की सरकार परिषद को बराबर सहायता देती रही है किन्तु और अधिक सहायता की आवश्यकता है। मैं आशा करता हूँ कि केन्द्रीय सरकार भी इस परिषद की ओर ध्यानदे गी। क्योंकि परिषद का कार्य एक प्रान्त ही के अन्दर सीमित नहीं है किन्तु सारे देश के लिए उपयोगी है।

मैं विश्वविद्यालयों का ध्यान भी इस परिषद की ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ। बिना वैज्ञानिक विद्वानों और अध्यापकों की सहायता के इस परिषद का कार्य नहीं चल सकता। मैं आशा करता हूँ कि विद्वद्गण इस परिषद की ओर अधिक ध्यान देंगे। जिससे यह

परिषद विज्ञान की और विज्ञान के द्वारा देश की अधिकाधिक सेवा कर सके।

मैं काशी विश्वविद्यालय के कुलपति श्री गोविन्द मालवीयजी को धन्यवाद देता हूँ कि जिनकी कृपा से यह अधिवेशन इस विश्वविद्यालय में हो सका और जिन्होंने बहुत कष्ट उठाकर उसका उद्घाटन किया। उन्होंने अपने भाषण में कितनी बाते कहीं जो विचार के योग्य हैं।

मैं डा० गोरखप्रसादजी को भी अनेक धन्यवाद देता हूँ कि जिन्होंने नागरी में लिपि सुधार पर ऐसा रोचक और विचार पूर्णभाषण दिया। उनके विचार नागरीलिपि के सुधार में अत्यन्त सहायक होंगे।

अन्त में मैं डा० ब्रजमोहनजी व इस विश्वविद्यालय के अन्य अध्यापकों को भी इस अधिवेशन का सारा प्रबन्ध करने का कष्ट उठाने पर परिषद की ओर से और अपनी ओर से भी धन्यवाद देता हूँ।"

भाषण के अनन्तर परिषद की ओर से डा० हीरालाल निगम ने आमन्त्रित सज्जनों को धन्यवाद देते हुये कहा कि विशेष रूप से काशी के विद्वद गण जिन्होंने इस अधिवेशन को सफल बनाने में हाथ बटाया है, परिषद की ओर से धन्यवाद के पात्र हैं"

उपर्युक्त देश हितकारी कार्यक्रम की सम्पन्नता में विज्ञान-प्रेमी इतने तल्लीन थे कि निश्चित समय बीत चला था, मध्यान्ह में कार्यकारिनी सभा की बैठक हुई अपरान्ह के कार्यक्रम की घोषणा सभापति ने किया और सदस्यगण विश्राम भवन की ओर चले गए।

### वैज्ञानिक शब्दावली पर गोष्ठी

निश्चित कार्यक्रम के अनुसार अपरान्ह में "वैज्ञानिक परिभाषिक शब्दावली की समस्या" पर गोष्ठी हुई। विद्वानों ने इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर हर दृष्टि कोण से विचार किया, भिन्न मत और सुझाव रखे गए तर्क के तीखे पन में विद्वानों की खासी चोंच भिड़न्त हुई, सर्व प्रथम प्रो० फूलदेव सहाय जी ने अपने विचार प्रकट किए।

(१) प्रो० फुलदेव सहाय वर्मा—( बनारस विश्वविद्यालय ) "हर्ष का विषय है कि हिन्दी अब ३० करोड़ भारतीयों की भाषा होने जा रही है। ऐसी स्थिति में यह स्पष्ट है कि हिन्दी में पर्याप्त वैज्ञानिक साहित्य होना चाहिए। आज बिरला ही कोई ऐसा भारतीय मिलेगा जो इस बात से न सहमत हो कि हिन्दी के माध्यम द्वारा वैज्ञानिक शिक्षा का प्रचार होना चाहिये। दो प्रकार की शब्दावली विज्ञान के लिये प्रयुक्त होती है—

(अ) कुछ शब्द जिनका नाम से सम्बन्ध है,

(ब) वे शब्द जिनका नाम से सम्बन्ध नहीं है, जिनका अनुवाद तो करना ही है, नामों के संबन्धमें कुछ कठिनाई है, जब हम इस बात को सुलझाने का प्रयत्न करें हमें यह ध्यान रखना होगा नि जनता में अधिक से अधिक प्रचार विज्ञान का हो सके। कुछ लोगों की यह धारणा है कि अंग्रेजी हटाने से हमारा ज्ञान सीमित हो जायगा, हमारा अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क सम्भव न होगा किन्तु मेरे विचार में यह गलत धारणा है। यदि प्रयत्न किया जाय तो गूढ़ से गूढ़ बातें हर एक भाषा की हम अपनी भाषा में ला सकते हैं। आज २०० बर्ष के ब्रिटिश-शासन के पश्चात् भी देश में कितने अंग्रेजी विद्वान मिल सकते हैं? उचित होगा कि एक ऐसी संस्था बनाई जाय जिसका कार्य दूसरी भाषाओं से जानने योग्य बातें अनुवाद करना होगा; जन-साधारण के ज्ञान के लिए तो निर्विवाद रूप से हिन्दी ही सरल व सुविधाजनक होगी।

(२) डा० ब्रजमोहन (बनारस विश्वविद्यालय)

"पारिभाषिक शब्दों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है

(अ) अर्ध पारिभाषिक शब्द, जिसके उदाहरण है Air, layer, drop. rod, stain; इन शब्दों का अनुवाद तो निर्विवाद रूप से करना ही होगा।

(ब) पारिभाषिक शब्द, जिसके उदाहरण हैं, oxygen, platinum, Integral, मेरे विचार में तो इनका अनुवाद भी अत्यन्तावश्यक है, नहीं तो हिन्दी के माध्यम में विज्ञान के सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण हास्यास्पद हो जायगा। एक वाक्य ले लीजिये "The suboxide has been obtained

by heating basic bismuth oxalate in absence of air" यदि इसके पारिभाषिक शब्दों को हम ज्यूँ का त्यूँ रख दें, तो अनुवाद इस प्रकार होगा "वायु के अभाव में वेसिक बिस्मथ आक्जलेट को गर्म करने से सबोक्साइड प्राप्त हुआ"। ऐसे कितने व्यक्ति जो अंग्रेजी न जानते हों, केवल हिन्दी जानते हों, इसको समझ सकेंगे ? मुझे तो इस ढंग के वाक्यों में हिन्दी की दुर्दशा प्रत्यक्ष दिखाई दे रही है—

एक बात और भी ध्यान देने योग्य है—पारिभाषिक शब्द भी दो प्रकार के होते हैं।

(अ) जो शब्द तत्वों के नाम से सम्बद्ध हो, उदाहरणार्थ oxygen से निकले शब्द ले लीजिये—Oxygenate, Oxide, Oxidation कुछ लोगों का मत है कि ये शब्द हिन्दी में ले लिये जाँय, मेरी दृष्टि में यह गलत है, हमें पहले तो यह देखना चाहिए कि हमारे प्राचीन ग्रन्थों में उन शब्दों के लिए कोई "स्व" शब्द मिलते हैं या नहीं ? यदि शब्द मिल जाँय तो उनमें संस्कृत व्याकरण की सहायता से उपसर्गों तथा प्रत्ययों द्वारा हम सम्बन्धी शब्द बना डालें। यदि प्राचीन ग्रन्थों में कोई मूल पर्य्याय नहीं मिलता, तो अंग्रेजी का मूल लेकर ही संस्कृत के उपसर्ग व प्रत्यय लगाकर काम चलाये।

(ब) अन्य शब्द, उदाहरणार्थ Continue से निकले हुए शब्द लीजिये Contnuity, Contin uos, Continuant आदि, इनका अनुवाद करना तो सर्व मान्य है ही।

एक गलत धारणा "अन्तराष्ट्रीय शब्दावली" के बारे में है, अंग्रेजो के शब्दों को अन्तर्राष्ट्रीय शब्द कहा जाता है, यदि आप ध्यानपूर्वक विचार करें तो पता चलेगा कि "अन्तर्राष्ट्रीय" नाम की कोई शब्दावली नहीं है। रूस, जर्मनी फ्रान्स, जापान आदि देशों ने तो अंग्रेजी भाषा के रेलवे, फोटोग्राफ, हास्पिटल आदि जैसे शब्द भी नहीं अपनाये हैं। प्रत्येक उन्नतिशील देश ने अपनी राष्ट्र-भाषा में अलग ही पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण किया है, यह बात दूसरी है कि विशेश ज्ञान के लिए एक जापानी वैज्ञानिक को, अंगरेजी, रूसी, जर्मन आदि भाषाये भी सीखनी पड़तीं हैं।

(स) नाम सम्बधी जिसके उदाहरण हैं Raman effect, Zeeman effect, Crompton effect इन शब्दों को उनके मौलिक रूप में ले लेने सेकोई हाँनि नहीं"।

(३) डा० हीरालाल दुबे (प्रयाग विश्वविद्यालय)

निस्सन्देह पारिभाषिक शब्दों का भण्डार हिन्दी में बढ़ाना ही हमारा परम कर्तव्य है और जन-साधारण में विज्ञान-प्रचार के लिए सरल से सरल हिन्दी के शब्द प्रयुक्त होना चाहिए किन्तु हमारा दृष्टि कोण संकुचित नहीं होना चाहिए।

(४) डा० गोरख प्रसाद (प्रयाग विश्वविद्यालय)

"हिन्दी माध्यम कराने के लिए यह आवश्यक है कि "इन्टर मीजियेट बोर्ड" में प्रस्ताव रक्खे जाँय क्यों कि "बोर्ड" में बैठने वाले छात्रों की संख्या अब बहुत बढ़ चुकी है। आवश्यक है कि a, b, c, के स्थान पर क, ख, ग, प्रयुक्त होना चाहिए क्यों कि एक तो छपाई मेंकठिनाई होगी, दूसरे बच्चों को छोटी कक्षाओं मे अनावश्यक रूप से रोमन लिपि का ज्ञान कराना होगा जिसमें शक्ति क्षय होगी। हर्ष का विषय है कि "बोर्ड" ने यह स्वीकार कर लिया है कि पारिभाषिक शब्द संस्कृत के आधार पर बनाए जाँय, इससे बड़ी सुबिधा रहेगी शब्दों का उनके मूल से सम्बन्ध रहने पर अर्थ अच्छी तरह समझ में आजायगा उदाहरणार्थ यावत से "य"। डा० रघुवीर के बनाए हुए शब्दकोष के ६० प्रति शब्द अपना लेने लायक हैं, रसायन सम्बन्धी पारिभाषिक शब्द ही विवादग्रस्त हैं हिन्दी के लिए समाचार पत्रों मे भी आवाज उठाई जाय, तो कार्य में सफलता अधिक मिलेगी"

(५) डा० सत्य प्रकाश (प्रयाग विश्वविद्यालय)

"कठिनाइयाँ दो प्रकार की हैं—

(अ) सैद्धान्तिक

(ब) व्यावहारिक

वैसे तो परिभाषिक शब्दों की प्रथा शदियों से चली आरही उदाहरणार्थ राशियों के नाम ले लीजिये—

तुला, धनुष, १६ वीं शताब्दी में जब "मैक्समुलर"

ने वेदों का अनुवाद निकाला तो अनुवादक का नाम "मोक्ष मुलरलिखा, इस से स्पष्ट है कि केवल अनुवाद ही पूरा अर्थ नहीं देते। सन् १६२६ में विज्ञान-परिषद में तत्वों के नामों के पर्य्याय बनाए गए, लगभग डा० रघुबीर वाली पद्धति ही उसमें थी। एक विचारणीय बात यह है कि नामों के अन्त (Terminatin) व्याकरण के आधार पर नहीं है इसलिए "नाइट्राइट" का 'नाइट्रित' हो सकता है। इसप्रकार यदि व्यावहारिक रूप से अंगरेजी के शब्दों को अपना लिया जाय तो बड़ी सुबिधा रहेगी।

डा० बी० एल आत्रेय (बनारस विश्वविद्यालय)

"मेरे विचार में तो पारिभाषिक शब्दों के पढ़ाने वालों के लिए संस्कृत का ज्ञान परमावश्यक है, संस्कृत की व्याकरण में इतनी क्षमता है कि भिन्न अर्थ के सम्बोधी शब्द बनाये जा सकते हैं, व्याकरण का आधार लेकर उन्हे अधिक सार्थक बना दीजिए चाहे अन्य भाषाओं (अंग्रेजी आदि) में अन्त (Termination) सार्थक हों या नहीं"।

(७) डा० रामचरन मेहरोत्रा, प्रयाग विश्वविद्यालय

"व्यवहार सारल्य तथा अपनो वैज्ञानिक प्रगति को दृष्टिगत रखते हुए यह उचित प्रतीत होता है कि रसायन शास्त्र (जो सबसे विवादग्रस्त है) के पारिभाषिक शब्दों की समस्या बहुत सीमा तक हल हो जायगी यदि तत्वों के नाम ज्यों के त्यों ले लिए जाँय। नामों के बदलने में यह कठिनाई है कि बहुधा प्रत्येक नाम के साथ एक ऐतिहासिक घटना का सम्बन्ध होता है या यूँ कहिए कि प्रत्येक नाम का एक इतिहास होता है और उसे बदलना किसी विशेष वैज्ञानिक या गवषेक के कार्य के महत्व को घटाना होगा। इसलिए मेरा मत है कि कम से कम तत्वों के नाम जैसे Polonium, unarinm आदि अपना लिए जाँय।

(८) डा० हीरालाल निगर्म-(प्रयाग विश्वविद्यालय)

'विचारणीय बात यह है कि यह शब्दावली की समस्या केवल आज के लिए हल नहीं करनी है, भविष्य में भी यह अपनी उपयोगिता बनाये रहे और वर्तमान में इस भाषा के पचड़े के कारण वास्तविक विज्ञान की उन्नति में कोई बाधा भी न पड़े, यही हमारा दृष्टि कोण होना चाहिए। इसलिए सैद्धान्तिक रूपसे यह मानना ही पड़ेगा कि एक स्थायी व सदैव के लिए उपयोगी शब्दावली हिन्दी में बनाने के लिए हमे संस्कृत का पूर्ण आधार लेना पड़ेगा, और ६६ प्रतिशत शब्द हमें दूसरी भाषाओं से अनुवाद करके अपनी भाषा में लेनें पड़ेंगे हाँ, यदि भारत के प्राचीन साहित्य में इन पारिभाषिक शब्दों के पर्य्याय मिल जाँय तो कार्य में सरलता ही रहेगी। व्यावहारिक रूप से अभी हम खिचड़ी से अपना काम चला सकते हैं। इस प्रकार हमें दो प्रकार की नीतियों का अनुसरण करना पड़ेगा एक वर्तमान के लिए तथा दूसरी भविष्य के लिए। नामों के बारे में मेरा विचार है कि अनुवाद कर लेने में ही सरलता रहेगी, अंग्रेजी भाषा में भी "लैटिन" व "ग्रीक" से अनुवाद करके ही नाम रखे गए हैं उदाहरणार्थ (silver, gold आदि Argentum तथा Aurum आदि के अनुवाद हैं।"

(६) प्रो० नन्दकुमार तिवारी (बनारस विश्वविद्यालय

"नामों के विवाद के बारे में यह कहा जाता है कि जिस प्रकार व्यक्तियों के नाम नहीं बदले जा सकते उसी प्रकार तत्वों के नाम बदलना हास्यास्पद होगा। इसके लिए मैं यह कहना चाहता हूँ कि यह स्मरण रखना चाहिए कि एक व्यक्ति तो एक ही स्थान पर पाया जाता है किन्तु तत्व तो सभी जगह पाये जाते हैं इसलिए तर्क कुछ जँचता नहीं। अन्तर्राष्ट्रीय नामों की परिपाटी तो केवल बहाना है।

जो चलतू नाम हैं, उनके बारे में लोगों की यह धारणा है कि वे जन-साधारण में पहुँचे हुए हैं, उन्हें ऐसे ही रहने देना चाहिए किन्तु मेरी समझ में तो वे नाम हमारे ही दिए हुए हैं, जन-साधारण के बनाए हुए नहीं; इसलिए यदि शिक्षक-वर्ग या वैज्ञानिक लेखक-गण चाहें तो उन चलतू शब्दों का संस्कार सरलता से कर सकते हैं। यह आवश्यक है कि जो अन्तर्राष्ट्रीय नियम नामकरण के हैं "जेनरा" "Genera" व "स्पेसीज" "Species" आदि के सम्बन्ध में, उसका हम यथा शक्ति पालन करें।

बोलनेवालों की संख्या बढ़ती ही जा रही थी, सभापति जी ने अपनी घड़ी पर दृष्टि डालते हुए अन्य उत्सुक सज्जनों की ओर निषेधात्मक संकेत किया

[जब सभापति जी अपना वक्तव्य देने खड़े हुए, समय बहुत हो चुका था, कार्यक्रम पर उनकी दृष्टि गई तो "प्रो० आत्रेय का भाषण" लिखा पाया । संक्षिप्त में ही उन्होंने अपने विचार पारिभाषिक शब्दावली के ऊपर प्रकट किए]

(१०) सभापति जस्टिस हरिशचन्द्र (प्रयाग)

"यह लाभ प्रद गोष्ठी है । यह तो सर्वमान्य ही प्रतीत होता है कि स्वतंत्र भारत में विज्ञान की शिक्षा का माध्यम हिन्दी ही होनी चाहिए । यह भी निर्विवाद ही है कि अपनी भाषा में अधिक से अधिक परिभाषिक शब्द होने चाहिए और वैज्ञानिक साहित्य में अधिक से अधिक संस्कृत व हिन्दी के मूल से निकले हुए शब्दों का प्रदुर्भाव हो । अंगरेजों को केवल इसलिए तो नहीं रखना चाहिए कि कुछ शब्द बाजारों में प्रचलित हैं) । प्रयास इसी प्रकार ज़ारी रहा तो निकट भविष्य में हम एक "स्टेंडर्ड" शब्दाबली बना लेंगे ।

इसके पश्चात अधिवेशन में भाग लेनेवाले विज्ञान प्रेमियों को दर्शत-विभाग के भवन की ओर चलने का संकेत किया गया । वहीं प्रो० आत्राय ने मनोविज्ञान विषयक अपना रोचक भाषण दिया ।

प्रो० आत्रेय का भाषण

"कुछ लोगों की धारणा है कि विज्ञान केवल भौतिक वाद का ही अध्यन करता है और इसीलिए विज्ञान से उनको घृणा सी हो जाती है; किन्तु इस वैज्ञानिक युग में विज्ञान की बाग बिल्कुल मुड़ गई है" इन शब्दों में विज्ञान की नवीनतम धाराओं की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करते हुए प्रो० आत्रेय ने विषय को समझने के लिए ज्ञान को ३ रीतियों में बाँटा धर्म, दर्शन तथा विज्ञान

"धर्म में विश्वास प्रधान है; दर्शन तर्क का भी आधार लेता है, किन्तु अनुभव से ही कल्पना का स्पष्टीकरण होता है । विज्ञान ही इन सबको निश्चयात्मक तथा सर्वमान्य रूप से मानने का एक मात्र साधन है" इन परिभाषाओं से विषय को स्पष्ट करते हुए वक्ताने कहा मनोविज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो साधारण विज्ञान से परे है । वह हमारे आध्यात्मिक सुखों की खोज करता है, पाश्चात्यका जड़-विज्ञान आध्यत्मिक सुखों को बहुत महत्व नहीं देता था किन्तु हाल ही में पाश्चात्य देशों में जो खोजे हुई हैं और कुछ ऐसी विशेश घटनायघटी हैं कि लोगों का ध्यान इधर आकर्शित हो गया है । इसी के फल स्वरूप Ghost society Dialectical society आदि का जन्म हुआ है । इस विषय के अध्ययनकताओं में सर विलिमय क्रुक्स का नाम विशेष उल्लेखनीय है । इन्होंने १८७७ ई० से इस बात का अध्ययन आरम्भ किया, उन्हें कुछ ऐसे व्यक्ति मिले जिनमें सनाधि लेने की क्षमता थी । यह एक असाधारण सी प्रतिभा थी । सर विलियम वैरट को भी ऐसी घटनाओं को देखने का अवसर मिला । ये पाश्चात्य वैज्ञानिक इन "प्रतिमाशाली" व्यक्तियों से इतना प्रभावित हुए कि उनके द्वारा घटित घटनाओं के वैज्ञानिक अध्य- के लिए British Society for Psychical resarch की स्थापना की गई ।

# विज्ञान परिषद् के ३६वें वर्ष अक्टूबर १९४८ से सितंबर १९४९ तक का कार्य-विवरण

हमें यह सूचित करते हार्दिक दुख होता है कि परिषद् के भूतपूर्व प्रधान मंत्री तथा आजीवन सदस्य श्री महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव का पहली अक्टूबर सन् १९४९ को देहावसान हो गया। श्री महाबीरप्रसाद जी का सम्बन्ध इस परिषद् से इसके जन्म से ही बराबर था। आपने परिषद् को जिस लगन व योग्यता से वर्षों सेवा की वह कभी भुलाई नहीं जा सकती। आपको परिषद् से इतना

श्री महाबीर प्रसादजी श्रीवास्तव

प्रेम था कि मृत्यु के कुछ समय पूर्व तक अस्वस्थ रहने पर भी बराबर इसके कार्यों में आप क्रियात्मक योग देते रहे थे। आपने कई वर्षों तक बड़े परिश्रम व संलग्नता से से परिषद् के प्रधान मंत्रीपद का भार भी वहन किया था। आपके मंत्रित्व काल में परिषद् की बहुत उन्नति हुई। ऐसी अवस्था में भी जब अधिकांश लोग क्रियात्मक क्षेत्र से अवकाश ग्रहण कर निश्चिन्त होकर आराम करना चाहते हैं आप परिषद् के कार्यों में अपना समय देते रहे इससे परिषद् के प्रति आपके अगाध प्रेम का परिचय मिलता है।

श्री महाबीरप्रसाद जी एक उच्च कोटि के विद्वान व लेखक थे। ज्योतिष विज्ञान में तो आपका विशेष अधिकार था। आपने विज्ञान परिषद् को अपनी अमर कृति "सूर्य सिद्धान्त का विज्ञान भाष्य" भेंट की है जिस पर आपको हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्रदान किया था। इसके अतिरिक्त हिन्दी साहित्य को आपने अनेक अमूल्य ग्रन्थ दिये हैं।

अन्त में हम आपके परिवार के साथ परिषद् की सहानुभूति संवेदना प्रकट करते हैं।

इधर कई वर्षों से विज्ञान परिषद का कार्य सुचारु रूप से नहीं चल रहा है। हम जो चाहते थे, वह न कर सके। इसका दोष परिषद के अधिकारी-गणों पर नहीं है परन्तु इधर कुछ वर्षों से ऐसी परिस्थितियां रहीं कि जिनके कारण हम परिषद का काम आगे न बढ़ा सके। लगभग ७-८ माह पूर्व तक कागज़ नियंत्रण के कारण हमें 'विज्ञान' निकालने में बड़ी ही कठिनाई उठानी पड़ी और इसी कारण परिषद की पुरानी पुस्तकें जिनका भंडार समाप्त हो चुका है, उनका छपवाने का प्रबन्ध भी न कर सके। ज्यों ही कागज की कठिनाई को हम पार कर सके त्यों ही प्रेस की कठिनाई हमारे सामने आ पड़ी। पिछले वर्ष हम दो तीन प्रेस बदल चुके परन्तु फिर भी पिछड़े हुये 'विज्ञान' को ठीक समय पर निकालने में सफलीभूत न हुये। इसके दो मुख्य कारण हैं। एक तो यह है कि प्रेसों के पास इतना कार्य बढ़ गया है कि वे नियमित समय पर काम करने में असमर्थ हैं। और दूसरा कारण है आर्थिक। परिषद उतनी छपाई नहीं दे सकता जितनी कि सरकार या अन्य व्यापारी दे सकते हैं। इस सबब से प्रेस वाले 'विज्ञान' निकालने में उचित ध्यान नहीं देते जिसके कारण पिछड़ा हुआ 'विज्ञान' आज भी ठीक समय पर नहीं

निकल रहा है। इसका प्रभाव हमारी ग्राहक संख्या पर भी पड़ता है। परन्तु इतना होते हुये भी विज्ञान निकल ही रहा है और इसका श्रेय हमारे प्रधान संपादक डा० रामचरण जी मेहरोत्रा को है जो लगन तथा परिश्रम के साथ कार्य कर रहे हैं और हमें पूर्ण आशा है कि फरवरी मास तक वे 'विज्ञान' को समय पर निकालने में समर्थ होंगे।

परिषद अपने सभ्यों का तथा अन्य सज्जनों का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता है कि यदि 'विज्ञान' पत्रिका को सुचारु रूप से चलाना है और उसे जनसाधारण के लिए अधिक उपयोगी बनाना है तो एक वैज्ञानिक सहकारी संपादक अवश्य ही नियुक्त करना चाहिये जो कि पुरानी पुस्तकों को छपवाने तथा नवीन पुस्तकों को लिखवाने में भी सहायक हो सकता है। दूसरे लेखकों को कुछ न कुछ, भेंट, पुरस्कार स्वरूप अवश्य ही देना चाहिये, जिससे कि उनका उत्साह बढ़े और अच्छे लेख प्राप्त हो सकें।

इस पत्रिका की ग्राहक संख्या भी बहुत ही कम है जब कि हिन्दी भाषा भाषी प्रान्तों में यह अपने ढंग की केवल एक ही पत्रिका है। इस ओर भी आपका ध्यान अवश्य जाना चाहिए और इस पत्रिका का उचित रूप से प्रचार होना चाहिए।

पुस्तकों के सम्बन्ध में मैं ऊपर कह चुका हूँ कि समाप्त पुस्तकें भी हम नहीं छपवा सके हैं और इस कारण परिषद् की आर्थिक दशा पर भी असर पड़ रहा है। हमारी कई पुस्तकें जिनकी अच्छी बिक्री होती है जैसे कि उपयोगी नुसखे, हुनर और तरकीबें'; 'सूर्य सिद्धान्त' के पहले दो भाग; 'घरेलू डाक्टर'; 'मधुमक्खी पालन', आदि समाप्त हो चुकी हैं। इनको छपवाने का शीघ्र ही प्रबन्ध होना चाहिए। परन्तु परिषद् के पास पर्याप्त धन नहीं है और इस ओर भी विचार करना आवश्यक है।

पिछले वर्ष मैंने 'विज्ञान भवन' की ओर भी सभ्यों का ध्यान आकर्षित किया था। इसकी बहुत ही आवश्यकता है तथा इसके अभाव से भी हमारा कार्य सुचारु रूप से नहीं चल रहा है।

सितम्बर १९४९ तक परिषद के आजीवन सभ्यों की संख्या ४९ साधारण सभ्यों की संख्या ७५ और ग्राहकों की संख्या २२१ है।

इस वर्ष निम्न सज्जन परिषद् के आजीवन सभ्य तथा साधारण सभ्य चुने गये :—

आजीवन सभ्य :—श्री श्यामसुन्दर जी, कानपुर।

साधारण सभ्य :—श्री एस० एम० वाकले, एम० एस-सी०, सागर।

श्री बद्रीप्रसाद जोशी, उदयपुर।

इस वर्ष निम्न सज्जन परिषद् के पदाधिकारी रहे :—

इस वर्ष आय-व्यय का लेखा इस प्रकार से है :—

## आय

| | | |
|---|---|---|
| आजीवन सभ्यों से | — | ५०) |
| साधारण सभ्यों से | — | ५७) |
| पुस्तकों की बिक्री से | — | १२६१॥।≡) |
| विज्ञान के ग्राहकों से | — | ६११।-) |
| व्याज से | — | १६८।=) |
| युक्त प्रान्तीय सरकार से | — | ३१००) |
| गत वर्ष की रोकड़ बाकी | — | ३६४६॥।) |
| कुल | — | ८६५८।=) |

## व्यय

| | | |
|---|---|---|
| लेखक का वेतन | — | ३८५) |
| चपरासी का वेतन | — | २६२॥।=)॥ |
| गोदाम और दफ्तर का किराया | — | १८०) |
| स्टेशनरी | — | ४॥।=) |
| इक्के ठेले का किराया | — | २॥≡)॥ |
| पार्सल आदि का खर्च | — | १०॥।-)॥ |
| विज्ञान की छपाई | — | ११२५।।=) |
| बिक्री के लिए पुस्तकों के खरीदने में | — | २०८॥।-)। |
| डाक की टिकट आदि | — | १८०≡) |
| फुटकर खर्च | — | १≡) |
| कागज खरीदा | — | १६८) |
| ब्लाक बनवाई | — | २०८।।≡)।। |
| बैंक कमीशन | — | ३) |
| साइकिल की मरम्मत | — | ४६।।≡)।।। |
| रोकड़ बाकी | — | ६१३६॥।) |
| कुल | | ८६५८।=) |

नोट—फ़िक्स्ड डिपाज़िट ७२००) विज्ञान भवन के लिए सुरक्षित कोष में हैं।

'विज्ञान' के सम्बन्ध में आय व्यय का व्योरा अलग नीचे दिया जाता है। यह ऊपर के हिसाब में सम्मिलित है।

### आय

| | | |
|---|---|---|
| ग्राहकों से | — | ६१११।-) |
| सभ्यों से | — | ५७) |
| सरकार से | — | ३१००) |
| पिछली रोकड़ बाकी | — | १४७०) |
| कुल | — | ५२३८।-) |

### व्यय

| | | |
|---|---|---|
| कागज़ | — | १९८) |
| ब्लाक बनवाई | — | २०८॥≡)॥ |
| विज्ञान की छपाई (११ अंक) | — | ११२५॥=) |
| डाक खर्च | — | ९०) |
| लेखक का वेतन कुल का ⅓ | — | १२८।-) |
| चपरासी का वेतन | — | ८७॥=) |
| फुटकर | — | १≡) |
| रोकड़ बाकी | — | ३३९८॥।-)॥ |
| कुल | — | ५२३८।-) |

उपरोक्त आय व्यय लेखा देखने से स्पष्ट है कि 'विज्ञान' की छपाई में प्रति वर्ष १०००) से अधिक का घाटा होता है जो सरकार की कृपा से पूरा हो रहा है। वर्षारम्भ में रोकड़ बाकी १४७०) थी क्योंकि 'विज्ञान' की छपाई पिछड़ गई है और वर्षारम्भ में पिछले ६ अंक छपने को थे। इस वर्ष 'विज्ञान' के पूरे १२ अंक भी नहीं छप सके, पिछले अंकों को छाप डालने को कौन कहे। परन्तु छपाई की स्थिति अब पहले से अच्छी हो रही है और आशा है हम शीघ्र ही समयानुकूल अंक निकाल सकेंगे।

पुस्तकों की बिक्री से जो रुपया आया वह भी पुस्तकों की छपाई में खर्च न हो सका। इसी कारण आज हमारे पास इतनी रोकड़ बाकी है।

आगामी वर्ष का अनुमान-पत्र इस प्रकार से हैः—

## 'विज्ञान' के सम्बन्ध में-

### आय

| | | |
|---|---|---|
| २५० ग्राहकों से | — | ७५०) |
| १० सभ्यों से | — | ५०) |
| सरकार से | — | १२००) |
| पिछली रोकड़ बाकी | — | ३३५८॥।-)॥ |
| | | ४०) |
| कुल | | ५३५८॥।-)) |
| | | ४० |

### व्यय

| | | |
|---|---|---|
| १२ पन्ने का 'विज्ञापन'—५५० के लिए<br>२४ रीम कागज़ (१८ अंकों के लिए) | — | ६००) |
| ४। रीम कवर का दाम | — | १००) |
| छपाई | — | २२००) |
| विशेषांक के लिए अतिरिक्त खर्च | — | १०३॥।-)॥ |
| रैपर की छपाई | — | ७०) |
| ब्लाक | — | ६००),४०) |
| डाक खर्च | — | १५०) |
| लेखक का वेतन ½ | — | २४०) |
| चपरासी का वेतन ⅓ | — | ९६) |
| प्रूफ़ दिखाई तथा लेखकों को पुरस्कार | — | १२००) |
| कुल | | ५३५८॥।-)॥ |
| | | ४०) |

## अन्य कार्यों के लिये-

| | |
|---|---|
| पुस्तकों की बिक्री से | —१०००) |
| रोकड़ बाकी | —२७७७॥)॥ |
| | ३७७७॥=)॥ |
| स्टेशनरी पैकिंग आदि | —५०) |
| डाक व्यय | —२००) |
| इक्का—ठेला आदि | —४०) |
| रेलभाड़ा आदि | —१०) |

| | |
|---|---|
| साइकिल की मरम्मत | —५०) |
| बैंक इन्सीडेंटल चार्ज | —१०) |
| दफ़्तर, गोदाम का किराया | —१८०) |
| फुटकर | —२०) |
| लेखक का वेतन-कुल का ½ | —२४०) |
| चपरासी का वेतन कुल का ¾ | —१६२) |
| पुस्तकों की जिल्द बंधाई | —५००) |
| पुस्तकों की छपाई तथा अन्य पुस्तकों के खरिदने में | २२८५।।।)।। |
| | ३७७७।।=)।। |

कालिजों तथा विश्वविद्यालयों में हिन्दी में शिक्षा प्रचार तथा जन साधारण में वैज्ञानिक रुचि पैदा करने की नीति तथा पथ-प्रदर्शन के लिये एक कमेटी बनाई गई है।

शोक का विषय है कि श्री महाबीर प्रसाद जी श्रीवास्तव जो ४ वर्ष तक 'विज्ञान' के प्रधान मंत्री, तथा बाद में मंत्री रहे, की १० अक्टूबर, १६४६ को मृत्यु हो गई आप ने आजीवन 'विज्ञान' की बहुत सेवा की। आपने एक पुस्तक 'सूर्य सिद्धान्त लिखी' है जिसके कारण आपका नाम सदैव अमर रहेगा।

अन्त में मेरा कर्तव्य है कि मैं अपने साथी कार्यकर्ताओं को धन्यवाद दूँ विशेषकर डा० रामचरण मेहरोत्रा को, जिन्होंने बड़े ही परिश्रम के साथ विज्ञान का संपादन किया। डा० सत्यप्रकाश, आयव्यय परीक्षक तथा श्री हरीमोहनदास टंडन, कोषाध्यक्ष के परिश्रम के लिये भी परिषद् सदैव आभारी रहेगा।

# समालोचना

## आहार सूत्रावली

(ले० श्री केदारनाथ पाठक)

निर्मल स्वास्थ्य मनुष्य की सर्वप्रथम आवश्यकता है। इसके लिये नियमित और वैधानिक भोजन की आवश्यकता होती है। किन्तु आहार-सम्बन्धी आयुर्वेद ग्रंथों के सिद्धान्तों के अनुसार लिखी हुई हिन्दी पुस्तकों का प्रायः अभाव है। श्री श्यामसुन्दर रसायन-शाला, ने 'आहार सूत्रावली' नामक छोटी सी पुस्तक के द्वारा इस अभाव की पूर्ति की है। इस पुस्तक में चरक, सुश्रुत, हारीत, ऐसे प्राचीन भारतीय आयुर्वेदाचार्यों के आहार सिद्धान्तों के आधार पर विषय-विवेचन किया गया है। भिन्न-भिन्न अवस्था के लोगों के लिये ऋतुओं के अनुकूल उपयुक्त भोजन की सूची भी दी गई है। आयुर्वेद के सिद्धान्तों पर विश्वास रखने वालों के लिये यह पुस्तक बहुत उपयोगी है।

## मोटापा कम करने का उपाय

(ले० पं० प्रभुनारायण त्रिपाठी)

यह पुस्तक उन लोगों के लिये लिखी गई है जो आवश्यकता से अधिक मोटे हो जाते हैं। इसमें मोटापा कम करने के अनेक प्रकार की दवाओं का उल्लेख किया गया है। साथ ही व्यायाम और भोजन की उपयोगिता पर भी यथेष्ट प्रकाश डाला गया है। उम्र तथा मानसिक अवस्था अनुसार मोटापा दूर करने की अलग-अलग विधियाँ दी गई है। निश्चित तथा नियमित आहार कठिन शारीरिक परिश्रम और नियमित जीवन पर लेखक ने विशेष जोर दिया है। केवल औषधियों के द्वारा मोटापा कम नहीं किया जा सकता। लेखक का यह कार्य प्रशंसनीय है और मोटे लोगों के प्रति उसकी सहानुभूति एवं उदारता का परिचायक है।

## भारतीय मौन-पाल

( ले० पं० राजेन्द्रनाथ मुट्टू )

भारतयीय मौनपाल हिन्दी में प्रथम वैज्ञानिक तथा औद्योगिक सचित्र है मासिक पत्रिका है। इसका उद्देश्य भारत में शहद पैदा करने के नवीनतम वैज्ञानिक विधियों का प्रचार करना है। ज्योलीकोट, जिला नैनीताल में राजकीय मौनागृह मौनपालन के सम्बन्ध में नये-नये प्रयोग कर रहा है। उसी के आस-पास के कुछ मौनपालन प्रिय लोगों ने भी एक संघ की स्थापना की है और उनके प्रयत्न से इस व्यवसाय को बहुत प्रोत्साहन मिल रहा है।

'भारतीय मौन-पाल' में बड़े रोचक ढंग से मौन परिवार तथा मौन जीवन का विवरण किया जाता है। इस पत्रिका के द्वारा मौन पालन से सम्बन्ध रखनेवाले अनेक अंग्रेजी शब्दों का हिन्दी रूपान्तर भी किया जा रहा है। य० द० तिवारी

## रासायनिक तत्त्व विश्लेषण

(लेखक—श्री महादेव लाल श्राफ तथा श्री गोरख प्रसाद श्रीवास्तव)

रसायनशास्त्र के इस प्रमुख विषय पर यह बहुत ही उपयोगी पुस्तक है। भारतवर्ष की रासायनिक प्रयोग शालाओं में प्रधानतया असूक्ष्म विधि का प्रयोग होता है, अभी तक अर्धसूक्ष्म व सूक्ष्म रीतियों का प्रयोग हमारी विश्वविद्यालयों की प्रयोगशालाओं में नहीं आरम्भ हो पाया है। हिन्दी में रासायनिक विश्लेषण की असूक्ष्म विधि पर तो दो-एक पुस्तकें अवश्य प्रकाशित हुई हैं परन्तु सूक्ष्म विधि पर कोई भी पुस्तक अभी तक नहीं छपी है, इस प्रकार यह पुस्तक हमारे एक बड़े अभाव की पूर्त्ति करेगी। पुस्तक की छपाई व चित्र अच्छे छपे हैं। पारिभाषिक शब्दों का चुनाव बहुत अच्छा नहीं है; यह कठिनाई तो प्रत्येक लेखक के सम्मुख है। प्रत्येक पारिभाषिक शब्द के लिए कई कई हिन्दी शब्द प्रचलित हैं और इसी कारण लेखक को अपना व्यक्तिगत चुनाव करना पड़ता है। इस दोष के होते हुए भी पुस्तक की सामान्य भाषा सरल व अच्छी है और विषय को सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

## सरल फोटोग्राफी

(लेखक—डा० गोरखप्रसाद)

डा० गोरखप्रसाद से हिन्दी के पाठक भली भाँति परिचित हैं। फोटोग्राफी पर उनकी पुस्तक 'फोटोग्राफी : सिद्धान्त और प्रयोग' बहुत प्रसिद्ध है और उसने हिन्दी भाषा की बहुत सेवा की है। इधर कुछ वर्षों से वह पुस्तक अप्राप्य रही है। डा० गोरखप्रसादजी ने इस लोकोपयोगी विषय पर एक अन्य सरल पुस्तक लिखकर हिन्दी में एक बड़े अभाव की पूर्ति की है। पुस्तक छोटी है, परन्तु फोटोग्राफी के नवीनतम उपयोगी आविष्कारों का इसमें समावेश कर लिया गया है। पुस्तक की छपाई बहुत सुन्दर है व ब्लाक अच्छे बने हैं। विषय बहुत सुन्दर व रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। हिन्दी संसार को ऐसी सुन्दर पुस्तक देने के लिए डा० गोरखप्रसाद बधाई के पात्र हैं।

# विज्ञान-परिषद् की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकों की सम्पूर्ण सूची

१—चुम्बक—हाई स्कूल में पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी० सजि०; ।।।≈)

२—सूर्य-सिद्धान्त—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखने का सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१६; १४० चित्र तथा नक्शे—ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; सजिल्द; दो भाग में, मूल्य ८)। इस भाष्य पर लेखक को हिन्दी साहित्य सम्मेलन का १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है।

३—वैज्ञानिक परिमाण—विज्ञान की विविध शाखाओं की इकाइयों की सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस-सी०, १)

४—समीकरण मीमांसा—गणित के एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।) द्वितीय भाग ।।≈),

५—निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)—गणित के एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमतीप्रसाद अग्निहोत्री बी० एस-सी० ; ।।।),

६—बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित—इंटरमीडियेट के गणित के विद्यार्थियों के लिये—ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी० , १।),

७—गुरुदेव के साथ यात्रा—डाक्टर जे० सी० बोस की यात्राओं का लोकप्रिय वर्णन ; ।≈)

८—केदार-बद्री यात्रा—केदारनाथ और बद्रीनाथ के यात्रियों के लिये उपयोगी; ।≈)

९—वर्षा और वनस्पति—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शंकरराव जोशी; ।≈)

१०—विज्ञान का रजत-जयन्ती अंक—विज्ञान परिषद् के २५ वर्ष का इतिहास तथा विशेष लेखों का संग्रह; १)

११—फल-संरक्षण—दूसरा परिवर्धित संस्करण-फल की डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनाने की अपूर्व पुस्तक; २१२ पृष्ट, २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्र नारायण सिंह एम० एस-सी०; २।।)

१२—व्यङ्ग-चित्रण—(कार्टून बनाने की विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी एम० ए०; १७५ पृष्ठ; सैकड़ों चित्र, सजिल्द; २)

१३—मिट्टी के बरतन—चीनी मिट्टी के बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र; सजिल्द; २)

१४—वायुमंडल—ऊपरी वायुमंडल का सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र सजिल्द; २)

१५—लकड़ी पर पालिश—पालिश करने के नवीन और पुराने सभी ढंगों का व्योरेवार वर्णन । इससे कोई भी पालिश करना सीख सकता है—ले डा० गोरखप्रसाद और श्रीरामरतन भटनागर, एम०, ए०; २१८ पृष्ठ; ३१ चित्र, सजिल्द; २)

१६—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश, आकार बड़ा विज्ञान के बराबर २६० पृष्ठ, २००० नुसखे, १०० चित्र; एक-एक नुसखे से सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हजारों रुपये कमाये जा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थ के लिये उपयोगी; मूल्य अजिल्द २।।)

१७—कलम-पेबंद—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ५० चित्र; मालियों, मालिकों और कृषकों के लिये उपयोगी; सजिल्द; २)

१८—जिल्दसाज़ी—क्रियात्मक और व्योरेवार। इससे सभी जिल्दसाज़ी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०; १८० पृष्ठ, ६२ चित्र; सजिल्द २),

–त्रिफला—दूसरा परिवर्धित संस्करण-प्रत्येक वैद्य और गृहस्थ के लिये—ले० श्री रामेश वेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ; २ चित्र, एक रङ्गीन; सजिल्द २।।।≈)

यह पुस्तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय, की १३ श्रेणी के लिए द्रव्यगुण के स्वाध्याय पुस्तक के रूप में शिक्षापटल में स्वीकृत हो चुकी है।"

२०—तैरना—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगों को बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद पृष्ठ १०४ मूल्य १),

२१—अंजीर—लेखक श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, अंजीर का विशद वर्णन और उपयोग करने की रीति। पृष्ठ ४२, दो चित्र, मूल्य ।≈)

यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय के शिक्षापटल में स्वीकृत हो चुकी है।

२२—सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओं के विचित्र संसार, पेड़ पौधों की अचरज-भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र और तारों की जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिष के संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञान के आकार के ४५० पृष्ठ और ३२० चित्रों से सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द मूल्य ६)

२३—वायुमण्डल की सूक्ष्म हवाएँ—ले० डा० सन्तप्रसाद टंडन, डी० फिल० मूल्य ।।।)

२४—खाद्य और स्वास्थ्य—ले० श्री डा० ओंकारनाथ परती, एम० एस-सी०, डी० फिल० मूल्य ।।।)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं :—

२५—विज्ञान हस्तामलक—ले० स्व० रामदास गौड़ एम० ए०। भारतीय भाषाओं में अपने ढंग का यह निराला ग्रंथ है। इसमें सीधी सादी भाषा में अठारह विज्ञानों की रोचक कहानी है। सुन्दर सादे और रंगीन पौने दो सौ चित्रों से सुसज्जित है, आज तक की अद्भुत बातों का मनोमोहक वर्णन है, विश्वविद्यालयों में भी पढ़ाये जाने वाले विषयों का समावेश है, अकेली यह एक पुस्तक विज्ञान की एक समूची लैब्रेरी है, एक ही ग्रंथ में विज्ञान का एक विश्वविद्यालय है। मूल्य ६)

२६—भारतीय वैज्ञानिक—१२ भारतीय वैज्ञानिकों की जीवनियाँ; ले० श्री श्यामनारायण कपूर, सचित्र ३८० पृष्ठ; सजिल्द; मूल्य ३।।) अजिल्द ३)

२७—वैक्युम-ब्रेक—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवे में काम करने वाले फिटरों, इंजन-ड्राइवरों, फोरमैनों और कैरेज एग्ज़ामिनरों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ; ३१ चित्र जिनमें कई रंगीन हैं, २).

## विज्ञान-परिषद् बेली रोड, इलाहाबाद

मुद्रक—जगतनारायण लाल हिन्दी साहित्य प्रेस प्रयाग। प्रकाशक—विज्ञान-परिषद्, बेली रोड, इलाहाबाद

भाग ७०
संख्या ५, ६

संवत् २००७,
फरवरी, मार्च १९५०

वार्षिक मूल्य ३) ]

[ एक संख्या का मूल्य ।)

**श्री हरिश्चन्द्र आई० सी० एस०, जज, प्रयाग हाईकोर्ट** ( सभापति )
प्रो० सालिगराम भार्गव तथा डा० श्री रंजन ( उप सभापति ) डा० हीरालाल दुबे (प्रधान मंत्री )
डा० रामदास तिवारी तथा श्री महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव ( मंत्री ) श्री हरिमोहनदास टंडन (कोषाध्यक्ष)

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

प्रधान सम्पादक
**श्री रामचरण मेहरोत्रा**
विशेष सम्पादक
डाक्टर सत्यप्रकाश — डाक्टर विशंभरनाथ श्रीवास्तव
डाक्टर गोरखप्रसाद — डाक्टर ब्रजकिशोर मालवीय

## विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

### परिषद् का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

### परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमंत्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे, जिन के द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

### सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिये वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशन में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित, परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों विवरणों इत्यादि के बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उन का प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन-चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायेंगे।

## विषय-सूची

# विज्ञान

**विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र**

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

| भाग ७० | सम्वत् २००६ फरवरी-मार्च, १९५० | संख्या ५-६ |
|---|---|---|

# नेशनल एकेडेमी आफ साइन्सेज के वार्षिक अधिवेशन पर माननीय श्री सम्पूर्णानन्दजी का भाषण

२२ जनवरी की सन्ध्या को मेयोहाल, इलाहाबाद में वैज्ञानिकों की एक विशिष्ट सभा में नेशनल एकेडेमी आफ़ साइन्सेज़, इन्डिया के १९वें वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर अध्यक्ष-पद से भाषण देते हुए यू० पी० शिक्षा-मंत्री माननीय सम्पूर्णानन्दजी ने कहा कि अपरान्ह की इस बेला में आपने मुझे जो यह अवसर प्रदान किया है उसके लिए मैं आपका बड़ा आभारी हूँ और हृदय से अपनी कृतज्ञता प्रगट करता हूँ। इस प्रकार के प्रतिष्ठित और विद्वत्समुदाय के सम्पर्क का सुअवसर बड़ी कठिनाई से यदा-कदा ही प्राप्त होता है जिसमें मुझे अभ्युदय और उत्कर्ष का आभास प्रतीत होना स्वाभाविक है।

मंत्री की रिपोर्ट में शब्दों का प्रयोग अत्यन्त ही स्वल्प हुआ है जो वैज्ञानिक वर्ग में उपयुक्त ही है। विवरण संक्षिप्त होते हुए भी यह पूर्ण स्पष्ट हो जाता है कि आपका कार्य-क्षेत्र कितना प्रसारित हो चुका है और वैज्ञानिक-जगत ने उसको कहाँ तक समादृत किया है। यदि कुछ और अधिक धन आपके पास होता तो अवश्य ही आप अपने अनुसन्धान-कार्य को अधिक विस्तृत और लाभदायक कर देते और इस प्रकार आपने अधिक उन्नत अवस्था प्राप्त कर ली होती। देश इस समय अत्यन्त आर्थिक-संकट की स्थिति से गुजर रहा है। ऐसी स्थिति में, मैं आपको केवल इतना ही आश्वासन दे सकता हूँ कि प्रान्तीय सरकार आपके उद्देश्यों से पूर्णतः सहानुभूति रखती है और उनको प्राप्त करने के लिए साधनों और परिस्थिति के अनुसार जितनी सहायता कर सकती है करेगी।

मंत्री की रिपोर्ट डा० बीरबल साहनी के निधन की ओर संकेत करती है। इस लब्धप्रतिष्ठ और उदारमना वैज्ञानिक के देहावसान से समस्त राष्ट्र की क्षति हुई है। मेरा पूर्ण विश्वास है कि उनके द्वारा संस्थापित यह संस्था अवश्य ही उन्नत और समृद्धिशाली होगी। उसकी उन्नति के लिए जो सहायता दी जायगी वही उनकी पुण्य-स्मृति में सर्वश्रेष्ठ श्रद्धाञ्जलि होगी।

मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि मैं विज्ञान के अध्ययन की महत्ता का बखान करूँ अथवा वैज्ञानिकों के उस उत्तरदायित्व को बतलाऊँ कि उन्हें विज्ञान का प्रयोग

मानव-सभ्यता और संस्कृति के विनाश तथा हनन के लिए कदापि नहीं करना चाहिये। यह सब आप भी मेरी तरह जानते हैं, वस्तुतः मुझ जैसे पूर्ण अनभिज्ञ व्यक्ति को निमंत्रित कर और उससे इस प्रकार के भाषण श्रवण करना आपके लिए दण्डस्वरूप ही है। आप भी और सब लोगों की तरह यह अनुभव करते होंगे कि विज्ञान का दुरुपयोग मानव-सभ्यता के लिए कितना घातक है और इस विषय में भी आप अवश्य चिन्तित होंगे कि उस बौद्धिक और भौतिक परिस्थिति को भी न नष्ट किया जाय जिसमें ऐसे कार्य जिन्हें आप उचित समझते हैं सम्भव हो सकें। यह भी नितान्त सत्य है कि हमें जो ज्ञान विज्ञान से प्राप्त होता है उसका भी किसी अंश तक मानव-सभ्यता की आक्रमण के विरुद्ध सुरक्षा के हेतु प्रयोग करना ही पड़ेगा। "शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचर्चा प्रवर्त्तते"। किन्तु संरक्षण और आक्रमण पर्यायवाची शब्द नहीं है और उन दोनों में भेद का पता लगाना भी वैज्ञानिकों के लिए असम्भव नहीं है। वैज्ञानिक ब्रूनो जैसे व्यक्तियों ने अपना जीवन तक होम कर दिया किन्तु कभी सत्य के प्रति मिथ्या साक्षी नहीं दी। अब यह उनके आगे आने वाले वैज्ञानिकों पर निर्भर है कि वे आवश्यकता के समय अपने ज्ञान को विनाशकारी शस्त्रों के आविष्कार में न लगाते हुए सत्य के हेतु अपना जीवन समर्पण कर दें। आपने अपनी संस्कृति को अपनाया है और आप कला तथा साहित्य में भी अपनी रुचि रखते हैं, आप और अन्य व्यक्तियों के प्रति केवल सत्य ही नहीं वरन् सुन्दर अपीलें भी की गई हैं और स्वयं विज्ञान के हित के लिए भी यह आवश्यकता है कि मानवता को इस गुण से कभी पराङ्मुख नहीं होना चाहिए। अपनी संस्कृति की रक्षा जो मनुष्य को सच्चा मनुष्य बनाती है आपके हाथों में सर्वथा सुरक्षित होनी चाहिये। आज समस्त विश्व एक ऐसी आध्यात्मिक महामारी से ग्रसित है जिसने उसके जीवन तत्व को ही समाप्त कर डाला है। ऐसी स्थिति में संसार में न्याय और सद्भावना के प्रचारार्थ वैज्ञानिक असमर्थ है। आप हरवर्ड में प्रो० पिट्रम ए० सोरोकिन द्वारा किये हुए कार्यों से अवश्य ही परिचित होंगे। वे आजकल यथार्थवाद के विषय पर अनुसंधान में कार्य-संलग्न हैं। उनको उस कार्य में सहायता के लिए कुछ धन भी समर्पित किया गया है। ऐसा विचार किया जाता है कि हमारी आधुनिक समस्याओं, जिनके विषय में ऐसी धारणा है कि उनकी यथार्थता का महत्व मस्तिष्क से सम्बन्ध रखता है, का हल करने का ढंग ही मूलतः दोषयुक्त है। यह विचारधारा मनुष्य को सीधे उस सिद्धान्त पर ला देती है जिसके अनुसार आनन्द ही मनुष्य के समस्त कार्यों का अन्तिम लक्ष्य माना जाता है तथा उस निष्कर्ष की ओर भी ले जाती है जो समस्त आपदाओं के विरुद्ध सतत उद्योग को ही जीवन समझता है। यदि जीवन वस्तुतः इसी प्रकार का एक प्रयास है, तो वैज्ञानिकों का यह कर्तव्य है कि जो कोई उनके सम्पर्क में आवे उसको इतना कुशल वधिक बना दें कि वह फिर असहाय भेड़ की तरह न हनन किया जा सके। यदि वैज्ञानिक अपने ध्येय पर विचार करने का स्मरण करें तो निश्चय ही यह धारणा उनके ध्येय के अनुकूल नहीं है। यदि आधुनिक वैज्ञानिक शुद्ध, पारिभाषिक विज्ञान्-सम्बन्धी कार्यों के अतिरिक्त इस ओर अधिक ध्यान आकर्षित करें जिसे प्रो० सेरोकिन के शब्दों में—"मानवीय पुनरुद्धार" कहते हैं तो संसार की दशा निश्चय ही उत्कृष्टतर समझिये। अपनी समस्याओं के सुलझाने की प्राचीन मौलिकता ही स्थायी पुनर्निर्माण की रामबाण औषधि है। वैज्ञानिक को और विशेषकर भारतीय वैज्ञानिकों को पारस्परिक सहयोग के द्वारा कल्याण की चरम सीमा प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए। शब्द—"हम" उच्चतम से लेकर निम्नतम पर्यन्त सकल जीवधारियों के लिए समान रूप से प्रयुक्त होना चाहिए। वस्तुतः इससे उत्कृष्ट कोई अन्य जीवन का नियम नहीं हो सकता।

अब भारत ही जिसने सर्वप्रथम संसार को वेदान्त का उपदेश दिया और जो समस्त सृष्टि की एकरूपता की शिक्षा देता है, विज्ञान और दर्शन के बीच की खाड़ी को पाटने का सर्वप्रथम प्रयास करेगा। इसके द्वारा दोनों ही की पुष्टि होगी और इस प्रकार

मानवजाति का सबसे अधिक कल्याण होगा।

यदि स्वतन्त्र भारत को राष्ट्र-परिवार में कोई समुचित और आदरणीय स्थान प्राप्त करना है तो उसे अपनी निर्धनता और अज्ञानता से सदैव के लिये उन्मुक्त हो जाना चाहिए। आई० एल० ओ० के आधार-भूत सिद्धान्तों में से एक सिद्धान्त यह है कि हमारे देश की

निर्धनता प्रत्येक अन्य देशों की समृद्धि के लिए खतरा है। अज्ञानता के विषय में भी यह पूर्ण सत्य है। इन दो आशंकाओं से छुटकारा पाने के लिए विज्ञान ही अपने महत्तम दत्तांश दे सकता है। हमारे साधन स्वल्प और अपर्याप्त हैं किन्तु उस अभाव की पूर्ति के लिए हमारे पास दृढ़ संकल्प है। परिणामतः, अनुसन्धान और उच्च-शिक्षा के लिए हमें जितना ध्यान देना चाहिए, वह हम नहीं दे पाते। दुर्भाग्यवश, वर्तमान काल में उद्योग का अभी विकास नहीं हुआ है और ऐसी अनेक विकास-योजनाएं उपस्थित हैं जिन्हें केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारें कार्य रूप में परिणत करना चाहती हैं किन्तु धनाभाव एवं पर्याप्त वैज्ञानिक जन-शक्ति के अभाव के कारण वैसा नहीं कर सकतीं। भावी मांग की पूर्ति के लिए साधनों के एकत्रीकरण और योजनाओं पर विश्व-विद्यालयों के विषय में अधिक प्रमाण नहीं दिया जा सकता। किसी अंश तक अनुसन्धान स्वतन्त्र रहेगा। कल्पना शक्ति और बुद्धि को नियन्त्रित कर सीमित नहीं किया जा सकता, किन्तु हमारी जैसी वर्त्तमान सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ हैं उनके अनुसार हमें अनुसन्धान की योजनाएँ बनानी होंगी जिससे वैज्ञानिकों, प्रयोगशालीय सुविधाओं तथा भविष्य में लगाई जाने वाली पूँजी का पूर्ण रूप से लाभ उठाया जा सके।

दूसरे शब्दों में, विज्ञान के अभ्युदय के लिए उद्योग बहुत महत्वपूर्ण कार्य करता है। दुर्भाग्यवश, हमारे देश में ऐसा नहीं है; कम से कम इस समय मेरा यही निष्कर्ष है जिसपर मैं प्रान्तीय सरकार द्वारा स्थापित वैज्ञानिक अनुसंधान कमेटी के कार्यों का अध्ययन करने के उपरान्त पहुँच सका हूँ। आप कमेटी के सदस्यों एवं उसके अब तक के किये हुए कार्यों से भली प्रकार परिचित होंगे। इसने विज्ञान की सीमा के अन्तर्गत अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों पर बहुमूल्य अनुसन्धान-कार्य किया है और इसके अतिरिक्त अनेक व्यक्तियों को सुविख्यात वैज्ञानिकों की संरक्षता में अनुसधान-शिक्षा प्राप्त करने में सहायता भी प्रदान की है। किन्तु आपको यह भी विदित होगा कि जिन उद्देश्यों के निमित्त यह कमेटी स्थापित की गई थी उनमें से एक उद्योगपतियों के कार्य में उत्पन्न होने वाली समस्याओं के सुलझाने में सहायता देना भी था। कमेटी के विगत तीन वर्ष के जीवनकाल में इस प्रकार की कोई समस्या ही नहीं उत्पन्न हुई। कारण, कमेटी के चेयरमैन डा० कृष्णन से मुझे ज्ञात हुआ कि अभी हमारा उद्योग नवीन कार्य-क्षेत्र में पदार्पण करने का साहस ही नहीं करता। अभी प्रतियोगिता की इतनी भी भावना जाग्रत नहीं हुई है कि अपने हित के लिये भी नवीन आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण करें, हमें तो यही विश्वास है कि इस प्रकार की अवस्था सदैव नहीं रहेगी। भारत की समृद्धि उद्योग के पूर्ण विकास पर ही निर्भर है जो स्वतः विशुद्ध और

कार्योपयोगी व्यावहारिक विज्ञान की वृद्धि के लिए अनेक साधन उपस्थित करेगा।

मैं नहीं जानता कि वैज्ञानिक अनुसन्धान कमेटी अथवा कोई अन्य वैज्ञानिक-दल ऐसी कतिपय समस्याओं को जो प्रचलित भारत में उद्योगों से सम्बन्ध रखती हैं घोषित करना उपयुक्त समझेगा अथवा उन लाभदायक उद्योगों को जो सुगमता से स्थापित किये जा सकते हैं ऐसे वैज्ञानिकों के सुपुर्द कर सकता है जिन्हें वह उस कार्य में सुयोग्य समझता है। यदि आप मुझसे सहमत हो तो मैं आपका ध्यान प्रमुख उद्योगपतियों की उन अत्यन्त तुच्छ और निर्धन प्रयोगशालाओं की ओर आकृष्ट करूँ जिन्हें वे अपनी मिलों का परिशिष्ट समझते हैं।

अपने देश में योग्यता का अभाव नहीं। उसे अभिव्यक्त करने के लिए प्रोत्साहन मात्र की आवश्यकता है। निर्धनता बहुत से चमकते हुए विद्यार्थियों का मार्ग-कण्टक है जिसके कारण उन्हें अपने अध्ययन से हाथ धो बैठना पड़ता है तथा जिसके परिणामस्वरूप अनुसन्धान कार्य नितान्त असम्भव हो जाता है। ऐसे योग्य विद्यार्थियों को आप अच्छी तरह ज्ञात कर सकते हैं। अब तक विज्ञान का अध्ययन केवल नगरों तक ही सीमित रहा है किन्तु अब हायर सेकण्डरी स्कूलों के द्वारा ग्रामीण विद्यार्थी भी इस विषय का अध्ययन कर सकते हैं। इतना ही नहीं, अब सरकार क्रमशः जूनियर स्कूलों में भी जिन्हें मुख्यतः हिन्दी मिडिल स्कूल कहते हैं विज्ञान के अध्यापन का प्रबन्ध कर रही है। अभी तक अज्ञात गुप्त योग्यता को निकट-भविष्य में प्रकट करने के हेतु यह अत्यन्त सहायक होगा। प्रसङ्गवश इस सम्बन्ध में मैं आपको छोटी सी योजना से भी अवगत करा दूँ जो इस समय हमारे समक्ष है। वह अपनी स्वयं की मौलिक तो है नहीं किन्तु संयुक्त-राष्ट्र की योजना का ही एक संशोधित रूप है। हमारे हायर सेकन्डरी स्कूलों में ऐसे अनेकों छात्र हैं जिनके मस्तिष्क का रुझान रचनात्मक और मौलिक है। विज्ञान-कक्षा में वे जो कुछ सीखते हैं उसको समझाने के लिए वे अपना निजी उपकरण बना लेते हैं और बहुत सी बड़ी-बड़ी मशीनों के सुन्दर नमूने भी तैयार कर लेते हैं। इसी प्रकार के विद्यार्थी विश्वविद्यालयों एवं डिग्री कालिजों में भी होने चाहिए। हम इस प्रकार के सर्वोत्कृष्ट श्रेणी के कृत्यों का एक सङ्कलन कर रहे हैं जिसे "कल के वैज्ञानिक" नामक शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित करने का हमारा मन्तव्य है तथा प्रस्तावित पुस्तिका में युवक वैज्ञानिकों के जीवन-चरित्र, उनके कार्य-कलाप तथा फोटोग्राफ़स का विस्तृत विवरण होगा। कुछ नकद पुरस्कार भी दिया जायगा। इसे हम वार्षिक प्रकाशन का रूप देना चाहते हैं। इसके द्वारा हमें योग्यता को ज्ञात करने और प्रोत्साहन में यथेष्ट सहायता प्राप्त होगी।

आपको यह संकेत करना कि आपके अनुसन्धान-कार्य की मार्ग-दिशा किधर होनी चाहिए केवल अनाधिकार चेष्टा मात्र होगी। आप स्वयं उन समस्याओं से पूर्ण अवगत हैं जिनका हल करना अत्यावश्यक है। वह युक्ति जो मध्यवर्गी नागरिक को पौष्टिक भोजन के विषय में आत्म-निर्भर बना सके अवश्य ही अभिनन्दनीय होगी। उस युक्ति का भी वैसा ही स्वागत होगा जो हमारे कच्चे माल की अधिक बचत कर सके और उसकी व्यर्थ छीजन को भी रोक सके और जो साथ ही हाथ की मेहनत भी कम कर सके जिससे कार्य सुगम हो सके।

परन्तु क्या मैं आपको खोज के विषय में दो-एक बातें बता सकता हूँ? मेरी इन विषयों में कुछ विशेष रुचि है। सम्भवतः अन्य व्यक्तियों की भी होगी। अभी हाल ही में मद्रास में एक विशेष संगीत अधिवेशन हुआ था। वहाँ एक वाद-विवाद के मध्य 'पीरियड', जिसे 'श्रुति' भी कहते हैं, की चर्चा होने लगी। कला-विशेषज्ञों के द्वारा षड्ज तथा निषाद के बीच में इनका आविर्भाव हुआ था। षड्ज एवं निषाद सप्तक प्रथम और अन्तिम स्वर हैं। भौतिक-शास्त्र के एक प्रोफ़ेसर ने भी कदाचित् उस वाद-विवाद में भाग लिया था। यह अत्यन्त ही रुचिकर होगा कि वस्तुतः ध्वनि-शास्त्र में इन 'श्रुतियों' से क्या तात्पर्य है। इस प्रकार यदि कोई इस विषय में अपनी अभिरुचि कर ले तो वह अत्यन्त महत्व-पूर्ण कलाओं की लाभ-प्रद सेवा कर सकता है और

ध्वनि-कम्पन तथा भाव-प्रकाशन के सम्बन्ध पर पर्याप्त प्रकाश डाल सकता है।

इस कथन से मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि आप वर्त्तमान कालीन आधार-भूत अनुसन्धान का परित्याग कर दें। हमारी प्रतिभा, विशेषतः हमारे मस्तिष्क की तार्किक-प्रवृत्ति विज्ञान के अभी तक अज्ञात क्षेत्र में अनुसन्धान करने के लिए सर्वोपयुक्त है; मुख्यतः भौतिक शास्त्र और गणित के क्षेत्र में जिनके उच्चतर विभाग उस क्षेत्र में स्थित हैं जहाँ विज्ञान और दर्शन में कोई विशिष्ट अन्तर नहीं है।

एक और दूसरा विषय जिसके प्रति मैं आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ, वह है 'चक्रों का अध्ययन' जिनके विषय में योग-सम्बन्धी पुस्तकें इतनी अधिक चर्चा करती हैं। मैं जानता हूँ कि बहुत से शरीर-धर्म विज्ञान-शास्त्री इसके अध्ययन में संलग्न हैं और इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश भी डाला जा चुका है किन्तु फिर भी अभी बहुत कुछ करना शेष है। वस्तुतः इस बृहद् विषय का एक छोर भी बड़ी कठिनाई से अभी तक छुआ गया होगा। योगियों का यह मत है कि एक के बाद दूसरे चक्रों को नियन्त्रित कर लेने पर ज्ञानेन्द्रियों के स्वतन्त्र कार्यों पर भी कोई अंकुश नहीं रहता। इस प्रकार हमारे सम्मुख रंग, ध्वनि और गन्ध के अद्भुत दृश्य उपस्थित होने लगते हैं। यदि उनके इस कथन में कुछ तथ्य है तो इसके परिणाम में मानवीय ज्ञान अवश्य ही परिवर्द्धित होगा; परिस्थितियों को परिवर्त्तित करने की हमारी शक्ति भी बलवती होगी तथा क्षय एवं मरण के कारणों पर भी हम प्रमुख ज्ञान स्थापित कर सकेंगे। जो कुछ योगी कहते हैं उससे यह पूर्ण समत्व रखता है। मुझे विश्वास है कि उनका कथन नितान्त सत्य है। इसके कारणों के विवाद में मैं नहीं जाना चाहता। कुछ भी हो, यह विषय सर्वथा प्राण-शास्त्र के अन्तर्गत आ जाता है जो आपके अध्ययन का उद्देश्य है।

अनुसन्धान की यह रूपरेखा एक और अन्य महत्व-पूर्ण विषय पर प्रकाश डाल सकती है। जैसा आपको ज्ञात होगा कि भारतीय दर्शन के अनुसार ध्वनि की चार अवस्थाएँ हैं—वैखरि, मध्यमा, पश्यौति तथा परा। प्रत्येक अवस्था अपनी से पहली अवस्था से अधिक सूक्ष्म होती है और दूसरी में अन्तरस्थ रहती है। वैखरि वह उच्चारित शब्द है जो उन समस्त ध्वनियों से संयोगशील है जो श्रवणेन्द्रिय से सम्बन्धित हैं। परा को छोड़ते हुए जो सीधे आत्म-तत्व ज्ञान के जगत में ले जाती है; पश्यौति जिसे हम प्रारम्भिक भाषा कहते हैं उसकी रचना करती है जो ध्वनि की जड़ है। इसके अवयवों को हम मत्रिका कहते हैं। ऐसा प्रचलित है कि एक विशेष चक्र के संयम से मत्रिकाओं की अनुभूति होने लगती है। इस विषय पर और अधिक न बोलते हुए यही आपके निर्णय पर छोड़ता हूँ कि इस विषय पर चर्चा करना कहां तक श्रेयस्कर है।

मैं आपको फिर एक बार धन्यवाद देता हूँ कि आपने मुझे इस अवसर पर निमन्त्रित करने की कृपा की। मैं ज्ञान के विकास और प्रसार के हेतु आपके उद्योगों की सफलता की शुभ कामना करता हूँ।

अनुवादक
श्री मदनमोहन,
प्रयाग विश्वविद्यालय

# आगामी पचास वर्ष

लेखक—श्री बरट्रेंड रसेल
( अनुवादक : श्री आ० सि० मेहता व श्री जवरासिंह, विज्ञान कला भवन बैराना )

हमारे युग में अभी तक सिद्धान्त और कार्य के मध्य तीव्र विरोध पाया जाता है। इस युग में आश्चर्यजनक सैद्धान्तक उन्नति हुई है। परन्तु कुछ शक्तिशाली देशों ने कार्यरूप में ऐसी नीचता दिखाई है जिसकी आशा मूर्ख और अपराधी जाति के बच्चों से भी नहीं की जा सकती।

ऐसी अवस्था अधिक समय तक नहीं चल सकती है। या तो, जिन्हें कार्यभार सौंपा गया है, उन्हें कुछ सुबुद्धि ग्रहण करना होगी या विज्ञान तथा विचारों में अवनति होगी।

यह कहना अनावश्यक है कि मैं युद्ध की बात सोच रहा हूँ। यदि महायुद्ध संसार को ग्रस्त करते रहेंगे तो वैज्ञानिक उन्नति शीघ्र ही असम्भव हो जाएगी। कोई भी इससे इन्कार नहीं कर सकता कि भविष्य में महायुद्ध हो सकते हैं। किन्तु फिर भी मैं, अनुसंधान और उन्नति की दिशा में क्या आशा की जा सकती है, यह बतलाना चाहता हूँ। मैं यह मानकर चलता हूँ कि अब इस शताब्दी में ऐसे युद्ध नहीं होंगे जिनका विश्वव्यापी विनाशकारी प्रभाव पड़े।

इस शताब्दी में विज्ञान के प्रत्येक विभाग में आशातीत उन्नति हुई है किन्तु सबसे अधिक भौतिक-विज्ञान में। जब मैं किशोर था तब से अब तक के समय में भौतिक विज्ञाता तथा ज्योतिष शास्त्रज्ञ अपने बीच सूक्ष्मतम तथा वृहत्तम पदार्थ के विषय में पहले की अपेक्षा अत्यधिक जान गये हैं : मेरा अभिप्राय परमाणु तथा नाक्षत्रिक जगत से है।

## आइनस्टीन और अन्य

परमाणु सम्बन्धी हुए अनुसंधानों की अपेक्षा विश्व-सम्बन्धी हुए अनुसंधानों की ओर मनुष्यों का ध्यान कम आकर्षित हुआ है, क्योंकि अभी उनकी युद्ध में कोई उपयोगिता नहीं है। परन्तु शुद्ध ज्ञान के रूप में वह उतने ही आकर्षक और आश्चर्यजनक हैं। विश्व संबंधी हमारे ज्ञान-क्षेत्र में आइनस्टीन तथा परमाणु सम्बन्धी ज्ञान-क्षेत्र में रदरफोर्ड और बोर मार्ग-दर्शक हैं।

ब्रह्मांड एक निश्चित समय से है और इसका विस्तार निश्चित है तथापि यह निरन्तर बढ़ रहा है। इसके सब दूर के भाग हमसे दूर होते जा रहे हैं और जितने ही वे हमसे दूर हो रहे हैं उनकी दूर हटने की गति भी बढ़ रही है।

हो सकता है कि कुछ बहुत दूरी के भाग प्रकाश की गति से भी अधिक गति से हमसे दूर हट रहे हों और तब हम उन्हें कभी भी नहीं देख सकते चाहे कितना ही शक्तिशाली दूरदर्शक यंत्र हमे सुलभ हो। क्योंकि उनसे मुक्त प्रकाश, जिस स्थान से प्रकाश मुक्त होकर आ रहा है, उसके पश्चात् कभी भी नहीं आ सकता है। यहाँ तक यह ज्ञान उपयोगी नहीं है अर्थात् एक दूसरे को मारने में इससे कोई सहायता नहीं मिलती है।

परमाणु सम्बन्धी हमारा ज्ञान अभी बिल्कुल भी पूर्ण नहीं है। अब से ३० वर्ष पहिले यह अभी की अपेक्षा पूर्णता के अधिक निकट दिखाई देता था। तब विश्वास किया जाता था कि प्रत्येक परमाणु दो प्रकार के कणों, इलैक्ट्रोनों और प्रोटोनों से संघटित है।

तमाम प्रोटोन तथा कुछ इलैक्ट्रोन केन्द्र में जमे रहते हैं और शेष इलैक्ट्रोन केन्द्र के चारों ओर उसी भाँति परिभ्रमण करते रहते हैं जिस भाँति सूर्य के चारों ओर ग्रह। केन्द्र में स्थित प्रोटोनों की संख्या के अनुसार तत्व परस्पर विभिन्नता प्रदर्शित करते हैं।

केन्द्र के बाहर के इलैक्ट्रोन कुछ चक्रों में स्थित रहते हैं। कुछ तो केन्द्र से समीप तथा कुछ उससे दूर।

सबसे वाह्य चक्र की जाँच रश्मि-विश्लेषक यंत्र द्वारा, आन्तरिक चक्रों की क्ष-रश्मियों द्वारा तथा केन्द्र की रेडियो क्रियाशीलता द्वारा हो सकती है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि उपरोक्त 'चित्र' अत्यधिक सरल था। इलैक्ट्रोनों तथा प्रोटोनों के अतिरिक्त न्यूट्रान तथा पोजिट्रान नामक कण भी पाये गये। इनके अतिरिक्त कई अन्य कण भी पाये गये। परन्तु अभी भी मोटे रूप में यह समझने के लिये कि परमाणु क्या है, पुराना सरल चित्र प्रयुक्त हो सकता है।

अभी तक यह सोचा जाता था कि किसी एक तत्व के सब परमाणु एक से हैं और अविभाज्य हैं। किन्तु अब हम यह जानते हैं कि ऐसी बात नहीं है। अब हर कोई यह जानता है कि सामान्य यूरेनियम में तीन प्रकार के परमाणु होते हैं जिनमें से केवल एक ही प्रकार के परमाणु-बम बनाने में उपयुक्त हैं।

## नये परमाणु

अब परमाणु के अविभाज्य होने के स्थान पर भारी तत्व के परमाणु को तोड़ कर हल्के तत्व के दो परमाणु प्राप्त हो सकते हैं। प्रकृति में यह घटना रेडियो क्रियाशील तत्वों में घटित होती है। कृत्रिम रूप में यह घटना प्रयोगशाला में भी घटित की जा सकती है। इतना ही नहीं अब हम नई जाति के परमाणुओं का भी निर्माण कर सकते हैं। उदाहरणार्थ प्लुटोनियम एक ऐसा तत्व है जो मनुष्य द्वारा बनाये जाने से पूर्व नहीं पाया जाता था।

परमाणु भौतिक विज्ञान का सम्पूर्ण विषय अभी अपने शैशवकाल में ही है और सैद्धान्तिक व क्रियात्मक उन्नति के रूप में तर्कसंगत आशा की मर्यादा कठिनता से खींची जा सकती है। यह निस्संदेह है कि पर्वतों को तोड़कर तथा नदियों के प्रवाह को बदल कर भूगोल में परिवर्तन संभव होगा। शायद जलवायु में भी परिवर्तन संभव होगा। शायद कई क्षेत्र जो अभी मरुस्थल दिखाई देते हैं, उन्हें उर्वरा भूमि के रूप में परिणित किया जा सकेगा।

चन्द्रमा तक अस्त्र को फेंकना सम्भवतः अब कठिन न होगा। यद्यपि यह समझना सरल नहीं है कि वापसी यात्रा का प्रबन्ध कैसे किया जावेगा। ऐसी अवस्था में प्रथम यात्रा अवश्यमेव अत्यन्त संकटापन्न होगी। संभवतः जो कोई भी स्टालिन का उत्तराधिकारी बनने में असफल रहेगा उसकी सोवियत रूस के चन्द्र प्रान्त के प्रमुख कमिसार (komissar) के स्थान पर नियुक्ति की जावेगी। यदि वह लौट सके तो उसे लौटने की आज्ञा भी दी जावेगी।

प्राणीशास्त्र में अभी तक ऐसी विस्मयकारी कोई बात नहीं हुई है जैसी कि भौतिक विज्ञान में। किन्तु भविष्य की महान संभावनाएं काफी आकर्षक हैं। उत्पत्ति शास्त्र का मेंडेल का सिद्धान्त रूस में निषिद्ध है; क्योंकि उसके नियम सोवियत सरकार को संतुष्ट करने में अत्यन्त मंद हैं। किन्तु वंश-परम्परा में इससे जो परिज्ञान प्राप्त होता है उससे महान परिवर्तन सम्भव हो गये हैं। अभी तक इसकी सहायता से घरेलू पशु और पौधों की नस्ल सुधारी जा सकी है।

ऐसा प्रतीत होता है कि वंश-परम्परा जनि (Genes) पर निर्भर है जो कि सामान्यतया बाकी के शरीर में कुछ भी होने पर अप्रभावित रहते हैं। किन्तु यह ज्ञात हो चुका है कि जनि (Genes) क्ष-रश्मियों द्वारा प्रभावित हो जाते हैं। यद्यपि यह प्रभाव अभी तक सदैव बुरा पाया गया है।

सम्भवतः भविष्य में अच्छा प्रभाव पैदा करना भी ज्ञात हो जाएगा। यदि हम इन साधनों द्वारा मनुष्यों के सहजात स्वरूप को निर्धारित कर सकें तो परिणाम आश्चर्यजनक होंगे। सम्भवतः वे अत्यन्त दुःखद हों, कारण शायद राजनीतिज्ञों के विचार इस विषय में, कि वे किस प्रकार के मनुष्य चाहेंगे, खास ठीक होने की सम्भावना कम है। स्पष्टतया आधीनता व पार्टी वफादारी के गुणों को अधिकारीगण अधिक महत्त्व देंगे।

## परीक्षण-नली से जीव

प्राणीशास्त्रज्ञों द्वारा जीवित पदार्थ का निर्माण

शीघ्र ही होने की संभावना को दूर नहीं किया जा सकता है। अधिक से अधिक कार्बनिक समासों (Organic compounds) का प्रयोगशाला में बनाया जाना संभव हो रहा है और प्रतीत नहीं होता है कि हम सीमा बनाकर कह सकेंगे कि विज्ञान इसे पार नहीं कर सकता।

यह ठीक है कि यदि जीवित पदार्थ कृत्रिम विधि से बनाया गया तो वह पदार्थ अत्यन्त सूक्ष्म और प्रारंभिक होगा, और लाखों वर्षों में जाकर उसका इतना विकास संभव हो पावेगा कि उसे अणुवीक्षण यंत्र की सहायता बिना देखा जा सके। मैं आशा करता हूँ कि वह कोई विनाशकारी बैक्टिरिया न होगा जो कि उसके निर्माताओं को ही नष्ट करना शुरू कर दे।

मनुष्य का मस्तिष्क वैज्ञानिक प्रक्रियाओं के अधीन होने वाली अंतिम वस्तु है। केवल इसीलिये नहीं कि इसे समझना जटिल और कठिन है बल्कि इसलिये कि हम यह सोचने के लिये तैयार नहीं हैं कि हमारे मस्तिष्क भी नियम पालन करते हैं। हम सब जानते हैं कि दूसरों के मस्तिष्क ऐसा करते हैं। हम जानते हैं कि फलां-फलां ढोंगी थोड़ा सा ही उकसाने पर अपने मित्र फलां-फलां नवाब का नाम लेगा; किन्तु हम सोचते हैं कि हमारा स्वयं का मस्तिष्क इतना यांत्रिक नहीं है।

हम जो चाहते हैं वही करते हैं और कोई भी भाग्यहीन वैज्ञानिक मना करने वाला नहीं है। यह ठीक है किन्तु फिर भी मनोविज्ञान दूसरों के मस्तिष्क की गति-विधि का अध्ययन करने के लिये हैं।

मेरे काल से पूर्व दो व्यक्तियों ने मस्तिष्क का व्यवहार समझने में दूसरों से अधिक कार्य किया है। मेरा अभिप्राय पावलोव और फ्राइड से है। उनके तरीके परस्पर सर्वथा भिन्न हैं और सामान्यतया एक के अनुयायी दूसरों के अनुयायियों को घृणा करते हैं परन्तु यह आवश्यक है कि दोनों की ओर बराबर ध्यान दिया जाय।

## पावलोव के अनुसंधान

पावलोव जो रूसी क्रांति के दिनों में बिना क्रांति की ओर ध्यान दिये कार्य करता रहा; अंत में सोवियत सरकार ने उन्हें वैसी ही छूट दे दी जैसी कि जार के समय में टालस्टाय को प्राप्त थी। पावलोव ने पूर्णरूपेण बाह्य अवलोकन से कार्य किया, वह भी कुत्तों के, मनुष्यों के नहीं। यदि एक भूखे कुत्ते को मांस का टुकड़ा दिखाया जाय तो उसकी लार टपकेगी। यदि काफी समय तक जब भी वह मांस खाना प्रारंभ करे कुत्ते को विद्युत के धक्के दिये जावें तो अंत में कुत्ता मांस के प्रति उदासीन हो जावेगा और तब उत्तम से उत्तम भोजन का घ्राण मिलने पर भी उसकी लार का स्राव न होगा। पावलोव ने अपने कुत्ते में सब प्रकार के आन्तरिक भय बिठाये। यदि उसका किसी लड़कों के स्कूल पर निरंकुश अधिकार होता तो यह अनुमान किया जा सकता है कि उसके सब विद्यार्थी गुणों के मूर्तिमान रूप होते। कुत्तों की लार की मात्रा को बारीकी से नाप कर उसने जो खोजें कीं वे आश्चर्यजनक हैं।

परन्तु पावलोव का सम्बन्ध बाह्य व्यापार से ही था जबकि फ्राइड इच्छाओं, आवेगों और आन्तरिक प्रेरणाओं से, जिनसे कि बाह्य व्यवहार प्रकट होता है, सम्बन्ध रखता था। फ्राइड ने जैसा कि सर्वविदित है, सुप्त चेतन पर जोर दिया जिसके कारण हममें स्वप्न प्रेरित होते हैं और अचानक अनैच्छिक बोल निकल पड़ते हैं, और जिसके कारण हम ऐसे कार्य कर बैठते हैं जो स्वयं को अनपेक्षित और विस्मयकारी रहते हैं। बचपन के ऊपरी तौर पर भूले हुए अनुभवों और इच्छाओं, जोकि हमारे चेतन विचारानुसार एकदम लज्जा जनक होती हैं और इस कारण हम उनकी अनुभूति पर विश्वास करने को तैयार नहीं रहते हैं, के महत्व से उसने लोगों को अवगत कराया। और तबसे कई व्यक्ति अपने गुप्त विचारों में अपनी बुराइयों को स्वीकार कर तथा इससे भी अधिक अपने मित्रों में की बुराइयों को विचार कर दुर्दम आनन्द लेने लगे हैं।

जिस भांति बन्दर एक दूसरे के सिरों में जुएँ ढूँढते रहते हैं उसी प्रकार एक दूसरे को स्तम्भित करने वाली

बुराइयों को ढूँढना एक खेल हो गया है। यद्यपि इस प्रकार की बातों ने आम फ्राइडवाद को जरा हास्यास्पद बनाया है, फिर भी किसी को भी इस बात से इन्कार नहीं होना चाहिये कि फ्राइड ने उन बड़ी महत्व की बातों की ओर ध्यान आकर्षित कराया जिनका महत्वपूर्ण वैज्ञानिकों ने बुरी तरह कम कर रक्खा था।

शिराहीनि ग्रंथियाँ ( Ductless Glands ) और उनके स्राव के अध्ययन ने हमारे आवेगों के कारण पर नया प्रकाश डाला है। जो कार्य ये ग्रंथियाँ स्वाभाविक तौर पर करती हैं वह कार्य कृत्रिम तौर पर सुई ( Injection ) लगा कर भी किया जा सकता है। वास्तव में यह आंशिक रूप में प्राचीन ज्ञान ही है। हमें हमेशा से 'डच' साहस पैदा करने का तरीका व सैकड़ों वर्षों से भग का प्रभाव ज्ञात है।

नवीनता हमारे ज्ञान की बारीक सत्यता में तथा शिराहीन-ग्रंथियों द्वारा होने वाले कार्य की खोज में है। जो अपने दुःख को सुरापान में भुलाने का प्रयत्न करता है उसे हम बुरा कहते हैं। क्योंकि सुरा उसे बेकार कर देती है तथा बाद में बुरा प्रभाव छोड़ जाती है। परन्तु यदि कोई ऐसी औषधि खोजी जा सके—जो कि अवश्य खोजी जावेगी—जो कि बिना उक्त त्रुटियों के दुःख को भुला सके तो परिणाम विचित्र होंगे।

## सुरा से भी निकृष्ट

सरकार इस प्रकार की औषधि पर अवश्यमेव एकाधिपत्य रखेगी और असंतुष्ट लोगों को इसकी आवश्यक मात्रा देकर वह किसी भी विरोधी आंदोलन को दबा सकेगी। तानाशाही सरकार एक बार स्थापित हो जाने पर अपने दासों की भावनाओं का जो थोड़ा-सा ध्यान अभी रखती है तब वह भी न रखेगी। सम्भवतः यह मद्य से भी निकृष्ट वस्तु होगी यद्यपि इसमें बाद के बुरे प्रभावों का अभाव है।

समूह मनोविज्ञान जो अभी भी अपने शैशवकाल में ही है, के अध्ययन का अत्यन्त क्रियात्मक महत्त्व है। लगभग प्रत्येक ने उत्तेजनात्मक सभाओं के आवेश को अनुभव किया होगा जिनमें जो आवेश हम साधारण रूप में अनुभव करते हैं वह अन्य लोगों की उपस्थिति में, जो कि उसी आवेश को अनुभव कर रहे हैं बहुत बढ़ जाता है।

जब आवेश बुद्धिमत्तापूर्ण और सयाने हों तो लोगों को उपयोगी कार्य करने के लिये उत्तेजना दी जा सकती है। किन्तु जब ये आवेश दुष्टता तथा मूर्खतापूर्ण हों तब जनता के उन्माद से सब निकृष्ट व्यवहार प्रकट होता है। यथा मारपीट, वृद्धहत्या, किसी वर्ग के लोगों को त्रस्त व पीड़ित करना, अन्याय-युद्ध आदि।

आधुनिक तानाशाहियों ने जन-उन्माद उत्पन्न करने की कला का अध्ययन किया है। वे भीड़ गाजे-बाजे और चमक-दमक पसंद करते हैं। यदि मनुष्यों को कभी भी राजनीति में न्यायसंगत बनना है, तो उन्हें उस समय जब कि वे आवेशित हो रहे हों स्वयं से यह प्रश्न पूछने की आदत डालनी होगी, कि क्या मुझे वक्ता की बातों पर, यदि वह मुझे अकेले में शांति से, भीड़ से पृथक, गाजे बाजे व चमक-धमक के बिना कहे तो विश्वास करना चाहिये? अधिकांश अवस्थाओं में उत्तर नकारात्मक होगा। कारण, सत्य को आडम्बर की आवश्यकता नहीं होती है।

यहाँ पर भी गलत व्यक्तियों के अधिकार में ज्ञान खतरनाक है।

जब मैं इस प्रकार की वैज्ञानिक प्रगति, जो हो चुकी है या निकट भविष्य में होने वाली है, के प्रकाश में आने वाले पचास या सौ वर्षों के संभावित विकास पर विचार करता हूँ तो मैं मनुष्य जाति को एक अत्यन्त महान खतरे से घिरा हुआ पाता हूँ। मेरा अभिप्राय मानसिक दासता के खतरे से है।

जो कुछ भी घटित हो रहा है वह सरकारों की शक्ति में वृद्धि कर रहा है। भौतिक विज्ञान उन्हें उत्तम से उत्तम परमाणु-बम देगा। प्राणी शास्त्र उन्हें युद्ध में बैक्टीरिया का साधन और देगा। शरीर-शास्त्र तथा मनोविज्ञान उन्हें बतायेगा कि इच्छानुसार लोगों में भय और आवेश उत्पन्न किया जा सकता है। समूह-मनोविज्ञान उन्हें जन-उन्माद उत्पन्न करना सिखायेगा जिससे जनता समझ न सकेगी कि वे जो मूर्खतापूर्ण

त्याग कर रहे हैं, वह केवल शासकों की भलाई के लिये हैं।

आधुनिक विज्ञान से तानाशाही पूर्व से अत्यधिक कुत्सित हो रही है। प्राचीन उदार स्वतंत्रताओं का महत्त्व पहिले कभी भी इतना अधिक नहीं था।

विचारों, समाचार पत्रों, भाषण तथा सरकार की आलोचना करने की स्वतंत्रता और बहुमत चाहे तो सरकार को बदलने के वैधानिक ढंग ये सब प्राचीन आदर्श वचन भावावेग उत्पन्न करने की सामर्थ्य खो चुके हैं। कारण ये पुराने हो गये हैं। परन्तु आज इनका जो महत्त्व है वह मानव इतिहास में इससे पहिले कभी भी नहीं रहा है।

यह विचार मुझे एक अन्य मानव-विचारधारा की ओर ले जाता है। विज्ञान से जो निश्चित ज्ञान प्राप्त होता है वह मनुष्य जाति जो चाहती है उसके लिए पूर्ण नहीं है। कैसे जीवन व्यापन हो! किन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए वह चेष्टा करे और सुन्दर तथा घृणित के मध्य अन्तर, इन सब की भी वह एक निश्चित कल्पना (धारणा) चाहता है। ये वे बातें हैं जो मनुष्य ने धर्म, दर्शन, कविता तथा इतिहास के महान व्यक्तियों से प्राप्त की है।

कितना भी संगठन हो, कितना भी विज्ञान हो वे बेकार और ऊपरी मूल्यों को अर्थ युक्त नहीं बना सकते। ना ही अकेला विज्ञान बता सकता है कि एक प्रकार के मूल्यों को दूसरों की अपेक्षा पसन्द करना चाहिए।

आगामी अर्द्ध शताब्दी को दो विचारधाराओं में से जो कि जीवन को व्यापन योग्य बनाती हैं, एक विचारधारा को चुनना होगा। इनमें से एक विचारधारा को मैं पसन्द करता हूँ तथा दूसरी को मैं घृणा करता हूँ। हम इनमें से प्रत्येक विचारधारा के दावों को देखें और देखें कि वे किन बातों में भिन्न हैं।

जब मैं उन लोगों की निम्न और थोथी स्वीकारोक्ति पढ़ता हूँ जिन पर सोवियत सरकार अनर्थक और असम्भव अपराधों के ऐसे अपराधों के जिनके विषय में प्रत्येक अवगत है कि ये उन्होंने नहीं किये हैं, आरोप लगाती है तब मैं एक अमानुषिक लज्जा अनुभव करता हूँ; मुझे लगता है कि मनुष्य जाति का अधःपतन हो रहा है। और दंड देने वाले अपनी सफलता में जो खुशियाँ मनाते हैं वे उन बिचारे दंडित लोगों से भी अधिक पतित हैं।

इन सब को केवल दुष्टता के कारण मानकर ही मुझे संतोष नहीं होता है। किन्तु इससे भी अधिक गहराई पर बात है। और यह जीवन व्यापन की एक विचारधारा हैं; जिसे मैं तो अत्यन्त भयानक पाता हूँ।

## धर्मयुद्ध की पुनरावृत्ति

यह सोचना गलत है कि इन कट्टरपंथियों के साम्यवादी तंत्र में कोई नवीनता है यह केवल धर्मयुद्धों की पुनरावृत्ति है। असम्भव अपराधों को अब से अधिक तब स्वीकार किया जाता था। असंख्यों स्त्रियों ने जादू-टोने के दोष को स्वीकार किया और प्रमुख धर्म सैनिकों ने शैतान से अपने सम्बन्ध को स्वीकार किया।

तब की परिस्थिति दो बातों के मेल के फलस्वरूप थी। और आज दोनों ही फिर से रूस में मिली हुई हैं। एक ओर एक प्रणाली विशेष की मान्यता के लिये सच्चा और व्यापक विश्वास है। दूसरी ओर लोगों का ऐसा समूह है जिनके पास इस प्रणाली के अधिकृत संरक्षक और प्रतिनिधि होने के नाते महानशक्ति है। यह परिणाम अनेकों के सच्चे धर्मान्ध और कुछ के शक्ति-निमित्त का योग है।

जब भी इन दो बातों का—किसी विशेष कट्टरता को कायम रखने में सामान्य विश्वास का होना और ऐसे अधिकारी वर्ग का होना जिनके पास कट्टरता से मुँह मोड़ने वालों को दंड देने का अधिकार हो, योग होगा तब पीड़ा व मानसिक स्वतंत्रता का हरण देखने में आवेगा।

जब तक ये दोनों अवस्थाएं रहती हैं तब तक चाहे कैसी भी कट्टरता हो, परिणाम बहुत कुछ समान ही होगा। जनता को एक कट्टरता से दूसरी में बदलना सर्वथा अर्थहीन है।

इस शताब्दी के दूसरे अर्द्धभाग में वह उज्ज्वल बौद्धिवादी कार्य जो पहिले अर्द्धभाग में हुआ, जारी

रहेगा या नहीं यह मुख्यतः इस बात पर निर्भर है कि संसारव्यापी युद्धों को टाला जा सकेगा या नहीं; परन्तु यह उस संपीड़क कट्टरता से स्वतंत्रता के संरक्षण पर भी निर्भर है जिसे पश्चिमी यूरोप ने धर्मयुद्धों के अनिश्चित परिणामों के फलस्वरूप दुःख के साथ सीखा है।

केरेंस्की के अल्प शासन काल के अतिरिक्त रूस ने इस स्वतंत्रता को कभी भी नहीं भोगा है। केवल आठ मास के अन्तकाल के साथ रूस में जारशाही की असहनशीलता के स्थान पर साम्यवादी असहनशीलता स्थापित हो गई। रूसी साम्यवाद को प्रगतिशील व आधुनिक मानना एक महान भूल है। अपने सिद्धान्त व कार्य में यह पन्द्रह आने केवल मध्ययुगांतवाद का नवीन रूप है जिस मध्ययुगान्तवाद को रूस ने कभी भी नहीं त्यागा था।

जिनका साम्यवाद की ओर तनिक भी झुकाव है उनके प्रति अमरीकी असहनशीलता में एक गम्भीर भय है कि रूसी असहनशीलता के स्थान पर पश्चिम उसी खराबी की एक नई शकल ले आवेगा।

## कठिन मार्ग

एक शैतान को दूसरे शैतान की सहायता से दूर करने का मोह सदैव रहता है, क्योंकि ऊपरी तौर पर लक्ष्य प्राप्त करने का यह सरलतम मार्ग होता है। परन्तु यदि हमें वास्तव में लक्ष्य को पहुँचना है तो अधिक कठिन मार्ग अपनाना होगा।

पश्चिमी सभ्यता की एक मुख्य विशेषता इस अनुसंधान में है कि जो कुछ ज्ञान के रूप में है उसका अधिकांश अनिश्चित है। गैलिलियो को भौतिक शास्त्र तथा ज्योतिष शास्त्र का उससे बहुत कम ज्ञान था जितना कि उसके विरोधी सोचते थे कि वे जानते हैं।

एक कट्टर मार्क्सवादी अपने ख्याल में जितना जानता है उससे कम एक आधुनिक निष्पक्ष अर्थशास्त्रज्ञ व समाजशास्त्रज्ञ जानता है। और वह कम ही नहीं जानता है किन्तु यह भी जानता है कि वह जितना जानता है उसके विषय में वह बिलकुल निश्चित नहीं है। अनिश्चितता सुखकर नहीं है किन्तु यह उन्नति की कीमत है।

यदि संस्कृति की रक्षा करनी है तो रक्षकों को मतांधता के स्थान पर अनुसंधान को पसंद करते रहना होगा। और उनको मूर्ख अधिकारियों के अत्याचार से रक्षा करना होगी। इसी स्वतंत्रता के लिये गियार्डना बुनो ने मृत्यु पसंद की। गेलिलियो ने न्यायालय से कष्ट पाये और डेस्कार्टीज ने देश त्याग पसंद किया। ऐसा प्रतीत हुआ जैसे युद्ध जीत लिया गया है परन्तु जो शांति दिखाई दे रही थी वह केवल युद्ध विराम था।

केवल संस्कृति (अपने संकीर्ण अर्थ में) ही खतरे में नहीं है। क्या उत्तरी अक्षांश में गेहूँ पैदा हो सकेगा? क्या आस्ट्रेलिया की मरुभूमि उपजाऊ बनाई जा सकेगी? क्या भारत और चीन की निर्धनता दूर हो सकेगी? यदि विज्ञान स्वतंत्र रहता है तो उत्तर 'हाँ' हो सकता है अन्यथा 'नहीं'।

भौतिक संगठन और मानसिक स्वतंत्रता आने वाले युग की मुख्य मांगें हैं। यदि हम बुद्धिमान हैं तो हम इनका मेल कर सकते हैं। यदि हम मूर्ख हैं तो एक का दूसरे के लिये बलिदान करेंगे और संभवतः दोनों ही खो बैठेंगे। मैं आशा करता हूँ कि हम बुद्धिमत्ता दिखायेंगे।

# मांसाहारी पौधे (Carnivorous Plants)

श्री श्रीधर उपाध्याय, एम०, एस-सी० ( प्रथम वर्ष )

पौधे दो तरह के होते हैं। एक तो वह जो अपना भोजन अपने आप तैयार करते हैं और दूसरे वह जो कि दूसरों के भोजन पर निर्भर रहते हैं। पहले को "स्वतन्त्र पौधे" (Autotrophic Plants) और दूसरे को "परतन्त्र पौधे" (Heterotrophic Plants) कहते हैं। "परतन्त्र पौधे" (Heterotrophic Plants) दो प्रकार के होते और हैं वे निम्नांकित हैं :—

१—शाकाहारी (Vegetarian)

२—मांसाहारी (Non-vegetarian)

शाकाहारी पौधे वह हैं जो दूसरों द्वारा तैयार किया हुआ भोजन खुद ले लेते हैं जैसे अमरबेल। यह पौधा जिस पेड़ के सहारे ऊपर उठता है उसी का भोजन ले लेता है। नीचे दी हुई शक्ल में अमरबेल दिखलाया गया है।

यह पौधा जड़ रहित होता है और अपना भोजन आप ही आप न बनाने की वजह से पीला भी होता है।

जानवर प्रतिदिन ही पेड़ पौधे खाते हैं, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं; परन्तु यह असम्भव सा प्रतीत होता है कि पेड़ पौधे भी जानवरों को खाते हैं। ऐसे पौधे जिनका कि जीवन निर्वाह छोटे छोटे कीड़े मकोड़ों से होता है मांसाहारी पौधे (Carnivorous Plants) कहे जाते हैं। इन पौधों का विभाजन इनके भोजन पकड़ने के तरीके पर किया गया है। इस आधार पर सब मांसाहारी पौधे चार भागों में वितरित किये गये हैं। ये निम्नांकित है :—

१—पहले तो वह हैं जिनकी पत्तियाँ घड़े के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं और इन्हें घड़ा या पिचर (Pitcher) पौधा कहते हैं। ये पौधे ज्यादातर पहाड़ी हिस्सों में पाये जाते हैं। इनके पौधे छोटे छोटे होते हैं और दूसरे पौधों के सहारे ऊपर उठते हैं। इनकी शक्ल नीचे दी हुई है।
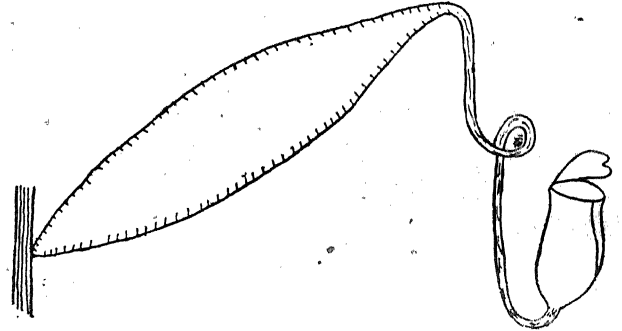
एक Pitcher करीब १ से ६ इंच तक लंबा होता है। कुछ दिनों के बाद इसका मुँह जो कि पहले एक ढक्कन से ढका होता है, खुल जाता है। इसके मुंह पर कुछ बाल होते हैं जो कि नीचे की तरफ झुके होते हैं। इसका प्रभाव यह होता है कि कोई कीड़ा यदि भोजन की तालाश में नीचे जाता है तो बचना या निकलना असम्भव रहता है। यही कीड़े इन पौधों के भोजन होते हैं।

२—दूसरे पौधे वह हैं जिनकी पत्तियाँ चेतन-बाल (Sensitive Hairs) से ढकी हुई होती हैं। इन चेतन बालों के सिरे पर एक थैला (gland) होता है जिससे कि एक मीठा सा द्रव निकलता है। इस पौधे का नाम सन ड्यू (Sundew) है। इनके पौधे कुछ इंच ऊँचे होते हैं। इस पौधे की शक्ल नीचे दी हुई है।

जो द्रव निकलता है वह सूर्य की रोशनी में ऐसे चमकता है जैसे ओस बिन्दु। इसीलिए इस पौधे का नाम ही सनड्यू (Sundew) रक्खा गया है, जिसका
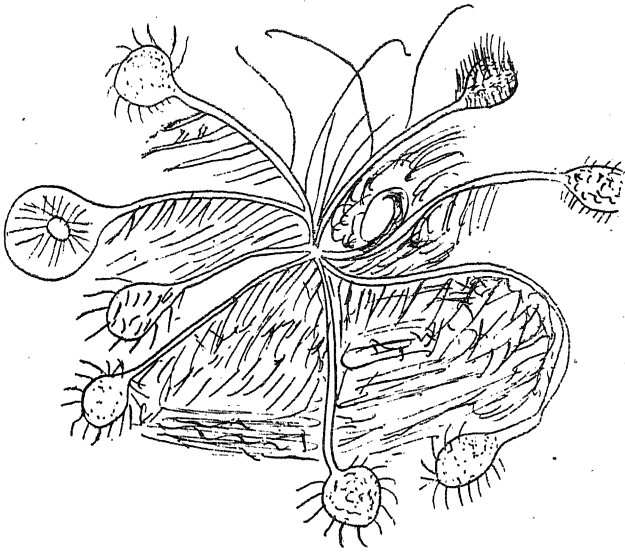
अर्थ है सूर्य की उपस्थित में ओस। धन्य है उस ईश्वर की लीला को जिसने इस छोटे से पौधे को भी ऐसा बनाया जो कि वह भी अपना शिकार पकड़ लेता हैं। छोटे कीड़े इस द्रव को शहद समझ कर उसको लेने के लिए बैठ जाते हैं। बैठते ही कीड़े द्रव में फँस जाते और चारों तरफ़ से हैंचेतन बाल (Sensitive hairs) इनको ढक लेते हैं। थोड़ी देर में जब कीड़ा मर जाता है तो इसके बदन के नाइट्रोजन युक्त पदार्थ (Nitrogenous Substances) पौधे द्वारा ले लिए जाते हैं और यही इस पौधे का भोजन होता है।

३—तीसरी तरह के पौधे ऐसे होते हैं जिनकी पत्तियाँ बहुत ही कटी फटी होती हैं और यही थैले के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं। इसके पौधे को ब्लैडर वोर्ट (Bladderwort) कहते हैं। यह पौधा या तो पानी के सतह पर तैरता रहता है अथवा कुछ डूबा सा रहता है। इस पौधे में कोई जड़ नहीं होती जैसा कि नीचे दिखाया गया है—

इस थैले की बनावट बहुत ही विचित्र होती है। इसके मुँह पर एक दरवाजा सा होता है जो कि बाहर से भीतर की तरफ़ तो खुलता है पर भीतर से बाहर की तरफ़ नहीं खुलता अर्थात् बाहर से तो भीतर जाना आसान है पर भीतर से बाहर आना मुश्किल है, इस वजह से कीड़े भोजन की तलाश में भीतर तो चले जाते हैं पर बाहर नहीं आ सकते और इन पौधों के शिकार हो जाते हैं। थैले का भीतरी भाग छोटे छोटे थैलों से भरा होता है जिनसे द्रव निकलता है और वह भोजन को पचाने में मदद करता है।

४—इस श्रेणी में वह पौधे आते हैं जिनकी पत्तियों की सतह पर शिकारी (Trigger) बाल होते हैं जैसे एल्ड्रोवान्दा (Aldrovanda) यह पौधा सब जगह आसानी से पाया जाता है और भारतवर्ष में सुन्दरबन में बहुतायत से होता है। यह जड़ रहित पौधा पानी की सतह पर पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ गोलाकार होती है और बीच से मुड़कर बन्द हो सकती हैं जैसा कि नीचे चित्र में दिखाया गया है:—
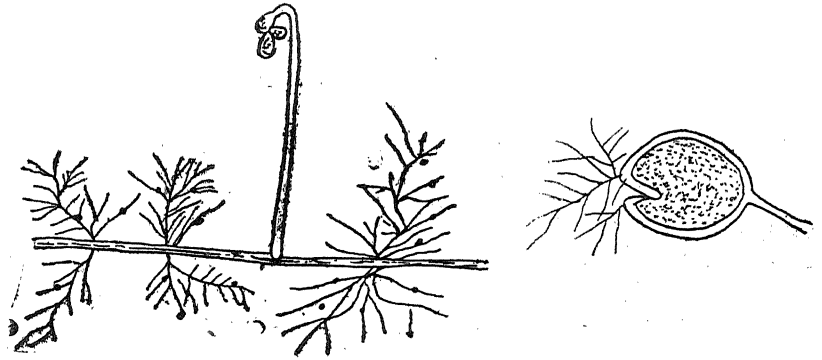
शिकारी बाल ऐसे होते हैं कि जिनके स्पर्श मात्र से हो पत्ती बन्द हो जाती है। फलस्वरूप यदि कोई कीड़ा पत्ती पर बैठता है तो इस पौधे का भोजन हो
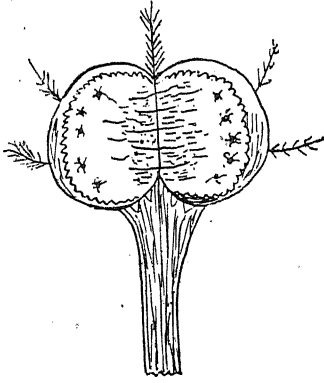
जाता है।

इस तरह से इन पौधों का जीवन निर्वाह दूसरे जानवरों से होता है। इसमें फँसने वाले कीड़े मकोड़े छोटे होते हैं। ये पौधे मैदानों में कम पाये जाते हैं। और इनको दूसरों के भोजन पर निर्भर रहना पड़ता है।

# कारखानों की व्यर्थ वस्तुओं का उपयोग

## ३७वीं इन्डियन साइन्स कांग्रेस, पूना, १९५०

रसायन-शास्त्र विभाग के सभापति—डाक्टर जे० के० चौधरी, पी-एच० डी०, एफ० एन० आई०, का भाषण

( अनुवादक—श्री बालकृष्ण अवस्थी, एम० एस-सी० )

'बेकार' (Waste) शब्द का प्रयोग करना उचित नहीं है। जो वस्तु आज बेकार समझी जाती है, हो सकता है कि वही वस्तु कल सबसे महत्वपूर्ण सिद्ध हो। यह बात अब अच्छी प्रकार विदित है कि कोयले के जलाने से जो अन्य क्रियाफल (Bye-products) निकलते हैं वह मुख्य पदार्थ से अधिक महत्वपूर्ण हैं। मोनेज़ाइट बालू (Monazite sand) को लीजिये। यह ट्रावंकोर के पास समुद्र के किनारों पर बहुतायत से पाया जाता है। एक ज़माने में यह बिलकुल बेकार समझा जाता था। भारी होने के कारण जो जहाज़ भारत से वापस जाते थे, उनमें यह बैलेस्ट (ballast) के रूप में प्रयोग किया जाता था। थोरियम धातु गैस की बत्तियों को बनाने में प्रयोग की जाती है। बाद में यह पता चला कि थोरियम सबसे अधिक मोनेज़ाइट बालू में ही पाई पाया जाता है जिसको लोग पहले व्यर्थ समझा करते थे। सीरियम इस धातु से मिलकर मिश्र धातु (alloy) बनाता है। चूंकि थोरियम यूरेनियम धातु के समान ही है जो अणु-शक्ति में प्रयोग किया जाता है इससे उसकी महत्ता इस युग में और बढ़ गई है और आजकल मोनेज़ाइट बालू देश के लिए एक बहुत आवश्यक पदार्थ समझा जाता है।

रसायन शास्त्र का एक बड़ा भारी काम यह भी रहा है कि सस्ती चीज़ों को बहुमूल्य वस्तुओं में परिवर्तित कर दे। यद्यपि आजकल के रसायनज्ञ का अभिप्राय यह नहीं होता कि धातुओं से सोना बनाये, तो भी कम मूल्य वाली चीज़ को मूल्यवान् चीज़ में बदलने का ध्यान सदैव उसके मस्तिष्क में रहता है। कच्चे माल में में जो अस्वच्छतायें रहती हैं वे तरह तरह के रासायनिक पदार्थों की क्रियाओं से जो उनको निकालते समय होती हैं, बहुत से व्यर्थ पदार्थों में बदल जाती हैं जो तीनों

रूपों में पाये जा सकते हैं—ठोस, तरल व वाष्प। कभी कभी तो इनकी मात्रा चाहे हुये पदार्थों से भी अधिक होती है। ठोस पदार्थ तो कूड़े में फेंक दिये जाते हैं जो कि सारे मोहल्ले के लिए कष्टदायक हो जाते हैं। वाष्प वाले व्यर्थ पदार्थ वायु में मिल जाते हैं और यदि कोई उपयोग उनका न किया जाय तो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो जाते हैं। पानी के साथ वे नदियों और नालों को दूषित कर देते हैं और इस प्रकार से उस जल में ही नहीं वरन् आसपास रहने वालों के लिए एक भय हो जाता है।

देश में अधिक मिलें व कारखाने चलाने का प्रयोजन किया जा रहा है। इससे शहर व देहात दोनों जगहों में आबादी बढ़ेगी और साथ साथ यह व्याकुलता और भी बढ़ेगी। यह कारखानों का उत्तरदायित्व है कि वे अपने अपने व्यर्थ-समस्या को किसी प्रकार हल करें जैसा कि पश्चिमी देशों में में होता है। बहुमूल्य मशीनें इस काम के लिए लगाई जाती हैं और काफ़ी रुपया इस पर व्यय किया जाता है कि उन व्यर्थ वस्तुओं से जो कि उनके यहां निकलती हैं, ऐसी चीज़ें कैसे बनावें जो कि बेची जा सकें।

व्यर्थ पदार्थों का उपयोग करना इस बात पर निर्भर है कि सब क्रियाओं में कितना व्यय पड़ता है। जहाँ पर इससे लाभ दीख पड़ता है, वहीं पर कारखाने वाले उस काम को करने का साहस करते हैं पर यदि उसमें हानि होती है तो उसको निजी उद्योगपति कभी नहीं करना चाहेंगे। कभी कभी एक कारखाने का व्यर्थ पदार्थ दूसरे पास के कारखाने के लिए कच्चा बाना (raw material) होता है और इस प्रकार से कारखानों का एक समूह एक स्थान पर बन सकता है जिनमें प्रत्येक एक दूसरे पर निर्भर हो। यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि वह कूड़ा-करकट, अथवा व्यर्थ पदार्थ जिस उद्योग द्वारा पैदा होता है, उसी का यह कर्तव्य है कि उसको ठिकाने लगाये। उनपर जो व्यय हो, उसको भी अन्य मुख्य व्ययों में सम्मिलित करके ही उन भिन्न भिन्न पदार्थों के दाम लगाना चाहिए जो उनमें बनते हैं। यदि व्यय इतना अधिक हो कि वह उद्योग अकेले उसको न संभाल सके, तो उस दशा में सरकार को रुपये-पैसे से तथा विशेषज्ञ सहायता करनी चाहिए।

यदि कोई उद्योग देश के लिए महत्व का है तो उसमें केवल यही न देखना चाहिए कि इसमें लाभ होता है या नहीं। भारत का आकार व आबादी देखते हुये वह आवश्यक कच्चे सामान में और देशों से अधिक गरीब हैं। गन्धक, खाद, खनिज तेल (mineral oil) और बहुत से धातु जैसे सीसा, जस्ता, कैडमियम, वैनेडियम, मालिब्डिनम आदि के लिए प्राकृतिक द्वारा बिलकुल सन्तोषजनक नहीं है। इसको हमको सुधारना है और इसमें वैज्ञानिक प्रयोगों का सहारा लेना चाहिए।

## गन्धक का निकालना

(Recovery of Sulphur)

गन्धक बहुत सी ईंधन गैसों में हाइड्रोजन सल्फ़ाइड या सल्फ़्यूरेटेड हाइड्रोजन के रूप में पाया जाता है। इनको स्वच्छ बनाने के लिए हाइड्रोजन सल्फ़ाइड को जहाँ तक हो सके एकदम अलग कर देना चाहिए। कोयले के जलने में सल्फ़र डाई आक्साइड भी बनती है और इस गैस से भी गन्धक निकाला जाता है। गन्धक के खनिजों (ores) को गलाने में भी यह गैस पैदा होती है। यह वायु में मिल कर बनस्पति जीवन, औद्योगिक मशीनों और घर की चीजों को हानि पहुँचाती है।

**हाइड्रोजन सल्फ़ाइड का उपयोग**—जर्मनी में यह बड़ी मात्रा में किया जाता है। इससे उसको दूसरे देशों पर इसके लिए निर्भर नहीं रहना पड़ा। गन्धक निकालने के लिए सब ईंधन गैसों जैसे coke oven gas, synthetic gas आदि का प्रयोग किया जाता है। आँकड़ों से पता चलता है कि जर्मनी में गन्धक की पैदावार सन् १९२७ में जितनी थी, सन् १९४१ में उससे कहीं अधिक बढ़ गई। लड़ाई के समय में जर्मनी में संयोगात्मक तेलों (Synthetic oils) की पैदावार बहुत बढ़ गई और इसी के साथ साथ गन्धक का निकलना भी बढ़ गया। अमरीका में प्राकृतिक रूप में बड़ी मात्रा में गन्धक पाया जाता है, तथापि प्राकृतिक

तथा औद्योगिक गैसों में पाये जाने वाले हाइड्रोजन सल्फ़ाइड से गन्धक का बनाना सबसे अधिक प्रयोग में लाया जाता है। इसका अधिक भाग गन्धक की तेजाब के रूप में बदल लिया जाता है।

भिन्न भिन्न गैसों से हाइड्रोजन सल्फ़ाइड बनाने के लिए मुख्यतः दो विधियाँ काम में लाई जाती हैं सूखी विधि व गीली विधि, कोक ईंधन की गैस (coke oven gas) को अब भी पुराने तरीके से आशक्त लौह आक्साइड (hydrated iron oxide) के ऊपर ले जाकर साफ करते हैं। जब गन्धक की मात्रा ४० से ५० प्रतिशत के लगभग हो जाती है तो उसके सोखे जाने की शक्ति कम हो जाती है। जर्मनी में यह गन्धक कार्बन डाई सल्फ़ाइड द्वारा निकाला जाता है। अमरीका में इस क्रिया में बचे आक्साइड का कोई प्रयोग नहीं किया जाता और इंगलैंड में उससे कुछ गन्धक की तेजाब बना ली जाती है। पर यह कहा जा सकता है कि कोई अल्पव्ययी और सन्तोषजनक प्रयोग इस बचे आक्साइड का जो कि इतनी अधिक मात्रा में ईंधन गैसों को साफ़ करने में प्रयोग होता है नहीं है। जर्मनी में हाइड्रोजन सल्फ़ाइड को क्रियाशील कार्बन की उपस्थित में आक्सीकृत करके गन्धक बनाते हैं।

गीली विधि गन्धक को निकालने के लिए अधिक उपयुक्त है। जो नई रीति अब निकाली गई है उसमें हाइड्रोजन सल्फ़ाइड सब निकल आती है और व्यय भी कम पड़ता है। यह तीन श्रेणी के होते हैं।

(अ) जब एमोनियाँ उपस्थित रहती है तो हवा से हाइड्रोजन सल्फ़ाइड आक्सीकृत हो जाता है और यह फिर एमोनियम सल्फ़ेट के रूप में बदल जाता है।

(ब) हाइड्रोजन सल्फ़ाइड को घोल में रसायनिक पदार्थों द्वारा आक्सीकृत करते हैं। फिर उसको हवा फूंक कर निकाल लेते हैं। इस विधि से गन्धक महीन कणों के रूप में इकट्ठा किया जाता है।

(स) हाइड्रोजन सल्फ़ाइड उचित घोल में कम तापक्रम पर सोख लिया जाता है और गरम करने में वह स्वच्छ अवस्था में निकलता है। फिर उसको या तो तेजाब में बदल देते हैं या तत्व की अवस्था में रहने देते हैं।

(अ) का प्रयोग जर्मनी में किया जाता है। यह अधिक लाभदायक सिद्ध नहीं होता है। (ब) में थाइलॉक्स विधि का उपयोग किया जाता है। इसके अनुसार सोडियम थायोआरसेनेट (Sodium thioarsenate) का घोल जिसमें ०.७% संखिया (arsenious oxide) होता है, प्रयोग किया जाता है। pH ७.६ से ८.० तक रहता है। इस घोल को एक ऊँचे टावर में पम्प करते हैं और हवा फूंकने से गन्धक ऊपर तैर आता है जिसको छान लेते हैं। इस विधि द्वारा कम व्यय में पूरा हाइड्रोजन सल्फाइड निकाला जा सकता है। अमरीका, जापान और जर्मनी में यह काम में लाया जाता है। एक दूसरी रीति में हाइड्रोजन सल्फ़ाइड को सोखने के लिए प्रशननील (ferric ferrocyanide) का इस्तेमाल करते हैं। एक दूसरा तरीका निकिल विधि, भी अमरीका में प्रचलित है।

(स) में दो तरीकों का इस्तेमाल होता है। फ़ीनोलेट विधि अमरीका में और अल्काज़िड विधि जर्मनी में। इनके अतिरिक्त अन्य रीतियाँ भी प्रयोग में लाई जाती हैं।

फ़ीनोलेट विधि में सोडियम फ़ीनोलेट का गाढ़ा घोल प्रयोग करते हैं। यह २५°से० पर हाइड्रोजन सल्फ़ाइड को सोख लेता है क्योंकि इस तापक्रम पर हाइड्रोजन सल्फ़ाइड फ़ीनोल से तेज़ अम्ल है। जब इसको उबाला जाता है तो फ़ीनोल तेज़ अम्ल हो जाता है और वह हाइड्रोजन सल्फ़ाइड को बाहर निकाल देता है। जब हमें ६०% हाइड्रोजन सल्फ़ाइड निकालना होता है तो एक श्रेणी-विधि प्रयोग करते हैं और जब सारा हाइड्रोजन सल्फ़ाइड निकालने की आवश्यकता होती है तो दो-श्रेणी विधि प्रयोग करते हैं जिसमें प्रति पौंड हाइड्रोजन सल्फ़ाइड निकालने में ३५ पौंड भाप का खर्च होता है। अमरीका (U. S. A.) में प्राकृतिक और औद्योगिक गैसों के लिए यह तरीका इस्तेमाल किया जाता है और इसमें अधिक दबाव लगता है। पर यह कम दबाव वाली गैसों के लिए भी प्रयोग किया जाता है

में बदल लेते हैं। इस विधि में भी हाल में कुछ सुधार किये गये हैं और इंगलैंड व जर्मनी में इसका उपयोग होता है। हमने देखा कि कई प्रकार से गन्धक निकाला जाता है और पुराने तरीकों में बराबर सुधार होते रहते हैं। प्रत्येक में कुछ न कुछ लाभ और हानियाँ हैं।

**सलफ़र-डाई आक्साइड का प्रयोग**—बहुत अधिक मात्रा में गन्धक सलफ़र डाई आक्साइड के रूप में व्यर्थ चला जाता है जो कि कोयले के जलने में और गन्धक के खनिज गलाने में निकलती है। जब तक सलफ़र डाई आक्साइड ७प्र० से अधिक होती है तब तक कोई कठिनाई नहीं होती जैसे पाइराइटीज़ या जस्ते के खनिज को गलाने में होता है। पर अधिकतर उसकी मात्रा ०-५ से २ प्र० तक रहती है और इस दशा में उसका निकालना कठिन होता है। इन सबों में जो सलफ़र डाई आक्साइड निकलती है वह वायु में मिल जाती है और जीवधारियों व पेड़ पौधों दोनों के लिये हानिकारक होती है। इसके अतिरिक्त घरों और मिलों की धातु की वस्तुओं पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता है और उनके खराब हो जाने से आर्थिक हानि भी इससे होती है।

लगभग गत १० वर्षों से इस ओर काफी काम सफलतापूर्वक हुआ है और कई विधियाँ निकाली गई हैं जिनके द्वारा व्यर्थ जाने वाली सलफ़र डाई आक्साइड का उपयोग होता है। सबों का मुख्य सिद्धान्त यह है कि पहले गैसों से शोषकों (absorbents) द्वारा सलफ़र डाई आक्साइड को खालिस (pure) अवस्था में अलग कर लेते हैं जो कि उसको गरम करने से निकल आती है। यह सलफ़र डाई आक्साइड कई कामों के लिये प्रयोग की जाती है, जैसे तेजाब व कागज़ की लुगदी (pulp) बनाने में। इसको गन्धक में भी बदल सकते हैं। इस रूप में इसकी बिक्री अधिक होती है और एक जगह से दूसरी जगह ले जाने में सरलता पड़ती है।

जो बहुत महत्व की विधियाँ (processes) हैं वह नीचे दी जा रही हैं।

(१) कैनाडा में एक कम्पनी में एमोनिया को प्रयोग करते हैं। सलफरडाई आक्साइड को यह सोख लेती है और एमोनियम बाई सलफाइट व कुछ सलफाइट बनता है। जब गन्धक के तेजाब की क्रिया इस पर होती है तो एमोनियम सलफेट बन कर सलफ़र डाई आक्साइड सान्द्ररूप में निकलती है। इससे या तो तेजाब बनाते हैं या प्रारम्भिक गन्धक में अवकृत करते हैं।

जर्मनी में बिना गन्धक के तेजाब के ही गैसों से हवा व एमोनिया की उपस्थिति में एमोनियम सलफेट बना लेते हैं।

(२) यह सल्फिडीन रीति कहलाती है और जर्मनी में प्रयोग की जाती है। इसमें सोखने के लिये पानी में एरोमेटिक अमीन का अवलम्बित घोल (suspension) काम में लाते हैं। जैसे जैसे सलफ़रडाई आक्साइड उसमे सोखती जाती है, वैसे-वैसे सलफाइट का घोल बनता जाता है। इसे ८० से १०० डिग्री तक गरम करने पर स्वच्छ सलफ़र डाई आक्साइड निकलती है। एरोमेटिक अमीन अघुलनशील होने के कारण अलग कर लिया जाता है और फिर उसको प्रयोग कर लेते हैं। जर्मनी में यह तरीका सफलता पूर्वक इस्तेमाल किया जाता है।

(३) इंपीरियल केमिकल इंडस्ट्रीज़ की रीति—इसमें बेसिक एलूमीनियम सलफेट प्रयोग करते हैं। गरम करने पर लगभग स्वच्छ सलफ़र डाईआक्साइड निकलती है।

सलफ़र डाई आक्साइड से गन्धक बनाने के लिये या तो कोयले की भट्टियों की गैसों द्वारा उत्प्रेरक अवकरण किया जाता है। या दूसरी विधि के अनुसार पहले सलफ़र डाई आक्साइड को ९००—१२०० डिग्री पर कोक द्वारा अवकृत करते हैं और फिर इन गैस पदार्थों को सलफ़र डाई आक्साइड के साथ पुनः ५००—७०० डिग्री पर गरम करते हैं जब कि उसमें मिली अशुद्धियां दूर हो जाती हैं। इसमें एक ओर गन्धक बनता है और दूसरी ओर कार्बन डाई अक्साइड निकलती है।

भारत में गन्धक की वार्षिक आवश्यकता ४५००० से ५०००० टन की है जो कि सारा का सारा बाहर से मँगा कर पूरी की जाती है। बाहर से सब से अधिक रसायनिक पदार्थ जो भारत आते हैं वह हैं सोडा ऐश और कास्टिक सोडा। इन दोनों के बाद गन्धक का ही नम्बर आता है। यदि यह सब देश के अन्दर ही बनाया जाने

लगे तो ५० लाख रुपये की बचत हो जाय। आसाम में गन्धक मिले हुए कोयले बहुतायत से पाये जाते हैं जिसमें गन्धक की मात्रा औसत में ४ प्रतिशत होती है इनका प्रयोग साधारणतः भट्टियों में किया जाता है ! इस कारण धुंवाली गैसों में सलफर डाई आक्साइड ०.२ से ०.५ प्रतिशत ही होता है। अच्छी भट्टियों में कोयले को कम हवा में जलाते हैं जिससे उसकी ($SO_2$ की) मात्रा अधिक हो जाती है। यदि इस कोयले को धीरे-धीरे कम तापक्रम पर जलाया जाय या हायड्रोजनयुक्त किया जाय तो उसमे हाइड्रोजन सलफाइड की मात्रा कहीं अधिक हो जावेगी और गन्धक को अल्प व्यय से निकाला जा सकता है।

कहा जाता है कि सिंगभूम जिले में चैलको पाइराइटीज को गलाने में सलफ़र डाई आक्साइड के रूप में लगभग २० टन गन्धक प्रतिदिन व्यर्थ चला जाता है। इसको प्रयोग करने का प्रयत्न करना चाहिये। उसके पास ही सिंदरी में एक बहुत बड़ा कारखाना सश्लेशित एमोनिया बनाने का है। एमोनिया को सिंदरी से सिंगभूम ले जाया जाय और वहाँ पर उसे पहली विधि से सलफ़र डाई आक्साइड से गन्धक बनाने के काम में लाया जाय। यदि सलफिडीन (२) या आई० सी० आई० की विधि (३) अधिक अल्पव्ययी हो तो जो सलफर डाई आक्साइड जो सिंगभूम में निकलती है उसको सिंदरी ले जाकर एमोनियम सलफ़ेट बनाने में उपयोग करें। आजकल इस काम के लिए जिप्सम को प्रयोग किया जाता है जो बहुत दूर-दूर से मंगाया जाता है।

## व्यर्थ पानी से फ़ीनोल का निकालना

आजकल भारत में लगभग २८ हज़ार रूपये का फ़ीनोल बाहरी देशों से मंगाया जाता है। यह पदार्थ व्यवसाय के लिये बहुत महत्व का है। रसायन तथा दवाइयों के उद्योग को बढ़ाना, प्लास्टिक का बनाना, गोला बारूद का बनाना आदि में इसकी बड़ी आवश्यकता होती है। कोयला जलाने के कारखानों का या टार डिस्टिलेशन के कारखानों का जो रद्दी पानी निकलता है उसमें पर्याप्तमात्रा में फ़ीनोल (कार्बोलिक एसिड) होता है जो कि नदियों में चला जाता है। वह कितनी ही थोड़ी मात्रा में क्यों न हो, पानी में खराब महक व स्वाद आ ही जाता है। यह नदियों का पीने वाला पानी जब क्लोरीन युक्त (chlorinate) किया जाता है तो फ़ीनोल एक दूसरे यौगिक में बदल जाता है जिसे 'पैरा-क्लोरो फ़ीनोल, कहते हैं। यह बहुत कम मात्रा में पानी में मिला रहता है तो भी एक विशेष दवा का सा स्वाद होने के कारण पहिचाना जा सकता है। प्राकृतिक आक्सीकरण से फ़ीनोल तो नष्ट हो जाता है पर दूसरा पदार्थ नहीं होता। इसलिये क्लोरीनयुक्त पीने के पानी में यह स्वाद सदैव के लिए हो जाता है। जब इस रद्दी पानी में फ़ीनोल की प्रतिशत मात्रा बहुत कम रहती है तो कीटाणुओं से आक्सीकरण द्वारा यह सरलता से नष्ट किया जा सकता है। ऐसा रद्दी पानी नालियों में बहा दिया जाता है, उससे फीनोल निकालने की कोशिश नहीं की जाती। पर एमोनिया स्टिल के निकले हुए पानी में फीनोल अधिक मात्रा में रहता है। इस पानी से बेंज़ीन, या दूसरे घोलक द्वारा फीनोल प्राप्त किया जाता है जो कि क्षार ( alkali ) डालने पर अलग हो जाता है। ट्राई क्रिसाइल फासफेट अधिक अच्छा सिद्ध हुआ है। इस तरह से प्राप्त किया हुआ फीनोल अशुद्ध होता है और प्रयोग करने से पूर्व इसको शुद्ध कर लिया जाता है।

अमरीका में एक दूसरी विधि से फीनोल अधिक शुद्ध अवस्था में निकाला जाता है। इसके गुण भी बहुत अच्छे होते हैं।

म्युनिसिपैलिटी के व्यर्थ पदार्थों का उपयोग—

म्युनिसिपैलिटी के व्यर्थ पदार्थ दो भागों में बाँटे जा सकते हैं—

(अ) सड़कों और घरों का कूड़ा-करकट,

(ब) गन्दा पानी।

शहरों में जैसे जैसे आबादी बढ़ती जाती है, वैसे वैसे यह चीजें भी बढ़ती जाती हैं। उनको किस सन्तोष जनक रीति से काम में लाया जाय, यह एक समस्या है। इन दोनों का अलग अलग उपाय है।

म्युनिसिपैलिटी का कूड़ा करकट—पुराना तरीका यह है कि उनको नीची जमीनों में और गड्ढों में भर देते हैं। पर ऐसा करने से आसपास वालों को बुरी गन्ध

आती है। स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक है। एक दूसरा तरीका यह है कि उसको जला कर भस्म कर दे। इसकी गरमी पैदा करने की शक्ति का उपयोग भाप और बिजली बनाने में भी किया गया। गरमी पैदा करने की शक्ति अकार्बनिक पदार्थ (राख, कंक्रीट आदि) और नमी के कारण और घट जाती है और इसलिए उसको ईंधन की तौर पर प्रयोग करना सरल नहीं है। इनको जलाने से जो राख बचती है वह सड़कों को बनाने के लिए बहुत बढ़िया सिद्ध हुई है। सीमेंट में मिलाकर यह राख मकान बनाने व फरश बनाने में प्रयोग की जाती है।

इस कूड़ा करकट को प्रोड्यूसर गैस बनाने में उपयोग करने का भी प्रयत्न किया गया और कम ताप क्रम पर जलाने का भी। अन्य प्रयोगों में मकान बनाने के हलके सामान भी हैं। पर इनमें से कोई बड़ी मात्रा में संतोष जनक सिद्ध नहीं हुए।

कूड़े (refuse) को प्रयोग करने के पहिले यह जान लेना आवश्यक है कि उसमें कौन कौन सी चीजें मौजूद हैं। अधिकतर जो अकार्बनिक पदार्थ इसमें पाये जाते हैं वह हैं, टीन के टुकड़े, अन्य धातुओं के टुकड़े, रसोई घर की राख, कांच, पत्थर व ईंटों के टुकड़े और इसी प्रकार की अन्य वस्तुयें। कार्बनिक पदार्थ जो कूड़े में बहुधा पाये जाते हैं, वह हैं—कम्बल, कागज, हड्डियाँ, पके हुये भोज्य पदार्थ तथा घरों और सड़कों का कूड़ा करकट।

यदि यह सब बीन कर अलग कर लिये जायं तो प्रयोग किये जा सकते हैं। इस काम के लिए प्रायः औरतें मजदूर रक्खी जाती हैं। यह आवश्यक पदार्थों को बीन लेती हैं जैसे टीन के बरतन; लोहे की कतरन, रबड़, कागज, काँच, कम्बल आदि। इनको फिर उचित कारखानों में भेज दिया जाता है जहाँ यह raw material की तरह प्रयोग किये जाते हैं। इस प्रकार से कोई भी भाग व्यर्थ नहीं जाता। सन १६३६-३७ में जर्मनी के हर एक शहर में यह कानून लागू कर दिया गया था कि हर एक कूड़े को बीना जायगा। ऐसा करने से बहुत सा सामान काम में लाया गया जो व्यर्थ चला गया होता। उदाहरण के लिए उस साल २८०,००० टन कम्बल कूड़ों से निकाल कर इकट्ठा किया गया।

जो कार्बनिक पदार्थ अब उसमें शेष रह जाता है उसमें नाइट्रोजन, फासफोरस, पोटैशियम व कैलशियम रहता है। इनको यदि मिट्टी में मिला दिया जाय तो पौधों को खाद्य-पदार्थ भी मिल जायेंगे और कार्बनिक पदार्थ विघटित होकर ह्यूमस (humus) में बदल जाता है जो मिट्टी का रंग रूप ठीक रखता है। पुरानी रीति यह थी कि उसको जमीन में फैला देते थे और जोतने पर वह नीचे ऊपर मिट्टी में मिल जाता है। पर बाद में इसमें सुधार किया गया। अमरीका में कूड़े को बन्द करके भाप से कई घंटे तक गरम किया गया, पानी व चरबी को अलग कर लिया गया और जो चीज बची, उसको सुखा कर कुचल लिया गया। इस चीज को नकली खाद (artificial manure) की तरह प्रयोग किया गया। ताजा कूड़ा बीमारी फैलाता था और सबसे अधिक प्रभाव उन पेड़ पौधों पर पड़ा जो लवण से बिगड़ते थे। पर कुछ समय पश्चात् उसमें पानी को सोखने की शक्ति भी आ गई। इस काम के लिए जो समय की आवश्यकता होती थी, वह बहुत लम्बा था। बहुत से तरीके निकाले गये जिससे यह 'कम्पोस्टिंग' की क्रिया शीघ्र हो जाय। बेकारी की रीति में तापक्रम बढ़ जाता है और ३८ दिन लगते हैं। कहीं कहीं २-३ माह भी लग जाते थे। एक जगह इसको नाली के पानी से मिलाकर पकाते हैं। श्री सी० एन० आचार्य की विधि भी भारत के कई म्युनिसिपल बोर्ड में प्रयोग की जाती है और इससे जो खाद बनती है वह उच्च श्रेणी की पाई गई है।

केंसिगटन के 'रायल बरो' में जिस विधि से काम लेते हैं, वह संक्षेप में यह है। कूड़े को बड़े गड्ढों में भर देते हैं ताकि उसमें धूल का प्रवेश न हो सके। फिर मशीन द्वारा इसको टावर के छत पर ले जाया जाता है जहाँ से यह अलग अलग कमरों में जाता है। यहाँ पर कागज, धातुयें, काँच, कम्बल आदि हाथ से बीन लिये जाते हैं। फिर इसको कुचलने वाली मशीन पर ले जाते हैं और बैक्टीरिया का लाइन (Culture) मिला दिया जाता है। फर्मेन्टेशन आरम्भ हो जाता जाता है और १६ दिन तक

चलता है। तापक्रम १७० से १७५ डिग्री तक हो जाता है। इस क्रिया में जो गैसें निकलती हैं, उनको चिमनी द्वारा बाहर निकालते हैं जिससे वह ईंधन के काम भी आ सकें। जो भाग शेष बचता है, उसमें नाइट्रोजन ०.९७ से १.४२ प्रतिशत और नमी ३०% रहती है। इस खाद की परीक्षा की गई और यह परिणाम निकला कि गोबर की खाद से यह अच्छी है।

**नालों का गन्दा पानी**—बड़े बड़े शहरों में इस पानी को सफाई के साथ निकालना और फेंकना होता है। इस काम के लिए म्युनिसिपैलटियों के ऊपर व्यय का अधिक बोझ पड़ जाता है। छानबीन करने से मालूम हुआ कि किफायत के साथ इस काम को किया जा सकता है।

इस पानी में मनुष्यों का पाखाना, शहरका गन्दा पानी, और कारखानों से निकला हुआ पानी मिला होता है। मनुष्यों के पाखाने में बहुत बड़ी मात्रा में कार्बनिक पदार्थ होते हैं। इनके अतिरिक्त नाइट्रोजन, फासफोरस और पोटैशियम भी होते हैं। बहुत से बैक्टीरिका, फफूंदी तथा अन्य कीटाणु भी इसमें होते हैं। इसलिए इन कीटाणुओं का भी उचित उपयोग करना चाहिए।

आरम्भ में इस पानी को सीधा नदियों में ले जाकर डाल देते थे। इससे अपने आप उसकी सफाई हो जाती थी। कुछ भाग पानी में घुल कर आक्सीकृत हो जाता था, कुछ पर कीटाणुओं की क्रिया होती थी और गैसें उसमें से निकलती थीं और कुछ भाग बिना घुला हुआ नीचे बैठ जाता था। पर नदी थोड़ा ही गन्दा पानी इस प्रकार ग्रहण कर सकती है, अधिक मिल जाने पर पानी गंदा हो जावेगा। यह उस नदी को लम्बाई-चौड़ाई और पानी के बहाव पर निर्भर है। बाद में एक सुधार हुआ जिसके कारण नदियों में फेंकने से पहले मैले (sludge) को निथार कर अलग कर लेते थे।

उसके बाद यह सोचा गया कि इस पानी को खेती के काम में लाया जाय। उसको दूर खेतों में ले जाकर डाल देते थे और उस पर जलवायु का प्रभाव पड़ता था। कार्बनिक पदार्थ ह्यूमस में परिवर्तित हो जाता था जिसमें सूखे मौसम में पानी सोख रखने की शक्ति होती है। मिट्टी को उपजाऊ बनाने में नाइट्रोजन, फासफोरस पोटैशियम का भी प्रभाव पड़ता था। मौसम का बड़ा प्रभाव पड़ता है। बहुत अधिक गन्दा पानी प्रयोग करना भी हानिकारक है और उससे एक बीमारी हो जाती है जिसे मिट्टी की बीमारी (soil sickness) कहते हैं। जर्मनी में देखा गया कि प्रति २.४७ एकड़ भूमि पर १०० मनुष्यों का गन्दा पानी वहाँ की रेतीली भूमि के लिये उचित है। तरकारियों के लिये यह ठीक नहीं पाया गया। जिन फसलों में एलबूमिन होता है उनके लिये यह अधिक उपयोगी है और प्रोटीन की मात्रा बढ़ जाती है। मुआमनियम की खोज से पता चला कि गन्ने की खेती भी ऐसा करने से अच्छी होती है। पर इस रीति का प्रयोग अधिक नहीं किया जाता। कारण यह कि कुछ ही विशेष प्रकार की मिट्टियों पर इसका प्रभाव पड़ता है। नाइट्रोजन कार्बनिक रूप में रहती है और इसलिए उसका कुछ ही भाग वनस्पति के काम का है। इस विधि में बड़े कीमती नलों की आवश्यकता है और पम्प करने के लिये भी स्टेशन होने चाहिये। इन सबों में अधिक धन खर्च होता है।

पहले बतलाई गई विधि को हम अस्वाभाविक रीति से सहायता दे सकते हैं। कई प्रकार के बेक्टीरिया, aerobic तथा anaerobic जो कि गन्दे पानी में पाये जाते हैं उनका उपयोग करना चाहिये। aerobic fermentation से कार्बनिक पदार्थ कार्बन डाई आक्साइड और पानी में बदल जाते हैं। anaerobic fermentation से ९४ प्रतिशत मीथेन और कार्बनडाई आक्साइड बनते हैं। इसमें ७० प्रतिशत फीनोल होती है शेष ५.१ में हाइड्रजन, हाइड्रोजन सलफ़ाइड और अल्प मात्रा में आक्सीजन व नाइट्रोजन होते हैं। शुद्ध करने के पश्चात् इस गैस को फर्मंटेशन कोठरियों को गरम करने में प्रयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त और मशीने तथा मोटर गाड़ियाँ भी इससे चलाई जा सकती है। पेट्रोल की जगह पर भी यह प्रयोग की जाती है। जर्मनी में पेट्रोल आवश्यकता का ४-५ प्रतिशत काम इस गैस से होता था।

एनीरोबिक फर्मेंटेशन एरोबिक फर्मेंटेशन से सस्ता है। यह बन्द कमरों में एक विशेष तापक्रम पर किया जाता है और उनमे गैसों को बाहर निकालने के लिये पाइप होते हैं। जो पदार्थ अन्त में प्राप्त होता है, उसमें कार्बनिक पदार्थ बहुत होते हैं और उसकी महक व रंग अच्छा नहीं होता। इसको और अच्छा भी किया जा सकता है। दो प्रकार के तरीके प्रयोग किये जाते हैं—Trickle filters और air diffusion वाले टैंक। दोनों में अन्त में जो पानी बचता है उसका रंग भी हलका होता है और गन्ध भी कम होती है। पहली रीति अधिक पसन्द की जाती है। इस पानी को क्लोरीनयुक्त करके सिंचाई के काम में लाते हैं। इसको नहर के पानी में नहीं मिलाना चाहिए। Aerobic फर्मेंटेशन विधि से जो कीचड़ पैदा होता है वह खाद के काम के लिये बहुत अच्छा समझा जाता है। पानी इसमें ८५ प्रतिशत होता है। बाज़ार में बेचने से पहले थोड़ा पानी निकाल दिया जाता है और अब इसकी मात्रा ५० प्रतिशत होती है। इस प्रकार से गन्दे पानी को खेती के लिये उपयोग किया जाता है। उद्योग में इससे निकली हुई गैसें गरम करने के लिये प्रयोग की जाती है।

सब कार्बनिक पदार्थों को प्राकृतिक रीति से विघटित किया जा सकता है यद्यपि पदार्थों की बनावट भिन्न भिन्न होती है। कारखानों से निकले हुये रद्दी पानी को नालों के गन्दे पानी से मिलाकर सड़ाया जा सकता है। इस प्रकार से चमड़े के कारखानों से, कपड़ों की मिलों से, बूचड़खानों से तथा अन्य कार्बनिक रासायनिक कारखानों से निकाला हुआ पानी नदी में ले जाने से पहले प्रयोग किया जा सकता है।

उद्योग-धन्धों के अन्य व्यर्थ-पदार्थों का उपयोग भारत में निम्न श्रेणी कोयले का खजाना बहुत काफी है। पर वह कोयले जिनमें राख की मात्रा २५°/॰ से कम होती प्रायः बेकार समझे जाते हैं। बहुत बड़ी मात्रा में उनकी राख व्यर्थ चली जाती है। अधिक राख वाले कोयलों के बहुत से नये-नये प्रयोग होने लगे है जैसे दबाव (pressure) से कोयले के चूर को जलाना, boiler के लिये नये प्रकार की भट्टियाँ और धोने की रीतियाँ आदि। इन सबों के लिए व्यर्थ जाने वाला कोयले का चूरा प्रयोग कर लिया जाता है। तमाम कोयले की धूल गड्ढों के ऊपर एकत्रित हो जाती है जो कि वर्षा के पानी से नीची जगहों में बह जाता है। यदि इस पानी को तालाब में भर दें और साफ पानी ऊपर से निथार लें तो इस हानि को बचा सकते हैं। कोयले के कण नीचे बैठ जायेंगे और ऊपर का पानी सोतों में ले जाया जा सकता है। कोयला धोने की जगहों पर जो कीचड़ एकत्रित हो जाया करता है, वह मिट्टी के लिए बहुत लाभदायक होता है और पेड़-पौधों की बहुत सी बीमारियों को दूर करने के काम आता है।

कोयले की राख बड़ी मात्रा में व्यर्थ चली जाती है। जो मुख्य पदार्थ उसमें होते हैं, वह हैं—सिलिका, एलुमिन और फेरिक आक्साइड। इनकी मात्रा ८० से ९० प्रतिशत होती है। इनके अतिरिक्त चूना, मैगनीशिया, मैंगनीज के अक्साइड तथा कुछ एलकली धातुएँ ७-१५% तक होते हैं। शेष २-३% में बहुत से तत्व हैं, जैसे

दुष्प्राप्य धातुएँ—बेरीलियम, जिरेनियम, गैलियम, जरकोनियम आदि।

ट्रेस-धातुएँ (Trace metals)—निकिल, कोबाल्ट, वैनेडियम, मालिब्डिनम आदि।

बहुमूल्य धातुएँ—सोना, चाँदी, प्लैटिनम आदि।

आरम्भ में मिट्टी द्वारा ये बनस्पति में प्रवेश हुये। जब विघटित होकर कोयला बना तो इनकी मात्रा बढ़ गई। जब कोयला जलाया गया तो इनकी मात्रा राख में और भी बढ़ गई। यह देखा गया है कि 'गैरो हिल' के कोयले की राख में जिरेनियम ७·१% है। इसलिए भारतवर्ष में जिरेनियम निकालने के लिए यह एक अच्छा द्वारा है। पर अभी यह पता नहीं कि व्यय की दृष्टि से इसमें लाभ होगा या नहीं। प्रत्येक वस्तु जो इस क्रिया में बने या बचे, उसका उपयोग अति आवश्यक है। लोहा के आक्साइड को चुम्बक द्वारा अलग किया जा सकता है और बचे हुए पदार्थों को चूना मिला कर

सीमेंट में बदल लिया जाय।

कोयले के जलने से जो अन्य क्रिया फल (by products) निकलते हैं, उनके गुण तथा उपयोग हर एक को विदित हैं। कोयले से synthetic oil भी बनाया जाता है जो बड़ा महत्वपूर्ण है।

## धातु-शोधन की व्यर्थ वस्तुएँ

आजकल जिन खनिजों में धातु कम मात्रा में होती है, उनको भी प्रयोग किया जाता है और जो धूल बचती है उसमें तथा चिमनी के धुयें में से भी कई आवश्यक वस्तुयें निकाल ली जाती हैं। इस सम्बन्ध में २ नई रीतियाँ धातुओं को स्वच्छ अवस्था में निकालने के लिए काम में लाई जाती हैं—(i) डुबाव व तैराव विधि (sink and float process)) (ii) तैराव विधि (floatation process)। विशेषकर बाद वाली रीति कई स्थानों पर सफलता पूर्वक प्रयोग की जा रही है। मेटलर्जी के पुराने तरीकों में भी अनेक उन्नतियां की गई हैं। यूरोप में बहुत सी खानें जिनसे यह विश्वास किया जाता था कि कोई धातु निकालना सम्भव नहीं है, अब नये तरीकों से सफलता के साथ काम में लाई जा रही हैं। जो सामान बच रहता था, उसको पहले फेंक दिया जाता था पर अब उन्हीं से कई बहुमूल्य धातुयें निकाली जातीं है। उदाहरणार्थ जस्ते की ore को लीजिये। इसमें पाइराइटीज तथा बाक्साइट रहता है। इनको गैस भट्टियों (blast furnace) में गलाया जाता है। धुएँ की धूल से जस्ता और निकाला जाता है तथा बाक्साइट वाली ores से जो धूल बचती है वह सीमेंट की तरह प्रयोग कर ली जाती है। 'लाल कीचड़' बाक्साइट को बायर विधि से साफ करने में पैदा होता है और एलूमिनियम फैक्टरियों में एकत्रित हो जाता है। भारत में इस कीचड़ में एक धातु टिटैनियम अधिक होती है। कई लोगों ने इसकी परीक्षा की है।

धातु की धूल—(slag) लोहे और बिना लोहे वाली धातुओं को साफ करने में यह बड़ी मात्रा में एकत्रित हो जाती है। प्रति टन 'पिग लोहे' को बनाने में आधा टन यह धूल निकलती है। पिघलाकर उसमें भाप ले जाते हैं और उसको ऊन के रूप में बना लेते हैं जिसे slag wool कहते हैं। यह पदार्थ air conditioniong, refrigeration तथा अन्य कार्यों में प्रयोग होता है। जिस धूल में फासफोरस होता है, वह मिट्टी में मिलने पर पौधों के लिए लाभप्रद होतो है। इसके अतिरिक्त सड़क कूटने में, कंक्रीट बनाने आदि में भी प्रयोग की जाती है। अमेरिका में ४०% धूल इस प्रकार काम में लाई जाती है। शेष को या तो गड्ढो में भर देते हैं या समुद्र में फिकवा देते हैं।

बिना लोहे के उद्योग-कारखानों में धूल निकलती है, वह भी इसी प्रकार प्रयोग की जाती है। मध्य काल की इस धूल के जो ढेर लगे हैं, उनमें कई धातुयें पाई गई हैं। सीसा जस्ता वाली धूलों से यह धातुयें भाप बना कर निकाल ली जाती है।

## कागज के कारखानों के व्यर्थ पदार्थ

जो कच्चा बाना लुगदी तथा कागज़ बनाने के लिए प्रयोग होता है, उसमें ५०% सेलूलोज पदार्थ ऐसा होता है जिसको प्राप्त किया जा सकता है। शेष में लिग्निन, कार्बोहाइड्रेट तथा अन्य कार्बनिक पदार्थ होते हैं जो कागज़ बनाते समय निकाल दिये जाते हैं। इसके अतिरिक्त बहुत मा कीमती रेशे वाला पदार्थ पानी के साथ बह जाता है। यह सब नदियों में डाल दिया जाता है जिससे बहुत अशुद्धता होती है। यूरोप तथ अमेरिका में इसके विषय में खोज की जा रही है पर अभी तक कोई ऐसी विधि नहीं निकली है जिससे सरलता के साथ इसका प्रयोग किया जा सके।

हावर्ड विधि विशेष महत्व की है। इसमें व्यर्थ सल्फ़ाइट रस को चूने से आंशिक रूप में अवक्षेपित (fractionally precipitate) करते हैं। तीन अंश मिलते हैं—

(अ) इसमें कैलशियम सलफ़ाइट मिला होता है जिससे गन्धक प्राप्त होता है।

(ब) इस अंश में लिग्नोसल्फ्यूरिक एसिड का क्षार लवण होता है। यह सोडियम तथा मैग्नीशियम लवण के रूप में चमड़े के कमाने (tanning) में तथा पानी को खारे से मीठा करने में प्रयोग होता है।

(स) यह अंश पानी में बह जाता है और इसमें

कार्बोहाइड्रेट होते हैं।

हाल ही में 'इथाइल वैनिलेट' भोजन संरक्षण के लिए बहुत अच्छा सिद्ध हुआ है।

व्यर्थ जाने वाला सल्फ़ाइट घोल (liquor) खमीर द्वारा शराब में परिवर्तित कर लिया जाता है। जर्मनी में चूँकि शराब महंगी मिलती है, इससे यह शराब अच्छा काम देती है। खाने वाला yeast भी इसमें उगाया जा सकता है।

कहीं कहीं यह मैग्नीशियम बाई सल्फ़ाइट पकाने के काम में प्रयोग किया जाता है। इसको इतना गाढ़ा कर लेते हैं कि ४५% ठोस पदार्थ उसमें हो जाये। अब इसको पानी उबालने की भट्टियों में प्रयोग करते हैं और मैग्नीशियम आक्साइड को पुनः प्राप्त कर लिया जाता है। कैलशियम बाई सल्फ़ाइट के लिए यह ठीक नहीं पाया जाता।

यह बात विदित है कि कागज की मशीनों में पानी के साथ बहुत से रेशे वाला काम का पदार्थ बह जाता है। इस बहे हुये पानी को श्वेत जल (white water) कहते हैं। बहुत से तरीके जिनको सर्वबचत (save alls) कहते हैं, निकाले गये हैं जिनसे यह सब पदार्थ काम में लाये जाते हैं। कुछ विधियां ये हैं—(अ) महीन छन्नी से छानना (ब) कपड़े से छानना व (स) गाद (sediment) पैदा करना। सब से मुख्य अनुसन्धान जिसके द्वारा कोई पदार्थ व्यर्थ नहीं जाता, वह है बंद विधि (close system)। इसके द्वारा पानी से रेशों को अलग करने की कोई आवश्यकता नहीं। इस नई विधि से रेशों की कुल हानि केवल १% ही होती है।

## जंगलों के व्यर्थ पदार्थ

कई सालों से इसके ऊपर भी अन्वेषण हो रहे हैं। रद्दी किस्म की लकड़ी, लकड़ी का बुरादा, गन्ने का रस निकला हुआ भाग, तथा अन्य रेशेवाले पदार्थों के प्रयोग निकालना अति आवश्यक है। लकड़ी के स्रवण से निकले हुए पदार्थों का थोड़ा ही उपयोग होता है। लड़ाई के समय में कोयले से producer gas बनाते थे जो मोटर गाड़ियां चलाने के लिए पेट्रोल की जगह पर बहुतायत से प्रयोग की जाती थीं। २·५ किलोग्राम रद्दी लकड़ी से अन्त में लगभग १ लिटर पेट्रोल के बराबर गैस बनती है। पर लड़ाई के बाद पेट्रोल मिलने लगा और इसकी कोई आवश्यकता न रही। कई देशों में तो लकड़ी के व्यर्थ पदार्थों को जल से क्रिया करके शक्कर व जानवरों का चारा बना लेते हैं। इस शक्कर को पावर ऐलाकोहल (power alcohol) बनाने के काम भी लाया जा सकता है। ईस्ट भी इस पर उगाया जाता है। ईस्ट में प्रोटीन व विटामिन, दोनो पाये जाते हैं, इससे इस शक्कर पर ईस्ट (खमीर) का उगाना बहुत लाभ दायक है।

नीची श्रेणी वाले सेलूलोज़ (cellulose) पदार्थ दफ्ती (fibre board) बनाने के काम भी आते हैं। यह बोर्ड सिकुड़ता नहीं, जल व अग्निसिद्ध (waterproof व fireproof) किया जा सकता है और कई कामों में प्रयोग किया जा सकता है। इन fibrous पदार्थों को सीमेंट में मिला कर घर बनाने में भी इस्तेमाल किया गया है। बाजार में हर एक नाप के बने बनाये टुकड़े मिलते हैं जो बुरादा के बने रहते हैं। यह भारी दबाव को सह सकते हैं, इनमें पानी नहीं घुसने पाता, आरी से काटा जा सकता है और इनमें सरलता से कीलें भी गाड़ी जा सकती हैं।

## कारखानों से निकले व्यर्थ पदार्थ

ऊपर जितना उल्लेख किया गया है, उसके अतिरिक्त कई उदाहरण और दिये जा सकते हैं कि व्यर्थ चीज़ों को कैसे काम में लाय जाय। उनको यदि हम बिना प्रयोग किये हुये ही फेंक दें तो या तो वे वायु को दूषित कर देंगी या जल को। दोनों ही हम दैतिक जीवन में प्रयोग करते हैं और इस प्रकार दूषित हो जाने से बीमारी फैलने का भय रहता है। दूसरी बात यह है कि उनके द्वारा हम धन उपार्जन कर सकते हैं जिसको अन्य उपयुक्त कार्यों में व्यय किया जा सकता है। इसलिए व्यर्थ पदार्थों को फेंकने से पूर्व इन बातों पर भी विचार कर लेना चाहिए।

(१) वायु का दूषित होना—यह तरह तरह की गैसों, भाप तथा छोटे छोटे कणों द्वारा होता है जो हवा में बिखरे रहते हैं। इनमें से कुछ विषैले होते हैं, कुछ

खराब महक वाले होते हैं और कुछ जीवन तथा माल को हानि पहुँचाते हैं। एक सीमांत मान होता है जिससे अधिक यदि गैसें वायु में मिल जायं तो वह खतरनाक होता है। अधिकतर यह गैसें पृथ्वी की सतह पर ही रहती हैं। यदि इनको चिमनी द्वारा ऊपर ले जाकर छोड़ा जाय तो कुछ हद तक इस दूषित होने को बचाया जा सकता है। विलायत ( U. K. ) में यह पता लगाया गया है कि यदि चिमनी की ऊँचाई आस पास के मकानों से ढाई गुनी हो तो उनसे निकला हुआ धुआँ नीचे पहुँच कर पृथ्वी की वायु को दूषित नहीं कर सकता और वह हम लोगों को कोई हानि नहीं पहुँचाता। मौसमों का पहिले से पता लगाना (Meteorology) भी इसमें सहायक हो सकती है।

गैसें—सब से अधिक हानि सल्फर डाई आक्साइड से होती है। नमी की उपस्थिति में यह बरतनों को खा जाता है। साँस लेने में यदि अन्दर चली जाय तो खाँसी आती है। बनस्पति वर्ग के लिये भी हानिकारक है। यह उन कोयलों को जलाने से पैदा होती है जिनमें गन्धक होता है। पर भारत के कुछ जगहों (जैसे आसाम) के कोयलों को छोड़कर यहाँ के कोयले में गन्धक नहीं रहता। इनको किस प्रकार वायु से निकाल कर प्रयोग किया जाय, इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

हाइड्रोजन सल्फाइड को उसकी विशेष गन्ध से ही पहिचाना जा सकता है। यह जानवरों के लिए विषैली है। कार्बनडाई सल्फाइड, मरकैप्टन (mercaptans) आदि भी विषैले हैं। इनको धोने की विधि (scrubbing) द्वारा निकाला जा सकता है। यदि कम मात्रा में हों तो जलाकर सलफर डाई आक्साइड बना लिया जाता है। कार्बन मोनोक्साइड भी इसी प्रकार की हानि पहुँचाने वाली गैस है। क्लोरीन व तेजाब के धुएं भी धोने से अलग किये जा सकते हैं।

भाप—पेट्रोलियम के डिस्टिलेशन में, उड़ने वाले घोलक से निकालने में तथा अन्य इस प्रकार की क्रियाओं में भाप ऊपर निकलती है। जलवायु का प्रभाव भी इसपर पड़ता है। इसमें आग लगने का तथा विस्फोट का भय रहता है। देर तक सूंघना भी हानिकारक है। जहाँ से लीक होता हो उसको रोकना चाहिये, ऊपर हवा निकलने के लिए खिड़कियाँ होनी चाहिये तथा धोने (scrubbing) और अपशोषण (adsorption) क्रियाओं को प्रयोग करना चाहिये। यदि यह सब न किया जा सके तो उस भाप को जला देना चाहिए।

धुआँ और धूल—इन कारणों से पैदा होते हैं:—

(१) ताकत (power) पैदा करने वाली मशीनें जिनमें कोयला प्रयोग होता है और उसकी धूल व राख उड़ जाती है।

(२) धातुओं को गलाने के समय उनके महीन कण धुएँ में मिल जाते है

(३) सीमेंट फैक्टरियों में धुआँ निकलता है।

तथा(४) गाड़ियों के सड़क पर चलने से धूल उड़ा करती है।

बड़े शहरों में तो यह अधिक होता है और इससे बराबर परेशानी रहती है। फेफड़ों में धूल घुसने से बड़ी भयानक बीमारियाँ हो जाती हैं जिनका उपाय सरल नहीं है।

निम्नलिखित उपाय इसके लिए हैं—

(अ) बिजली द्वारा अवक्षेपित करना

(ब) गैसों को धोना

(स) सेन्ट्री फ्यूगल(centrifugal) अवक्षेपण

(ड) कपड़े से छानना।

पहली विधि सबसे संतोष जनक है। पर यह कीमती भी है जिसके कारण छोटी फैक्टरियों में लागू नहीं की जा सकती। बेकार सल्फाइट घोल को यदि गाढ़ा कर लिया जाय और पानी में घोल कर सड़कों पर छिड़का जाय तो धूल कम उड़ती है।

धुएँ की समस्या अधिक कठिन है। सब से सुन्दर उपाय यह है कि घर में जलाने वाले कोक को किसी उचित रीति से जलाया जाय। इसके अतिरिक्त जलाने के नये तरीके और ऊँची चिमनियों के प्रयोग से भी भट्ठियों के द्वारा हानि को रोका जा सकता है।

(२) पानी का दूषित होना—नदियाँ व सोते हमें लाभ भी पहुँचा सकते हैं और हानि भी। यह उस पर निर्भर है कि हम इसका कैसा उपयोग करते हैं। उद्योग

स्थानों का तथा घरों का पानी स्वच्छ रहना चाहिए। नदियों के पानी में भी जहाज़ चलते हैं, जीवधारी रहते हैं; इससे उसका भी स्वच्छ रहना अति आवश्यक है। जो पदार्थ जल को प्रायः दूषित करते हैं वे हैं, कार्बनिक (organic) पदार्थ, मिले हुए कण, अम्ल, क्षार तथा लवण। कार्बनिक पदार्थ सब से अधिक हानि करते हैं क्योंकि ये जल से आक्सीजन सोख लेते हैं जिससे उसकी मात्रा कम हो जाती है। जब आक्सीजन की मात्रा ४० भाग प्रति करोड़ से कम हो जाती है तो वह पीने योग्य नहीं रहता और जब वह २० भाग प्रति करोड़ से भी कम हो जाती है तो जल में रहने वाले जीवों का दम घुटने लगता है। आक्सीजन कम हो जाने के कारण पानी की गन्ध, स्वाद व रंग में भी अन्तर आ जाता है। जीवधारियों की आक्सीजन आवश्यकताओं (Biochemical oxygen demand) ( B. O. D.) के द्वारा हम यह मालूम कर सकते हैं कि कितनी मात्रा में जल दूषित हुआ है।

पानी में लटके हुए कण नीचे सतह में बैठ जाते हैं और वहाँ (anaerobic fermentation) होता है। यह पदार्थ पानी की ऊपरी सतह पर आ जाते हैं और गैस पानी से ऊपर निकलती दीख पड़ती है, बुलबुलों के द्वारा। यहाँ पर यह कई प्रकार से हानि पहुँचाते हैं। ऐसी अवस्था में सब से अच्छी रीति रासायनिक अवक्षेपण है। अम्लीय जल धातुओं आदि को खा जाता है और इसलिए उस जल पर चलने वाले जहाज़ों के लिए यह खतरनाक है। अम्ल बैक्टीरिया की बाढ़ भी कम हो जाती है। हम देख चुके हैं कि यह बैक्टीरिया नदियों में स्वशोधन कार्य्य (self purification process) के लिए बड़े लाभदयाक होते हैं। इसलिए अम्ल की उपस्थिति से हमें यह दूसरी हानि होती है। क्षार व लवण से रंग व स्वाद बिगड़ जाता है और बड़े पौधों के जीवन के लिए ये विषैले पदार्थ हैं। फीनोल भी विषैला होता है। जब पीने के पानी को क्लोरीनेट करते समय यह क्लोरोफ़ीनोल (chlorophenol) के रूप में बदल जाता है तो और भी विषैला हो जाता है।

पर पानी में सब से अधिक गन्दगी भी होती है, वह गन्दे नालों व कारखानों से बहे हुये पानी के कारण होती है। डिस्टिलरियों मे डिस्टिलेशन के पश्चात बचा हुआ सामान व कागज़, साबुन, चमड़े रसायन आदि के कारखाने से बचे हुए पदार्थ में अधिकतर कार्बनिक पदार्थ व कणु होते हैं। कोयले की खानों, लोहे व पेट्रोलियम के कारखानों से बहुत से लवण व अम्ल निकलते हैं। प्रत्येक उद्योगशाला से निकला व बचा हुआ सामान अन्य उद्योगशालाओं के सामान से भिन्न होता है। किसी में कोई पदार्थ अधिक होता है और किसी में कोई। रसायनशास्त्र व रसायन-इंजिनियरिङ्ग इन पदार्थों को प्रयोग करने में काफ़ी सहायक हो सकते हैं।

इनको बचाने के उपाय—किसी नदी या सोते की स्व शोधन (self-purification) करने की शक्ति पानी के बहाव पर निर्भर होती है जो हर मौसम में बदलती है। कारखानों से निकला हुआ कितना पदार्थ उसमें गिरता है इसका भी प्रभाव उस पर पड़ता है। एक सरल व सस्ता उपाय यह है कि उन पदार्थों को पतला कर के गन्दे नालों के पानी में मिला दिया जाय और कीटाणुओं की क्रिया उस पर की जाय।

इसके अतिरिक्त रसायनिक व भौतिक रीतियाँ भी हैं जैसे उस कारखाने से निकले हुए मिश्रित पानी को गुणों के अनुसार पृथक-पृथक भागों में बांटना, PH का उचित रखना निथारना, वायु-प्रवाह, क्लोरीनयुक्त तथा अवक्षेपण करना और छानना। अम्ल व क्षार की मात्रा उचित रखने के लिए चूना व गन्धक का तेजाब काम में लाया जाता है

इन उपायों में बराबर सुधार होता जाता है। धोने के स्थान पर शोषकों (adsorbents) जैसे क्रिया शील-कार्बन (activated carbon) का प्रयोग करते हैं। पानी को खारे से मीठा बनाने के लिए आयन परिवर्त्तन (on exchange). विधि अब अधिक काम में लाई जाती है। एम्बरलाइट रेज़ीन (Amberlite resins) भी पानी के साफ करने में व कारखाने के पानी से धातुयें निकालने के लिए प्रयोग किये जाते हैं। अन्य

रीतियों का भी उल्लेख पहले किया जा चुका है जो इस प्रकार से व्यर्थ जाने वाली वस्तुओं के उपयोग में लाने में सहायता देते हैं। सब से संतोषजनक उपाय तो यह है कि जहाँ से यह व्यर्थ पदार्थ निकलते हों, वहीं पर उन्हें रोक कर किसी न किसी चीज़ में प्रयोग कर लिया जाय।

## एक 'राष्ट्रीय कार्यक्रम' की आवश्यकता

देश में औद्योगीकरण होने जा रहा है। इस समय यह देखने की आवश्यकता है कि देश की दशा कैसी है व दूसरी ओर इन उद्योग धन्धों को बढ़ाने में क्या क्या हानियाँ होने की संभावना है। तभी हम इन सब का उपाय सोंचने में समर्थ हो सकतें हैं। गन्धक की कमी हमारे देश में सर्वबिदित है, रसायनिक पदार्थ यहाँ पर्याप्त मात्रा में नहीं बनते इसलिए बाहर से मँगाये जाते है। कारखानों के व्यर्थ पदार्थ से हमें खाद (fertilizers) मिल सकती है जिसकी इस समय भोजन पैदावार की वृद्धिकरने के लिए परम आवश्यकता है। मकान बनाने के लिए सामान भी कुछ हमें इन व्यर्थ पदार्थों से मिल सकतें हैं। ईंधन का काम भी इनसे निकाला जा सकता है। पर यह सब करने के बजाय हम लोग प्रति दिन जल व वायु को दूषित करते हैं और इसका प्रभाव स्वास्थ्य पर बड़ा गहरा पड़ता है। यह हम सब करना चाहते हैं पर सब से बड़ी कठिनाई हम लोगों के सम्मुख यह है कि हम यह नहीं जानते कि इसको कैसे किया जाय। पश्चिमी देशों की ओर ध्यान देने से हमें कुछ आशा मिल सकती है।

सब से आवश्यक है कि इन सब क्रियाओं का ज्ञान हो। इस समय हम कितना व्यर्थ पदार्थ एक साथ व अलग अलग निकालते हैं, इस बाबत एकदम अनभिज्ञ हैं। एक विशेषज्ञ कमेटी बननी चाहिए जिसका काम हो कि यह खोज करे कि जो दशा देश की इस समय है उस दशा में किन किन तरीकों को काम में लाया जाय कि हमारा अभिप्राय सफल हो सके। भिन्न-भिन्न सोतों व नदियों की स्व-शोधन (self purification) की शक्ति (capacity) भिन्न भिन्न मौसमों पर मालूम करनी चाहिए। पानी व हवा को अलग अलग स्थानों से इकट्ठा करके उसकी परीक्षा करनी चाहिए और ज्ञात करना चाहिए कि कौन कौन पदार्थ उसमें अधिक मात्रा में मिले हैं जिनके कारण वह दूषित हो गये हैं। इस कारण एक ऐसी समिति की परम आवश्यकता है जो इन सब बातों की छानबीन करे और उसकी रिपोर्ट पर विश्वास किया जाय। यूरोप और अमरीका में कई ऐसी कमेटी और कमीशन है जिनका यही काम है कि इन बातों की छान-बीन कर के रिपोर्ट दें।

दूसरी आवश्यकता इस बात की है कि सरकार की ओर से एक अधिकारी हो जिसका काम हो व्यर्थ पदार्थों के उपयोग करने का प्रचार करना। यह काम सरकार का ही है। प्रजा की भलाई व स्वास्थ्य का देख रेख करना उसी के हाथ में है। केन्द्रीय सरकार, प्रान्तीय सरकार म्युनिसिपैलटी, उद्योग-शालायें यह सब मिल कर एक प्रोग्राम बना सकते हैं जिससे सबों के सहयोग से काम होसके। इसमें वैज्ञानिकों, कारीगरों, राज्य कर्मचारियों और पूँजीपतियों सब के एक होकर चलने की आवश्यकता है। क्या सरकार से यह आशा की जाय कि वह इस काम को अपने हाथों लेगी? अथवा क्या यह उचित होगा कि एक भिन्न संस्था खोली जाय? इस संस्था का क्या रूप होना चाहिए व इसके क्या क्या काम होंगे, यह सब निश्चित करना पड़ेगा।

इन सबों से यह प्रतीत होता है कि हमे एक नेशनल कमेटी बनानी होगी जो इंगलैंड की रायल कमीशन और अमरीका की राष्ट्रीय रीसोर्सेज कमेटी (National resources committee) की भाँति होगी। इस कमेटी का बनाना सदैव के लिए स्थगित न कर देना चाहिए। समाज के प्रति हमारा एक कर्तव्य है। कुछ समय के लिए हम इसको टाल सकते हैं पर उससे जो हानि होगी उससे हम कभी नहीं बच सकते।

# अनामी भाषा की वैज्ञानिक शब्दावली

( ले०—डा० रघुवीर )

गत मास मुझे अनामी भाषा की बड़ी सुन्दर वैज्ञानिक शब्दावली की एक प्रति भेट रूप में प्राप्त हुई है। इसे मेरे मित्र श्री हो आंग ल्यूआन हान ने बनाया है। यह प्रति साइगोन से ६ दिसम्बर १६४८ को मेरे नाम भेजी गई थी और मुझ तक पहुँचने में इसे पूरा एक वर्ष और एक मास लगा। इस पुस्तक का नाम "दान्हतु खोआ होक" है। इसमें तोआन ( गणित ), ली ( भौतिकी ), होआ ( रसायन ), को ( यान्त्रिकी ) और थिएन वान (ज्यौतिष ) की वैज्ञानिक शब्दावली दी गई है। इसे साइगोन के प्रसिद्ध प्रकाशक "विन्ह बाओ" ने प्रकाशित किया है।

फ्रांसीसी भारत-चीन की भौगोलिक परिधि में अनाम, टोंकिङ्ग और कम्बोज तथा कुचीन और लाओस के उपनिवेश आते हैं। भारत चीन की पूर्वतटीय मेखला "अनाम" नाम से प्रसिद्ध है जिसकी लंबाई ७॥ सौ-८०० मील है और क्षेत्रफल ५६००० वर्गमील। १६३२ में इसकी जनसंख्या पचास लाख थी जिसमें १० लाख ईसाई थे जो विगत दो शतियों में प्राचीन बौद्ध धर्म से ईसाई बना लिए गए थे। शेष बौद्ध हैं। यहाँ शिक्षा फ्रेंच और फ्रेंच—अनामी दोनों प्रकार की होती है और पर्याप्त उन्नत है। १६१७ में जन-शिक्षा-संहिता में यह भी नियम बनाया गया कि प्रारंभिक पाठशालाओं में फ्रेंच की शिक्षा अनिवार्य की जाय। कुछ असन्तोष के कारण १६२४ में इस नियम के कुछ अपवाद माने गए जिनकी व्याख्या १८ सितंबर १६२४ के परिशिष्ट में की गई है। भारत चीन का विश्वविद्यालय हानोई में है। वास्तव में आनुष्ठानिक और सैद्धान्तिक शिक्षा देने वाली यह एक बहुशाखी उच्च पाठशाला मात्र है। १६ वीं शती के भारत के समान इसका उद्देश्य भी फ्रांसीसी शासकों के लिए अनामी सहायक और वकील, व्यापारी, तथा निर्माणियों में काम करने वाले व्यक्ति प्रस्तुत करना था।

अनाम का इतिहास ईसा से ३०० वर्ष पूर्व आरंभ होता है जब कि चीनियों ने इस देश पर आक्रमण किया था और अपने प्रभुत्व की स्थापना की थी। यह प्रभुत्व ईसीकी दसवीं शती तक रहा। ६६८ ई० में दिन्ह बोलान्ह ने सफलतापूर्वक चीनियों को निकाल बाहर किया और दिन्ह नामक स्वतंत्र राजवंश की स्थापना की। उस समय तक अनाम के अधिकांश भाग पर चामों ने अधिकार कर लिया था। इनपर हिंदू सभ्यता का प्रभाव था। १४०७ई० के लगभग अनाम पर पुनः चीनियों का अधिकार हो गया और वह १४२८ तक रहा। १८ वीं शती के अंत में अनाम की राजनीति पर फ्रांसीसी प्रभाव पड़ने लगा। १७८७ ई० में फ्रांस के राजा १६वें लुई के साथ गिआ-लोंग ने एक संधि की जिसके अनुसार सहायता के वचन के लिए उसने अपने तोरीन और पुलोकोंदोर नामक दो प्रान्त फ्रांस को दे दिए। इस सन्धि से ही भारत-चीन पर फ्रांसीसी प्रभाव का आरम्भ होता है।

आजकल समाचार-पत्रों में बीतनाम की चर्चा बहुत हो रही है। हमारे देश के विद्वत्समाज को बीत-नामियों के विषय में यह जानना रुचिकर होगा कि ये लोग किस प्रकार अपनी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे हैं और अपने भावों को प्रकट करने के लिए किस प्रकार वैज्ञानिक शब्दावली के निर्माण की समस्या को सुलझा रहे हैं। अनामियों की यह शब्दावली फ्रांसीसी भाषा से अनामी भाषा में बनाई गई है। विषय-प्रवेश में विद्वान् लेखक ने अपनी मानसिक पृष्ठ-भूमि का बड़े स्पष्ट शब्दों में दिग्दर्शन कराया है। अनामी भाषा चीनी परिवार की है। पास-पड़ौस की भाषाओं की तुलना में इस भाषा का साहित्य पर्याप्त अच्छा है।

श्री० हान ने अनामी शब्दावली का निर्माण करने के लिए तीन विकल्प रखे हैं:—

(१) फ्रेंच शब्दों का अनामी रूप में उच्चारण

(२) चीनी कोश से शब्द लेकर उनका अनामी रूप में उच्चारण

(३) पश्चिमी शब्द के अन्तर्गत विचार को व्यक्त करने के लिए अनामी भाषा के असमस्त और समस्त शब्द अथवा शब्द माला का निर्माण

शब्द-निर्माता की दृष्टि से श्री हान पहले विकल्प को सबसे सरल मानते हैं। किन्तु वे कहते हैं कि यूरोपीय शब्द दुर्भाग्यवश बहुत लम्बे होते हैं और उनका उच्चारण अनामी भाषा के अनुरूप बनाना कठिन है। अनामी लोग उनकी ध्वनियों का उच्चारण नहीं कर सकते और उनके कानों के लिए वे अग्राह्य हैं। यूरोपीय शब्दों की अविच्छिन्न शृंखला तो उनके लिए सर्वथा निराशाजनक ही होती है।

श्री हान का झुकाव, इसलिए, दूसरे विकल्प की ओर अधिक है क्योंकि उसमें उनको यह लाभ है कि वे शब्द अनामी भाषा के अन्य शब्दों में घुलमिल जाते हैं। अनामी भाषा में पहले ही सहस्रों चीनी शब्द विद्यमान हैं। श्री हान को इसमें केवल एक आक्षेप है कि, चीनी शब्दों का प्रयोग सब प्रान्तों में समान नहीं।

श्री हान को तीसरा विकल्प अनामी शब्दों का निर्माण अत्याधिक स्वाभाविक लगता है। किन्तु उनका कहना है कि यह विकल्प प्रत्येक शब्द के लिए प्रयुक्त नहीं हो सकता।

उनके प्रस्ताविक कुछ शब्द यहाँ उदाहरण रूप में देना मुझे उचित प्रतीत होता है। रासायनिक कतिपय उपसर्गों के लिए उनका अनुवाद इस प्रकार है—

| अँग्रेजी | अनामी |
|---|---|
| पाइरो | होना |
| मेटा | बिएन |
| आर्थो | चिन्ह |
| मेसो | गिउआ |
| मोनो | दोन |
| डाई | हाइ |
| मोनोपर | दोंगिआ |
| डिपेर | हाइगिना |
| पर | गिआ |
| हाइपो | नोन |

यूरोपीय मासों के सब नामों का अनुवाद किया गया है। जनवरी के लिए थांग गिएंग दुओंग-लिच रखा है।

| अँग्रेजी | अनामी |
|---|---|
| आक्टोबर | थांग मुओई दुओंग-लिच |
| नावेम्बर | थांग मोत दुओंग-लिच |
| डिसेम्बर | थांग चाप दुओंग-लिच |
| सेप्टेम्बर | थांग बाय दुओंग-लिच |

यह स्पष्ट है कि अनामी लोग इन शब्दों को यूरोपीय शब्दों से सरल समझते हैं।

यंत्रों के लिए, चाहे वे दैनिक कार्य के लिए हों चाहे विशेषज्ञों के काम आते हों, अनामियों के पास उनके अपने नाम है।

| अँग्रेजी | अनामी |
|---|---|
| ऐक्सेलैरेटर | लाम चो चोंग थेय |
| ऐकिनोमीटर | होआ क्वांग के |
| ऐम्प्लिफायर | माय खुऐच दाइ |
| ब्यूरेट | ओंग न्हि गिओत |
| एंजिन | खिकु |
| ऐक्सेलोग्राफ | गिआ तोक के |
| एरोप्लेन | माय बाय |
| बाइसिकल | क्शे हाइ बन्ह |
| इलेक्ट्रिक रेलवे | दुओंग सात दिएन |
| कैलाइडोस्कोप | किन्ह बान होआ |

| | | | |
|---|---|---|---|
| कैमेरा | माय होआत अन्ह | रेलवे | दुओंग सात |
| पेन्सिल | बुतचि | गइरोस्कोप | कोन क्वाय |
| लोको मोटिव | दाउ माय क्शे लुआ | | |

मेशीन के लिए साधारण शब्द माय है और न्यूमेटिक मेशीन के लिए माय हुत खि।

| | | | |
|---|---|---|---|
| मोटर | दोंग को | इलेक्ट्रिक मोटर | दोंग को दिएन |
| हाइड्रौलिक मोटर | दोंग को नुओक | आसिलोस्कोप | दाओ दोंग न्घिएम |
| थर्मामीटर | न्हिएत के | स्टीरिओग्राफिक फ़ोटोग्राफी | अन्ह त्रोंग नोई |
| फोटोमीटर | क्वांग के | | |
| फोटोफोन | क्वांग थोआइ | फोटोग्राफी | सु काच चुप अन्ह |
| रेडियो गोनिओमेट्री | फेप सुवो तुयेन दिएन दो गोक | रेडियो | वो तुयेन दिएन |

रेडियो से आरम्भ होने वाली शब्द माला बड़ी मनोरंजक है। स्थानाभाव से मैं उसे यहां उद्धृत नहीं करूँगा।

| अँग्रेजी | अनामी | अँग्रेजी | अनामी |
|---|---|---|---|
| सेक्स्टैंट | किन्ह लुक फांन | टेलीग्राफ | माय दिएन बाओ |
| टेलीफोन | दिएन-थोआई | टेलीविज़न | फेप-दिएन थि |
| टेली फोटोग्राफी | थुआत फेप चुप अन्ह क्सा | ट्राम वे | ताउ दिएन |
| ट्राली | काइ हुंग दिपन | अल्ट्रामाइक्रास्कोप | किन्ह सिएउ हिएनवि |
| ऐनाइसोट्रापिक | दि-हुओंग | ऐण्टिकैथोड | दोइ-आम कुक |
| ऐन टेना | दाय त्रोइ | ग्रीगोरियन कैलेण्डर | तान लिच |

यहाँ यह देखने की बात है कि व्यक्ति के नाम ग्रीगोरी के लिए वर्णनात्मक शब्द "तान" का उपयोग किया गया है।

| | | | |
|---|---|---|---|
| जुलियन कैलेण्डर | कुउ लिच | सेंटिमीटर | फान |
| सेंटिग्रेड | फान त्राम गात | सिनेमा | चोप बोग |
| डेकामीटर | चुक थोउक | डायनमीटर | लुक-के |
| इलैक्ट्रोड | दिएन-कुक | इलैक्ट्रोन | दिएन-तु |
| यूकैलिप्टस | खुयन्ह दिएय | गैस | खि |
| इनोर्गेनिक | वो-को | मिलिमीटर | ली |
| क्यूबिक मिलिमीटर | लीखोइ | मिनिट | फुट |
| मोलिक्यूल | फान-तु | न्यूट्रॉन | त्रुंग-होआ-तु |
| न्यूक्लीअरफिजिक्स | हाच ली होक | पेट्रोल | दाउ ताय |
| पाजिट्रॉन | दुओंग-तु | | |

अनाम की राष्ट्रीय-लिपि चीनी है। किन्तु फ्रांसीसियों के लाभ को दृष्टि में रखकर यह पुस्तक रोमन-लिपि में प्रकाशित की गई है, राष्ट्रीय लिपि में नहीं। रोमन लिपि में अनामी शब्दों के लिए ध्वनि चिन्हों की भरमार करनी पड़ी है। ऊपर, नीचे, दाएँ, बीच में अनेक चिन्हों का प्रयोग किया गया है। यदि यूरोपीय भाषाओं में स्पेन-

वासियों, पुर्तगालियों, जर्मनों, डचों, डेनमार्कनिवासियों, स्वेडनवासियों, पोलैंड और हंग्री के निवासियों आदि के द्वारा जितने ध्वनि चिन्हों का उपयोग होता है उन सब को एकत्र किया जाए तो वे सब मिलकर भी इन चिन्हों के सामने तुच्छ हो जाते हैं। रोमन के "ए" अक्षर पर अनामी विभिन्न ध्वनियों को प्रकट करने के लिए एक चिन्ह नीचे और एक, दो या कभी कभी तीन चिन्ह ऊपर लगाते हैं।

यदि कोई अनामी इन अक्षरों को ध्वनि चिह्न रहित देखे तो पहिचान नहीं सकता। किन्तु भारतीय के लिये ये चिन्ह एक गोरख-धन्धा है और भारतीय मुद्रक तो उन्हें छापना ही अस्वीकार कर देगा। वीतनाम के ही मुद्रणालय यह कार्य कर सकते हैं।

बड़े ध्यान से इस पुस्तक को आदि से अन्त तक अध्ययन कर मैं कह सकता हूँ कि अनामी भाषा के अत्यन्त परिमित होने के कारण इस कोश के निर्माता को समुचित शब्दों के चुनने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा है। संस्कृत और यूरोपीय भाषा के उपसर्गों की सहायता शब्दार्थ की छोटी से छोटी विभिन्नता को भी प्रकट किया जा सकता है। किन्तु अनामी भाषा के पास इस प्रकार की सहायता का कोई साधन नहीं है। उलझन, लोप और विलयन तीनों के लिये अनामी भाषा में अकेला "तान" शब्द है। विज्ञान में जिन अनेक प्रत्ययों की आवश्यकता होती है उनकी पहिचान के लिए भी अनामियों के पास कोई उपाय नहीं है। रसायनिक प्रत्यय "इक" ( ic ) और "अस" ( ous ) तक के लिए उनके पास कुछ नहीं है।

उनके अधिकांश शब्द समस्त और कभी-कभी असाधारण रूप से लम्बे होते हैं जिससे कभी-कभी उनका पारस्परिक सम्बन्ध अविच्छिन्न नहीं रहता जो कि वैज्ञानिक प्रविधि के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

अनामी भाषा की वैज्ञानिक शब्दावली को पढ़कर यह भले प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि विज्ञान की विभिन्न शाखाओं की आवश्यकता को पूरा करने की कितनी बड़ी समार्थ्य भारतीय भाषाओं में विद्यमान है। इस प्रकार की सामर्थ्य संसार की बहुत थोड़ी भाषाओं में है। इससे पूर्व हमने अरबी, चीनी और जापानी आदि अन्य कई भाषाओं की पारिभाषिक शब्दावली का परीक्षण किया था और उस समय भी हम इसी परिणाम पर पहुँचे थे कि भारतीय भाषाओं में ही वह सामर्थ्य है कि वे यूरोपीय विभिन्न पारिभाषिक शब्दावली के लिए सूक्ष्मता के साथ उपयुक्त शब्द दे सकती है। इतना ही नहीं इस विषय में वह उससे भी आगे बढ़ सकती है। किन्तु इस पर फिर कभी चर्चा की जायगी। इस समय तो हमें इतने से ही संतोष है कि हम अपने शब्दों में वह सब ठीक-ठीक व्यक्त करने में समर्थ हैं जिसे यूरोपीय अपनी विभिन्न भाषा में व्यक्त कर सकते हैं।

# हिन्दी में वैज्ञानिक और टेकिनिकल शब्दावली की समस्या

लेखक डा० ओंकारनाथ पत्ती, सागर विश्वविद्यालय

हाल में विधान परिषद ने यह तय किया है कि हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी है। ऐसे समय चारों ओर से यह प्रयत्न हो रहा है कि हिन्दी में सब प्रकार के साहित्य का निर्माण हो और उसे समृद्धशाली बनाया जाय। हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य की बहुत कमी है और इसका एक प्रमुख कारण उसमें वैज्ञानिक और टेकनिकल शब्दावली की न्यूनता है। अभी तक शब्दावली का कोई स्टैंडर्ड नहीं है और जो जिसके मन में आता है वह वैसे ही शब्द गढ़ लेता है। हिन्दी में वैज्ञानिक और टेकनिकल शब्दावली के कोष बनाने की धूम सी मची है। इन कोषों के शब्द कभी भाषा में प्रचलित हो सकेंगे कि नहीं इस ओर कोष बनाने वालों का ध्यान बहुत कम गया है। कुछ जल्दबाजी के कारण, कुछ कट्टरपंथी के कारण और कुछ अज्ञानता के कारण हमारे कोष निर्माता इस बात को भूल ही सा जाते हैं कि इन शब्दावलियों को हमारी आज की हिन्दी भाषा में फिट होना है।

भाषा में वैज्ञानिक और टेकनिकल शब्दावली की समस्या संसार में नई नहीं है। आज से एक हजार वर्ष पूर्व संसार की किसी भी भाषा में यह शब्दावली न थी। ज्यों-ज्यों भाषाओं के सामने वैज्ञानिक और टेकनिकल विचारों के प्रकट करने की समस्या आती गयी उनमें वैज्ञानिक और टेकनिकल शब्दावली बढ़ती गयी। आज की किसी समृद्धिशाली भाषा का रूप सदा ऐसा ही नहीं रहा है। उनकी शब्दावली का विकास कई प्रकार से शब्द लेकर हुआ है। साधारण भाषा में साहित्यिक शब्दों से बोली के शब्दों से; विदेशी शब्दों से, वैज्ञानिक शब्दों से और स्लैंग [slang] से प्राप्त शब्दों से ही शब्दावली का विकास होता है। भाषा का केन्द्र तो सदैव लगभग एक सा रहता है पर उसकी परिधि बढ़ती ही जाती है। जब परिधि सीमित हो जाती है तो उस भाषा का अन्त हो जाता है क्योंकि उसमें नवीन विचारों के समावेश की सीमा बंध सी जाती है। एक जीवित भाषा के शब्दों के रूप में कालान्तर से भी परिवर्तन हुआ करते हैं। भाषा में शब्दावली का बढ़ाते रहना ही उसका जीवन है।

हिन्दी भाषा में वैज्ञानिक और टेकनिक शब्दावली के विकास की आवश्यकता है। यदि हम संसार की आज कल की समृद्धिशाली भाषाओं के इतिहास का अध्ययन करें तो हमें ज्ञात होगा कि उनमें वैज्ञानिक और टेकनिकल शब्दावली अनेक प्रकार से बढ़ी है।

भाषाओं ने कुछ साधारण भाषा के शब्दों को लेकर अपनी वैज्ञानिक और टेकनिकल शब्दावली में मिला लिया। जब भी साधारण भाषा के शब्द किसी वैज्ञानिक या टेकनिकल विचार का स्पष्टीकरण कर सके हैं तो उन्हें अवश्य प्रयोग में लाया गया है। विज्ञान की शब्दावली में प्रत्येक शब्द की एक परिभाषा सी होती है। साधारण भाषा के शब्दों का प्रयोग तभी किया जाता है जब कि उनके साधारण अर्थ उनकी वैज्ञानिक परिभाषा से मिलते जुलते हों। इस पर भी इस बात की आवश्यकता रहती है कि वैज्ञानिक साहित्य में प्रयुक्त शब्दों की परि भाषा दी ही जाय। अंगरेजी में कुछ इस प्रकार से प्राप्त वैज्ञानिक शब्दावली के उदाहरण यह हैं—गणित में real, imaginary, variable, complex, limit. infinite; भौतिक शास्त्र में virtual,

ray, principle, cosmic, जीव शास्त्र में fly, bird, fish इत्यादि इत्यादि।

भाषाओं ने अपनी वैज्ञानिक और टेकनिकल शब्दावली बढ़ाने के लिये विदेशी शब्दों को भी अपनाया। जिस देश में जिस वैज्ञानिक या टेकनिकल विभाग का अध्ययन बहुत आगे बढ़ चुका था भाषा ने उसी देश की शब्दावली को बिना किसी रूपान्तर के अपना लिया। अंगरेज़ी भाषा में तो लगभग सभी देशों से शब्द लेकर शब्दावली का विकास किया गया। हालैंड के निवासी पानी के जहाज सम्बन्धी ज्ञान में बहुत बढ़े चढ़े थे। उनसे Yacht, Schooner, Bowline, Deck, Cruise इत्यादि शब्द अंगरेजी ने अपना लिये। अरब वाले विज्ञान में आगे थे, उनसे Algebra, Cipher, Zero, Nadir, Zenith. Alchemy, Alcohol, Alkali, Bismuth इत्यदि शब्द अंगरेज़ी ने ले लिये। इटैली वाले ललित कलाओं में सर्वमान्य थे, उनसे भी Balcony, Cornice, Corridor, Colonade, Parapet, Fresco, Miniature, opera, Sonnet इत्यादि शब्द अंगरेजी ने ले लिये। हम देखेंगे कि नवीन वैज्ञानिक या टेकनिकल विचारों को यदि साधारण भाषा के शब्दों में सरलता से नहीं बताया जा सकता तो जीवित और अग्रसर भाषायें विदेशी शब्दों को उन्हें अपने ही रूप में अपना लेने में भी अपना गौरव समझती हैं। समय पाकर इन शब्दों का इतना चलन होने लगता है कि बाद में इनके उद्गम का पता लगाना भी कठिन हो जाता है।

जीविति भाषाओं ने अपनी वैज्ञानिक और टेकनिकल शब्दावली बढ़ाने के लिये मुख्यतर "मृत" भाषाओं का आधार लिया है। इसके कई कारण हैं। पहला—"मृत" भाषा के शब्दों के अर्थ कालान्तर से बदलते नहीं है; दूसरा—"मृत" भाषा के शब्द चालू शब्द नहीं होते हैं अतः वैज्ञानिक बिना किसी कठिनाई के उन शब्दों के अर्थ सीमित कर सकते हैं और तीसरा कारण यह है कि "मृत" भाषाओं में तीन चार शब्द मिलाकर नये शब्द गढ़े जा सकते हैं और वह शब्द चालू भाषा में खप सकते हैं। भाषाओं में वैज्ञानिक और टेकनिकल शब्दावली बढ़ाने के लिये "मृत" भाषा के शब्द दो रूप से आते हैं। कुछ शब्द तो बिना किसी रूपान्तर के ले लिये जाते हैं किन्तु अधिकतर उनमें चालू भाषा की व्याकरण के अनुसार कुछ रूपान्तर करके ग्रहण किया जाता है। अंगरेज़ी भाषा में लैटिन भाषा के कुछ शब्द जैसे Subpoena, Alibi, Alias, Habeas Corpus, Folio इत्यादि ज्यों के त्यों ग्रहण कर लिये गये हैं। नीचे एक सारिणी दी जाती है जिसमें कुछ उदाहरण इस प्रकार के शब्दों के हैं जिन्हें भाषाओं ने रूपान्तर करके ग्रहण किया है—

| मूलशब्द | अंगरेजी | स्वीडिश | डैनिश | डच | जर्मन |
|---|---|---|---|---|---|
| Caementum (लैटिन) | Cement | Cement (N) | Cement | Cement (N) | Der Zement |
| Cuprum (लैटिन) | Copper | Kopper | Kobber | Koper | Das Kupfer |
| Eisen (ग्रीक) | Iron | Jarn | Jern | Ijzer | Dar Eisen |
| Stel या Styl (एंग्लो सेक्सन) | Steel | Stal | Staal | Staal | Der Stahl |
| Loth (ग्रीक) } Plumbum (लैटिन) | Lead | Bly | Bly | Lood | Das Blei |

सभी वैज्ञानिक "मृत" भाषाओं से पयाप्त जानकारी नहीं रखते थे। उन्होंने कभी कभी किसी "मृत" भाषा के एक शब्द को लेकर उसका "अपभ्रंश" रूप ही चालू कर दिया। उदाहरण के लिये हैलमौंट (Helmont) ने गैस (Gas) शब्द कदाचित ग्रीक Cha'os के आधार पर बनाया था किन्तु वास्तव में यह एक

"अपभ्रंश" गढन्त है। डेवी ने अल्युमीनियम (Aluminium) के पहले Alumium बाद में Aluminum का प्रयोग किया था। क्वाटरली रिव्यू में दिये गये एक मतानुसार उसने सन् १८१२ में Aluminium शब्द ग्रहण किया। इस प्रकार भाषाओं की वैज्ञानिक और टेकनिकल शब्दावली में वैज्ञानिकों ने वास्तव में बिना किसी आधार के गढ़ करके भी शब्द बढ़ाये हैं।

ज्यों ज्यों वैज्ञानिक और टेकनिकल विषयों में उन्नति होती गई इनकी शब्दावली का प्रश्न सब भाषाओं के सामने जटिलतर होता गया। वैज्ञानिकों ने लीग आफ नेशन्स के समय में इस प्रश्न पर कान्फ्रेंसें भी कीं और फलस्वरूप जनेवा अथवा अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली का प्रचार हुआ। अब जब कभी वैज्ञानिकों को एक शब्द बनाना पड़ता है तो वे अधिकतर इसी शब्दावली का आधार लेते हैं।

विज्ञान के सांकेतिक चिह्न अन्तर्राष्ट्रीय हैं और संसार की सब भाषाओं में इन्हीं का प्रयोग होता है। सब जीवित भाषाओं ने इन्हीं सांकेतिक चिन्हों को अपनाया है और साथ ही साथ अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक शब्दों को भी अपना लिया है। अभी हाल में U. N. O. के एक वादविवाद में यूरेनियम (Uranium) तत्त्व का ज़िक्र आया था। चीन के भी अखबारों ने उसका अनुवाद U-धातु किया था।

उपरोक्त में संक्षेप में यह बताया गया है कि संसार की सब प्रगतिशील भाषाओं ने किस प्रकार अपनी वैज्ञानिक और टेकनिकल शब्दावली का विकास किया है। हिन्दी अभी तक साधारण भाषा है और उसके आगे भी वैज्ञानिक और टेकनिकल शब्दावली बढ़ाने का प्रश्न है। यह शब्दावली इस प्रकार को होनी चाहिये कि प्रचलित भाषा में फ़िट हो जाय। अन्य भाषाओं के इतिहास को ध्यान में रखते हुये यदि हम यह कार्य करेंगे तो इसमें हमें अच्छी सफलता निश्चय ही प्राप्त होगी। मेरे विचार में हिन्दी में वैज्ञानिक और टेकनिकल शब्दावली निम्नलिखित रूप से बढ़ानी चाहिये :—

( १ ) साधारण शब्दों को अपना कर—साधारण



भाषा के वह शब्द जिनके साधारण अर्थ वैज्ञानिक शब्दों के सीमित अर्थ से मिलते जुलते हों वैज्ञानिक शब्दावली में अपना लेने चाहिये। उदाहरण के लिये रेखा (Line), बिन्दु (Point), सीसा (Lead), ताँबा (Copper), लवण (Salt), क्षार (Alkali), अम्ल (Acid), रश्मि (Ray), चिड़िया (Bird, zoo.), मछली (Fish, zoo.) इत्यादि।

ऐसा करने में एक बात का ध्यान रखना उचित होगा। ऐसे साधारण शब्दों को वैज्ञानिक शब्दावली में न लेना चाहिये जिनसे वैज्ञानिक शब्दों के महान रूप को धक्का लगे। मेरा अभिप्राय अंगरेज़ी से लिये एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगा—Geology के लिये Earth-Lore और Orinthology के लिये Bird-Lore. शब्द एक ही सा अर्थ रखते हुये भी उपयुक्त नहीं हैं।

( २ ) विदेशी शब्दों को अपना कर—हमारी आज की हिन्दी भाषा में भी बहुत से विदेशी शब्द प्रचलित हैं। हमें उन सबको अपनी भाषा की वैज्ञानिक और टेकनिकल शब्दावली में "स्टैंडर्ड" मान लेना चाहिये। उदाहरण के लिये रेल (Rail), रेडियो (Radio), मोटर (Motor), जहाज़ ( फ़ारसी से ), हाकी (Hockey), फ़ुटबाल (Football), सिगनल (Signal), स्विच (Switch), बल्ब (Bulb), रैंच (Wrench), बोल्ट (Bolt), नट (Nut), स्पोक (Spoke), ब्रेक (Brake), कुर्सी ( मकान की ), मेज़ इत्यादि।

इस प्रकार के शब्दों को अपनाने के लिये हमें यह उचित होगा कि एक एक टेकनिकल कारखाने में जाकर देखा जाय कि किन किन विदेशी टेकनिकल शब्दों का चलन वहाँ के अनपढ़ कार्यकर्त्ताओं की भाषा में भी हो गया है। वह शब्द चाहें किसी भी देश के क्यों न हों हमारी बोलचाल की भाषा में आ गये हैं और उन्हें अपना लेने में केवल कल्याण के हानि संभव नहीं है। इनके अपनाने में हिन्दी का गौरव कुछ घटेगा नहीं। ऐसा करने से हिन्दी कार्यकर्त्ताओं के और निकट आ जायेगी।

(३) "मृत" भाषा से शब्द लेकर—"मृत" भाषा का अथवा "मृत" भाषाओं का आधार लेकर वैज्ञानिक और टेकनिकल शब्दावली बढ़ाई जा सकती है। इस विषय में हमारे सामने एक मुख्य प्रश्न आता है और वह यह कि एक "मृत" भाषा का आधार लिया जाय अथवा एक से अधिक "मृत" भाषाओं का आधार लिया जाय। इससे मिला हुआ दूसरा प्रश्न है किस "मृत" भाषा का अथवा कौन कौन सी "मृत" भाषाओं को आधार माना जाय। इन प्रश्नों को हल करने में हमें भाषाओं के इतिहास और उनके पारस्परिक सम्बन्ध को ध्यान में रखना उचित होगा। भाषा विज्ञान के जानने वालों ने भाषाओं के इतिहास और पारस्परिक सम्बन्ध के अनुसार उनको कई भागों में विभाजित किया है। इनमें प्रमुख भाग है—इंडो-एरियन (Indo-Aryan), फिन्नो-अग्रीयन (Finno-Ugrian), सीमिटिक (Semitic), हैमिटिक (Hamitic), इंडो-चीनी (Indo-Chinese), मलाया-पोलीनीसियन (Malayo-Polynesian), टर्को-टार्टर (Turco-Tortar), द्राविड़ (Dravidian) और बन्टू (Bantu)। भाषा विज्ञान विद्वानों के मतानुसार इंडो-एरियन (Indo-Aryan) सबसे पुरानी भाषा है जो कदाचित् मध्य एशिया में बोली जाती थी। इस इंडो-एरियन से एशिया और योरप की कई भाषाओं की उत्पत्ति हुई। इससे प्राप्त एशिया की भाषायें दो भागों में विभाजित की जाती हैं और योरप की भाषायें मुख्यतर छै भागों में। यह विभाजन नीचे दिया हुआ है—

इंडो-एरियन (Indo-Aryan)

- एशिया की भाषायें
  - भारतीय भाषायें
    - वैदिक संस्कृत
    - साहित्यिक संस्कृत
    - कई प्राकृत
    - पाली
      - अर्धमागधी
      - आधुनिक भारतीय भाषायें जैसे हिन्दी, मराठी, उड़िया, बंगाली, गुजराती इत्यादि।
  - ईरानी भाषायें (Avesta) इनके अन्तर्गत यह भाषायें आती हैं—पुरानी फारसी, पहलवी, आधुनिक फारसी, आर्मीनियन, पश्तो इत्यादि।
- योरप की भाषायें
  - (i) ट्यूटौनिक (Teutonic)—जैसे जर्मन, डच, स्कैन्डीनेवियन और अंगरेजी।
  - (ii) केल्टिक (Celtic)—जैसे अर्स (Erse), गैलिक, वेल्श और ब्रिटन।
  - (iii) रोमाँस (Romance)—जैसे फ्रेंच, स्पैनिश, केटालान, पुर्तगाली, इटैलियन, रूमानियन।
  - (vi) स्लैवौनिक (Slavonic)—जैसे रशियन, पोलिश, ज़ेक, स्लोवाकियन, बलगैरियन, सर्बोक्रोशियन और स्लोवीन।
  - (v) बाल्टिक (Baltic)—जैसे लैटिश, लिथुआनियन।
  - (vi) अन्य—जैसे ग्रीक, अल्बानियन, फारसी, अर्मीनियन।

नोट—द्रविढ़ भाषायें (तामिल, तैलगू, कन्नड़) का आधार दूसरा है।

सारिणी में संक्षेप में यह भी दर्शाया गया है कि संभवतः हिन्दी कैसे प्राप्त हुयी। सर मोनियर विलियम्स के अनुसार इंडो-एरियन भाषाओं में सबसे बड़ी बहन (Eldest Sister) संस्कृत है और सबसे छोटी

बहन (Youngest Sister) अंगरेज़ी है। सारिणी से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय और योरप की भाषाओं का उद्गम स्थान संभवतः एक ही है। योरप की भाषाओं में वैज्ञानिक शब्दावली बनाने के लिये ग्रीक और लैटिन 'मृत' भाषाओं का सहारा लिया गया है। हिन्दी के सामने वास्तव में तीन मुख्य 'मृत' भाषायें हैं—संस्कृत, लैटिन और ग्रीक—जिन्हें शब्दावली बनाने का मुख्य आधार बनाया जा सकता है। मेरे अपने विचार से तो हिन्दी को वैज्ञानिक और टेकनिकल शब्दावली बनाने में इन तीनों 'मृत' भाषाओं का सहारा लेना चाहिये। इससे शब्द चुनने में सरलता होगी क्योंकि तीनों का शब्द भंडार मिलाकर बहुत बड़ा हो जायेगा। नीचे मैंने ग्रीक और लैटिन को एक ओर रक्खा है और दूसरी ओर संस्कृत को और वैज्ञानिक और टेकनिकल शब्दावली बनाने में इनके गुणों और अवगुणों की तुलना की है—

| ग्रीक और लैटिन | संस्कृत |
|---|---|
| (१) बोलचाल की भाषा नहीं है। | बोलचाल की भाषा नहीं है। |
| (२) लिपि हिन्दी की नहीं है। | लिपि हिन्दी की है। |
| (३) व्याकरण हिन्दी से भिन्न है। | व्याकरण हिन्दी से भिन्न है। |
| (४) शब्द पर्याप्त हैं। | शब्द पर्याप्त हैं। |
| (५) हिन्दी में साधारण शब्द लेने के लिये भी उनका रूपान्तर करना होगा। | हिन्दी में साधारण शब्द लेने के लिये अधिक रूपान्तर की आवश्यकता नहीं है। |
| (६) संयुक्त शब्द बन सकते हैं पर वह हिन्दी में बिलकुल नये होंगे। | संयुक्त शब्द बन सकते हैं पर बनाई वैज्ञानिक शब्दावली हिन्दी में अपरिचित सी ही होगी। |
| (७) हिन्दी भाषा से लगाव नाम मात्र है। | हिन्दी भाषा से लगाव बहुत है। आज की साहित्यिक हिन्दी में संस्कृत भाषा के हजारों शब्द ज्यों के त्यों लेकर भरे हुये हैं। |
| (८) आधुनिक चालू वैज्ञानिक और टेकनिकल शब्दावली का मुख्य आधार हैं। | अभी तक किसी भी मानी हुयी वैज्ञानिक और टेकनिकल शब्दावली का आधार नहीं है। |
| (९) विज्ञान के अन्तर्राष्ट्रीय शब्द मुख्यतर इन्हीं के आधार पर हैं। | इसमें ऐसा कुछ नहीं है। |
| (१०) हमारे देश में इन भाषाओं के बहुत कम विद्वान हैं। | हमारे देश में संस्कृत के विद्वान ग्रीक और लैटिन के विद्वानों से कहीं अधिक हैं। |
| (११) इनसे प्राप्त अँग्रेजी की वैज्ञानिक और टेकनिकल शब्दावली से हमारे देश के इस क्षेत्र में कार्यकर्त्ता अच्छी तरह से परिचित हैं। | इससे प्राप्त शब्दावली से केवल डा० रघुवीर को छोड़कर और कोई परिचित नहीं है। |
| (१२) इनसे प्राप्त शब्दावली का चलन संसार में है और निकट भविष्य में तो अवश्य होता रहेगा। | इससे प्राप्त शब्दावली का निकट भविष्य में भी भारतवर्ष को छोड़कर अन्य किसी देश में चलन न होगा। |
| (१३) यदि इनसे हिन्दी रूपान्तर कर शब्दावली बने तो वह हमे अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर ले जायेगी। | इससे ऐसा कुछ न हो सकेगा। |
| (१४) इससे प्राप्त शब्दावली विशुद्ध भारतीय न होगी। | इससे प्राप्त शब्दावली विशुद्ध भारतीय सी होगी। |
| (१५) हमारे शिक्षकों को इनसे प्राप्त शब्दावली सीखनी नहीं पड़ेगी। | इससे प्राप्त शब्दावली सबके लिये नयी होगी। |
| (१६) आधुनिक वैज्ञानिक और टेकनिकल कार्य मुख्यतर विदेशों में इन्हीं से प्राप्त शब्दावली में हुआ है। | हमारे देश में न तो आधुनिक वैज्ञानिक और टेकनिकल विभागों में बहुत कार्य हुआ है और जो हुआ भी है उसकी शब्दावली विदेशी है। |
| (१७) इनका हिन्दू संस्कृति से कोई सम्बन्ध विशेष नहीं है। | इसका हिन्दू संस्कृति से विशेष सम्बन्ध है। |

कुछ और बातों को भी ध्यान में रखना उचित होगा। विश्व की आधुनिक वैज्ञानिक और टेकनिकल प्रणाली का उद्गम मुख्यतः विदेशी है। हमारे देश को उनके स्तर पर पहुँचने के लिये विज्ञान और टेकनोलोजी के क्षेत्र में बहुत उन्नति करना है। यह उन्नति विदेशों में संचित ज्ञान के आधार पर ही सरलता से हो सकती है। समय हमारे देश के लिये बहुत मूल्यवान है। हमें वाद विवाद में अथवा प्रयोगों में बहुत समय गवाँना उचित नहीं है। आधुनिक वैज्ञानिक शब्दावली का क्षेत्र बड़ा विस्तृत हो गया है और किसी भी 'मृत' भाषा से गढ़ने में बहुत समय लगेगा। एक और बात पर भी ध्यान दीजिये। भाषा प्रधानतः एक साधन है जिसके द्वारा विचार व्यक्त किये जाते हैं। विज्ञान और टेकनौलोजी की भाषा जितनी ही इस समय की साधारण बोलचाल की भाषा के निकट होगी उतनी ही सुन्दर और उपयुक्त होगी। अन्तर्राष्ट्रीयता के इस युग में हमें यह सोचना भी कि हम विश्व की वैज्ञानिक और टेकनिकल उन्नति से अलग रहकर जिन्दा भी रह सकेंगे, मूर्खता होगी।

उपरोक्त सब बातों को ध्यान में रखते हुये हम केवल एक ही निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं और वह यह है कि हमें संस्कृत, ग्रीक और लैटिन तीनों 'मृत' भाषाओं के आधार पर हिन्दी की शब्दावली बनानी चाहिये। इस विषय पर मनन करने के उपरान्त मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि (१) हमें वह वैज्ञानिक और टेकनिकल शब्द जो संस्कृत भाषा में मौजूद हैं तुरन्त हिन्दी में अपना लेने चाहिये। हमें संस्कृत से वैज्ञानिक और टेकनिकल शब्द गढ़ने नहीं चाहिये (२) जहाँ टेकनिकल और वैज्ञानिक शब्द गढ़ने की आवश्यकता है वहाँ लैटिन और ग्रीक के प्रचलित शब्दों को ही आधार मानकर हिन्दी चलन के अनुसार रूपान्तर कर ग्रहण कर लेना चाहिये। विदेशी भाषाओं में अंगरेजी से ही हमारा सब से निकट सम्बन्ध है, अतः मेरे विचार में अंगरेजी भाषा में वैज्ञानिक और टेकनिकल शब्दों के गढ़ने में जिस 'मृत' भाषा का आधार लिया गया है उसी को हमें भी आधार मानकर उन शब्दों का हिन्दी रूपान्तर करण करके अपना लेना अधिक श्रेयकर होगा। रूपान्तर करण से यहाँ अर्थ अनुवाद नहीं है वरन् हिन्दी में चलने वाले रूप से है।

मैं जानता हूँ कि हिन्दी में रूपान्तर करने की समस्या सरल नहीं है। बात यह है कि वास्तव में अभी तक हिन्दी में कोई स्टैंडर्ड नहीं है। अगर कुछ स्टैंडर्ड है तो वह लिपि है। भाषा में न तो हिज्जे ( Spelling ) ही स्टैंडर्ड हैं और न उच्चारण। मेरे विचार में हिन्दी के विद्वानों को पहले भाषा में कुछ स्टैंडर्ड लाने का प्रयत्न करना चाहिये। केवल भाषा के पंडितों को वैज्ञानिक शब्दावली बनाने का ठेका नहीं ले लेना चाहिये। उनको तो वैज्ञानिक शब्दावली की समस्या को वैज्ञानिकों पर छोड़ देना अधिक अच्छा होगा। यह संभव है भारतीय वैज्ञानिक कोई "विशुद्ध" शब्दावली न बना पायें किन्तु उनकी शब्दावली अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली से मिलती जुलती और अधिक काम चलाऊ होगी। संसार की कोई भी जीवित भाषा विशुद्धता का दावा नहीं कर सकती। भाषाओं में पहले शब्द का चलन होता है और कुछ समय बाद ही वह स्टैंडर्ड हो पाते हैं। हिन्दी में वैज्ञानिक शब्दावलियों के कोष बनाकर उन्हें अभी से जकड़ देना उचित नहीं जान पड़ता।

(४) "अपभ्रंश" शब्द लेकर—संसार की सभी भाषाओं में वैज्ञानिकों के दिये "अपभ्रंश" शब्द विज्ञान और टेकनौलाजी की शब्दावली में प्रचलित हैं। हमारे देश के कार्य कर्त्ताओं ने विश्व की वैज्ञानिक और टेकनिकल शब्दावली में बहुत थोड़े से ही शब्द बढ़ाये हैं। हमें भविष्य में जो शब्द शालाओं में अध्यापकों द्वारा और कारखानों में कार्यकर्त्ताओं द्वारा प्रचलित किये जायेंगे वह "अपभ्रंश" होते हुये भी काम चलाने के लिये अपनाने उचित होंगे। यदि हिन्दी में विज्ञान और टेकनौलोजी के शब्दों को जीवित रखना है तो कुछ ऐसा ही करना कल्याणकर होगा। जिन कार्यकर्त्ताओं का उन विचारों से नित्यप्रति सम्बन्ध है उनकी प्रचलित बोलचाल की शब्दावली को हिन्दी भाषा से निकालकर फेंक देना मूर्खता ही नहीं आत्मघात होगा।

(५) अन्तराष्ट्रीय शब्दों को लेकर—हमारी हिन्दी भाषा कई अर्थों में विश्व की कोई समृद्धिशाली भाषा

नहीं है। हमें इसे उच्चतम बनाना है। विज्ञान और टेकनौलोजी के शब्द अन्तर्राष्ट्रीय से हो गये हैं, उनके लिये किसी प्रकार के शब्द गढ़ना समय बरबाद करना है। आज नहीं तो कल हमें अपने उत्थान के लिए उन्हें कदाचित् अपनाना ही पड़ेगा। हम अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग नहीं पका सकते और यदि पकायेंगे अथवा अज्ञानतावश ऐसा करने पर उतारू हो जायेंगे तो उसमें हमारे अस्तित्व के भी नाश हो जाने की संभवाना है। विश्व की 'मृत' भाषाओं का इतिहास इस कथन का साक्षी है।

आज कुछ कट्टरपंथियों ने और तो अलग विज्ञान के पूर्णतः अन्तर्राष्ट्रीय संकेत चिन्हों को भी न अपनाने की ठान ली है। यदि ऐसा होगा तो हमारी मूर्खता पराकाष्ठा पर पहुँच जायेगी। जो लोग इस ओर प्रयत्न कर रहे हैं उनके लिये मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि भगवान उन्हें सुबुद्ध दें।

भाषा एक जीवित वस्तु है। उसे कोष के शिकंजे में भी बाँध कर नहीं रखा जा सकता। विशुद्धता के नाम से यदि उसे जकड़ दिया जायेगा तो वह मर जायेगी। मुझे यह देखकर दुःख होता है कि हमारे देश के कुछ हिन्दी के साहित्यिक महारथी भाषा के जीवन स्रोत को छोटा करने में ही अपना गौरव समझते हैं। भाषा पहले बनती है, कोष बाद में। कोष बनाकर भाषाओं में जीवन फूँकना अनाधिकार चेष्टा है। वैज्ञानिक और टेकनिकाल शब्दावली तो एक ओर रही आज संसार की जवित और वास्तव में समृद्धिशाली भाषायें किसी भी क्षेत्र में शब्दावली बढ़ाने के लिये हिचकिचाहट नहीं दिखातीं। आपको यह जानकर कदाचित् आश्चर्य होगा कि अंग्रेजी जैसी बृहत रूप से समृद्धिशाली भाषा ने राजनीति जैसे आम बोल चाल के विषय में भी नवीनतम गढ़न्त शब्दों को विदेशों से अपनाने में अपना गौरव समझा है, जैसे सन् १८१३ में nihilism, सन् १८३६ में socialism, सन् १८४३ में communism, सन् १८४४ में nationalism, सन् १८५७ में caeserism, सन्१८७० में opportunism, सन् १८८० में collectivism, सन् १९०१ में pacificism सन् १९०७ में syndicalism, सन् १९११ में defeatism इत्यादि, इत्यादि शब्द अंगरेजी भाषा में प्रचलित हुये।

हमें हिन्दी भाषा को सर्वतोमुखी बनाना है जिससे सभी प्रकार के विचार इसमें सरलता से व्यक्त हो सकें। इसके लिये भाषा को विशाल बनाना होगा और पहले बतायी गयी विधियों से जहाँ से भी उपयुक्त वैज्ञानिक और टेकनिकल शब्द मिलेंगे अपनाना उचित होगा। नवीन शब्दावली में इस बात का अवश्य ध्यान रखना होगा कि वह चालू बोलचाल की भाषा में फिट हो सके और शब्द चाहे जहाँ के हों उनका रूपान्तर ( अनुवाद नहीं ) यदि आवश्यकता हो तो हिन्दी की प्रचलित व्याकरण और हिन्दी की प्रचलित प्रणाली के अनुसार हो। आज कल साधारणतः यह देखा जा रहा है कि "साहित्यक" हिन्दी, संस्कृत के शब्दों की भरमार के कारण बोल चाल की साधारण भाषा, हिन्दी से दूर होती जा रही है। "साहित्यक" हिन्दी के स्वरूप के विषय में मुझे कुछ नहीं कहना है परन्तु वैज्ञानिक और टेकनिकल हिन्दी यदि साधारण बोलचाल की भाषा से दूर हो जायेगी तो देश में अनेक नवीन जटिल समस्यायें खड़ी हो जायेंगी। अच्छा हो कि हिन्दी के "साहित्यिक" विद्वान वैज्ञानिक और टेकनिकल शब्दावली के विषय में कुछ दूर से ही बातचीत करें और इस कार्य को मुख्यतर वैज्ञानिक और टेकनिकल कार्यकर्त्ताओं पर छोड़ दें।

इस लेख से सम्बन्ध रखने वाली कुछ प्रमुख पुस्तकों की सूची—

१—The Loom of Languages—Fredric Bodmer

२—Indo-Aryan and Hindi—Suniti Kumar Chatterji

३—Introduction to Natural History of Language—Tucker

४—Life and Growth of Language—Whitney

५—Growth and Structure of English Language—Otto Jesperson

६—Words and their ways in English Speech—Greenough & Kittredge

७—A Short History of English Words—Bernard Groom

८—New Words self Styled—A. Smith

# वैज्ञानिक शब्दावली पर एक दृष्टि*

( ले० डा० व्रजमोहन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय )

मेरे विचार में पारिभाषिक शब्द तीन प्रकार के होते हैं :—

१—अर्धपारिभाषिक शब्द

२—पारिभाषिक शब्द

३—नाम सम्बन्धी शब्द

अर्धपारिभाषिक शब्द मैं उन शब्दों को कहता हूँ जो पारिभाषिक विषयों में प्रयुक्त होते हैं परन्तु जिनका अर्थ पारिभाषिक विषयों में भी वही रहता है जो साधारण बोलचाल में। दूसरों शब्दों में ऐसे शब्द हैं जिनकी परिभाषा देने की आवश्यकता नहीं पड़ती। जैसे :—

Air, Layer, Drop, Oil, String, Rod

जहाँ तक मुझे पता है ऐसे शब्दों के विषय में तो वैज्ञानिकों में कोई मतभेद नहीं है। प्रायः सभी का यह विचार है कि ऐसे शब्दों का अनुवाद अपनी भाषा में होना ही चाहिए। कम से कम मेरी जानकारी में तो अभी तक किसी भी लेखक ने यह सुझाव नहीं रखा है कि ऐसे शब्दों को भी हमें अँग्रेजी से ज्यूँ के त्यूँ लेकर अपनी भाषा में मिला लेना चाहिए। अतएव इस प्रकार के शब्दों को तो मैं यहीं छोड़े देता हूँ।

अब रहा पारिभाषिक शब्दों का प्रश्न। विशेष कर उच्च वैज्ञानिक शब्द जैसे :—

Oxygen, Platinum, Integral, Continuity

आजकल हम बहुत से वैज्ञानिकों को यह कहते सुनते हैं कि हमें विज्ञान के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली को अपना लेना चाहिए। कदाचित universities commission ने भी एक बार जनता के सम्मुख यह प्रस्ताव रखा था। यदि वास्तव में यह प्रस्ताव व्यावहारिक होता तो अत्युत्तम था। इस प्रस्ताव के समर्थक यह कहते हैं कि यदि सारे संसार में एक ही वैज्ञानिक शब्दावली चल निकले तो वैज्ञानिकों में विचार विनिमय करना बहुत सरल हो जाय। आज जापान के एक वैज्ञानिक को अँग्रेजी पढ़नी पड़ती है, फ्रेंच पढ़नी पड़ती है, रूसी भाषा पढ़नी पड़ती है।

यदि इन समस्त देशों में एक ही वैज्ञानिक शब्दावली का प्रयोग हो तो एक देश के वैज्ञानिकों को दूसरे देश के वैज्ञानिकों के विचारों से अवगत होने में बड़ी सुविधा हो जायगी। यदि प्रत्येक देश की शब्दावली अलग हुई तो या तो प्रत्येक वैज्ञानिक को दूसरे देश की शब्दावलियों का भी ज्ञान प्राप्त करना होगा अथवा प्रत्येक देश को दूसरे देश के अनुसन्धानों का

*'विज्ञान परिषद्' के १९४९ के वार्षिक अधिवेशन में दिये गये एक व्याख्यान के आधार पर।

अपनी भाषा में अनुवाद करना होगा। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो भिन्न भिन्न देशों के वैज्ञानिकों में न तो विचारों का कोई आदान प्रदान हो सकेगा, न कोई वैज्ञानिक सम्मेलन हो सकेगा।

मैं यह मानता हूँ कि इस तर्क में कुछ तथ्य है। परन्तु यह तो एकपक्षी बात है। 'अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली' का प्रचलन संभव है या नहीं। यदि संभव है तो व्यावहारिक भी है या नहीं। इस पर निष्पक्ष भाव से विचार करना होगा। मैं एक वाक्य अकार्बनिक रसायन से लेता हूँ :—

The suboxide has been obtained by heating basic bismuth oxalate in absence of air.

इस वाक्य में वैज्ञानिक शब्दों को मैंने रेखांकित कर दिया है। यदि इन शब्दों को हम हिन्दी में ज्यूँ का त्यूँ रहने दें तो इस वाक्य का अनुवाद इस प्रकार होगा :—

वायु के अभाव में बेसिक बिस्मथ आक्सैलेट को गरम करने से सबौक्साइड प्राप्त हुआ है।

ऐसे कितने व्यक्ति जो अंग्रेज़ी न जानते हों और हिन्दी जानते हों, इस वाक्य को समझ सकेंगे। आज हमारे विज्ञान के विद्यार्थी पहले बहुत ऊँचे स्तर का अंग्रेज़ी का ज्ञान प्राप्त करते हैं, तब इस योग्य हो पाते हैं कि वैज्ञानिक पुस्तकें पढ़ सकें। आज से १०० वर्ष पश्चात् का हिन्दुस्तानी विद्यार्थी इतने ऊँचे स्तर को अंग्रेज़ी कदापि नहीं जानेगा जितनी आज का विद्यार्थी जानता है। मैं यह नहीं कहता कि वह अंग्रेज़ी से सर्वथा अनभिज्ञ रहेगा क्योंकि हम लोग अंग्रेज़ी का बहिष्कार करने नहीं जा रहे हैं। परन्तु भविष्य के विद्यार्थी की अंग्रेज़ी की जानकारी आज के विद्यार्थी की अपेक्षा बहुत कम होगी। ऐसी दशा में वह Oxalate और Suboxide जैसे दुरूह विदेशी शब्दों का क्या अर्थ लगायेगा ?

मैंने ऊपर का वाक्य विशेष रूप से चुनकर कोई कठिन वाक्य नहीं लिया है। वैज्ञानिक विषयों में तो प्रायः आदि से अन्त तक इसी ढंग के वाक्य भरे रहते हैं। एक वाक्य और लीजिए :— •

The selenious acid is reduced to metallic selenium by adding sodium sulphite.

इस वाक्य का अनुवाद इस प्रकार होगा—

सोडियम सल्फ़ाइट मिला देने से सिलीनिअस एसिड धातु सिलीनिअम में ह्रसित हो जाता है।

मुझे तो इस ढंग के वाक्यों में हिन्दी की दुर्दशा प्रत्यक्ष दिखाई दे रही है। यदि इस नीति को अपनाया गया तो एक समय ऐसा आयेगा जब हमारी वैज्ञानिक विषयों की पुस्तकों में केवल थोड़े से अव्यय और क्रियापद हिन्दी के रह जायँगे शेष सारे शब्द अंग्रेज़ी के रहेंगे। ऐसी भाषा को हिन्दी भी कहा जाय या नहीं, यह सोचने की बात है।

एक बात और भी है। पारिभाषिक शब्द भी दो प्रकार के होते हैं :—

१—जो शब्द तत्वों के नामों से सम्बद्ध हों

२—अन्य शब्द

पारिभाषिक शब्द प्रायः अकेले नहीं चलते वरन् अपने परिवारों के साथ चलते हैं। एक ही शब्द से दर्जनों शब्द और कभी कभी सैकड़ों शब्द उत्पन्न होते हैं। पहले मैं एक उदाहरण दूसरी श्रेणी के एक शब्द का लेता हूँ :—Continue इस एक शब्द से अनेक शब्द उत्पन्न होते हैं :—

Continued, Continuity, Discontinuity, Continual, Continuous, Continually, Continuously, Continuant.

इस प्रकार और भी बहुत से शब्द बढ़ाये जा सकते हैं। जहाँ तक मेरी जानकारी है 'अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली' के समर्थक इस प्रकार के शब्दों को अपनाने के लिए नहीं कहते। उनके विचार में भी इन शब्दों का अनुवाद होना ही चाहिए। वे ऐसे शब्दों को अपनाने के लिए कहते हैं जो या तो किसी तत्व के नाम से सम्बद्ध हों या किसी वस्तु के नाम से सम्बद्ध हों। एक तत्व लीजिए Oxygen। इससे अनेक शब्द उत्पन्न होते हैं :—

Oxygenate, Oxygenator, Oxyge-

nation, Oxide, Oxidise, Oxidised, Oxidisation.

इन शब्दों के सम्बन्ध में भी दो विचारधारायें हैं। कुछ लोगों का तो यह विचार है कि इन समस्त शब्दों के समस्त रूपों को हम ज्यूँ का त्यूँ हिन्दी में अपना लें। यदि इस नीति को अपनाया गया तब तो हमारी भाषा में बिल्कुल जान ही न रहेगी जैसा मैं ऊपर कह चुका हूँ। इससे तो अधिक अच्छा यह है कि हम शिक्षा के माध्यम को ही न बदलें और जिस प्रकार अभी तक विज्ञान की शिक्षा अंग्रेज़ी द्वारा दी जा रही है उसी प्रकार देते रहें। अर्थात् अंग्रेज़ी की वैज्ञानिक शब्दावली के साथ साथ अंग्रेज़ी भाषा को भी अपना लें।

दूसरी प्रणाली के लोगों का यह मत है कि हम किसी भी शब्द परिवार में से केवल आधारभूत शब्द को अपना लें जैसे Oxygen और इस शब्द से संस्कृत व्याकरण के अनुसार समस्त उत्पन्न शब्द बनायें जैसे :—

आक्सीजनन, आक्सीजनक, आक्सीजनित, आक्सीजनेय, आक्सीजनीय।

सर्वप्रथम तो हमें अपने प्राचीन ग्रन्थों में शब्दों की खोज करनी चाहिए। कुछ तत्वों के लिए तो प्राचीन शब्द अवश्य ही मिल जायेंगे। जैसे Sulphur के लिए 'गन्धक' और Hydrogen के लिए 'उद्जन।' ऐसे शब्दों को तो अंग्रेज़ी से ले लेने की कोई आवश्यकता दिखाई नहीं देती। Sulphur और Hydrogen से अंग्रेजी में जितने शब्द उत्पन्न होते हैं हम यथासंभव वे समस्त शब्द 'गन्धक' और 'उद्जन' से निकालेंगे। इसी प्रकार यदि Oxygen के लिए कोई प्राचीन शब्द हमारे ग्रन्थों में विद्यमान हो तो Oxygen शब्द अंग्रेजी से कदापि नहीं लेना चाहिए। वरन् Oxygen सम्बन्धी सारे शब्द उसी शब्द से निकालने चाहिए।

अब रहा प्रश्न उन शब्दों का जिनके लिए हमारे प्राचीन ग्रन्थों में कोई उपयुक्त शब्द विद्यमान है ही नहीं। ऐसे शब्दों के लिए या तो नये शब्द बनाने पड़ेंगे या जैसा मैं ऊपर कह चुका हूँ आधारभूत अंग्रेजी शब्द लेकर उनपर संस्कृत के उपसर्ग और प्रत्यय लगाकर नये शब्द गढ़ने होंगे। अभी तक कहा तो बहुत से लोगों ने है परन्तु किसी ने भी एक भी अंग्रेजी शब्द लेकर उससे सारे उत्पन्न शब्द निकालकर नहीं दिखाये। केवल कह देने से काम नहीं चलेगा। प्रत्येक शब्द-परिवार के प्रत्येक शब्द का पर्याय बनाकर दिखाना होगा। यह बात संभव है या नहीं, यह मैं नहीं जानता। यदि किसी शब्द-परिवार का एक भी शब्द ऐसा है जिसका इस प्रकार पर्याय नहीं बन सकता तो सारी श्रृंखला को तोड़ देना पड़ेगा। परन्तु मैं यह मानता हूँ कि ऐसा प्रयास वांछनीय है और विचारणीय है।

प्रायः देखा जाता है कि एक ही शब्द से दो चार उत्पन्न शब्द निकल आते हैं। फिर आगे जाकर गाड़ी रुक जाती है। यही कारण है कि अंग्रेजी भाषी प्रदेशों को छोड़कर कदाचित किसी भी स्वतंत्र देश ने अंग्रेजी की वैज्ञानिक शब्दावली को पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं किया है। अंग्रेजी शब्दावली को 'अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली' कहना ही ग़लत है। अंग्रेजी राष्ट्र मण्डल और संयुक्त राष्ट्र अमरीका को छोड़कर कहीं भी अंग्रेजी शब्दावली नहीं चलती। जापान ने अपनी शब्दावली अलग बनाई है। उन्होंने तो ऐसे सीधे शब्दों को भी नहीं अपनाया है जैसे :—

बाइसिकिल, रेल्वे, मोटर, हास्पिटल, फ़ोटोग्राफ़।

एक बार मैंने जापानी दूतावास से पुछवाया था। उन्होंने उत्तर दिया कि उन्होंने अंग्रेजी के किसी भी शब्द को नहीं अपनाया है। परन्तु थोड़े से साधारण बोलचाल के अंग्रेजी शब्द भी चलते हैं। उनके जापानी पर्याय भी चलते हैं। उनके देश में दो प्रकार की पत्रिकायें छपती हैं :—(१) अपने देश के लिए (२) विदेशों के लिए। जो पत्रिकायें अपने देश के लिए छपती हैं उनमें जापानी भाषा और जापानी शब्दावली का प्रयोग होता है। जो पत्रिकायें विदेशों के लिए छपती हैं वह अंग्रेजी भाषा में छपती हैं और उनमें अंग्रेजी शब्दावली का प्रयोग होता है।

दूसरा उदाहरण रूस का लीजिए। मई १९४९ में 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में महापंडित राहुल जी का एक लेख छपा था। उसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा था कि 'अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली' नाम की कोई वस्तु है ही

नहीं। रूस ने अपनी ही वैज्ञानिक शब्दावली बनाई है।" मैंने एक बार रूसी दूतावास से भी यही प्रश्न किया था। उनका उत्तर भी लगभग वही था जो जापानी दूतावास का था। अर्थात् केवल थोड़े से ऐसे शब्द हैं जैसे—

रेडियो, ऐटम, बम फ़ोटो

जो अंग्रेजी रूप में भी चलते हैं। शेष सारे पारिभाषिक शब्दों के रूसी पर्याय ही प्रचलित हैं।

कदाचित 'अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली' के समर्थक यह कहेंगे कि रूस और जापान में न सही, परन्तु 'अन्तराष्ट्रीय शब्दावली' पश्चिमी और मध्य योरुप में तो चलती है। परन्तु वास्तव में अंग्रेजी शब्दावली वहाँ भी नहीं चलती। फ्रांस में भी प्रायः सारे वैज्ञानिक शब्द अंग्रेजी से विभिन्न हैं। जैसे—

Engine—Moteur
Lens—Lentitte
Loud Speaker—Haut Parleur

केवल थोड़े से ही ऐसे शब्द हैं जो अंग्रेजी के शब्दों से मिलते जुलते हैं। जैसे—

River—Riviere
Receiver—Recepteur
Paper—Papier*

परन्तु प्रथम तो ऐसे मिलते जुलते शब्द बहुत ही कम हैं। दूसरे इनकी समानता का कारण भी इनकी अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति नहीं है, वरन् इनका उद्गम है। प्रायः सारे मध्य और पश्चिमी योरुप की भाषायें ग्रीक और लैटिन से निकली हैं। इसीलिए इनकी लिपि एक सी है और शब्दों में भी थोड़ी बहुत समानता है। यदि हम इसी प्रकार जर्मन भाषा की शब्दावली पर दृष्टि डालें तो पता चलेगा कि उस भाषा में भी बहुत थोड़े शब्द हैं जो अंग्रेजी से मिलते जुलते हैं। अतएव 'अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली'—यह नाम ही एक भ्रान्ति है। यदि लोग उस शब्द को अन्तर्राष्ट्रीय मान लें जो केवल अंग्रेजी राष्ट्रमंडल और संयुक्तराष्ट्र अमरीका में चलता हो तो हमें अवश्य ही मानना पड़ेगा कि अंग्रेजी की वैज्ञानिक शब्दावली अन्तर्राष्ट्रीय है। इस संकुचित अर्थ को छोड़कर और किसी अर्थ में यह शब्दावली कदापि अन्तर्राष्ट्रीय नहीं है।

अब प्रश्न रहा नाम सम्बन्धी शब्दों का। ऐसे शब्द भी दो प्रकार के होते हैं। एक तो वे जिनमें नाम के मौलिक रूप के साथ कोई अन्य शब्द जोड़ दिया जाता है जैसे—

Newton's theorem, Raman effect, Cauchy test, Taylor series.

मेरी समझ में समस्त वैज्ञानिक इस बात पर सहमत होंगे कि किसी भी आविष्कारक का नाम उसके आविष्कार के साथ अवश्य ही जुड़ा रहना चाहिए। Newton's theorem को हम हिन्दी में 'न्यूटन का प्रमेय' कहेंगे। Raman effect को 'रमन प्रभाव' ही कहेंगे। इसी प्रकार Taylor series को हम 'टेलर श्रेणी' के अतिरिक्त और क्या कह सकते हैं। कुछ लोग ऐसे शब्दों का भी ऐसा अनुवाद करना चाहते हैं जिसमें आविष्कारक का नाम न आये वरन् उसके किसी गुण पर नाम रख दिया जाय। जैसे Taylor series का कर्म है किसी फलिन (function) का प्रसार करना। अतएव Taylor series को मान लीजिए हम 'प्रसार श्रेणी' कह दें। इसी प्रकार Cauchytest को हम 'कौशी परीक्षण' न कहकर 'तुलना परीक्षा' कह दें। कुछ लोग इस प्रकार के अनुवाद करना चाहते हैं।

मैं तो इस प्रवृत्ति को अवैज्ञानिक, अन्यायोचित और घातक समझता हूँ। यदि हम दूसरे देश वैज्ञानिकों के नामों का बहिष्कार करेंगे तो दूसरे देशों के वैज्ञानिक भी हमारे देश के वैज्ञानिकों के नामों का बहिष्कार करेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि एक दिन ऐसा आयेगा कि संसार समस्त वैज्ञानिकों के नामों को भूल चुकेगा और यह पता चलाना भी कठिन हो जायगा कि कौन सा आविष्कार किस वैज्ञानिक ने किया था।

*यह शब्द मैंने श्री कुलदीपचन्द चड्ढा के लेख "शब्दावली निर्माण पर विहंगम दृष्टि" से लिए हैं जो मई १९४९ के 'विज्ञान' में छपा है।

दूसरे प्रकार के नाम-सम्बन्धी शब्द वे हैं जिनमें वैज्ञानिकों के नामों के विकृत रूप को ही उनके आविष्कार का नाम बना देते हैं। जैसे—

Polonium, Jacobian, Hessian.

न्यायसंगत तो यही होगा कि हम इन नामों को ज्यूँ का त्यूँ हिन्दी में अपना लें। परन्तु इस बात पर अवश्य ही विचार करना होगा कि यदि यह शब्द क्रियाओं का काम भी करते हों तो हम इनसे हिन्दी में क्रियापद भी बना सकेंगे या नहीं! मान लीजिए कि हम उपर्युक्त शब्दों को हिन्दी में लिखें :—

पोलोनियम, जैकोबियन, हेसियन।

यदि किसी दिन पोलोनियम शब्द से इस प्रकार के अन्य शब्द बन गए :—

Poloniumate, Poloniumated, Poloniumator.

—तो हम हिन्दी में भी इस प्रकार के शब्द बना सकेंगे या नहीं :—

पोलोनियमन, पोलोनियमित, पोलोनियमक

यदि इस प्रकार के शब्द बनाना संभव हो तो ऐसे नाम-सम्बन्धी अंग्रेजी शब्दों को अवश्य ही हिन्दी में अपना लेना चाहिए।

# विज्ञान-परिषद् की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकों की सम्पूर्ण सूची

१—**चुम्बक**—हाई स्कूल में पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी० सजि०; ।।।=)

२—**सूर्य-सिद्धान्त**—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखने का सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१४; १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महाबीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; सजिल्द; दो भाग में, मूल्य ८)। इस भाष्य पर लेखक को हिन्दी साहित्य सम्मेलन का १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है।

३—**वैज्ञानिक परिमाण**—विज्ञान की विविध शाखाओं की इकाइयों की सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस-सी०, १)

४—**समीकरण मीमांसा**—गणित के एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।) द्वितीय भाग ।।=),

५—**निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)**—गणित के एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमतीप्रसाद अग्निहोत्री बी० एस-सी०; ।।।),

६—**बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित**—इंटरमीडियेट के गणित के विद्यार्थियों के लिये—ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी०, १।),

७—**गुरुदेव के साथ यात्रा**—डाक्टर जे० सी० बोस की यात्राओं का लोकप्रिय वर्णन; ।=)

८—**केदार-बद्री यात्रा**—केदारनाथ और बद्रीनाथ के यात्रियों के लिये उपयोगी; ।=)

९—**वर्षा और वनस्पति**—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शंकरराव जोशी; ।=)

१०—**विज्ञान का रजत-जयन्ती अंक**—विज्ञान परिषद् के २५ वर्ष का इतिहास तथा विशेष लेखों का संग्रह; १)

११—**फल-संरक्षण**—दूसरा परिवर्धित संस्करण-फल की डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनाने की अपूर्व पुस्तक; २१२ पृष्ठ, २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्र नारायण सिंह एम० एस-सी०; २।।)

१२—**व्यङ्ग-चित्रण**—(कार्टून बनाने की विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी एम० ए०; १७५ पृष्ठ; सैकड़ों चित्र, सजिल्द; २)

१३—**मिट्टी के बरतन**—चीनी मिट्टी के बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र; सजिल्द; २)

१४—**वायुमंडल**—ऊपरी वायुमंडल का सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र सजिल्द; २)

१५—**लकड़ी पर पालिश**—पालिश करने के नवीन और पुराने सभी ढंगों का व्योरेवार वर्णन। इससे कोई भी पालिश करना सीख सकता है—ले० डा० गोरखप्रसाद और श्रीरामरतन भटनागर, एम०, ए०; २१८ पृष्ठ; ३१ चित्र, सजिल्द; २)

१६—**उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर**—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश, आकार बड़ा विज्ञान के बराबर २६० पृष्ठ, २००० नुसखे, १०० चित्र; एक-एक नुसखे से सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हजारों रुपये कमाये जा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थ के लिये उपयोगी; मूल्य अजिल्द २।।)

१७—**कलम-पेबंद**—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ५० चित्र; मालियों, मालिकों और कृषकों के लिये उपयोगी; सजिल्द; २)

१८—**जिल्दसाजी**—क्रियात्मक और व्योरेवार। इससे सभी जिल्दसाजी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०; १८० पृष्ठ, ६२ चित्र; सजिल्द २)

१९—त्रिफला—दूसरा परिवर्धित संस्करण-प्रत्येक वैद्य और गृहस्थ के लिये—ले० श्री रामेश वेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ; ३ चित्र, एक रङ्गीन; सजिल्द २॥।≶)

यह पुस्तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय, की १३ श्रेणी के लिए द्रव्यगुण के स्वाध्याय पुस्तक के रूप में शिक्षापटल में स्वीकृत हो चुकी है।"

२०—तैरना—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगों को बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद पृष्ठ १०४ मूल्य १),

२१—अंजीर—लेखक श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, अंजीर का विशद वर्णन और उपयोग करने की रीति। पृष्ठ ४२, दो चित्र, मूल्य ।≶)

यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय के शिक्षापटल में स्वीकृत हो चुकी है।

२२—सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओं के विचित्र संसार, पेड़ पौधों की अचरज-भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र और तारों की जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिष के संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञान के आकार के ४५० पृष्ठ और २३० चित्रों से सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द मूल्य ६)

२३—वायुमण्डल की सूक्ष्म हवाएँ—ले० डा० सन्त-प्रसाद टंडन, डी० फिल० मूल्य ॥)

२४—खाद्य और स्वास्थ्य—ले० श्री डा० ओंकारनाथ परती, एम० एस-सी०, डी० फिल० मूल्य ॥)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं:—

२५—विज्ञान हस्तामलक—ले० स्व० रामदास गौड़ एम० ए०। भारतीय भाषाओं में अपने ढंग का यह निराला ग्रंथ है। इसमें सीधी सादी भाषा में अठारह वैज्ञानों की रोचक कहानी है। सुन्दर सादे और रंगीन पौने दो सौ चित्रों से सुसज्जित है, आज तक की अद्भुत बातों का मनोमोहक वर्णन है, विश्वविद्यालयों में भी पढ़ाये जाने वाले विषयों का समावेश है, अकेली यह एक पुस्तक विज्ञान की एक समूची लैब्रेरी है, एक ही ग्रंथ में विज्ञान का एक विश्वविद्यालय है। मूल्य ६)

२६—भारतीय वैज्ञानिक—१२ भारतीय वैज्ञानिकों की जीवनियाँ; ले० श्री श्यामनारायण कपूर, सचित्र ३८० पृष्ठ; सजिल्द; मूल्य ३।) अजिल्द ३)

२७—वैक्युम-ब्रेक—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवे में काम करने वाले फिटरों, इंजन-ड्राइवरों, फोरमैनों और कैरेज एग्ज़ामिनरों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ; ३१ चित्र जिनमें कई रंगीन हैं, २),

## विज्ञान-परिषद् बेली रोड, इलाहाबाद

मुद्रक—जगतनारायण लाल हिन्दी साहित्य प्रेस प्रयाग। प्रकाशक—विज्ञान-परिषद्, बेली रोड, इलाहाबाद

प्रधान सम्पादक

**डा० हीरालाल निगम**

एम० एस-सी० डी० फिल्०

श्री हरिश्चन्द्र आई० सी० एस०, जज, प्रयाग हाईकोर्ट ( सभापति )
प्रो० सालिगराम भार्गव तथा डा० श्री रंजन ( उप सभापति ) डा० रामदास तिवारी (प्रधान मंत्री )
डा० हीरालाल दुबे तथा रामचरण मेहरोत्रा ( मंत्री ) श्री हरिमोहनदास टंडन (कोषाध्यक्ष)

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

---

## विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

### परिषद् का उद्देश्य

१—१६७० वि० या १६१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

### परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमंत्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे, जिन के द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

### सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिये वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशन में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित, परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों विवरणों इत्यादि के बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उन का प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन-चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायेंगे।

---

सम्पादक मण्डल

डाक्टर सत्यप्रकाश
डाक्टर गोरखप्रसाद

हीरालाल निगम

डाक्टर विशंभरनाथ श्रीवास्तव
डाक्टर ब्रजकिशोर मालवीय

# ग्राहकों से निवेदन

विज्ञान के इस अंक के प्रकाशन में अत्यधिक विलम्ब हो जाने के कारण ग्राहकों का असन्तुष्ट होना स्वाभाविक सा है; किन्तु यदि वे हमारे मार्ग में आनेवाली विषम परिस्थितियों पर विचार करें तो सम्भवतः उन्हें अपने विचार बदलने पड़ेंगे। मुद्राणालय और जन-शक्ति के अभाव की कठिनाइयाँ तो थी हीं, विज्ञान के पूर्व सम्पादक के लन्दन चले जाने के कारण और नए सम्पादक के कार्यारम्भ में वैधानिक कठिनाइयों के कारण हमारा काम और पिछड़ गया। गर्मी की छुट्टियों में विशेषरूप से पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशन में व्यस्त होने के कारण मुद्रकों का उचित सहयोग न प्राप्त होने से परिस्थित बिगड़ती ही गई। अस्तु, आशा है, ग्राहक इन कठिनाइयों को दृष्टिगत रखते हुए विज्ञान को पहले की भाँति अपने सहयोग से उन्नतोन्मुखी बनाने में हाथ बटाएँगे और वैज्ञानिक साहित्य से लाभान्वित होते रहेंगे। जुलाई-अगस्त-सितम्बर का अंक थोड़े ही दिन बाद ग्राहकों को भेजा जायगा, अक्तूबर का अंक भी इसी महीने के अन्दर उन्हें मिल जायगा।

# विषय-सूची

# विज्ञान

**विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र**

विज्ञान ब्रह्मे ति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

| भाग ७१ | सम्वत् २००७ अप्रैल-मई-जून, १९५० | संख्या ७-८-९ |
|---|---|---|

# दायित्व ?

विज्ञान आज, केवल नक्षत्रों की ओर ताकने वाले व प्रयोगशालाओं में कार्य करने वाले 'बावरे' वैज्ञानिकों की ही चिन्ता का भागी नहीं, वरन वह सर्वसाधारण की चिन्ता व रुचि से सम्बन्ध रखने लगा है। समय की गति के साथ विज्ञान की प्रगति ने होड़ मार कर व्यक्तियों, प्रयोगशालाओं, उद्योगी कार्यालयों को क्रमशः पार करके हमारे घरों की प्राचीरों को भी पार कर लिया है; कार्यालय का वैतनिक लेखक हो या प्रबन्धक, धराखण्ड का शासक हो या श्रमिक—प्रत्येक 'रामवाण औषधि' की रासायनिक रचना से हर्षित होता है और अणु-विस्फोट के प्रलयंकारी शक्ति की सूचना प्रत्येक का हृदय दहला देती है। सहर्ष नहीं, तो उदासीन भाव से ही सही, वैज्ञानिक अन्वेषणों के प्रति आज मानव-समाज जागरुक हो उठा है किन्तु विचारणीय यह है कि सूक्ष्मतम जीव-कोष्ठों, अदृश्य विद्युत तरंगों, रहस्यमय अणुओं, सर्वभेदी विश्व किरणों आदि में निहित रचनात्मक एवं विनाशात्मक शक्तियों के सुपरिणामों व कुपरिणामों का भुक्ता होते हुए भी वह इनके बारे में कितना ज्ञान रखता है ? उत्तर बहुत ही निराशा-पूर्ण होगा। विज्ञान के प्रति अज्ञान की अवस्था केवल अपढ़ जनता तक ही सीमित नहीं। निम्न-स्तर के व्यक्तियों से लेकर गण्यमान्य तक बहुधा ऐसा अज्ञान व्याप्त देखा जाता है, यदि गणना की जाय तो ज्ञात होगा कि विश्व की जन-संख्या का ९९% प्रतिशत से भी अधिक भाग विज्ञान के नाम पर विस्मय की मुद्रा द्वारा अपना अज्ञान प्रगट कर देगा। इस चिन्तनीय अवस्था का परिचय समाचार-पत्रों में प्रकाशित त्रुटिपूर्ण वैज्ञानिक-चर्चा से भलीभाँति मिलता है; किन्तु इसका दायित्व किस पर है ?

स्पष्टतया शिक्षार्थी पर नहीं बल्कि शिक्षक पर, समाज पर नहीं बल्कि वैज्ञानिक पर। कहीं भी नहीं, अभाग्यवश हमारे देश में तो और भी नहीं, यह देखने में आता कि वैज्ञानिकों ने सर्व-साधारण के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन किया हो, पत्रकारों को भ्रमपूर्ण विवरण देने से रोक कर उन्हें सही अनुवाद करने में सहायता दी हो, प्रयोग-शालाओं व सभाघरों की विषमता को दूर करने का प्रयत्न किया हो, कक्षाओं के भाषण व पत्रिकाओं के विवरण में साम्य लाने का कोई प्रयास किया हो। खेद है कि अपनी शिष्टता के दर्प में फूले हुए वास्तविकता के ये

पुजारी जीवन की वास्तविकता से दूर भागने में, जन सम्पर्क से बचे रहने में ही अपना बड़प्पन समझते रहे; अपने ज्ञान की उच्चस्थ शिष्टता को धार्मिक अंध-विश्वास जनित अशिष्टता की लू से बचाये रखने का स्वाँग १८वीं सदी के वैज्ञानिकों को किसी सीमा तक अपने को निर्दोष सिद्ध करने में सहायक भले ही हो जाय किन्तु आज के वैज्ञानिकों का जन-सम्पर्क के विषय में उदासीन रहना एक ही बात का द्योतक होगा और वह यह कि वैज्ञानिक साहित्य को, वैज्ञानिक दृष्टिकोण को समझाने की क्षमता ही उनमें नहीं। और तब इसमें आश्चर्य ही क्या यदि मानव समाज विज्ञान को व वैज्ञानिक को एक संदिग्ध दृष्टि से देखता है !

इस स्थिति का सुधार वैज्ञानिकों के ही हाथ में है और उक्त परिस्थिति में यथा कार्य करने का भार भी उन्हीं के कन्धों पर है। विज्ञापन वैज्ञानिकों के लिए कितनी भी घृणास्पद वस्तु क्यों न हो, आज वैज्ञानिक वर्ग को राजनैतिक नेताओं से होड़ लेनी ही पड़ेगी क्योंकि भविष्य की कुंजी "विज्ञान" के हाथ है। सार्वजनिक भाषण देना, समाचार-पत्रों में वैज्ञानिक स्तंभ स्थापित करा-ा, वैज्ञानिक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन बढ़ाना, सरल वैज्ञानिक पुस्तकों की रचना करना—आदि उपायों द्वारा विज्ञान के जनहितकारी ज्ञान को घर घर पहुँचाना वैज्ञानिकों का परम कर्त्तव्य है, अपनी संस्थाएँ बनाकर, अपने संगठन को शक्तिवान बनाकर शासनसूत्र सँभालने वालों पर अपनी विद्वत्ता, अपने आग्रह व अनुरोध द्वारा यह दबाव डालना विशेष सहायक होगा कि देश में वैज्ञानिक शिक्षा को उचित प्रोत्साहन मिले। जीविकोपार्जन के समुचित साधनों के अभाव में देश के नवयुवकों का १८-२० वर्ष की आयु तक विज्ञान पढ़ कर किसी कार्यालय में "क्लर्क" हो जाना, या कि "प्रादेशीय सिविल सर्विस" में ले लिए जाना बोई हुई खेती को न काटने की हास्यास्पद परिस्थिति है जिससे देश के शासकों, शुभचिन्तकों का मस्तिष्क सदैव लज्जा से झुका रहेगा, यह दूसरी बात है कि कुछ विद्वद् पूर्ण शब्दों से वह भोली जनता के समक्ष अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने में सफल रहें किन्तु इस वैज्ञानिक युग में बिना वैज्ञानिक शिक्षा के कोई देश उन्नति के पथ पर अग्रसर होकर वर्तमान प्रगति के साथ कन्धा मिला कर नहीं चल सकेगा, यह अकाट्य सत्य है। वैज्ञानिक शिक्षा का स्तर ही किसी देश की प्रगति का उचित माप-दण्ड है।

वैज्ञानिकों और शासकों की कार्य सम्पन्नता के लिए यह आवश्यक होगा कि वैज्ञानिक-साहित्य जनता की भाषा के सर्वग्राह्य माध्यम को लेकर चले। इसमें एक विशेष कठिनाई यह है कि प्रकृति के दुर्भेद्य रहस्यों को अपने मस्तिष्क की शक्तियों से अनुभव-गत कर लेने वाले वैज्ञानिक दुर्भाग्यवश अपने उन भावों को लेखनी की नोक के सहारे भली भाँति उतार देने में बहुत ही कम समर्थ पाए जाते हैं, प्रस्तुत संकेत कितना ही अशिष्ट व कटु क्यों न हो, सत्य होने के कारण सर्वमान्य होगा। हाँ, इस कथन के अपवाद के रूप में भी हक्सले, फैरेडे, डेभी, ब्रैग आदि प्रतिभावान वैज्ञानिकों का नाम लिया जाना आवश्यक है। सम्भवतः यह कहना अधिक उचित होगा कि इसका कारण वैज्ञानिकों की साहित्यिक सामर्थ्य से इतना सम्बन्ध नहीं रखता जितना अन्वेषण कार्य की व्यस्तता के कारण अवकाश के अभाव से। मौलिक चिन्तन की बलवती भावना के कारण सामर्थ्यवान वैज्ञानिक अपना अमूल्य समय वैज्ञानिक साहित्य के कलात्मक अंग को सजाने में नहीं व्यय करते, परिणाम स्वरूप वह दायित्व कम सामर्थ्य वाले वैज्ञानिकों पर पड़ता है, किन्तु यह समझ लेना आवश्यक है कि जहाँ मौलिक चिन्तन ज्ञान के बीज के अंकुरित, पुष्पित एवं फलित होने में विशेष सहायक सिद्ध होगा वहाँ वैज्ञानिक साहित्य का सारल्य विज्ञान का सन्देश जनता तक पहुँचाने व विज्ञान को भव कल्याण के पथ पर अग्रसर करने में विशेष सामर्थ्यवान सिद्ध होगा।

आशा है वैज्ञानिक अपने इस दायित्व की ओर ध्यान देंगे !

# रोग—मानसिक अवस्था के प्रतीक

लेखक—डा० कृष्णबहादुर एम० एस-सी० डी० फिल्०

*[ वर्तमान युग में "मानसिक रोगों की चिकित्सा" वैज्ञानिक अध्ययन का एक प्रमुख अंग बन गई है, हमारी मानसिक अवस्था हमारे स्वास्थ्य ही नहीं वरन् हमारे चेतन अस्तित्व की प्रतीक है। प्रस्तुत लेख में यह भली भाँति निरूपित है कि किन प्रवृत्तियों से किस प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।]*

समस्त मानव समाज में किसी न किसी रूप में यह विश्वास अवश्य है कि मनुष्य के विचार सुन्दर रहने पर उसका स्वास्थ्य भी सुन्दर रहता है। यह विचार सौन्दर्य की कल्पना विभिन्न समाज में विभिन्न है। उन विचारों को जनता से मनवाने के हेतु कहीं-कहीं तो धर्म को ही साक्षी बनाया गया है। आधुनिक विज्ञान ने यह स्पष्ट कर दिया है कि मनुष्य का मस्तिष्क शरीर के समस्त भागों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में नाड़ियों (nerves) द्वारा सम्बन्धित है। हमारी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ही हमें जगत का आभास होता है और हम इन्हीं आभासित तत्वों द्वारा विचारों का भवन तैयार करते हैं। यहीं तक नहीं बल्कि मस्तिष्क शरीर के समस्त अङ्गों से सम्बन्धित है तथा उनकी समस्त प्रतिक्रियाओं को चलाने का काम करता है, परन्तु इसका आभास हमारे चैतन्य मस्तिष्क को नहीं होता। शरीर के समस्त कार्यक्रम मस्तिष्क के अनुमति द्वारा ही होते हैं। हर एक बार की दिल की धड़कन फेफड़ों द्वारा हवा भरने तथा पेटा द्वारा भोजन पचाने में भी मस्तिष्क का अत्यधिक महत्वपूर्ण सहयोग रहता है। यह बात अवश्य है कि इन क्रियाओं के संतुलन का हमारे चैतन्य मस्तिष्क को आभास तक नहीं होता।

मनोविज्ञान के विद्वानों ने यह पूर्णतया साबित कर दिया है कि मनुष्य के मस्तिक पर विभिन्न विचारों का जो प्रभाव पड़ता है उसी के आधार पर शरीर स्वस्थ या रोगी रहता है। मनुष्य के विकृत मानसिक प्रभाव के कारण ही पेट में दर्द, कब्ज़, दस्त, वायुप्रकोप, दिल की धड़कन, जिगर में खराबी, डरना, सनक चढ़ना, रात में सोते-सोते काम करना, किसी प्रकार का असाधारण निश्चय, चिड़चिड़ाहट, सचेतनता, नपुंसकता, योन विकृति, सरदर्द, आधे सर का दर्द, रात में नींद न आना, नशीली वस्तुओं का उपयोग करने की आदत, तथा किसी मत या धर्म विशेष की कट्टरता इत्यादि तरह-तरह के भयंकर रोग उत्पन्न होते हैं। इनमें लगभग ६० प्रतिशत बीमारियाँ, यदि वे पुरानी हो गई हैं तो निश्चित ही मानसिक अस्वस्था के कारण ही प्रारम्भ होती हैं। कुछमें यह भी सम्भव है कि कुछ बाहरी कारण भी सहायक हों।

मनुष्य के विकारयुक्त विचारों द्वारा उत्पन्न रोग में एक विशेष बात यह होती है कि कभी-कभी उनमें रोगी के शरीर में कोई प्रत्यक्ष भौतिक गड़बड़ी नहीं दिखाई देती यही यदि पुराने रोग हो गये तो उनमें शरीर में भी प्रत्यक्ष लक्षण दिखाई देने लग सकते हैं। विचारों के कारण रोगी मनुष्य को केवल दवा से कुछ समय के लिए चाहे भले ही ठीक कर लिया जाय परन्तु यदि उसका उपचार मानसिक चिकित्सा के आधार पर न हुआ तो फिर कुछ ही काल बाद वह व्यक्ति पुनः उस रोग का रोगी हो जाता है। अधिकांश तो ऐसे मरीज़ दवाओं से अच्छे ही नहीं होते। इस प्रकार के बहुत से रोगियों को मुझे भी मिलने का अवसर आया है जिनके शरीर में डाक्टरों द्वारा कुछ भी गड़बड़ी न मिलने पर भी उन्हें भीषण पेट में दर्द, सर में दर्द, निद्रा अपहरण, डर इत्यादि अन्य रोग हैं। उनके शरीर में कोई भी गड़बड़ी नहीं होती। ऐसे व्यक्तियों का उपचार केवल मानसिक चिकित्सा द्वारा ही सम्भव है।

मनुष्य में भिन्न-भिन्न प्रवृतियाँ होती हैं, जैसे दूसरों पर रोब रखने की प्रवृति, दूसरों के सामने अपने व्यक्तित्व को प्रगट करने की प्रवृति इत्यादि। इन विभिन्न प्रवृतियों के कारण मनुष्य में तरह-तरह के स्पन्दन निर्माण होते हैं जैसे यौन तथा कामवासना सम्बन्धी इच्छा के कारण योग्यता की इच्छा रोब तथा शक्ति का प्रभाव

करण करने की इच्छा और व्यक्ति-प्रागट् की प्रवृति के कारण बखान करवाने की इच्छा तथा स्वय की तारीफ़ इच्छा के स्पन्दनों का निर्माण होता है। कुछ व्यक्तियों में अग्रगामी झुकाव और भावना द्वारा ऐसे स्पन्दन उत्पन्न होते हैं जैसे घृणा, डाह, बदला लेने की प्रवृत्ति। एकान्तता से रहने की प्रेरणा व्यक्ति में अपने साथियों के विरोध से सुरक्षित रहने की इच्छा से, निर्णय लेने से बचने के लिये, जिम्मेदारी, कटाक्ष खतरा तथा डर से बचने के लिये या धार्मिक तथा चारित्रिक विचारों के कारण हो उत्पन्न होती है।

यह समस्त स्पन्दन अन्तर्गत प्रवृत्तियों द्वारा ही उत्पन्न होते हैं। कभी कभी इनके स्वाभाविक प्रवृत्ति का रूप बदल जाता है, जैसे यौन-प्रवृति बदल कर कामयुक्त सम्बंध तथा विकृति आदतें को जाती हैं। व्यक्ति-दृढ़त्व प्रवृति राजनैतिक अभिलाषा का रूप ग्रहण करती है, और अग्रगामी प्रवृत्ति पिता के प्रति घृणा का तथा विनीत प्रवृति नैतिक कल्पनाओं और धार्मिक कट्टरताओं का रूप लेती है।
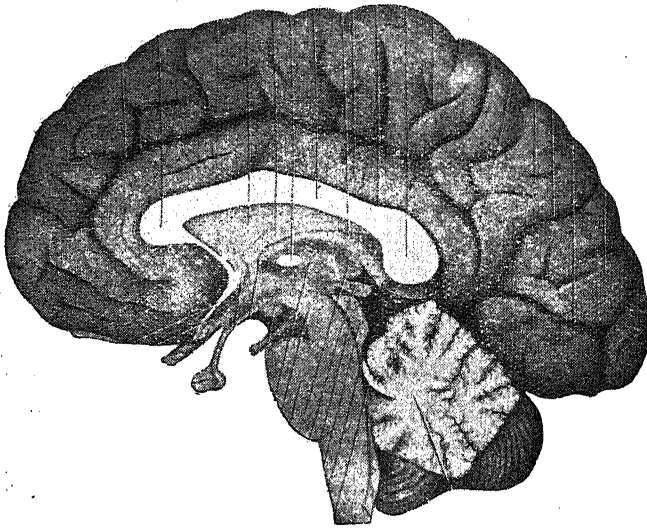
मनुष्य में उत्पन्न स्पन्दन अधिक तीव्र होने पर उसको रोग के रूप में हानि पहुँचा सकते हैं। इस तीव्रता की माप इन स्पन्दनों के असन्तुष्ट होने पर उत्पन्न भाव से या इनसे द्वारा व्यक्ति में उत्पन्न आभास, विचार, स्वप्न तथा क्रिया से होता है। कभी कभी ऐसा भी हो सकता है कि यह तीव्रता व्यक्ति में गुप्त रूप में रहे और उसको प्रगट होने के लिये किसी प्रेरक की आवश्यकता हो तभी यह स्थाई या अस्थाई रूप से प्रगट हो। एडलर तथा उसके सहकारियों ने यह ज्ञात किया कि व्यक्ति दृढ़त्व का स्पन्दन स्त्री होने, सबसे छोटा लड़का होने, नाटा या कुरूप होने, कुछ शारीरिक अभाव होने निम्न श्रेणी में पैदा होने, साधनों की कमी होने, निम्न सामाजिक स्थान होने, शिक्षा की कमी होने या बचपन में किसी प्रकार कि निम्न स्थिति होने के कारण तीव्रता प्राप्त करती है। इसी प्रकार किसी साथी के उन्नति पर या उसके प्रबल पूर्वक प्रगति पर भी समान प्रभाव होता है। भाई या मित्र के प्रगति से भी अस्थाई प्रभाव हो सकता है। शराब, आकर्षणकारी साथी की उपस्थिति तथा लिङ्ग पर बातचीत, प्रोत्साहित साहित्य तथा फोटो यौन स्पन्दन को स्थाई या अस्थाई रूप से बढ़ाती है।

इन स्पन्दनों के सन्तुष्ट न होने के कारण व्यक्ति की भूमिका अतृप्त हो जाती है। इस प्रकार की अतृप्ति जैसे प्रेमी के अभाव या साथी की आवश्यकता, विश्वास का अभाव, चारों ओर के रहने वालों की उदासीनता या आर्थिक या सैनिक बाध्यता स्पन्दनों को दीर्घकाल तक असन्तुष्टरखती है। दूसरे प्रकार की असन्तुष्टि व्यक्ति में कुछ कमी के कारण उत्पन्न होती है, जैसे कुरूपता या नपुंसकता द्वारा यौन सन्तुष्टता का अभाव, या बुद्धि की कमी या विद्या के अभाव से व्यक्ति के व्यक्ति-दृढ़त्व के स्पन्दन को निराशा होती है। और कलात्मक गुणों के अभाव पर व्यक्ति-प्रागट असन्तुष्ट रह जाता है। तृतीय प्रकार की अतृप्ति सगोत्र से सम्भोग, विकृति यौनिक क्रिया, सम्बंध या आदत द्वारा निर्माण होती है क्योंकि यह समस्त बातें व्यक्ति के सामान्य यौनि स्पन्दन के सन्तुष्टि में बाधक हैं। इसी प्रकार किसी न प्राप्त होने वाले साथी के कारण भी भौतिक यौन सन्तुष्टि में बाधा हो सकती है। बाधा, आभास, आदत,

लज्जा, पाप की कल्पना, अयोग्यता या स्वयं के ओछेपन की कल्पना द्वारा भी यौन सन्तुष्टि में बाधा पड़ सकती है। यही परिणाम प्रयत्न न करने की इच्छा, कठिनाइयों का डर, असफलता तथा अपमान की कल्पना या नैतिक या धार्मिक बाधा द्वारा भी होता है।

यह विभिन्न प्रकार के भाव परस्पर एक दूसरे को बढ़ाने या घटाने के काम में भी आते हैं, जैसे अयोग्यता तथा स्वयं के ओछापन का भाव, प्रयत्न न करने की प्रवृति और कठिनाइयों के डर के भाव व्यक्ति-दृढ़त्व और व्यक्ति-प्रागट् के स्पन्दनों को दबा देते हैं। प्रेमी व्यक्ति के हृदय में चोट पहुँचने का डर या संघर्ष और झगड़े का भय तथा नैतिक और धार्मिक बाधायें अग्रगामी-स्पन्दन को दबा देती हैं। कर्तव्य का भाव आलोचना तथा अपमान, जिम्मेदारी से भागने को स्पन्दन को दबा देता है। यौन तथा निर्णय का डर या खतरे की कल्पना व्यक्ति-दृढ़त्व को रोकता है और नैतिक तथा धार्मिक प्रवृत्ति अग्रगामी स्पन्दन के सन्तुष्टि में बाधा डालती है।

यह समस्त भाव तथा स्पन्दन अपने बाधा की शक्ति अन्तर्गत प्रवृति द्वारा प्राप्त करते हैं। उनका विशेष रूप उन प्रवृत्ति द्वारा बनी भावना के कारण है। यह व्यक्ति स्वयं के प्रत्यक्ष अनुभवों द्वारा ग्रहण करता हैं। इसमें अपमान, असफलता, किसी विशेष चीज़ की कमी, बचपन की असफलता, उस काल के नैतिक तथा धार्मिक अनुभव, निरूत्साह तथा धैर्यहीन या दुर्बल नाड़ी के साथी का होना विशेष महत्वपूर्ण हैं।

उक्त प्रकार के भावों की क्रिया प्रतिक्रिया प्रत्येक के मस्तिष्क तथा मन पर रहती हैं। यदि साथ ही निम्न प्रकार की कोई बात हुई जैसे प्रवृत्तियों की असाधारण शक्ति, विभिन्न स्पन्दनों को जटिल रूप देकर व्यक्त करने की कमी, अत्यधिक भावुकता तथा भावात्मक अनुभव तथा उन अनुभवों को स्थाई रखने की आदत, भावों का प्रभाव स्थाई रखते हुये जप्त करने की आदत, उद्भिज्ज अङ्गों का मनोभावों द्वारा अत्याधिक उत्तेजन, कम प्रयत्न करने की लत तथा अप्रिय वातावरण के विरुद्ध कार्य न करने का भाव, तो व्यक्ति अपने उक्त भावों के कारण अवश्य किसी न किसी मानसिक रोग का रोगी हो जायेगा।

मनुष्य में अपने हृदय के विभिन्न भावों को बदल कर उन्हें ऐसा रूप देने का गुण होता है कि जिन्हें वह सन्तुष्ट कर सके। अग्रगामित्व, व्यक्ति-दृढ़त्व, व्यक्ति-प्रागट तथा समाजिक स्पन्दन को मिलाकर शतरंज खेलने का शौक उत्पन्न हो सकता है। एक प्रकार के स्पन्दन का रूपान्तर कर दूसरा रूप देने की शक्ति विभिन्न व्यक्तियों में विभिन्न मात्रा में होती है। जिनके यह शक्ति पर्याप्त मात्रा में होती है वह उक्त प्रकार के विभिन्न स्पन्दनों के असन्तुष्ट होते हुए भी उन्हें किसी अन्य प्रकार का रूप देकर उनके द्वारा निर्माण अतिप्ति से बच जाते हैं। यह शक्ति मनुष्य को जन्मतः ही प्राप्त होती है परन्तु अभ्यास तथा शिक्षा द्वारा कुछ बढ़ाई जा सकती है। जिनमें यह शक्ति कम होती है वह अपने विचारों के कारण शीघ्र ही बीमार होते हैं। कम सेकम इतना तो निश्चित ही हैं कि ऐसे व्यक्तियों में बीमारी के लक्षण सुप्तावस्था में उपस्थित रहते हैं।

मनुष्य की अत्यधिक भावुकता भावनाप्रद अनुभवों तथा उनके द्वारा उत्पन्न भावों को बहुत बढ़ा देती हैं। यह भावुकता व्यक्ति को जन्मतः प्राप्त होती है या स्त्री होने या क्षीण स्वास्थ के कारण भी उत्पन्न हो जाती है। यह भावुकता सांस्कृतिक प्रभाव तथा पिछले मनोभावों के दबाव के कारण भी उत्पन्न हो सकती है। अत्यधिक भावुकता होने पर व्यक्ति पर वैमनस्य, प्रयत्न तथा अपमान का बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। यदि इस व्यक्ति में अपने पसन्द के विरुद्ध कार्य करने की मात्रा अच्छी हुई तो इन भावों के फलस्वरुप उससे केवल शक्तिशाली तथा तीव्र क्रियाऐं ही होंगी, परन्तु यदि यह मात्रा कम या सामान्य हुई तो व्यक्ति कठिन परिस्थितिओं में अपनी सामाजिक, यौनिक या व्यक्ति-दृढ़त्व स्पन्दन को सन्तुष्ट नहीं कर सकेगा। यह अत्यधिक भावुकता तथा अपने पसन्द भावों के विरुद्ध काम करने की आदत की कमी, मनुष्य में विभिन्न विचारों द्वारा होने वाले रोग निर्माण करने में प्रमुख रूप से सहायक होती हैं। अत्यधिक भावुकता के साथ ही साथ उत्तेजना वर्धक

अनुभवों के भावों को रोक रखने की आदत जो कि व्यक्ति को जन्म से ही होती है मानसिक रोग उत्पन्न करने में ऊपर से भी महत्वपूर्ण है। निम्न होने का भाव, अयोग्यता, लज्जा तथा पाप के तीव्र भावों द्वारा अत्यधिक भावुक व्यक्ति में प्रभावकारी रोग निर्माण करते हैं। यदि उत्तेजनावर्धक अनुभवों को कायम रखने की शक्ति कम है तो यह अनुभव धीरे धीरे शक्तिहीन हो जाते हैं और मनुष्य को प्रत्यक्ष हानि नहीं पहुँचा सकते परन्तु यदि मनुष्य में उत्तेजनावर्धक अनुभवों को कायम रखने की आदत अधिक हुई तो यह भाव मनुष्य में सदैव के लिए अंकित हो उसमें अपना प्रभाव दिखलाने लगते हैं। एक मरते हुए कुत्ते को एक बार देखते ही एक बालक सदैव के लिए जानवरों को मारना बंद कर सकता है तथा तरुण व्यक्ति को उसके यौनावस्था में प्राप्त सम्भोग सम्बंधी रोगों के बारे में दी गई सावधानी उसे वर्षों यौन संसर्ग से कौन रोक सकती है।

भावुक व्यक्ति जिनमें उत्तेजनावर्धक अनुभवों को कायम रखने की आदत होती है अयोग्यता, निम्न होने का विचार, लज्जा, पाप कल्पना के कारण मानसिक दबाव असफलता तथा अपमान और कोई अप्रसन्नकारी स्थिति में अत्यधिक डरने लगता है। इसके कारण उसके स्पन्दन स्थाई रूप से असन्तुष्ट रह जाते हैं। इनको रूपान्तर करने तथा उन्हें अभ्यास द्वारा शक्तिहीन करने को छोड़ कर कोई साधन नहीं रह जाता, परन्तु रूपान्तर में उसी मानसिक दबाव को सहने की शक्ति तथा चेष्टा की आवश्यकता होती है जो उस व्यक्ति में नहीं होती और उस स्पन्दन को अस्वीकार करने का तरीका छोटा और सीमित है। इसलिये अत्याधिक भावुकता तथा शक्तिशाली उत्तेजना वर्धक अनुभवों को कायम रखने की आदत से शीघ्र ही बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं। यदि साथ ही स्पन्दनों का रूपान्तर कर दूसरा मार्ग देने की शक्ति कम हुई तो प्रभाव और शीघ्र प्रगट होता है।

अप्रसन्नता का बहुत बड़ा डर मानसिक रोगों के उत्पन्न करने वाले पहिले के मूल तत्त्व के साथ भी लिया जा सकता है जैसे निरोध की असाधारण उच्च शक्ति के साथ। इसके परिणाम स्वरूप निरोध की शक्तिशाली लत केवल आवश्यक स्पन्दनों का ही नहीं निरोध करती जैसा कि साधारण आदमी में होना चाहिये बल्कि जीवन के आवश्यक स्पन्दनों का भी निरोध करती है। इस प्रकार के आवश्यक स्पन्दन चेष्टा भी नाड़ी तथा बोध परिधि से समाप्त हो जाते हैं। चेष्टा परिधि से समाप्त हो जाने के कारण उनके सन्तुष्टि की आशा समाप्त हो जाती है और बोध के परिधि से निकलने के कारण व्यक्ति को उस असन्तुष्टता को दूसरे किसी प्रकार की सन्तुष्टता के द्वारा भरने का साधन सम्भव नहीं रह जाता। इसके साथ ही साथ यदि स्पन्दनों का रूपान्तर कर उन्हें विभिन्न स्वरूप देने की शक्ति कम हुई तो स्पन्दनों का रूपान्तर भी असम्भव हो जाता है। इस कारण वह व्यक्ति स्थाई रूप से असंतुष्ट रहने लगता है और मानसिक रोगों का रोगी बन जाता है।

जीवन के दुखदाई अनुभवों से प्रभाव कारी रोग उत्पन्न होते हैं तथा आनन्ददाई अनुभवों से सम्बन्ध प्रेरणा तथा आदतें निर्माण होती हैं। इन शक्तिशाली उत्तेजित अनुभावों के असन्तुष्ट होने पर उत्पन्न यह मानसिक रोग निर्माणक मूल तत्त्व चिरस्थाई प्रभाव कारी रोक बन जाता है और यही सन्तुष्ट होने पर घनिष्ट सम्बन्ध प्रेरणा तथा आदतें बनती हैं। दूसरे शब्दों में यही मानसिक रोग निर्माणक मूल तत्त्व व्यक्ति को विशेष कर सम्बन्धित श्रद्धावान पुरातन वादी किसी विशेष व्यक्ति के लिये सम्बन्धित और किसी लत का आदी बनाता है। सारान्श यह कि यह स्थाई भावुकता तथा उलझन निर्माण करने के काम आता है। यदि स्थिति के परिवर्तन या किसी के व्यक्तित्व के कारण इस स्थाई प्रेरक की सन्तुष्ट सम्भव नहीं हुई तो भी व्यक्ति उन्हें बदल नहीं सकता। वह स्थाई रूप से असन्तुष्ट रहेगा जिसके परिणाम स्वरूप उसे मानसिक कारणों द्वारा उत्पन्न रोग हो जायेंगे।

शारीरिक रोग के उत्पन्न लक्षणों को दूसरे को आकर्षित करने या उनसे लाभ उठाने के लिये उनको उपयोग करना, स्वंय एक मानसिक रोग निर्माणक मूल तत्व बन जाता है। यह आदत बचपन के बुरे सोहबत या दूषित शिक्षा द्वारा बनती है। यदि यान्त्रिक पीड़ा के कारण उत्पन्न खाँसी को दूसरों के दिखाने या

लाभ उठाने में रोगी उपयोग करे या सोचे तो उक्त क्षत के समान होने पर भी वह व्यक्ति खाँसी का रोगी रह सकता है। इसी प्रकार गर्भावस्था के रहने के कारण उत्पन्न मानसिक क्षीणता उसके बाद भी रह जाती है।

उत्तेजनावर्धक प्रेरक के कारण स्वयंचालित अंगों (autonomic system) का अत्याधिक प्रभावित होना भी एक महत्वपूर्ण मानसिक रोग निर्माणक तत्व है। यह अत्याधिक प्रभाव सम्पूर्ण स्वंय चालित अंगों या इसके एक भाग जैसे निन्द्रा केन्द्र, वमन-केन्द्र रक्त वाहिनी प्रसरण नाड़ी, या दिल या पेट की नाड़ी पर हो सकता है। यह प्रभाव व्यक्ति में भूत या वर्तमान काल की भौतिक रोग से प्राप्त होता है या इसकी उत्पत्ति स्वाभाविक होती है।

इस प्रकार केवल मृत्यु के अत्याधिक डर को छोड़ कर जो कि एक मात्र स्पन्दन है जो कि वर्षों असन्तुष्ट रहने पर भी किसी प्रकार का मानसिक रोग उत्पन्न नहीं कर सकता, अन्य समस्त स्पन्दन यदि अधिक दिनों असन्तुष्ट रहे, मनुष्य अत्याधिक भावुक हुआ तथा उसमें अपने स्पन्दनो को रूपान्तर करने तथा सहन करने की शक्ति न हुई तो वह अवश्य किसी न किसी प्रकार के मानसिक रोग का रोगी हो जायेगा। इस सहन करने का काल हर एक व्यक्ति के असन्तुष्टता को सहन करने की शक्ति पर निर्भर है जो कि सम्भवतः वही है जो की उसकी अप्रसन्नता पूर्ण स्थिति में कार्य करने की शक्ति।

उक्त स्थिति के निर्माण होने पर रोग के लक्षण प्रत्यक्ष होने लगते हैं। उन लक्षणों के निर्माण की तीन श्रेणियाँ हैं। प्रथम जिसमें उत्तेजित प्रेरक द्वारा स्वंय चालक अंगों पर अत्याधिक प्रभाव है। जैसा ऊपर लिखा जा चुका है यह मानसिक रोग निर्माणक मूल तत्व भी हो सकता है। परन्तु इसका प्रभाव अन्य मूल तत्वों की भाँति नहीं होता जो लक्षण निर्माण के लिये दूसरे तत्वों पर आवलम्बित होते हैं, बल्कि यह स्वयं निश्चित लक्षण जैसे निद्राअपाहरणवमन, रक्तवाहिनी प्रसरण गड़बड़ी ( vaso-motor disorders ) अत्याधिक-आकुञ्चन (extra systoles) इत्यादि निर्माण करता है और इस प्रकार यह एक लक्षण निर्माण तत्व है। दूसरा कारण क्रियात्मक उदासी तथा मानसिक विटघन ( mental dissosiation ) की ओर झुकाव है और तीसरा भूतकाल की रोग सम्बन्धित घटनाओं का स्मर्ण है जैसे पिता के धमनी काठिन्य ( arterio-sclerotic ) द्वारा दमघुटने के स्मरण द्वारा पुत्र में जो खुली जगह के शौक ( agoraphotia) का रोगी है दमघुटने की बीमारी का भी रोगी हो सकता है। एक स्त्री का पति उदर के झिल्ली सम्बन्धी रोग (peritonitis) का रोगी था, उसके कोष्ट वायु (flatulence) के स्मरण मात्र से स्त्री को भी वही लक्षण हो गये। एक लड़की को मूर्च्छाकारक औषधि का स्मरण होता था जिस के बाद उसे ऐसा प्रतीत होता था कि वह ईथर सूँघ रही है और वह बेहोश हो जाती थी।

लक्षण स्थाइत्व यानी लक्षण रहने का समय या एक साधारण मनोभावुक प्रतिक्रिया जो अन्यथा बिना कुछ प्रगट किये हुये हीं निकल गई होती या लक्षण या साधारण मानसिक प्रतिक्रिया को जो वैसे न आते वापस लाती है। जैसे प्रतीक मानसिक दबाव से आराम, बहकाना, या विस्मरणशारीरिक या मानसिक वेदना उक्त स्पन्दन, प्रत्येक व्यक्ति-प्रवाह या बचाव, प्रत्येक सहायता आनन्द या लाभ या संक्षिप्त में प्रत्येक सन्तुष्टि जो रोगीं उन लक्षणों से प्राप्त करता है लक्षण को स्थाई रखने में सहायता होते हैं। यहाँ यह महत्वपूर्ण बात है कि यह लाभ किसी लक्षण को चलाये रखने में या उसके फिर से प्रगट होने में चाहे सहायक क्यों कर न हों परन्तु यह एक लक्षण के उत्पत्ति का कारण नहीं हो सकते। इस प्रकार इनके द्वारा मानसिक रोग प्रारम्भ नहीं हो सकता। यदि यह मानसिक रोग निर्माण भी करते हैं तो रोग के लक्षण बहुत थोड़े काल तक रहते हैं जैसे चिड़चिड़ाहट, भय, डर इत्यादि परन्तु वास्तव में कोई रोग जब ही मानसिक रोग माना जाता है जब कि वह कुछ काल तक रहे या फिर कुछ-कुछ समय बाद वापस हो। इनमें लक्षणों द्वारा प्राप्त कोई भी लाभ सहायक नहीं होगा। इस प्रकार प्रत्यक्ष में यह केवल लक्षणो के स्थाइत्व में ही सहायक है।

समस्त आन्तरिक तैयारी जब ऐसी हो जाती है कि व्यक्ति मानसिक रोग का शिकार हो जाय तो एक अन्तिम

परिणाम प्रारम्भ करने वाले तत्व की आवश्यकता पड़ती है। यह तत्व रोग प्रारम्भ करता है। इसके कारण व्यति में असन्तुष्टता सहन करने की शक्ति कम हो जाती है जैसे जुकाम ( influenza ) का एक आक्रमण मनुष्य के सहन शक्ति को नष्ट कर सकता है, जैसे एक दुर्घटना जो यह प्रगट करे कि वे लक्षण उसके वर्तमान स्थिति में उसके लिये बहुत लाभप्रद हो सकते हैं या व्यक्ति के आपत्तियों के घटाने या बढ़ाने से या उसके पारिवारिक जीवन या व्यवसाय में न बर्दाश्त करने लायक असन्तुष्ट मानसिक रोग प्रारम्भ करने वाला अन्तिम तत्व हो सकता है।

उक्त समस्त विवरण में आवश्यक कारण वे हैं जिनके बिना मानसिक रोग की उत्पत्ति सम्भव ही नहीं और अनावश्यक वह जिनके बिना भी मानसिक रोग उत्पन्न होता परन्तु सम्भवत: देर में और विभिन्न रूप में अब प्रश्न हो सकता है कि उक्त तत्वों में से कौन-कौन से आवश्यक हैं ? यह अत्यन्त महत्व पूर्ण है कि बिना अत्यन्त शक्तिशाली स्पन्दन के असन्तुष्ट रहे मानसिक रोग उत्पन्न होना सम्भव नहीं। इससे स्पष्ट होता है कि ब्रती इच्छा तथा उसकी असन्तुष्टता मानसिक रोग के प्रमुख तत्व हैं। यह किसी भी प्रकार के मानसिक रोग निर्माण मूल तत्व के लिये है। बिना किसी भी मूल तत्व के कोई भी मानसिक रोग सम्भव नहीं यद्यपि यह अवश्य सत्य है कि बहुत से रोग बिना कई मूल तत्वों के कदापि उत्पन्न नहीं होते। phobias, obsession और compulsion neurosis तथा ऐसे मानसिक रोगों के उत्पत्ति के लिये जिनमें भौतिक लक्षण होते हैं विशिष्ट लक्षण निर्माणक तत्वों की भी आवश्यकता पड़ती है। परन्तु यदि यह लक्षण निर्माणक तत्व न होते तो यह कहना कठिन है कि व्यक्ति स्वस्थ्य रहता या उसे स्नायु की झिल्ली का प्रदाह के ( neurasthenic ) लक्षण जैसे थकान, अशान्ति और चिड़चिड़ाहट जिनके लिये कोई लक्षण निर्माणक तत्व की आवश्यकता नहीं पड़ती, न होते। बहुत बार मानसिक रोग बिना लक्षण निर्माणक तत्व के ही प्रगट हो जाते हैं। कुछ में समस्त स्थिति उत्पन्न रहने पर भी यदि अन्तिम लक्षण निर्माणक तत्व न होता तो सम्भवत: लक्षण प्रगट ही न होते।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मनुष्य के अन्दर जो विचारों तथा भावों की क्रिया प्रतिक्रिया होती रहती हैं उनका शारीरिक रोग निर्माण करने में महत्वपूर्ण सहयोग होता है। इस प्रकार के मानसिक रोग से पीड़ित व्यक्ति का उपचार केवल मानसिक चिकित्सा द्वारा ही हो सकता है।

---

# स्वाद और गन्ध

लेखक—डा० हीरालाल निगम एम० एस-सी० डी० फिल्०

*[ मस्तिष्क की यंत्र रचना को समझने के लिए जो वैज्ञानिक गवेषणा हो रही है, उससे यह कल्पनागत हो सकता है कि आने वाली शताब्दी का मनुष्य एक सुन्दर चित्र को सूंघकर या मनोरंजक संगीत मय स्वर को चखकर पहचान सके किन्तु अभी तो इस लेख में वर्णित आवश्यक ज्ञान से ही हमें सन्तोष करना पड़ेगा ]*

विचित्र सी बात है कि आस्वादन तथा घ्राणशक्तियों का महत्व शारीरिक अनुकूलता के लिए अब उतना अधिक नहीं जितना कि दृष्टि तथा श्रवण शक्तियों का। सम्भवतः पूर्व काल में ऐसा न था, आदि प्राणी को निश्चय ही अपनी उन्हीं ज्ञानेन्द्रियों पर निर्भर रहना पड़ता था। स्वाद का ज्ञान ही उसे वनों के विषैले खाद्य-पदार्थों के जानने में सहायक होता था, शत्रु-वर्ग के गन्ध का ज्ञान ही उसे अपनी रक्षा करने में सहायक होता था,

और सबसे महत्वपूर्ण तो यह है कि कुछ अंशों में इन्हीं ज्ञानेन्द्रियों द्वारा वह उत्पादन-क्रीड़ा की अनुकूलता का निश्चय करता था। प्रमाण स्वरूप आज भी देखा जाता है कि मछलियाँ अपनी दृष्टिगत कोई भी वस्तु नहीं खाएँगी, जब तक वह उसे सूँघ या चख न लें, बिल्ली अपने सामने रखे हुए दूध तक को नहीं पीती जब तक वह सूँघ न ले। इन ज्ञानेन्द्रियों के विकाश की कथा बड़ी ही मनोरंजक है। आदि प्राणियों (एक कोष्ठ वाले) जैसे अमीबा (ameba) व पैरामोशियम (paramoecium) में साधारणतया एक रासायनिक सूक्ष्मग्राही गुण होता है, प्रयोगार्थ जिस पानी में ये प्राणी विद्यमान हों, उसमें यदि अम्ल का एक बूँद भी डाला जाय, तो वे उसके पास से हटते हुए दिखाई पड़ेंगे। बहु कोष्ठ युक्त (multi cellular) प्राणियों जैसे मछलियाँ (jelly-fish), केचुआ (Earthworm) में भी लगभग यही सूक्ष्म ग्राहिता होती है। विकसित प्राणियों में, चाहे वे पृष्ठवंश युक्त हों या नहीं, दोनो प्रकार की ज्ञानेन्द्रियाँ पाई जाती हैं स्वाद के संस्थान तो भिन्न भिन्न अगों से लेकर किसी किसी में पूरे शरीर भर में फैले देखे गये हैं। कीट-पतंगों में भी गन्ध के ज्ञान के लिये सूक्ष्म ग्राही इन्द्रियाँ होती हैं, एक मनोरंजक प्रयोग में यह वर्णित है कि एक मादा पतिंगे के पास कुछ ही घंटों में बहुत से नर-पतिंगे (लगभग १२५) आकर चक्कर काटने लगे। निश्चय ही ये पतिंगे मादे की गन्ध से आकर्षित होकर आए होंगे और उनकी घ्राण शक्ति अति तीव्र होगी क्योंकि वे सैकड़ों मील दूर से आए होंगे।

## स्वाद गन्ध के संस्थान—

स्वाद व गन्ध की क्रियाओं के समझने के लिए यह आवश्यक है कि इनसे सम्बंधी इन्द्रियों का अध्ययन किया जाय —

स्वाद का ज्ञान मनुष्य को स्वाद के कोषों (Taste buds) द्वारा होता है; ये कोष जिह्वा के चर्म पंखों (Papillae) में ऊपरी सतह की ओर होते हैं। यदि अनुवीक्षण यँत्र से देखा जाय तो ये कोष दो प्रकार के कोष्टों से बने होते हैं जिनमें एक को रसज्ञ कोष्ठ (Gustatory cells) कहना उचित है। इन कोष्ठों के नोक पर कुछ अँकुर (Gustatory hairs) होते हैं, जिनमें कि वह सूक्ष्म ग्राही गुण होता है। यह कोष जीभ से लेकर तालु (gullet) व काग मुख (Epiglottis) तक फैले रहते हैं, जीभ के अग्रभाग की ओर मिष्ठि-ग्राही कोषों की अधिकता होती है, पीछे के भाग में "कड़वा" का अस्वादन करने वाले कोष अधिक पाये जाते हैं और किनारों की ओर अग्रभाग में लवण-ग्राही तथा पीछे की ओर "खट्टा" का अस्वादन करने वाले कोष रहते हैं, देखिये चित्र। अब यह समझना सरल होगा की अंगूर की मदिरा (wine) चूस-चूस कर क्यों पी जाती है और जब की शराब (Beer) को घट घटा कर पी जाने का नियम क्यों बनाया गया है। पशुओं में कोषों की संख्या तुलनात्मक रूप से बहुत अधिक होती है, कुछ मनोरँजक गणना निम्नांकित है —

| | |
|---|---|
| बैल (ox) | १५,००० लगभग |
| खरगोश | १७,००० ,, |
| बकरा | १५,००० ,, |
| सुअर | १४,००० ,, |
| मनुष्य | १०,००० ,, |

गन्ध—संस्थान की रचना भी लगभग उसी प्रकार के कोष्ठों से होती है, जिस प्रकार के कोष्ठ कि स्वाद कोषों में पाए जाते हैं, नासिका के समस्त भीतरी भाग पर बहुत कोमल चर्म का एक स्तर होता है जिसे श्लैष्मिक कला (mucuos membrane) कहते हैं। इस स्तर का कुछ भाग जो नासिका-छिद्र के (nasal cavity) ऊपर काफी अन्दर की ओर होता है, घ्राण-क्षेत्र माना जाता है। घ्राणक्षेत्र (olfactory region) में दो प्रकार के कोष्ट होते हैं जिनमें एक के अग्रभाग की ओर अंकुर-समूह (hair bunch) सा होता है और गन्ध युक्त पदार्थों की प्रतिक्रिया होने पर यही गन्ध के ज्ञान का कारण होता है।

स्वाद तथा गन्ध के ये कोष्ठ उन नाड़ियों से सम्बन्धित होते हैं जो मस्तिष्क में जाती हैं। वहाँ नाड़ियों के द्वारा लाई गई भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों की छटनी हो जाती है

और स्वाद, गन्ध, का ज्ञान अलग-अलग हो जाता है; देखिए चित्र......
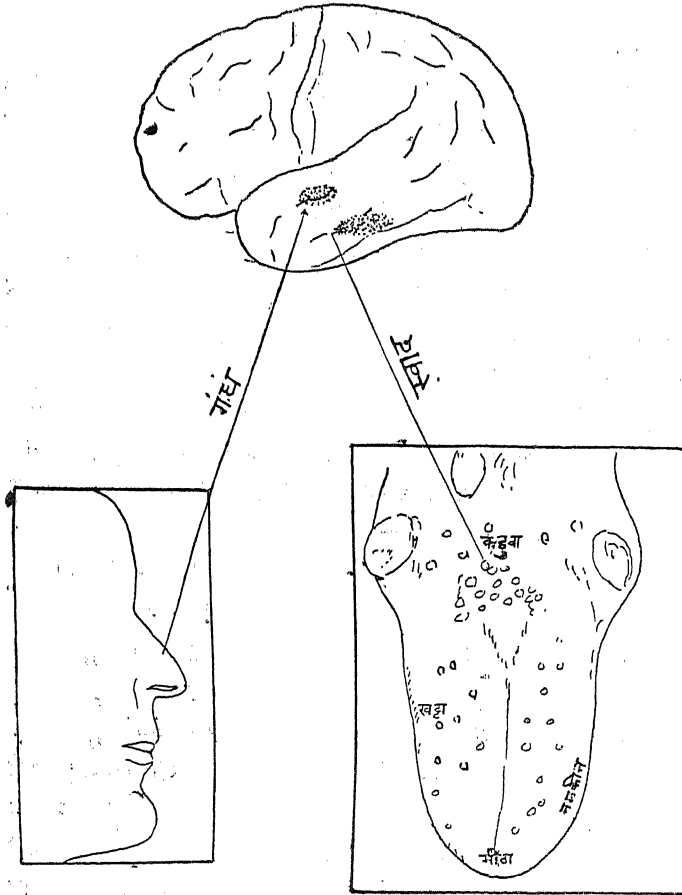
## नमकीन, खट्टा, मीठा, कड़वा

मुख्यतः चार प्रकार के स्वाद होते हैं। उपरोक्त चार प्रकार के स्वादों के मिश्रण से सब स्वाद लिए जा सकते हैं, प्रयोगार्थ नमक, सिरका, चीनी और कुनैन लेकर किसी दो या तीन को मिलाने से भिन्न-भिन्न मिश्रित स्वाद पैदा हो जांयगे। कुछ लोगों का मत है कि माँसैला, धातु जैसा आदि स्वाद भी इन चारों के सिवा मुख्य स्वादों में गिने जाने चाहिए, किन्तु वास्तव में इनको स्वाद में गिनती करना कहाँ तक उचित होगा, यह विवादास्पद है। हाँ, इन स्वादों के सिवा जिह्वा में स्पर्श (जिसका सम्बन्ध भोजन सामग्री की रचना से है) व गर्मी, सर्दी के लिए सूक्ष्मग्राहिता अवश्य होती है उदाहरणार्थ काली मिर्च व कपूर के स्वाद ही ले लीजिए। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि गर्म व सर्द स्वाद इसलिए मालूम होता है क्योंकि पदार्थ जिह्वा के उस भागों को उत्तेजित करते हैं। जिनमे गर्मी व ठन्डी के लिए सूक्ष्म ग्राहिता होती है। एक दूसरा मत यह भी है कि ये पदार्थ जिह्वा के चर्म पर नाड़ियों के नग्न छोर पर प्रभाव डालते हैं, कुछ भी हो यह तो मानना ही पड़ेगा कि तापक्रम का प्रभाव कुछ वस्तुओं के स्वाद पर बहुत ही महत्वपूर्ण होता है—साधारणतया गर्म होने पर वस्तुएँ अधिक मीठी लगने लगती हैं ठन्डी होने पर कड़वी चीजों की कड़वाहट कम हो जाती है उदाहरणार्थ कुनैन खाने के पहले यदि बर्फ का एक टुकड़ा खा लिया जाय, तो अपेक्षाकृत स्वाद उतना कड़ुआ नहीं प्रतीत होगा।

इसके सिवा स्वाद का बहुत सा ज्ञान वास्तव में स्वाद ही नहीं बल्कि गन्ध से सम्बन्ध रखता है, बात सीधी है कि खाद्य सामग्री से निकली हुई वाष्प नाक व मुँह में पीछे की ओर से ऊपर आती है और घ्राण-क्षेत्र पर प्रभाव डालती है। इसलिए वास्तव में हम जिसे गन्ध समझते हैं, वह एक मिश्रित अनुभव है जिसमें स्वाद, स्पर्श, तापक्रम तथा गन्ध सम्मिलित होते हैं।

यह समझ लेने के पश्चात् कि स्वाद वास्तव में चार प्रकार का मुख्य रूप से होता है, प्रत्येक प्रकार के स्वाद की कुछ व्याख्या करना सरल होगा-

### नमकीन

विकाश-वाद के अनुसार हमारे पूर्वजों में पृष्ठवंश विहीन (Invertebrate) समुद्री जीव थे, इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि नमक का स्वाद ही

सबसे प्राचीन स्वाद होगा। बहुत ही तुच्छ प्राणी जिनमें उतनी सूक्ष्म ग्राहिता नहीं होती, जैसी कि हमलोगों में होती है जल में नमक की मात्रा अधिक होने पर उससे दूर भाग जाते हैं। मनुष्यों को नमक के स्वाद का अनुभव कामन साल्ट (common salt) खाने पर होता है। इसी तरह के और पदार्थ भी जिनके नाम साधारण नमक (sodium chloride) की ही तरह हैं, नमकीन स्वाद देते हैं। रसायनिक रचना के अनुसार व अणुभार के अनुसार निम्न तालिका में उन पदार्थों में से कुछ के स्वाद का वर्णन मिलेगा।

| पदार्थ | अणुभार | स्वाद |
|---|---|---|
| सोडियम क्लोराइड (Sodium chloride) | ५८.५ | नमकीन |
| पोटैशियम क्लोराइड (Potassium chloride | ६४.५ | नमकीन |
| पोटैशियम ब्रोमाइड (Potssium bromide) | ११६ | नमकीन व कड़ुवा |
| पोटैशियम आयोडाइड (Potassium Iodide) | १६६ | कड़ुवा |

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इस श्रृंखला के पदार्थों का नमकीनपन अणुभार अधिक होने पर कड़ुवाहट मिश्रित होता है।

नमक के लिए हमारी सूक्ष्मग्राहिता भी बहुत अधिक होती है; रिक्टर (Richter) तथा मैक्लीन (Maclean) (१६३६) के एक प्रयोग के अनुसार यह ज्ञात हुआ कि यदि एक "आउन्स" (ounce) नमक एक बाल्टी भर पानी में डाल दिया जाय, तो भी साधारण जल से उसका स्वाद कोई आदमी अलग बता देगा।

## खट्टापन

हमारे दैनिक उपयोग में आने वाले ऐसे पदार्थ जिनमें खट्टापन होता है, उनमें अम्ल का अंश होता है। सिरके में एसीटिक (Acetic), सन्तरे व नीबू में साइट्रिक (Citnc) तथा सेव में मैलिक (Malic)—अम्ल (Aci l) का अंश होता है। कहना यह चाहिए कि अम्ल के कारण ही खट्टे स्वाद का अस्तित्व है; गाढ़े तेजाब अधिक खट्टे और हलके तेजाब कम खट्टे होते हैं। इसके सिवा कुछ तेजाब ऐसे भी होते हैं जो खट्टे होने के साथ बहुत ही कड़वे होते हैं जैसे पिक्रिक अम्ल (Picric Acid) के स्वाद के लिए भी हममें काफी सूक्ष्म ग्राहिता होती है यदि एक "आउन्स" (ounce) तेजाब ४० गैलन पानी में छोड़ दिया जाय तो भी हम उसके खट्टेपन की पहिचान कर सकते हैं।

## कड़ुवापन

'कड़ुवा स्वाद एल्कोलायड्स' (Alkoloids) नामक पदार्थों के कारण होता है, कुछ उदाहरण हैं—कुनैन (quinine), स्ट्रिकनीन (Strichnine) व ब्रूसीन (Brucene)

## मीठा

नमकीन, खट्टे तथा कड़वे स्वाद के लिए हम कह सकते हैं कि ये स्वाद एक विशेष वर्ग के पदार्थों के कारण होते हैं किन्तु मीठेपन के बारे में यह सच नहीं। अच्छा ही है मीठे पदार्थों की अधिकता में ही हमारी दिल चस्पी है। साधारणतया शर्करादि (sugars) ही सबसे मीठे पदार्थ माने गए हैं किन्तु बहुत से अब ऐसे रासायनिक पदार्थों का ज्ञान हो चुका है जो शर्करादि से कई सौ गुने जो अधिक मीठे हैं किन्तु शर्करादि से उनकी रसायनिक रचना का कोई संबंध नहीं। प्रकृति के मीठे पदार्थ ज्यादातर पोषक होते हैं, इससे यह अनुमान लगता है कि मीठा स्वाद सबसे बाद का है क्योंकि इसका संबंध पोषण से है। स्मरण रखना चाहिये कि और स्वादों का संबंध तो जीवन रक्षा से ही संबन्धित है। कृत्रिम रचना के मीठे पदार्थों के बारे में मनुष्य को हमेशा संदिग्ध दृष्टि से देखना ठीक रहेगा, उदाहरणार्थ 'लेड एसीटेट' (Lead Acetate) को ले लीजिये, इसका दूसरा नाम 'लेड की शर्करा' (Sugar of Lead) भी है, किन्तु यह एक विषाक्त पदार्थ है। शर्करा जो हमारे दैनिक उपयोग में आती है कई प्रकार की होती है, गन्ने के रस से बनाई जाती है। शर्करादि कई प्रकार के हैं, जिनको अपेक्षाकृत मीठापन निम्न प्रकार से हैं —

| | |
|---|---|
| फ्रुक्टोज (Fructose) (फलों में होती है) | १७६ |
| सुक्रोज (Sucrose) (गन्ने के रस में) | १०० |
| ग्लूकोज (Glucose) | ७४ |
| माल्टोज (Maltose) | ३२ |
| लैक्टोज (Lactose) दूध में | १६ |

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, गन्ने के रस वाली साधारण शर्करा को १०० मानकर उसी एकाई में यदि प्रयोगशालाओं में बनाए गए कुछ पदार्थों का मीठापन नापा जाय तो वह सैकड़ों व हजारों गुना होगा।

एक उपयोगी तालिका निम्न है —

| पदार्थ | | मीठापन |
|---|---|---|
| सैकरीन (Saccharin) (Ortho-Sulpho-Benjimide) | रेहसेनव फाहबर्ग Remsen and Fahldery | ६७५ |
| डल्सीन (Dulcin) (Par-ethoxy Phenylurea) | | २०० |
| हेक्साइलक्लोर मेलीनौमाइड Hexylchlor Malonamide | डाक्स व हाउस्टन Dox and Houston | ३०० |
| क्लोरोनाइट्रो एनीलीन (Chloro-nitroaniline) | ब्लैन्कास्मा (Blankasa) | ४०० |
| ब्रोमोनाइट्रो एनीलीन (Bromonitro aniline) | ,, | ८०० |
| आइडोनाइट्रो एनीलीन (Iodonitro aniline) | ,, | १२५० |

इन पदार्थों में खाने के बाद थोड़ी सी कड़वाहट सी अनुभव होती है।

## गन्ध

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि उपरोक्त चार प्रकार के स्वादों के मिश्रण से हम कोई भी वाँच्छित स्वाद ले सकते हैं, किन्तु गन्ध के प्रकारों के कई वर्गीकरण मिलते हैं, बहुत से वैज्ञानिकों ने तो बहुत ब्योरे वार भिन्न वस्तुओं के गन्ध के आधार पर यह वर्गीकरण किया है, उदाहरणार्थ ज्वाडमेकर (Zvaademaker) ने सन् १८९५ में निम्न वर्गीकरण बताया—

फलों की गन्ध, कपूर व लौंग की, फूलों की, मुश्क की, बेन्जीन (Benzene) व क्लोरीन (Chlorine) की, भूनी हुई काफ़ी की, पनीर की, खटमल की तथा मलमूत्र की। किन्तु साधारण रूप से गन्ध का निम्न वर्गीकरण अधिक साध्य प्रतीत होता है—

मसालों जैसी, फूलों जैसी, फलों जैसी, राल जैसी, जले हुए जैसी व मल जैसी।

गन्धों का संबंध भी वस्तुओं की रासायनिक रचना से उतना अधिक नहीं जितना कि स्वाद का।

## स्वाद व गन्ध का अनुभव

उपरोक्त वर्णन से यह प्रतीत होगा कि स्वाद व गन्ध के बारे में आज का वैज्ञानिक पहले से बहुत अधिक ज्ञान रखता है किन्तु वास्तव में यह बात नहीं। इन दोनों अनुभवों को भली भाँति समझने के लिए दो बातें जानना आवश्यक है, एक तो यह कि किसी विशेष रसायनिक रचना से इन अनुभवों का संबंध है या नहीं? यद्यपि कुछ प्रगति इस दिशा में हुई है किन्तु वर्तमान विज्ञान नहीं के बराबर ही मालूम होता है। दूसरे यह कि इन अनुभवों को मस्तिष्क किस प्रकार छाँटता है? विज्ञान वेत्ता अड्रेन (Adrain) ने एक प्रयोग का वर्णन किया है जिसमें कि एक प्राणी की खोपड़ी बेहोशी देकर खोल ली गई, गन्ध के अनुभव को मस्तिष्क में पहुँचाने वाले नाड़ी तन्तुओं के बीच में विद्युत द्वार (Electrodes) रखे गये, किन्तु जहाँ तक मालूम हुआ, जो भी उत्तेजना इन नाड़ियों द्वारा आँख, कान, नाक तथा मुँह के मस्तिष्क तक आती हैं, वे सब लगभग एक ही प्रकार की होती हैं। यदि किसी प्रकार हम इन सम्बन्धों को भलीभाँति समझ सकें और उनमें मनमाना परिवर्तन कर सकें तो चित्र को सूँघकर तथा स्वर समता को स्वाद द्वारा यह जानना सम्भव होगा, अभी तो यह वैज्ञानिक कल्पना मात्र है।

# भारत की मछलियाँ और उनका व्यवसाय

लेखक—डा० ज्ञानप्रकाश दुबे, एम० एस-सी० डी० फिल०

*[ एक ओर तो विश्व की वर्तमान जनसंख्या और दूसरी ओर भूमि की क्षीण प्राय उर्वरा शक्ति ने जो जटिल समस्या हमारे समक्ष उपस्थित कर दी है, उसका आंशिक निराकरण मछलियों के उपयोग पर भी निर्भर है। मछली अब संसार की प्रमुख खाद्य सामग्रियों में से एक है। भारत की स्थिति इस सम्बन्ध में क्या है, इसका एक अच्छा परिचय इस लेख में मिलेगा। ]*

वर्तमान काल में भारत को खारे और मीठे पानी की मछलियों के व्यापार को आर्थिक संगठन में अत्यन्त ही निम्न स्थान दिया गया है। वैसे तो भारत में अनेक प्रकार के साधन और अच्छी परिस्थितियाँ है जिससे मत्स्य व्यापार में वृद्धि की जा सके, जैसे विस्तृत सामुद्रिक क्षेत्र, असंख्य नदियां, तालाब, नालियाँ, सरोवर, झील इत्यादि किन्तु इतनी अच्छी परिस्थित होते हुए भी जो मछलियाँ पकड़ी जाती हैं उसका एक बड़ा सा हिस्सा बेकार ही जाता है। इसका कारण यही है कि मछलियों के पकड़ने, उनके जमा करके बाहर भेजने के साधन और उनके व्यवसाय की सुविधा में अत्यन्त ही कमी है। इसके अतिरिक्त यह व्यवसाय ऐसे लोगों के हाथ में है जिनकी आर्थिक दशा बहुत ही गिरी हुई है। किन्तु आजकल भोजन की कमी होने से इस व्यवसाय को फिर से प्रोत्साहन दिया जा रहा है। मनुष्य के भोजन की सामग्रियों में मछलियों को सदा दूसरा स्थान दिया गया है। यदि पहला अन्न है तो दूसरा मछलियां ही हैं। यहा तक कि कृषि विभाग के रायल कमीशन ने तो इसकी तुलना अन्न ही में चावल से की है। साथ ही स्पष्ट कहा है कि मछलियों की संख्या बढ़ाना ही देश में अन्न की कमी को पूरा करना है।

## भारत में व्यापारिक मछलियों का व्यवसाय

भारत का समुद्रतट ३२२० मील है और तट से ६०० मील अंदर तक का भाग लगभग ११५००० वर्गमील है। इतना बड़ा क्षेत्र होने पर भी अत्यन्त थोड़ा सा हिस्सा काम में लिया जाता है। यहाँ तक कि समुद्र की अधिक गहराई तक तो मछलियाँ पकड़ी ही नहीं जाती हैं। भारत में नदियों के मुहानों का क्षेत्र भी और प्रदेशों से कहीं अधिक ही है। इन क्षेत्रों में यह देखा गया है कि खारे पानी की मछलियां एक बड़ी संख्या में पकड़ी जाती हैं, क्योंकि इन स्थानों पर खारे और मीठे पानी का मेल होता है। और खारे पानी की मछलियों का मीठा पानी में आने से उनकी परिस्थिति एकाएक बदल जाती है फिर वे आसानी से पकड़ ली जाती हैं। कुछ मछलियाँ ऐसी है जो खारे और मीठे दोनों पानी में अर्थात् मुहानों में पाई जाती हैं और उन्हें मुहाने की मछलियाँ कहते हैं। जैसे हिल्सा आदि। मीठे पानी में भी कई अच्छे प्रकार की आहारिक मछलियाँ पाई जाती हैं किन्तु दूसरे देशों के विपरीत अत्यन्त ही थोड़े प्रकार की मछलियां पकड़ी जाती है जो भोजन के काम में आती हैं और इससे भोजन का एक आंशिक भाग ही हल हो पाता है।

## मछलियां पकड़ने की विधियां

भारत में मछलियां पकड़ने के कई प्रकार के जाल और पात्रों का आविष्कार किया गया है। इनका आकार देश की प्राकृतिक अवस्था उनके लक्षण और मांग पर निर्भर है।

खारे पानी की मछलियों को पकड़ने के लिये मुख्यतः छोटी छोटी नावें तैयार की जाती हैं

जिनका तौल प्राय: ५ टन होता है। खारे पानी की मछलियाँ प्राय: समुद्रतट से ५ या ७ मील की दूर तक और ६० फुट की गहराई तक पकड़ी जाती हैं। मछलियों के पकड़ने के लिये मछुए अधिकाधिक १२ घंटे समुद्र में रहते हैं और ऐसे मछुए बहुत ही कम होंगे जा इस समय से अधिक समय तक समुद्र में रहते होंगे।

मीठे पानी की मछलियाँ पकड़ने के लिये दो प्रकार की नावें काम में लाते हैं।

(१) बेड़े या डोंगी।

(२) तख्तों की नावें।

बेड़े उन स्थानों पर काम में आते हैं जहाँ दल दल अधिक और वृक्षादि कम हों। तालाबों और भीलों की मछलियां Coracles नावों से पकड़ी जाती है। बड़ी बड़ी नदियों की मछलियों को पकड़ने के लिये डोंगियां अत्यन्त ही सुविधा जनक नावें हैं। ये सस्ते दामों में बनती है और जिन नदियों की धाराएँ तेज होती है वहाँ इन नावों का आकार बदल जाता है।

जाल और दूसरे प्रकार के छोटे छोटे साधन किसी एक प्रकार की मछलियों के लिये ही होते हैं जैसे शार्क, पर्च आदि के लिये डिफ्ट जालें, बाम्बेडक, भींगे आदि के लिये स्टेक जाल, कनारा जिले में सारडाइन और मैकेवल मछलियों के लिये कई प्रकार की खींचने वाली जालों का प्रयोग किया जाता है। महाजाल ( Trawl ) से पहना, टिन्ग्रा सोल इत्यादि स्टेक और पन्डुबकियां उथले और मुहानों की मछलियों के लिये होती हैं। फेंकने वाले जालों से समुद्र तट की नन्हीं नन्हीं मछलियां पकड़ी जाती हैं। भील तालाब और नदियों की मछलियों को मारने के लिये भाले, पिंजड़े और बल्लम आदि काम में लाते हैं। भील, कोल, सरोवर आदि की मछलियों को पकड़ने के लिये कई प्रकार के जालों ो काम में लाते हैं जैसे ( Drag ) स्टेक इत्यादि।

मछलियों पकड़ने के व्यसन बनाने की वस्तुएँ हल्की जालों मामूली धागों की बनी होती हैं। कुछ मजबूत जालें सन से बनती हैं। जाले अधिक तर मछुओं की स्त्रियें बनाती हैं जिनके गांव नदियों के किनारे होते हैं।

## विद्युत शक्ति से चलने वाली नावें

मछलियों के मारने के ढङ्ग में आज से ७५ वर्ष पूर्व तक जो लाभदायक परिवर्तन हुआ है वह विद्युत शक्ति की नावों का हुआ है। ऐसी नावों का आविष्कार ताजी मछलियों की मांग का ही कारण है क्योंकि दूसरे साधनों से मछलियां पकड़ने में और उन्हें उचित स्थान तक लाने में बहुत ही समय लग जाता है किन्तु विद्युत शक्ति की नावों से मछलियाँ पकड़ कर तुरन्त ही समुद्र के किनारे पर लाई जा सकती हैं मछली के व्यवसाय में विद्युत शक्ति का प्रयोग केवल नावों के चलाने में ही नहीं किन्तु विदेशों में तो इन नावों के साथ मछलियां पकड़ने के बड़े व्यसन और जाले आदि भी लगा देते हैं जो विद्युत शक्ति से ही चलते हैं। इसके अतिरिक्त मछलियों को पकड़ने के बाद उनको असली हालत में रखने के लिये भी विद्युत शक्ति का प्रयोग करते हैं। मछलियों को मारने के लिये भारत में जहाजों आदि का प्रयोग तो प्राय: ६० वर्ष से होता आ रहा है किन्तु इससे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। चौड़े मुँह की जालें भी अत्याधिक काम में लाई जाती है पर अन्वेषन कर्ताओं की कमेटी में से मद्रास की कमेटी ने सन् १९१९ में यह बताया है कि जब तक भारत में बंदरगाह और बर्फ की कोठियाँ है तब तक, व्यापार की दृष्टि से ऐसे प्रकार की जालो का कोई विशेष लाभ नहीं है।

ऊपर लिखे साधन के प्रयोगों से यही निष्कर्ष निकलता है कि :—

( १ ) चौड़े मुँह वाली जालों का प्रयोग, जैसा विदेशों में होता है, भारत के लिये अनकूल नहीं है।

( २ ) अच्छे प्रकार की मछलियाँ भारत के किनारे पर, उथले पानी में ही होती हैं।

(३) चूँकि मछलियाँ तैरती अधिक हैं इस कारण से लंबी और बड़ी जालों का प्रयोग लाभ दायक सिद्ध हुआ है।

(४) मछलियों को पकड़ने के लिये भारत में विद्युत शक्ति से अभी कोई विशेष लाभ नहीं हुआ है।

## मछलियों की खपत

सम्पूर्ण भारत की मछलियों को पकड़ने का कोई विशेष विवरण नहीं है। उसका कारण मछलियों के पकड़ने के साधन हैं जो अत्यन्त ही शोचनीय दशा में हैं।

## उपज में मौसमीय घटबढ़

भारत में खारे पानी की मछलियों का व्यवसाय केवल मौसमीय है। खारे पानी की मछलियों को मानसून समाप्त होने के पश्चात् ही पकड़ना आरंभ कर देते हैं और अक्टूबर या नवम्बर तक अधिकाधिक पकड़ी जाती हैं। मीठे पानी की मछलियों का पकड़ना तो पूर्णतया मौसम पर ही निर्भर है यहाँ तक कि जैसा मौसम होता है वैसी ही देश की माँग होती है। यही कारण है मछलियों का कोई वितरण अभी तक नहीं हो पाया है और इससे निश्चित रूप से यह नहीं बता सकते हैं कि खारे पानी की मछलियों का व्यवसाय बढ़ा या घटा केवल मद्रास की मछलियों का वितरण हमारे समक्ष है जो बताया है कि सन् १९२९ से १९३९ तक की उपज को देखने से तो यह पता चलता है कि खारे पानी की मछलियों के व्यवसाय में कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई है। मीठे पानी की मछलियों का वितरण है ही नहीं पर इस क्षेत्र के अन्वेषकों का विचार है कि इसका व्यवसाय दिनोदिन घटती पर ही है इसके मुख्य कारण निम्न लिखित हैं।

(१) बड़ी बड़ी नदियों पर बड़े बड़े बाँध बंध जाने से घूमने वाली मछलियों को उनके अंडे देने तक के स्थान का रास्ता बंद हो जाता है।

(२) नदियों में धीरे धीरे रेती का जमाना।

(३) जन संख्या वृद्धि होने से झीलों, तालाब आदि ऐसे स्थानों का पैदावार की भूमि में परिवर्तित होना।

(४) सिचाई के सुगम साधनों के निकलने से तालाबों और दूसरे ऐसे स्थानों की ओर से ध्यान हट जाना।

(५) मछलियों का अधिक मारना।

(६) मछलियों के नन्हें बच्चों और अपूर्ण मछलियों का का नाश।

(७) नालियाँ और पानी की धाराओं का गंदा होना।

मछलियों की वार्षिक उपज की ओर ध्यान देने से पता चलता है कि उनकी एक बड़ी संख्या मछुए ही ले लेते हैं क्योंकि खारे पानी की मछलियों का हिसाब बताया है कि ११३·७ लाख मन की उपज में से ८·८ लाख मन अर्थात् ५·७ प्रति सैकड़ा मछुए ही खा डालते हैं। मीठे पानी का हिसाब केवल यही बताया है कि कुल मछली जो बाजार में बेची जाती है वह ६२६ लाख मन है।

## भारत में उनसे बनी हुई वस्तुओं का आयात

भारत में सिर्फ मछलियों का आयात तो प्रायः है ही नहीं। जो कुछ मछलियाँ कनाडा और यूरोप से आती हैं उनकी गिनती अत्तन्यत ही कम है विशेष कर जमी हुई मछलियाँ, सूखी टिन आदि की मछलियाँ और उनका खाद्य इत्यादि ही अधिकतर भारत में आता है। किन्तु इन वस्तुओं का मूल्य भारत में मछलियों की पैदावार के मूल्य का १-६ वाँ हिस्सा है अर्थात् जब भारत में १०·२ करोड़ रुपये की मछलियाँ होती हैं तो १६·३ लाख रुपयों की मछली और उनकी बनी हुई वस्तुएँ भारत में आती हैं। जमा की हुई मछलियाँ अधिकतर पड़ोस के ही देश से आती हैं जैसे अरब के देश ट्रूसिमल, मसकट और दूसरे राज्य।

इसके विपरीत वार्षिक मछलियों का निर्यात

( ३ ) चूँकि मछलियाँ तैरती अधिक हैं इस कारण से लंबी और बड़ी जालों का प्रयोग लाभ दायक सिद्ध हुआ है।

( ४ ) मछलियों को पकड़ने के लिये भारत में विद्युत शक्ति से अभी कोई विशेष लाभ नहीं हुआ है।

## मछलियों की खपत

सम्पूर्ण भारत की मछलियों को पकड़ने का कोई विशेष विवरण नहीं है। उसका कारण मछलियों के पकड़ने के साधन हैं जो अत्यन्त ही शोचनीय दशा में हैं।

## उपज में मौसमीय घटबढ़

भारत में खारे पानी की मछलियों का व्यवसाय केवल मौसमीय है। खारे पानी की मछलियों को मानसून समाप्त होने के पश्चात् ही पकड़ना आरंभ कर देते हैं और अक्टूबर या नवम्बर तक अधिकाधिक पकड़ी जाती हैं। मीठे पानी की मछलियों का पकड़ना तो पूर्णतया मौसम पर ही निर्भर है यहाँ तक कि जैसा मौसम होता है वैसी ही देश की माँग होती है। यही कारण है मछलियों का कोई वितरण अभी तक नहीं हो पाया है और इससे निश्चित रूप से यह नहीं बता सकते हैं कि खारे पानी की मछलियों का व्यवसाय बढ़ा या घटा केवल मद्रास की मछलियों का वितरण हमारे समक्ष है जो बताया है कि सन् १६२६ से १६३६ तक की उपज को देखने से तो यह पता चलता है कि खारे पानी की मछलियों के व्यवसाय में कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई है। मीठे पानी की मछलियों का वितरण है ही नहीं पर इस क्षेत्र के अन्वेषकों का विचार है कि इसका व्यवसाय दिनोदिन घटती पर ही है इसके मुख्य कारण निम्न लिखित हैं।

( १ ) बड़ी बड़ी नदियों पर बड़े बड़े बाँध बंध जाने से घूमने वाली मछलियों को उनके अंडे देने तक के स्थान का रास्ता बंद हो जाता है।

( २ ) नदियों में धीरे धीरे रेती का जमाना।

( ३ ) जन संख्या वृद्धि होने से झीलों, तालाब आदि ऐसे स्थानों का पैदावार की भूमि में परिवर्तित होना।

( ४ ) सिचाई के सुगम साधनों के निकलने से तालाबों और दूसरे ऐसे स्थानों की ओर से ध्यान हट जाना।

( ५ ) मछलियों का अधिक मारना।

( ६ ) मछलियों के नन्हें बच्चों और अपूर्ण मछलियों का का नाश।

( ७ ) नालियाँ और पानी की धाराओं का गंदा होना।

मछलियों की वार्षिक उपज की ओर ध्यान देने से पता चलता है कि उनकी एक बड़ी संख्या मछुए ही ले लेते हैं क्योंकि खारे पानी की मछलियों का हिसाब बताया है कि ११३·७ लाख मन की उपज में से ८·८ लाख मन अर्थात् ५·७ प्रति सैकड़ा मछुए ही खा डालते हैं। मीठे पानी का हिसाब केवल यही बताया है कि कुल मछली जो बाजार में बेची जाती है वह ६२६ लाख मन है।

## भारत में उनसे बनी हुई वस्तुओं का आयात

भारत में सिर्फ मछलियों का आयात तो प्रायः है ही नहीं। जो कुछ मछलियाँ कनाडा और यूरोप से आती हैं उनकी गिनती अत्यन्त ही कम है विशेष कर जमी हुई मछलियाँ, सूखी टिन आदि की मछलियाँ और उनका खाद्य इत्यादि ही अधिकतर भारत में आता है। किन्तु इन वस्तुओं का मूल्य भारत में मछलियों की पैदावार के मूल्य का १-६ वाँ हिस्सा है अर्थात् जब भारत में १०·२ करोड़ रुपये की मछलियाँ होती हैं तो १६·३ लाख रुपयों की मछली और उनकी बनी हुई वस्तुएँ भारत में आती हैं। जमा की हुई मछलियाँ अधिकतर पड़ोस के ही देश से आती हैं जैसे अरब के देश ट्रूसिमल, मसकट और दूसरे राज्य।

इसके विपरीत वार्षिक मछलियों का निर्यात

प्रायः ७५ लाख रुपये की लागत का है।

आज कल भारत में मछलियों का आयात पाँच प्रकार से होता है।

( १ ) ताजी मछली।
( २ ) केन्ड मछली।
( ३ ) काड मछली के जिगर का तेल।
( ४ ) मछली का खाद्य।

## भारत में मछली से बनी हुई वस्तुओं का निर्यात

समुद्रतटीय प्रांत और राज्यों ने जैसे बर्मा, सीलोन पूर्वीय बिदेश आदि में मछलियों के निर्यात के लिये कुछ थोड़े से स्थान बना लिये हैं। किन्तु '१९३९ से १९४१ तक के वर्णन से पता चलता है कि उनकी वृद्धि में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। आयात की तरह निर्यात भी भारत के दक्षिणी पश्चिमी समुद्रतट के मौसम पर निर्भर है। अच्छा मौसम निर्यात की वृद्धि का द्योतक है। मुख्यतर मछली के खाद्य में पिछले तीन वर्षों में अधिक उन्नति हुई है। सुखाने और साफ करने के ढंग का परिवर्तन भी निर्यात पर निर्धारित है। और उन ढंगों से बिलकुल ही विपरीत है जो देश की ही मछलियों को सुखाने के काम में आते हैं। मछलियों का निर्यात जब से पैसफिक और हिन्द महासागर के बीच शत्रुता बढ़ गई है तब से प्रायः समाप्त ही हो गया है।

## बाजार के लिए मछलियों को तैयार करना

नदी, तालाब और दूसरे साधनों द्वारा मछलियाँ पकड़ी जाती हैं उस में से अधिकतर तो ताजी मछलियां खाई जाती हैं ऐसी मछलियों को बाजार के लिए तैयार करने में केवल मछली के अंदर आंते निकाल कर उसके पेट को साफ करते हैं। खारे पानी की मछलियों को तैयार करने में एक बड़ी असुविधा होती है क्योंकि मछली को पकड़ने के ढंग, नावों का छोटा होना और मछुओं के कुछ कड़े नियमों के कारण मछलियों को समुद्र से बाजार तक लाने में एक बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। इसलिये खारे पानी की मछलियों की एक बड़ी संख्या धूप ही में नमक छिड़क कर वा वैसे ही सुखा ली जाती हैं। पश्चात् सूखी मछली बाजार के योग्य होती हैं।

यदि खारे पानी की मछलियाँ थोड़े समय में ही इकट्ठी की जा सकतीं और तुरन्त ही बड़े शहरों में पहुँचाई जा सकतीं तो ताजी मछलियों की एक बड़ी संख्या बाजार के लिए तैयार हो सकती है। इसके लिये बम्बई में मोटरों से कुछ लाभ अवश्य हुआ है। उनसे मछलियों को समुद्रतट के २०० या ३०० मील की दूरी तक तो मछलियाँ पहुँचा सकते हैं। जहां बर्फ़ सस्ता मिलता है और ये मोटरें बर्फ की कोठियों से सुसज्जित हैं वहां पर ये लाभ दायक सिद्ध हुई है। बाजार में बेचने वाली ताज़ी मछलियों को पकड़ने के बाद कुचले हुए बर्फ से जमा लेते हैं। किन्तु भारत में बर्फ के कारखानों की कमी होने से बर्फ बहुत महंगा पड़ता है। मुख्यत्तर गर्मियों में जब उसकी कीमत का कोई हिसाब नहीं रहता। जहां तक ठंडे गोदामों का प्रश्न है भारत में प्रायः हैं ही नहीं किन्तु जो हैं वे बिदेशों के जैसे नहीं हैं। फिर भी लाभप्रद होने से मद्रास, कालीकट, बम्बई आदि के देशों में इनका प्रयोग होता है। कैनिंग और क्योरिंग के कोई विशेष कारखाने न होने के कारण से मछलियों से अनेक प्रकार की वस्तुएँ बनाने के लिये भारत में कोई अच्छे कारखाने नहीं हैं। वैसे भी कारखाना चलाने के लिये माल का सदा तैयार रहना आवश्यक है पर भारत में ३६५ दिनों में कुल १०० दिनों तक ही मछलियां मिलती हैं। क्योंकि अधिक तर नमक में भिगो कर या बिना नमक में भिगोये ही धूप में सुखा कर करते हैं। वैसे तो क्योरिंग नमक में भिगोकर ही करते हैं पर नमक का कठिनाई से मिलने के कारण क्योरिङ्ग बिना नमक के ही कर लेते हैं। क्योरङ्गि के कारखाने भारत में केवल १५० हैं। क्योरिङ्ग के बाद मछली का तौल होता है और फिर बाजार के लिए भेज दी जाती है।

## मछली के तेल का उत्पादन

पश्चिमी समुद्रतट पर तेल वाली मछलियों की अधिकता के कारण तेल केवल मद्रास प्रान्त में ही निकाला जाता है। तेल मछलियों को पकाने के बाद

निकाला जाता है। कुछ वर्ष पूर्व मछली को सड़ा कर भी तेल निकाला जाता था पर उससे बहुत ही खराब और दुर्गन्धित तेल मिलता था। पश्चात् १६०७ में मद्रास प्रान्त के मछली विभाग ने मछुओं को तेल निकालने का नया ढंग बताया जिससे मछलियाँ उबाली जातीं थीं और फिर उन्हें दबाकर तेल निकालते थे। यह तेल कहीं पुराने तेल से अधिक अच्छा होता था। शार्क मछली के भेजे के तेल का प्रयोग भारत वासी सन् १८५०. से जानते हैं और सब से पहला कारखाना १८५४ में कालीकट में स्थापित किया गया। इसके पश्चात् काड मछली का तेल बाहर से सस्ते दामों में मिलने से शार्क के तेल के कारखाने टूटने लगे। किन्तु सन् १६१४ में दूसरा महायुद्ध होने के कारण काड का तेल बाहर से आना बंद हो गया। इसीलिये भारत में शार्क तेल के कारखानों की फिर से स्थापना होने लगी। शार्क के तेल विश्लेषन से पता चलता है कि उसमें वाइटेमिन अकोड के तेल से १५ गुना अधिक है। यही कारण है कि आज इसके व्यापार की वृद्धि की ओर एक विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

## उपयोग

मछली के आकड़े से पता चलता है कि एक मनुष्य को प्रति वर्ष कुल ३-४ पौंड मछली और उससे बनी हुई वस्तुयें मिलती हैं। वैसे तो मछलियों का खर्च हर प्रांत में भिन्न-भिन्न है किन्तु भारत में मछलियों के खर्च के आँकड़े बताते हैं कि वार्षिक प्रति पुरुष का व्यय पिछले बर्षों से कहीं अधिक गिर गया है।

## मूल्य

भारत में मछलियों का कोई विश्वसनीय मूल्ल नहीं है। इसका व्यापार अधिकतर मछुओं के ही हाथ में है जो कभी भी एक मूल्ल नहीं रखते मछलियों के मूल्य का घट बढ़ सदा उनकी जाति और अधिकता पर निर्भर है।

संक्षेप में इनका मूल्य तीन बातों पर ही निर्धारित है।

( १ ) मछलियों की जाति, प्रकार और गुण।

( २ ) जिस कारण से मछली बेची जाती है।

( ३ ) उपज का क्षेत्र और उनके प्रयोग होने तक के स्थान तक की दूरी।

( १ ) के अनुसार पाम्फ्रेट, सीर, हिल्सा, वेक्टी, सालमन और दूसरी खारे पानी की मछखियाँ सदा अच्छे दामों में बेची जाती हैं।

( २ ) मछली की अच्छी कीमत तब ही मिलती है जब माँग केवल ताज़ी मछलियों ही की हो।

( ३ ) मछलियों की माँग सदा शहरों तक ही सीमित हो।

मीठे पानी की मछलियों का मूल्य खारे पानी की मछलियों से सदा अधिक रहता है। मछलियों का वितरण सदा दो प्रकार से होता है:—

( १ ) मछुए स्वयं ही मछलियों को बाजार तक ले जाएँ।

( २ ) घाट पर ही दूसरे बीच के आदमियों को बेंच दें; ये बीच के मनुष्य नावों को रखने वाले क्यूरर्स या गाँव के सौदागर होते हैं। यह देखा गया है कि इससे उन्हें कोई विशेष लाभ नहीं होता है।

बहुत से गाँव और शहरों में मछली बाजार पाये जाते हैं ये बाजार अधिकतर खुली जगहें होते हैं। म्यूनिसिपिल और केन्टूनमेन्ट आदि में मछली बेचने के अच्छे बाजार बनाये गये हैं।

उत्तरीय भारत में मुख्य शहरों में मंडी में ही मछलियां बेंची जाती हैं। कुछ शहरों में जो मछली बाहर से आती है वह स्टेशन पर ही बेंच दी जाती है।

मछली और उनसे बनी स्वतुयें अधिक समय तक नहीं टिकती है उनको तुरन्त ही बेचने का प्रयास करते हैं क्योंकि ताजी मछलियाँ २४ घंटे से अधिक नहीं रखी जा सकती हैं। बङ्गाल में इनको सुखाकर रख लेते हैं। और जब ताजी मछलियाँ प्राप्त नहीं होती हैं तब सूखी मछलियों का प्रयोग होता है।

## मछली ले जाने के साधन

बैलगाड़ी, नाव, या घोड़ा गाड़ियाँ हैं। जहाँ पर सुविधा होती है वहां मोटर लारी या रेल का भी प्रयोग होता है। थोड़ी दूरी के लिये साइकिलें सदा लाभप्रद है। मछलियों को रखने के लिये बाल्टियाँ थैले लकड़ी के डिब्बे या मिट्टी के बरतन काम में लाये जाते हैं और उनका गट्ठर बनाने में ताड़ या नारियल की पत्तियाँ काम में लेते हैं।

मछुओं की आर्थिक दशा अत्यन्त ही शोचनीय है वे ऋणि होते हैं।

संक्षेप में यह कह सकते हैं कि मछलियों का व्यवसाय, जो आज भोजन सामग्री का एक मुख्य अंग है, यदि मछलियों को इकट्ठा कर दूर ले जाने के साधन सुलभ न हों, वृद्धि नहीं कर सकता है। साथ ही गरीब मछुओं की दशा को ठीक करना और उनके व्यापार में उचित शिक्षा देना आवश्यक है। यहाँ तक कि हर एक प्रान्त और राज्य के झील, तालाब, सरोवर आदि सभी ऐसी चीजें जिससे इसका सम्बन्ध है उसका निरीक्षण हो रहा है और उनमें मछलियों की वृद्धि के कई अन्वेषन भी आरंभ कर दिये गये हैं। समुद्र की अधिक गहराई तक भी मछलियों को पकड़ने के प्रयोग किये जा रहे।

मछलियों की वृद्धि के अनुसंधान की ओर भारत सरकार का ध्यान भी कई वर्षों से है और यही कारण है कि मद्रास, बङ्गाल पंजाब और संयुक्त प्रान्त में तीस वर्षों से इनके लिये विभाग खोल रखे हैं। इन प्रान्तीय विभागों ने मछलियों की उपज और व्यवसाय में कोई विशेष वृद्धि नहीं की किन्तु इस समय जब देश में भोजन का प्रश्न सब से प्रथम है भारत सरकार का ध्यान फिर से इस ओर कुछ तेजी के साथ हो रहा है। और इसके व्यवसाय को बताने की सब प्रकार से चेष्टायें की जा रही हैं।

---

# जात-गुण और लाइसेंको के विचार

( लेखक—श्री जगदीश नारायण श्रीवास्तव एम० एस० सी० )

*[ वर्तमान युग आदर्शों के संघर्ष का युग है—अध्यात्मवाद के विरुद्ध भौतिकवाद, पूंजीवाद के विरुद्ध समाजवाद की पुकार सुनाई दे रही है। जीवन के विकाश से सम्बन्ध रखने वाले जातगुणवाद के विरुद्ध बातगुणवाद के प्रधानता की आवाज लगाने वाले रूसी वैज्ञानिक लाइसेंको के विचारों ने प्राणिशास्त्र वेत्ताओं के लिए शिर पीड़ा की पर्याप्त सामग्री इकट्ठा कर दी है, प्रस्तुत लेख में दोनों वादों पर संतुलित रूप से विचार किया गया है ]*

प्रसिद्ध वनस्पति-विज्ञान शास्त्री टी० डी० लाइसेन्को (T.D. Lysenko) ने लेनिन अकेडेमी आफ ऐग्रीकलचरल साइन्सेज़ ( lenin acalemy of agricultural scienes) के सम्मुख ३१ जुलाई सन् १९४८ को अध्यक्ष पद से एक भाषण दिया, जिसने प्राणि-शास्त्र के विद्यार्थियों के बीच एक तहलका सा मचा दिया। भाषण की समस्या पर उक्त अकेडेमी में काफी गरम बहस हुई, पर अन्त में एक प्रस्ताव के रूप में, जिसे अकेडेमी ने पास किया, लाइसेन्को के विचारों का समर्थन किया गया। लाइसेन्को को सरकार तथा साम्यवादी पार्टी की केन्द्रीय समति का सहयोग पहले से ही प्राप्त था, और शायद अकेडेमी से प्रस्ताव पास हो जाने का यह एक प्रमुख कारण था। इस लेख का उद्देश्य है—समस्या तथा उससे सम्बंधित लाइसेन्को के विचारों का एक संक्षिप्त विवरण देना। लाइन्सेंको के विचारों को प्रचलित विचारधारा की पृष्ठभूमि के सहारे ही आँकना उचित होगा, अतः जातगुण (Heridity) पर स्थापित धारणाओं का उल्लेख पहले किया जायगा।

सम-जनन प्रवणता ( like begeting like ) प्राणि जगत का एक ऐसा सिद्धान्त है जिससे सभी परिचित हैं। साथ ही थोड़ा ध्यान देने से यह भी विदित हो जाता है कि इस सिद्धान्त के अनुसार कार्य शील होते हुए भी एक से जान पड़ने वाले दो प्राणी बिलकुल एक से नहीं होते दृष्यमान एकरूपता में निहित असमता सृष्टि का एक प्रधान गुण है। प्राणि शास्त्रियों ने जीवधारियों मे इस समानता एंव विभिन्नता का मूलकारण खोजने का प्रयत्न किया। इस समस्या पर विचार जो रूप आज धारण कर पाये हैं उनकी नीव सन् १९०० के लगभग

मेन्डेल (Mendel) ने डाली थी। मेन्डेल के अनुमानो ने उस समय की विचार धारा में क्रांति पैदा कर दी थी। आधुनिक अन्वेषणों के आधार पर यद्यपि मेडेन्ल के सिद्धान्तों में काफी परिवर्तन हो गया है, किन्तु मेन्डेलिज्म (Mendellism) की उपयोगिता स्वतः उसके सिद्धान्तों से अधिक इस बात में थी कि इस विचार प्रणाली ने जातगुण की जटिल समस्या का हल ढूढ़ने का एक नया रास्ता खोल दिया, जिसपर चल कर आगे, बेटसन (Bateson) मोरगन (Morgan) आदि वैज्ञानिकों के अथक परिश्रम के फल-स्वरूप, जातगुण की एक थियरी (Theory) बन सकी जिसे क्रोमोज़ोम थियरी आफ हेरीडिटी (Chromosome theory of Heridity) कहते हैं।

क्रोमोज़ोम थियरी के मुख्य सिद्धान्त ये हैं—

क्रोमोजोम द्वारा वह पदार्थ किसी प्राणी से संतान में आता है जो उक्त प्राणी और उसकी सन्तान की समानता के लिए उत्तरदायी है, क्रोमोजोम्स का अधिकांश भाग जीन्स (jenes) से बना होता है। जीन एक अति सूक्ष्म कण है जिसपर शरीर की किसी एक (या एक से अधिक) विशिष्टता का अन्तिम उत्तर दायित्व है। साधारणतया जर्मसेल (jerm cell) के न्युक्लियस (Nucleus) में वे सभी जीन्स मौजूद रहते हैं जिनके कारण प्राणी एक विशिष्टरूप से विकसित होने को बाध्य रहता है; और इस विकास के अन्त में एक ऐसा प्राणी मिलता है जो मूलतः अपने जन्मदाता के समान होता है। जीनका एक विलक्षण गुण यह है कि कोष्ठ विभाजन (celldivison) के समय वह अपने बगल में बिलकुल अपने ही प्रतिबिम्ब में एक नया जीन पैदा कर लेता है, जिसका अन्तिम परिणाम यह होता है कि एक के बाद दूसरी पीढ़ी में जीव बराबर अपनी ही तरह की सन्तान उत्पन्न करता है।

२. इनहेरिटेड (inherited) विभिन्नता की उत्पत्ति के अनेक कारण हैं, जिनमें से मुख्य ये हैं—

(i) उत्पादन क्रिया में निहित कारण—

क्रोमोजोम्स का अनियमित बटवारा, क्रोमोजोम्स मे आपस मे कुछ भागों का आदान-प्रदान, हिब्रिडाईज़ेशन (Hybridisation) आदि

(ii) क्रोमोज़ोम्स की संख्या का घट बढ़ जाना।

(iii) क्रोमोज़ोम्स मे स्ट्रक्चरल परिवर्तन डेफिशियन्सी (Deficiency), डिलीशन (Deletion), डुप्लीकेशन (Duplication) ट्रासलोकेशन (Translocation) आदि

(iv) जीन्स में आकस्मिक परिवर्तन (Mutation) असमानता जिस मात्रा में पाई जाती है, कारण भी उसकी उत्पत्ति के काफी हैं। यह भी स्पष्ट है कि विभिन्नता का कारण वे परिवर्तन है जिनका सम्बन्ध कोमोज़ोम्स से, अतः जीन्स से है।

३. जीनोटाइप (genotype) से परिवर्तन अनियमित तथा व्यक्ति के प्रभाव से परे हैं, दूसरे शब्दों में शरीर द्वारा संग्रहित (acquired) गुण अवगुण प्राणी से सन्तान में नहीं जाते। कारण यह है कि व्यक्ति और वातावरण के संघर्ष के फलस्वरूप व्यक्ति के शरीर में कुछ परिवर्तन हो जाते हैं जिनके अनुकूल परिवर्तन जीनोटाइप मे, साधारणतया नहीं होते। चूंकि जीनोटाइप नही बदलता इसलिए सन्तान में वह परिवर्तन दिखाई नहीं देता जो उसके जन्मदाता के शरीर में उत्पन्न हुआ था।

**[ संक्षेप में क्रोमोज़ोम थियरी यह है—जीवों की समानता तथा विभिन्नता का भौतिकस्तर (physical basis) क्रोमोज़ोम्स के शरीर द्वारा अपनाये परिवर्तनो के अनुकूल परिवर्तन नहीं होते, अतः ये परिवर्तन इनहेरिट (inherit) भी नहीं होते यहाँ पर यह बता देना आवश्यक है कि अभी तक ये विचार सर्वमान्य थे और अब भी लाइसेंन्को तथा उनके अनुयाइयों को छोड़ कर अधिकांश प्राणि शास्त्री इनमें विश्वास रखते हैं। ]**

इन विचारों को सम्मुख रखते हुए अब लाइसेन्को की धारणाओं को देखना है। खेद का विषय है कि जिस भाषण मे लाइसेन्को ने अपने विचार प्रकट किये हैं वह एक वैज्ञानिक लेख की दृष्टि से अत्यन्त अपूर्ण है। और भी मुश्किल हो जाता है उसमे से उनके उन विचारों को खोज निकालना जिनका सम्बंध (ठीक और सीधा) समस्या से है, जब कि भाषण विरोधी विचार रखने वाले वैज्ञानिकों के प्रति उत्तेजना पूर्ण, अनुदार,

कटुवाक्यों से भरा हो।

निम्नलिखित भाषण के कुछ अंशों के भावानुवाद का एक संग्रह है, जिससे, आशा है, पाठकों को लाइसेन्को के विचारों को जानने मे सहायता मिलेगी—

१. प्राणी तथा उसके अस्तित्व के लिए आवश्यक वातावरण (condition of life) एक ही इकाई के दो अंग हैं।

२. शरीर और उसके प्रभाव से स्वतंत्र कोई जात गुण-पूर्ण (heriditary) पदार्थ नहीं है।

३. जातगुण का संबंध केवल क्रोमोज़ोम्स से ही नहीं वरन् शरीर के हर जीवित कण से है।

४. जातगुण जीवित शरीर का वह गुण है जिसके अनुसार उसे (शरीर को) जीवन तथा विकास के लिए एक निश्चत परिस्थिति की आवश्यकता होती है, तथा जिनके कारण प्राणी में अन्य परिस्थिति के होने पर, एक विशेष ढंग से प्रतिक्रिया होती है।

अथवा

पीढ़ियों मे संचित वातावरण के आघात की प्रतिक्रिया के प्रभाव को ही जातगुण कहते हैं।

५. सेक्स (Sex) कोष्टों या दूसरे कोष्टों पर, जिनके द्वारा उत्पादन क्रिया होती है, सारे शरीर के विकास का प्रभाव पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे उन कोष्टों में जिनसे नये प्राणी उत्पन्न होंगे शरीर के विकास की भिन्न भिन्न अवस्थायें अंकित होती जाती हैं। ...... वातावरण के कारण विकासक्रम मे परिवर्तन हो जाता है। परिवर्तित विकासक्रम जातगुण को बदलने वाला मुख्य कारण है।

६. जात गुण एक मिटाबोलिज़्म विशेष (particular type of Metabolism) पर अवलम्बित है।......वातावरण परिवर्तन प्रणी के मेटाबोलिज़्म मे एक संबंधित तबदीली पैदा कर देता है।...... मेटाबोलिज़्म के बदलने से जातगुण भी बदल जाता है।

७. जातगुण के किसी स्थापित अंश में सहसा इतना परिवर्तन नहीं हो जाता कि एक ही पग में हमें एक भिन्न स्थापित गुण मिल जाय। प्राणी पहले हमें एक ऐसी स्थित (Plastic condition) में मिलता जब कि उसके उस गुण की नींव हिल चुकी होती है है। ऐसे प्राणी को लगातार कई पीढ़ियों तक वाँछित-फलानुकूल वातावरण में रखने की आवश्यकता होती है।

......स्थापित जातगुण को हिला देने वाला यह पहला परिवर्तन निम्नलिखित साधनों द्वारा हो सकता है।

(i) ग्राफ्टिंग (Grafting),

(ii) विकासक्रम की बिभन्न अवस्थाओ में प्राणी के ऊपर वाह्य परिस्थितियों का प्रभाव डालना,

(iii) क्रास ब्रीडिंग (cross breeding)—विषेश कर उनके बीच जो निकट सम्बन्धी नहीं हैं।

[ इस सम्बन्ध में लाइसेन्को के निम्नलिखित वाक्य पर भी ध्यान देना चाहिये ]

......केवल हिब्रिडाइजेशन से वाँछित फल नही प्राप्त होगा, जब तक कि उन गुणों के विकास के लिये, जिन्हें हम हाइब्रिड (hybrid) में लाना चाहते हैं, अनुकूल परिस्थितियाँ न हों।

८ वातावरण के प्रभाव से उत्पन्न तबदीलियाँ किस हद तक इनहेरिट होंगी यह इस बात पर निर्भर है कि शरीर का परिवर्तित भाग उस क्रिया में कहाँ तक योग देता हैं जिसका रिप्रोडक्टिव (reproductive) कोष्टों की उत्पत्ति से सम्बन्ध है।

[ लाइसेन्को ने मिच्युरिन (Michurin) के प्रयोगों तथा विचारों से प्रेरणा ली है। उनकी मूल धारणा यह है कि शरीर द्वारा संग्रहित (acquired) गुणों का इनहेरिटेन्स (inheritence) सम्भव तथा आवश्यक है। इसी विचार के आधार पर उनका मत यह है कि हम प्राणियों मे किसी निश्चित दिशा में, बाध्य परिस्थितियों के प्रभाव से उनकी आन्तरिक कार्य प्रणाली में परिवर्तन कर, उनको अपने इच्छानुकूल बदल सकते हैं। ]

लाइसेन्को ने जितने जोरदार शब्दों मे अपने विरोधियों को खरी खोटी सुनाई है उससे कहीं दबी भाषा में उन्होने अपने सिद्धान्तों को व्यक्त किया है, और प्रमाण देने की ओर तो ऐसा प्रतीत होता है, उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया। वेजिटेबिल हाइब्रिडस (Vegetable hybrids) जो लाइसेन्को के मतानुसार सेक्सुअल हाइब्रिडस • (sexual hybrids) से

सिद्धान्त भिन्न नहीं होते, जातगुण पर उनके विचारों के प्रमुख प्रमाण हैं। उदाहरणार्थ वे एक प्रयोग और उसके परिणाम का वर्णन करते हैं—

टमाटर की एक जात है जिसकी पत्ती कटी छटी ( disscoted ) नहीं होती और जिसका लाल फल होता हैं। एक अन्य जाति के टमाटर की पत्तियाँ कटी छटी होती हैं और फल पीलापन लिये हुए सफेद होता है। पहली जाति का एक पेड़ स्टाक ( stock ) और दूसरी का एक पेड़ सिअन ( scion ) के रूप में इस्तेमाल किया गया। जिस वर्ष ( Graft ) लगाया गया दोनो में कोई परिवर्तन नहीं दिखाई दिया। स्टाक और सिअन दोनो से बीज इकठा किये गये।

स्टाक से लिए गये बीजों से जो पेड़ उत्पन्न हुए उनमें से अधिकतर स्टाक की ही तरह थे —लाल फल वाले जिनकी पत्तियाँ कटी छटी नहीं थीं। पर छः पेड़ ऐसे थे जिनकी पत्तियाँ कटी छटी और फल पीले थे। इन पेड़ों में सिअन का प्रभाव स्पष्ट है।

साधारणतया जब इन दोनो जातियों को क्रास किया जाता है तो हाईब्रिड की पत्तियों कटी छटी और फूल लाल होते हैं। या जिन ६ पेड़ों का जिक्र ऊपर किया गया है उनके फल भी पीले थे अतः क्रास से उत्पन्न हाईब्रिडस नहीं थे।

एक दूसरे हाईब्रिड में भी पत्तियाँ कटी छंटी थीं। इस पेड़ में एक स्थान पर पीले और दूसरे पर लाल फल थे—स्टाक और सिअन के गुणों का विचित्र सम्मिश्रण।

जिन पेड़ों में पहली पीढ़ी में कोई विशेषता नहीं दिखाई, उनके बीजों से उत्पन्न कुछ पेड़ों में (दूसरी पीढ़ी में) कटी छंटी पत्तियाँ और पीले फल पाये गये।

इनके अतिरिक्त कुछ साधारण पेड़ भी पाये गये—जैसे कि सेक्सुअल हिब्रिहाईज़ेशन में भी होता है।

ऊपर दिये दृष्टान्त से लाईसेन्को के अनुसार यह स्पष्ट है कि क्रोमोज़ोम्स के आदान प्रदान के बिना भी सिअन और स्टाक एक दूसरे पर जातगुण को बदल देनेवाला प्रभाव डाल सके। स्टाक और सिअन के बीच आदान प्रदान किस प्रकार हुआ और इससे जात गुण में परिवर्तन किस तरह हुआ ? इन प्रश्नों पर लाइसेन्को ने प्रकाश नहीं डाला। फलतः वे इस सम्बन्ध मे कोई नियम भी नहीं दे सके। दृष्टान्त असाधारण अवश्य है पर इहेरिटेन्स (inheritance) की इस क्रिया को समझने के लिये दी गई सूचना शोचनीय ढग से अपूर्ण है। कितनी पीढ़ियों तक प्रयोग जारी रहा ? हर एक पीढ़ी में विभिन्न प्रकार के पौदों का अनुपात क्या था ? जिन पौदों में परिवर्तन हुआ उनके बीज बोये गये या नहीं ? यदि हां तो नतीजा क्या हुआ ? आदि कितने ही महत्वपूर्ण प्रश्नों के सम्बन्ध में कोई सूचना नहीं दी गई। जो कुछ बताया गया है उसके आधार पर तो केवल इतना ही कहा जा सकता है कि यह दृष्टान्त मेन्डेल के साधारण सिद्धान्त से मेल नहीं खाता जान पड़ता, और अधिक छान बीन की अपेक्षा रखता है। प्रमाण के रूप में जो सूचना लाइसेन्को ने अपने भाषण में दी है, उनके विचारों की आधार शिला यदि यही है तो निस्संदेह उनका कुछ भी अनुमान लगाना अनाधिकार चेष्टा है। यदि उनकी धारणाओं के पीछे और अधिक तथा संतोश जनक प्रमाण हैं तो उनका उल्लेख न करना असाधारण भूल अवश्य है, फिर भी इन गुप्त प्रमाणों के प्रकाश में आने तक हमें उनके विचारों के सम्बंध में कोई धारणा बना लेने से बचना चाहिये।

लाइसेन्को के क्रांतिकारी विचारों को प्रमाण का सहयोग पर्यात मात्रा से बहुत कम मिल सका है, यह सत्य है। पर प्रमाण से अलग भी तो विचारों का कुछ अपना मूल्य होता है। इन विचारों का मूल्यांकन आवश्यक है, लेकिन पहले हमें क्रोमोजोम थियरी की क्षमता पर दृष्टि डालनी होगी। क्रोमोजोम थियरी के पक्ष में अत्यधिक प्रयोगिक प्रमाण अवश्य हैं, पर यह कहना सत्य न होगा कि अपने मौजूदा ज्ञान से हम जातगुण की सभी समस्याओं को क्रोमोजोम थियरी के आधार पर समझ सकते हैं। हमें याद रखना चाहिये कि स्वयं जीन का अस्तित्व अभी तक सरकमस्टैन्शियल (circumstantial) प्रमाण पर निर्भर है। जीन की कार्यप्रणाली के सम्बन्ध में भी हमारा ज्ञान बहुत ही सीमित है। सेक्सडिटरमिनेशन (sex determinaton) हाइब्रिड विगर (hybrid vigous) आदि कई समस्याओं का सन्तोशजनक

उत्तर अभी क्रोमोज़ोम थियरी नहीं दे पाई। यह बिलकुल सम्भव है कि जिन बातों को हम आज इस सिद्धान्त के आधार पर ठीक-ठीक समझ नहीं पाते, उन्हें आगे चल कर अपने विस्तृत ज्ञान से इसी थियरी के आधार पर समझ सकें। पर साथ ही हमें कम से कम इस सम्भावना को कि शायद यह सिद्धान्त समस्या को अंशतया ही हल कर सकता है, स्थान देना चाहिये।

लाइसेन्को की धारणा है कि शरीर द्वारा संग्रहित गुण (acauired characters) भी इनहेरिट हो सकते हैं। हमने देखा कि इस मत के पक्ष में प्रमाण अधिक नहीं हैं। फिर भी क्या यह सुझाव एक सम्मभावना के रूप में, अन्वेषण की एक समस्या के रूप मे ग्रहण नहीं किया जा सकता? क्या स्वय क्रोमोज़ोम थियरी में इस बात के लिये गुंजाइश नहीं है? जीनोटाइप में परिवर्तन जहाँ एक्सरेज़ (x-ray) कोलकीसाइन (colchicine) आघात (wounding) आदि बाह्य साधनो द्वारा सम्भव है, वहाँ क्या यह बिलकुल असम्भव है कि शरीर के अन्य भागों में उत्पन्न होने वाली प्रति क्रिया का प्रभाव जर्म सेल्स पर पड़ सके? अधिकाधिक प्रमाण इस बात के इकट्ठा होते जाते हैं कि जीवित शरीर के एक भाग की क्रियाओं का शेष शरीर की क्रियाओं से गहरा सम्बबंध रहता है—प्राणि-शास्त्र के विद्यार्थी भलो-भांति जानते हैं कि किस प्रकार एक अंग हारमोन (hormone) द्वारा शरीर के दूसरे अंग की क्रियाओं पर प्रभाव डालता है। अत: संग्रहित गुणों के इनहेरिटेन्स की सम्भावना को हम अस्वीकार नहीं कर सकते।

**जातगुण से सम्बन्ध रखने वाली विरोधी धारणाओं पर निष्पक्ष भाव से विचार करने के बाद प्रश्न उठता है "क्या ये विचार धारायें सचमुच परस्पर विरोधी हैं?"— शायद नहीं; सम्भव है भविष्य में एक दूसरे की पूरक सिद्ध हो सके।**

× × ×

यद्यपि यह लेख की सीमा से बाहर जाना होगा फिर भी लाइसेन्को ने अपने भाषण द्वारा जो दूसरी अधिक गंभीर समस्या उपस्थित कर दी है उसका यहाँ उल्लेख करना आवश्यक जान पड़ता है। राजनैतिक क्षेत्र में तो (खेद का विषय है) संसार दो दलों में विभाजित है ही, पर लाइसेन्को ने विज्ञान के पवित्र धरातल पर भी सोवियत रूस और संसार के मध्य एक रेखा खींचने का दुस्साहस किया है, जो सर्वथा निंदनीय है। मेन्डेल, मोरगन आदि वैज्ञानिकों को प्रतिक्रिया वादी कहकर लाइसेन्को ने जिस अनुदारता का परिचय दिया है वह एक वैज्ञानिक के लिये भारी अवगुण है। यही नहीं, उन्होंने रूस के तरुण वैज्ञानिकों को इन वैज्ञानिकों की विचार धारा तथा कार्य प्रणाली की ओर ध्यान देने से रोककर तथा रूस की नई ऐग्रोबायालोजी (agrobiology) में (जिसके जन्म दाता स्वयं लाइसेन्को हैं) सहयोग देने के लिये आमन्त्रित कर भ्रमपूर्ण मार्ग प्रदर्शन किया है।

हम एक व्यक्ति की, चाहे वह कितना ही बड़ा क्यों न हो, इस प्रकार की अनर्गल बातों की ओर विशेष ध्यान न देते, यदि वह केवल एक व्यक्ति की बात हो रहती। पर जब संसार के एक शक्तिशाली देश की सरकार ने इस भाषण पर अपनी मुहर लगा दी तो अवश्य ही यह एक चिन्तन का विषय हो जाता है। प्रश्न उठता है विज्ञान किस ओर? वैसे ही राजनीति की छत्रछाया में विज्ञान की काफी दुर्दशा हो रही है, प जब वैज्ञानिक स्वयं समस्याओं पर विचार करने के लिये दलवादी नेताओं के रूप में आने लगे तो भविष्य के लिये यह अत्यन्त अशुभ चिन्ह है। फिर भी हमें आशा रखनी चाहिये कि बीमारी के घातक होने से पहले हम उसपर कब्जा पा लेंगे।

---

# असली चीजों की पहचान ?

*[ आजकल युक्तप्रान्त के नगर-वासियों को तेल व घी में "मिलावट" का भूत कितना सता रहा है, इसका परिचय किसी भी बेरी बेरी के रोगी व डालडा घी से जनित अजीर्ण के रोगी की दुःख गाथा से मिल सकता है। प्रस्तुत लेख में गृहस्थों के लिए कई विशेष उपयोगी एवं शिक्षाप्रद बातों का वर्णन है ]*

लेखक—डा० रमेशचन्द्र कपूर एम० एस-सी० डी० फिल्०

घरेलू वस्तुओं को खरीदते समय हमें यह जानने की प्रायः इच्छा होती है कि इनमें कुछ मिलावट तो नहीं है ? अधिक तर लोगों को यह नहीं पता रहता कि बहुतेरी वस्तुओं के बारे में यह जानना अत्यन्त ही सरल है। निम्नलिखित प्रयोगों से यह भली भाँति प्रतीत हो जायगा यह प्रयोग हम घर की बहुत ही साधारण वस्तुओं के साथ कर सकते हैं।

अनेक खाद्य वस्तुएँ जो कि हमारे स्वास्थ्य के लिये अत्यावश्यक हैं, आजकल बिलकुल दुर्लभ हो गई हैं। यदि मिलती भी हैं तो उनमें मिलावट रहती है या बिलकुल बनावटी ही रहती हैं। हम अपने घरेलू प्रयोगों से इस प्रकार के बहुत से पदार्थों का पता लगा सकते हैं जैसे कि नकली मक्खन, शहद, तेल इत्यादि।

यदि हम स्वच्छ मक्खन को एक चम्मच में आग पर रखें तो उसमें बहुतायत से धीरे धीरे झाग निकलेंगे। परन्तु यदि नकली या मिलावट के मक्खन को उसी प्रकार गर्म करें तो उसमें झाग बिलकुल भी न निकलेंगी वरन् कुछ धुआँ निकलेगा और वह गर्म चरबी की भाँति उछलेगा।

एक दूसरे प्रयोग द्वारा भी हम उनमें अन्तर कर सकते हैं। यदि हम गर्म दूध में मक्खन को डालकर दूध को ठंडा करें तो वह दूध के साथ बिलकुल घुल-मिल जायगा। मिलावटी मक्खन गर्म दूध के साथ तो मिला रहेगा, परन्तु उसके ठंडा होते ही ऊपर तैरने लगेगा।

एक साधारण मनुष्य के लिये असली या नकली शहद को देखकर पता लगाना सरल कार्य नहीं है। देखने और स्वाद में तो दोनों एक से प्रतीत होते हैं, परन्तु गुण में बड़ा अन्तर होता है। यदि हमारे पास थोड़ी आयेडीन हो तो यह कार्य बड़ा सरल हो जाए। अधिकतर लोग कृत्रिम शहद में ग्लूकोज मिला देते हैं जिससे एक सा स्वाद मालुम पड़े। परन्तु व्यापारिक ग्लूकोज में "रेड डेक्सट्रिन" नाम का योगिक सदा न्यून मात्रा में रहता है। यदि हम थोड़े से नकली शहद को पानी में घोलकर कुछ बूँदें आयोडीन के घोल की डालें तो इसका रंग इस योगिक के कारण लाल या बैंजनी हो जायगा और तुरन्त नकली शहद की पहचान हो जायगी।

जैतून के तेल में अन्य सस्ते तेलों, जैसे मूँगफली, बीनौला इत्यादि की पकड़ बड़ी जल्दी हो सकती है। यदि एक ट्यूब में हम थोड़ा सा जैतून का तेल लें और उसमें उतना ही शोरे का तेजाब मिला दें और उस थोड़ी देर हिलाकर रख दें तो असली तेल पीला ही रहेगा; परन्तु नकली या मिलावट का तेल भूरा या लाल पड़ जायगा।

( शोरे का तेजाब त्वचा को जला देता है और खाल पर पीले अंक भी पड़ जाते हैं। इसलिये प्रयोग करते समय इससे अत्यन्त सावधान रहना चाहिये )

फलों इत्यादि का जीवाणु-रहित रखने के लिये सीसे के योगों का प्रयोग हुआ करता है। फलों को अधिक काल तक रखते समय या दूरी पर भेजते समय इन योगिकों को उन पर डाल दिया जाता है। इसलिये ऐसे फलों को खाने के पहले अच्छी प्रकार धो लेना चाहिये। पानी के नलों में भी इसके योगिक बन जाते हैं जो अत्यन्त जहरीले होते हैं। यदि किसी घोल में सीसे के योगिकों का संदेह हो तो उसमें लाल कसीस (पोटैशियम क्रोमेट) का घोल मिलाने से एक पीले रंग का योगिक

नीचे तह पर बैठने लगेगा।

मिथलेटेड स्पिरिट जिसे हम दैनिक कार्यों में लाते हैं साधारण ऐलकोहल (इथाइल ऐलकोहल) में न्यून मात्रा में मिथाइल ऐलकोहल मिलाने से बनती है जिससे कि लोग इसे पीने के काम में न ला सकें। मिथाइल ऐलकोहल अत्यन्त जहरीली वस्तु है। इसके पीने से मनुष्य अंधा तक हो सकता है। यदि यह साधारण ऐलकोहल अथवा किसी तेल के साथ मिली हो तो इसका ज्ञान भी सरलता से हो सकता है। यदि हम मिथाइल ऐलकोहल मिश्रित घोल में एक लाल तपता हुआ ताँबे का तार डालें तो मिथाइल ऐलकोहल से फारमेल्डीहाइड नामक गैस बनेगी जिसकी गंध सरलता से पहचानी जा सकती है।

इसी प्रकार के अन्य छोटे छोटे प्रयोग संखिया तथा अन्य जहरीले पदार्थों को पहचानने के काम में आ सकते हैं जिनका वर्णन और कभी किया जायगा।

---

# पेनिसिलीन

लेखक—श्री ब्रजनन्दन प्रसाद गिल्डयाल एम० एस-सी०

*[जन साधारण में कौन विश्वास करेगा कि फफूँद की एक किस्म ही "पेनीसिलीन" है, जो हमें हानिकारक जीवाणुओं के संघात से बचाकर जीवनदान देती है। इस लेख में दी गई "पेनीसिलीन" की मनोरंजक कहानी पाठकों का आवश्यक ज्ञान बढ़ाकर विज्ञान की जन-हितकारी शक्ति तथा वैज्ञानिक की त्यागपूर्ण शुभचिंतना के प्रति विश्वास के भाव भर सके, तो लेखक का ध्येय सफल होगा]*

यह बात अब स्पष्ट सी है कि युद्ध के मध्य में अस्त्र-शस्त्रों के कारण कम मनुष्य मारे जाते हैं और लड़ाई के बाद अधिक। कारण यह है कि लड़ाई में घायल मनुष्यों की संख्या बहुत अधिक होती है और उनके घाव उचित चिकित्सा न होने के कारण विषयुक्त हो जाते हैं, धीरे-धीरे यह विष सारे शरीर में व्याप्त जाता है, और मनुष्य की जीवन लीला समाप्त हो हो जाती है।

यदि पिछले और इस युद्ध के घायलों की मृत्यु संख्या पर ध्यान दिया जाय तो ज्ञात होगा कि आठ प्रतिशत से लग-भग चार प्रतिशत आ गई है। इसका मुख्य श्रेय पेनसिलीन को ही दिया जाता है। यद्यपि गंधक परिवार की कई औषधियों जैसे एम० बी० ६९३ सिबाजोल, सल्फोनिमाइड (Cibazole, Sulphonamide) इत्यादि का भी पर्याप्त भाग रहा।

इस औषधि का आविष्कार केवल संयोग बश ही हुआ। परन्तु ऐसे संयोग भी हर किसी को नहीं मिलते। ये योग तो डाक्टर ऐ० फलेमिंग (A. Fleming) पेनिसिलीन के आविष्कारक को ही अपनी अतृप्त अन्वेषण की भावना, असीम उद्योग तथा अश्रांत परिश्रम के फलस्वरूप मिल सके कि जिसके कारण विश्व-कल्याण कारक अमोघ रसायनिक द्रव्य का जन्म हो सका।

अब तक कृमिनाशक जितनी भी औषधियाँ ज्ञात थीं उनमें से अधिकतर बाह्य उपयोग में लाई जाती थीं जैसे घावों के ऊपर छिड़कने इत्यादि में। परन्तु ऐसी औषधि ज्ञात नहीं थीं जो कि समस्त शरीर के रोग को रोक सके। क्योंकि ऐसी अवस्था में औषधि को सारे शरीर में व्याप्त होना आवश्यक है। और ऐसी स्थित में जो औषधि कीटाणुओं के लिये नाशकारी सिद्ध हो, शारीरिक अंगों का भी नाश करती थीं। फिर ये औषधियाँ शरीर में पर्याप्त मात्रा में प्रवेश नहीं कराई जा सकती थीं क्योंकि एक विशेष परिणाम से अधिक होने से मृत्यु-कारी सिद्ध होती थीं। हमको एक ऐसी औषधि की आवश्यकता थी जो मनुष्य को काफी मात्रा में दी

जा सके। जिससे की बीमारी के समस्त कृमियों का नाश हो सके और साथ ही शरीर को भी हानि न पहुँचे। पेनिसिलीन अधिक मात्रा में हानिरहित ही नहीं प्रत्युक्त वृद्धि को रोकने वाली होने के कारण बहुत शक्तिशाली जीवाणु जैसे घावों को विषाक्त बनाने वाले कृमियों को नष्ट कर देती है। इसी से इस युद्ध के पश्चात् घावों को विषैले होने से रोकने के लिये डाक्टरों ने पेनिसिलीन का प्रयोग किया और पूर्ण सफलता प्राप्त की।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है पेनिसिलीन के आविष्कार में संयोग का ही अधिक हाथ रहा है। सन् १९२९ की बात है। डा० फ्लेमिंग उस समय सेन्ट मेरी अस्पताल ( St. Marys Hospital ) लन्दन में कृमि विज्ञान के अध्यापक थे। इसके पहले कि हम यह देखें कि डा० फ्लेमिंग क्या कर रहे थे यह जानना आवश्यक हो जाता है कि कृमि वैज्ञानिक ( Bacter lologist ) किस प्रकार किन-किन वस्तुओं पर प्रयोग करता है।

समस्त संसार में लगभग सब स्थान अदृश्य जन्तुओं से आच्छादित हैं। ये जन्तु इतने छोटे होते हैं कि बिना अणु-विज्ञान यन्त्र की सहायता के नहीं दिखाई दे सकते। बहुत शक्तिशाली अणुवीक्षण यन्त्र की सहायता से भी ये अत्यन्त छोटे विन्दु की रूप में दिखाई देते है। और कुछ तो अब तक दिखाई ही नहीं दिये, परन्तु अब विद्युत अणुवीक्षण यन्त्र (Electron Microscope) द्वारा जो कि ६०,००० से १,५०,००० गुना बढ़ाकर दिखा सकता है, इन जन्तुओं को देखना सम्भव हो गया है, इन्हीं जन्तुओं की प्रगति, रहन-सहन इत्यादि का अध्ययन कृमि वैज्ञानिक किया करता है। इन सूक्ष्म जन्तुओं को यदि कोई ठीक स्थान मिले जहाँ कि इनके योग्य खाना और पानी हो तो ये अत्यन्त शीघ्रता से बढ़ते हैं। कृमि वैज्ञानिक इनको अधिकतर एगर, (AGAR) एक समुद्री घास से तैयार किया हुआ पदार्थों में उपजाते हैं। ये कीटाणु कई भाँति के होते हैं। प्रत्येक बीमारी के विषेश प्रकार के कीटाणु होते हैं, और इनको उपजानें के लिये विशेष प्रकार के रसायनिक मिश्रण का उपयोग किया जाता है। काँच की तश्तरियाँ जिनकी पेट्रीडिश (Petridish) या प्लेट (Plate) कहते हैं अधिकतर इनके उपजानें के काम में लाई जाती हैं। जब कृमि वैज्ञानिक को इन कीटाणुओं का अध्ययन करना होता है, तो वो किसी कीटाणुयुक्त वस्तु या पशु से इनको लेकर एक विशेष प्रकार के रसायनिक घोल और एगर (AGAR) या अन्य इसी प्रकार किसी और पदार्थ के साथ मिलाकर प्लेट में पैदा करते हैं। इस प्रकार के वातावरण में ये कीटाणु अत्यन्त शीघ्रता से बढ़ते हैं और थोड़े ही समय में छोटी-छोटी बस्ती के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। इनको उत्पन्न करने में बहुत सावधानी बर्तनी पड़ती है, क्योंकि जैसा कि ऊपर कहा गया है सभी स्थान भाँति-भाँति की कीटाणुओं से आच्छादित है और इनको जरा भी अवसर मिला कि इन्होंने बड़े बेग से बढ़ना आरम्भ किया और जिस विशेष कीटाणु को हम चाहते हैं उसका तो पता नहीं चलता और उसकी जगह दूसरे अनेक प्रकार के कीटाणु दिखाई देते हैं और वह घोल खाराब हो जाती है। इसी प्रकार डा० फ्लेमिंग की भी जरा सी असावधानी के कारण एक प्लेट खराब हो गई जो कि भाग्यवश आगे चलकर पेनिसिलीन की आविष्कारक सिद्ध हुई।

डा० फ्लेमिंग १९२८ में एक विशेष कीटाणु को उपजाने ( Cultivate ) का प्रयत्न कर रहे थे। उन्होंने कई प्लेट के एगर पदार्थ के साथ कीटाणु उत्पन्न कर रखे थे। सितम्बर की एक प्रातःकाल जब एक प्लेट का ढक्कन उठा कर कीटाणुओं की उपज को देखने की चेष्टा कर रहे थे कि अचानक सामने की खिड़की से हवा आई और एक अदृश्य फफूँद का बीज प्लेट में गिर गया। डा० ने प्लेट का ढक्कन बंद किया और अन्य प्लेटों को देखने लगा। कुछ दिन बाद डा० फ्लेमिंग ने देखा कि उसकी एक प्लेट में कीटाणु के साथ एक नीले रङ्ग की फफूँद उगी हुई है। अब वह प्लेट डा० के काम की न थी, क्योंकि वह दोषयुक्त हो गई थी। साधारणतया वो प्लेट फेंक दी जानी चाहिये थी परन्तु गूढ़ निरीक्षण की प्रेरणा से युक्त होने के कारण डा० ऐसा न कर सका। उसका ध्यान एक

विचित्रिता की ओर आकर्षित हुआ। उसने देखा कि जिस स्थान पर फफूँद उगी थी वहाँ के कीटाणु लुप्त हो गये थे। यद्यपि अधिकतरफ फफूँद और कीटाणुओं में पारस्परिक विरोध देखा गया है परन्तु डाक्टर फ्लेमिंग केवल इतना ही व्याख्या से सन्तुष्ट न थे। वे जानना चाहते थे कि पारस्परिक विरोध ही इसका वास्तविक कारण है अथवा कोई और।

डा० फ्लेमिंग ने शीघ्र ही उस फफूँद पर कुछ प्रयोग आरम्भ किये। इन प्रयोगों के फलस्वरूप ज्ञात हुआ कि फफूँद और कीटाणुओं का पारस्परिक विरोध इस नाश का कारण नहीं था प्रत्युक्त यह फफूँद उगते समय अपने स्वाभाविक जीवन में पीले रङ्ग का एक रसायनिक पदार्थ पैदा किया करती है जो कि कीटाणुओं के लिये नष्टकारी सिद्ध होता है। और यह नीली फफूँद पेनिसिलीन नोटेटम् (Penicillin Notatum) के नाम की है। यह पीला तरल रसायन जिसका कि नाम डा० फ्लेमिंग ने पेनिसिलीन रखा, इतना शक्तिशाली था कि ८०० गुना हलका करने पर भयानक कीटाणु स्ट्रैप्टो कोकाई (Strepto Cocci) शरीर को विषयुक्त करने वाला कीटाणु नष्ट कर सकता था।

यद्यपि इतनी सुन्दर आश्चर्य औषधि पर कुछ समय तक कई विशेष कारणों से अधिक प्रयोग न हो सके परन्तु फिर भी भाग्यवश ही इतना सब हो सका। क्योंकि पहले तो यह फफूँद दुर्लभ है और इस कारण सरलता से प्रत्येक स्थान पर नहीं पाई जाती, दूसरे यह जो रसायनिक पदार्थ पैदा करती है हर एक हानिप्रद कीटाणु का नाश नहीं कर सकता वरन् घाव को विषयुक्त बनाने वाले कीटाणुओं के ही प्रति इतना प्रभावशाली है और फिर बहुत सी फफूँद कीटाणु नाश-कारी पदार्थ पैदा किया करती हैं परन्तु ये इतने विषैले होते हैं कि मनुष्य के लिये भी मृत्युकारी सिद्ध हो सकते हैं। इस कारण हम पेनिसिलीन के आविष्कार को भाग्य ही कहेंगे।

डा० फ्लेमिंग पेनिसिलीन के निकट भविष्य में प्रसिद्धि का अनुमान लगा चुके थे परन्तु साधन तथा उचित अवसर के अभाव के कारण उस पर अधिक प्रयोग न कर सके। लगभग दस वर्ष बाद १९३२ में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर एच० डबलू फ्लोरे (H. W. Florey) और पैथोलोजी के सर विलियम स्कूल के डा० ई० केन ( Dr. E. Chain ) ने कीटाणुओं के पारस्परिक विरोध के विषय में अध्ययन तथा अनेक प्रयोग आरम्भ किये। भाग्य ने फिर यहाँ साथ दिया और पेनिसिलीन ही की फफूँद के ऊपर पहले प्रयोग आरम्भ हुआ। किन्तु अबकी बार अनेक विभागों के विशेषज्ञों का एक समूह पेनिसिलीन का अध्यन करने को जुटा। कोई तो पेनिसिलीन को अधिक भाग में सरल और शीघ्र तैयार करने के उपाय करने लगा; कोई इसकी शक्ति निश्चित करने की विधि को ढूँढने लगा। कोई इसको पशुओं पर प्रयोग करने लगा, कोई इसका रसायनिक विश्लेषण करने लगा तथा कोई प्रत्यक्ष अनेक रोग ग्रसित रोगियों पर प्रयोग करने लगा।

इस सामूहिक अन्वेषण के प्रयास का यह परिणाम हुआ कि शीघ्र ही पेनिसिलीन के अनेक प्रभावशाली सम्भावित गुण प्रकाशित हुये जिनका कि आगे वर्णन किया जायगा। जैसे-जैसे पेनिसिलीन के गुण ज्ञात होते गये यह स्पष्ट हो गया कि इसका युद्ध के घायलों को बचाने में विशेष भाग रहेगा। इस कारण बिना विलंब ही इसकी पर्याप्त भाग में तैयार करने के लिये प्रयत्न होने लगा। यद्यपि इङ्गलैंड आई० सी० आई० (I. C. I.) तथा टी० आर० सी० जी० ( T. R. C. G. ) की सहायता से अल्प परिमाण में पेनिसिलीन बनाना प्रारम्भ हो गया परन्तु मुख्य भाग अमरीका ही तैयार करने लगा। इसके साथ ही साथ पेनिसिलीन के रसायनिक संयोजन को भी जानने का प्रयत्न होने लगा जिससे कि यह रसायनशाला में सरल पदार्थों से समुचित भाग में बनाई जा सके। इस कार्य में अब भी अधिक सफलता प्राप्त न हो सकी। यद्यपि कई इससे बहुत कुछ मिलने-जुलने वाले पदार्थ बनाये जा चुके हैं।

पेनिसिलीन की फफूँद की सरलता से धातु मिश्रित शर्करा के घोल में पैदा किया जा सकता है। घोल को २५ डिग्री सेन्टिग्रेड तापक्रम पर छः से आठ दिन तक रखने से फफूँद की सबसे अधिक उपज दिखाई देती

है । इस समय घोल की कृमिनाशक शक्ति भी सब से अधिक होती है। इसका अर्थ हुआ कि पेनिसिलीन ऐसी अवस्था पर पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है अब घोल से पेनिसिलीन निकारी जाती है और फिर शुद्ध की जाती है ये दोनों क्रियायें अत्यन्त दुःसाध्य हैं और इसीलिये पहले पेनिसिलीन बहुत कठिनता से थोड़ी मात्रा में प्राप्त होती थी । शुद्ध होने के बाद पनिसिलीन एक सुनहरे रवेदार पदार्थ के रूप में दिखाई देती है।

पनिसिलीन की शक्ति को किसी भी घोल में परखने के लिए डा० हीटले (Heatley) ने बहुत सुन्दर विधि निकाली है जो कि पेनिसिलीन की कृमिनाशक शक्ति पर आधारित है। पहले कृमि को एगर प्लेट पर उगाते है और जब कृमियों की झिल्ली-सी एगर के ऊपर बन जाती है तो महीन चीनी मिट्टी के या काँच के नल प्रकार के खोखले टुकड़े एगर में रख दिये जाते हैं। और घोल को उनके अन्दर भर दिया जाता हैं। धीरे धीरे उन खोखले टुकड़ों के चारो तरफ का एगर पेनिसिलीन को सोख लेता है और एक कृमियुक्त वृत बन जाता है जिसके कि व्यास के अनुसार ये पेनिसिलीन की शक्ति बन जाती है।

जब ज्ञात शक्ति की पेनिसिलीन पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होने लगी तो अनेक प्रकार के कृमियों के ऊपर इनके प्रयोग होने लगे। और शीघ्र ही मालूम हुआ कि कुछ जिवाणु तो तुरन्त ही मर जाते हैं और कुछ अप्रभावित ही रहते हैं। स्ट्रेप्टोकोकाई और स्टेफाइलीकोकाई तथा शीघ्र ही प्रभावित हो जाते हैं। जानवरो की तिल्ली का बुखार (Anthrax) निमोनिया, मेनिनजाइटिस (Meningitis)' डिपथीरिया (Diptheria) और रति संबंधी रोगों को पैदा करने वाले कीड़े भी सरलता से नष्ट हो जाते हैं।

यक्ष्मा रोग, प्लेग, टाईफाइड इत्यादि के कीड़ों पर कोई प्रभाव नही होता। प्रारम्भिक प्रयोग इन जीवाणुओं पर होने के उपरान्त पशुओं पर भी प्रयोग आरम्भ किये गये। पहले पहल डा० फ्लेचर तथा डा० फ्लारी ने चूहों पर प्रयोग किये चूहों के ऊपर पहले प्राणघातक प्रमाण से कई गुना अधिक प्रमाण में कृमि प्रवेश करा दिये गये और फिर आधी को पेनिसिलीन दी गई और आधी को ऐसे ही रहने दिया। प्रयोग के पश्चात ज्ञात हुआ कि जिनको पेनिसिलीन नहीं दी गई थी वे तो सब मर गये परन्तु जिनको इस प्रकार पनिसिलीन दी गई थी उनमें से अधिकतर स्वस्थ है। अनेक पशुओं पर भिन्न भिन्न मात्रा में पनिसिलीन दी गई और ठीक मात्रा का पता लगाया गया जो कि रोग को पूर्ण रूप से अच्छा कर देती थी।

जब पशुओं के प्रयोग सफल होने लगे तो मनुष्यों के ऊपर भी प्रयोग आरम्भ किये गए। पहले घावों से विष-युक्त मनुष्यों पर प्रयोग किया गया और आश्चर्यजनक सफलता मिली जहाँ कि सब औषधियाँ व्यर्थ सिद्ध हुई थी। कोई कोई मनुष्य तो मृत्यु के मुख में जा चुके थे परन्तु पेनिसिलीन के प्रभाव से पूर्ण रूप से अच्छे हो गये। धीरे धीरे दुनिया के सब देशों में इसके आश्चर्य-जनक गुण की प्रतिभा फैलने लगी और बहुत से रोगों का पूर्ण रूप से इलाज होने लगा। डा० फ्लेमिङ्ग ने स्वयं इसकी प्रशंसा करते हुए कहा कि मैंने एक ऐसी रोगी को पेनिसिलीन दी जो कि मृत्यु के मुख में लग-भग जा चुका था परन्तु पनिसिलीन के देने के एक ही सप्ताह पश्चात् वह चलने फिरने लगा। यह एक असाधारण बात थी।

पेनिसिलीन में विशेष बात यह है कि यह कृमियों का बढ़ना भी बन्द करती है और साथ ही साथ उनको नष्ट भी कर देती है। अगर यह एक ऐसे घोल में डाली जाय जिसमें कि कृमि बहुत हों और साथ ही साथ शीघ्रता से बढ़ते भी हो तो देखा जायगा कि शीघ्र ही कृमियों की बढ़ने की संख्या कम हो जायगी और फिर कृमि धीरे-धीरे मरने लग जायगें और कुछ समय बाद घोल कृमियों से मुक्त मिलेगा। यह इतनी शक्तिशाली औषधि है कि १-५०,०००,०००, ग्राम (एक ग्राम लग-भग ६--रत्ती भर होता है) २,००,०००,००० जीवा-णुवों को नष्ट कर देती है। यह अधिकतर सुई के द्वारा अन्दर शरीर में पहुँचाई जाती है क्यों कि खाने के देने से विविध रसों के कारण नष्ट होजाती है और चूँकि यह पेशाब के रास्ते बहुत शीघ्र बाहर निकल जाती है इसलिये लगातार अधिक मात्रा में देनी पड़ती है।

इसमें ऐसी एक और विशेषता है। यह आवश्यकता से अधिक मात्रा में दी जा सकती है पशुओं पर जो प्रयोग किये गए उनसे सिद्ध हुआ कि अधिक मात्रा में भी पेनिसिलीन इनके अन्दर की सफेद टिकियों पर जो कि रोगों के कृमियों को खाकर शरीर की रक्षा करती हैं कुछ प्रभाव नहीं डालती। इस कारण यह और औषधियों में श्रेष्ठ प्रमाणित हुई है। यद्यपि यह अभी ठीक नहीं ज्ञात है कि पेनसिलीन किस प्रकार से बिना शरीर को हानि पहुंचाये जीवाणुवों को नष्ट कर देती हैं तब भी आशा की जाती है कि नये-नये प्रयोगों से यह मालूम हो हो जायगा और जब हम इसको मालूम कर लेंगे तो यह कहना निरर्थक न होगा कि उस दिन हम रोगों पर विजय पा लेगें।

पेनिसिलीन आवश्यक तथा सुन्दर औषधि होते हुये भी भारतवर्ष में अभी तैयार होना आरम्भ नहीं हुई। परन्तु अब भारत स्वतंत्र होने से शीघ्र ही आशा की जाती है कि इसका बनना आरम्भ हो जायगा जिससे कि सब लाभ उठा सकें। एक और कठिनता इसको रखने में है। भारतवर्ष एक उष्ण प्रधान देश है इस कारण यह शीघ्र ही नष्ट होजाती है यदि यह ठंडी स्थान पर न रक्खी जाय। परन्तु जब पेनिसिलीन बनना आरम्भ हो ही जायगी तो यह कठिनाइयाँ भी हल हो जायेगी।

---

# परमाणु क्या है ?

लेखक—श्री जगपति चतुर्वेदी

*[ थोड़े से बावरे विज्ञान-प्रेमियों को छोड़कर जन-साधारण को इस ज्ञान से क्या लाभ कि परमाणु क्या हैं ? किन्तु अणु विस्फोट की हृदय विदारक कथा ने जन-साधारण को रोटी-दाल के प्रश्न के साथ साथ अणु-परमाणु जगत के प्रति भी जागरूक कर दिया है। इस लेख में पाठकों का परमाणुओं से परिचय इतने सरल ढंग से कराया गया है कि उसे अवैज्ञानिक कहना कुछ सीमा तक अनुचित न होगा, किंतु यह ज्ञान ग्राह्य हो सकेगा, इसी आशा को लेकर यह पहला प्रयोग है ]*

सृष्टि के उत्पत्ति और प्रलय के संबंध में हमारे शास्त्रकारों ने बहुत मनन कर अनेक मत प्रगट किए हैं मनु ने लिखा है कि भगवान् ने जब सृष्टि प्रारम्भ की तो उस समय सतयुग प्रारम्भ हुआ जिसकी अवधि ४ सहस्र वर्ष की थी। इस युग के समाप्त होने के ८०० वर्ष बाद दूसरा युग त्रेता प्रारम्भ हुआ जिसकी अवधि इससे एक सहस्र वर्ष कम थी। इस युग की तीन सहस्र वर्ष की अवधि बीतने के ६०० वर्ष बाद द्वापर युग प्रारम्भ हुआ। द्वापर युग की अवधि त्रेता से भी एक सहस्र वर्ष कम थी अतएव इसकी २ सहस्र वर्ष की अवधि बीतने के ४०० वर्ष बाद कलियुग प्रारम्भ हुआ। कलयुग की अवधि उन्होंने द्वापर से भी १ सहस्र वर्ष कम अर्थात् कुल १ सहस्र वर्ष बतलाई है। इसके समाप्त होने में २०० वर्ष और लगे। इस प्रकार चारों युगों के बीतने में कुल बारह सौ वर्ष व्यतीत होते हैं। इतनी अवधि को मनु देवताओं का एक युग बतलाते हैं किन्तु यही १२००० वर्षों का युग ब्रह्मा का एक दिन कहा गया है। दूसरे बारह सहस्र वर्ष बीतने पर इनका एक दिन रात या अहोरात्र पूरा होता है। ऐसे ही १ सहस्र अहोरात्र पूरा होने पर ब्रह्मा सृष्टि का विनाश, लोप कर देते हैं इस प्रकार एक सृष्टि का प्रलय होजाने पर फिर दूसरी सृष्टि का जन्म होता है। अर्थात् प्राचीन शास्त्रकारों के अनुमान से एक सृष्टि की आयु $१२००० \times १००० =$ १२०००,००० एक करोड़ बीस लाख बरस होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आज हमें संसार का जो भी स्थूल रूप दिखाई पड़ता है वह कालान्तर में सहस्रों युगों, लाखों करोड़ों वर्षों के पश्चात् आकाश में लीन हो जाता है जिसको प्रलय कहा जाता है। इस प्रलय या सृष्टि के लोप का वर्णन कल्पना वा मनन के पश्चात् हमारे देश के विद्वान दार्शनिकों के अतिरिक्त संसार के दूसरे प्राचीन वा अर्वाचीन दार्शनिकों ने भी करने का प्रयत्न किया है परन्तु उस प्रलय की कथा वा धुर सत्यता से आज भयभीत होने की कोई बात नहीं है क्योंकि ये बातें सर्वथा सत्य उतरने पर भी उस समय घटित होने वाली हो सकती हैं जब कि हमारी पीढ़ी के बाद सहस्रों लाखों वा उससे भी अधिक पीढ़ियाँ संसार में जन्म लेकर संसार का दुख सुख भोग चुकी रहेंगी। इसके अतिरिक्त विज्ञान की दृष्टि में सृष्टि की आयु ऊपर की गणना से कहीं बहुत ही अधिक है।

यहाँ पर सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय की चर्चा से हमारा केवल यही अभिप्राय है कि हम इस बात को कल्पना, अनुमान या विचार में ला सकें कि विश्व वा स्थूल दिखाई पड़नेवाला रूप प्रकृति का विचित्र खेल है। इस मनोहर जगत् का निर्माण करने वाली वस्तुएँ अत्यंत सूक्ष्म रूप की होंगी जिनके संयोग-वियोग, उलट फेर और कौतुक पूर्ण नाना रूप में व्यवहृत कर सृष्टि के सृजन कारक प्रकृति नट ने अपनी अद्भुत कुशलता का परिचय दिया है। विश्व को निर्माण करने वाले वे अत्यंत सूक्ष्म आकार के मूल पदार्थ क्या हैं, किस रूप के हैं, उनकी कितनी संख्या वा मात्रा से जगत के नाना पदार्थ सृजित हुए हैं, यह बहुत ही विलक्षण और गंभीर प्रश्न हैं। इन्हीं प्रश्नों का उत्तर दार्शनिकों ने तर्क कर मनन द्वारा देने का प्रयत्न किया है किन्तु आज विज्ञान इन प्रश्नों का उत्तर अपने प्रमाणों, प्रयोगों और वैज्ञानिक विवेचनाओं से देने का उद्योग कर रहा है जिसको साधारण पुरुष भी हृदयंगम कर सकते हैं। इन बातों का सुगम वर्णन किसको रुचिकर नहीं लग सकता !

हमारे दार्शनिकों ने विचार किया था कि सृष्टि की रचना पाँच महाभूतों से हुई जिनको पंचतत्त्व कहा जाता है।

क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा अर्थात् (१) पृथ्वी (मिट्टी) (२) पानी (३) आग, (४) आकाश और (५) वायु से ही सारी सृष्टि बनी है। किन्तु वैज्ञानिक खोजों से यह बात सत्य नहीं सिद्ध होती। विज्ञान का जो विभाग पदार्थों के पृथक-पृथक टुकड़े कर उनके मूल रूप की खोज करने, उनका मेल-जोल करने पर परिवर्तनों का पता लगाने और पदार्थों के मूल रूप से फिर विविध पदार्थ बनने की विधि आदि की खोज करता रहता है उसे रसायन शास्त्र कहते हैं। इन्हीं रासायनिक खोजों से सुगमतया पता लग जाता है कि पानी के निर्माण करने वाले दूसरे पदार्थ हैं। हवा भी कई मूल पदार्थों का सम्मिश्रण है। मिट्टी में तो कितने ही पदार्थ मिश्रित हैं, आग कोई पदार्थ नहीं जान पड़ता। इस प्रकार रसायन ने अपनी महत्वपूर्ण खोजों से प्रमाण के आधार पर महाभूतों वा तत्वों की नई सूची बना उन सब का नामकरण कर उनकी गुणावली भी तैयार करने की कोशिश की है जो विज्ञान का बहुत महत्वपूर्ण विषय है। इन्हीं खोजों के आधार पर विज्ञान ने हमारे दैनिक जीवन और संसार के ज्ञान में कितना भारी परिवर्तन खड़ा कर दिया है उन सब का वर्णन बड़े विद्वानों द्वारा वृहद् ग्रंथों में ही लिखा मिल सकता है।

हम यहाँ पर यह बतला देना चाहते हैं कि संसार के निर्माण करने वाले मूल पदार्थों को विज्ञान तत्व नाम से पुकारता है और उनकी संख्या प्राकृतिक रूप में ९२ निश्चित की गई है जो संसार में पाए जाते हैं किन्तु इस सम्बन्ध की खोजें बराबर जारी हैं और वैज्ञानिकों ने इन ९२ तत्वों के अतिरिक्त भी उसके परे ५ नए तत्व कृत्रिम रूप से अपनी खोज शालाओं में उत्पन्न करने में सफलता प्राप्त कर ली हैं। इन सभी प्राकृतिक और कृत्रिम तत्वों के वैज्ञानिक नाम पढ़ने में बहुत सुगम नहीं मालूम हो सकते।

तत्व का अर्थ है ऐसा पदार्थ जिसके अवयव या निर्माण करनेवाले छोटे से छोटे किनके उसी पदार्थ के समरूप हों। उदाहरणार्थ सोना, चांदी, ताँबा, लोहा और जस्ता आदि धातु "तत्व" हैं। इनमें से किसी पदार्थ को टुकड़े-टुकड़े करने, पिघलाने, वा साधारण रूप

में कोई तोड़-फोड़ की युक्ति करने पर भी इन पदार्थों के नन्हें से नन्हें किनके उसी पदार्थ के दिखाई पड़ेंगे। ऐसे तत्व के सब से छोटे किनके को 'परमाणु' कहा जाता है। किन्तु परमाणु केवल हमारे नंगे नेत्रों को ही अदृश्य नहीं है। प्रत्युत प्रबल से प्रबल सूक्ष्म दर्शक यंत्र से भी दिखलाई नहीं पड़ सकते। ये परमाणु इतने सूक्ष्म होते हैं कि बाल की मुटाई से भी लाखों गुना छोटे आकार के होते हैं। इतने छोटे आकार के और अदृश्य होने पर भी परमाणुओं को तौला या मापा जा सकता है। अब तक यह माना जाता था कि सृष्टि को निर्माण करनेवाली सबसे छोटी किनकी 'परमाणु' है जिसका फिर छोटा विभाग नहीं हो सकता किन्तु विज्ञान की नवीन से नवीन खोजों ने परमाणुओं का भी खंड कर विज्ञान की खोजों को एक नई दिशा में लगा दिया है जिससे संसार के सम्मुख परमाणु की प्रचंड शक्ति आज मनुष्य के हाथ में उसकी चाकरी करने के लिए आ रही है। इन खोजों का वर्णन हम आगे करेंगे।

पदार्थों के निर्माण में परमाणुओं की स्थिति एक विचित्र रूप से होती है। साधारणतया परमाणु अकेले पृथक रूप में प्रयुक्त नहीं पाए जाते बल्कि दो या अधिक परमाणु मिलकर पहले गुट्ट बनाते हैं जिन्हें 'अणु' कहा जाता है। यह गुट्ट या अणु या तो भिन्न-भिन्न प्रकार के परमाणुओं के संयोग से बनते हैं या समरूप के ही परमाणुओं से। जब कभी ये गुट्ट या अणु टूटते हैं तो परमाणु अकेला पृथक होकर फिर कोई अपना साथी ढूँढने लगता है और उससे मिलकर नया अणु बना लेता है, इस प्रकार पदार्थों में अकेले परमाणुओं के स्थान पर उनका गुट्ट या अणु वर्ग ही पाया जाता है।

कुछ तत्वों का साधारण परिचय कर लेना यहाँ पर उचित हो सकता है जिनकी चर्चा से अणुओं वा परमाणुओं की गति विधि जानने में हमें सुगमता हो सकती है। इससे भी पहले पदार्थों के बाहरी रूप रङ्ग के अनुसार उनका सरल भेद जान लेना उचित होगा। हम जानते हैं कि कुछ वस्तुएँ ठोस होती हैं, जैसे सोना, चाँदी लोहा आदि। कुछ दूसरी पानी की तरह बहने वाली होती हैं। तीसरी हवा की तरह उड़ने वाली होती हैं। पानी की तरह बहने वाले पदार्थों को तरल पदार्थ कहा जाता है जैसे तेल, दूध, तेजाब आदि। हवा की तरह उड़ने वाली वस्तुओं को वायु रूप पदार्थ या वायव्य कहा जा सकता है। इसके लिए अंग्रेजी का शब्द गैस भी ऐसे गुणवाले पदार्थों के लिए साधारण अर्थ में प्रयुक्त होता है। गैस का अर्थ जहरीली या बदबूदार या किसी प्रकार की विलक्षण हवा नहीं लेना चाहिए।

उड़ने वाले, या वायव्य रूप के पदार्थों में अणु पूर्ण रूप से स्वतंत्र होते हैं। वे हलचल की दशा में होते हैं मानो बेघर के हों। दूसरे अणुओं से वे अधिक मेल-जोल नहीं बढ़ाते इस कारण वायत्व पदार्थों में भारी या सहज ही गति देखी जाती है। इसके विपरीत तरल पदार्थों में अणु एक दूसरे के निकट खिंचे होते हैं किन्तु उनकी स्थिति स्थिर नहीं होती। वे दूसरे अणुओं के ऊपर नीचे, आगे पीछे, अगल-बगल लुढ़कते-पुढ़कते रहते हैं। इनका परस्पर का बंधन या खिंचाव ढीला होता है। यही कारण है कि जब हम किसी डेकची में पानी गरम करते हैं तो उबाल आने पर पानी के अणु पृथक-पृथक हो भाग निकलने लगते हैं। इन सबके विपरीत ठोस पदार्थों में उसके अणु दृढ़तापूर्वक एक दूसरे की ओर खिंचे रहते हैं। कड़े पदार्थों में हमें ये कण बहुत अधिक दृढ़ता से जकड़े मालूम पड़ेंगे किन्तु ऐसे पदार्थों को भी सर्वथा ठोस बनावट का मानना भूल है। ठोस हमारे देखने में वे अवश्य हैं किन्तु एक वैज्ञानिक की दृष्टि में वे मधुमक्खी के छत्ते के सदृश छिद्रों से भरे पड़े हैं जो अणुओं के अंतराल बीच के खाली स्थानों के कारण बने हैं। इसका दृढ़, सुगम प्रमाण दिया जा सकता है। यदि हम एक विशुद्ध सोने की डली लें और उसे एक पात्र में रक्खे पारा में डुबोएँ तो पारा सोने की डली में उसके भीतर अणुओं के अंतराल अर्थात उनके मध्य के खाली स्थान से बने समस्त छिद्रों में भर जायगा। इस प्रकार सोने ऐसा ठोस पदाथ भी वास्तव में छिद्रमय छत्ता रूप है। यदि हमारे पास कोई जादू का शीशा होता तो हम देख सकते कि ठोस पदार्थों के बनाने वाले अणु भी उनके अंदर दीवाल की ईंटों को तरह एक दूसरे से सर्वथा चिपके हुए नहीं हैं बल्कि वहाँ भी वे

प्रचंड वेग में हैं और उनके अंदर कंपन और गति दिखाई पड़ती है और वे वेगपूर्वक इधर-उधर चक्कर लगाते रहते हैं, किन्तु वे एक निश्चित स्थान से अधिक दूर नहीं जा सकते। ठोस पदार्थ के अणुओं की सघनता इसमें बाधक होती है।

पदार्थ कितना भी ठोस दिखाई पड़ता हो, उसका कोई भी अणु दूसरे अणु को स्पर्श भी नहीं करता। वे अत्यंत प्रचंड वेग से लट्टू की भाँति पृथक-पृथक घोर नृत्य करते रहते हैं। इन अणुओं को बिजली का आकर्षण एक दूसरे की ओर खींचता है किन्तु पृथक-पृथक नृत्य करने के कारण उनकी तीव्र गति एक दूसरे से चिपक जाने से रोके रहती है। सृष्टि में यही क्रिया हमको ग्रहों, उपग्रहों वा सूर्य और उसके चारों ओर तीव्र गति से परिक्रमा करने वाले पृथ्वी मंगल, बुध, गुरु आदि ग्रहों के मध्य दिखाई पड़ती है जो स्वयं प्रचंड वेग से घुमरी या चक्कर खाते हुए आकाश में ठहरे रहते हैं और आकाश के मध्य जो आकर्षण सूत्र उन्हें अपने मंडल के सूर्य की ओर वा परस्पर एक दूसरे की ओर खींचता है उससे एक दूसरे के निकट खिंच जाने से बचाने वाली शक्ति उनकी अपनी कीली पर की नृत्य क्रिया होती है। इस प्रकार सृष्टि में जहाँ आकाश पिंडों की घोर नित्य क्रिया विश्व का रूप और उनकी स्थिति वा सृष्टि की व्यवस्था स्थापित रखने का आधार है उसी प्रकार सृष्टि के गर्भ में छोटे पैमाने पर नन्हें से नन्हें अणुओं को भी सृष्टि के वंश परम्परा की घोर नृत्य क्रिया में लिप्त होकर संसार की वस्तुओं का नाना रूप, आकार-प्रकार बनाते हम पाते हैं।

हम पूछ सकते हैं कि क्षुद्र अणुओं का परमाणुओं की प्रचंड गति और नृत्य क्रिया का क्या प्रमाण है? इसके सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि एक तो सृष्टि के शासन सूत्र को ठीक रूप में बैठाने के लिए संसार के विद्वानों और वैज्ञानिकों द्वारा अणुओं की इस क्रिया को मानने से सब बातें संगत बैठती हैं। दूसरे इसे मिथ्या सिद्ध करने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। तीसरे मोटे रूप से कुछ अप्रत्यक्ष प्रमाण भी मिलते हैं। यहाँ पर उदाहरण के लिए एक वैज्ञानिक के प्रयोग का उल्लेख किया जाता है।

एक वनस्पति विज्ञान के विद्वान वैज्ञानिक ने एक वनस्पति के भीतरी भाग का सूक्ष्म दर्शक यंत्र से परीक्षण करते हुए देखा कि उस पौधे के अंदर उसके रस में कुछ धब्बे सरीखे बिन्दु इधर-उधर भागते और कंपन करते दिखाई पड़ते हैं। फिर उसने एक शक्तिशाली सूक्ष्म दर्शक यंत्र से बड़े ध्यानपूर्वक निरीक्षण कर देखा कि वे दृश्य कण बड़े विकट रूप में हलचल की दशा में हैं और उनमें से प्रत्येक इस प्रकार धक्के खाकर इधर-उधर फिंके जाते हैं, मानो कोई मदारी ५, ७ गोलों को एक साथ जल्दी-जल्दी दोनों हाथों से पकड़ता और फेंकता है और उनकी यह गति चारों दिशा में प्रति सेकंड सहस्रों बार होती प्रतीत होती थी। ऐसी गति सदा होती रहती और कोई भी कण कभी शान्त नहीं रहता। इस घोल में दृश्य कणों पर उस पौधे के इनके अणुओं का पल पल सहस्रों बार टक्कर और प्रहार हो रहा था जिस कारण वे दृश्य कण इतने क्षुब्ध और हलचलमय दिखाई पड़ते थे। रस के अणुओं को सूक्ष्मदर्शक यंत्र में देखने में समर्थ न होकर भी हम उसमें लटके हुए दूसरे दृश्य कणों की गतिविधि और चंचलता देखकर रस के अणुओं की तीव्र गति और चंचलता का प्रमाण पाते हैं। यह वैज्ञानिक ब्राउन नाम से प्रसिद्ध है और उसकी खोज उसके नाम से पुकारी जाती है।

ऐसा ही प्रयोग साधारण रूप में दूसरे प्रकार से करना हमारे लिए सुगम है। एक शीशे के ग्लास में पानी भर लीजिये और ऊपर थोड़ा खाली रहने दीजिए। ग्लास को समतल भूमि पर रख कर पानी को बिलकुल स्थिर हो जाने दें। फिर उस में थोड़ी मात्रा में रंगीन मद्य (अलकोहल) इस प्रकार डालिए कि पानी तनिक भी हिलने न पावे। इसे एक पतली नली से बहुत धीरे धीरे डालिए ताकि मद्य पानी को क्षुब्ध किये बिना ही उसके ऊपर बैठ जाय। स्मरण रहे कि मद्य पानी से हल्का है और पानी को छेड़ा भी नहीं गया है अतएव उसे पानी के ऊपर पड़ा रहना चाहिये। कुछ घंटे रंगीन मद्य और पानी को ग्लास में यों हीं पड़ा रहने दीजिए। कुछ घंटे बाद ध्यान से देखने से ज्ञात होगा कि पानी

के कुछ भाग में रंगीन मद्य प्रविष्ट कर गया है। ऊपर तो शुद्ध रंगीन मद्य है और नीचे शुद्ध पानी किन्तु मध्य में पानी का कुछ भाग रंगीन मद्य से मिश्रित हो गया है। बात यह हुई है कि रंगीन मद्य के अणु अपने स्वाभाविक नाच क्रिया में लिप्त रहकर पानी के अणुओं के बीच घुस गए हैं और इसके विपरीत पानी के अणु अपनी नृत्य क्रिया जारी रख ऊपर रंगीन मद्य के अणुओं के मध्य जा पहुँचे हैं। यही बीच में मिश्रित घोल बनने का कारण है।

एक बात यहाँ पर विशेष रूप से ध्यान में रखने की है। रंगीन मद्य पानी की अपेक्षा हल्की वस्तु है अतएव उसके अणु पानी के अणुओं से हल्के होने से अपने बोझ के कारण नीचे नहीं पहुँच सकते। इसी प्रकार पानी के अणु भारी होने के कारण ऊपर नहीं चढ़ सकते। यही प्रयोग उल्टा किया गया होता और रंगीन मद्य नीचे रख कर ग्लास में पानी ऊपर से छोड़ा गया होता तो पानी के अणु मद्य के अणुओं से भारी होने के कारण नीचे जाकर बैठते परन्तु ऐसा नहीं हुआ। स्पष्ट बात यह है कि सभी अणु सतत चंचल नृत्य-रत रहते हैं उसी कारण रंगीन मदिरा से ऊपर की ओर पानी में अणुओं को पहुँचा देखा जाता है और पानी में मद्य के अणुओं को नीचे पहुँचा देखते हैं। वास्तव में अणु अपनी स्वाभाविक गति, चंचलता और नृत्य के कारण नीचे ऊपर, दाएँ बाएँ कहीं भी सुगमतया जा सकते हैं। यह एक साधारण प्रयोग इतना सूक्ष्म और विचित्र रहस्यमय सत्य प्रकट कर रहा है।

अणुओं और पदार्थों के यथार्थ रूप को जानने के लिए हमें एक बात और जान लेनी चाहिए कि पदार्थों का वायव्य, तरल या ठोस रूप केवल उनके अणुओं की तीव्र या शिथिल नृत्य क्रिया और उनके दृढ़ वा निर्बल पारस्परिक आकर्षण पर निर्भर करता है। उनके आकर्षण वा नृत्य क्रिया को प्रभावित करने वाले कारण वायव्य को तरल वा ठोस या तरल वा ठोस को वायव्य वा किसी प्रकार एक रूप से दूसरे रूप में निश्चित रूप से कर सकते हैं। इनमें प्रधान कारण गर्मी है। यह बात अवश्य है कि अणुओं वा परमाणुओं की विशेष रचना के अनुसार कम या अधिक गर्मी उनके तीनों रूपों में से कोई रूप निर्धारित करती है। जिन पदार्थों को हम साधारणतया वायव्य रूप में देखते हैं उनके लिए भूतल पर साधारण रूप में मिलनेवाली गर्मी या तापक्रम वायव्य रखने के लिए पर्याप्त है। यदि यह तापक्रम साधारण से भी अधिक कम किया जा सके तो वे तरल वा उस से भी कम गर्मी की जाने पर ठोस रूप में बदले जा सकते हैं। यह बात दूसरी है कि हम उतनी कम गर्मी या तापक्रम साधारणतया वा कृत्रिम रूप से भी वैज्ञानिकों यंत्रों से उत्पन्न न कर सकें कि पर्याप्त मात्रा में उन्हें ठोस बनाया जा सके किन्तु इस सिद्धान्त को प्रयोगों द्वारा सत्य सिद्ध किया गया है। वैज्ञानिकों का कहना है कि भूमंडल को ताप प्रदान करनेवाला सूर्य यदि कभी तेज हीन हो जायँ और उसकी किरणें चन्द्रमा की तरह शीतल हो जाय तो पृथ्वी-तल का तापमान इतना नीचे हो जाय कि पृथ्वी पर का समस्त वायुमंडल जो सैकड़ों मील ऊपर तक व्याप्त पाया जाता है, तरल वायु के रूप परिवर्तित हो जाय जो ३५ फीट गहरा हो और भूतल के समस्त सागर, वनस्पति, जीव जन्तु तथा सब पदार्थ उसके नीचे हिम रूप में ठोस, निर्जीव बनकर उसके नीचे पड़े रहें। यह अवस्था कितनी भयंकर हो!

उसके विपरीत यदि भूतल का तापमान किसी रूप से सूर्य के तापमान सदृश किया जा सकता हो तो यहाँ पर पर्वत, स्थलखंड, दृढ़ सोने चाँदी, लोहे, ताँबें आदि के धातु कोष आदि समस्त पदार्थ, तरल ही नहीं बल्कि वायव्य रूप में दिखाई पड़ें। यह भी प्रलय का दूसरे प्रकार का रूप हो।

एक ही पदार्थ को वायव्य तरल और ठोस रूप में परिवर्तित होते हम स्वयं भी देख सकते हैं। पानी साधारण गर्मी में हमें पानी के रूप में नित्य काम आता है किन्तु ताप मान कम होने पर पर्वत की ऊँची चोटियों पर या शीत कटिबंध के देशों में धरातल पर भी पानी हिम रूप में परिवर्तित हो जाता है। नगरों में गर्मी की ऋतु में कृत्रिम रूप से ताप मान कम कर पानी को सादा या दूध और शक्कर मिश्रण कर सुस्वादु रूप में बर्फ की

डलियाँ तैयार की जाती हैं। ये कृत्रिम डलियाँ उसी समय तक अपना अस्तित्व ठानतीं हैं जब तक उन्हें बाहर की गर्मी से सुरक्षित कर विशेष ढंग के बन्द पात्रों में रक्खा गया होता है। बाहर उभते ही थोड़े समय में उनकी लीला समाप्त होने लगती है और साधारण रूप की गर्मी उन्हें बदल कर फिर तुरन्त ही पानी रूप में बदल देती है। यह पानी चूल्हे पर आग की गर्मी से या समुद्र या नदी या तालाबों में सूर्य के ताप से रूप में परिवर्तन होकर उड़ जाता है। यह हमारे जानने की बात है कि जल के अणु उसके तरल रूप रहने में जितना स्थान ग्रहण करते हैं वे ही कण वायव्य रूप में परिवर्तन हो कर भाप बनकर १६३० गुना अधिक स्थान ग्रहण कर लेते हैं।

जल के भाप रूप में हो कर गैस या वायव्य बनकर तुरन्त ही इतना स्थान ग्रहण करने में उसके अणुओं में में कितनी गति होती होगी इसका हम अनुमान लगा सकते हैं। यह अतिशयोक्ति नहीं बल्कि वैज्ञानिक सत्य है कि वायव्य रूप में बदलने वाले जल के अणुओं में का वेग प्रति सेकेंड ४ मील अर्थात् प्रति मिनट १५ मील होता है। इसी प्रकार हमारे चारों ओर फैली वायु के अणु भी हमारे चारों ओर लगभग प्रति ६०० गज के वेग से प्रति पल भगदड़ मचाए रहते हैं। इस प्रकार समस्त पदार्थों के अणु इतने प्रचंड वेग से दौड़ते, भागते और छलांग लगाते रहते हैं कि हम आश्चर्य कर सकते हैं किसी वस्तु की स्थिति किस प्रकार रहती होगी।

यदि हम इस चारों ओर की भीषण दौड़ उछल कूद और भगदड़ करने वाले अणुओं की अपरिमित संख्या का अनुमान करें तो उनकी गति का परिणाम मालूम हो। वास्तविक बात यह कि अणुओं में की अपार संख्या के कारण इतनी जमघट रहती है कि एक अणु एक दिशा में बढ़ते ही दूसरे अणु से तुरन्त टकरा जाता है। उससे पृथक होते देर नहीं लगती फिर दूसरे अणु से दूसरी तीसरी से तीसरी वा उन्हीं से कई वार टक्कर के बाद टक्कर का ताँता सा लगा रहता है। वास्तव में एक बार अणु की गति $\frac{१}{५०००००}$ इंच दूर भी नहीं होने पाती कि उसे टकरा जाना पड़ता है। इस प्रकार एक अणु को प्रति सेकंड ४००००००००० बार दूसरे अणुओं से टक्कर खानी पड़ती है। इसी कारण इतने वेग से आगे जाने वाले अणुओं की यात्रा दूसरे अणुओं से बार बार धक्के और टकराने की बाधा डाले जाने के कारण बहुत अधिक नहीं हो पाती।

---

# धातुओं की क्रिया-शीलता

लेखक—घनश्याम कृष्ण शुक्ल एम० एस सी०

*[ अपने पड़ोसियों से सतर्क रहिए ! धातुओं में अपनी-अपनी क्रिया-शक्ति का जौहर दिखाने की कैसी होड़ लगती है, इसका आंशिक ज्ञान प्रस्तुत लेख से मिल सकेगा। ]*

धातुओं के रासायनिक गुण उनकी क्रियाशीलता पर आधारित हैं। धातुओं की सापेक्षिक क्रियाशीलता ही साधारणतः उनकी रासायनिक प्रक्रिया को निर्धारित करती है। विद्युत् प्रकाश में अथवा धातुओं को विद्युत् धारा द्वारा वस्तुओं पर स्थित करने की रीति में जो भी कार्य होता है वह सम्पूर्णतः धातुओं की क्रियाशीलता पर आश्रित है।

इस बात का समुचित उदाहरण दुर्लभ नहीं है।

पोटेशियम या सोडियम धातुयें पानी पर साधारण रीति से रासायनिक प्रक्रिया प्रारम्भ कर देती हैं तथा इतनी तीव्र गति से हाइड्रोजन निकालतीं हैं कि अधिकांशतः गैस में आग लग जाती है। मैग्नेशियम का साधारण रीति से ठंढे पानी पर प्रभाव नहीं होता पर गरम होने पर हाइड्रोजन प्राप्त होती है। अल्यूमीनियम, लोहा, टिन आदि पानी से हाइड्रोजन नहीं देते परन्तु यही प्रक्रिया वे अम्लों से करते हैं। इनके अतिरिक्त ताँबा, चाँदी, प्लेटिनम, इत्यादि अम्लों से भी हाइड्रोजन नहीं निकालते।

रसायनज्ञों ने धातुओं का जिस सुगमता से वे रासायनिक प्रक्रिया में भाग लेते हैं, के अनुसार श्रेणी विभाजन किया है। तथा इस विभाजन को उसकी उपयोगिता के अनुसार क्रियाशीलता श्रेणी, विद्युत रसायनिक श्रेणी, स्थानापन्न श्रेणी प्रभृत नाम देते हैं।

क्रियाशीलता श्रेणी विभाजन

| धातु | क्रियाशीलता विवरण |
|---|---|
| पोटेशियम<br>सोडियम<br>कैलशियम<br>मैग्नेशियम<br>अल्यूमीनियम<br>जस्ता<br>क्रोमियम<br>लोहा<br>निकल<br>टिन | हाइड्रोजन से अधिक क्रियाशील |
| सीसा<br>हाइडोजन | स्थानापन्न प्रक्रिया में धातुओं के अत्याधिक अनुरूप क्रियाशीलता नियंत्रक की भांति उपयुक्त |
| तांबा<br>पारा<br>चाँदी<br>प्लेटिनम<br>सोना | हाइड्रोजन से कम क्रियाशील |

पोटेशियम सबसे अधिक क्रियाशील होने के कारण श्रेणी के ऊपर स्थित है। सोना अपेक्षाकृत सब से अधिक निष्क्रिय होने के कारण सबसे नीचे है। पंक्ति में हाइड्रोजन से ऊपर के धातु हाइड्रोजन से अधिक क्रियाशील हैं अतः हाइड्रोक्लोरिक या गन्धकाम्ल से हाइड्रोजन को स्थानान्तरित कर सकते हैं। इसी के अनुसार जो धातु हाइड्रोजन के नीचे हैं वे अम्लों में से हाइड्रोजन को स्थानान्तरित नहीं कर सकते।

क्रियाशीलता का परिचय धातुओं की अम्लों से प्रक्रिया से भी देखा जा सकता है। ताँबे, लोहे, अल्यूमीनियम और जस्ते पर हाइड्रोक्लोरिक ऐसिड छोड़ने पर इनकी क्रियात्मकता इन धातुओं के हाइड्रोजन निकलने की तीव्रता से देखी जा सकती है। मैग्नेशियम द्वारा हाइड्रोजन निकालने की गति इतनी तीव्र हो जाती है कि अम्ल उबलने लगता है। जस्ते और लोहे में यह क्रमशः प्रक्रिया मंद पड़ती जाती है। ताँबे का हल्के अम्ल पर लगभग कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इसके अतिरिक्त क्रियाशीलता के अनुसार ही एक धातु दूसरे धातुओं को उसके रासायनिक यौगिक में स्थानान्तरित करती है। यदि कापरसल्फेट के घोल में जस्ता छोड़ा जाय तो कापर सल्फेट का नीला रंग स्वच्छ हो जाता है क्यों कि घोल में ताँबे के स्थान को जस्ता ग्रहण कर लेता है और इस भाँति जिन्क-सल्फेट का घोल बनता है जो अवर्णयुक्त होता है। ताँबा घोल के नीचे धातु रूप में एक हो जाता है।

धातुओं की क्रियात्मकता का उपयोग एक धातु पर दूसरे को स्थित करने में होता है। लोहे पर ताँबे की पतली तह उसे कापर सल्फेट के अम्लीय घोल में रखने से प्राप्त होती है इस विधि से केवल एक पतली तह ही प्राप्त की जा सकती है क्योंकि अधिक देर तक घोल में रखने से नियमित रूप से ताँबा लोहे पर स्थापित होने लगता है जो टूट कर गिर जाता है। अल्यूमीनियम के बरतन में लौहयुक्त भोज्य पदार्थ पकाने से काले पड़ने लगते हैं क्योंकि अल्यूमीनियम पर भोजन का लौह अंश काले रूप में अवस्थित हो जाता है। उसे बिना प्रयास ही अम्लीय भोजन जैसे टमाटर इत्यादि पकाने से हटाया जा सकता है और साथ ही लौह का पौष्टिक रूप भी पुनः भोज्य रूप में प्राप्त किया जा सकता है।

धातुओं की विभिन्न क्रियात्मकता को एक दूसरी विधि से भी व्यक्त कर सकते हैं। धातुओं की क्रियात्मकता उनकी विद्युतीय कण ( ions ) अथवा इलेक्ट्रान देने की शक्ति पर आश्रित है। क्रियाशीलता श्रेणी में ऊपर स्थित धातु इलेक्ट्रान नीचे स्थित धतुओं की अपेक्षा अधिक सुगमता से देते हैं। उनके इसी क्रियाशीलता के अन्तर से जब वे एक दूसरे का स्पर्श करते हैं तो विद्युतीय प्रक्रियायें होती हैं। यदि दो धातु जिनकी क्रियाशीलता विभिन्न हो किसी विद्युत वाहक घोल में डुबोये जाँय तथा ऊपर एक तार द्वारा जोड़ दिए जांय तो अधिक क्रियाशील धातु की तरफ से तार मे इलेक्ट्रान की धारा प्रवाहित होगी। फलस्वरूप तार में विद्युत का समावेश हो जायगा। जितनी ही अधिक इन धातुओं की क्रियाशीलता में भिन्नता होगी उतनी प्रबल विद्युत धारा प्रवाहित होगी। इसी के अनुसार यदि दो धातु स्पर्श करते हैं तो अधिक क्रियाशील धातु का क्षय अधिक होता है क्योंकि अधिक क्रियाशील धातु की तरफ से विद्युत धारा प्रवाहित होती है तथा इससे वह धातु जल्द घिसता है। उदाहरणार्थ यदि जस्ते और टिन पर लोहे का तार लपेटा जाय तथा हलके गन्धकाम्ल में अलग अलग दोनों को डुबाया जाय और थोड़ा पोटेशियम फेरीसायनाइड घोल छोड़ा जाय तो देखा जाता है कि टिन वाले टुकड़े का घोल बहुत जल्द गहरा नीला होता है। उसकी अपेक्षा जस्ते वाले में बहुत हल्का नीला रंग दिखाई देता है। टिन की अपेक्षा लोहा अधिक क्रियाशील होने के कारण गन्धकाम्ल में अधिक घुलता है और अतः पोटेशियम फेरोसायनाइड से रंग देता है। जस्ते वाले टुकड़े में जस्ता लोहे से अधिक घुलता है इस भाँति रंग बहुत हल्का रहता है।

चाँदी की वस्तुओं को साफ करने के लिए जो घोल तथा जादू के प्लेट अथवा बरतन मिलते हैं उनका भी सिद्धान्त यही होता है। इसके लिये अल्यूमीनियम का बरतन, सोडियम बाइकारबोनेट तथा सोडियम क्लोराइड के घोल ही आवश्यक वस्तुये हैं। चांदी की वस्तुओं को अल्यूमीनियम पर इस भांति रखते हैं कि प्रत्येक वस्तु अल्यूमीनियम को स्पर्श करे तथा ऊपर सोडियम बाइ-कारबोनेट और सोडियम क्लोराइड का घोल छोड़ा जाता है विद्युतीय क्रिया अल्यूमीनियम और चाँदी [में स्पर्श से होती है और] पर जमा हुआ सिल्वर सल्फाइड घुल जाता है। इस भाँति वस्तु में साफ चाँदी हो जाती हैं और चमकने लगती हैं।

---

# लवण-उत्पादक

लेखिका—श्रीमती डा० राधा पन्त, एम० एस सी०, पी० एच डी०

*[ प्रस्तुत लेख लवण-वर्ग के परिचय के रूप में लिखा गया है, वर्णन को मनोरंजक बनाकर वैज्ञानिक ज्ञान को कुछ सरल ढंग से समझाने का इसमें अच्छा प्रयास है। ]*

श्रीमान् हैलोजन शोले स्मारक अस्पताल के प्रतीक्षालय में बहुत व्यग्र एवं उत्सुक टहल रहे थे। उन्हें टहलते-टहलते काफी समय हो गया था। परेशानी बढ़ती जा रही थी। न मालुम क्यों इस तरह वे प्रतीक्षा करने को बाध्य किये जा रहे थे जब कि उनकी स्वयं स्त्री ही अस्पताल में बीमार पड़ी है। उनकी समझ में कुछ भी नहीं आता था। वे सोचते थे कि क्या नवजात शिशु उनका नहीं जब कि अभी तक उन्हें सूचित भी नहीं किया गया। उनका विश्वास था कि नवजात अवश्य ही पुत्र होगा।

इतने में ही एक नर्स ने आकर उनकी व्यग्रता को कम करते हुये उनसे कहा—बधाइयां श्रीमान् हैलोजन ! कोटिशः बधाइयाँ ! डाक्टर के आज्ञानुसार अब आप श्रीमती हैलोजन तथा अपने नवजात शिशु के पास जा सकते हैं।

श्रीमान् हैलोजन ने शीघ्र ही पूछा—वे कैसी हैं ? शिशु की समानता माँ से अधिक है या मुझसे ?"

नर्स ने उत्तर दिया—श्रीमती जी स्वस्थ हैं पुत्री का जन्म हुआ है। अच्छा होगा यदि आप स्वयं जाकर उन्हें देख लें। जहाँ तक मेरा ध्यान है बच्ची की समानता तो आपसे अधिक नहीं है, पर सौन्दर्य में वह अद्वितीय है।

पुत्री के जन्म की सूचना ने कुछ क्षण के लिए श्रीमान् जी को दुखित अवश्य कर दिया था। परन्तु दूसरे क्षण उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर कमरे में प्रवेश किया।

श्रीमती जी ने मुस्कराते हुए अपना दुर्बल हाथ आगे बढ़ाया। श्रीमान् जी ने प्रेम से उसे लेकर शिशु की ओर देखा। उनका चेहरा प्रसन्नता से दमक उठा। इस खुशी में वे प्रतीक्षा की परेशानी आदि सब भूल गए। श्रीमती जी बोलीं—प्रिय ! यह कितनी प्यारी है। हमें इसका एक सुन्दर सा नाम ढूंढ़ना है। क्या नाम रक्खा जाय ?

श्रीमान् जी बड़े पशोपेश में पड़ गए। वे लगे अपना सिर खुजुआने। अचानक वे बोल उठे—"ठीक है। मेरी माँ का नाम क्लो था और तुम्हारी माँ का रीन। क्यों न इसका नाम क्लोरीन रक्खा जाय।"

इस प्रकार क्लोरीन का जन्म हुआ। वह बढ़ कर एक अत्यन्त सुन्दर महिला हुई। स्वर्ण वर्ण के बाल तथा उसके सुशील स्वभाव उसकी कीर्ति को और बढ़ा रहे थे। जो भी उसके सम्मुख आता मित्र बन जाता था। परन्तु उसका प्रिय मित्र पड़ोसी सोडियम था। जो सदैव ही क्लोरीन के साथ रहता। सोडियम का स्वभाव बड़ा ही उग्र था। अपनी माँ को परेशान करने से वह बाज न आता था। जब जब उसकी माँ उसे नहलाने के लिए पानी के टप में डालती, वह चीख कर रोता। वह स्नान से बहुत घृणा करता था। परन्तु जब वह शांत एवं सुशील क्लोरीन के पास होता तो सज्जनता का परिचय देने में कभी न चूकता।

कुछ वर्ष पश्चात् एक दिन श्रीमती हैलोजन पुनः बीमार पड़ीं। डाक्टर कुर्लवा शीघ्र ही बुलाये गये। इस बार उन्होने आइडीन को जन्म दिया। क्लोरीन अपनी बहन के जन्म से खूब प्रसन्न हुई। उसने आइडीन को घुटनों के बल चलना तथा खेलना सिखाया आयडीन बढ़ कर अपनी बहन की भाँति एक सुन्दर युवती हुई परन्तु उसके बाल काले थे तथा आंखे बैजनी। वह बड़ी सीधी सादी तथा आकर्षक युवती थी। सोडियम सुन्दरता का पुजारी था अतएव उसने कुछ समय आयडीन के लिए भी निकाल लिया। वह क्लोरीन आयडीन दोनों के साथ रहने लगा।

बचपन से ही आयडीन में बीमारों के लिए दया तथा सद्भावना थी। वह सदैव बीमारों के घाव आदि भरने में तत्पर रहती थी।

एक दिन क्लोरीन, आयडीन, सोडियम, पोटैशियम तथा कैल्शियम आदि सब बच्चे बाग में आपस में खेल रहे थे। इतने में श्रीमान हैलोजन चिल्लाते हुए बाहर आये, बच्चों दौड़ो, देखो ! डाक्टर बलार्ड क्या लाये हैं। वे सब खुशी से उछलते हुए घर में आये और पालने में एक नवजात बालिका को देखकर आश्चर्य में आ गए। बालिका अपने हाथ पैर जोरों से चला रही थी और काफी शोर मचा रही थी। क्लोरीन और आयडीन प्रसन्नता के मारे नाच उठीं और कुछ सोच कर माँ के पास दौड़ी गई—"माँ ! माँ ! हम तो इसका नाम मुराइड रक्खेंगें।"

श्रीमती हैलोजन बोलीं—ऊँ हुँ। इसका नाम ब्रोमीन रक्खा जायगा। यह नाम उससे मधुर है। क्यों, तुम्हारा क्या विचार है बच्चों ?

"अच्छा ! अच्छा ! इस बार तुम्हारे कहने पर ही सही। पर अगले बार हम अपनी बहन का नाम फ्लोरीन रक्खेगें।"

समय चक्र शनैः शनैः चलता गया। परन्तु हैलोजन कुटुम्ब में किसी बालक का जन्म न हुआ। ऐसी अवस्था में सब बहनों ने एक व्यापार करने का सोचा। क्यों न वे

"लवण उत्पादक" बन जायं? अतएव उन्होंने इस व्यापार को आरम्भ किया और उनके लवणों का नाम हैलाइडस अथवा हैलाइड साल्ट्स पड़ा। शीघ्र ही व्यापार ने उन्हें मालामाल बना दिया।

हैलोजन बहनें अपना साधारण जीवन व्यतीत करने लगीं, कभी काम करतीं तो कभी खेलतीं। अत्यन्त आकर्षक होने के नाते उन्होंने अपने मित्रों की संख्या काफी बढ़ा ली थी।

ग्रीष्म ऋतु की सुहावनी चाँदनी रात्रि थी, आकाश में तारे चमक रहे थे। सोडियम क्लोरीन के साथ सैर को निकला। चलते-चलते वे एक पहाड़ के ऊपर चढ़ कर एक स्थान पर प्रकृति के सौंदर्य का आनन्द लेने के लिए बैठ गए। कैसा मनोहर दृश्य है! नीचे पहाड़ की दीवाल पर समुद्र की चंचल लहरें बार-बार टकराती और शोर करती थीं।

चन्द्रमा की श्वेत चाँदनी क्लोरीन के बालों की शोभा और ही बढ़ा रही थी। उसकी सुन्दरता ने सोडियम को बहुत प्रभावित किया। वह क्लोरीन का हाथ अपने में लेता हुआ बोला—क्लोरीन! मैं तुम्हें बहुत चाहता हूँ! विश्वास रक्खो मैं सदैव तुम्हें प्रसन्न रखने की चेष्टा करूँगा। क्या मुझसे शादी करोगी। हम लोगों में कितनी समानता है। हम कैसे अलग रह सकते हैं।

क्लोरीन कुछ क्षण के लिए मौन रही तत्पश्चात् बोली—प्रिय सोडियम मैं क्या कहूँ। जब मैं तुम्हारे पास होती हूँ तो मुझे उसी तरह प्रसन्नता होती है जैसे पोटैशियम, कैल्सियम, आदि के पास। मेरे भाग्य में किसी एक के साथ नवीन जीवन व्यतीत करना लिखा ही नहीं। मुझे स्वच्छंदता में आनन्द है। क्या हर्ज है कि हम तुम उसी तरह रहें जैसे रहते हैं?

सोडियम उदास हो गया और बोला—ठीक है। ऐसा ही रहने दो जैसा तुम चाहो। परन्तु याद रक्खो जब कभी तुम चाहो मेरे साथ जीवन व्यतीत कर सकती हो।

सोडियम हतोत्साह हो गया। उसने और हैलोजन बहनों से भी एक के बाद एक से बातें की पर उनकी भी राय वही थी जो पहली की। यद्यपि सभी बहनें सुन्दर एवं शीघ्र ही प्रभावित हो जाने वाली थीं परन्तु वे पूर्ण स्वतंत्रता की प्रेमी थीं।

क्लोरीन रंगीन कपड़े, पुष्प, पत्तियाँ आदि के साथ घंटों व्यतीत करती और उनके रंग को उड़ा देती थी। ब्रोमीन समुद्र तैरती और समुद्री पौधों के साथ विचरण करती फिरती। आयोडीन बीमारों की सहायता करती और उनके घावों को भरती। क्लोरीन लोगों को परेशान करती फिरती थी। वे सब अन्त में प्रसिद्ध "लवण उत्पादक" बन कर आनन्द पूर्वक रहने लगीं।

( कुमारी शान्ति श्रीवास्तव द्वारा अनूदित )

# मेरा बचपन—मानव

लेखक—श्री उमेशचन्द्र सक्सेना

*[वैज्ञानिक खोजों के आधार पर मानव-सृष्टि का यह अवैज्ञानिक सा वर्णन हमारे बाल-संसार के पाठकों को मनोरंजक लग सके, तो प्रयोग कुछ सफल माना जायगा]*

मेरा नाम मानव है। मैं ईश्वर की सृष्टि का सब से महान प्राणी हूँ। इस समय मेरी महत्ता से कौन परिचित नहीं? मैंने प्रकृति को भी वश में कर लिया है। हवा, बिजली, पानी तक मेरी चाकरी करते हैं, बेचारे पशुओं के तो नकेल डाल रक्खी है। मशीनें मेरे इशारे पर नाचने लगती हैं। बचपन से ही मैं बहुत साहसी था। मेरे चाचा बन्दर, गोरिल्ला आदि पेंड़ पर चढ़े-चढ़े मेरी बहादुरी देखा करते और दाँतों तले उँगली दबा लेते थे।

मेरे बचपन से लोग बहुत कम परिचित हैं। वैज्ञानिक

और इतिहासकार बराबर खोज कर रहे हैं किन्तु पूरी तौर पर कुछ नहीं जानते। मैंने अपने जीवन में इतना काम किया है कि स्वयं मैं सब कुछ याद नहीं रख सका। जब मैंने पढ़ना लिखना सीख लिया था तब कभी-कभी मैं डायरी भर लेता था किन्तु उसके कुछेक पृष्ठ ही हैं बाकी नष्ट हो गये। यहाँ पर अपने शिशुकाल की कहानी सुनाता हूँ, जब मुझे चलना सीखे अधिक समय नहीं हुआ था और ठीक ठीक बोलना भी नहीं आता था।

मेरा जन्म आज से लगभग ५२ सहस्र वर्ष पहले हुआ था। पिता आदि की मुझे बिल्कुल याद नहीं। हिन्दू मुझे मनु की सन्तान बताते हैं और ईसाई कहते हैं तुम्हारे बाप आदम थे। वैज्ञानिकों ने मेरा शजरा (वंशावली) इस प्रकार तैयार किया है :—
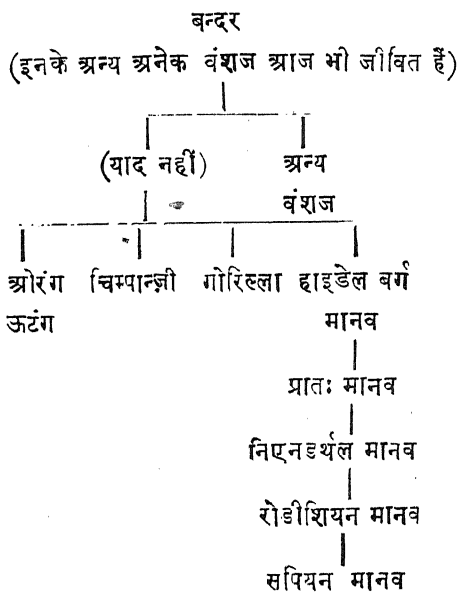
मेरा पूरा नाम सपियन मानव है। मानव मेरा वंश का नाम है जैसा कि ऊपर के शजरे से ज्ञात हो जावेगा। सपियन मेरा नाम है जिसका अर्थ है बुद्धिमान। मेरी तीव्र बुद्धि देख कर ही मेरा यह नाम पड़ा था। इतना तो मुझे याद है कि मेरा जन्म किसी पर्वत की एक सुन्दर गुफा में हुआ था। किस देश में हुआ, यह ज्ञात नहीं। भिन्न-भिन्न वैज्ञानिकों के भिन्न-भिन्न मत हैं, कुछ भारत की शिवालिक पहाड़ियाँ बताते हैं कुछ जावा, कुछ मिश्र, कुछ तिब्बत कहते हैं।

मैं बच्चा था तो धातु का प्रयोग नहीं जानता था, अतः पत्थर के ही हथियारों से शिकार खेलता था, जिसका मुझे अत्यधिक शौक था। उस समय अन्न नहीं होता था अतः मैं केवल गोश्त और फल खाता था। मेरे उन पत्थर के हथियारों से सारे जङ्गल में आतङ्क छाया रहता था। बनराज शेर जब दहाड़ता था, सब पशु पक्षी भयभीत हो जाते थे, बन्दर दादा वृक्षों पर भाग छिपते थे, किन्तु मैं अकेला डटा रहता था और उन्हीं पत्थर के हथियारों से उसका कचूमड़ निकाल डालता था। महाराज (मैमथ) और भयंकर ऊनी गैंडा आदि प्रलयकारी जीव जब वृक्ष रौंधते आ पहुँचते थे तब छोटे-छोटे जीव जन्तुओं की रक्षा मैं इन पत्थर के हथियारों और चातुरी के बल पर करता था। इन छोटे-छोटे अस्त्र शस्त्रों की लिये निर्भीकता पूर्वक मैं घूमा करता था। दुखदाई चीतों और भेड़ियों को पाल कर मैंने बिल्ली व कुत्ता बना डाला था। जब मैं शिकार को रवाना होता था तो वे मेरे पैर चाटा करते थे।

एक घटना याद आ रही है, शायद तब मैं फ्रांस में था। मैंने एक बहुत बड़ा गड्ढा खोदा और उसे घास फूस से ऐसा ढंक दिया कि मैदान मालूम पड़े। फिर आग जला कर आखेट प्रारम्भ हुआ। उस आखेट में सहस्रों घोड़े गधे व हाथी काम आए। इतनी अधिक संख्या में पशु थे और गड्ढा इतना गहरा था कि कुछ काल के लिये ऐसा प्रतीत हुआ मानो झरना झर रहा हो। उस आखेट के कारण मुझे व मेरे साथियों को महीनों भोजन को तलाश नहीं करनी पड़ी। आज यद्यपि वह गड्ढा पट चुका है फिर भी पशुओं की टूटी हड्डियाँ (जो ऊँचाई से गिरने के कारण टूट गई थीं) मिल जाती हैं।

२२ सहस्र वर्ष की आयु में मुझे मछली पकड़ने का शौक पैदा हुआ। मैंने एक हड्डी की कटिया बनाई और उसमें चारा लगा कर एक बांस में बाँधा, फिर तो मौज ही मौज थी। मछली मेरा बहुत प्रिय आहार बन गई।

मैं बहुत चतुर जीव था। इसीलिये अन्य जीव जन्तु-

ओं की अपेक्षा बहुत ठाट की जिन्दिगी बिताता था। बहुतेरे पशु पक्षी वृक्षों पर ही बैठे-बैठे रात काट देते थे किन्तु मैं गुफा में गर्म-गर्म खालें बिछाता और ओढ़ता था। अधिक ठंड में आग भी जला लेता था और अपना खाना अधिक तर भून कर ही खाता था।

गुफा के अन्दर मेरा बहुत ठाठ का जीवन था। हस्त कला से मुझे अत्याधिक प्रेम था। अपने शिकार की घटनाओं के रंग बिरंगे चित्र मै दीवालों पर जाया करता था, जो आज भी वर्तमान हैं और उन दिनों की याद दिलाते हैं। मिट्टी के सुन्दर बर्तन बना लेता था। जिनमें अपना खाना सुरक्षित रखता था। पत्थर व मिट्टी की मामूली मूर्त्तियाँ भी बना लेता था। अब मुझे नंगे रहने में शर्म मालूम होने लगी। अतः खालें पहना करता था। कुत्ते व घोड़े मेरे सब से बड़े मित्र थे।

ऐसा था मेरा बचपन। वह मेरे जीवन का पाषाण काल था। तब से हरेक क्षेत्र में मै उन्नति करता चला गया। क्रमशः नव पाषाण काल, ताम्र काल और लौह काल पार करने के पाश्चात् आज मेरे जीवन का परमाणु-युग है। अब मैंने सूक्ष्मतम पदार्थ पर विजय पा ली है और अब कुछ भी असाध्य नहीं। परमाणु शक्ति के सहारे सृष्टि की सबसे शक्ति शाली वस्तु को भी वश में कर सकता हूँ।

---

# आग बुझाने की वैज्ञानिक विधियाँ

( लेखक—डा० ट्रेवर आई० विलियम्स् )

*[आग लगने पर हानि घटाने वाली विधियों का पता लगाना, आधुनिक समाज की समान्य और आर्थिक भलाई के लिये, विज्ञान की एक एक अत्यधिक महत्वपूर्ण देन है। ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने अग्नि संकट कम करने के लिये क्या किया है, यही प्रस्तुत लेख का विषय है।]*

ब्रिटेन के यातायात सचिवालय ने हाल में एक समिति नियुक्त की है जो बन्दरगाहों पर खड़े जहाजों पर लगी आग को रोकने वाली विधियों का पता लगायेगी। इस समिति के कार्य को देखकर यह कहा जा सकता है कि ब्रिटेन अग्निसंकट से बचाव करनेवाली युक्तियाँ पता लगाने के लिये ठोस प्रयत्न कर रहा है।

द्वितीय महायुद्ध काल में लन्दन में हवाई हमले हुए, आगें लगी, जिनके कारण बचाव मार्ग ढूँढ़ने के लिये बाध्य होना पड़ा, इस कार्य के लिये खोज करनेवालों को प्रोत्साहित किया गया था। उन दिनों अभ्यासिक अध्ययन करने के लिये, विशेषज्ञों को असीमित अवसर प्राप्त था। छोटी-छोटी बातों पर ध्यान देने का लाभ यह हुआ कि अनेकों उपयोगी परिणाम सामने आ गये थे।

## तापक्रम परीक्षायें

भयंकर आग लगने के पश्चात् एक ध्वंस अथवा टूटी-फूटी इमारत की दीवारों के चूने-सिमेंट-रोड़ी वाले मसाले का रंग बदल जाता है—भूरी वस्तु गुलाबी रंग धारण कर लेती है—और परीक्षाओं से यह भी पता चला कि अग्नि तापक्रम की जाँच के लिये इस परिवर्तित रंग को प्रयुक्त किया जा सकता है। ऐसे सौ उदाहरणों में केवल एक-आध बार अपवाद पाया गया था। एक कार्यालय के जले हुए प्रथम तल्ले के एक कमरे की परीक्षा करने पर विशेषज्ञों ने बताया कि ऐसा मालूम देता है जैसे यह कमरा शीघ्र आग पकड़ने वाले सूती सामान के भरने का गोदाम रह चुका है। चूने को देखने से प्रचण्ड गरमी का हाल मालूम हो गया था, लेकिन

मालिक फिर भी यही कहता रहा कि वह कमरा सूती माल के गोदाम रूप में काम न लाकर केवल कार्यालय के तौरपर ही प्रयुक्त होता रहा है।

यह नवीन सिद्धान्त तब तक अभ्रान्त नहीं दिखा जब तक कि यह मालूम न हुआ कि मालिक लोग (व्यापारी) सड़क से लगे तल्ले को प्रथम तल्ला कहते हैं, और विशेषज्ञों के मतानुसार सड़क से ऊपर वाला तल्ला ही प्रथम खन माना जाना चाहिये। वास्तव में यह कमरा रूई से भरा होने के कारण भयंकर रूप से भभक उठा था।

## यथाक्रम अनुसन्धान

युद्ध ने अग्नि विशेषज्ञों को अनेक नवीन बातें सिखा दीं, इनके लिये संगठित प्रयत्न करने के सुझाव को बहुत महत्वपूर्ण समझा गया था। पहले बड़ी बीमा दफ्तरों की कमेटी के साथ-साथ काम करती थीं, जो लन्दन के निकट एक परीक्षा सम्बंधी प्रयोगशाला को निर्माण करने के लिये बनाई गई थी। लेकिन फिर भी अधिक विस्तृत और बिलकुल स्वतन्त्र युक्तियों का पता लगाना बाकी रह गया था।

दिसम्बर १९४६ में, पुरानी संस्था और विज्ञान-उद्योग अनुसन्धान विभाग ने मिलकर 'फायर प्रोटेक्शन असोसियेशन' को चालू कर दिया था। यह संस्था अग्नि बचाव सम्बंधी छानबीन—आग लगना रोकनेवाली विधियों में विकास, और किसी स्थान पर लगी आग को बुझाने—आदि का कार्य चलाती है, और इस विषय की सूचना अथवा अन्य आवश्यक बातों का बताना भी इस संस्था का कार्य है लेकिन यह तभी होता है जब कोई सरकारी विभाग या स्थानीय अधिकारी अथवा कोई प्राइवेट आदमी जानना-पूछना चाहता है।

इस संस्था के प्रधान अधिकारी श्री डब्ल्यू० एच० टकी हैं जिनके लन्दन स्थित कार्यालय की मेज पर एक विचित्र कागज दाब रखा रहता है जिसमें तेज रंगीन पानी की कई नन्हीं नन्हीं शीशियाँ लगी हुई हैं—एक कागज दाब से सारा हाल पता चल जाता है।

अनेक बड़ी इमारतों में बौछारक यंत्र लगे हुए हैं, जो आग लगने पर, तेजी से बढ़ते तापक्रम को रोकने के लिये एकदम खोल दिये जाते हैं। इनमें से कुछ बौछारक वल्वों का नियंत्रण पानी की छोटी-छोटी शीशियों द्वारा चलता रहता है, पानी का रंग यह प्रकट करता रहता कि वल्व कितने तापक्रम पर खोला गया है।

लेकिन सब से बड़ी कठिनाई यह है कि इनके बनाने वाले अलग-अलग होते हैं और वे इनमें रंग भी भिन्न-भिन्न कोडों (संकेतों) के प्रयुक्त करते रहे हैं। पुराने वल्व के स्थान पर नया वल्व बदलते समय केवल मिलते-जुलते रंग का (रंगीन पानी) ही ध्यान किया जाता है और इसी से गड़बड़ी पैदा होती रहती है, क्योंकि नये पुराने वल्व का तापक्रम भिन्न-भिन्न होता है। इस प्रकार एक बनाने वाले का लाल वल्व १५० डिग्री पर तो, दूसरे का ४०० डिग्री पर काम करता है। अलग-अलग रंगों की तापक्रम भिन्नता को आँकने में श्री टकी का कागजाब बहुत सफल सिद्ध होता है।

## इमारतों की प्रतिक्रिया

अग्नि सम्बन्धी से अग्नि-दबाव की एक महत्व-पूर्ण नवीन बात का भी पता चलता है। जिस समय सिल्पकार किसी इमारत का खाका उतार कर उसमें प्रयुक्त होने वाली विभिन्न सामग्रियों की मात्रा निर्धारित करता है तो साथ-साथ उसे यह भी जाचना चाहिए कि फर्निचर, आदमियों मशीनों और अन्य भारी चीजों का इमारती तल्ले पर कितना बोझा पड़ेगा, क्योंकि यथार्थ दबाव की फैलावट फैलाना जभी सम्भव होता है। ऐसे विवरण को पूरी तरह संग्रह किया जा चुका है, जो यह बता-समझा सके कि कौन सी सामग्री कब तक जलेगी और किस-किस सामग्री को इमारत में जमा करके रखना चाहिए।

इस विवरण द्वारा दो बातें ठीक से समझ में आ जाती हैं, एक तो यह कि आग लगने पर इमारत का रूप क्या बनेगा और दूसरी यह कि ऐसे नमूना की इमारतें तैयार की जाएँ जो आग की लपटों को आसानी से झेल सकें। इस्पात का खम्भा भी किसी कारखाने में

लगी भयंकर आग की लपटों से थोड़ी ही देर में ढेर हो जाता है। यदि इस्पाती खम्भे को सिमेंट-रोड़ी-चूना मिले मसाले की दो इंच मोटी तह से ढक दिया जाये तो वह खम्भा दो तीन घन्टों तक तेज गरमाई सहन कर लेगा।

इस संस्था का मुख्य कार्य निवास स्थानों को सुरक्षित बनाना है। आज कल एक ऐसे नमूने पर ध्यान दिया जा रहा है जो सीढ़ियों, सहनों और अन्य बचावस्थानों, मार्गों को कम से कम तीस मिनटों तक आग से बचा सकेगा।

---

# साँप का विषयन्त्र

लेखक—श्री रामेश वेदी आयुर्वेदालंकार

*[ कई असाध्य रोगों के लिए सर्प का विष भी औषधि के काम आता है, लोगों को यह ज्ञात कर आश्चर्य ही होगा कि सोने से आठ गुना महंगे भाव पर सर्प का विष बिकता है। सर्प के विषयन्त्र का प्रस्तुत लेख में मनोरंजक वर्णन पाठकों को मिलेगा। ]*

## सर्पशालाएँ

शोरगुल और मानवीय चहल पहल से दूर अपनी प्रयोगशाला की नीरवता में विभिन्न देशों के धैर्यवान् और साहसी वैज्ञानिक असाध्य रोगों की दवा ढूँढ़ निकालने के प्रयत्न में साँप और उस के घातक विष से विस्तृत खोजें और भयानक परीक्षण करने में लगे हुए हैं। ये लोग मानों मृत्यु और जीवन से खिलवाड़ कर रहे हैं। प्रकृति के गूढ़तम रहस्य निश्चय ही धीरे-धीरे अपने आप को प्रकाश में ला रहे हैं। खोजें इतने बड़े पैमाने पर हो रही हैं कि सर्पों की सदा बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिए दुनियाँ के प्रमुख नगरों में सर्पशालाएँ खुल गई हैं। पेरिस, न्यूयार्क, ब्राजील, पोर्टएलिज़ाबेथ, बम्बई, कलकत्ता और बैंगकाक आदि में विषैले साँप बड़ी संख्या में रखे जाते हैं। उन्हें आरामदेह स्थान दिया जाता है और उनकी अच्छी तरह परवरिश की जाती है। साँप सुख का जीवन बसर करते हैं। मृत्यु से सम्बन्धित अपने विशिष्ट अंग की आवश्यकता पड़ने पर सचेष्ट रखने के अतिरिक्त इनका वहाँ और कोई काम नहीं होता।

६

## विष दुहना—एक खतरनाक किन्तु मनोरंजक कार्य

आधुनिक सर्पशाला में विष निकालना एक मनोरंजक विधि है। निस्सन्देह यह बड़े खतरे का काम है। एक छड़ी की सहायता से साँप को अपने सुखप्रद घर में से बाहर फर्श पर फेंक दिया जाता है। कुंडलियों के समूह को सचेष्ट हो जाने के लिये यह इशारा होता है। अपने रक्षक के इस कठोर व्यवहार से क्रुद्ध होकर जीव आवेश में जोर से फुँकार उठता है। परन्तु वहाँ कौन परवाह करने वाला। और, दूसरी विरोध सूचक फुंकार निकलने से पूर्व ही एक चतुर हाथ मशीन की सी फुर्ती से गुदगुदे चिकने प्राणी के शरीर पर से फिसलता हुआ गरदन को मजबूती से दबोच लेता है। अब वह जमीन पर से ऊपर उठा लिया गया है। गरदन अब भी हाथ से जोर से मींची होती है। इसके बाद उस के मुख में शीशे का पात्र ( पेट्रि डिश ) डाला जाता है। मुख में पात्र के जाते ही साँप अपने डरावने दाँतों से उस पर गुस्से में काटता है। दंश का दबाव विष की थैलियों में से विष को बाहर निकाल फेंकता है। खोखले दाँतों में से होता हुआ विष पात्र में गिर जाता है। पहले प्रवाह

के बन्द होने पर रक्षक अपने हाथ को दबाता हुआ विष साँप के सिर की ओर ले जाता है। गौ के थनों को जिस प्रकार दुहा जाता है, उसी तरह वह बचे हुए विष को निचोड़ लेता है। सारा द्रव उगल दिया जाने पर कुछ बूदें ही बनता है।

अब इस परेशानी के लिए, जो प्राणी को थोड़ी देर के लिए उठानी पड़ी, उसे दूध या कुछ अंडे दिये जाते हैं और कभी-कभी इस भोजन में एक चूहा भी सम्मिलित कर लिया जाता है। भोजन द्रव हो तो शीशे की नली या पीक द्वारा उसके गले के नीचे उतार दिया जाता है। चूहा देना हो तो उसे साँप के साथ ही पिंजरे में फेंक दिया जाता है। इन क्रियाओं को कुछ ही मिनिट लगते हैं। फिर साँप कुछ क्षण पूर्व की आपबीती का भयानक स्वप्न लेने के लिए पिंजरे में वापिस फेंक दिया जाता है। अपनी प्रकृति को शान्त करने और पोटलियों को विष से भरने के लिए वह कुछ दिनों तक पड़ा रहता है जिससे एक बार फिर अपने अवांच्छनीय कार्य को सम्पन्न करने के लिए वह तैयार हो सके।

## जीवित पिचकारी

साँप के विष यन्त्र की हम इंजेक्शन देने की पिचकारी से तुलना कर सकते हैं। यह जीवित पिचकारी घातक विष का भंडार है। आक्रमण किये गये प्राणी के शरीर में साँप इस यन्त्र द्वारा अपना घातक द्रव पहुँचाता है। साँप किस तरह शरीर में विष उड़ेलता है इसे समझने के लिये यन्त्र को कार्य करते समय गौर करना चाहिए। पिस्टन से युक्त एक प्रणाली की कल्पना कीजिये। प्रणाली एक खोखली सुई के साथ संयुक्त है जिसकी नोक पर एक छिद्र है शरीर में उड़ेला जाने वाला पदार्थ पहले प्रणाली में इकट्ठा होता है। और यहाँ से सुई के छिद्र द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है। साँप अपने विष को ठीक इसी तरह फेंकता है।

## विषयन्त्र की रचना और कार्य।

ऊपर के जबड़े के दोनों ओर आँख के नीचे और पीछे विषस्रावी ग्रन्थियों का एक जोड़ा रहता है। दोनों ग्रन्थियाँ ऊर्ध्वहन्वस्थियों में लगे हुए विषैले दाँतों की प्रणाली के साथ सम्बन्धित ग्रन्थियां होती हैं। इन (जिन्हें विष की पोटलियाँ भी कहते हैं) में विष इकट्ठा रहता है। शंख प्रदेशों में (कनपटियों) में पैरोटिड ग्लेन्डस के साथ स्थित ये ग्रन्थियाँ काटने की प्रक्रिया में कार्य करती हैं। इनके ऊपर सुलगी हुई कनपटियों की मांसपेशियाँ इनके कार्य को नियन्त्रित करती हैं। इस प्रकार ये पिस्टन का स्थान ले लेती हैं। जिस समय साँप काटता है ये मांसपेशियाँ दबती है, ग्रन्थियों को निचोड़ती हैं और तुरन्त ही इन में विद्यमान विष ग्रन्थियों के साथ लगे हुए खोखले दाँतों में वेग से पहुँचा दिया जाता है। पोटली की प्रणाली और दाँतों के खोखले में से गुजरता हुआ विष दाँत के सिरे पर विद्यमान छिद्र पर पहुँचता है और अन्त में घाव के अन्दर चला जाता है। सांप के काटने की बस यही प्रक्रिया है। यह व्यवस्था कितनी सरल है, पर इसका परिणाम है भयानक विपदा। साँप के विकास की प्रत्येक अवस्था में यह विषयन्त्र उपस्थित रहता है।

## विष की पोटलियाँ पेट में

मलय प्रदेश में मिलने वाले दो सांपों में विष की पोटलियां दूसरे सांपों से भिन्न प्रकार की होती हैं। इनमें से एक सफेद धारियों वाला और दूसरा पटियों वाला मूँगिया सांप है। कनपटी में स्थित होने के बजाय इन सांपों में पोटलियां दोनों पार्श्वों में इनके शरीर की लम्बाई के एक तिहाई तक पहुँच जाती हैं। सिर से नीचे की ओर जाती हुई ये ग्रन्थियां क्रमशः मोटी होती जाती हैं और हृदय के सामने मोटे सिरे में समाप्त हो जाती हैं। इन ग्रन्थियों के विस्तार के कारण इन सांपों में हृदय दूसरे साँपों की अपेक्षा अधिक पीछे होता है। शरीर के दूसरे तिहाई हिस्से में हृदय प्रदेश अपेक्षाकृत मोटा होता है जो इन ग्रन्थियों की उपस्थिति को सूचित करता है और इस प्रकार पेट को बिना चीरे ही विष की पोटलियों को अनुभव किया जा सकता है। ये साँप जानते हैं कि इनकी विष ग्रन्थियां पेट में हैं। जब ये काटते हैं तो शत्रु के चारों ओर ज़ोर से लिपट जाते हैं जिससे विष की थैलियों पर दबाव पड़ कर विष बाहर फेंका जाय।

## विष का स्वरूप

सांप का विष हलके पीले रंग का स्वच्छ पारदर्शक लेसदार द्रव होता है। फनियर के विष का रंग सरसों के तेल जैसा होता है। शेषनाग का विष अधिक पीले रंग का होता है। प्रत्येक सांप का विष गिलसरीन या मुख की लार की तरह सर्वथा नीरंग भी हो सकता है। अधिकतर विष ऐसे होते हैं जिनमें न कोई स्वाद होता है और न गन्ध। कुछ अन्वेषकों के मत में अनुवीक्षक 'माईक्रोस्कोप' में देखने से ताजे विष में एपिथेलियमा कुछ कोष्ट और कुछ जीवाणु, जो वास्तव में गति में होते हैं, नज़र आते हैं। इसमें तीस प्रतिशतक ठोस पदार्थ होते हैं, परन्तु यह घनता की अवस्थानुसार भिन्न-भिन्न होता है। पानी जैसा पतला और अंडे की सफेदी के समान गाढ़ा भी विष होता है। हवा में पड़ा रहने से सूख जाता है और इसके स्फटिक या कीकर के गोंद की तरह पपड़ियाँ बन जाती हैं। सूखे विष में ताजे विष के ताजे सब गुण विद्यमान रहते हैं। ठीक तरह रखा जाय तो सूखा विष कभी खराब नहीं होता। पानी में यह जल्दी घुल जाता है।

## सोने से आठ गुना मँहगा

सर्प-विष दो रूपों में बाजार में बिकता है। सूखा और द्रव। सूखा विष चूर्ण रूप में होता है और इसका भाव बम्बई की हाफकिन इंस्टिच्यूट में पचास रूपये प्रति ग्राम है। एक ग्राम प्रायः एक माशे के बराबर होता है। इस लिए एक रत्ती का मूल्य करीब सवा छः रूपये और तोले का लगभग छह सौ रूपये बैठता है। सोने का भाव इतना चढ़ जाने पर भी उसकी तुलना में सांप का विष आठ नौ गुना मँहगा बिक रहा है।

---

# भारतीय दर्शन और आधुनिक विज्ञान

लेखक—श्री जगद्बिहारी सेठ

*[ वर्तमान विज्ञान की आधार-शिला प्राचीन भारतीय चिन्तन किस सीमा तक हो सकता है, इसका परिचय प्रस्तुत लेख में मिलेगा। लेख विचार पूर्ण है ]*

भारतवर्ष के प्राचीन महर्षियों ने छः दर्शनों की रचना की था। इनमें से एक है कणादकृत वैशेषिक दर्शन जो पदार्थ विज्ञा के ऊपर है। इसमें पदार्थों का विचार तथा द्रव्यों का निरूपण किया गया है। वैशेषिक से द्रव्य नौ कहेगये हैं। वे हैं—पृथ्वी, जल, वायु, तेज, आकाश, काल, दिक्, मन और आत्मा (पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि।)। इन नव द्रव्यों की विशेषता बताने के कारण ही इस दर्शनांग का नाम वैशेषिक पड़ा था। इन नव द्रव्यों में से केवल चार ही 'सावयव' याना जिस्मवाले माने गये थे, वे हैं—पृथ्वी, जल, वायु और तेज। ये चार द्रव्य उत्पत्तिवाले माने गये थे और इन्ही चार द्रव्यों—चतुस्तत्वों—के योग से सारी सृष्टि की रचना हुई समझी जाती है।

उपर्युक्त सन्दर्भ 'हिन्दी शब्दसागर' तथा आपटे और मोनियर विलियम्स के संस्कृत अंग्रेजी कोषों के कुछ शब्दों की व्याख्याओं के आधार पर अवलम्बित है। स्वयं वैशेषिक में इस बारे में क्या लिखा है और इन शब्दों के "वैशेषिक" अर्थ क्या हैं, इस का ज्ञान प्रस्तुत लेखक को नहीं; परन्तु उसकी समझ में, यह अवश्य कहा जा सकता है कि यदि इन नव द्रव्य-सूचक शब्दों के लोकप्रचलित अर्थों के स्थान पर भाव सूचक अर्थ लिये जायँ, तो इन्हीं नवद्रव्यों की पूरी-पूरी व्याख्या और सम्यक् अनुसन्धान में साटे-का-साटा आधुनिक विज्ञान अन्तर्गत हो जाता है। इन द्रव्यों को

अतएव, यदि 'विज्ञान सार, वह दें तो कोई अत्युक्ति न होगी।

आधुनिक पश्चिमी विज्ञान की नींव पड़ी थी यूरूप में, पन्द्रहवीं शताब्दी के कोई बीचोबीच। इससे भी लगभग १८०० वर्ष पूर्व, अर्थात् खृष्टाब्द-प्रारम्भ से कोई दो तीन सौ वर्ष पहले, यूनानी सभ्यता का उत्कृष्ट काल समझा जाता है, जबकि वह सभ्यता अपनी पराकाष्ठा पर थी और जब कि यूनान में बड़े बड़े विद्वान, विचारक, दार्शनिक और विज्ञानवेत्ता हुए। यूनानी सभ्यता की अवनति के बाद यूरुप में रोमन सभ्यता का उत्थान हुआ। रूमी, यद्यपि थे तो बड़े ही योद्धा और नीतिनिपुण, तथापि 'वैचारिक विज्ञान' में उनकी कोई विशेष रुचि न थी। हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि व्यावहारिक विज्ञान का उन्हें अवश्य खासा ज्ञान था, कारण कि उसके बिना कोई भी साम्राज्य या सभ्यता पराकाष्ठा पर नहीं पहुँच सकती।

इस प्रकार, यूनानी पराकाष्ठा के ह्रास के बाद यूरुप में विज्ञान के लिहाज़ से एक अन्धकार सा छा गया जिसे 'अंधकाल' या 'अंधयुग' कह सकते हैं। परन्तु अनेक कारणों के फलस्वरुप यूरुप में पन्द्रहवीं शताब्दी में एक बार फिर विविध कलाओं और उद्यगों का जोर हो उठा; और कह सकते हैं कि आजकल के ज्ञान-विज्ञान का उद्गम या जन्म भी इसी समय हुआ। इस समय को अंग्रेजी में कहते हैं—'दि रिनासां' अर्थात् नई जागृति या नवजीवन काल। इस समय में पुराने यूनानी ग्रन्थों की खोज की जाने लगी; उनका पुनरध्ययन और उनके अनुवाद आदि भी होने लगे। इसलिए यह भी कह सकते हैं कि आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की असली नींव है यूनान की प्राचीन विद्वता और प्रतिभा।

जान पड़ता है कि प्रस्तुत लेख के प्रारम्भ में दिये गए प्राचीन भारतीय आर्यों के वे विचार कोई दो ढाई हजार वर्ष हुए, यूनानी विद्वानों ने अपना लिये। यूनान के सुप्रसिद्ध ज्ञान-विज्ञान वेत्ता अरस्तू (अरिस्टाटल-Aristotle-खृष्टाब्दपूर्व ३८४-३२२) ने भी वही चतुस्तत्वोंवाला सिद्धान्त स्वीकार कर उसी की प्रसिद्धि की कि पृथ्वी, जल, वायु, और अग्नि ये ही चार मूल तत्व हैं और इन्हीं चारों से संसार के सारे पदार्थ बने। अरस्तू की 'अग्नि' और वैशेषिक का 'तेज' इन दोनों को एक ही समझना चाहिए। [ अरस्तु अलक्षेन्द्र महान् (अलेकजेण्डर दि ग्रेट) के गुरु थे—अलक्षेन्द्र ने ३२६ वि० पू० में भारतीय नरेश पोरस (राजा पुरु) पर विजय प्राप्त की थी। ]

इसमें कोई सन्देह नहीं कि अरस्तु और आर्यर्षियों का चतुस्तत्व सिद्धान्त यथाशब्द यानी अक्षरशः तो ठीक नहीं क्योंकि आधुनिक विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिखलाया है कि कुलजमा, केवल चार ही नहीं, लगभग नब्बे ऐसे पदार्थ हैं जो नितान्त 'विशुध्द' हैं, जिनमें कोई भी अन्य प्रकार के पदार्थ नहीं मिले हुए हैं और जिनको कि 'मूलतत्व' की पदव दी गयी है। इन्हीं ६० तत्वों के एक, दो या अधिकों के योग से अन्य सारे पदार्थ बने हुए हैं। 'मूल तत्व' की इस यथार्थ परिभाषा के अनुसार, पृथ्वी, जल और वायु 'तत्व' नहीं हैं। ये स्वयं उयुक्त ६० तत्वों के दो या इससे अधिक के योग के हैं—संयोग (Copound) अथवा समिश्रण (mixture)।

इस के अतिरिक्त आर्यर्षियों और अरस्तू के चतुस्तत्वों का चौथा द्रव्य—तेज या अग्नि— तत्वों में गिना ही नहीं जा सकता। वह पदार्थ नहीं, किन्तु ऐसी वस्तु है जिसे न तो देख सकते हैं, न छू सकते हैं, न उसका कोई बोझ होता है और न कोई रङ्ग-रूप। यह सब होते हुए भी उसके अस्तित्व से कोई भी सन्देह नहीं किया जा सकता। सदैव परोक्ष होते हुए भी, वह अपने कार्यों या फलों से अपने अस्तित्व को विविध रूपों में, नानाप्रकार से प्रत्यक्ष करता है।

पदार्थ भी अगोचर हो सकता है, जैसे वायु, या कोई अन्य बिना रङ्ग या गंध की गैस; परन्तु पदार्थ बोझ-हीन कदापि नहीं हो सकता। कितना ही हलका पदार्थ क्यों न हो, उपयुक्त प्रयोगों द्वारा उस का बोझलापन सिद्ध किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त

कोई पदार्थ कितना ही अगोचर क्यों न हो, वह ऐसी दशा में लाया जाता है कि उसे देख सकते हैं और छू भी सकते हैं। इन चतुस्तत्वों में केवल तेज ही एक ऐसा द्रव्य है जो सदैव, हर हालत में, अगोचर रहता है, केवल वह अपनी 'करतूतों' से ही अपने को प्रकट करता है। परन्तु अस्तित्व होते हुए भी उस का कोई बोझ नहीं।

इस चौथे "तत्व", तेज, से वास्तव में तो मतलब रहा होगा 'अग्नि' ही का, जैसा कि अरस्तू ने साफ-साफ कह दिया था। आग या जलना नित्य की बरतने वाली चीजों में सब से अनोखी चीज समझी जा सकती है। अग्नि में ताप अर्थात् गरमाहट और प्रकाश यानी रोशनी दोनों ही शामिल हैं। परन्तु ताप और प्रकाश का ज्ञान दो भिन्न-भिन्न इन्द्रियों द्वारा होता है, इसलिये उनको दो अलग-अलग चीजें रहने में किसी को कुछ एतराज नहीं होता। कह सकते हैं कि ताप और प्रकाश दो तरह के तेज हैं। परन्तु हमारे अनुभव में ताप और प्रकाश की तरह की और-और चीजें भी आती हैं, जैसे कि विद्युत्। विद्युत् से भी ताप निकलता है, प्रकाश भी; आवाज भी निकल सकती है; एवं अन्य प्रकार के असर भी हो सकते हैं। अतएव जैसे ताप और प्रकाश तेज के दो स्वरूप निकले थे, वैसे ही विद्युत् भी उसका एक तीसरा स्वरूप है। इसी प्रकार तेज के और भी रूप हो सकते हैं, जिनमें मुख्य हैं—चुम्बक, गतिज अर्थात् गति जनित, स्थितिज या सम्भवनीय और रासायनिक। ध्वनि भी तेज का ही एक भेद रूप माना जाता है, परन्तु ध्वनि गतिज और स्थितिज तेजों के योग का फल है।

ऐसी चीजों को अंग्रेजी में 'एनर्जी' (Energy) के रूप' कहते हैं। एनर्जी का पर्यायवाचक, कोई रखता है ऊर्ज, कोई ओज और कोई शक्ति। परन्तु उपर्युक्त बातों के कारण और साथ ही वैशेषिक के नव द्रव्यों में से एक होने के कारण 'तेज' ही यहाँ एनर्जी का उचित पर्यायवाचक समझा गया है।

तेज वह चीज है जिसमें काम करने की शक्ति या सामर्थ्य हो। विज्ञान में काम तभी हुआ माना जाता है जब थोड़ी-बहुत गति व्यक्त होवे, अर्थात् थोड़ा-बहुत 'संचलन' होवे। इसलिये तेज की परिभाषा की जा सकती है—ऐसी चीज जो किसी न किसी प्रकार से, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से, प्रकट या गुप्त भाव से, 'गतिशीलता' अर्थात् 'संचलन' का प्रादुर्भाव करे। तेज की और अधिक पूरी एवं सम्यक् व्याख्या करने का यह अवसर नहीं। इतना ही कहना पर्याप्त है कि तेज के जितने स्वरूप या भेद ऊपर बतलाये गए हैं, और अन्य सब भेद भी किसी न किसी तरह से अन्त में गति अवश्य पैदा करते हैं।

प्रश्न किया जा सकता है कि पहले तो तेज का यह गुण या लक्षण बतलाया था कि वह अगोचर है, न उसको देख सकते हैं, न छू सकते हैं, परन्तु जितने भेद या रूप या उदाहरण दिये गये हैं, उन सब में अगोचरपन नहीं है। ताप छूने से प्रतीत होता है, प्रकाश देखने से; ऐसे ही विद्युत्, गतिज, स्थितिज एवं रासायनिक तेज, सभी देखे, छुए या सुने जा सकते हैं; फिर कहाँ रहा अगोचरत्व? उत्तर यह है कि ये सब हैं तेज के असर या फल; असर या फल तेज नहीं, अपितु केवल मात्र तेज के अस्तित्व के सूचक हैं; उसकी करामातें हैं। कठ-पुतलियाँ जब नाच-तमाशा करती हैं, तब मालूम तो ऐसा होता है कि वे स्वयं ही नाच रही हैं। पर उनको नचानेवाला कहीं अलग भीतर ही छिपा रहता है। कहीं वह दृष्टि या कर्णगोचर हो जाय, तो सारा खेल ही बिगड़ जाय। तेज और तेज के विविध रूपों में भी, ठीक ऐसा तो नहीं, पर कुछ-कुछ इसी प्रकार का सम्बन्ध समझना चाहिए।

वैशेषिक में चतुस्तत्वों को 'सावयव' कहा है। यदि सावयव से समझी जाय ऐसी चीज जिसका शरीर हो, तो उसका बोझ होना चाहिए, और उसको कुछ जगह भी रोकनी चाहिए। तो इस आधार पर तेज को 'सावयव' नहीं कह सकते। परन्तु यदि सावयव से समझा जाय ऐसा द्रव्य जिसका परिमाण हो सके, जिसकी मात्रा हो, जिसकी माप की जा सके, तो तेज भी सावयव अवश्य है, क्योंकि प्रत्येक प्रकार के तेज की नाप की जा सकती है, चाहे वह व्यक्त हो या अव्यक्त। हाँ, 'पदार्थ' ऐसा द्रव्य है कि जो 'सावयव के प्रचलित अर्थ

के अनुसार भी 'सावयव' है। 'हिन्दी शब्द-सागर' में 'सावयव' को 'जिस्मवाला' कहा है और किसी भी पदार्थ की 'जिस्मता' में किसी को शक नहीं हो सकता। जब जिस्म है, तब उसका बोझ भी है, वह जगह भी रोकता है और उसका परिमाण यानी मापन भी किया जा सकता है। इस आधार पर चतुस्तत्त्वों के प्रथम तीन द्रव्य—पृथिवी जल और वायु—निःसन्देह 'सावयव' हैं, केवल वे 'तत्त्व', 'मूलतत्व', नहीं।

यद्यपि वे 'मूलतत्व' तो नहीं, तथापि पदार्थों के और इसलिए मूलतत्व के सूचक अवश्य हैं। क्योंकि पदार्थ तीन और केवल तीन अवस्थाओं में ही हो सकता है—स्थूल, द्रव और वायव अर्थात् गैसीय; या यों कहिये कि ठोस, पनीला और हवा के मानिन्द। वायु या हवा इस तीसरी दशा का नमूना है; जल या पानी है दूसरी-द्रव-अवस्था का, और पृथिवी अर्थात् मिट्टी पहली—स्थूल या ठोस-हालत का। पृथिवी, जल, वायु मूलतत्व तो बेशक नहीं, परन्तु तत्वों की तीनों भौतिक दशाओं के सूचक अवश्य हैं। इसलिये इन तीन द्रव्यों से समझना चाहिये 'पदार्थ', भूतद्रव्य या माद्दा—अंग्रेजी का 'मैटर'

आधुनिक विज्ञान का एक गूढ़ परन्तु सार्वजनिक सिद्धान्त है कि जो कुछ भी नापा जा सकता है, वह अनादि और अनन्त है, अज और अमर है. न तो हम उसकी सृष्टि ही कर सकते हैं न उसका विनाश ही, केवल उसका रूपान्तर मात्र कर सकते हैं। पदार्थ और तेज, दोनों ही की नाप की जा सकती है; इसलिये उक्त कसौटी की परख से, ये दोनों ही अज और अमर अर्थात् अनादि और अनन्त हैं। इस सिद्धान्त को कहते हैं 'तेज का तथा पदार्थ का सनातनत्व' (Conse vation of energy and of matter)

तेज के विविध रूपों में से कई एक के नाम ऊपर दिये जा चुके हैं। पदार्थ के रूपों के बारे में कुछ बहुत कहने की आवश्यकता नहीं, कारण कि वे सर्वविदित हैं। न केवल पदार्थ की तीन भौतिक अवस्थाएँ ही हैं, अपितु तत्वों के योग से बने हुए नाना प्रकार के संयोग (यथा जल) और संमिश्रण (यथा वायु) आदि अनेक योगजन्य रूप भी हैं। पृथ्वी में संयोग भी है और संमिश्रण भी।

उन्नीसवीं शताब्दी में सनातनत्व के ये दोनों सिद्धान्त अलग-अलग, बिना एक दूसरे से किसी सम्बन्ध के, माने जाते थे। वर्तमान शताब्दी के विज्ञान में जो कदाचित् सब से महत्वशाली और अनेक परिणाम-परिपूर्ण घटना हुई है—जिसके बड़े-बड़े नतीजे निकल चुके हैं और निःसन्देह अभी और भी निकलेंगे—वह है इन दोनों 'सनातनत्वों' का एकीकरण। आधुनिक विज्ञान के अनुसार पदार्थ और तेज एक ही प्रकार के द्रव्य हैं। पदार्थ तेज में और तेज पदार्थ में परिणीय है, और दोनों को परस्पर परिणत कर भी सकते हैं। सूर्य, नक्षत्र और तारागण जो चिरकाल से सतत, निरन्तर तेज का निःसरण कर रहे हैं, वह उनके पदार्थत्व ही की बदौलत है—उनका पदार्थ ही तेज में परिणत होता रहता है। ऐटमबाम्ब भी ऐसे ही परिणमन का फल है। जैसे तेज के विविध रूप हैं, और पदार्थ के भी, वैसे ही तेज और पदार्थ ये दोनों भी किसी एक ही 'द्रव्योजय' के रूपान्तर मात्र हैं।

कोई भी चीज क्यों न हो—पदार्थ या तेज, किसी भी प्रकार का बल force) या शक्ति (Power), अथवा कोई अन्य भौतिक अस्तित्व—उसको नापने के लिये तीन चीजों की आवश्यकता होती है—कहीं तीन में से एक की, कहीं दो की और कहीं तीनों की। ये तीन चीजें हैं पुञ्ज (पदार्थ माशा Mass), आयाम (लम्बाई-length) और समय (काल-time)। कोई भी चीज क्यों न हो, यदि उसका मापन किया जा सकता है, तो इन्हीं तीन मौलिक मात्राओं के द्वारा; और केवल ये ही तीन ऐसी हैं कि जिनमें की प्रत्येक निरपेक्ष रूप से—बिना एक दूसरी की सहायता के—नापी जा सकती है।

वैशेषिक के प्रथम तीन द्रव्य—पृथिवी, जल और वायु—हम कह सकते हैं कि पदार्थ और अतएव तीनों मौलिक मात्राओं में से एक अर्थात् पुञ्ज या पदार्थ मात्रा के सूचक हैं। 'काल' तो है ही समय। रह गई तीसरी मौलिक मात्रा—आयाम अर्थात् लम्बाई, आयतन या विस्तार अथवा स्थान ( Space ), तो 'दिक्' अर्थात् दिशा से और क्या समझ सकते हैं सिवाय स्थान या आयाम के?

सारा संसार दो प्रकार की वस्तुओं का समुच्चय है—सजीव और निर्जीव। निर्जीव जगत् सम्बन्धी विज्ञान को भौतिक विद्याएँ ( Physical Sciences ) कहते हैं जिनके दो भेद हैं, पदार्थ विज्ञान तथा रसायनशास्त्र। वैशेषिक के नव द्रव्यों में से पृथिवी, जल, वायु, तेज, काल और दिक्, इन छः द्रव्यों का पूर्ण अध्ययन, उनकी सम्यक् व्याख्या ही पदार्थ विज्ञान ( भौतिकी-Physics) और रसायनशास्त्र (रासायनी-Chemistry) है। इन छः द्रव्यों के अध्ययन के साथ जब हम एक सातवें द्रव्य—आत्मा का- अध्ययन मिला देते हैं और यदि 'आत्मा' से समझें 'जीवन', तो बन जाता है सजीव जगत् सम्बन्धी विज्ञान अर्थात् जीवशास्त्र (Biological sciences) इसकी भी दो शाखाएँ हैं—वनस्पति विज्ञान (Botony) और प्राणिविज्ञान या पशुविज्ञान (Zoolozy)

आठवें द्रव्य 'मन' का अध्ययन विज्ञान का एक और अंग प्रस्तुत करता है। वह है मनोविज्ञान (Psychology)। आत्मा और मन के अध्ययन को 'अध्यात्मा विद्या और दर्शन शास्त्र भी समझना चाहिए।

विज्ञान एक है, उनके अंग अनेक हैं। विज्ञान-वृक्ष के समझिए कि दो तने हैं। एक है निर्जीव जगत् संबंधी विज्ञान अर्थात् भौतिक विद्याएँ, जिसकी दो शाखाएँ हैं भौतिकी और रसायनी। उसका दूसरा तना है सजीव संसार सम्बन्धी विज्ञान अर्थात् जीवशास्त्र इसकी भी दो शाखाएँ हैं—वनस्पति की और प्राणि की। ये हैं विज्ञान के चार प्रधान अंग। विज्ञान के अन्यान्य और भी बहेतेरे अंग हैं जिनको विज्ञान-वृक्ष की उप और अनु शाखाएँ समझ सकते हैं; यथा खगोल विद्या या ज्योतिष (astronomy), भूगोल विद्या (geograhhy), भूपटल विद्या (geology), ऋतु शास्त्र (meteorology), यांत्रिकी (Engineering) वैद्यकी (Medicine), जर्राही (Surgery), कीट-विद्या (entomology), कृषि विद्या (agriculture)। मनोविज्ञान को विज्ञान वृक्ष का पुष्प' कह सकते हैं। इनके अतिरिक्त और भी अनेक अंग हैं। उनके केवल नाम निर्देशन मात्र से शायद पाठक को कुछ पता न चलेगा। ये सब के सब उपर्युक्त चार प्रधान अंगों और गणित शास्त्र के एक या अधिक अंगों पर निर्भर हैं। उदाहरणार्थ खगोल विद्या या ज्योतिष शास्त्र सब से पुरातन विज्ञान है। संसार की पुरानी से पुरानी सभ्यता में भी इसका पर्याप्त ज्ञान था। परन्तु ज्योतिष केवल गणित और भौतिकी पर अवलम्बित है, यद्यपि आधुनिक भौतिकी निःसन्देह स्वयं अभी कुछ ही सौ वर्षों की है।

यही नहीं कि विज्ञान के अनेक अंग हैं, एक-एक अंग के अनेक उपांग भी हैं। एक एक उपांग भी अब इतना बड़ा हो गया है कि उसका सम्यक् ज्ञान प्राप्त करना भी कठिन होता जाता है। पर यह सब होते हुए भी भूलना न चाहिए कि विज्ञान एक है और किसी भी व्यक्ति को तब तक विज्ञानवेत्ता नहीं कह सकते, जब तक वह विज्ञान के कम से कम मुख्य-मुख्य अंगों का कुछ न कुछ ज्ञान न रखता हो, यद्यपि कोई भी व्यक्ति केवल एक अंग क्या एक उपांग से अधिक का पूरा ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। और पूरा ज्ञान तभी प्राप्त होता या हो सकता है, जब मनुष्य स्वयं इस उपांग का सेवी हो, स्वयं उसी में मस्त रहे और अनुसन्धान करता रहे। अंग्रेजी में एक कहावत है कि "जैक ऑफ ऑल ट्रेड्ज़ मास्टर ऑफ नन"—अर्थात् 'जिज्ञासु सब का, पर ज्ञाता किसी का नहीं। विज्ञान के लिहाज़ से इस कहावत को यों कहना चाहिए कि 'जैक ऑफ ऑल ट्रेड्ज़, मास्टर ऑफ वन—अर्थात् 'जिज्ञासु सब का पर ज्ञाता, एक का'।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आज का सारा का सारा विज्ञान भारतीय वैशेषिक दर्शन के नौ में से आठ द्रव्यों के अन्तर्गत है—पृथिवी, जल, वायु, तेज, काल, दिक आत्मा और मन। रह गया नवां द्रव्य 'आकाश'। इस से आधुनिक विज्ञान के 'ईथर' ( eather ) के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझ सकते। यह ऐसा द्रव्य है जिसका अस्तित्व तो आधुनिक विज्ञान को अवश्य स्वीकृत है, और स्वीकार करना भी पड़ता है, परन्तु उसके सम्बन्ध में प्रयोगों के द्वारा कुछ पता नहीं चलता। इसका अस्तित्व सिद्ध करने के लिए कितने ही अत्यन्त युक्तिपूर्ण प्रयोग

किये जा चुके हैं, परन्तु सब-के-सब निष्फल ही सिद्ध हुए हैं। कहीं वह 'द्रव्य श्रेष्ठ' तो नहीं जो पदार्थ और 'तेज' दोनों को ही 'जनता' था और अतिसूक्ष्म है और सारे विश्व में प्राप्त है?—

---

# प्राचीन भारत में मान या तौल

लेखक—डा० ओंकारनाथ पर्ती, एम० एस सी० डी० फिल०

*[ प्रत्येक देश में, प्रत्येक काल में मनुष्य को मान या तौल की आवश्यकता रही है, कहना यूँ चाहिए कि वैज्ञानिक साहित्य की प्रगति तो मान या तौल की उत्तमता पर ही निर्भर है। भारतीय वैज्ञानिक आज से सहस्रों वर्ष पूर्व भी वैज्ञानिक क्रिया के इस आवश्यकीय को पूर्ण बनाने में कितना आगे बढ़ चुके थे, इसका एक विचारपूर्ण वर्णन प्रस्तुत लेख में मिलेगा। ]*

किसी भी वैज्ञानिक क्रिया में मान या तौल का विशेष महत्व रहता है। रसायन में तो बिना तौल या मान के वैज्ञानिक एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकता। प्राचीन भारत में मान या तौल का एक विशेष स्थान था। विज्ञान मुख्यतर आयुर्वेद तक सीमित था। आयुर्वेद की परम्परा हमारे देश में पुरातन से चली आ रही है। औषधियों के मान या तौल में जो बाट प्रयोग में लाये जाते थे उनका तो कुछ पता नहीं है किन्तु ऐसे मानों का प्राचीन ग्रंथों में कई स्थानों पर विवरण मिलता है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से स्मृति शास्त्र में सर्व प्रथम मनु के बताये मानों का प्रथम स्थान है। आठवें अध्याय में श्लोक १३२ से १३८ तक मानों का विवरण इस प्रकार है:—

जालान्तरगते भानौ यत् सूक्ष्मं दृश्यते रजः ।
प्रथमं तत् प्रमाणानां त्रसरेणुं प्रचक्षते ॥
त्रसरेणवोऽष्टौ विज्ञेया लिक्षैका परिमाणतः ।
ता राजसर्षपस्तिस्रस्ते त्रयो गौरसर्षपः ॥
सर्षपाः षड् यवो मध्यस्त्रियवं त्वेककृष्णलम् ।
पञ्चकृष्णलको माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश ॥
पलं सुवर्णाश्चत्वारः पलानि धारणं दश ।
द्वे कृष्णले समधृते विज्ञेयो रौप्यमाषकः ।
ते षोडश स्याद्धरणं पुराणश्चैव राजतम् ।
कार्षापणस्तु विज्ञेयस्ताम्रिकः कार्षिकः पणः ॥
धरणानि दश ज्ञेयः शतमानस्तु राजतः ।
चतुः सौवर्णिको निष्को विज्ञेयस्तु प्रमाणतः ॥
पणानां द्वेशते सार्द्धे प्रथमः साहसः स्मृतः ।
मध्यमः पञ्च विज्ञेयः सहस्रन्त्वेव चोत्तमः ।

भावार्थ:—मकान के छेदों में से जब सूर्य की किरणें प्रवेश करती हैं तो इन किरणों में अत्यन्त सुक्ष्म धूल के कण दिखाई पड़ते हैं। इनमें से एक कण को त्रसरेणु कहते हैं। यह प्रथम या प्रारम्भिक मान है। अन्य मान इस प्रकार हैं:—

| | | |
|---|---|---|
| ८ त्रसरेणु | = | १ लिक्षा |
| ३ लिक्षा | = | १ राई |
| ३ राई | = | १ श्वेतसार्षप |
| ६ सार्षप | = | १ मध्ययव |
| ३ यव | = | १ कृष्णाल |
| ५ कृष्णाल | = | १ माष |
| १६ माष | = | १ सुवर्ण |

| | | |
|---|---|---|
| ४ सुवर्ण | = | १ पल तथा निष्क (राजत) |
| १० पल | = | १ धरण |
| साथ ही—२ कृष्णल | = | १ रौप्य माषक |
| १६ रौप्यमाषक | = | धरण, पुराण अथवा राजत |

यहाँ पर ताम्रकृत मान कार्षापण का विवरण है। इसे पण तथा ताम्रिक मर्ष भी कहते हैं। दस राजत धरण का एक राजत शतमान होता है। चार सुवर्ण का मान एक निष्क कहलाता है।

| | | | |
|---|---|---|---|
| २५० | पण | = | प्रथम साहस दण्ड |
| ५०० | पण | = | मध्यम साहस दण्ड |
| १००० | पण | = | उत्तम साहस दण्ड |

इन मानों का अध्यन करने से ज्ञात होता है कि तीन धातु का बाट बनाने में प्रयोग होता था। यह धातु थे स्वर्ण, रजत और ताम्र। पहले दिये गये त्रसरेणु से धरण तक के मान कुल्लूक भट्ट के अनुसार कदाचित् स्वर्ण के थे। आधुनिक वैद्य १ कृष्णल को १ रत्ती के बराबर मानते हैं। अतः आधुनिक भारतीय मानों के अनुसार मनूक्त मान इस प्रकार होंगे:—

| | | |
|---|---|---|
| ३ यव | = | १ कृष्णल (१ रत्ती) |
| ५ कृष्णल | = | १ माष (५ रत्ती) |
| १६ माष | = | १ सुवर्ण (१० माशा) |
| ४ सुवर्ण | = | १ पल या निष्क (३ तोला ४ माशा) |
| १० पल | = | १ धरण (२ छटाँक ३ तोला ४ माशा) |

स्मृतिशास्त्र में विष्णु संहिता के अन्तर्गत चौथे अध्याय में मानों का वर्णन मिलता है। यह मान भी मनूक्त मानों की तरह हैं और इनमें थोड़ा ही अन्तर है। त्रसरेणु से माष तक यह मनूक्त मान की तरह हैं। १२ माष का एक अक्षार्द्ध माना गया है। एक अक्षार्द्ध और चार माष अर्थात् १६ माष का १ सुवर्ण माना गया है और ४ सुवर्ण १ निष्क के बराबर है। अन्य मान मनूक्त मान की तरह हैं।

स्मृतिशास्त्र के याज्ञवल्क्य संहिता के अन्तर्गत भी मान दिये हुये हैं। यह इस प्रकार हैं:—

जाल सूर्य्य मरीचिस्थं त्रसरेणू रजः स्मृत।
तेऽष्टौ लिक्षाऽय तास्तिस्रो राज सर्षप उच्यते॥
गौरस्तु ते त्रय षट् ते यवो मध्योऽथ ते त्रयः।
कृष्णलः पञ्च ते माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश॥
पलं सुवर्णाश्चत्वारः पञ्च वापि प्रकीर्तितम्।
द्वे कृष्णले रूप्यमाषो धरणं षोडशैव ते॥
शतमानस्तु दशभिर्धरणैः पलमेव च।
निष्कः सुवर्णाश्चत्वारः कार्षिकस्ताम्रिकः पण॥
शाशीतिः पणसाहस्रो दण्ड उत्तम-साहसः।
तदर्द्धं मध्यमः प्रोक्तस्तदर्द्धं प्रथमः स्मृतः॥

भावार्थः—सूर्य की किरणों पर तैरते हुए धूल कण को त्रसरेणु कहते हैं अन्य मान इस प्रकार हैं:—

| | | | |
|---|---|---|---|
| ८ | त्रसरेणु | = | १ लिक्षा |
| ३ | लिक्षा | = | १ राई |
| ३ | राई | = | १ सर्षप या राज सर्षप (श्वेत सर्षप) |
| ६ | सर्षप | = | १ यव (मध्यम यव) |
| ३ | यव | = | १ कृष्णल |
| ५ | कृष्णल | = | १ माष |
| १६ | माष | = | १ सुवर्ण |
| ४ | सुवर्ण | = | १ निष्क |

साथ ही—चार अथवा पाँच सुवर्ण का एक पल माना गया है।

| | | |
|---|---|---|
| २ कृष्णल | = | १ रूप्य माष |
| १६ रूप्य माष | = | १ धरण |
| १० धरण | = | १ रजत शतमान |

ताम्रकृत मान कार्षिक या कार्षापण या पण कहलाता है। यह सुवर्ण के बराबर होता है।

| | | | |
|---|---|---|---|
| १०८० | पण | = | उत्तम साहस दण्ड |
| ५४० | पण | = | मध्यम साहस दण्ड |
| २७० | पण | = | प्रथम साहस दण्ड |

स्मृतिशास्त्र में दिये गये मानों से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि अत्यन्त प्राचीन काल में भी भारतीय मानों एक वैज्ञानिक रूप रहा है। इनके अध्ययन से कुछ ऐसा जान पड़ता है कि स्टैंडर्ड मान सुवर्ण के होते थे। कदाचित् "सुवर्ण" (१० माशा) स्टैंडर्ड मान था। छोटे बाट

सोने या चाँदी के बनाये जाते थे और बड़े बाट ताँबे के होते थे। सबसे बड़ा बाट उत्तम साहस दण्ड कहलाता था इसका मान (याज्ञवल्क्य) ४५ सेर था जो आधुनिक मन के लगभग है।

स्मृतिशास्त्र के बाद चरक संहिता में मानों का उल्लेख आता है। चरक ने मानों को औषधियाँ तोलने अथवा नापने के लिये बताया है। आयुर्वेद में दृढ़बलोक्त चरक संहिता के कल्प स्थान १२ वें अध्याय में इस प्रकार लिखा है—

जालान्तरगते भानुकरे वंशी विलोक्यते।
षड्वंश्यस्तु मरीचिः स्यात् षण्मरीच्यस्तु सर्षपः॥
अष्टौ ते सर्षपा रक्तास्तण्डुलश्चापि तद्द्वयम्।
धान्य माषो भवेदेको धान्य माषद्वयं यवः॥
अण्डका ते तु चत्वारस्ताश्चतस्रस्तु माषकः।
हेमश्च धानकश्चोक्तो भवेच्छाणस्तु ते त्रयः॥
शाणौ द्वौ द्रंक्षणं विद्यात् कोलं वदरमेव च।
विद्याद्द्वौ द्रंक्षणौ कर्ष सुवर्णश्चाक्षमेव च॥
बिडाल पदकञ्चैव पिचु पाणितलं तथा।
स एव तिन्दुको ज्ञेयः स एव कवडग्रहः॥
द्वौ सुवर्णौ पलार्द्धं स्याच्छुक्तिरष्टमिका तथा।
द्वे पलार्द्धे पलं मुष्टिः प्रकुञ्चोऽथ चतुर्थिका॥
विल्वं षोडशिकश्चाम्रं द्वेपले प्रसृत विदुः।
अष्टमानञ्च विज्ञेयं कुडवौ द्वौ च मानिका॥
पलश्चतुर्गुणं विद्यादञ्जलि कुडवं तथा।
चत्वारः कुडवाः प्रस्थश्चतुः प्रस्थं तदाढकम्॥
घटश्चाक्तः स एव स्यात् कीर्त्तितोऽष्टशरावकः।
पात्री पात्रं तथा कंसश्चत्वारो द्रोण आढ़कः॥
स एव कलसः ख्यातो घट उन्मानमर्म्मणम्।
द्रोणस्तु द्विगुणः सूर्पो विज्ञेयः कुम्भ एव च॥
गोणीं सूर्पद्वयं विद्यात् भारीं भारं तथैव च।
द्वा त्रशच्चैव जानीयाद्वाह सूर्पाणि बुद्धिमान्॥
तुलां शतपलं विद्यात् परिमाण विशारदः।
शुष्क द्रव्येष्विदं मानमेवयादि प्रकीर्त्तितम्॥

भावार्थः—मकान के छेदों में से आती सूर्य किरणों पर दृश्यमान कण को वंशी कहते हैं। अन्य मान इस प्रकार हैं:—

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ६ | वंशी | = | १ | मरीचि |
| ६ | मरीचि | = | १ | राई |
| ८ | राई | = | १ | चावल |
| २ | चावल | = | १ | धान्य माष |
| २ | धान्यमाष | = | १ | जौ या यव |
| ४ | यव | = | १ | अण्डका |
| ४ | अण्डका | = | १ | माषक (पर्याय-हेम, धानक) |
| ३ | माषक | = | १ | शाण |
| २ | शाण | = | १ | द्रंक्षण पर्याय-कोल, वदर) |
| २ | द्रंक्षण | = | १ | कर्ष (पर्याय-सुवर्ण, अक्ष, बिडाल पदक, पिचु, पाणितल, तिन्दुक, कवड ग्रह) |
| २ | सुवर्ण | = | १ | पलार्द्ध पर्याय-शुक्ति, अष्टमिका) |
| २ | पलार्द्ध | = | १ | पल (पर्याय-मुष्टि, प्रकुञ्च, चतुर्थिका, विल्व, षोडिशिक, आम्र) |
| २ | पल | = | १ | प्रसृत (पर्याय-अष्टमान) |
| २ | प्रसृत | = | | कुडव = ४ पल |
| २ | कुडव | = | १ | मानिका (पर्याय-अञ्जलि) |
| ४ | कुड़व | २ | मानिका | = १ प्रस्थ |
| ४ | प्रस्थ | = | १ | आढक (पयाय-घट पात्री, पात्र कंस) |
| | | = | ८ | शराव |
| ४ | आढक | = | १ | द्रोण (पर्याय-कलस, घट, उन्मान, अर्म्मण) |
| २ | द्रोण | = | १ | सूर्प (पर्याव-कुम्भ) |
| २ | सूर्प | = | १ | गोणी (पर्याय-खारी, भार) |

साथ ही—

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ३२ | सूर्प | = | १ | वाह |
| और, १०० | पल | = | १ | तुला |

यह सभी मान शुष्क द्रव्यों के लिये हैं।

आधुनिक आयुर्वेदीय पद्धति में चरकस्त मान में माषकं अभिप्राय एक माशा से है। इस प्रकार कर्ष= १ तोला के होता है। पल अभिप्राय ४ तोले का भार है और १ तुला बराबर ५ सेर् के है। चरकोक्त मान में सब से छोटा भार वंशी का माना गया है। उसके अनुसार १ वंशी = $\frac{1}{२३०४}$ रत्ती। इसी प्रकार सबसे बड़ा मान १ वाह माना है जो आधुनिक २० मन १६ सेर ३ छटाँक १ तोला के बराबर है।

सुश्रुत ने भी मानों का विवरण दिया है। यह मान चरक में दिये मानों से कुछ भिन्न है। सुश्रुत में १२ मध्यम धान्य माषों का एक सुवर्ण माष माना है और १६ स्वर्ण माश का एक सुवर्ण। १६ मध्यम निष्पाव का एक धरण और २½ धरण का १ कर्ष। इसके बाद उत्तरोत्तर चौगुना करते जाने से क्रमशः पल, कुडव, प्रस्थ, आढक, द्रोण आदि बन जाते हैं। १०० पल = १ तुला और २० तुला = १ भार के माना गया है।

उपरोक्त सब मान शुष्क पदार्थों के लिये हैं। जब औषधियों में द्रव्यों का प्रयोग होता था तो उनकी दी गई मात्रा का दुगना कर दिया जाता था।

चरक में "कालिङ्ग" और "मागध" नाम से दो प्रकार के मानों का वर्णन आया है। जिसमें कालिङ्ग से मागध—

मानञ्च द्विविधं प्राहुः कालिङ्ग मागधं तथा।
कालिङ्गान्मागधं श्रेष्ठ मेवं मान विदो विदुः॥

[—को श्रेष्ट माना गया है। चरक में दिये गये मान 'मागध' मान है सुश्रुत में दोनों प्रकार के मानों का वर्णन है। इन मानों का अन्तर इस प्रकार से था—

मागध मान

१० कृष्णल = १माष = १२ मध्यम निष्पाव

कालिङ्ग मान

इन प्राचीन मानों का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि पुरातन से ही हमारे यहाँ दो प्रकार के बाटों का प्रयोग होता रहा है। एक सेट वह था जो कदाचित् साधारण प्रयोग में आने वाला था और दूसरा सेट उन बाटों का था जो औषधियों के तौलने में प्रयुक्त होता था। ऐसा जान पड़ता है कि औषधियों के तौलने में चरक में दिये मान ही स्टैंडर्ड माने जाते थे।

हमारे देश में परम्परा के सिद्धान्त का बड़ा मान रहा है। सूर्य की रश्मि में चमकते धूल कणों के भार से लेकर वाह तक सब मानों में एक सामञ्जस्य है। पुरानी पुस्तकों के अध्ययन से यह तो ज्ञात होता है कि सबसे छोटा मान त्रसरेणु या वंशी था किन्तु यह पता नहीं चलता कि सबसे छोटा कौन सा बाट था जिसका प्रयोग होता था।

इन मानों के अध्यन से यह भी स्पष्ट होता है कि पुरातन में साधारण पदार्थों से ही बाटों का स्टैंडर्ड स्थापित किया गया था। राई, चावल, जौ आदि के दानों के भार से ही साधारण बाट पहले पहल बनाये गये होंगे। पल अथवा मुष्टि भर पदार्थ का भार लगभग ४ तोला था और अञ्जलि भर पदार्थ से अभिप्राय लगभग साढ़े छै छटाँक से था। कदाचित् अनाज इत्यादि तौलने के लिये मुष्टि, अञ्जलि आदि का प्रयोग होता था। औषधियों के तौलने के लिये तो स्टैंडर्ड बाट ही उपयोग में आते होंगे। इनमें छोटे बाट सोने अथवा चाँदी के निर्मित थे और बड़े बाट ताम्र के थे। मागध और कालिङ्ग आदि मान पद्धतियों के वर्णन से ज्ञात होता है कि हमारे देश में कई प्रकार के बाटों का चलन था। आयुर्वेद के कार्य कर्त्ताओं ने औषधियों के तौलने में मान या तौल की महत्ता को स्वीकार किया। कदाचित् उनकी कोई सभा भी हुई होगी जिसमें "मागध" मान को सर्व श्रेष्ठ माना गया और औषधियाँ तौलने के लिये उसे अपना लिया गया।

# पशु-संसार में धोखा-धड़ी व लुका-छिपी की कला का विकास

[ लेखक—श्री प्रेमदुलारे श्रीवास्तव एम० एस० सी० ]

*[ धोखा-धड़ी व लुका-छिपी की कला का घनिष्ट सम्बन्ध जीवन की सुरक्षा से है, महाभारत में, गत महायुद्धों के इतिहास में इस कला के विभिन्न अंगों का विषद वर्णन मिलता है। पशु-जगत में प्रकृति-प्रदत्त कौन से गुण उपरोक्त कला से सम्बन्धित हैं, यही निम्न लेख में बताने का प्रयास है। ]*

## कला का विकास

गत महायुद्धों में नाना प्रकार के धोखा देने व छिपने के ढंग सुनने में आते थे। सड़कों पर चलने वाली मोटरों का रंग भिन्न-भिन्न होता था जिससे शत्रु का वायुयान कोई वस्तु एक सिलसिले में चलते हुए पता पाने में असमर्थ होता था। वन क्षेत्र के युद्ध में फ़ौजी गोदाम इत्यादि के ऊपर लम्बे-लम्बे जाल बिछा कर उनमें पत्तियां, घास और पेड़ों की टहनियाँ रख दी जाती थीं ताकि शत्रु को गोदाम का नहीं बल्कि वन का ही आभास हो। मरूस्थल क्षेत्र के युद्ध में छिपने के दूसरे ढंगो का प्रयोग किया जाता था। एकाएक इन बातों को सुनने पर मनुष्य स्तब्ध रह जाता है परन्तु वास्तविकता तो यह है कि ये ढंग पहले से ही विद्यमान ढंगों के केवल विकसित रूपमात्र हैं।

धोखा धड़ी व लुका-छिपी को कला स्वीकार करने में हमें आनाकानी नहीं होनी चाहिये। यह एक कटु सत्य है और इसे स्वीकार ही करना होगा। यह कला पशुओं एवं निम्न श्रेणी के जीवों में भी प्राचीन काल से ही विद्यमान रही है और आज भी उनमें मनुष्य के ढंगों से मिलती जुलती है।

इस कला का जीवन की सुरक्षा से घनिष्ट सम्बन्ध है। सभी की इच्छा अधिक दिनों जीने की होती है और सभी दीर्घायु होने की अभिलाषा रखते हैं। संसार में अस्तित्व के लिए निरन्तर युद्ध होता रहता है। यदि मनुष्य अपने जीवन के दिन बढ़ाने के लिये प्रयत्नशील रहता है तो पशु क्यों अल्पायु होना स्वीकार करें। यदि मनुष्य केवल दो टूक रोटी के लिये बर्बरता की चरम सीमा लांघने में नहीं झिझकता तो कोई कारण नहीं कि पशुओं को भूखमरी ग्राह्य हो।

पशुओं का जीवन किसी प्रकार भी आसान नहीं कहा जा सकता, उन्हें अपने को जीवित रखने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहना पड़ता है। जादू की टोपी लगा लेने पर दिखाई पड़ने की मनुष्यों की पुरानी कहानियाँ आपने भी अवश्य सुनीं होंगी। यह सब केवल अपने अस्तित्व को छिपाने के ढंग मात्र हैं। ठंडे देशों के भालू का सफेद रंग और मरूभूमि की छिपकिली व साँप का भूरा रंग भी अपने को छिपाने ही के लिये होता है। कुछ साँपों व छिपकिली हेलोडर्मा (Heloderma) के काटने पर और बिच्छू व वर्र के डंक मारने पर विष डालने की शक्ति केवल रक्षा के उपाय है।

वास्तव में पशुओं में अपने शत्रुओं को धोखा देने के ढंग निराले है, ये अनेक ढंगों का प्रयोग करते हैं जिनमें से कुछ का संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है।

रंग बदलने से—कटल मछलियों (Cuttlefish) में वातावरण के अनुसार रंग परिवर्तन की अपार शक्ति होती है। सीपिया (Sepia) में त्वचा के नीचे सुन्दर रंगों की थैलियां होती हैं जिनके कारण यह वातावरण के अनुसार रंगों का परिवर्तन कर सकती है।

गिरगिट की रंग परिवर्तन की शक्ति भी कुछ कम नहीं होती। यह एक प्रकार की छिपकिली है जो वृक्षों पर

रहने के लिये उपयुक्त है। यह गरमी व प्रकाश के परिवर्तन के साथ-साथ अपने रंग को बदलता है या यह इसके भय व रोष का प्रदर्शन करता है। इस प्रकार यह अपने को पेड़ों की छाल या पत्तियों के समान बना कर शत्रुओं को धोखा देता है। श्री डेटमार इस राय से असहमत हैं। इस रंग परिवर्तन की अपार शक्ति का कारण, आक्टोपस (Octopus), कटल मछली (Cuttlefish), चपटी मछली (Flatfish) व गिरगिट (Chaweleon) में खाल में क्रोमेटोफोरों (Chromatophores) की उपस्थिति है। इन क्रोमेटोफोरों में रंगों के कोष्टक (Cells) होते हैं जिनके बढ़ाव घटाव से रंग परिवर्तित होता है।

धुएँ की ओट से—जब एक जहाज दूसरे पर आक्रमण करता है तो दूसरा जहाज अपने और पहले के बीच ढेर सा धुआँ फेंक कर अपारदर्शक ओट बना कर अवसर निकाल कर स्वयं को बचा लेता है। ऐसे उदाहरण पशु संसार में भी मिलते हैं। सीपिया (Sepia) की शत्रु के नेत्रों में धूल झोंकने की अपार शक्ति होती है। इसमें एक स्याही की थैली सी होती है जिसमें त्याज्य पदार्थ के रूप में स्याही एकत्रित रहती है और शत्रु के आक्रमण करने पर स्वयं निकाल कर आस पास के जल को अपारदर्शक बना देती है और सीपिया (Sepia) को भाग निकलने का अवसर प्राप्त हो जाता है।

वाह्य पदार्थ धारण करने से—गत विश्व-युद्ध में बर्मा में जापानियों ने अपने कपड़ों पर घास पत्तियाँ इत्यादि लगा रखी थीं जिसमें आकाश में उड़ने वाले वायुयानों को मनुष्य न मालूम पड़ कर निकटवर्ती बन से प्रतीत हों। पशु-संसार में भी इस प्रकार के मनोरंजक उदाहरण मिलते हैं। बालू का केकड़ा अपने घोंघे (Shell) पर छोटी छोटी टहनियाँ इत्यादि रख कर घूमता रहता है और एक छोटा-मोटा उद्यान सा लग कर शत्रु व शिकार दोनों ही की दृष्टि से अपने को बचा लेता है।

अपने को छिपा सकने की बनावट से--समुद्री घोड़ा (Hippocampus or seahorse) कहे जाने वाली मछली एक अच्छा उदाहरण है। यह एक समुद्री मछली होती है जिसकी खाल कई जगहों पर उठी व मुड़ी होती है और फ्यूकस (Fucus) इत्यादि की पत्तियों की भांति जो कि आस पास बहुतायत से उगते हैं, लगती है। यह फ्यूकस (Fucus) के तने में अपनी दुम को लपेटे पड़ी रहती है और बहुत अंश में इसी घास फूस की तरह लगती है।

मृत्यु के बहाने से—ऐसे भी पशु हैं जो केवल शान्त रह कर ही आपत्ति की घड़ियाँ बिता ले जाते हैं। बहुत से ऐसे कीड़े हैं जो मेढक को देख कर हिलना डुलना बिल्कुल बन्द कर देते है जिससे मेढक उन्हें मृतक जान कर अछूता ही छोड़ देते हैं। न्यू इंगलैंड (New England) के हैगनोजेड सांप (Hagnosed Snake) जब कोई दुम पकड़ कर ले चलता है तो वह निर्जीव सा बन कर रस्सी के टुकड़े की भांति लटकता है। यह सब बहुत कुछ युद्धकालीन हवाई हमले से बचाव के आदेशों के समान हैं, जिनमें यह बताया जाता था कि खतरे की घंटी बजते ही छिप जाय या यथास्थान स्थिर खड़े रह जाय ताकि शत्रु का विमान उपस्थिति न भाप सके।

रंग व ढंग के मेल से—सिपाहियों का

खाकी वस्त्र पृथ्वी से बहुत कुछ मिलता जुलता है और इस कारण आस पास की भूमि से अलग न समझे जाने में सहायता करता है। वन युद्ध में सिपाहियों के कपड़े धारीदार होते हैं ताकि उनसे प्रकाश व छाया का आभास हो। बिटेर्न (bittern) एक सुन्दर विलायती पक्षी होता है। नर मादा दोनों ही समान रूप से सुन्दर होते हैं और दोनों ही में रंगों का ऐसा क्रम होता है कि नरकटों (reeds) में आसानी से छिप सकें। इस पक्षी के खड़े रहने पर इसकी लम्बी भूरी रेखाएँ गर्दन के सामने से नीचे की ओर आती हुई नरकटों (reeds) के बीच की छाया से मिलती जुलती हैं। हल्का पृष्ट (background) और गहरी काली रेखाएँ सूखे हुए नरकटों के समान लगती हैं और पक्षी आस पास के वातावरण में अपने को छिपा पाता है। एक दूसरा रंग सूखे हुए बनस्पति में नीचा होकर झुक कर बैठता है जिससे कि यह अपने को नरकटों से मिलता जुलता बना कर आक्रमणकारियों से रक्षा करने में समर्थ होता है।

कभी कभी तो गज भर की दूरी से भी धोखा खा जाते हैं।

सम्भवतः छिपाने की कला में कीड़ों ने अधिक दक्षता प्राप्त की है। इन्होंने अपने को बचाने की बहुतेरी युक्तियाँ बना रखी हैं और इन युक्तियों में नाना प्रकार के रंग व बैठने के ढंगों के द्वारा पूर्णता प्राप्त की है। अतएव बहुतेरे कीड़े पत्तियों, टहनियों अथवा काँटों से मिलते जुलते होते हैं।

एक अत्यन्त रोचक उदाहरण भारतीय तितली कालिमा है। इसके फैले हुए पंख में हल्के नारंगी रंग व गाढ़े सुनहरे भूरे रंगों का मेल होता है और चमकने वाला बैजनी रंग होता है। परन्तु ये ही पंख बन्द रहने पर साधारण रूप में सूखी पत्ती से मिलते जुलते हैं। गहरी नसें और स्थान स्थान पर रंगों का हल्कापन ठीक सूखती हुई पत्तियों के समान सावधानी से अनुकरण कर लिए गए होते हैं। निचले पंखों (underwing) में छोटी सी दुम सी होती है, जो कि पंखों के बन्द रहने पर पत्ती के डाल की समानता करते हैं और धोखे को पूर्ण कर देते हैं।

पत्ती व छड़ी के कीड़े (leaf and stick insects) बचाव की कला (Protective mimicry) के सुन्दर उदाहरण हैं।

पत्तीवाला कीड़ा (leaf insect) मैंटिस (mantis) विशेषतः प्रार्थना करनेवाले मैंटिस (mantis religiase) में पंख पत्तियों की तरह होते हैं और पैर छोटी पत्तियों (Leaflets) की तरह फैले होते हैं।

छड़ी वाले कीड़ों (stick insect) के बचाव के ढंग वास्तव में अत्यन्त मनोरंजक होते हैं। शरीर लम्बा व नुकीला होता है जिसका रंग उन टहनियों के समान होता है जिन पर यह रहता है। पंख या तो शरीर के पास ही मुड़ते हैं या उनकी नसें उन पत्तियों की नसों के समान होती हैं जिन पर यह रहता है या पंख का पूर्ण तया अभाव होता है। पैर लम्बे व टहनियों के समान होते हैं। इस तरह कीड़ा कीड़े के समान कम और पौधे के समान अधिक मालूम पड़ता है।

मिमिक्री (mimicry) का विषय अत्यन्त जटिल तथा मनोरंजक है। इस विषय पर प्रकृति के अध्ययन कर्त्ताओं में काफी मतभेद है। मिमिक्री जान बूझ कर कीड़े का अपने को समीपवर्ती वातावरण में मिला कर शत्रुओं को धोखा देने का प्रयास है, अथवा शिकार को धोखा देने का ढंग है, अथवा लगातार कई आकस्मिक घटनाओं (Accident) से स्पीशीज़ (species) के पक्ष में प्रयत्न है, ये ऐसे विवाद पूर्ण विषय हैं जिन पर निर्णयात्मक कारणों का अभाव है।

तितलियाँ व माथ (moth) मिमिक्री के अनोखे उदाहरण हैं और अपना अस्तित्व छिपाने में अत्यधिक सफल हैं।

माथ (moth) दिन में शान्त रहते हैं और अपने पंख मोड़ कर पेड़ों की छालों से लिपटे रहते हैं। इनके ऊपर के पंख के चिन्ह खुरदरे पृष्ट पर अनुभवी दृष्टि के अतिरिक्त औरों से बचा लेते हैं।

तितलियाँ दिन भर इधर उधर उड़ा करती हैं और इनमें बचाव के लिये दूसरे ही प्रकार के रंगों के क्रम की व्यवस्था है। यद्यपि यह सत्य है कि कुछ इतनी साहसी होती हैं कि खतरे के प्रति उदासीन और मृत्यु के प्रति निर्भय होकर इधर उधर अपने रंगों को दिखाती फिरती हैं परन्तु अधिकतर ऐसी हैं जो अपने रक्षार्थ प्रकृति का सहारा लेती हैं।

केवल रंगों से—कुछ ऐसी तितलियाँ हैं जो पक्षियों के खाने योग्य नहीं हैं और जिन्हें पक्षी अछूता ही छोड़ देते हैं। कुछ खाई जाने योग्य तितलियाँ त्याज्य तितलियों के रंगों का अनुकरण करके उन्हीं के समान लाभ उठाती हैं। कभी कभी अनुकरणकर्ता व अनुकरणीय दोनों ही त्याज्य होती हैं। इसका कारण यह है कि त्याज्य अनुकरणकर्ता अनुकरणीय के समान होने से आक्रमणों से बच जाती हैं क्योंकि त्याज्य अनुकरणीय बहु-संख्यक होती हैं। इनके अतिरिक्त कालिमा जैसी तितलियाँ जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है, कहीं अधिक चातुर्य की परिचायक हैं।

ज्यों ज्यों एक ओर जनसंख्या की वृद्धि होती जाती है और दूसरी ओर खाद्य ज्यों का त्यों बना रहता है,

त्यों त्यों जीवन की होड़ बढ़ती जाती है। अतएव समयानुसार समस्त जीवधारी अपनी रक्षार्थ नाना प्रकार के ढंग बना लेते हैं चाहे वे मनुष्य हों, पशु हों अथवा अत्यन्त निम्न श्रेणी के जीव, जो उन नये नये ढंगों को ग्रहण करने में असमर्थ होते हैं उनका अस्तित्व ही मिट जाता है। परन्तु जो अधिक चतुर होने के कारण अपने में समयानुसार परिवर्तन कर लेते हैं वे ही अपने को जीवित रख पाते हैं। तात्पर्य यह कि धोखाधाड़ी अब आवश्यकता सी हो गई है और जिन्हें इसके प्रयोग में झिझक होगी उनके अस्तित्व का लोप निश्चित है।

---

# अपोषक तत्व

लेखक—श्री स्वरूपनारायण तिवारी एम० एस सी०

*[ जहाँ शरीर के लिए उपयोगी वस्तुओं का ज्ञान हमारे स्वास्थ-वर्धन के लिए आवश्यक है वहाँ अपोषक वस्तुओं का ज्ञान भी स्वास्थ-रक्षा के लिए कुछ कम महत्व नहीं रखता। पोषक तत्वों की क्रियाओं के प्रतिरोधी तत्वों का एक वैज्ञानिक वर्णन देने का प्रयास निम्न लेख में किया गया है। ]*

वर्तमान समय में हमें कुछ ऐसे विशेष पदार्थों का ज्ञान है जो पोषक तत्व अर्थात् (vitamins) की क्रियाओं का प्रतिरोध करते हैं। ऐसे प्राणी शरीर में पोषक-तत्व न्यूनता के लक्षण उपस्थित कर देते हैं। यहाँ तक कि भोजन में ऐसे पदार्थ होते हुए भी जो साधारण तथा यथेष्ट परिमाण में पोषक तत्व युक्त हैं, यह लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं। इन कारणों से जहाँ तक ये अपोषक तत्व (एंटो विटामिन) प्राकृतिक खाद्य पदार्थों में पाए जाते हैं, इनका प्रायोगिक खाद्य-विज्ञान में विशेष महत्व है। परन्तु इन पदार्थों का सूक्ष्म अन्वेषण व इनकी खोज के इतिहास से पता लगता है कि इन पदार्थों का महत्व प्रायोगिक व बौद्धिक क्षेत्र में भी बहुत अधिक है। इन पदार्थों का महत्व कुछ विशेष वर्ग के लिए, जैसे उन लोगों के लिए जिनका सम्बन्ध मनुष्य जाति के रोगों के उपचार के हेतु नई औषधियों की खोज इत्यादि से है, बहुत अधिक है। कई अपोषक तत्व उन विशेष वर्गों में रक्खे जाते हैं जिन्हें विज्ञान की भाषा में metabolic analogues या competitive inhibitor (प्रतिद्वन्दी विरोध) कहते हैं। यह समझने के हेतु कि इस प्रकार के पदार्थ किस तरह काम करते हैं, हमें एक ऐसे रास्ते से चलना होगा जो न केवल लम्बा और दुरूह है वरन हमारी कल्पना के भी बाहर है।

इन पदार्थों की खोज का इतिहास हम इरलिच Ehrlich से आरम्भ कर सकते हैं। इसने लगभग ५१ वर्ष पूर्व अपनी एक नई विचारधारा वैज्ञानिक संसार के सम्मुख रक्खी थी। यह मत उसने सापेक्षिक रोगक्षमता (relative immunity) के कारण को समझने के लिए रक्खा था, यह उसकी side-chain Theory कहलाई।

Side chain विचारधारा:—जब कोई जीव किसी एक रोग के प्रति रोगक्षमता उत्पन्न करता है, जैसे किसी विशेष जीवाणु संक्रामण में (उदाहरणार्थ मोतीझरा या टायफॉइड को लीजिये), तो उस जीव का रक्त इस योग्य हो जाता है कि मोतीझरे के जीवाणुओं के साथ एक प्रतिक्रिया करके उन्हें एक साथ इकट्ठा कर दे और उन्हें स्फूर्तिहीन बना डाले। संक्रामण में मोतीझरे के जीवाणु जिन्हें जीवन-नाशक कण या (antigens) कह सकते हैं, संक्रामित देह में घुस कर उसे ऐसा बना डाल रहे हैं कि वह शरीर स्वयं अपने ही रक्त में एक 'सापेक्षिक विरोधी पदार्थ' या antibody उत्पन्न करले। इस कारण जब कभी भी यह रक्त 'मोती

झरे' के जीवाणुओं के संसर्ग में आएगा, तभी यह विरोधी पदार्थ जीवाणुओं के साथ प्रक्रिया करके उन्हें एक झुँड में जमा डालेगा और अशक्त कर डालेगा, वैज्ञानिक भाषा में इस क्रिया को agllutination कहते हैं। इस प्रकार उनकी गति पूर्ण रूप से रुक जाने से ये कीटाणु बिल्कुल हानिकारक नहीं रह जाते। इरलिश के दृष्टिकोण से, यह प्रक्रिया जो जीवन नाशक अणुओं और रक्त में उत्पन्न हुए 'विपरीत पदार्थ' या 'विरोधी पदार्थ' में हो जाती है, इन दोनों के संयुक्त हो जाने के कारण होती है। एक तथ्य और है, वह यह कि भिन्न भिन्न जीवाणुओं (Bacteria) के जीवन नाशक कण (antigens) बहुत अधिक जटिल सापेक्षिक-विरोधी पदार्थों से संयुक्त होते हैं। इसका कारण समझा जाता है कि इन दो क्रियाशील पदार्थों का स्वरूप इस तरह का होता है कि एक पदार्थ का अणु दूसरे पदार्थ के अणु में बिल्कुल ठीक आ बैठता है। स्वरूप का अर्थ chemical strncture से है। अब कोई दूसरा विपरीत पदार्थ इस जीवन नाशक कण से नहीं संयुक्त हो सकता, क्योंकि किसी दूसरे का स्वरूप ऐसा हो ही नहीं सकता कि जो बिल्कुल ठीक तरह से जीवन नाशक कण की छोर शृंखला si:le chaie) में आकर जम सके।

**एनजाइम सापेक्षिकता:**—यह दूसरा मत भी पहले मत ही की भांति उपस्थित किया गया। यह मत एक जीव-रसायनवेत्ता (Biochemist) द्वारा विमर्षित हुआ। इसे समझाने के लिए यह कह सकते हैं कि एनजाइम भी विपरीत विरोधी पदार्थों की भाँति उन्हीं पदर्थों के "ठीक ठीक स्वरूप" के लिए अधिक क्रियाशील होते हैं, जिनके यह संसर्ग में आते हैं और जिनसे इनकी प्रक्रिया होती है। उदाहरणार्थ पशुओं के उदर में एक ग्रन्थि होती है, इसे 'पैनक्रियाज़' कहते हैं, इसमें कई तरह के एनजाइम उत्पन्न होते हैं जो भोजन के अलग अलग भागों को जैसे प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट्स और चिकनाई का पाचन करते हैं। परन्तु वे एनजाइम जो प्रोटीन पचाते हैं, कार्बोहाइड्रेस या चिकनाई नहीं पचा पाते। इससे भी अधिक सापेक्षिक जटिलता यह देखने में आती है कि वह विशेष एनजाइम जो एक विशेष कार्बोहाइड्रेट पचाता है वह किसी दूसरे कार्बोहाइड्रेट पर कुछ भी असर नहीं करेगा। एक उदाहरण लीजिए, एक विशेष एनजाइम गन्ने की चीनी पर असर करता है किन्तु यही एक दूसरी चीनी जैसे जौ की चीनी (malt sugar) पर कुछ भी असर नहीं करता; भले ही ये करीब करीब एक सी ही चीनियाँ हैं। इन दो चनियों में कुछ रासायनिक विभिन्नताएँ अवश्य हैं जो उन्हें इस लायक बनाती हैं कि केवल एक एक एनजाइम से संयुक्त हो। उदाहरण के लिए जो साम्यता अक्सर दी जाती है, अर्थात् इस एनजाइम की जटिल सापेक्षिक को समझने के लिए जो उदाहरण दे सकते हैं वह 'ताला कुञ्जी' सिद्धान्त से दी जाती है। परमाणु एवं उनके संयोजक तंतु (bonds) जो रासायनिक पदार्थ बनाते हैं, उस पदार्थ को एक विशेष गुणशील रूप दे देते हैं, ठीक उसी भाँति जिस तरह उभारें और खीचें एक कुञ्जी को उसका विशेष रूप दे डालती हैं। और जिस भाँति एक कुञ्जी ठीक उसी ताले में लगेगी जिसके लिए वह बनाई गई है, ठीक उसी भाँति एक रासानिक पदार्थ भी केवल सही एनजाइम से जुड़ेगा। जब तक ये दोनों परस्पर ऐसे न आएँ कि एक दूसरे में जुड़ जाय, प्रतिक्रिया हो ही नहीं सकती।

**एनजाइम प्रतिरोधिता:**—इस चित्र की कल्पना करते हुए कई वैज्ञानिकों ने, जो एनजाइम प्रतिक्रिया की यान्त्रिक पद्धति पर विचार कर रहे थे, या यों कहिए कि इस पर अन्वेषण कर रहे थे, इस मत को ऐसा रूप दे ही डाला। इनमें सबसे अधिक कर्मठ प्रयोगशालाओं में से एक (इस क्षेत्र में) केमब्रिज में है जहाँ डा० स्टीफेनसन अपने सहकारियों के साथ लगभग २२ वर्षों से भी अधिक समय से लगे हुए हैं। यहाँ जीवाणुओं के एनजाइम्स का अध्ययन किया जाता है। इनमें से एक प्रयोग में यह देखा गया कि कुछ एनजाइम विचित्र रीति से व्यवहार करते हैं। डा० वेस्टल द्वारा यह देखा गया कि कुछ पदार्थ ऐसे हैं जो कुछ विशेष एनजाइम्स की, उनके विशेष सापेक्षिक संयोजन कारक रसायन के ऊपर जो प्रतिक्रिया होती है उनमें बाधा डाला करते हैं। जिस प्रतिक्रिया का अध्ययन डा० वेस्टल ने किया वह सक्सीनिक अम्ल के ओषदीकरण की क्रिया

थी, जो एक विशेष एनजाइम "सक्सीनिक ऑक्सिडेज' द्वारा संपन्न होती है। और जो पदार्थ इस क्रिया में हस्तक्षेप करता पाया गया, वह 'मालोनिक अम्ल' था। एक विचित्र बात जो इस बाधक प्रतिक्रिया में देखी गई वह यह थी कि "बाधक बिन्दु का परिमाण, प्रक्रिया में उपस्थित मालोनिक अम्ल की चरम मात्रा से उतना सम्बन्धित नहीं था, जितना कि इसका सम्बन्ध मालोनिक व सक्सीनिक अम्लों की सापेक्षिक मात्रा से था।

एक प्रयोग में मालोनिक अम्ल क्रियाशील एनजाइम में डाला गया, इससे सक्सीनिक अम्ल के ओषदीकरण की गति कम हो गई, किन्तु इसी में और अधिक सक्सीनिक अम्ल डालने पर यह गति फिर तीव्र हो गई, मालोनिक अम्ल की मात्रा बढ़ाने पर फिर से यह गति मंद पड़ गई।

इससे ऐसा दृष्टि गोचर होता था जैसे इन दो पदार्थों में एक दूसरे को दबा देने की होड़ लग गई हो। इन दोनों का रासायनिक स्वरूप बहुत कुछ समान होने के कारण या तो ये दोनों ही साधारण दृष्टि से एनजाइम के साथ मिल सकते थे (उस एनजाइम से संयुक्त हो सकते थे), भले ही एनजाइम की क्रिया केवल सक्सीनिक अम्ल पर ही हो सकती थी, लेकिन यहाँ एनजाइम केवल बँधी हुई मात्रा में ही प्राप्त था, इस कारण मालोनिक अम्ल के एनजाइम के साथ संयुक्त हो जाने के यह अर्थ होते थे एनजाइम की वह मात्रा जो सक्सीनिक अम्ल को मिल पाती थी, वह भी कम हो गई।

| $CH_2.COOH$ | $CH_2.COOH$ |
|---|---|
| \| | \| |
| $CH_2.COOH$ | $COOH$ |
| succinic acid | malonic acid |
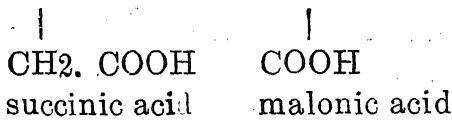
इसे मस्तिष्क में चित्रित किया जा सकता है कि किस प्रकार भिन्न भिन्न अणु आपस में, एनजाइम में जाकर बैठ जाने के लिये होड़ लगा रहे हैं। यह सोचा जा सकता है कि किस भांति जितना पहले ओषदीकरण हो रहा था, वह इन दो प्रतिद्वन्द्वी पदार्थों की तुलनात्मक (सापेक्षिक) मात्रा पर निर्भर है।

सल्फा ड्रग्ज का उदाहरण:—इसी के समान एक और कारण एनजाइम प्रक्रिया को समझाने के लिये डा० उड्स (Woods) द्वारा प्रसारित हुआ। डा० उड्स स्वयं डा० स्टीफेन्सन के शिष्य थे। यह कारण सल्फोनेमाइड-प्रकार की प्रतिक्रिया जो ये जीवाणुओं पर करते थे, उसे समझाने के लिये थी। जीवाणुओं को भी अन्य जीवों की भांति विशेष पोषक तत्वों की आवश्यकता अपने बढ़ने के लिए होती है। इन पोषक तत्वों में से एक जिसकी आवश्यकता सैकड़ों जाति के जीवाणुओं को होती है वह एक प्रकार का रसायन है जिसे पैरा अमीनो-बेनजोइक-अम्ल या paraamino benzoic acid) कहते हैं। डा० उड्स इस पदार्थ की समानता, इसी प्रकार की दवाओं के साथ देखकर दंग रह गए, यह दवाएँ सल्फा ड्रग्ज हैं (sulpha drugs)। उन्होंने यह मत रक्खा कि यह दवाएँ 'प्रतिद्वन्द्वी विरोधी' क्रियाएँ किया करती हैं, अर्थात् यदि यह पोषक तत्व के कार्य क्षेत्र में पहुँचा दी जायँ, तब जीव कोष के अन्दर जहाँ कहीं भी पोषक तत्व अपना कार्य कर रहा है वहाँ ये दवाएँ उसके मार्ग के बीच में आ जाती हैं यह विचार कि सल्फाड्रग्ज विशेष जाति के जीवाणुओं के लिए अपोषक तत्व की भांति काम करती हैं, इस बात से पुष्ट होता है कि जीवाणुओं के भोज्य मिश्रण में कई सल्फाड्रग डाल देने पर जीवाणुओं की बाढ़ रुक जाती है, यह जीवाणु इसी खाद्य-माध्यम में पैरा-अमीनो-बेनजोइक अम्ल डाल देने पर फिर से बढ़ना शुरू हो जाते हैं।

पोषक तत्व और उनके प्रतिद्वन्द्वी:—इस समय के पश्चात् कई ऐसे पदार्थों का पता चला है जो प्राणी के शरीर में पोषक तत्व प्रतिद्वन्द्वी की भाँति क्रिया करते हैं। ये अधिकतर प्रतिद्वन्द्वी प्रतिरोधी ही होते हैं। इनमें से कई पदार्थ ऐसे हैं जो विशेष रूप से तैयार किए जा सकते हैं इस भाँति कि रासायनिक दृष्टि से वे पोषक-तत्वों के समान रूप हों। अन्य प्रतिद्वन्द्वी विरोधी पदार्थ प्रकृति में भी पाए जाते हैं। कृत्रिम रूप से तैयार किए गए पदार्थों का एक दिलचस्प गुण यह भी होता है कि बिना परीक्षा के यह नहीं पता लगता कि वे पोषक तत्वों की भाँति कार्य कर रहे हैं या उनका प्रतिरोध कर रहे हैं। कोई पदार्थ किसी पोषक-तत्व की भाँति तभी काम करता

है जब कि उसका रासायनिक स्वरूप पोषक पदार्थ से इतना अधिक मिलता जुलता हो कि वह इस काबिल हो जाए कि उन सब कार्यों में भाग ले सके जिनमें पोषक-तत्व अन्तर्निहित होते हैं। इसके प्रतिरूप यह अपोषक तत्व की भाँति तब काम करता है जब कि इसका ढांचा इसे काफी हद तक इस लायक बना सके कि यह पोषक तत्वों के ठीक-ठीक क्रिया-बिन्दुओं से संयुक्त हो सके, किन्तु इस लायक न हो कि पोषक तत्व का कार्य सुचारु रूप से कर सके। इस प्रकार यह पोषक तत्व को हटा कर उसका स्थान ले लेता है और प्राणी शरीर में पोषकतत्व-हीनता से हुए रोग उत्पन्न कर देता है।

इस प्रकार का सब से पहला उदाहरण जो खोज करने पर मिला एक प्रकार की औषधि है जिसे 'पाइरिथियामीन' (Pyrithiamine) कहते हैं, यह पोषक तत्व B (अथवा थियामीन thiamine) का प्रतिरोध करता है। इसके सूत्र पर एक दृष्टि इस बात को दिखलाती है कि रासायनिक दृष्टि से ये दोनों पदार्थ कितने अनुरूप हैं?

पाइरिथियामीन चुहियों को खिलाने पर शीघ्रातिशीघ्र पोषक तत्व B की भयानक कमी उपस्थित हो जाती है। जाहिरी रीति से यह उस कमी से भी शीघ्र और प्रबल होती है जो कि चुहियों को पोषक तत्व B रहित भोजन देने से होती है। यदि भोजन में पोषक तत्व B बढ़ा दिया जाए तो पोषकतत्व-हीनता तथा उससे उत्पन्न हुए रोगों के लक्षण नष्ट हो जाते हैं। पाइथियामीन की मात्रा बढ़ा देने पर यह कमी फिर उत्पन्न हो जाती है, किन्तु पोषक तत्व B की मात्रा भोजन में बढ़ा देने पर यह फिर ठीक हो जाती है। दूसरे शब्दों में अपोषक तत्व ठीक पोषक तत्वों के प्रतिद्वन्दी विरोधी पदार्थों की भाँति कार्य करते हैं ठीक उसी प्रकार जैसे सल्फाड्रग जीवाणुओं में। समान स्वरूप के कई पदार्थ निर्मित हुए हैं अथवा उनका अन्वेषण हुआ है और अब हमारे पास विभिन्न पोषक तत्वों के विरोधी, अपोषक तत्व मौजूद हैं। इन में से कई तो केवल जीवाणुओं पर ही असर करते हैं किन्तु एक अच्छी संख्या में ये अन्य जानवरों पर भी असर करते दिखलाए गए हैं। इन सब का वर्णन करना तो अति दुरूह होगा, इस कारण हमें केवल कुछ ही अधिक महत्व के उदाहरण लेकर संतोष करना होगा।

**स्वीट क्लोभर रोग: (Sweet clover disease)**

इन उदाहरणों में से एक प्रकार का प्राकृतिक रूप में पाया जाने वाला एक अपोषक तत्व है, जिसका प्रायोगिक रूप से अत्यधिक महत्व है। कोई २२ वर्ष पूर्व कैनाडा के प्रेयरीज में एवं पश्चिमी अमरीका में एक विशेष बीमारी पाई गई—यह अक्सर चौपायों को हो जाया करती थी। इस रोग में पशु अत्यधिक रक्त प्रवाह से पीड़ित होता था और कभी-कभी तो यह रक्त स्राव मृत्यु का कारण भी साबित होता था। तुलनात्मक दृष्टि से बहुत हल्के अस्त्र प्रयोगों में, जैसे बधिया करने में या केवल बाड़े के तार से खरोंच इत्यादि लग जाने पर अक्सर इतना रक्त स्राव होता था कि रोकना कठिन होता था और मृत्यु अवश्यम्भावी हो जाती थी। पहले पहल यह रोग भी एक प्रकार का संक्रामक समझा जाता था। किन्तु अकथ खोज के पश्चात भी जब किसी संक्रामक जीवाणु का पता नहीं लगा तब इस विचार को छोड़ देना पड़ा।

कुछ ही समय पश्चात् यह देखा गया कि इस रोग का सम्बन्ध पशु द्वारा खाए गए भींगी और सड़ी स्वीट क्लोवर (Sweet clover or melilotus घास खाने के कारण हुई है। यह भी देखा गया कि पशु के भोजन से बहुत बड़ी संख्या में खराब हुई यह घास हटा देने से रोग का उपचार हो जाता था।

तब यह 'विष' की भाँति के पदार्थ स्वीट क्लोवर में से निकाल कर जाँच करने की कोशिशें हुईं। अत्यधिक कठिन रासायनिक परिश्रम के पश्चात् सड़े क्लोवर का सारभूत पदार्थ निकाला गया, यही उस रोग का कारण दिखता था। इस पदार्थ को 'डिकोमेरॉल' कहते हैं। यह अनुमान किया गया कि डिकोमेराल ही पशुओं के अत्यधिक रक्त स्राव का कारण था। यह इसलिए कि यह पदार्थ रक्त की स्वाभाविक जमने की प्रवृत्ति में हस्तक्षेप किया करता था। डिकोमेराल खिलाने का भी ठीक वैसा ही प्रभाव हुआ जैसा पोषक तत्व K की मात्रा रोगी पशु को देने पर डिकोमेरॉल की विषाक्तता का निवारण

हो सका। इस कारण यह स्वीट-क्लोवर (खराब हो चुके) से उत्पन्न रोग असल में क्लोवर में इस पदार्थ के बन जाने के कारण ही होता है। यह पशु के शरीर में पोषक तत्वK की कमी का कारण भी होता है। यह इसलिए कि पोषक तत्वK के लिए डिकोमेराल प्रतिद्वन्दी विरोधी का कार्य करता है। वास्तव में डिकोमेरॉल अपोषक तत्व ही है। इस सम्बन्ध में २ अधिक बातों का उल्लेख यहाँ किया जाता है।

पहली बात यह कि डिकोमेरॉल अब औषधि रूप में प्रयुक्त होता है जहाँ इसकी आवश्यकता रक्त के जमने की प्रवृति को कम करने में आ पड़ती है। ऐसे उदाहरण कारोनेरी थ्राम्बोसिस (Coronany thrmbosis) या थ्राम्बो फ्लिबाइटिस (Thrombophil bitis) हैं जिनमें डिकोमेरॉल का प्रयोग होता है। दूसरी बात यह है कि कभी यह भी सम्भव हो सकता है कि अन्य पदार्थ जैसे सैलिसायलेट (Salicylates) या एस्पिरिन (Aspirin) भी पोषक तत्वK के प्रतिद्वन्दी विरोधी की भाँति व्यवहार करें। इन औषधियों की बहुत बड़ी मात्रा विशेष परिस्थितियों में देना अनिवार्य हो जाती है, विशेषतया गठिया वात के ज्वरों में अक्सर यह देखा गया है इन दवाओं के सेवन के पश्चात अंत्रिसंस्थान से रक्त स्राव के चिह्न दिखलाई पड़ते हैं। वर्तमान समय में ऐसे कारणों को पोषक तत्वK से ठीक किया जाता है। सैलिसायलेटस एवं एस्पिरिन के रसायनिक स्वरूप बहुत कुछ पोषक तत्वK से मिलते-जुलते हैं। यह आशा की जाती है कि शायद ये भी पोषक तत्वK के विरोधी सिद्ध हों।

इस प्राकृतिक अवस्था में पाए जाने वाले डिकोमेराल के अतिरिक्त पोषक तत्वK के अन्य विरोधी तत्व व अपोषक तत्व अब प्रयोगशाला में संश्लेषित किए जा चुके हैं। इनमें से एक पदार्थ एल्फा टोकोफिराल a-tocopherol) क्वनोन कहलाता है। यह रासायनिक दृष्टि से पोषक तत्वE या (a-tocopherol) एल्फा-टोकोफरोल ) के सदृश्य है। किन्तु यह पोषक तत्वK से भी समानता दिखलाता है। चुहियों में, जो कि गर्भिणी थीं उस पदार्थ का असर गर्भ धारण को विशेष क्षति पहुँचाता है। यह उसी प्रकार की परिस्थिति है जैसी पोषक तत्वE की कमी में हो जाती है। सब से आश्चर्य की बात यह है कि इसके नुकसानदायक असर पोषक तत्वE द्वारा ठीक नहीं हो पाते किन्तु यही पोषक तत्वK द्वारा रोके जा सकते हैं! इस प्रकार हमारे पास एक ऐसा पदार्थ है जो रासायनिक दृष्टि से दो पोषक तत्वों का विरोधी है, परन्तु जिसके परिणाम केवल दूसरे पोषक तत्व द्वारा ही ठीक हो सकते हैं।

**पोषक तत्व या अपोषक तत्वः**—पहले यह कहा जा चुका है कि ऐसा एक पदार्थ जो पोषक तत्व की भाँति है, यह आवश्यक नहीं कि अपोषक तत्व हो। यह भी हो सकता है कि वह स्वयं एक पोषक तत्व की भाँति काम करे। केवल अनुभव द्वारा ही यह ज्ञात हो सकता है कि नए पदार्थ जीवित कोषों में ठीक स्थान पर जाकर बिलकुल पूर्णरूप से पोषक तत्व की भाँति बर्ताव करेंगे या पोषक तत्व की राह के रोड़े साबित होंगे (ध्यान रहे कि ऐसा व्यवहार केवल वे ही पदार्थ कर सकते हैं जो पोषक तत्वों के स्वरूप से बहुत ही अधिक मिलते-जुलते हैं) कुछ विशेष वर्ग वा जाति में एक पदार्थ पोषक तत्व की भाँति काम कर सकता है तो वही पदार्थ उसी परिस्थिति में किसी दूसरी जाति के लिए अपोषक तत्व की भाँति भी काम करता है यह तो केवल सापेक्षिक है।

यहाँ इसी सम्बन्ध में दो उदाहरण दिए जाते हैं। पहले का सम्बन्ध पोषक तत्वB या पाइरिडोक्सिन (Pyridoxine) से है। पाइरिडोक्सिन से प्राप्त एक पदार्थ को डेसेपाइरिडोक्सिन (Despyidoxine) कहते हैं। डेसोपाइरिडोक्सिन का इस्तेमाल पाइरिडोक्सिन की जगह किया जाता है। पाइरिडोक्सिन उन पोषक तत्वों में से है जो पोषक तत्व कामप्लेक्स उपवर्ग में रक्खे जाते हैं (पोषक तत्व B २ जटिलवर्ग डेसिपाइरिडोक्सिन का प्रयोग विशेष जाति के जीवाणुओं को पालने में किया जाता है। किन्तु मुर्गी के बच्चों में वही पदार्थ अपोषक तत्व की भाँति कार्य करता है जिससे पोषक तत्व B6 या पाइरिडोक्सिन न्यूनता के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

इससे प्राप्त एक और पदार्थ एक वनस्पति विशेष के लिए तो पोषक तत्व का कार्य करता है किन्तु एक फफूँदी (Fungus) के लिए अपोषक तत्व का काम करता है।

दूसरे उदाहरण का सम्बन्ध बायोटिन (Biotin) अर्थात् (पोषक तत्व B2, जटिल B2 complex) के एक दूसरे पोषक तत्व) से है।

बायोटिन के एक "थायो डिरिवेटिव" की क्रिया, जिसे डेसथायोबायोटिन (Desthio-biotin) कहते हैं कुछ विशेष खमीरों (yeast) में ठीक बायोटिन की प्रक्रिया की भाँति ही होती है। किन्तु कुछ-कुछ विशेष जाति के जीवाणुओं में यही क्रिया अपोषक तत्व की भाँति होती है। ऐसा पाया गया है कि जिस खमीरे में डेसथायोबायोटिन की क्रिया बायोटिन की भाँति होती है, उस खमीरे में ऐसा गुण पाया गया है कि वह डेसथायोबायोटिन को बायोटिन में परिवर्त्तित कर दे, किन्तु वह जीवाणु जिसके लिए यह अपोषक तत्व हो जाता है, वह इसे बायोटिन में नहीं बदल पाता।

प्राकृतिक पोषक तत्व न्यूनता:—कुछ जीवों को साधारणतया भोजन में विशेष पोषक तत्वों की आवश्यकता नहीं होती, वह इसलिए कि ये जीवाणु स्वयं ही निर्मित कर डालते है। उदाहरणार्थ मनुष्य, उँची जाति के बन्दर व गियाना-पिग (Guina-Pigs) सूअरों को छोड़कर समस्त जीव इस लायक होते हैं कि वे एक पोषक तत्व विशेष, एसकौर्बिक अम्ल ascorbic acid) स्वयं ही बना सकें। इस कारण वे पशु जिनमें पोषक तत्व न्यूनता के लक्षण उत्पन्न किए जाते हैं, केवल भोजन ही में पोषक तत्व युक्त खाद्यों की मात्रा कम करने से पोषक तत्व न्यूनता से पीड़ित नहीं होते (विशेष पोषक तत्वों के लिए) कारण यह है कि वे इन विशेष तत्वों को स्वयं निर्मित करते हैं। जैसा कि प्रायोगिक त्रुटियों में देखा गया है, इस कारण से पोषक तत्व C की कमी से उत्पन्न होने वाला रोग स्कर्वी (Scurvy), प्रायोगिक रूप से खाद्य पदार्थों में पोषक तत्व C की मात्रा कम करके नहीं उत्पन्न किया जा सकता।

ऐसा कहा जाता है कि ग्लूकोएसकार्बिक अम्ल (Glucoascorbic acid) जो अपने स्वरूप में पोषक तत्व C से मिलता जुलता है, चुहियों में स्कर्वी की भांति बीमारी उत्पन्न करने में समर्थ है।

हाल ही के नूतन कार्यों से यह दिखलाया गया है कि यह पदार्थ (ग्लूकों-एसकार्बिक उत्पन्न) एक अपोषक तत्व से भिन्न है। क्योंकि इससे उत्पन्न रोग के लक्षण ठीक स्कर्वी से नहीं मिलते जुलते और न यह रोग पोषक तत्व C द्वारा ठीक ही किया जा सकता है।

यहां एक अधिक संतोषप्रद उत्तर पोषकतत्व-न्यूनता का मिलता है। ऐसे जानवरों में जिनमें साधारणतया किसी विशेष तत्व की आवश्यकता नहीं होती, यह उदाहरण उपयुक्त है।

चुहियाँ आवश्यकतानुसार पर्याप्त मात्रा में निकोटिनिक-अम्ल (Nicotinic acid) बनाने में समर्थ हैं, जब कि मनुष्य के भोजन में इस पोषक तत्व की कमी के कारण एक रोग हो जाता है जिसे पेलार्गा (Pellarga) कहते हैं।

अब यह सम्भव हो सका है कि प्रयोगिक रूप से चुहियों में यह न्यूनता उत्पन्न की जा सके। यह चुहियों को एक औषधि जिसे ३एसिटाइल परिडीन कहते हैं, खिला कर की जाती है। 3Acetyl Pyridine बनावट में पोषक तत्व निकोटिनिक अम्ल से बहुत मिलता जुलता है। यह एक पूर्ण अपोषक तत्व है, जिसे हम इस बात से सिद्ध कर सकते हैं कि निकोटिनिक अम्ल चुहियों को खिलाने पर अपोषक तत्व 3 Acetyl Pyri ine की विषाक्त क्रियाएँ नष्ट हो जाती है।

यहाँ हम पेलार्गा का कारण ढूँढने के लिए की गई कुछ नूतन खोजों का विवरण कुछ अधिक विस्तार में करेंगे। पेलार्गा रोग तमाम पश्चिमी अमरीकी प्रदेशों में बहुतायत से पाया जाता है। कुछ हद तक यह सुदूर पूर्व में और अफ्रीका के कुछ भागों में भी फैला है। इसका सम्बन्ध सीधा मकई के भक्षण से है। बहुत समय तक यह सोचा गया था कि यह रोग किसी विष के कारण होता है जो मकई में उपस्थित हो। किन्तु धीरे-धीरे यह पोषकतत्त्व-हीनता से उत्पन्न हुआ रोग ही समझा गया।

सन् १६३७ में यह पाया गया कि यह रोग निकोटिनिक अम्ल से कुछ हद तक ठीक किया जा सकता है। भले ही कभी-कभी अन्य पोषक तत्वों की भी आवश्यकता आ पड़ती थी, जिनकी खाद्य में कमी हो गई हो। इन पोषक तत्वों के बिना रोग का पूर्ण रूप से उपचार होता ही न था। तब से अब तक भिन्न-भिन्न खाद्य पदार्थों में निकोटिनिक अम्ल की उपस्थिति और उसकी मात्रा जानने की विधियाँ निकाली जा चुकी हैं। धीरे-धीरे यह ज्ञात हो गया कि बीमारों द्वारा खाए गए मक्के के भोजन में जिससे पेलाग्रा फैली थी, निकोटिनिक अम्ल की मात्रा उन खाद्यों से अधिक होती थी जिनसे मकई न हो। ऐसे मकई विहीन खाद्य जो लोग भक्षण करते थे उनमें पेलाग्रा रोग बहुत कम पाया गया। इसको इस भांति समझ सकते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि शरीर इस योग्य है कि वह एक अमीनो अम्ल (amino acid) ट्रिप्टोफैन (Tryptophane) का उपयोग निकोटिनिक-अम्ल की रचना में कर सके। इस कारण पेलाग्रा की बढ़ती इस बात पर निर्भर थी कि ऐसे खाद्य तो भोजन में नहीं हैं, जिनमें Tryptophane और Nicotinic acid दोनों की कमी हो।

मकई में ट्रिप्टोफैन की बहुत अधिक न्यूनता पाई गई। निकोटिनिक अम्ल भी इसमें काफी कम था। किन्तु दूसरे खाद्य जैसे चावल में भले ही निकोटिनिक अम्ल की मात्रा अनुपात से कम थी किन्तु इनमें ट्रिप्टोफेन की मात्रा निकोटिनिक-अम्ल की आवश्यकता पूरी करने के लिए पर्याप्त था। यह मात्रा पेलाग्रा रोग को बढ़ने न देते थे। किन्तु विशेष बात यह थी कि यदि इन्हीं पदार्थों में मकई मिली तो फिर पेलाग्रा रोग हो जाता है। ऐसा लगता है जैसे कथानक का अंत यहीं न हुआ हो—क्योंकि एक भोजन जिसमें बहुतायत से ट्रिप्टोफैन, व निकोटिनिक अम्ल की उपस्थिति थी पेलाग्रा को रोकने में समर्थ थे। किन्तु इन्हीं में यदि मकई या उसके बने पदार्थ मिला दिए जाते तो पेलाग्रा फिर से हो जाती।

ऐसा दिखता है कि पुरानी 'विष' वाली सम्मति जिससे पेलाग्रा होना बतलाया गया था, कुछ न कुछ तथ्य अवश्य रखती थी, भले ही हम विष वाली बात से संतुष्ट नहीं थे। यह हो सकता है कि निकोटिनिक अम्ल का कोई प्रतिद्वन्द्वी विरोधी अपोषक तत्त्व मौजूद रहा हो। वास्तव में नई खोजों से एक ऐसे पदार्थ का पता चला है जिसे इन्डोल-एसेटिक अम्ल (Indole acetic acid) कहते हैं।

**अपोषक तत्व, कीटाणु नाशक की भाँतिः—** निकोटिनिक अम्ल पोषक तत्व-समुदाय B जटिल (Vitamin B2 Complex) में से एक है, इसी के समान एक और पोषक तत्व B2 Complex में है जिसे इनोसिटोल (in sitol) कहते हैं। ऊँची श्रेणी के प्राणियों के लिए यह अधिक महत्वपूर्ण नहीं दिखता किन्तु कुछ विशेष खमीरों व छोटे प्राणियों के लिए यह आवश्यक है। इन्हीं की भाँति पैराअमीनो-बेनजोइक अम्ल (Para Amino benzoic acid) का भी महत्व है। हम देख चुके हैं कि सल्फाड्रग्ज अपनी क्रिया द्वारा छोटे जीवाणुओं में पैरा-अमीनो बेनजोइक अम्ल की कमी पैदा करा देते हैं। यह पैरा-अमीनो बेनजोइक अम्ल जीवाणुओं का आवश्यक खाद्य है। इसी की भांति का एक और पदार्थ है जो इनोसिटोल से स्पर्धा करता है, अर्थात् इसकी उपस्थिति में खमीर जमने ही नहीं पाते। वह भी बढ़ पाते हैं जब इनोसिटोल की बहुत बड़ी मात्रा उन्हें दी जा सके। आप लोग भले ही इस पदार्थ को इसके वैज्ञानिक नाम से न जानते हों (V-hexachloro cyclohexane) (गामा-हक्सा क्लोरो साइक्लो हक्सेन), किन्तु इसके व्यावहारिक नाम से आप अवश्य ही पहचानते होंगे। अपने व्यवहारिक नाम से यह दवा बहुत प्रसिद्ध है, इसे 666, या गैमेक्सेन कहते (Gammexane) है यह एक बहुत शक्तिशाली कीटाणु नाशक औषधि है। अन्य कारणों से यह भी विश्वास किया जा सकता है कि यह एक अपोषक तत्व की भांति भी कार्य करता है। अर्थात यह कीटाणुओं व जीवाणुओं को इनोसिटोल का अभाव करके भूखा मार देता है, और ये जीव पोषकतत्व-हीनता से मर जाते हैं।

**जीवाणुतिक अपोषक तत्व.—** अभी कुछ समय पूर्व विश्वसनीय आधार से ज्ञात हुआ है कि कुछ पोषक

तत्व जीवाणुओं द्वारा कई पशुओं की आंतों में निर्मित किए जाते हैं। इसका बहुत बड़ा भाग पशु द्वारा उसके रक्त में शोषण कर लिया जाता है। और किसी हद तक वह पशु पोषक तत्व युक्त खाद्य पदार्थों के नाते पराधीन नहीं रह जाता। इसका आश्चर्यजनक उदाहरण तब देखने को मिलता है जब जीवाणु नाशक औषधियां जैसे सल्फाड्रग्ज मुँह से खाने को दी जाती हैं। यह एक विशेष जाति के जीवाणुओं में, जो आतों में रहते हैं, एक भारी कमी उपस्थित कर देती हैं। फल स्वरूप पोषक तत्वों का निर्माण भी घट जाता है। ऐसा होने से खाद्य पदार्थों के पोषक तत्व जो पहले आँत में बने पोषक तत्वों के साथ मिलकर पर्याप्त हो जाते थे, अब शायद बड़ी मात्रा में वे अपर्याप्त ही सिद्ध हों। और इन सब कारणों से पशु कोपोषकतत्व-हीनता से उत्पन्न रोग हो सकते हैं। यह प्रयोग जानवरों में भली प्रकार सल्फाड्रग्ज खिलाने पर दिखलाया गया है।

कुछ विशेष परिस्थिति में जैसे चूहों में 'पोषक तत्व K अर्थात् आँत में निर्मित हुए किसी पोषक तत्व की मात्रा पोषकतत्व हीन परिस्थिति में इसे बहुत ही कठिन बना देती है कि पोषक तत्वों की कमी केवल खाद्यों में उपस्थित पोषक तत्वों ही से पूरी की जाए। तब इन परिस्थितियों में सल्फाड्रग्ज के परिणाम अत्यन्त तीव्र होते हैं एवं शीघ्र भी बहुत होते हैं। इसी भाँति पोषक तत्व मिश्रण B2 Complex के कुछ सदस्यों का अभाव, सल्फाड्रग्ज खिलाने पर बहुत शीघ्रता से किया जाता है। उदाहरण के लिए जैसे पोषक तत्व B2 Complex के ये सदस्य बायोटिन, फोलिक अम्ल, और पेन्टोथीनिक अम्ल।

इनके अध्ययन से ऐसा ज्ञात होता है कि इन पदार्थों का प्रभाव जीवाणुओं पर इस भांति होता है कि वे पोषक तत्वों से रहित हो जाते हैं—इससे जीवाणु पोषकतत्व-हीनता से मर जाते हैं, ऐसा होने से वे पोषकतत्व भी जो इन जीवाणुओं द्वारा आँत में तैयार किए जाते थे, नहीं बन पाते। और तब पशु भी पोषकतत्व-हीनता से बीमार हो जाता है।

हाल ही में कुछ ऐसी भी राय हुई है कि पेनिसिलिन और सल्फाड्रग्ज का भी ऐसा ही असर होना चाहिए, वे मरीज, जिन्हें पेनिसिलिन मुँह द्वारा खाने को दी गई, ऐसा जान पड़ा कि पेलाग्रा से भी पीड़ित होना आरम्भ कर दिए। यह शायद निकोटिनिक अम्ल के जो आँतों में जीवाणुओं द्वारा तैयार होता है, कम मात्रा में बनने और रक्त में कम शोषित होने के कारण होता है, क्योंकि आँत के जीवाणु पेनिसिलिन द्वारा मरते पाए गए।

इस उल्टी रीति से पोषकतत्व-हीनता उत्पन्न कराने के लिए, जैसा हम सल्फाड्रग्ज के विषय में देख चुके हैं, विशेष आवश्यकताएँ आ पड़ती हैं। इन रासायनिक औषधियों का प्रयोग चिकित्सा में इन क्रियाओं की रीति ज्ञात होने से कुछ वर्ष पहले ही होना प्रारम्भ हो गया था। किन्तु अब हमें इनका ज्ञान होने से नई औषधियों की खोज में बहुत अधिक जोर दिया गया है। अब बहुत बड़ी संख्या में अपोषक तत्व निर्मित हुए हैं जिनसे हानिकारक जीवाणु नष्ट किए जा सकें। यह आवश्यक होता है कि इनका असर जीवाणुओं पर तो बहुत अधिक हो किन्तु बीमार जिनको के दवाएँ दी जाएँ उन पर औषधियों का असर तुलनात्मक दृष्टि से नहीं के बराबर हो। यहां यह कह देना उचित होगा कि इतनी खोज होने पर ऐसा कोई बहुत लाभदायक फल नहीं मिला।

तब भी कुछ वास्तव में महत्वपूर्ण बातों का पता चला है जिनके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि कुछ अत्यन्त लाभदायक वस्तुएँ अवश्य बन सकेंगी।

इनमें सबसे आशाजनक मार्ग तो उन पदार्थों के निर्माण का है जो पेन्टोथीनिक अम्ल का प्रतिरोध करते हैं। यह पोषक तत्व B2 Complex का एक सदस्य है। यह कुछ विशेष जीवाणुओं के लिए अत्यन्त आवश्यक है। ये जीवाणु स्ट्रेप्टोकोकस (Streptococcus) और न्यूमोकोकस (Pneumococcus) हैं। ये जीवाणु क्रमशः रोगी में रक्त विषाक्तता व न्यूमोनियाँ पैदा करते हैं। पेन्टोथीनिक अम्ल का सब से प्रबल विरोधी पेंटोइल-टौरीन (Pentoyl taurine) है।

प्रयोगशाला में एवँ प्राकृतिक परिस्थित में पैदा किए गए कई जाति के जीवाणुओं में, तथा चूहों की

आँत में पाए जाने वाले जीवाणुओं के संक्रामण को यह नष्ट कर डालता है। अभाग्यवश पैन्टोइल टारीन की इतनी अधिक मात्रा देनी आवश्यक हो जाती है जितनी दवा के रूप में नहीं पिलाई जा सकती। किन्तु अक्सर पैन्टोथीनिक अम्ल के अन्य डिरिवेटिव पैन्टोथीनिक अम्ल का प्रतिरोध कर सकते हैं।

कुछ सूत्रों से ज्ञात हुआ है कि वे औषधियाँ जो जूड़ी बुखार (Malaria) के इलाज के लिए दी जाती हैं जैसे कुनेन, मेपाक्रीन (mepacrine) पैल्युड्रीन (Paludrine) इत्यादि, वे मलेरिया के कीटाणु पर कुछ अपोषक तत्वों की भाँति क्रिया करते हैं। यदि यह बात साबित हो सके तो हमारे पास जूड़ी बुखार की दवाएँ बनाने की नई विधियाँ हो जाएँगी।

यह प्रदर्शित किया गया है कि पैन्टोथीनिक अम्ल के विरोधी अपोषक तत्व मुर्गी में प्रायोगिक रूप से उत्पन्न कराए मलेरिया के लिए लाभदायक सिद्ध हुए। अभी यह काम इस स्तर तक नहीं पहुँचा कि मनुष्य के मलेरिया में भी इसका प्रयोग किया जा सके क्योंकि इसके पूर्व वह मात्रा मालूम करना आवश्यक होगी जो (१) मलेरिया के कीटाणुओं में पोषक तत्व हीनता उपस्थित कर दे (२) मुर्गी में पोषकतत्व हीनता उपस्थित कर सके।

**अपोषकतत्व जो प्रतिद्वन्द्वी विरोधी नहीं हैं:—** अब तक हमने जितने पदार्थों का वर्णन किया है वह सब रासायनिक स्वरूप में पोषक तत्वों के समकक्ष थे, और उनके प्रतिद्वन्दी विरोधी थे। अर्थात् वे जीव-कोषों में उचित स्थान पर जाकर पोषक तत्वों को हटा कर उनका स्थान ग्रहण कर लेते थे। कुछ अपोषक तत्व ऐसे हैं जो बिल्कुल विपरीत रीति से कार्य करते हैं। अर्थात् या तो ये पोषक तत्वों से संयुक्त हो उन्हें निष्क्रिय कर डालते हैं जिससे वे शिथिल पड़ जायँ, या उन्हें बिल्कुल नष्ट कर डालते हैं।

अंडे के सफेद चूने में (white of egg or thin albumin) एक पदार्थ होता है, इसे एविडिन (avidin) कहते हैं—इसकी प्रकृति भोजन में पाए जाने वाले पोषक तत्व बायोटिन से संयुक्त होने की होती है। बायोटिन के साथ संयुक्त होकर एविडिन एक पदार्थ बनाता है जिसे avibiotein कह सकते हैं—इसका पशु उपयोग कर सकते हैं। प्रयोगशाला एवं मनुष्य दोनों में प्रयोग करने पर ऐसा ज्ञात हुआ कि वे भोजन जिनमें अण्डे की बहुतायत होती थी, विशेष तौर पर सफेद चूने के) प्राणी शरीर में बायोटिन की कमी उपस्थित कर देते थे।

एविडिन के इन प्रभावों को जीतने का उपाय यह है कि बायोटिन-विरोधी अपोषक तत्व भोजन में दिए जायँ। उदाहरण के रूप में डेसथि बायोटिन है जिसका उल्लेख हम कर चुके हैं। यह पदार्थ एविडिन से संयुक्त हो जाता है और बायोटिन की पर्याप्त मात्रा पशु द्वारा उपयुक्त होने के लिए छोड़ देता है। इस भाँति हमारे पास एक उदाहरण है जिसमें अण्डे के सफेद चूने की एविडिन एवं मानव निर्मित अपोषकतत्व डेसथि-बोयाटिन दोनों शरीर में बोयाटिन पोषकतत्व न्यूनता व उससे उत्पन्न रोग पैदा कर देते हैं। किन्तु दोनों को साथ-साथ देने से यह दोनों एक दूसरे से मिलकर अपने हानिकारक असर नष्ट कर डालते हैं और जानवर के स्वास्थ्य एवं प्राकृतिक शारीरिक वृद्धि को जारी रक्खेंगे, क्योंकि ये स्वयं तो आपस में मिल जाते है और बायोटिन को साफ छोड़ देते हैं।

ऐसे थोड़े से ही उदाहरण हैं जिनमें कथित अपोषकतत्व पोषक तत्वों को नष्ट कर डालते हैं। अमरीका के (Silver fox) या रजत-लोमड़ी के पालने वाले किसानों को कुछ वर्ष पहले इस बात से बहुत हैरान होना पड़ा था कि उनकी कुछ लोमड़ियों की क्षुधा नष्ट हो गई थी। वे बहुत कमजोर हो गईं, और किन्हीं में तो लकवे के लक्षण भी दिखलाई दिए। उनमें से अधिकांश तो मर गईं। यह आने वाले आर्थिक संकट का प्रश्न था, इस कारण इस मामले की छानबीन होना आरम्भ हो गई। खोज के पश्चात् ज्ञात हुआ कि यह रोग पोषकतत्व B या जिसे थायमीन (thiamine) भी कहते हैं, इसके कारण हुआ। इसका तत्कालिक सम्बन्ध कच्ची मछलियाँ खाने से था जिन्हें ये लोमड़ियाँ एक बड़ी संख्या में खाती हैं। यह देखा गया कि यह

रोग एक एनजाइम की उपस्थिति के कारण होता है, इसे थियामिनेज (thiaminase) कहते हैं। इसकी क्रिया भोजन में उपस्थित पोषक तत्व B के ऊपर (थियामिनयूके ऊपर) इस प्रकार होती थी कि यह उसे नष्ट कर डालता है। साधारण रीति से मछली पका कर खिलाना बीमारी खत्म कर डालने के लिए पर्याप्त था। क्योंकि जैसा अधिकतर एनजाइमों में होता है, थियामिनेज भी थोड़ा सा पका देने पर नष्ट हो जाता है।

इसी के भांति एक एनजाइम जो पोषक तत्व C को नष्ट कर डालता है कुछ विशेष हरी तरकारियों में पाया जाता है। इसी के कारण पोषकतत्व की न्यूनता खाद्य में पड़ जाती है। यही कारण है कि विदेशों में खाद्य मंत्रिमंडल की ओर से कच्ची हरी तरकारियों को थोड़ा उबाल कर खाने का निर्देशन हुआ है। (Half boited) जिससे पोषक तत्व भी न नष्ट हों किन्तु इनके विरोधी एनजाइम नष्ट हो जायँ। यदि हरी तरकारियों को पानी में डालकर धीरे धीरे गरम किया जाय, या इनके छोटे-छोटे टुकड़े करके पकाई जायँ तब एनजाइम की वनस्पति कोषों के अन्दर स्थित पोषकतत्वों के समीप आ जाने का संयोग मिल जाता है। जिससे एनजाइम, पोषकतत्वों को एक बड़ी मात्रा में नष्ट कर डालते हैं, इसके विपरीत समूची वनस्पति यदि थोड़े समय के लिए उबलते हुए पानी में एकाएक डाल दी जाय तो पोषक पदार्थ नष्ट होने से बहुत पहले एनजाइम नष्ट हो जाएगें और एनजाइमों को इतना समय ही न मिलेगा कि वह पोषक तत्व को नष्ट कर डालें।

अपोषक तत्वों के विषय में यह छोटा सा विवरण ३ बातें दिखलाता है। (१) खाद्य विशेषज्ञ इस लायक हो सका है कि वह पोषक तत्वों के कार्यकरण की रीति जान ले। वह इस लायक भी हो सका है कि प्रायोगिक रूप के जो रोग प्रायोगिक जानवरों में उत्पन्न कराना असम्भव प्रतीत होते हैं, पैदा कर सके। उसके पास एक नई विधि खाद्य विज्ञान के अध्ययन की हो गई है, जैसा और वैज्ञानिक विषयों में होता है। प्राथमिक विद्या का विस्तार तो इसी बात पर निर्भर है कि उपलब्ध रीतियों में सुधार हो।

(२) अब हमें अपने भोजन में न केवल तत्वों को देखना है किन्तु उन अपोषक तत्वों का भी पूरा पता रखना है जो इनका प्रतिकार करें। यह आवश्यक नहीं कि अपोषक तत्व केवल कच्ची मछली या मकई ही में पाए जायँ। यह हो सकता है कि और भी अपोषक-तत्व हों।

(३) हमारे पास अब बिल्कुल नूतन पहुँच रासायनिक चिकित्सा द्रव्य बनाने की समस्याओं तक है, जिनसे हम बीमारी पैदा करने वाले जीवाणुओं की खाद्य सम्बन्धी पूरी माँग का पता लगा कर उनके भोजन में अपोषकतत्वों द्वारा हस्तक्षेप कर उन्हें मारने का प्रयत्न करें। इसमें कोई भी संशय नहीं कि कितना ही परिश्रम शाली अन्वेषण क्यों न हो और कितनी ही बड़ी संख्या नए यौगिकों की बनानी पड़े, किन्तु जल्दी नहीं तो देर में तब भी ऐसी लाभदायक औषधियाँ अवश्य बन सकेंगी जो मनुष्य जाति को उससे भी कहीं अधिक लाभ पहुँचाएगी जितना पेनिसिलिन और सल्फाड्रग्ज दे चुके हैं या दे रहे हैं।

[ आचार्य जान युडकिन (John Yudkin) के लेख में से ]

# मङ्गल तारा

लेखक—श्री अरविंद

*[ लेख का विषय व लेख की सामग्री बालकों को रुचिकर व उपयोगी सिद्ध होंगे, ऐसी आशा है ]*

मंगल ग्रह चन्द्रमा को छोड़कर पृथ्वी से सब ग्रहों से कम दूरी पर है। मंगल तारा सूर्य से १४१,०००,००० मील की दूरी पर स्थित है। यह पृथ्वी से बहुत छोटा है और इसका व्यास ४२०० मील है। मंगल तारा हमको हर समय नहीं दिखाई पड़ता। यह सूर्योदय होने पर उदय होता है तथा सूर्यास्त के समय हमारी दृष्टि से ओझल हो जाता है। जब यह पृथ्वी से दूर रहता है तब यह बहुत धुंधला प्रतीत होता है परन्तु जब यह पृथ्वी के काफी निकट आ जाता है तब हम इसे आसानी से देख सकते हैं। मंगल तारे को ठीक से देखने के लिए तथा उसके बारे में कुछ ज्ञात करने के लिए आजकल एक यन्त्र काम में लाया जाता है जिसे टेलिस्कोप कहते हैं। इसमें कई लेन्स लगे रहते हैं जिनके द्वारा लाखों मील पर स्थित वस्तुए काफी स्पष्ट तथा बड़ी दिखलाई पड़ती हैं। इस टेलिस्कोप के द्वारा आजकल हमें मंगल तारे का काफी ज्ञान प्राप्त हो गया है।

जब टेलिस्कोप द्वारा मंगल तारे की ओर हम देखते हैं तो हमें इसका रंग लाल दिखाई पड़ता है। इसका लाल दिखना इसके चारों तरफ़ लिपटे वायुमंडल पर निर्भर है। इसका वायुमंडल कुछ इस प्रकार का है कि जिसके कारण यह हमें लाल प्रतीत होता है, और गौर से देखने पर हमें इसके अन्दर कई रंग दिखाई पड़ते हैं। इसमें तेज़ हरा, पीला या नारंगी रंग दिखते हैं। सन् १८५७ में प्रोफेसर गि० ग्रोवानी ने यह खोज निकाला कि हरी धारियाँ जो मंगल तारे पर पडी दिखाई पड़ती हैं, क्या हैं? इन्होंने तीक्ष्ण टेलिस्कोप से देखकर बताया है कि यह हरी धारियाँ मंगल तारे से बनी हुई चमत्कारपूर्ण बड़ी-बडी नहरें हैं। यह अत्यंत विशालकाय हैं और इन्हीं का पानी हमें दूर से दिखाई पड़ता है। इस प्रकार की नहरें मङ्गल तारे में सब जगह उत्तर से दक्षिण तक हैं। यह भी कहा जाता है कि क्योंकि मङ्गल तारे में पानी का अभाव है जिसकी पूर्ति के लिए यहाँ के मनुष्यों ने इनके दोनों ध्रुवों को नहरों द्वारा जोड़ दिया है। गर्मी के ध्रुवों की वर्फ पिघल कर नहरों में जाती है और इससे सारे मङ्गल तारे में पानी पहुँच जाता है। यहाँ पर के समुद्र हरे रंग के तथा भूमि नारंगी रंग की दिखाई पड़ती है। यह है मङ्गल तारे के रङ्गीन होने का भेद। प्रोफेसर गि० ग्रोवानी ने जब कुछ दिन बाद बाद फिर मङ्गल तारे को देखा तो उन्हें वहाँ की नहरों की संख्या दूनी दिखाई पडी। उन्होंने कुछ समय बाद यह पता लगाया कि जब इक्विनाक्स होता है उस समय पहले वाले नहरों के बगल में एक एक नहर और उत्पन्न हो जाती है। इन नहरों के बीच की दूरी ३० से ३५० मील तक है।

मङ्गल तारे में एक साल हमारे यहाँ का लगभग दूना होता है तथा उसमें ६८७ दिन होते हैं। यहाँ का जलवायु ठीक हमारे यहाँ की जलवायु के तरह होती है। यहाँ की ऋतुओं के बदलने के भौगोलिक कारण भी हमारी दुनियाँ के भौगोलिक कारणों के समान होती है।

## मङ्गल में जीवों की सम्भावना

मङ्गल ग्रह का वायुमण्डल हमारी दुनियाँ के वायुमण्डल के समान ही कुछ होता है। मङ्गल के वायुमण्डल का घनत्व दुनियाँ के वायुमण्डल के घनत्व

का आधा है और उसमें यहाँ की $\frac{1}{30}$ पानी की भाप मौजूद है। मङ्गल का जलवायु भी यहाँ के जलवायु से मिलता है। इन सब बातों को देखकर यह अनुमान लगाया जाता है कि मङ्गल तारे में मनुष्य हैं। मङ्गल तारे में गर्मी और पानी का पूर्णतया अभाव है जिसके कारण वहाँ के निवासियों को बहुत कष्ट उठाना पड़ता होगा। कुछ लोग यह सोचते हैं कि या तो मङ्गल में जीवन का अभाव होगा या वहाँ की सभ्यता बहुत ऊपर उठ चुकी होगी। यह बाद में पता चला की मङ्गल तारे में मनुष्य हैं और वे ज्ञान, विज्ञान, बल और बुद्धि में हमसे बहुत अधिक बढ़े हुए हैं। उनकी सभ्यता हमारी सभ्यता से कहीं अधिक ऊँची है। कुछ लोगों को तो टेलिस्कप से देखने पर यह भी पता चला है कि वहाँ के लोग हम लोगों की तरफ़ रोशनी फेंकते हैं और उसके द्वारा बात करने की चेष्टा करते हैं। पर उन की भाषा आदि से अनभिज्ञ होने के कारण उनका अर्थ समझने में हम असमर्थ हैं। मङ्गल के बारे में हमें अभी तक बहुत अल्पज्ञान प्राप्त हो सका है। भविष्य में इसके बारे में काफी बातें पता चलने की आशा है, क्योंकि अमरीका के मनुष्य राकेट प्लेन द्वारा मङ्गल तक पहुँचने की चेष्टा कर रहे हैं।

---

# पत्र व्यवहार

बर्नपुर
२०-१-४८

श्रीमान्,

क्या मैं 'विज्ञान' के भाग ६६ संख्या ३, दिसम्बर १९४७ की प्रति में डा० बृजमोहन की गणितीय शब्दावली के लेख में टिप्पणी लिखने की धृष्टता कर सकता हूँ।

उन्होंने अङ्गरेजी के 'Fundamental' शब्द के लिए 'मूल' या 'आधारभूत' शब्द का उपयोग किया है। मैं समझता हूँ कि यहाँ 'बीज' शब्द अधिक उपयुक्त होगा।

1. Fundamental Formula = बीज सूत्र
   " Law = बीज नियम
   " operation = बीज क्रिया
   " rooof = बीज मूल
   Fundamentally wrcng = बीजसः-असत्य

(2) 'Radical' शब्द के लिए मौल, मौलिक व करणी शब्द उपयोग में लाये गये हैं। मैं ऐसा समझता हूँ कि 'वास्तविक' शब्द इसके लिए अधिक उपयुक्त होगा जैसेः—

Radical axis = वास्तविक कील
Radical centre = वास्तविक केंद्र
" difference = वास्तविक अन्तर
" sign = वास्तविक चिन्ह
Radically true = वास्तविक सत्य

यही शब्द (वास्तविक) original के लिए भी उपयुक्त हो सकता हैं जैसेः—

original root = वास्तविक मूल
" value = वास्तविक मान
originality = वास्तविकता

शुभेच्छक
गिरजाशंकर पंड्या

# "समालोचना"

*भूमण्डलीय सूर्यग्रहण-गणित*—लेखक श्री हरिहर प्रा० भट्ट बी० ए०, और श्री छोटुभाई सुथार, बी० एस-सी। प्रकाशक : गुजरात विद्यासभा, अहमदाबाद। रॉयल अठपेजी। पृष्ठ-संख्या ६+५२; १२ प्लेट। कागज का आवरण। मूल्य : सदस्यों के लिए १), दूसरों के लिए २।)

वैज्ञानिक ढङ्ग से सूर्य-ग्रहण की गणना करने पर हिंदी में अभी तक कोई भी पुस्तक नहीं है। फलतः हमारे भारतीय ज्योतिषियों को सूर्य-ग्रहण की दुर्लभ गणना है। प्रस्तुत पुस्तक गुजराती में है। परन्तु लिपि देवनागरी है और पारिभाषिक शब्द संस्कृत के हैं। इसलिये केवल हिन्दी जानने वाले पाठक भी थोड़ी-सी गुजराती सीखकर, या किसी गुजराती जानने वाले मित्र की थोड़ी-सी सहायता लेकर, इस पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं।

पुस्तक प्रामाणिक है। व्याख्या स्पष्ट है। हल किये गये उदाहरण पर्याप्त हैं। चित्र भी पर्याप्त हैं। प्रत्येक पुस्तकालय में और प्रत्येक ज्योतिषी के पास इस पुस्तक की एक प्रति रहनी चाहिए।

—गोरख प्रसाद


## आप दवाओं पर इतना खर्च क्यों करते हैं ?

*श्री रामेश बेदी लिखित निम्न पुस्तकें मँगाकर अपना इलाज आप कीजिये !*

*लहसुन, प्याज*—दूसरा संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण। मूल्य २।।) रु०। हमें विश्वास है कि इसे पढ़कर आप तपेदिक, काली खाँसी, निमोनियाँ जैसे नामुराद रोगों, पेट और दूसरे रोगों का केवल लहसुन से ही सफलता पूर्वक इलाज करना जान जायेंगे।

*तुलसी*—संशोधित व परिवर्द्धित संस्करण। मूल्य २)। हर भारतीय घर में पाये जाने वाले तुलसी के पौदे से छोटे-मोटे सैकड़ों रोगों का इलाज करने की विधियाँ। पहले जमाने में क्षय तथा दूसरे असाध्य रोगियों को तुलसी के बग़ीचों में रखकर ठीक करने के रहस्य भी बेदी जी ने इसमें बताये हैं।

*सोंठ*—तीसरा संवर्द्धित संस्करण। मूल्य १।।)। रसोई में प्रतिदिन काम आने वाली सोंठ और अदरक से छोटे-मोटे प्रायः सब रोगों का इलाज करने के विस्तृत तरीके।

*देहाती इलाज*—दूसरा संवर्द्धित संस्करण। मूल्य १ घर, बाजार और देहात में सब जगह सुगमता से कठिन रोगों का भी इलाज करने की क्रियात्मक विधियाँ। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की प्रेरणा से यह पुस्तक लिखी गई है।

*शहद*—दैनिक भोजनों में और विविध रोगों में शहद को प्रयोग करने के विस्तृत तरीके, असली तथा नकली की पहिचान आदि जानने के लिए और शहद के सम्बन्ध में पूरी जानकारी प्राप्त करने के लिए यह पुस्तक आज ही मँगाइये। विद्यार्थियों, गृहस्थों, फार्मेसियों, वैद्यों, डाक्टरों आदि के लिए यह बहुत काम की पुस्तक है। मूल्य ३)

एजेण्टों की सब जगह आवश्यकता है। सूची-पत्र मुफ्त मँगाइये।

**पुस्तकें मिलने का पता—हिमालय हर्बल इंस्टिट्यूट, गुरुकुल कांगड़ी, (हरिद्वार)**

# विज्ञान-परिषद् की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकों की सम्पूर्ण सूची

१—चुम्बक—हाई स्कूल में पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी० सजि०; ।।।≈)

२—सूर्य-सिद्धान्त—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखने का सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१४; १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; सजिल्द; दो भाग में, मूल्य ८)। इस भाष्य पर लेखक को हिन्दी साहित्य सम्मेलन का १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है।

३—वैज्ञानिक परिमाण—विज्ञान की विविध शाखाओं की इकाइयों की सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस-सी०, १)

४—समीकरण मीमांसा—गणित के एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।) द्वितीय भाग ।।≈),

५—निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)—गणित के एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमतीप्रसाद अग्निहोत्री बी० एस-सी० ; ।।।),

६—बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित—इंटरमीडियेट के गणित के विद्यार्थियों के लिये—ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी० , १।),

७—गुरुदेव के साथ यात्रा—डाक्टर जे० सी० बोस की यात्राओं का लोकप्रिय वर्णन ; ।≈)

८—केदार-बद्री यात्रा—केदारनाथ और बद्रीनाथ के यात्रियों के लिये उपयोगी; ।≈)

९—वर्षा और वनस्पति—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शंकरराव जोशी; ।≈)

१०—विज्ञान का रजत-जयन्ती अंक—विज्ञान परिषद् के २५ वर्ष का इतिहास तथा विशेष लेखों का संग्रह; १)

११—फल-संरक्षण—दूसरा परिवर्धित संस्करण-फल की डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनाने की अपूर्व पुस्तक; २१२ पृष्ठ, २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्र नारायण सिंह एम० एस-सी०; २।।)

१२—व्यङ्ग-चित्रण—(कार्टून बनाने की विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी एम० ए०; १७५ पृष्ठ; सैकड़ों चित्र, सजिल्द; २)

१३—मिट्टी के बरतन—चीनी मिट्टी के बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र; सजिल्द; २)

१४—वायुमंडल—ऊपरी वायुमंडल का सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र सजिल्द; २)

१५—लकड़ी पर पालिश—पालिश करने के नवीन और पुराने सभी ढंगों का व्योरेवार वर्णन। इससे कोई भी पालिश करना सीख सकता है—ले डा० गोरखप्रसाद और श्रीरामरतन भटनागर, एम०, ए०; २१८ पृष्ठ; ३१ चित्र, सजिल्द; २)

१६—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—सम्पादक, डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश, आकार बड़ा विज्ञान के बराबर २६० पृष्ठ, २००० नुसखे १०० चित्र; एक-एक नुसखे से सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हजारों रुपये कमाये जा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थ के लिये उपयोगी; मूल्य अजिल्द २।।)

१७—कलम-पेबंद—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ५० चित्र; मालियों, मालिकों और कृषकों के लिये उपयोगी; सजिल्द; २)

१८—जिल्दसाज़ी—क्रियात्मक और व्योरेवार। इससे सभी जिल्दसाज़ी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०; १८० पृष्ठ, ६२ चित्र; सजिल्द २),

१६—त्रिफला—दूसरा परिवर्धित संस्करण-प्रत्येक वैद्य और गृहस्थ के लिये—ले० श्री रामेश वेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ; ३ चित्र, एक रङ्गीन; सजिल्द २।॥=)

यह पुस्तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय, की १३ श्रेणी के लिए द्रव्यगुण के स्वाध्याय पुस्तक के रूप में शिक्षापटल में स्वीकृत हो चुकी है।"

२०—तैरना—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगों को बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद पृष्ठ १०४ मूल्य १),

२१—अंजीर—लेखक श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, अंजीर का विशद वर्णन और उपयोग करने की रीति। पृष्ठ ५२, दो चित्र, मूल्य ।।=)

यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय के शिक्षापटल में स्वीकृत हो चुकी है।

२२—सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओं के विचित्र संसार, पेड़ पौधों की अचरज-भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र और तारों की जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिष के संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञान के आकार के ४५० पृष्ठ और ३२० चित्रों से सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द मूल्य ६)

२३—वायुमण्डल की सूक्ष्म हवाएँ—ले० डा० सन्त-प्रसाद टंडन, डी० फिल० मूल्य ।||)

२४—खाद्य और स्वास्थ्य—ले० श्री डा० ओंकारनाथ परती, एम० एस-सी०, डी० फिल० मूल्य ।||)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं:—

२५—विज्ञान हस्तामलक—ले० स्व० रामदास गौड़ एम० ए०। भारतीय भाषाओं में अपने ढंग का यह निराला ग्रंथ है। इसमें सीधी सादी भाषा में अठारह वैज्ञानों की रोचक कहानी है। सुन्दर सादे और रंगीन पौने दो सौ चित्रों से सुसज्जित है, आज तक की अद्भुत बातों का मनोमोहक वर्णन है, विश्वविद्यालयों में भी पढ़ाये जाने वाले विषयों का समावेश है, अकेली यह एक पुस्तक विज्ञान की एक समूची लैब्रेरी है, एक ही ग्रंथ में विज्ञान का एक विश्वविद्यालय है। मूल्य ६)

२६—भारतीय वैज्ञानिक—१२ भारतीय वैज्ञानिकों की जीवनियाँ; ले० श्री श्यामनारायण कपूर, सचित्र ३८० पृष्ठ; सजिल्द; मूल्य ३।।) अजिल्द ३)

२७—वैक्युम-ब्रेक—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवे में काम करने वाले फिटरों, इंजन-ड्राइवरों, फोरमैनों और कैरेज एग्ज़ामिनरों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ; ३१ चित्र जिनमें कई रंगीन हैं, २),

## विज्ञान-परिषद् बेली रोड, इलाहाबाद

भाग ७०
संख्या ७, ८ ६

संवत २००७,
अप्रैल, मई, जून १६५०

वार्षिक मूल्य ३) ]

[ एक संख्या का मूल्य ।)

मुद्रक—देवीप्रसाद मैनी हिन्दी साहित्य प्रेस प्रयाग।

प्रकाशक—विज्ञान-परिषद्, बेली रोड, इलाहाबाद

# विज्ञान
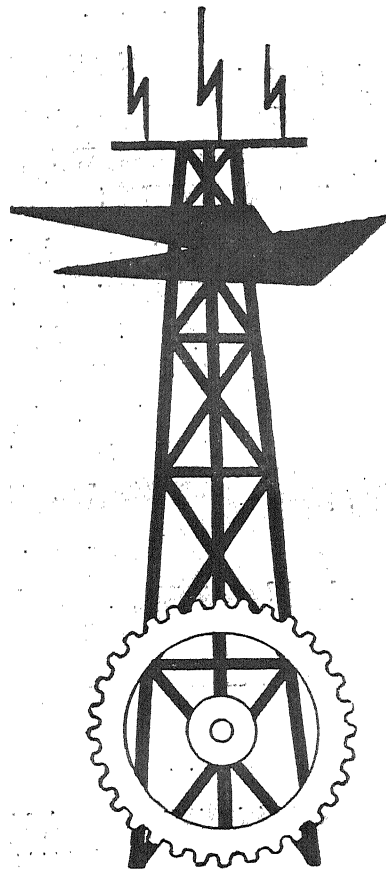
प्रधान सम्पादक

**डा० हीरालाल निगम**

एम० एस-सी डी० फिल्

श्री हरिश्चन्द्र आई० सी० एस०, जज, प्रयाग हाईकोर्ट ( सभापति )

प्रो० सालिगराम भार्गव तथा डा० श्री रंजन ( उप सभापति ) डा० रामदास तिवारी ( प्रधान मंत्री )
डा० हीरालाल दुबे तथा रामचरण मेहरोत्रा ( मंत्री ) श्री हरिमोहनदास टंडन (कोषाध्यक्ष)

Approved by the Directors of Public Instruction, United provinces and
Central provinces, for use in Schools and Libraries

---

# विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

### परिषद् का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

### परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उपसभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमंत्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद की कार्यवाही होगी।

### सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिये वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशन में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित, परिषद की सब पुस्तकों, पत्रों, विवरणों इत्यादि के बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उन का प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायेंगे।

---

सम्पादक मण्डल

डाक्टर सत्यप्रकाश
डाक्टर गोरखप्रसाद

हीरालाल निगम

डाक्टर विश्वंभरनाथ श्रीवास्तव
डाक्टर ब्रजकिशोर मालवीय

# विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख पत्र

जुलाई, अगस्त, सितम्बर, १९५०, [ भाग ७१

[ विज्ञान के पिछले, होने के कारण जिन ग्राहकों का वर्ष अप्रेल, मई, जून, जुलाई, अगस्त या सितम्बर मास में खतम होता था, उन्हें सितम्बर तक का विज्ञान वी० पी० द्वारा नहीं भेजा गया, अब उनसे निवेदन हैं कि वे अपना वार्षिक चन्दा ३) रु० मनी आर्डर द्वारा दस दिन के भीतर भेज दें वे कृपया यह भी सूचित करें कि भविष्य में उन्हें ग्राहक रहना स्वीकार है या नहीं। कोई सूचना न मिलने पर अक्तूबर का अंक वी० पी० द्वारा भेजा जायगा ]

विक्रम मुद्रणालय
प्रयाग।

विज्ञान परिषद, बेली रोड, प्रयाग।

# विषय-सूची

# विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ७१ | सम्वत् २००७ जुलाई-अगस्त-सितम्बर, १९५० | संख्या १०-११-१२

# विज्ञान संहिता !!

वर्तमान युद्धपद्धति में अणु-शक्ति नियंत्रण व शाकाणु-प्रयोग निषेध की परिस्थितियों से यह स्पष्ट रूप से भाषित होता है कि वैज्ञानिकों के पुण्य प्रयास का फल कितना विनाशकारी एवं घातक सिद्ध हो सकता है। प्रयास की पवित्रता और परिणाम की विनाशकारिता; कुछ विचित्र सी समस्या है!

कहा जा सकता है, इसमें वैज्ञानिक का क्या दोष? यह तो प्रयोग पर निर्भर है, जो अग्नि हमें परिपक्व भोजन बनाने में सहायक होती है, वही हमारे शरीर व सम्पत्ति को क्षण भर में भस्म कर डालती है। एक और तर्क है—"राजनैतिक नेताओं के ऊपर यह दोष मढ़ना अधिक उचित होगा, वैज्ञानिक तो बेचारा निस्वार्थ रूप से ही सत्य की खोज में लीन रहता है," किन्तु गहराई तक जाने से यह पता चलेगा कि उपरोक्त तर्क समस्या का केवल एक पक्ष है और वह भी बहुत महात्वपूर्ण पक्ष नहीं। वास्तव में इस दोष के भागी वे वैज्ञानिक हैं जो अपनी संकीर्ण देशभक्ति के नशे में अन्धे होकर निर्दोष मानव-समूह को जिसे वे शत्रु-राष्ट्र के नाम से पुकारते हैं, नष्ट-प्राय करने के लिए अपनी वैज्ञानिक-शक्ति का प्रयोग करने में गर्वित होते हैं। ये ही मूर्ख-विद्वान राजनैतिक नेताओं के साधारण हथकण्डों के शिकार बन कर अमरत्व-खोजी 'विज्ञान' को विनाशोन्मुखी बनाकर अपनी सफलता पर इतराते हैं।

एक शब्द में यह बताया जा सकता है कि इस घातक परिस्थिति का कारण है—वैज्ञानिक क्षेत्र में नैतिकता का अभाव। प्राचीन काल से अभी तक किसी भी व्यक्ति के वैज्ञानिक व्यक्तित्व के चरम विकाश का एक मात्र आवश्यकीय उसकी विज्ञान में निष्ठा ही मानी जाती रही है। सत्य और शुष्क सत्य की खोज, जिसे वैज्ञानिक गवेषणा वा पर्याय कहना अनुचित न होगा, विज्ञान के शैशव-काल में जन-साधारण के लिए विशेष महत्व की वस्तु न थी, प्रयोगशालाओं में कार्य करने वाले ही जैसे वैज्ञानिक अन्वेषण का रसास्वादन करने के लिए पर्याप्त थे, किन्तु वर्तमान व्यष्टि को छोड़कर समष्टि का प्रतिदान कर चुका है और विज्ञान को भी सर्वहितकारी पथ से

ही बढ़ना पड़ेगा। समय की यह चुनौती वैज्ञानिक क्षेत्र में नैतिकता के प्रादुर्भाव से ही संभाली जा सकती है।

अब एक विज्ञान-संहिता बनाई जाने की अत्यन्त आवश्यकता है, यह इस बात से भी स्पष्ट है कि जहां एक ऐसी संहिता वैज्ञानिकों के संकीर्ण व्यक्तित्व और उसी से सम्बन्धित संकीर्ण देशभक्ति आदि के कुपरिणामों को रोकने में सहायक होगी, वहीं नैतिकतापूर्ण आचरण, इस क्षेत्र में कार्य करने वाले पद में छोटे-बड़े सभी को समान अवसर देकर बढ़ने में सहायक होगा।

ऐसी संहिता विज्ञानिकों को अपने वास्तविक कर्त्तव्य की ओर जागरूक करने में विशेष लाभकारी सिद्ध होगी। उदाहरणार्थ, एक कार्यकर्त्ता एक ऐसे मालिक के यहां अपना जीविकोपार्जन करता है जिसका ठेका अग्राह्य वस्तुओं को किसी पीने वाले पानी के नाले में फेंकना है, अब प्रश्न यह उठता है कि विषम परिस्थितियों में वह कार्यकर्ता अपने मालिक के प्रति अपना कर्तव्य पालन करे या जन साधारण के प्रयोग में आने वाले जल को विषाक्त होने से बचावे ?

विज्ञान-संहिता बनाना वास्तव में वैज्ञानिकों के एक अन्तर्राष्ट्रीय संघ का कार्य होगा जिसमें विज्ञान के अन्तर्गत भिन्न भिन्न क्षेत्रों, रसायन शास्त्र, भौतिक शास्त्र, प्राणि-शास्त्र, इन्जीनियरिंग, गणित शास्त्र, चिकित्सा शास्त्र, आयुर्वेद, परिचर्या, पशु- चिकित्सा विज्ञान, कृषि शास्त्र, आदि ) में कार्य करने वालों के प्रतिनिधि सदस्य हों। यूँ तो चिकित्सा-क्षेत्र में सदैव से ही नैतिकता को कुछ स्थान दिया जाता है, और इस क्षेत्र की कुछ संस्थाओं में तो वृत्ति-नीति को बड़ा महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता हैं, किन्तु विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में इसे सर्वोपरि बनानें का प्रयास होना बड़ा ही आवश्यक है। पर्सीभल ( Percival, Percival's Medical Ethics ) ने सविस्तार चिकित्सक की नैतिकता के आवश्यकीय का वर्णन किया है, किन्तु आज कल हिपोक्रेटस ( Hippocrates ईसा से ५०० वर्ष पूर्व ) के विचारों से लोग अधिक सहमत हैं। लिएक ( Leake ) ने बहुत ही सरल व स्पष्ट व्याख्या वृत्ति-नीति की करते हुए इसकी एक सुन्दर परिभाषा दी है। एक वैज्ञानिक विशेष का दृष्टि कोण समाज के प्रति व दूसरे वैज्ञानिकों के प्रति क्या होना चाहिए, यही नैतिकता के अन्तर्गत आता है। अस्तु, यहाँ हमारा तात्पर्य सविस्तार यह बताने का नहीं कि ऐसी पुस्तक में किन किन बातों का समावेश होना आवश्यक है। यहाँ तो इस आवश्यकता की ओर इंगित करना ही पर्याप्त है, शेष विद्वद् वैज्ञानिक समाज वैधानिक ढंग से यथा समय यह कार्य सम्पन्न करेगा ही। हमारा मन्तव्य एक विशेष अंग को उदाहरणार्थ ले लेने से अधिक स्पष्ट हो जायगा। समस्या है वैज्ञानिक साहित्य का सृजनः— इस समस्या के बहुत से महत्वपूर्ण अंग है, किन्तु जहाँ सबसे अधिक अनौचित्य देखने में आता है, उन पर हम पहले विचार करेंगे —

( १ ) ऐसे लेख जिसमें एक से अधिक लेखकों के नाम छपते हैं — परम्परा ऐसी है कि जो नाम पहले आता है उसे कार्य का अधिक श्रेय होता है और फिर इसी क्रम पर अन्य लेखकों के कार्य का मूल्यांकन होता है। क्रम में कोई त्रुटि नहीं है, परम्परा भी अच्छी है किन्तु वास्तव में होता यह है कि अग्रगामी लेखक या तो विश्वविद्यालय में उच्च पादधिकारी होता है, या औद्योगिक अन्वेषणशालाओं में। बैज्ञानिक श्रमण करने वाले इन "स्वामियों" से कितने त्रस्त हैं, इसका अनुमान किसी भी एक उच्च वैज्ञानिक पदधिकारी के नाम में प्रकाशित गवेषणात्मक लेखों की गणना करके लगाया जा सकता है। प्रयोग शालाओं में सम्भवत: दिन में एक बार भी वे पधार नहीं पाते, प्रयोगशालाओं की स्वच्छ - गन्दगी उनके पास फटकती तक नहीं, प्रयोग के विस्तार से उनका कोई परिचय नहीं किन्तु नाम उनका ही अग्र होगा नहीं तो वह वैज्ञानिक श्रमिक या जीविकोपार्जन के लिये अपनी योग्यता बढ़ाने वाला वह विद्यार्थी जो

सहकारी का स्थान पाता है, अपनी जीविका या प्रमाण-पत्र से हाथ धो लेगा। कभी कभी तो किसी अन्वेषण-योजना को आर्थिक सहायता देने वाले ही अग्र लेखक का स्थान पाते हैं; क्यों न हो, विज्ञान की नीव "पारस की खोज" पर ही तो है! उपरोक्त बातों को देखते हुए किसी भी लेख में वास्तविक लेखक का श्रेय निर्णय करने के नियम बनाना बहुत आवश्यक है।

(२) अपने कार्य पर वैज्ञानिक का एकाधिकार :—अपने श्रमण से वैज्ञानिक ने किसी गवेषणा में सफलता पाई किन्तु उसके आर्थिक अभिभावक के मत में उस कार्य का प्रकाशन उचित नहीं; या वह वैज्ञानिक किसी दुरुपयोग के भय से अपने किसी कार्य का प्रकाशन नहीं कराना चाहता किन्तु उसका "स्वामी" उस आविष्कार से ही अपना कार्य सिद्ध करना चाहता है ऐसी परिस्थितियों में यह स्पष्ट है कि थोड़े से चाँदी के टुकड़े ही किसी वैज्ञानिक सत्य का मूल्य नहीं चुका सकते और वैज्ञानिक को ही अपने कार्य का एकाधिकार होना चाहिए। किन्तु एक बात विचारणीय है; वह व्यक्ति विशेष अपने उस अधिकार का दुरुपयोग कर सकता है। यह भी ध्यान देने योग्य है, वैज्ञानिक क्षेत्र में अन्वेषण कार्य में एक क्रम है और बहुत संभव है कि एक विशेष परिणाम पिछले कई वैज्ञानिकों के श्रमण के संचित फल का रुप हो; इसलिए अधिक उचित होगा कि वैज्ञानिकों की एक अन्तर्राष्ट्रीय समिति को किसी अन्वेषण के फलों को प्रकाशित कराने या न कराने का सर्वाधिकार रहे।

(३) लेख का स्तर :—इस विषय में सम्भवतः सबसे महत्वपूर्ण बात है कि लेख का स्तर काफी ऊँचा हो। लेख की भाषा, लेख का प्रायोगिक वर्णन, लेख का विषय-विस्तार परिपक्व होना आवश्यक है। लेख के प्रायोगिक आवश्यकीय व पद्धति इतने स्पष्ट रूप से वर्णित होने चाहिऐ कि वह दूसरी प्रयोगशालाओं में, दूसरे वैज्ञानिकों द्वारा दुहराए जा सकें, लेख के विषय-विस्तार में उस क्षेत्र के पूर्व कार्यकर्त्ताओं व दूसरे वर्तमान कार्यकर्त्ताओं को उचित श्रेय देना आवश्यक है, किन्तु खेद है कि लेखों की संख्या गिनकर ही वैज्ञानिक पद व पदवी दिये जाने की वर्तमान स्थिति के कारण उपरोक्त बातों की ओर से वैज्ञानिकों का ध्यान बिल्कुल हटा सा हुआ है। फलतः सच्चे वैज्ञानिक साहित्य की वृद्धि में बड़ी रुकावट पड़ती है और ऐसे टुच्चे वैज्ञानिक जो वास्तव में विज्ञान की गहराइयों और ऊंचाइयों से बिल्कुल अनभिज्ञ हैं, किन्तु कुछ 'सस्ते' लेख प्रकाशित कराने में समर्थ हो सके हैं विज्ञान के प्रतिनिधि बनकर सत्य का भी अपमान कराते हैं। प्रकाशित होने से पूर्व लेख का स्तर निर्णय होने के नियम बनाना आवश्यक है।

रहा यह कि उन नियमों को वैज्ञानिकों के आचरण के लिए अनिवार्य कैसे किया जायगा? यदि हो सके तो राजकीय दण्ड और यदि यह सम्भव न हो तो सामाजिक बहिष्कार, इसके उपाय हैं।

इस तरह विज्ञान-क्षेत्र के एक एक अंग को लेकर प्रस्तावित अन्तर्राष्ट्रीय विज्ञान-परिषद् यथा विचार के अनन्तर अनुकूल नियम बना सके और उनका सँकलन यदि "विज्ञान-संहिता" के नाम से प्रकाशित कराया जा सके, तो विज्ञान की अभिवृद्धि और भव-कल्याण, दोनों ही निश्चयरूप से सम्भव होंगे।

# चीन में कीमियागरी

लेखक—डा० ओंकार नाथ पर्ती एम० एस सी०, डी० फिल०

[ संसार की प्राचीनतम संस्कृतियों में चीन की संस्कृति का एक महत्वपूर्ण स्थान है, अमरत्व व सम्पन्नता की खोज में संलग्न चीनी रासायनज्ञों के अथक परिश्रम के फलस्वरूप "कीमियागरी" में कितनी प्रगति हो पाई थी, इसका एक विचार-पूर्ण वर्णन प्रस्तुत लेख में मिलेगा ]

संसार के लिखित इतिहास से ज्ञात होता है कि प्रत्येक देश में किसी न किसी समय में कीमियागरी का चलन रहा है। मानव कल्पना में सदा जीवित रहने की चेष्टा और सस्ते ढंग से स्वर्ण प्राप्त करने की चेष्टा का बड़ा महत्त्व रहा है। "अमृत" और "पारस" की खोज में प्रायः सभी देशों में अनेक कार्यकर्त्ताओं ने अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया। इन्हीं की खोज को आजकल कीमियागरी का नाम दिया जाता है। संसार में मिश्र, योरप तथा भारत के समान चीन में भी एक वह काल था जब कीमियागरी का बोल बाला था।

चीन के इतिहास से ज्ञात होता है कि चाऊ-काल (लगभग ४००-२५५ ई० पू०) में कीमियागरी का पूर्ण रूप से चलन था। चीन में कीमियागरी से अभिप्राय मुख्यतर "अमृत" प्राप्ति से था। चीनी कीमियागरों का प्रधान ध्येय मनुष्य को अमर बनाने की ओर था। चाऊ काल में होपिआई के निवासी सुंग-वू ची का नाम 'अमर ज्योति' प्रसिद्ध था। कहा जाता है कि सुंग-वू ची और हसिन-मेन लूकाओ दोनों अमर थे और दोनों में साधारण धातुओं को स्वर्ण में परिवर्तन करने की क्षमता थी। इस समय चीन में यह प्रसिद्ध था कि समुद्र में स्थित तीन टापुओं पेंग-लाई, फॉंग चॉंग, येन चो-में वह औषधियाँ पाई जाती हैं जिनके सेवन से मनुष्य अमर हो जाता है। यह तीनों टापू 'अमर टापू' के नाम से विख्यात थे।

चीन के प्रथम सम्राट के समय (२४६-२१० ई० पू०) में हस्यू-फू नामक एक वैज्ञानिक कई आदमियों को साथ लेकर अमर टापुओं की खोज में निकला। इतिहासकार ने उसके लौटकर आने का कोई विवरण नहीं दिया है। स्सुमा चू-एन नामक लेखक ने इस प्रकार की यात्राओं का कुछ वर्णन किया है उसके कथनानुसार—

"......यह तीनों टापू पो-हाई के मध्य में हैं। यह किनारे से अधिक दूर नहीं हैं किन्तु नावों पर चढ़कर जैसे ही कोई इनके पास पहुँचता है कि तीव्र वायु के झोंके उसकी नाव को उन टापुओं से दूर कर देते हैं। सच कहा जाय तो पुराने काल में ऐसे मनुष्य थे जो उन टापुओं तक पहुँच गये। वहाँ अमर व्यक्ति रहते हैं और वहीं पर मृत्यु नाशक औषधियाँ पाई जाती हैं। वहाँ की सब वस्तुएँ, चिड़ियाँ और चौपाये भी, स्वर्ण या चाँदी के हैं। कोई उन टापुओं तक दूसरी बार नहीं पहुँचा। दूर से मनुष्यों को वह टापू एक बादल के समान दिखाई पड़ते हैं। पास पहुँचने पर वह समुद्र में छिप जाते हैं और तीव्र वायु के वेग से नावों का रुख बदल जाता है। संक्षेप में, उन टापुओं पर कोई न उतर सका है किन्तु सम्राट और राजा लोग वहाँ पहुँचने का अन्ध विश्वास रखते हैं........"

चीनी कीमियागरी के इतिहास में इन टापुओं का बार बार जिक्र आता है। हान राज्य काल में वू टी (जीवन काल १४०—८८ ई० पू०) नामक सम्राट को कीमियागरी से बड़ा प्रेम था। इस सम्राट को ली शाओ चून ने इस प्रकार समझाया—

"यदि आप भोजन के देवता को बलि देंगे तो आप तान शा (कदाचित् Cinnabar) को स्वर्ण में परिवर्तित कर सकेंगे। इस प्रकार जब स्वर्ण प्राप्त होगा तो उससे निर्मित पात्रों में आप भोजन करेंगे। आपकी आयु बढ़ जायेगी और समुद्र में स्थित पेंग लाई नामक अमर टापू के दर्शन कर सकेंगे। इसके

उपरान्त आ ताई शान जाकर बलि चढ़ावें और अमरत्व को प्राप्त होवें......''

वू टी इन शब्दों के चक्कर में आगया। उसने कई कीमियागर इन अमर टापुओं की खोज में भेजे। साधारण धातुओं को स्वर्ण में बदलने के लिये भी उसके दरबारमें निरन्तर प्रयोग होते रहे। इस समय के कीमियागरों में शाओं-चून बहुत प्रसिद्ध हुआ है। हान राज्य के अन्तिम काल में चाँग ताओ लिंग नामक एक सुविख्यात विद्वान कीमियागर बन गया। उसने चीन वालों का ध्यान आध्यात्मिक औषधि की ओर आकृष्ट किया। चीन में मंत्र और ताबीजों का चलन इस ने प्रारम्भ किया। चीनी विज्ञान के इतिहास कार ली चिआओ पिंग के मतानुसार—'इस धूर्त की सत्ता का इतना मान था कि इसके विचारों का प्रभाव लगभग २००० वर्ष तक चीन पर रहा'।

वाई और चिन् राज्य काल में ईसा की दूसरी शताब्दी में क्यिाँगसू का निवासी वाई पोयाँग बड़ा प्रसिद्ध हुआ है। कीमियागरी पर इसकी लिखी पुस्तक "चाऊ यी त्सान् तुँग ची" विख्यात है। इस पुस्तक में 'अमृत' बनाने का विवरण है। इस कीमियागरी के विषय में यह किंवदती प्रसिद्ध है—एक बार इसने 'अमृत' की गोलियाँ बनाईं। अपने चेलों और कुत्ते को साथ लेकर यह एक पहाड़ी पर गया। उसने गोली पहले कुत्ते को खिलाई। कुत्ता गिर पड़ा और मरा सा प्रतीत होने लगा। फिर उसने स्वयं गोली खाई और वहीं गिर पड़ा। उसके एक चेले ने भी ऐसा ही किया और वह भी मृत प्राय सा गिर पड़ा। यह देख कर अन्य सब चेले भाग गये। थोड़ी देर बाद वाई पोयाँग उठा और उसने कुछ और गोलियाँ कुत्ते और अपने चेले के मुँह में डाल दीं कुछ समय पश्चात वह दोनों भी उठ बैठे इस प्रकार तीनों अमर हो गये।

सम्राट यूआन् के समय में (३१७-३२२) ई० को हुँग नाम के कीमियागर ने "पाओ-पू जू" नाम से एक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में उसने 'परिवर्तन के सिद्धान्त' के विषय में व्याख्या की है। उसके विचार कुछ इस प्रकार से थे।

बादल, कोहरा, पानी, बर्फ सब प्राकृतिक पदार्थ हैं किन्तु मनुष्य इनको अन्य पदार्थों से बना सकता है और इस प्रकार से प्राप्त पदार्थ प्राकृतिक पदार्थों से अभिन्न हैं। जानवरों, चिड़ियों और कीड़ों के विषय में भी यही कहा जा सकता है। इनका रूप प्रकृति की देन है किन्तु यह रूप कभी कभी बदला जा सकता है। आदमी का स्वरूप सबसे सूक्ष्मतर है किन्तु यह भी शेर बन्दर, कछुये इत्यादि में परिवर्तित हो सकता है। इतना ही नहीं जहाँ आज पहाड़ है वहाँ कल खाई हो सकती है और जहाँ आज खाई है वहाँ कल पहाड़ हो सकता है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है अतः अन्य धातुओं के स्वर्ण और चांदी में बदलने पर किसी को सन्देह न करना चाहिये। कुछ अल्प बुद्धि वाले समझते हैं कि जो बातें उनकी समझ में नहीं आती अथवा जो पुरानी पुस्तकों में नहीं हैं वह सब असत्य हैं। ऐसे मनुष्य महान् मूर्ख हैं।

तांग (६१८-९०७ई०) और सुंग (९६०-१२७९ई०) राज्य काल में भी कीमियागरी का प्रभुत्व था। इस समय के सम्राट जुई त्सुँग, हस्युयान त्सुँग और हसियेन, त्सुंग कीमियागरों का बड़ा मान करते थे। इस समय के प्रसिद्ध कीमियागर ल्यू येन, चाँग पो तुआन् और चेन तुआन् थे। ल्यू येन ने कई पुस्तकें लिखीं जिनमें पीले और सफेद जादू का ज़िक्र है। चाँग पो तुआन् ने' कीमियागरी पर 'निबन्ध' नाम से एक पुस्तक लिखी। इसने शारीरिक और आध्यात्मिक औषधियों में भेद स्थापित किया और 'अमृत' को आध्यात्मिक औषधि तत्त्व माना। चेनतुआन कीमियागरी का अध्ययन करके बहुत प्रसिद्ध हो गया किन्तु उसने सरकारी नौकरी लेने से सदा इनकार किया। उसका जीवन 'अमृत' की असफल खोज में ही समाप्त हुआ।

युआन् राज्य काल (१२७९-१३६८ ई०) में कीमियागरी का प्रभाव कम हो गया। इस काल में केवल एक ही महत्त्व पूर्ण पुस्तक इस विषय पर लिखी गई। इस पुस्तक का लेखक चेन ची हस्यु था। पुस्तक लिखने

के उपरान्त इसने अपने विचारों का प्रतिपादन करने के लिये भ्रमण करना और व्यख्यान देना प्रारम्भ किया। इस प्रकार इसने लग-भग सौ चेलों को तैयार किया। चीन में कीमियागरी का अन्तिम स्तम्भ चेन चीहर ही था। इसकी मृत्यु के उपरान्त चीन में इस प्रकार के विचारों का अन्त सा हो गया। मिंग ( १३६८-१६३४ ई० ) और चिंग ( १६४९-१९१२ ई० ) राज्य काल में कीमियागरी लोप सी हो गई। कदाचित् उस समय में भी कुछ बुद्धि भ्रष्ट कीमियागर पहाड़ों की खोहों में छुपकर प्रयोग कर रहे थे किन्तु उनके विषय में लिखित इतिहास से कुछ ज्ञात नहीं होता।

चीनी कीमियागरी में "अमृत" और "पारस" से अभिप्राय एक ही से पदार्थ से था। यह पदार्थ तरल समझा जाता था। इसको पीने से मनुष्य अमरत्व को प्राप्त हो सकते थे और इसी के प्रभाव से साधारण धातुओं को स्वर्ण अथवा रजत में बदला जा सकता था। इस तरल पदार्थ का नाम चिन् तान था। इसको प्राप्त करने के लिये जो विविध रीतियाँ बतलाई गईं हैं उनसे ज्ञात होता है कि यह चू शा अथवा तान शा से प्राप्त किया जाता था। आधुनिक विचार से चू शा अथवा तान शा का अर्थ पारद के खनिज सिनाबार (cinnabar) से था। ताओ त्सुंग के मतानुसार चिन तान प्राप्त करने के लिये तान शा, गन्धक और पारद की आवश्यकता पड़ती है। हुआंग पाइ चिंग नामक पुस्तक में लिखा है कि चिन तान प्राप्त करने के लिये तान शा और नाग ( lead ) की जरूरत होती है। को हुंग के मतानुसार भी तान शा लोगों को अमरत्व प्रदान कर सकता है। ऐसा जान पड़ता है कि चीनी कीमियागर प्रधानतः पारद, बंग ( Tin ) नाग ( Lead ) और गन्धक का प्रयोग करते थे।

चिन तान प्राप्त करने की एक विधि इस प्राकर थी। बंग (Tin) की एक चादर लो जो एक बालिश्त ( ९" ) लम्बी और एक बालिश्त ( ९" ) चौड़ी हो और जिसकी मुटाई तीन अंगुल ( १३/४ ) हो। इस पर मिट्टी, लाल लवण और चूने का पानी पोत दो। लाल मिट्टी से बने बर्तन में इसको बन्द कर दो और ऊपर से बर्तन का मुहं अच्छी तरह बन्द कर दो। घोड़े की लीद से प्राप्त कड़ों की आग में इसे तीस दिन तक फूँको। अब खोलो। पात्र में राखी के बीच में छोटे छोटे "स्वर्ण" के कण प्राप्त होंगे।

को हुआँग के मतानुसार लोहे के पात्र में फिटकरी को अग्नि पर पकाओ। उचित मात्रा में पारद मिलाओ और गरम करते जाओ। जब यह मिश्रण पक कर तैयार हो जाय तो इसे भूमि पर उलट दो। रजत के समान एक पदार्थ प्राप्त होगा। अब एक दूसरा पात्र लो। इसमें तान शा एक भाग और नीला त्सेंग चिंग ( कदाचित् कोबल्ट का खनिज ) एक भाग और लाल तरल पदार्थ ( कदाचित् Orpiment liquor ) दो भाग मिलाकर हलकी आँच पर गरम करो। जब यह खूब अच्छी तरह पक जाय तो इसमें पहले दी गई रीत से प्राप्त रजत-पदार्थ मिलाओ और कोयले की तीव्र अग्नि पर गरम करो। जब सब अच्छी तरह से पक जाय तो भूमि पर उलट दो। इस प्रकार अति उत्तम नील वर्ण स्वर्ण प्राप्त होगा।

उपरोक्त उदाहरणों से ऐसा जान पड़ता है कि यह "स्वर्ण" कदाचित् मिश्र धातु संकर थे जिनका रूप रंग स्वर्ण के समान था।

पारद और गन्धक के योग से भी कई औषधियाँ बनाई जाती थीं जिनमें अद्भुत् गुण पाये जाते थे। 'अमृत' भी इसी प्रकार तैयार किया जाता था। पुरानी पुस्तकों में दिये प्रयोगों से ज्ञात होता है कि यह 'अमृत' मरकरी सलफाइड (Mercury Sulphide) का ही कोई रूप था।

चीनी कीमियागरों ने चिन तान की खोज में अनेक पदार्थों का अध्ययन किया। ऐसा करने में उन्हों ने कई प्रकार के पात्रों का प्रयोग किया। उत्क्षेपण तथा श्रवण क्रिया से वह भली भाँति परिचित थे। अनेक प्रकार की घरिया के प्रयोग उन्हें ज्ञात थे। विभिन्न प्रकार की भट्टियाँ भी उन्होंने बनाई थीं। चिन तान तो उन्हें प्राप्त नहीं हो सका किन्तु इस खोज में उन्होंने कई अन्य वस्तुओं का निर्माण किया और कई उपयोगी पदार्थ प्राप्त किये।

# पार्थिव विज्ञान

लेखक०—श्री नत्थन लाल गुप्त

[ विज्ञान के पिछले अंकों से क्रमशः यह लेख प्रकाशित किया जा रहा है, इन पृष्ठों में भू-तल परिवर्त्तनकारी आन्तरिक शक्तियों का एक सरल वर्णन है ]

३—भू-तल परिवर्त्तन कारी आन्तरिक शक्तियां।

पृथ्वी के ऊपर का तल ठंडा और ठोस है, किन्तु इस के गर्भ में भयानक आग भरी हुई है। पृथ्वी के भीतर की यह आग भी भू-तल पर बड़े २ परिवर्तन लाती है। यह परिवर्त्तन तीन प्रकार से होते हैं:-

१-ज्वालामुखी पर्वतों द्वारा

२-भू- डोलों द्वारा

३-भू-तल के धीरे २ ऊपर को उठने वा नीचे को खिसकने द्वारा।

१—ज्वालामुखी पर्वतों का कार्यः—

यह कोणाकृति के ऊंचे २ टीले से होते हैं और उन की चोटी पर एक बड़ा कटोरा सा होता है, जो ज्वालामुख कहलाता है। इस छिद्र में से आग, धुआँ, राख, वाष्प, अनेक प्रकार की गैसें और जलते हुए पत्थर निकलते हैं। कभी २ शीरे के समान पिघली हुई चट्टानों का प्रवाह बह निकलता है और दूर २ तक फैल जाता है। यह पिघला हुवा पदार्थ लावा (Lava) कहलाता है।

ज्वाला मुखी पर्वतों की असलियत के सम्बन्ध में विद्वानों का विचार है, कि समुद्र का पानी भू-आकर्षण के कारण हर समय चट्टानों में से रिस २ कर जमीन के नीचे उतरता रहता है और जब जमीन के उस भाग में पहुँच जाता है, जो अत्यन्त उष्ण है, तो बाष्प बन जाता है। यह तो तुम जानते ही हो कि बाष्प में कितना बल होता है, अतः यह बाष्प भूमि के उस भाग को, जो कुछ निर्बल होता है, बड़े जोर से तोड़ कर बाहर निकल आती है। उस के साथ ही भूमि के भीतर से और भी अनेक पदार्थ निकल पड़ते हैं। उन्हीं पदार्थों के छिद्र के आस पास इकट्ठा हो जाने से कोणाकार टीला सा बनजाता है। इस विचार का समर्थन इन दो बातों से होता हैः— प्रथम यह कि ज्वालामुखी पर्वत अधिकतर समुद्र तट के निकट द्वीपों में पाये जाते हैं। दूसरे ज्वाला निकलने से पहले बहुत सी वाष्प ही निकला करती है। अन्य पदार्थ पीछे निकलते हैं।

कुछ ज्वाला मुखी पर्वत सर्वदा आग उगलते रहते हैं। वह अधिक खतरनाक नहीं होते, क्योंकि उनका जोश हर समय खारिज होता रहता है। पर बहुत से ज्वालामुखी मुद्दतों चुपचाप पड़े रहते हैं मानों वह सोये पड़े हैं। उस समय उनके चारों तरफ बस्तियाँ बस जाती हैं और हर तरफ हमें हरे वृक्ष और हरी खेतियाँ लहलहाती दृष्टि आती हैं। किन्तु अचानक ही वह जालिम फूट निकलते हैं और दम के दम में सब कुछ नष्ट कर डालते हैं।

अग्नि वर्षा से पहिले, प्रायः, पृथ्वी के नीचे एक बड़ी हड़बड़ाहट पैदा होती है और ऐसा शब्द सुनाई देता है मानो बादल गर्ज रहे हैं इसके पश्चात पृथ्वी हिलने लगती है। फिर हड़बड़ाहट और बढ़ जाती है। कभी कभी कुओं का पानी गंदला हो जाता है। किसी समय कुएं बिलकुल सूख जाते हैं और सोते बहने बन्द हो जाते हैं। इस बीच में एक बड़ी कड़क सुनाई देती है और पहाड़ फट जाता है।

सबसे पहले बहुत सी वाष्प और गैसें खारिज होती हैं। वाष्प के बड़े बड़े गोले मुख में से निकल कर आकाश की तरफ चढ़ते और ऊपर जाकर फैलते जाते हैं। उनके साथ बहुत सी बारीक राख भी निकलती है। राख से तात्पर्य लकड़ी व कोयले की राख के समान कोई पदार्थ नहीं है, वरन यह

राख के समान अत्यन्त बारीक मिट्टी होती है। यह चट्टानों के अत्यन्त बारीक पिस जाने से पैदा होती है याकि किसी चीज के जलने से, किन्तु वह प्रगट में राख के समान प्रतीत होती है इसलिये राख कहलाती है। ऊपर जाकर वाष्प ठंडी होकर बरसने लगती है। इस से पहाड़ के ढालों पर भी तमाम राख मिट्टी चारों तरफ बह निकलती है। और दूर-दूर तक फैल जाती है।

वाष्प और गैसों के पश्चात दहकते हुए पत्थर मिट्टी और राख खारिज होती है। यह पदार्थ कुछ तो उस लावे से निकलते हैं, जो ज्वालामुख के कटोरे में भरा होता है और कुछ ज्वालामुख की दीवारों से यह पत्थर जब आकाश की तरफ उडते हैं, तो आपस में टकराते जाते हैं और इस प्रकार चूर २ हो जाते हैं। इन टक्करों के कारण भी एक बड़ा भयानक शब्द पैदा होता है। पत्थर मिट्टी आदि का बहुत सा भाग तो पहाड़ की ढलानों पर गिर जाता है और कुछ ज्वाला मुख के कटोरे में वापिस जा पडता है और फिर दोबारा फेंका जाता है। अत्यन्त बारीक राख बहुत ऊंची चढ़ जाती है, हवा उसे बहुत दूर २ तक उड़ा ले जाती है और बहुत दिनों तक, धीरे २, भूमि पर गिरती रहती है। कभी २ यह राख उस पहाड़ से जिस से वह फेंकी गई थी, एक हजार मील के अन्तर पर देखी गई है।

इसके पश्चात पहाड़ के मुख से लावा और स्थानों से भी जहां पहाड़ में छिद्र हों, लावा बहने लगता है वह लावा पिघली हुई चट्टानें होती हैं। वह इस बहुतायत से निकलता है, कि निचान की तरफ एक बड़ी धार बहने लगती है और मीलों तक बहता चला जाता है, तथा जो ग्राम वा नगर उस के मार्ग मे पड़ जाता हैं उसे जला कर राख बना देता है। लावे से भी भापके ही गुबारे उठते रहते है।

जब लावा निकलता है, तो पिघले हुए लोहे के समान धधकता हुआ और श्वेत रंग का होता है। थोड़ी देर मे ठंडा होकर लाल अंगारे के समान चमकने लगता है। कुछ और उष्णता निकल जाने पर ऊपर की सतह पर पपड़ी जम जाती है और उसके नीचे नीचे इस प्रकार गर्म और पिघला हुआ लावा बहता रहता है, मानों अब धार नल ये भीतर से बहती है।

ज्वालामुखी पर्वतों का काम यह है, कि वह पृथ्वी के गर्भ मे से ताजा द्रव्य निकाल कर बाहर भूमि पर फैला देते हैं। इससे वह अपने आकार को भी बढाते रहते हैं और आस पास की भूमि को भी ऊँचा कर देते हैं। वसुवियस (Vasuvious) नाम के ज्वाला मुखी पर्वत ने सन् १७७६ ई० में इतना द्रव्य अपने पेट में से निकाल कर बाहर फेंक दिया था, कि उससे दो बड़े नगर, जो उसके दामन मे बसे हुये थे, चन्द घंटों में बिलकुल दफ़न हो गये थे। मैक्सिको मे जरेलू नामी पर्वत सन् १७५६ ई० में अग्नि वर्षा द्वारा पैदा हो कर केवल दो दिनो में पृथ्वी तल से ११०० फीट ऊँचा हो गया था। और अब उस की ऊँचाई चार हजार तीन सौ (४३००) फीट तक पहुँच चुकी है। सन् १६६६ ई० में ऐटना (Etna) पर्वत के एक मुहाने से इतना लावा निकल पड़ा था, कि उसकी धारा, जो लगभग ५ मील चौड़ा थी, १५ मील तक बहती चली गई थी। इसी प्रकार आइसलैंड (Iceland) द्वीप के एक ज्वाला मुखी पर्वत से, जिस का नाम स्कैप्टर योकुल (Skaptar yokul) है, सन् १७८३ ई० में लावे की एक धार निकली थी जिसकी लम्बाई ५० मील और चौड़ाई १२ मील थी।

किसी किसी समय अग्नि वर्षा की क्रिया समुद्र के नीचे होती है। इस अवस्था में समुद्र के पानी में बड़ी हलचल मच जाती है, और जो द्रव्य इस क्रिया से खारिज होता है उससे समुद्र की तली में एक ऊँचा टीला खड़ा हो जाता है, जिसकी चोटी कभी कभी तो पानी के ऊपर निकल आती है। सन् १८३१ ई० में सिसली द्वीप के निकट इस प्रकार से एक टापू बन गया था, जिसका नाम ग्रहम द्वीप

( Graham's Isle ) रक्खा गया था, किन्तु कुछ महीनों में ही समुद्र की लहरों ने उस टापू को नष्ट कर दिया और वह सारा पदार्थ, जिससे वह टापू बना था, समुद्र की तली में फैल गया।

ज्वालामुखी पर्वत दो प्रकार के होते हैं। (१) सजीव (२) निर्जीव। सजीव पर्वतों में से कुछ तो ऐसे हैं जो सर्वदा आग उगलते रहते हैं, और कुछ ऐसे हैं, जो कुछ काल शान्त रह कर फिर अचानक ही भड़क उठते हैं। जब कोई ज्वाला मुखी शान्त अवस्था में होता है तो वह सुशुप्त ज्वाला-मुखी कहलाता है।

कुल दुनियाँ में हजार के लगभग ज्वाला पहाड़ हैं। इनमें से केवल ३०० से कुछ ऊपर सजीव और शेष निर्जीव हैं। उनकी कोणाकृति और चोटी पर का अग्नि मुख ही इस बात का प्रमाण है, कि वह भी कभी अग्नि उगला करते थे। जीवित पहाड़ों में से लगभग २/३ शान्त महासागर और हिन्द महा सागर के तहों और द्वीपों पर पाये जाते हैं।

लगभग सारे ज्वाला मुखी दो कतारों में फैले हुए हैं। पहली कतार शान्त महासागर के तट के साथ साथ दीर्घ वृत्ताकार में स्थित है। यह अमेरीका महाद्वीप के दक्षिणी सिरे से आरम्भ हो कर अण्डीज पर्वत तथा रॉकी पर्वत के ऊपर से गुजरती हुई एलासका तक पहुँचती है और वहाँ से अल्यूशन द्वीप समूह के ऊपर से होती हुई केमूच कटका प्राय द्वीप में पहुँच जाती है, यहाँ से कोरल द्वीप समूह, जापान द्वीप समूह तथा फारमूसा द्वीप के ऊपर से होती हुई फैलपाईन द्वीप समूह में, और फिर वहाँ से पूर्वीय भारतीय-द्वीपसमूह में पहुँच जाती है। यहाँ पहुँच कर यह कतार दो शाखाओं में विभक्त हो जाती है। एक शाखा पश्चिम की ओर जावा और सुमात्रा द्वीपों में से गुजर कर बंगाल की खाड़ी में पहुँच जाती है और दूसरी शाखा दक्षिण पूर्व की ओर सेलीबेज, न्युगिनी, सुलेमान, न्युहैबेडेज तथा न्युजीलैंड द्वीपों पर से गुजरती हुई दक्षिणी ध्रुवीय महाद्वीप पर पहुँच कर समाप्त हो जाती है।

दूसरी कतार अन्ध महासागर के मध्य में से गुजरती है। यह जान मायन (Jan mayan) टापू से आरम्भ हो कर आईसलैण्ड (Iceland) फारो और स्कॉट लैण्ड के पश्चिमी द्वीपों पर से गुजर कर द्वीप समूह अजारज, केनेरी तथा केपवर्ड और अन्य ज्वाला मुखी द्वीपों पर से गुजरती है, जो अफरीका महाद्वीप के पश्चिमी तट के निकट है। इस कतार में से एक शाखा पश्चिम की तरफ फटकर पश्चिमी हिन्द द्वीप समूह तक पहुँचती है और दूसरी शाखा पूर्व दिशा में भू मध्य सागर में से गुजर कर यूनान द्वीप समूह तक पहुँचती हैं।

इससे स्पष्ट है कि ज्वालामुखी पर्वत लगभग प्रत्येक कटिबन्ध में पाये जाते हैं। किन्तु उनका आधिक्य उष्ण कटिबन्ध में हैं। दुनियां में सब से ऊँचा ज्वाला मुखी पर्वत कोटोपैक्सी (Cotopaci) दक्षिणी अमेरिका में हैं उसकी चोटी हमेशा बर्फ से ढकी रहती है। किन्तु जब उसके भड़क उठने का समय आता है, तो वह तमाम बर्फ पिघल कर बह जाती है, जिस से आस पास के प्रान्तों में पानी की बाढ़ आ जाती है। दुनिया में सब से बड़ा ज्वाला मुखी पर्वत हवाई (Hawaii) टापू में है। उसके ज्वालामुख का घेरा ६ मील के लगभग है।

### कीचड़ के पहाड़ तथा गर्म सोते

ज्वाला-मुखी पर्वतों के अतिरिक्त कहीं २ कीचड़ के टीले भी पाये जाते हैं। यह भी कोणाकार होते हैं और उस में ज्वाला मुख के समान एक छिद्र भी होता है। इस छिद्र में से आग-धुयें की जगह केवल पानी की भाप और लावे की जगह कीचड़ निकलता है जो टीले के चारों तरफ बह जाता है। इससे टीले का आकार सर्वदा बढ़ता रहता है। सिसली द्वीप में इस प्रकार का एक टीला १५० फीट ऊँचा है दक्षिणी अमेरिका में कारथिजना नगर के समीप ऐसे बीस के लगभग कीचड के टीले पाये जाते हैं, जिन की ऊँचाई २४ और ३० फीट के बीच में है और उन के मुहाने २ फीट के लग भग चौड़े हैं।

इसी तरह कहीं २ उबलते हुए पानी के सोते भी ज़मीन से निकलते हैं ; जिनका पानी फव्वारे के समान हवा में कभी २ अस्सी २ और सौ २ फिट तक उछलता है। इस प्रकार के सोते गेसर ( Geyser ) कहलाते हैं। इनका कारण भी पृथ्वी के भीतर की उष्णता ही है। जब पानी पृथ्वी के नीचे बहुत गहरा उतर जाता है तो पृथ्वी के भीतर की गर्मी से खौलने लगता है। उसका बहुत सा भाग भाप बन जाता है। यह भाप जब किसी तंग मार्ग से बाहर निकलती है, तो उस के साथ ही पानी भी उछलने लगता है। इस प्रकार के सोते आईस लैण्ड, न्यूजीलैंड और संयुक्त प्रान्त अमेरिका में बहुत मिलते हैं। आईसलैण्ड द्वीप में तो दो मील विस्तार का एक सम स्थल है, जिसमें उबलते हुए पानी के लग भग १०० सोते उछलते हैं। उनमे से कुछ तो बहुत छोटे और कुछ बहुत बड़े हैं। इस पानी में कुछ ठोस पदार्थ घुले हुए होते हैं, जो बाहर आकर सोते के आस पास जम जाते हैं। इससे सोते के पास-भूमि ऊँची हो जाती है और उसमें एक कटोरा सा बन जाता है। आईसलैण्ड में एक सोते का कटोरा भूमि से १५ फिट ऊँचा है और उस का व्यास ५६ फीट के लगभग है। उस के मध्य में एक छिद्र पृथ्वी के भीतर चला गया है जिसका व्यास ८ फिट है। छिद्र में से हर समय खौलता हुवा पानी उबल २ कर निकलता रहता है और कटोरे में भरता है। जब कटोरा ऊपर तक भर जाता है, तो किनारों के ऊपर से गुजर कर चारों तरफ को फैल जाता है। कुछ घंटों के पश्चात् छिद्र में हड़बड़ाहट सी पैदा होती है। जिससे कटोरे के पानी में हलचल पैदा हो जाती है। इसके साथ ही पानी की धार हवा में उछलने लगती है। उसके साथ २ बहुत सी भाप भी निकलती है।

"टिहरी गढ़वाल राज्य में यमनोत्तरी के स्थान पर ऐसे ही छिद्र पाये जाते हैं जिनमें होकर पृथ्वी के गर्भ से उबलता हुआ पानी और गर्म भाप निकलती है। उबलता हुआ जल कुछ गढों में जमा हो जाता है। यात्री, जो वहाँ जाते हैं, उसमें चावल, दाल, शाक आदि कपड़े में बाँध कर डालते और भोजनार्थ पकाते हैं।" ( श्री गंगा प्रसाद जी एम० ए० रिटायर्ड चीफ जस्टिस गढवाल राज्य )

२–भू-डोल का कार्य:—कभी २ हमारे पाओं के नीचे अचानक ही पृथ्वी हिलने लगती है। इसे हम भू-डोल वा भू-चाल कहते हैं। भू-डोल कभी २ तो ऐसा आता है, कि उससे कुछ हानि नहीं होती, किन्तु किसी २ समय ऐसे जोर से आता है, कि उससे मज़बूत से मज़बूत मकान भी गिर जाते हैं और नगर के नगर नष्ट हो जाते हैं जैसा कि सन् १९०५ ई० के भू-डोल से जिला काँगड़ा नष्ट हो गया था और अभी हाल ही में १९३४ ई० में कोटा नष्ट हो चुका है। भूचाल का प्रभाव कभी २ थोड़े क्षेत्र पर होता है और किसी २ समय बहुत बड़े क्षेत्र पर। सन् १७५५ ई० में जो भू-डोल लजवन में आया था और जिससे ७००० मनुष्यों की मृत्यु हो गई थी, उसका प्रभाव पूर्व में ऐल्प पर्वत तक, दक्षिण में सूडान के तट तक और पश्चिम में पश्चिमी हिन्द द्वीप समूह तक मालूम किया गया था।

भू-चाल वास्तव में एक प्रकार की लहर के समान कम्पन-गति है, जो किसी विशेष स्थान से आरम्भ हो कर हर तरफ को फैल जाती है। यह गति भूमि के भीतर कहीं किसी प्रकार का धक्का पहुँचने से पैदा होती है। जिस स्थान पर धक्का लगता है, उस के ठीक ऊपर भूडोल की गति बहुत प्रबल और ऊपर नीचे को होती है किन्तु जो स्थान उस से दूर होते जाते हैं, वही गति क्रमशः हल्की पड़ती जाती है, और उस का रुख तिरछा होता जाता है। इससे हम अनुमान कर सकते हैं, कि पृथ्वी के नीचे किस स्थान पर धक्का लगने से भूडोल पैदा हुआ है। यह स्थान कभी-कभी पृथ्वी तल से पाँच २ मील नीचा मालूम हुआ है।

### भू-डोल के परिणाम

भू-डोल से निम्न लिखित परिणाम प्रगट होते हैं:—

१—मकानों का गिरना:—जब ज़ोर से भू-चाल आता है, तो अत्यन्त पक्के मकान भी गिर जाते हैं। जिस स्थान से भू-चाल आरम्भ होता है, वहाँ, चूँकि भू-चाल की कम्पन गति ऊपर नीचे होती है, इस लिये मकानों की केवल छतें गिर जाती हैं और दीवारों को बहुत कम हानि पहुँचती है। किन्तु अन्य स्थानों में, चूँकि गति तिरछी होती है, इसलिये दीवारें भी टूट जाती हैं और बड़े २ राज प्रासाद भी धराशायी हो जाते हैं।

२—भूमि का ऊँचा नीचा हो जाना—भू-डोल के कारण कभी २ भूमि के बड़े २ भाग नीचे को धसक जाते हैं वा ऊपर को उठ जाते हैं। सन् १८११-१२ ई० के भू-डोल में मिससिपी की घाटी में भूमि का एक बहुत बड़ा भाग, जिसकी उत्तर-दक्षिण लालाई ८० मील और पूर्व पश्चिम चौड़ाई ३० मील थी, नीचे को धसक गया था और उसमें पानी भर जाने से एक बड़ी झील बन गई थी। चिल्ली तथा न्यू जीलैण्ड का तट कई बार भू-चाल के कारण ऊपर को उभर चुका है। इसी प्रकार सन् १८१९ ई० में, भू-डोल के कारण, कच्छ में भूमि का एक बहुत बड़ा भाग नीचे को खिसक गया था, और उस के पास ही एक दूसरे स्थान पर एक भाग ऊपर को उभर आया था, कभी २ समुद्र की तली के ऊपर उठ जाने से नवीन टापू भी बन जाते हैं।

३—भूमि का फट जाना:—भू-डोल के धक्के से कभी २ भूमि फट जाती है। इस से प्रायः छोटी २ दराड़ें पड़ जाती है, जिनकी लम्बाई चन्द गज होती हैं, किन्तु किसी समय बहुत बड़ी २ दराड़े भी पड़ जातीं हैं, जो १०० फिट चौड़ी और आधा वा पौन मील लम्बी होती हैं। कभी ऐसा भी देखने में आया है कि भू-डोल के कारण अचानक ही भूमि फट गई है, और बहुत से मनुष्य और पशु दराड़ों में गिर गये हैं, और वह दराड़ें फिर मिल गई हैं। किसी २ समय दराड़ों में से बहुत सा पानी वा कीचड़ वा भाप भी निकलती हुई देखी गई है।

४—नदी के प्रवाह का रुक जाना:—कभी २ ऐसा भी देखने में आया है, कि भू-चाल के धक्के से पहाड़ों में बहुत सा पत्थर मिट्टी टूट कर घाटियों में गिर जाता है और किसी नदी के मार्ग को जो धारी में वह रही हो, रोक लेता है, इससे उस का प्रवाह कुछ समय के लिये बन्द हो जाता हैं, किन्तु जब बहुत सा पानी इकट्ठा हो जाने से बन्द टूट जाता है, तो पानी बड़े जोर से वह निकलता है और नदी में चढाव आ जाता है और किनारे के बहुत से ग्राम बह जाते हैं तथा हजारों जाने नष्ट हो जाती हैं। जिला गढवाल मे अलकनन्दा नदी में आने वाले एक बड़े नाले का प्रवाह चमोली के पास इसी प्रकार सन् १८९५ के लगभग एक पहाड़ के गिरने से रुक गया और जल के इकट्ठा होने से एक झील सा बन गया, जो गुहना-झील के नाम से विख्यात हुआ युक्त प्रान्त के इंजिनियरों ने जाँच करके यह परिणाम निकाला कि कुछ समय में यह झील टूट कर अलकनन्दा में इतना पानी बढ़ेगा कि वह उस स्थान के नीचे नदी के किनारे की सब धर्मशालाओं और दुकानों को हरद्वार तक बहा कर ले जायेगा और उस समय वहाँ जितने मनुष्य होंगे वह सब भी बह जायेंगे। इंजिनियरों की सलाह से सरकार ने यह आज्ञा जारी कर दी कि चमोली के नीचे देव प्रयाग, रिखी केशव हरद्वार तक गणित के समय से १ दिन पहले सब दुकाने, चट्टी व धर्म शाला खाली करा दी जायें और बाढ के निकल जाने तक खाली रहें।

इंजिनियरों का हिसाब बिल्कुल ठीक निकला सन्१८९९ई० में नियत समय पर गुहना झील टूटा और अलकनन्दा व देव प्रयाग के नीचे भागीरथी गंगा में इतनी बाढ़ आई कि वह १०० मील से गंगा के किनारे यात्रा की सब धर्म शालाओं दुकानों और पुलों को बहा कर ले गई। परन्तु ऊपर लिखे प्रबन्ध के कारण किसी मनुष्य की मृत्यु न होने पाई यह बाढ़ Gobua flood के नाम से प्रसिद्ध हुई (गंगा प्रसाद जी !) कभी वह गिरा पड़ा मलवा इतना अधिक होता है कि पानी उसे बहा नहीं सकता। इस

से घाटी से एक स्थायी झील बन जाती है; और झील के ऊपर तक भर जाने पर नदी उस के किनारे के किसी नीचे स्थान से बह निकलती है।

कभी किसी झील का किनारा टूट जाने से झील का पानी बह निकलता है और नवीन दरिया पैदा हो जाता है। कभी २ किसी दरिया के मार्ग में भूमि उभर आने से दरिया अपना मार्ग बदल लेता है।

५—समुद्र के पानी का पृथ्वी पर चढ़ आना :— भू-डोल के कारण समुद्र में बड़ी २ लहरें उठने लगती हैं। उनकी ऊँचाई प्रायः ६० फीट से ८० फीट तक होती है। यह बड़े जोर के साथ आकर किनारे से टकराती हैं, दूर तक भूमि पर चढ़ती चली आती हैं और जो चीज सामने आजाती है उसे बहा ले जाती हैं। सन् १७५५ ई० के भू-डोल में लिजबन नगर के ६००० निवासियों को समुद्र की लहर बहा ले गई थी।

भू-डोल के कारण

ख्याल किया जाता है, कि भू-डोल निम्न कारणों से पैदा होता है:—

१— जब कोई ज्वालामुखी फट निकलता है, तो उसके आस पास की भूमि में भू-डोल पैदा हो जाता है। इस लिये जिन देशों में ज्वालामुखी पर्वत बहुत होते हैं, वहाँ भू-डोल बहुतायत से आया करते हैं।

२—समुद्र का पानी रिस २ कर पृथ्वी के भीतर की अग्नि तक पहुँच जाता है, तो उसकी भाप बन जाती है, और चूँकि भाप पानी की अपेक्षा अधिक स्थान घेरती है इस लिए वह निकलने के लिये बल करती है। इससे भू-डोल पैदा हो जाता है।

३— पृथ्वी का भीतरी गर्म भाग ठंडा हो कर सिकुड़ता रहता है जिससे पृथ्वी के भीतर अवकाश पैदा हो जाता है—भू-आकर्षण के कारण चट्टानों के बड़े २ टुकड़े टूट २ कर उस अवकाश में गिरते हैं वा भूमि का कोई बड़ा भाग ही नीचे को खसक जाता है। इससे आस पास की भूमि थर्राने लगती है।

४— जब पृथ्वी का भीतरी उष्ण पदार्थ किसी ऐसे स्थान पर जहाँ उसके निकलने को मार्ग नहीं मिलता, जोश में आता है तो वह पृथ्वी को हिला डालता है। ऐसी अवस्था में भूमि का कोई भाग प्रायः ऊँचा उठ जाता है।

५—भूमि का धीरे २ ऊपर को उभरना वा नीचे को धसकना:— हम यह तो अभी बतला चुके हैं, कि किसी ज्वालामुखी पहाड़ के फटने वा भू-डोल के पासके भूमि के कुछ भाग अचानक ही ऊपर को उभर आते वा नीचे को धसक जाते हैं। पर प्रायः यह भी देखा जाता है कि भूमि के कुछ भाग अज्ञात तौर पर धीरे २ क्रमशः ऊपर को उभरते वा नीचे को खिसकते रहते हैं जैसा कि स्कैण्डनेवीया प्रायद्वीप की बाथनियाँ खाड़ी वाला तट क्रमशः ऊपर को उठ रहा है। इसी प्रकार उसका उत्तर पश्चिमी किनारा भी बराबर ऊपर को उठ रहा है किन्तु दक्षिणी तट धसक रहा है। काण्ड वा क्रेटस द्वीप का दक्षिणी और पश्चिमी तट भी इसी प्रकार बहुत सा उभर आया है क्योंकि उन तटों पर प्राचीन यूनानियों के बनाये कुंए, बन्दरगाहों के चिन्ह समुद्र तट से १६ फीट की ऊंचाई पर पाये जाते हैं। टस्कनी और सारडिनिया के कुछ भागों में समुद्री घोंघों की तहें समुद्र की सतह से ३०० फीट की ऊँचाई पर पाई जाती हैं। तथा ट्यूनिस बन्दरगाह के समुद्र की तलो धीरे २ ऊपर को उभरने के कारण दिन प्रतिदिन उथली होती जा रही है।

# बैक्टीरियोफैग या शाकाणून्मूलक

## BACTERIOPHAGE

लेखक०—श्री जयनारायण बी० एस० सी०

[ शाकाणुओं के विषम शत्रु "बैक्टीरियोफैग" का अध्ययन आज वैज्ञानिकों के लिए एक जटिल किंतु मनोरंजन समस्या का रूप धारण कर चुका है। जीवित, जीव हीन या दोनों अवस्थाओं के मध्यवर्ती—किस संज्ञा में ये आते हैं, इसका आंशिक ज्ञान निम्न लेख में मिलेगा ]

लाइनेन हाक्स सर्व प्रथम व्यक्ति था जिसने दांतों से निकलने वाले लाल-श्वेत पदार्थ को सूक्ष्म दर्शक यंत्र द्वारा देखने पर चलते फिरते प्राणियों को पाया था। और उसने इन्हें सूक्ष्म जीवाणु कहा (animalcule)। लुई पस्तूर ने जो कार्य १८८२ ईस्वी में किये उनसे शाकाणुओं (bacteria) का वास्तविक अन्वेषण आरंभ समझना चाहिये। १५ सितम्बर १९१७ ईस्वी में बेक्टीरीयोफेग की गवेषणा का पत्र प्रकाशित हुआ। यह पत्र फ्रांन्स का एकेडेमेस डेस साइन्सेज (Acadames des Sciences) नामक वैज्ञानिक संस्था को डा० राड द्वारा प्रदान किया गया था जिसका शीर्षक एक अदृश्य क्षुद्रतम प्राणी, 'पेट मे के बेसिलस का शत्रु' था। डा० फेलिक्स हेरेलेने टिप्पणी में इस क्षुद्रतम प्राणी का नामकरण बेक्टीरीयोफेग किया। बेक्टीरीयोफेग बेक्टीरीय जगत के विरस हैं; अन्य विरसों (viruses) की भाँति ये जीवित सेलों के सहधर्मी हैं जो उनको भोजन देती हैं और सम्पूर्ण बिरसों मे सबसे बड़े विरस की भाँति प्रकाश सम्बन्धी माइक्रोस्कोप के द्वारा देखे जाने के लिए अत्यन्त सूक्ष्म हैं। यह अवस्था प्रारंभिक स्थूलाणुओं (particles) की है जिनसे जीवन का सृजन हुआ है।

टर्वोर्ट ने १९०५ ईसवी में आदि जीवनधारियों के जीवन की आवश्यक वस्तुओं पर खोज ब्राउन इंस्टटियूशन लंडन में प्रारंभ की। इस समस्या ने तीन पहलू उपस्थित किए थे; भोजन के आधार का रासयनिक विन्यास जिस पर आदिम जीवधारियों की कृषि निर्भर है, भौतिक दशांए जो कि भिन्न-भिन्न माध्यमों के लिए उपस्थित की जांयगीं, स्वतंत्र जीवन माल के विकसित करने में उनका स्वभाव, और एक जीवन की दूसरे पर प्रतिक्रिया।

प्रथम तो टर्वोर्ट ने कुष्ट, राजरोग और जोह्न की बीमारी की दशाओं की ओर ध्यान दौड़ाया। राजरोग के कीटाणुओं का प्रजनन कृत्रिम आधार पर बिना साधारण जीविता माध्यम के कराया गया। तीनों कीटाणुओं में विशेष समता है, अतएव निष्कर्ष यह निकला कि तीनों कीटाणुओं को एक ही प्रकार की खाद्य सामग्री की आवश्यकता होगी। राजरोग के कीटाणु में यह विशेषता पायी गयी कि वह एक 'आवश्यक खाद्य' सर्व साधारण सामग्रियों से प्राप्त कर सकता है जब कि अन्य दो कीटाणुओं में यह क्षमता न पायी गयी। इस वैज्ञानिक ने इस 'आवश्यक खाद्य' को निकालने का प्रयत्न किया जिसको वह कृत्रिम आधार में मिश्रित करने पर लेपरा और जौह्न के कीटाणुओं का उत्पादन कर सके। टर्वोर्ट की यह आवश्यक सामग्री तदनन्तर अन्य वैज्ञानिकों द्वारा विटामिन 'के' सिद्ध की गयी। १९१० ई० में जौहर के कीटाणुओं के प्रजनन में यह वैज्ञानिक सफल हुआ। टर्वोर्ट ने अब उन क्षुद्रतम प्राणियों की ओर गवेषणा प्रारम्भ की जो स्वयं अपने पोषक पदार्थों को बिना ऐन्द्रीय खाद्य सामग्रियों के तैयार कर सकते हैं। ये सब उन प्राणियों से जिनमें क्लोरोफिल रहता है, भिन्न श्रेणी में है।

कई प्रयोग प्रारंभ किये गए जिनका मुख्य ध्येय विरसों के उत्पादन का था। कई प्रकार की वस्तुएँ माध्यम के लिए चुनी गयीं जिनमें मनुष्यों, पशुओं

और वनस्पतियों के रुग्ण तंतु और मिट्टी, मल, शुष्क घास और तालाब का पानी मुख्य हैं। इनमें विरस कुल (Virus) के जंगली अरुग्णोत्पादक (Nonpathogenic) कीटाणु अधिकता से मिलते हैं और यदि इनको अनुपस्थित खाद्य दिये जाते हैं तो इनको स्वयंमेव जीवन बहन करने में प्रेरणा मिल सकती है। साथ ही साथ भौतिक उपयुक्त दशाओं की उपस्थिति भी अनिवार्य है। इन प्रयोगों का विस्तारमय तो क्या संक्षिप्त वर्णन देना असंभव है पर फिर भी उन प्रयोगों का जिनसे 'बेक्टीरीयनाशक प्रेषक' (Bacteriolytic agent) का अनुसंधान हुआ है, वर्णन उचित एवं संभव है। 'विटामिन' के (k) को टवोर्ट ने तिमोथी घास के पिण्डों से (Timothy grass tubercles) प्राप्त किया और इससे जोहन कीटाणुओं और बेक्सीनिया विरस का प्रजनन करने में अद्भुत सफलता प्राप्त की। यह उन्होंने पाया कि तिमोथी घास के पिण्ड बड़ी गति से विटामिन के (k) का उत्पादन करते हैं जहाँ कि अत्यन्त शक्तिशाली खाद्य के माध्यम में उत्पन्न किए गए कीटाणु बहुत कम विटामिन उत्पन्न कर पाते हैं।

'अगर' के माध्यमों (agar media) में बेक्सीनिया लिम्फ मिश्रित किया गया और ३६. से २४ घंटों के लिए रक्खे गए। निश्चित समय के बाद इनमें सफेद और पीले माइक्रो गोलाणुओं (micro cocci) के कुछ वृन्द दृष्टिगोचर हुए। लेकिन कुछ नलियों में सूक्ष्म शीशे की भाँति पारदर्शक क्षेत्रों का अवलोकन किया गया। इन क्षेत्रों की उत्पादन शक्ति नष्ट हो चुकी थी फिर २४ घंटों तक रखने पर श्वेत और पीले माइक्रो गोलाणुओं के वृन्दों में भी पारदर्शक केन्द्र दिखाई दिये जिन केन्द्रों की प्रजनन शक्ति का ह्रास हो चुका था। जब एक नवजात माइक्रो गोलाणु लिया गया और इन पारदर्शक केन्द्रों के रस से स्पर्श कराया गया तो पारदर्शकता की वृद्धि होती गयी और गोलाणु की सीमा को पूरी तरह से आच्छादित कर लिया। टवोर्ट ने अनुमान लगाया कि **यह केवल विनाश सम्बन्धी परिवर्तन ही नहीं है** अपितु इनमाइक्रो गोलाणुओं के एक घोर संक्रामक रोग की परिस्थिति है।

पारदर्शक पदार्थ को शक्तिशाली माइक्रोस्कोप से देखा गया तो कुछ सूक्ष्म दानेदार पदार्थ प्रतीत हुये लेकिन ये ही संक्रमण उत्पन्न करने वाले प्रेरक हैं, इसकी कोइ निश्चित उपपत्ति नहीं मिली। चूँकि इस प्रकार शाकाणु अथवा कीटाणु को घुला देने की क्षमता इनमें हैं, टवोर्ट ने इनका नाम 'Baeteriolytic agent रक्खा और अपनी गवेषणा का विवरण १९१५ में दिया।

डा० फेलिक्स हेरेल जब मेक्सिको में युटानिक की रियासत में थे तो टिड्डीदल का आक्रमण हुआ था। रेड इन्डियनों ने आकर बतलाया कि भूमि के एक भाग में मृतक टिड्डियाँ पड़ी थी। डाक्टर ने पहुँच कर बीमार टिड्डियों की जाँच की और यह जाना कि उनका मुख्य रोग काला अतिसार है। यह घातक रोग अभीतक मेडिकल साहित्य में न था अतः उन्होंने इसका अध्ययन किया। यह सेप्टीसीमिया आतों से सम्बन्धित चिन्हों के साथ निकला जिसका प्रसरण लोकस्ट कोको बेसिली (locust coccobacilli) द्वारा होता है। ये शाकाणु प्रचुर मात्रा में टिड्डियों के मलो में मिले। यह १९१० की बात थी।

फेरेले अर्जेण्टाइन से उत्तरी अफरीका तक आंशिक सेप्टीसीमिया को टिड्डियों के झुन्डों में फैलाते गये इन्हें इस गवेषणा में एक अद्भुत बात दिखाई दी। कोको बेसिलस की कुछ कृषियों में 'निर्मल स्थान' मिलीमीटर व्यास के गोलाकार रूप में दृष्टिगत हुए। उन्होंने यह सोचा कि जो इन 'निर्मल स्थानों' को उत्पन्न करते हैं वे इतने सूक्ष्म हैं कि छाने नहीं जा सकते हैं। चेम्बेरलेंड टाइप के पोरसिलेन की छन्नियों में बैक्टीरिया छन नहीं पाते हैं अतः यह एक विधि है जिससे 'निर्मल स्थान' के उत्पन्न कर्त्ता शाकाणुओं से अलग किए जा सकते हैं।

पहले संसार के युद्ध में मार्च १९१५ में ट्यूनीशिया में टिड्डियों का आमक्रण हुआ जो दल **कृषि**

सम्पत्ति को नष्ट करने में अत्यन्य प्रबल सिद्ध हो रहा था। डा० फेरेले ने इनमें संक्रमण उत्पन्न किया। मृत्यु संख्या बहुत बढ़ गई और मनोरम बात तो यह है कि उत्तरी अफरीका में टिड्डी-दल का आक्रमण अगले वर्ष फिर हुआ पर ट्यूनीशिया पर यह आपत्ति न आयी। इस कार्य में डा० फेरेले ने पुनः निर्मल स्थानों को पाया और इसका अन्वेषण करने के लिये फ्रांस गए।

पेरिस में पस्तूर-इंस्टीचूट के अस्पताल में बेसिलरी पेचिश के रोगी आया करते थे। फेरेले को पेचिश के संक्रमण की जाँच मिली। टिड्डी-दल के संक्रमण के अन्तर्गत प्राप्त मीमांसा का उपयोग इन्होंने किया। रोगी मनुष्यों के मलों के इमल्शनों को छाना और छान को पेचिश के कीटाणुओं के ऊपर प्रतिक्रिया करने दिया। पुष्टिकारक अगर के ऊपर पुनः उन्हें निर्मल स्थान दिखाई दिये। इन कृषियों को जब गिनी सूकरों को दिया गया तो पेचिश का विस्तार न हो सका। फेरेले ने अब यह निश्चित किया कि वे एक रोगी के अस्पताल के जीवन को आदि से अन्त तक अध्ययन करेंगे। इस प्रकार से वे यह पता लगायें कि कब 'निर्मल स्थान' का उत्पन्न कारक विकसित होता है।

पहले दिन शीगापेचिश के कीटाणुओं (Shiga dysentery bacillus) को एक रक्तिम मल से अलग किया। इसमें सौ मनुष्यों के मल के छान को मिलाया गया। पर कीटाणुओं की उत्पत्ति में कोई भी अंतर उन्हें न मिला। यही प्रयोग दूसरे और तीसरे दिन भी नकारात्मकसीद्ध हुआ चौथे दिन फिर उन्होंने रक्तिम मलों का इमल्शन बनाया और चेम्बरलेंड टाइप की छन्नियों से छाना। प्रथम दिवस को प्राप्त कीटाणु की कृषि में छान को मिलाया और अगर में फैला कर सामान्य तापक्रम पर रक्खा। दूसरे दिन फेरेले के आनन्द की सीमा न रही जब इन्क्यूबेटर को खोलने पर कृषि को पूर्ण रूपेण निर्मल पाया। यह अपार आंनद था जिसके क्षणों का रसास्वादन वही व्यक्ति कर सकता है जिसने निरवर परिश्रम एक सत्य के खोजने में किया हो। फेरेले का मस्तिष्क में बिजली सी दौड़ गई और शीघ्र ही उन्हें परिज्ञान हो गया कि कोई अदृश्य सूक्ष्म प्राणी है जो शाकाणुओं के संहार में समर्थ हैं। एक बिचार और आया कि यही प्रतिक्रिया उस रोगी के पेट में हुई होगी, अब वह अच्छा हो चलेगा। तेजी से वे अस्पताल गये। पता चला कि रोगी की अवस्था रात ही से सुधर चली है।

१९१७ में फेरेले ने इस संहारकर्ण का नामकरण Bacteriophage किया जिसे हम शाकाणु रिपु या शाकाणून्मूलक कह सकते हैं। अन्य भिन्न भिन्न अन्वेषण जो इण्डोचीन में हुए उनका वृत्तान्त फेरेले ने इन्स्टीचूट पस्तूर से प्रकाशित होने वाली टिप्पणी पुस्तिका (mono graph) में दिया।

क्या बेक्टीरीयोफेग जीवित है ? हाँ है। जीवन की विशेष कला इनमें हैं, इनमें मेटाबोलिज्म पाया जाता है। डायस्टेजों और इंजाइमों (बिकारों) का निस्सरण होता है। कोई भी वस्तु जो सुविधाजनक परिस्थिति में रक्खी जाती हैं, रासायनिक खमीरों का उत्पादन करती है इस व्याख्या से ferments जीवित हैं। सर्हिक और बोलगाकोव ने १९२९ से लगतार १९३१ तक इसी विषय में अन्वेषण किया। इन्होंने बेक्टीरीयो फेग में विकारों (enzymes) को निकलते हुए पाया। यह प्रयोग भिन्न भिन्न प्रकार के बेक्टीरीयोफेगों से किया गया। एक ही बेक्टीरीयोफेग भिन्न भिन्न विकारों को निकालता है। कई वैज्ञानिकों ने विरसों और बेक्टीरीयोफैगों में रासायनिक वस्तुओं और वास्तविक जीवनधारियों का माध्यम पाया। यह अनुमान लगाया गया कि ये सब साधारण रचना के हैं। १९३६ में डा० फेरेले ने यह प्रकाशित किया कि बेक्टीरीयोफेगों में कई जातियां है और प्रत्येक में विशेषताएं मिलती है जो एक दूसरे को पृथक करती हैं।

विरस और बेक्टीरीयोफैग जीवन क्रिय के अंग है क्योंकि उन गुणों का अभाव उनमें नहीं है जो जीवन के लिए नितान्त आवश्यक हैं। वे या तो जीवन युक्त वस्तुओं में साधारणतम जीवन केन्द्र हैं या फिर सजीव और निर्जीव के मध्य के पुलिन हैं। यदि पुलिन हैं तो रासायनिक विन्यास अति जटिल हो जाता है। जैसे जैसे स्थूल अणुओं के जगत से माइक्रोजीवाणुओं की ओर आते हैं यह निष्कर्ष निकलता है कि रासायनिक जटिलता में अत्यन्त क्लिष्ट पदार्थ साधारण तम और लघुतम पदार्थों की अपेक्षा अधिक जीवन सम्पन्न हैं।

बेक्टीरीयोफैग की गवेषणा अत्यन्त मनोरम हो चली जब कि इलक्ट्रान माइक्रोस्कोप वैज्ञानिकों के हाथ में आया जिसमें लघुतम वेवलेंथ wave length की किरणों से दृष्टि का छोर बहुत विस्तार मय हो चला। बेक्टीरीयोफैग इस माइक्रोस्कोप से वीर्य-कीटाणु की समता के व्यक्त होते हैं। इनके सिर और पूंछ एक निश्चित लम्बाई के होती हैं। कोलन कीटाणु के बेक्टीरीयोफैगों पर विस्तृत अध्ययन किया गया है। उनके सिरों का आकार ६०×८० मिली माइक्रा है; यदि ऐसे ५० एक साथ रक्खे जांयं तो एक शाकाणु की लम्बाई हो सकेगी अथवा ऐसे पांच लाख की संख्या एक इंच लम्बी होगी।

बेक्टीरीयो फैग में प्रोटीन और कार्बोडाइडेट के अलावा २ प्रतिशत लाइपिड (Lipid) और ४० प्रतिशति न्यूक्लीयिक एसिड होते हैं। बियर्ड ने सारिणी प्रदान किया है। नीचे एक सामान्य न्यूक्लीइक एसिड का सूत्र दिया हुआ है।

फास्फोरिक एसिड—d-रीबोस—साइटोसाइन
|
फास्फोरिक एसिड—d-रीबोस—युरासील
|
फास्फोरिक एसिड—d-रीबोम—थाइमीन

न्यूक्लीइक एसिड

बेक्टीरीयोफैग जीवन के अल्पतम केन्द्र हैं और जीवित पदार्थ और न्यूक्लीइक एसिड के अंतरंग तथा बहिरंग सम्बन्ध पर प्रकाश पड़ सकता है, यदि इन सूक्ष्मतम केन्द्रों का गंभीर अध्ययन किया जाय। इनका अध्ययन 'जीवित' के अर्थ को समझने के लिए उपयोगी है। संसार का महानतम प्रश्न 'जीवन' की व्याख्या है। बेक्टीरीयोफैग ही जीवन के सूक्ष्मतम कण हैं जो विकासवाद के सिद्धान्त के अनुसार कालान्तर रोगोत्पादक रोगनाशक, तथा अन्य विशिष्ट कार्यों से युक्त जीवन केन्द्रों में परिवर्तित हुए हैं।

# भारत की आद्यौगिक स्थिति

( "समाचार-संग्रह" के सौहाद्र से )

[ स्वतंत्र भारत की सरकार ने अल्पकाल में ही भारत की आद्यौगिक स्थिति को सँभालने की विशेष चेष्टा की है, प्रस्तुत विवरण सरकार के पत्र-सूचना विभाग से प्राप्त हुआ है, देश की स्थित का तुलनात्मक ज्ञान इन पृष्ठों में दी हुई सूचना और अपने प्रत्यक्ष अनुभव से पाठक स्वयं करें।]

## स्वतंत्र भारत में घरेलू उद्योग

घरेलू उद्योगों के विकास का दायित्व मुख्यतः राज्यीय सरकारों पर है। केंद्रीय सरकार का संबंध तो एकीकरण एवं साधारण पथ प्रदर्शन, शिक्षकों के प्रशिक्षण, गवेषणा और निर्यात-बाजारों के विकास आदि से ही है।

अपने दायित्व को पूरा करते हुए केंद्रीय सरकार ने जो प्रगति की है, उसी की यह एक संक्षिप्त समीक्षा है।

भारत जैसे कृषि-प्रधान देश की अर्थव्यवस्था में घरेलू और छोटे मोटे उद्योगों का स्थान महत्वपूर्ण है। इन उद्योगों से एक ओर तो वैयक्तिक ग्रामीण एवं सहकारी कार्य - कलाप के लिये पर्याप्त क्षेत्र मिल जाता है और दूसरी ओर कृषि - कार्य से बचे हुए समय में कृषकों को कोई न कोई दूसरा काम मिल सकता है जिससे उनकी आय में वृद्धि हो सकती है। इस प्रकार के उद्योग स्थानीय साधनों का अधिक अच्छा उपयोग करने तथा खाद्य, कपड़ा और कृषि संबंधी औजार आदि आवश्यक वस्तुओं के संबंध में आत्म-निर्भरता प्राप्त करने के लिये विशेष रूप से उपयुक्त हैं। घरेलू और छोटे मोटे उद्योगों का विकास उचित रूप से तभी हो सकता है जब अच्छी किस्म के कच्चे माल, सस्ती बिजली, शिल्प विषयक मंत्रणा और इन उद्योगों की बनी वस्तुओं की निकासी के लिये व्यवस्था की जाय।

दिसम्बर १६४७ में दिल्ली में हुए उद्योग सम्मेलन ने भारत सरकार से निवेदन किया था कि इस बात की जांच की जाय कि इन उद्योगों का किस सीमा तक और किस प्रकार बड़े बड़े उद्योगों के साथ एकीकरण किया जा सकता है। भारत सरकार ने यह सिफारिश स्वीकार करते हुए इस संबंध में जांच की है। इस समय जो उद्योग अत्यंत केंद्रीभूत हैं उन्हें कहाँ तक विकेन्द्रित किया जा सकता है, इस विषय में भी जांच करने का विचार है। उद्योग सम्मेलन की सिफारिश के अनुसार सरकार ने एक घरेलू उद्योग बोर्ड की स्थापना की है जिसमें राज्यों और कुछ घरेलू उद्योग संगठनों के प्रतिनिधि सम्मिलित हैं। इस बोर्ड का कार्य घरेलू उद्योगों के संगठन एवं विकास तथा बड़े उद्योगों के साथ उनके एकीकरण के संबंध में सरकार को मंत्रणा देना है।

दिसम्बर १६४८ में हुई अपनी पहली बैठक में इस बोर्ड ने घरेलू उद्योगों की विभिन्न समस्याओं के सम्बन्ध में केंद्रीय तथा राज्यीय सरकारों से बहुत सी सिफारिशें की थीं जिनमें से कुछ ये हैं—दिल्ली में एक केंद्रीय घरेलू उद्योग बिक्री केंद्र की स्थापना, घरेलू उद्योगों के विषय में शैल्पिक तथा व्यापारिक सूचना देने के लिये एक पत्र का प्रकाशन, शिक्षकों के प्रशिक्षण तथा कच्चे माल के उपयोग के संबंध में गवेषणा करने के लिये एक केन्द्रीय शाला की स्थापना और सहकारी आधार पर घरेलू उद्योगों का संगठन करना। उद्योग के हितों की देखभाल के लिये बोर्ड ने एक स्थायी उपसमिति स्थापित करने की सिफारिश की थी।

भारत सरकार के उद्योग तथा रसद मंत्रालय ने बोर्ड की सब सिफारिशें स्वीकार कर लीं और उसने राज्यीय सरकारों के सहयोग से इन्हें कार्यान्वित करने का प्रयत्न किया है। एक केंद्रीय घरेलू उद्योग केंद्र की स्थापना हो चुकी है। इसके अतिरिक्त कुछ हवाई अड्डों, "क्वीन मेरी" जहाज और

विदेशस्थ कुछ भारतीय दूतावासों में भी प्रदर्शन कक्ष खोले गये हैं। अगस्त १९५० में शिकागो में होने वाले प्रथम अमरीकी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मेले में भी भारतीय घरेलू उद्योगों द्वारा बनाई गई वस्तुएं प्रदर्शित करने के लिये भेजी जायेंगी। एक स्थायी समिति स्थापित की गई है जो भारतीय घरेलू उद्योगों की वस्तुएं खरीदेगी और उन्हें अमेरीका में बेचेगी। जापानी उद्योग धंधों की प्रणालियों का अध्ययन और भारत के घरेलू उद्योगों के लिये उपयुक्त जापानी मशीनें खरीदने के लिये एक शिष्टमंडल जापान भेजा गया था।

सरकार ने अलीगढ़ के निकट हरदुआगंज में घरेलू उद्योगों के लिये एक केंद्रीय प्रशिक्षण और गवेषणा शाला की स्थापना का निश्चय किया है। शाला के लिये स्थान का चुनाव हो गया है और निर्माण कार्य भी प्रारंभ हो चुका है। स्त्रियों के प्रशिक्षण के लिये उक्त शाला का एक महिला विभाग क्वीन्सवे, नयी दिल्ली में स्थापित किया गया है।

स्थाई करघा उपसमिति की सिफारिश पर भारत सरकार ने एक करघा-विकास निधि प्रारंभ की है और गत वर्ष इस निधि में १० लाख रु० का प्रारंभिक अनुदान भी दिया है। घरेलू उद्योग विभाग घरेलू उद्योगों के लिये इस्पात, विद्युत्-इस्पात और लौह-हीन धातुएं आदि कच्चे माल की व्यवस्था कर रहा है और सरकार इन उद्योगों का बड़े उद्योगों के साथ एकीकरण करने के संबंध में विचार कर रही है।

फरवरी १९५० में जयपुर में हुई अपनी दूसरी बैठक में अखिल भारतीय घरेलू उद्योग बोर्ड ने कई संकल्प स्वीकार किये जिनमें ये सिफारिशें की गयीं-घरेलू उद्योगों के लिये संरक्षण, सरकारी आवश्यकतायें पूरी करने के लिये घरेलू उद्योगों की बनी वस्तुओं की खरीद, निर्यात-व्यापार के विकास, कच्चे माल की सप्लाई और बिक्री-केंद्रों के प्रबंध के लिये एक वाणिज्य सम्बंधी नियम की स्थापना, औद्योगिक सहकारी संस्थाओं का संगठन और ऋण देने की सुविधाओं का विस्तार आदि।

भारत सरकार ने इनमें से अधिकांश सिफारिशें स्वीकार कर ली हैं और इस बोर्ड को कार्यपालिका अधिकार देने के लिये न केवल इसका पुनः संगठन ही किया है अपितु इसके निर्णयों को कार्यान्वित करने के लिये एक कार्यपालिका समिति भी मनोनीत की है। उद्योग तथा रसद के माननीय मंत्री इस समिति के अध्यक्ष हैं और उन्हें छोड़कर इस समिति के १५ सदस्य और हैं।

"ग" भाग के राज्यों में घरेलू तथा छोटे मोटे उद्योगों को प्रोत्साहन देने के लिये भोपाल, कुर्ग, मध्यप्रदेश, कच्छ, मणीपुर, त्रिपुरा, विलासपुर, अजमेर और दिल्ली में औद्योगिक मंत्रणा बोर्ड स्थापित किये गये हैं। इन बोर्डों की मंत्रणा से छोटे मोटे अन्य घरेलू उद्योगों के विकास के लिये ऋण और अन्य प्रकार की सहायता दी जायगी।

करघा उद्योग को छोड़ कर अन्य घरेलू उद्योगों के विकास के लिये केंद्रीय राजस्व से कुल १६ लाख रु० देने की व्यवस्था है। करघा उद्योग के विकास के लिये गत वर्ष करघा-विकास निधि से विभिन्न राज्यों को कुल ३,४०००० रु० के अनुदान दिये गये थे।

### भारत का मोटरगाड़ी उद्योग

भारत की रक्षा और आर्थिक उत्थान, दोनों ही दृष्टियों से उसके मोटरगाडी उद्योग की उन्नति परम आवश्यक एवं महात्वपूर्ण है और यही कारण है कि हमारी राष्ट्रीय सरकार इस उद्योग के पूर्ण विकास के लिये हर प्रकार से सहायता प्रदान करना अपना कर्तव्य समझती है।

अमेरिका और ब्रिटेन जैसे उन्नत देशों की तुलना में हमारा मोटरगाड़ी उद्योग अभी शैशवावस्था में ही है। द्वितीय महायुद्ध से पहले भारत में केवल दो कारखाने थे (जेनरल मोटर्स, लिमिटेड और फोर्ड मोटर्स, लिमिटेड), जो विदेशों से आये

हुए मोटरकारों और मोटरठेलों ( ट्रकों ) के पुर्जों व हिस्सों से पूरी गाड़ी तैयार ( असेम्बल ) करने का काम करते थे। अब देश में १२ कम्पनियां इस काम को कर रही हैं। द्वितीय महायुद्ध से पहले देश में कुल ३०,००० मोटरगाडियां ही हिस्से जोड़ कर तैयार की जाती थीं, किन्तु अब यह संख्या ८०,००० तक पहुँच गयी हैं। मोटर के उक्त कारखानों में इस समय ६२० लाख रुपया चुकता मूलधन के रूप में लगा हुआ है।

पिछले कुछ वर्षों में देश के मोटर उद्योग का पर्याप्त विस्तार हुआ है। १६४४ में हिन्दुस्तान मोटर्स के नाम से मोटर का पहला भारतीय फर्म १० करोड़ रुपये के स्वीकृत मूलधन से कलकत्ते में खुला था। शैल्पिक (टेक्निकल) सहायता प्राप्त कर सकने के लिये इस फर्म ने ब्रिटेन के नफील्ड्स और अमेरीका के स्टुडीबेकर फर्मों से करार भी किया, और १६४८ के अन्त तक उसका कारखाना काम चालू करने के लिये तैयार हो गया। इस समय इस कारखानें में प्रति वर्ष १६,२०० गाडियां तैयार करने की सामर्थ्य है। १६४८ में उसने २,३८८ और १६४६ में २,५१६ कारें व ट्रकें जोडी।

## अन्य फार्म

दूसरा भारतीय फर्म प्रीमियर आटोमोवाइल्स ५ करोड रु० के स्वीकृत मूलधन से, १६४६ में स्थापित किया गया, और शैल्पिक सहायता प्राप्त करने के निमित्त इसने अमेरिका की क्रिसलर कम्पनी से समझौता किया। इस फर्म ने पहले मोटरों के छोटे मोटे पुर्जों के उत्पादन का कार्यक्रम बनाया और अधिक पेचीदा पुर्जों के उत्पादन का कार्य बाद के लिये छोड़ दिया। छोटे मोटे पुर्जे बनाने के काम के लिये यह कारखाना सितम्बर १६४७ में तैयार हो गया और गत वर्ष अन्य पेचीदा पुर्जे बनाने की मशीनों के भी आर्डर भेजे गये। इसकी वार्षिक उत्पादन सामर्थ्य १२,६०० कारों व ट्रकों ( ठेलों ) की है। १६४८ में मद्रास में एक और फर्म अशोक मोटर्स भी स्थापित हुआ। इसके कारखाने में पुर्जे जोड़ने का काम सितम्बर १६४६ से शुरू हो गया है और यह प्रतिवर्ष ६००० गाडियां जोड़ सकेगा। इनके अतिरिक्त, दो और फर्म मेसर्स स्टैंडर्डस मोटर्स कम्पनी इंडिया तथा ब्रिटेन का रुट्स ग्रूप नाम से खुले हैं, जो भारत में ही मोटरगाडियां जोडने का काम करेगें। ये बाद में उत्पादन कार्य भी शुरू कर सकते हैं।

कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में पुर्जे जोड़ने के और भी कारखाने हैं। इनके अतिरिक्त युद्ध से पहले के दो कारखाने जनरल मोटर्स और फोर्ड मोटर्स भी हैं, जिनकी वार्षिक सामर्थ्य क्रमशः २५,००० तथा १४,५०० गाडियां जोड़ना हैं।

उपर्युक्त फर्मों में से जिन्होंनेअपने कारखानों का उत्पादन कार्यक्रम सरकार को भेज दिया है वे ये फर्म हैं—हिन्दुस्तान मोटर्स, प्रीमियर आटोमोवाइल्स, अशोक मोटर्स, स्टैंडर्ड मोटर्स और रुट्स ग्रुप। अनुमान है कि इनके कारखानों का उत्पादन कुल लगभग ३०,००० गाड़ीं वार्षिक तक पहुँचेगा। और यह भी सवाल है कि अभी अगले चार वर्षों तक देश को प्रतिवर्ष लगभग ३०००० गाडियों की ही जरूरत होगी, जो चार वर्ष बाद अर्थात् १६५४ से बढ़ कर ४०-५० हजार प्रतिवर्ष तक पहुँच सकती है। भारत जैसे विशाल देश के लिये ३० हजार मोटरगाडियों की वार्षिक आवश्कता कुछ अधिक नहीं, किन्तु जब तक मोटरों के दाम घट कर इतना कम नहीं हो जाते कि मध्य-वर्ग के लोग भी उन्हें खरीद सकें, तब तक उनकी मांग बढ़ने की अधिक सम्भावना नहीं है।

अमेरिका और ब्रिटेन में आर्थिक दृष्टि से सुव्यवस्थित कारखाना वह समझा जाता है जो वर्ष में कम से कम १,००,००० गाडियां तैयार करता हो। किन्तु इटली और फ्रांस में ऐसे भी कारखाने हैं जो प्रति वर्ष २० हजार तक ही गाडियां तैयार करते हैं, पर उनकी आर्थिक दशा अच्छी है। इसलिये

भारत में मोटरों के लगभग आधा दर्जन कारखानों का होना कोई बुरा नहीं है। और सवाल करते हुए कि एक मोटर गाड़ी के लिये लगभग ४००० पुर्जों की जरूरत होती है, एक ही कारखानों में सभी पुर्जे तैयार कराने का काम व्यावहारिक भी नहीं होता। यदि उक्त छः ही कारखानों के साधनों को एक साथ जुटा कर काम किया जाय, तो आशा है कि हमारा देश मोटरगाड़ियों के मामले में बहुत जल्द स्वावलम्बी बन सकेगा।

### संरक्षण का प्रश्न

उन फर्मों ने, जिनका काम देश में ही मोटरों के उत्पादन का था, विशेषकर हिन्दुस्तान मोटर्स ने सरकार से अनुरोध किया कि जब तक देश में तैयार की जाने वाली मोटरों या पुर्जों को, विदेशी माल की प्रतियोगिता से बचाने के लिये, पर्याप्त संरक्षण प्राप्त नहीं होता, तब तक उत्पादन सम्बन्धी योजना कार्यान्वित करना अच्छा न होगा। इस विषय की जांच के लिये १९४९ में एक समिति नियुक्त की गयी जिसने गत वर्ष जुलाई में अपना प्रतिवेदन भी प्रस्तुत कर दिया। संरक्षण के प्रश्न पर समिति के सब सदस्य एकमत नहीं थे। असेंबलों (हिस्से जोड़ने वालों) की ओर से कहा गया कि मोटरों के उन पुर्जों के लिये कोई संरक्षण न होना चाहिये, जिनका उत्पादन भारत में अभी आरम्भ ही न हुआ हो। उत्पादकों का मत था कि मोटरों के इंजन, गियर, आदि जैसे कीमती हिस्सों का उत्पादन इस आशा पर नहीं आरम्भ किया जा सकता कि आगे चलकर उनके लिये कुछ न कुछ संरक्षण प्राप्त हो ही जायगा। उनका कहना था कि इन पुर्जों के उत्पादन में इतना अधिक खर्च बैठेगा कि यदि उत्पादन को उन्हें तुरंत ही बेच सकने की सुविधा न मिली, तो उसकी आर्थिक दशा बिगड़ जायगी, और बेचने की यह सुविधा तभी हो सकती है जब खुले बाजार में बिदेशी माल की प्रतियोगिता से उसका तैयार किया हुआ माल उचित रूप से संरक्षित हो।

भारत सरकार ने, समिति के प्रतिवेदन पर गम्भीरतापूर्वक विचार करके, मोटरों के कल पुर्जों को निम्नलिखित तीन श्रेणियों में विभक्त कर दिया :—

(१) वे पुर्जे या हिस्से जो भारत में पहले से ही तैयार हो रहे हैं।

(२) वे पुर्जे या हिस्से जो अगले दो वर्षों में तैयार होने लगेंगे।

(३) वे पुर्जे या हिस्से, अगले दो वर्षों में जिनके भारत में तैयार होने लगने की सम्भावना नहीं है।

अन्ततोगत्वा निश्चय हुआ कि उपर्युक्त श्रेणियों के आधार पर, आयात करों में संशोधन कर दिये जाने चाहियें, ताकि देश में बनने वाले माल को संरक्षण प्राप्त हो सके। सरकार ने अपना निश्चय उत्पादकों आदि को समझा दिया और इन लोगों ने उत्पादन सम्बन्धी अपना कार्यक्रम छोड़ने का बचन दिया। १९५०-५१ के बजेट प्रस्तावनों में भी यह कर विषयक उक्त संशोधन रखे गये। संशोधित आयात कर संसद् द्वारा स्वीकृत होकर अब १९५० के वित्त अधिनियम में सम्मिलित है।

बिचार करने केलिये सरकार एक विशेषज्ञ समिति नियुक्त करेगी। यह समिति भी नियुक्त की जा चुकी है।

विदेशी विनियम की कमी के कारण विदेश से मोटर पुर्जों का आयात सीमित हो रहा है। १९४८-४९ में कुल ३८, ७२१ कारों व ट्रकों का आयात हुआ, जिसमें १७,४८२ कारें थीं। १९४९-५० में (३१ दिसम्बर तक) कुल १६, १४५ कारें व ट्रकों का आयात हुआ, जिसमें ५, ४६४ कारें थी। इसी प्रकार १९४९ में कुल २१, ८०९ और १९५० में (जनवरी से अप्रैल तक) कुल ४, ५४७ कारें व ट्रकें देश में जोड कर तैयार की गयीं।

इस समय मोटरगाडियों की विक्री तथा वितरण पर कोई नियंत्रण नहीं है। जनवरी से जून १९५०

तक के लिये, डालर क्षेत्रों से ४ करोड रुपये के मूल्य की और गैर डालर क्षेत्रों से ७।। करोड़ रुपये मूल्य की मोटर गाड़ियों का आयात स्वीकृत हुआ था। भारतीय रुपये के अवमूल्यन के कारण अमेरिकन गाड़ियों का मूल्य बढ़ गया है। चालू वित्त वर्ष से मोटर के पुर्जों के आयात कर में संशोधन हो जाने से, गाड़ियों का दाम अब कुछ और बढ़ जायगा। अमेरिकन कार ११, ६६८ रुपये के बदले १२, ३३६ रुपये में और ठेला ६, ३१५ रु० के बदले में ११, ८४४ रू० में पड़ेगा। ब्रिटिश कार ११, ६४८ रुए के बदले १२, ६३५ रू० में और ठेल १०, २३८ रू० के बदले १३, ४६० रु० में पड़ेगा किन्तु व्यापारियों से अनुरोध किया गया है कि वे अपना लाभ सीमित ही रखें, ताकि ग्राहक को वे कारें व ठेले, उपर्युक्त दामों से कुछ कम में ही पड़ें।

भारत की

केंद्रीय काँच गवेषणा शाला

'केंद्रीय कांच व मृत्तिका पात्र, निर्माण गवेषणा शाला' (सेंट्रल ग्लास एंड सिरेमिक रिसर्च इंस्टिट्यूट), भारत की राष्ट्रीय गवेषणाशालाओं में से चौथी है, जिसका उद्घाटनोत्सव कलकत्ते में पश्चिमी बंगाल के मुख्य मंत्री माननीय डा० बिधान चन्द्र राय द्वारा, उस राज्य के राज्यपाल महामहिम डा० कैलाश नाथ काटजू और केंद्रीय उद्योग मंत्री माननीय श्री हरेकृष्ण महताब, आदि उच्च अधिकारियों एवं अन्य लोगों की उपस्थिति में, २६ अगस्त को हुआ।

द्वितीय महायुद्ध के दिनों एक ऐसी गवेषणा शाला की आवश्यकता का अनुभव करने पर भारत सरकार ने १९४२ में इसकी स्थापना स्वीकार की और इसके लिए पूरी योजना तैयार करने का काम देश के प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० एस० एस० भटनागर के सभापतित्व में नियुक्त एक समिति को सौंपा गया। १९४४ में वैज्ञानिक तथा औद्योगिक गवेषणा परिषद की शासन समिति ने इस समिति की प्रस्थापनाओं को स्वीकार कर लिया और पूंजीगत व्यय के लिए १२ लाख रु० मंजूर किया गया। शाला के शिल्प, विज्ञान विभाग (टेक्नोलाजिकल ब्लाक) का निर्माण १९४५ में आरम्भ किया गया और १९४८ से उसमें काम भी होने लगा। यद्यपि शाला का शिलान्यास वाइसराय की शासन परिषद् के तत्कालीन आयोजन एवं विकास सदस्य श्री आर्देशिर दलाल द्वारा दिसम्बर १९४५ में ही हो गया था, पर वास्तविक निर्माण कार्य सितम्बर १९४८ में अतिरिक्त धन स्वीकृत होने के बाद ही आरम्भ हो पाया।

इस शाला में कांच और मिट्टी के बरतन आदि बनाने की कला की विभिन्न शाखाओं से संबंधित मौलिक गवेषणा का कार्य होगा। इसके अतिरिक्त, परीक्षण एवं मान निर्धारण, कांच एवं मृत्तिका पात्र उद्योग की शैल्पिक सहायता, उद्योग के लिए आवश्यक वैज्ञानिक एवं शैल्पिक ज्ञान का प्रसार आदि अन्य बातें भी हैं जिनकी ओर यह शाला विशेष ध्यान देगी। विशेष कामों के लिए शिल्पियों का प्रशिक्षण, कांच का काम, मिट्टी व चीनी मिट्टी का काम, मीनकारी और दुर्गलनीय पदार्थ, इन सभी के विषय में गवेषणा एवं अनुसंधान का कार्य इस शाला के कार्यक्षेत्र के भीतर आता है।

कार्य

मौलिक गवेषणा का काम तो शाला में होगा ही, इसके अतिरिक्त वह उद्योग को शैल्पिक (टेकिनिकल) सहायता प्रदान करके उत्पादित वस्तुओं की किस्म सुधारने के काम में पूरी सहायता कर सकेगी। साथ ही उद्योग को उत्पादन संबंधी नये-नये तरीके और नवीन वैज्ञानिक शैलियां भी बतायी जा सकेंगी, ताकि वह अच्छा से अच्छा माल तैयार कराये। आगे चलकर कारखानों में से कारीगरों को बुलाकर शाला में प्रशिक्षण दिया जाया करेगा और इस प्रकार अर्जित अपने ज्ञान का प्रयोग वे कारखानों में वापस जाकर करेंगे। इसी तरह शाला के गवेषणा कर्मचारी कारखानों में भेजे जायेंगे, ताकि उन्हें कारखानों के काम

और उनकी आवश्यकताओं का ज्ञान हो सके, और उसकी दृष्टि से वे शाला में लौटकर अपना गवेषणात्मक कार्य पूरा करें।

तथ्यों एवं आंकड़ों के संकलन और शिल्प विज्ञान के प्रसार के लिए यह शाला उद्योग विश्वविद्यालयों, अन्य गवेषणा संस्थाओं तथा सरकारी विभागों के सहयोग से कार्य करेगी। इस अभिप्राय से कर्मचारियों के उपयोग के लिए शाला में एक अच्छा पुस्तकालय रहेगा। इसके अतिरिक्त एक संग्रहालय भी रखा जायगा, जिसमें भाँति-भाँति का तैयार माल, विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त कच्चे माल के नमूने, शोधित कच्ची सामग्री और उद्योग के काम आ सकने वाली अन्य चीजें प्रदर्शनार्थ संग्रहीत रहेंगी।

शाला की इमारत कलकत्ते की 'गरिया हाट' सड़क पर स्थित है। इसकी दो शाखाएं हैं। मुख्य शाख में सूक्ष्म गवेषणात्मक कार्यों के लिए भवन, पुस्तकालय, संग्रहालय, कार्यालय, आदि हैं और दूसरी शाखा में शिल्प विज्ञान संबंधी विभिन्न कारखानें हैं। दोनों शाखाएँ इस प्रकार निर्मित की गयी हैं कि कारखानों की भट्टियों की गर्मी और उनका शोर गुल गवेषणा के सूक्ष्म कार्य में बाधा न डाल सकें। गवेषणात्मक कार्य के लिए, शाला को भांति भांति के सूक्ष्म यन्त्रों से सम्पन्न किया गया है।

सारी इमारत के लिए गैस और पानी की भी सुव्यवस्था है और इच्छानुसार उसके किसी भी मार्ग से गैस का 'कनेक्शन' काटा जा सकता है, गैस की सप्लाई की व्यवस्था ओरियेंटल गैस कम्पनी ने की है। इसी प्रकार उच्च शक्ति की बिजली की 'सप्लाई कलकत्ता इलेक्ट्रिक सप्लाई कारपोरेशन' ने की है। कांच मिले हुए रेत को धोकर कांच निकालने का एक यंत्र भी लगाया गया है। पानी की पर्याप्त सप्लाई के लिए ५ इंच व्यास का एक नलदार कुआं बनवाया गया है।

शाला में शिल्प विज्ञान संबंधी कार्य १९४८ से ही शुरू हो गया था। कच्चे माल (काँच मिली रेत) को धुलाई और चुम्बकीय पृथक्करण द्वारा उच्च कोटि का बनाने के संबंध में छानबीन हो रही है। कर्मचारियों एवं साजसामान की व्यवस्था सीमित होते हुए भी शाला उद्योग को शैल्पिक सहायता देती रही है। इसके अतिरिक्त, अनुसंधान के कार्य में सहकारी विभागों को और मान-निर्धारण कार्य में भारतीय मान-निर्धारण से सहायता प्राप्त हुई है।

## भारत की मत्स्य-सम्पत्ति

भारतीय मछली-उद्योग के अन्तर्देशीय और सामुद्रिक साधनों का पूर्ण सदुपयोग अभी तक नहीं हो पाया। केवल पिछले कुछ वर्षों में भारत सरकार और कुछ राज्यीय सरकारों ने मछली-उद्योग को उन्नत करने का प्रयत्न किया है।

भारत में मछली का कुल उत्पादन अनुमानतः ५,१३,७६० टन प्रति वर्ष है, जिसमें दो-तिहाई समुद्री मछली होती है। मछली की खपत लगभग ३, ४ पौंड प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष है, जो अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम है। विशेषज्ञों ने अनुमान लगा कर बताया है कि यदि लोग इस महत्वपूर्ण जैवखाद्य से, जिसमें प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है, पोषण प्राप्त करना चाहते हैं, तो मछली का उत्पादन दस गुना बढ़ाना होगा।

मछली–उद्योग के अन्तर्देशीय और सामुद्रिक साधन उन्नत किये जा रहे हैं। देश में बहुत से तालाब, नदियाँ और जलाशय हैं, जिनसे पर्याप्त मछली प्राप्त हो सकती है। इसके अतिरिक्त भारत का समुद्रतट इतना विस्तृत है कि यदि समुचित साधनों और योग्य व्यक्तियों द्वारा मछली पकड़ने का काम आरम्भ किया जाय तो मछली का अनन्त भंडार प्राप्त हो सकता है।

## आर्थिक सहायता

मछली उद्योग की योजनायें "अधिक अन्न उपजाओ" आन्दोलन में सम्मिलित कर दी गई हैं,

और इनके लिये केंद्रीय सरकार द्वारा राज्यीय सरकारों को विशेष आर्थिक सहायता दी गई है। अब तक लगभग ५० योजनायें आरम्भ की जा चुकी हैं, जिन पर अनुमानतः १ करोड़ ३० लाख रुपया व्यय होगा। इन योजनाओं के उद्देश्य इस प्रकार हैं:—

(क) मीठे पानी में शीघ्र बढ़ने वाली छोटी छोटी मछलियों को एकत्र कर अन्तर्देशीय जलाशयों में पालना।

(ख) मछली साफ करने के लिये रियायती दर पर नमक देना, तथा अन्य सुविधायें उपस्थित करना।

(ग) मछली के सुरक्षण, परिवहन और हाट-व्यवस्था की प्रणाली में सुधार।

(घ) मछली के त्याज्य अंश का खाद के रूप में सदुपयोग।

(ङ) मछुओं की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिये उनकी सहकारी समितियाँ बनाना।

### गहरे पानी में मछलियाँ

यद्यपि मछली- उद्योग के अन्तर्देशीय साधानों की उन्नति से उत्पादन में वृद्धि हो सकती है, फिर भी उत्पादन और आवश्यकता के बीच की खाई तब तक नहीं पाटी जा सकती, जब तक विशाल सामुद्रिक साधनों का सदुपयोग नहीं किया जाता। भारत का समुद्रतट लगभग २,६०० मील लम्बा है और उसके निकटस्थ १०० फैदम (२००) की गहराई तक छिछले पानी का क्षेत्रफल लगभग १,१५,००० वर्ग मील है। परन्तु मछलियाँ समुद्रतट से केवल ५-७ मील की दूरी तक ही पकड़ी जाती हैं। इसका कारण गहरे पानी में मछली पकड़ने के साधनों का अभाव है।

गहरे समुद्र में मछली पकड़ने के लिये मछली पकड़ने के स्थानों, उपयुक्त नौकाओं, उपकरणों, समुद्र के विभिन्न भागों में और विभिन्न ऋतुओं में मिलने वाली मछलियों की विभिन्न जातियों के सम्बन्ध में आंकड़े एकत्र करना तथा और भी जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है।

### प्रयोग आरम्भ

कुछ वर्षों से भारत सरकार ने बम्बई में प्रयोग के रूप में गहरे पानी में मछली पकड़ने का कार्य आरम्भ किया है। सबसे पहले "मीना" नाम की वाष्पचालित मत्स्य-नौका का इस कार्य के लिये प्रयोग किया गया। परन्तु वह बहुत बड़ी थी, और इसमें कोयला अधिक खर्च होता था, इसलिये इसका प्रयोग बन्द कर दिया गया।

गत वर्ष भारत सरकार ने दो जलकर्त्तक मत्स्य-जलयान, जिनके नाम अब "अशोक" और "प्रताप" हैं, हालैंड से, और दो विशेष मत्स्य-नौकाएँ, जिनके नाम अब "बुलली" और "चम्पा" हैं, ब्रिटेन से मँगाईं। इन जलयानों का प्रयोग गतवर्ष से किया जा रहा है। मछली पकड़ने के लिये उपयुक्त स्थान कहाँ कहाँ हैं, कितनी गहराई पर कौनसी मछली पाई जाती है, मछली पकड़ने का सर्वोत्तम समय कौनसा है, और पानी के भीतर की स्थिति कैसी है, इत्यादि बातों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण आँकड़े संगृहीत किये जा चुके हैं। इसके अतिरिक्त, इन जलयानों से जून १६५० तक लगभग ३ हजार मन मछली संगृहीत की जा चुकी हैं, जिसका मूल्य लगभग १ लाख ७० हजार रूपये होगा।

### प्रशिक्षण

भारत सरकार ने मछली-उद्योग प्रशिक्षण की भी व्यवस्था की है। अब तक १०० से अधिक उम्मेदवार प्रशिक्षित किये जा चुके हैं। कुछ नवयुवकों को गहरे समुद्र में मछली पकड़ने के प्रशिक्षण के लिये ब्रिटेन भी भेजा गया था।

### गवेषणा

भारतीय मछली उद्योग सम्बन्धी समस्याओं की गवेषणा के लिये भारत सरकार ने दो मछली-उद्योग- गवेषणा- केंद्र स्थापित किये हैं। सामुद्रिक मछली- उद्योग सम्बन्धी गवेषणा- केंद्र मंडपम्

( मद्रास ) में; और अन्तर्देशीय मछली- उद्योग संबंधी गवेषणा-केंद्र कलकत्ते के समीप पल्टा में है।

राज्यों के प्रयत्न

भारत सरकार के अतिरिक्त, भारत के समुद्रतट वर्ती कतिपय राज्यों ने भी गहरे समुद्र में मछली पकड़ने का कार्य आरम्भ किया है। मद्रास सरकार कई वर्षों से गहरे पानी में मछली पकड़ने के प्रयोग कर रही है। पश्चिमी बंगाल की सरकार ने भी गहरे पानी में मछली पकड़ने के लिये एक योजना बनाई है; और उसे पूरा करने के उपाय कर रही है।

उद्योग, कृषि परिवहन, प्रतिरक्षा, स्वास्थ्य और चिकित्सा सेवाओं की उन्नति के लिये योजना बनाने के हेतु शिल्प शिक्षा सम्बन्धी वर्तमान सुविधाओं की जांच- पड़ताल करना बहुत आवश्यक है। वैज्ञानिक जनशक्ति समिति ने जो पर्यवेक्षण किया है, उसका वैज्ञानिक और शैल्पिक कर्मचारियों सम्बन्धी आवश्यकता और उनकी उपलब्धि के अन्तर पर अच्छा प्रकाश पडता है। इस समय जो विशेषज्ञ यन्त्रशास्त्री ( इंजीनियर ) शिल्पी और वैज्ञानिक उपलब्ध हैं, वे संख्या में ही नहीं, योग्यता में भी कम हैं।

शिल्प शिक्षालय

विशेषज्ञों की कमी को दूर करने के लिये सारकार समिति ने भारत में शिल्पविद्या की उच्च शिक्षा के लिये चार शिक्षालय स्थापित करने की सिफारिश की थी। भारत सरकार ने यह सिफारिश स्वीकार कर ली है और यह पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण भारत में एक एक उच्च शिल्प शिक्षालय स्थापित करने का विचार कर रही है। प्रत्येक शिक्षालय में लगभग २,००० स्नातकाधर और १००० स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिये प्रशिक्षण और गवेषणा की व्यवस्था होगी।

पूर्वी शिक्षालय कलकत्ते से ७० मील दूर हिजली में बनाया जा रहा है। इस पर ३ करोड ४ लाख रूपये का अनावर्तक और ४४ लाख रूपये का आवर्तक व्यय होने का अनुमान है। बंगलौर की भारतीय विज्ञानशाला के भूतपूर्व निर्देशक डा० जे० सी० घोष इस शिक्षालय के पहले निर्देशक नियुक्त हुए हैं।

पश्चिमी शिक्षालय बम्बई में स्थापित होगा। यह भी उतना ही बड़ा होगा, जितना पूर्वी शिक्षालय। शेष दो शिक्षालय बाद में स्थापित होंगे।

देश में विज्ञान और शिल्प के उच्च प्रशिक्षण और गवेषणा का सर्वोत्तम केन्द्र बंगलौर की भारतीय विज्ञानशाला है। इस शाला की स्थापना १६०४ में वैज्ञानिक गवेषणा- केन्द्र के रूप में हुई थी। इस में यंत्रविद्या और शिल्पशास्त्र के अनेक अंगों की भी शिक्षा उन्नति के लिये एक योजना बनायी गयी है, जिस पर ४२ लाख दी जाती है। इस शाला के विभिन्न विभागों में, २१ हजार रुपया अनावर्तक और ४ लाख २४ हजार आवर्तक व्यय होने का अनुमान है। शाला में विद्युत यंत्र विद्या का एक नया विभाग भी खोला जा रहा है, जिस पर लगभग ७८ लाख रूपया अनावर्तक व्यय होगा। यंत्रविद्या की एक बडी प्रयोगशाला भी खोली जायगी, जिस पर लगभग २३ लाख रूपया व्यय होगा।

गवेषणा को प्रोत्साहन देने की दृष्टि से, केन्द्रीय सरकारने चुने हुए विश्वविद्यालयों को, १६४६-५० में लगभग २० लाख ५० हजार रूपये का अनुदान दिया है। इसके अतिरिक्त, २०० रु० मासिक की, ५० बड़ी और १०० रु० मासिक की १५०, छोटी गवेषणा-छात्रवृत्तियां देने की भी व्यवस्था की गयी है।

स्नातकोत्तर प्रशिक्षण की अपेक्षा स्नातकाधर-प्रशिक्षण की सुविधाओं में अधिक सुधार हुआ है। यंत्रविद्या की २ आधारभूत शाखायें—नागरिक, यांत्रिक और वैद्युतिक—विशेष रूप से उन्नत हुई हैं। देश में इन शाखाओं के २५ से भी अधिक महाविद्यालय हैं। कई महाविद्यालय नये भी बने हैं। पुराने महाविद्यालयों के सुधार के लिये सरकार ने एक योजना बनायी है, जिस पर १ करोड ५० लाख

रुपये का अनावर्तक और २७ लाख रुपये का आवर्तक व्यय होने का अनुमान है। छात्रावास बनाने के लिये इन महाविद्यालयोंको ३८ लाख रुपये का ब्याज रहित ऋण भी दिया जायेगा।

### क्रियात्मक प्रशिक्षण

शिल्प-शिक्षा की सब से बड़ी समस्या शिल्प शिक्षालयों के स्नातकों वैज्ञानिकों को शैल्पिक संस्थाओं में नौकरी के लिये तैयार करना है। इन स्नातकों में क्रियात्मक योग्यता नहीं होती। यह योग्यता शैक्षिक और औद्योगिक संस्थाओं के सम्मिलित प्रयत्न से ही प्राप्त हो सकती है। परन्तु दुर्भाग्य से देश इस सम्मिलित उत्तरदायित्व को नहीं समझता। इसलिये शैल्पिक कर्मचारियों की प्रशिक्षण सम्बन्धी त्रुटियों को दूर करने तथा क्रियात्मक प्रशिक्षण को शिल्प शिक्षा प्रणाली का आवश्यक अंग बनाने के लिये शीघ्र उपाय करने की आवश्यकता है। वैज्ञानिक जनशक्ति समिति ने इस सम्बन्ध में एक व्यापक योजना बनाई है, जिस पर सरकार विचार कर रही है।

वैज्ञानिक जनशक्ति समिति की सिफारिश पर सरकार ने १५० रु० मासिक की २५० बड़ी और ७५ रु० मासिक की २०० छोटी छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की है, जो स्वीकृत शिल्प शिक्षालयों में क्रियात्मक प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को दी जायेंगी।

### शिक्षा-समीकरण

अभी तक भारत में शिल्प शिक्षा की उन्नति का कोई समन्वय नहीं हो पाया। इस समन्वय की विशेष आवश्यकता है। सरकार ने १९४५ में शिल्प शिक्षा के संगठन और योजना के संबन्ध में परामर्श देने के लिये अखिल भारतीय शिल्प शिक्षा परिषद की स्थापना की थी। यह परिषद देश में शिल्प शिक्षा के समीकरण का प्रयत्न कर रही है। उसने यंत्रविद्या और शिल्प विज्ञान के मुख्य अंगों के अध्ययन के सम्बन्ध में ६ अखिल भारतीय बोर्ड बनाये हैं। इन बोर्डों ने विभिन्न विषयों के पाठ्यक्रम तैयार किये हैं। इन पाठ्यक्रमों के अनुसार शिक्षालय के समय में और उसके बाद भी शिक्षा दी जा सकती है। इन पाठ्यक्रमों में क्रियात्मक शिक्षा पर विशेष बल दिया गया है। आशा की जाती है कि परिषद ने शिक्षा का जो आधारभूत मानदंड निर्धारित किया है उसे सभी शिक्षालय और विश्वविद्यालय अपना लेंगे।

### प्रशासन प्रशिक्षण

स्वतंत्र भारत में शैल्पिक प्रशासकों के प्रशिक्षण की समस्या विशेष महत्व रखती है, कारण, समस्त उत्पादन-कार्यों की योजना आरम्भ और संगठन अन्त में उन्हीं पर नर्भर होता है। इसलिये परिषद औद्योगिक एवं व्यापारिक प्रशासन एवं प्रबन्ध के लिये शिल्प-योग्यताप्राप्त कर्मचारियों के प्रशिक्षण की योजना बना रही है।

वैज्ञानिक और शैल्पिक जनशक्ति आवश्यकताओं की पूर्ति, कुछ तो देश के भीतर ही शिक्षा और गवेषणा के लिये सुविधाएं प्रदान करके, की जा सकती हैं, और कुछ भारतीय कर्मचारियों की प्रशिक्षण के लिये विदेशों में भेज कर जा सकती है। यद्यपि कालान्तर में भारत ऐसी जनशक्ति तैयार कर सकता है, परन्तु इस समय उसके पास इसके लिये साधन उपलब्ध नहीं हैं, और उसे इस सम्बन्ध में संसार के अधिक प्रगतिशील देशों पर निर्भर रहना ही पड़ेगा।

### विदेशों में प्रशिक्षण

औद्योगिक उन्नति, वैज्ञानिक गवेषणा, कृषि, शिक्षा आदि के सम्बन्ध में भी भारत को संसार के समस्त प्रगतिशील देशों से सम्पर्क रखना पड़ेगा। इस सम्पर्क-स्थापन का सबसे अच्छा उपाय भारतीय शिल्पियों और वैज्ञानिकों को प्रशिक्षण के लिये विदेशों में भेजना है। १९४५ में केन्द्रीय सरकार

ने राज्यीय सरकारों के परामर्श से और एक योजना बनाई थी, जिसका उद्देश्य भारतीय वैज्ञानिकों और शिल्पियों को सर्वसाधनसम्पन्न विदेशी शिक्षालयों में प्रशिक्षणार्थ भेजना और इस प्रकार विभिन्न आर्थिक उन्नति एवं पुनर्निर्माण सम्बन्धी योजनाओं के लिये आवश्यक जनशक्ति तैयार करना था। इस योजना के अनुसार अब तक १,००० से अधिक विद्वान प्रशिक्षण के लिये ब्रिटेन, अमेरिका तथा अन्य देशों में भेजे जा चुके हैं। ६० प्रतिशत से अधिक विद्वान प्रशिक्षण प्राप्त करके लौट आये हैं।

शिल्प शिक्षा से सम्बन्ध रखने वाली समस्यायें अगणित हैं। पश्चिम के प्रगतिशील देशों में जो सुविधायें उपलब्ध हैं उन्हें जुटाने में भारत को अभी बहुत समय लगेगा।

---

# वन तथा जलवायु

लेखक—श्री महेन्द्र प्रकाश एम० एस सी० बी० एस सी० ( एडिनबरा )

[ निम्न लेख सरल ढंग से लिखा गया है और सूचनात्मक है ]

( Forests in relation to Climate )

जलवायु के सम्बन्ध में ध्यान देते समय हमारा आशय विशेषतया इन बातों से होता है:—

( १ ) तापक्रम ( Temperature ).

( २ ) वातावरण में तरी ( Atmospheric humidity )

( ३ ) वर्षा (Rainfall ).

इन सब पर वनों का क्या प्रभाव है तथा वनों के कटने का इन पर क्या घातक परिणाम होता है ?

( १ ) तापक्रम ( Temperature )

वनों के भीतर अथवा उनके समीप का तापक्रम वन-रहित भूमि की अपेक्षा कम होता है। प्रयोग द्वारा सिद्ध हुआ है कि यदि वनों में अधिक से अधिक तापक्रम (गरमी का ) ८७ डिगरी और कम से कम ( सरदी का ) ६३ डिगरी हो, तब उन्हीं वनों के कटने के पश्चात गरमी का तापक्रम १०३ तथा शीत का तापक्रम ६३ डिगरी से बढ़कर ५६ डिगरी हुआ, अर्थात् वनों द्वारा गरमी तथा सरदी दोनों की व्यापितम में कमी होती है—( Forests reduce extremes of temperatures ).

सूर्य की गरमी वन-रहित भूमि पर वनों से ढकी हुई भूमि की अपेक्षा १२ गुना अधिक होती है, इसी प्रकार उस पर से पानी भाप बन कर चौगुनी मात्रा में उड़ता है ( Evaporation increases 4 times )। वनों के भीतर की धरती ( ४ फुट की गहराई तक ) तथा उसके ऊपर की वायु गर्मियों में इतनी जल्दी गरम व शीतकाल में इतनी जल्दी ठण्डी नहीं होती जितनी कि नग्न भूमि।

( २ ) वायुमण्डल में तरी (Atmospheric humidity )

वनस्पति द्वारा वायुमण्डल में तरी बढती है, क्योंकि पत्तों की सतह से पानी भाप बन कर उड़ता है (transpiration )। वनों की यह नम हवा स्वास्थ्यवर्धक होती है। तपेदिक के चिकित्सालय वनों से आच्छादित स्थानों पर ही होते हैं।

वनों में गरमी कम होने तथा वनों में हवा के रुक जाने के कारण यह तरी भी जल्दी ही वायु के वेग के साथ उड़ कर चली नहीं जाती, वरन् वहीं बनी रहती है।

(३) वर्षा पर वनों का प्रभाव (Forests and Rainfall). "Rain- The kind refresher of Summer heats"—Thomson वर्षा कई प्रकार की होती है; जिनमें मौसमी वर्षा (monsoon) तथा स्थानीय वर्षा (Local rainfall) मुख्य हैं। मौसमी वर्षा पर वनों का इतना प्रभाव नहीं पड़ता, जितना स्थानीय वर्षा पर।

रांची के सूबे में सन् १८८० तक वन थे, वर्षा अच्छी होती थी; चाय की खेती भी शुरू हो गई, परन्तु शीघ्र ही यह वन, जो जागीरदारों के थे, कटने लगे। घातक परिणाम यह हुआ कि वहां वर्षा कम होने लगी और चाय के खेत नष्ट हो गए।

इस प्रकार जलन्धर जिले में सन् १८६१ से १९३० तक प्रत्येक दस वर्ष की वर्षा का औसत देखने से ज्ञात होता है कि १८६१ से १९०० तक ३४ इंच प्रति वर्ष पानी पड़ा, परन्तु सन् १९०१ से १९१० में ३१ इंच, १९११ से १९२० में २८ इंच, तथा १९२१ से १९३० में २६ इंच प्रति वर्ष। इसका कारण वनों का नष्ट होना है।

वनों के प्रभाव से वर्षा में साल के दिन बढ़ जाते हैं (Number of rainy-days in a year are inreased), सन् १८७० में नीलगिरी पहाड़ों पर वन नहीं थे। इसके पश्चात् इन पर वनों का लगाना आरम्भ किया गया। वर्षा के आंकड़े देखने से ज्ञात होता है कि साल में वर्षा के दिन (जून से अगस्त तक की मौसमी वर्षा के अलावा) बढ़े और साथ ही वर्षा की मात्रा भी।

ग्रीष्म-ऋतु में वन-रहित पहाड़ों व धरती से वायु छूटकर गरम होती है, हल्की होने के कारण ऊपर उठती है। यदि बादल हों तो उन्हें यह गरम हवा अस्त-व्यस्त (dissipate) कर देती है। परन्तु यदि धरती अथवा पहाड़ों पर वन हों तब ५,००० फीट की ऊंचाई तक नमी का वातावरण रहता है। इस नम वातावरण (envelope of moist air) से बादल छूकर इसकी ओर आकर्षित होते हैं, और वर्षा कर देते हैं। इससे स्पष्ट है कि पहाड़ों पर अथवा ऊंचे स्थानों पर वनों का होना कितना आवश्यक है।

देखा गया है कि कई बार जहां तक वन होते हैं वहीं तक वर्षा होती है, पास के उन स्थानों पर, जहां वन नहीं हैं, वर्षा नहीं होती (Rain stopping abruptly at the edge of the forest).

(४) धरती की शोषण शक्ति

(Soil permeability)

वनों द्वारा धरती की शोषण-शक्ति (Absorptive capacity) बढ़ती है, वर्षा का पानी बह कर नहीं चला जाता (run off is decreased)। प्रयोग द्वारा सिद्ध हुआ है कि जितनी वर्षा वनों की धरती में दो मिनिट मे शोखी गई, उतनी ही वर्षा को शोखने मे बंजड़ भूमि को पांच घण्टे तक लगे। अतः वनों की सहायता से पानी धरती में शोखा जाता है, यह पानी धीरे धीरे कुओं, तलाबों, झरनों, नदियों में जाता है। वन-रहित भूमि पर वर्षा का पानी शीघ्र ही नष्टकारी बाढ़ के रूप में वेग से बह कर चला जाता है।

"Water, the blood of the Earth"

(जल धरती के लिये उतना ही आवश्यक है जितना कि मनुष्य अथवा अन्य जीवधारियों के लिये रक्त)।

—:o:—

# चन्द्र प्रकास का वृक्षों पर प्रभाव

लेखक—श्री शंकर राव जोशी

[ जीवन के लिये सूर्य प्रकाश का महत्व तो सर्वविदित है ही; ज्योत्सना भी बनस्पति के लिए इस दिशा में कितनी लाभदायक सिद्ध होती है, यही प्रस्तुत लेख का विषय है ]

भारतीय अति प्राचीन काल से चन्द्र-प्रकाश के हितकर प्रभाव से परिचित हैं। बैद्यक आदि कई प्राचीन ग्रंथों में चांदनी के सुप्रभाव का वर्णन पाया जाता है। किन्तु इधर कुछ सदियों से पश्चिमी सभ्यता की तड़क-भड़क से हमारी आँखें चौंधिया गई थीं, जिससे भारतीय ऋषि-मुनियों तथा अन्य विद्वानों द्वारा उल्लिखित बातें कपोल-कल्पना ही मानी जाती रही हैं। परन्तु ज्यों-ज्यों वर्तमान वैज्ञानिक युग के नित नवीन आविष्कार हमारी आँखों के सामने आते गए, उनकी सत्यता पर धीरे धीरे विश्वास जमने लगा हैं। यही बात ज्योत्स्ना पर भी लागू होती है।

एक विश्व-विख्यात प्राकृतिक-विज्ञान विशेषज्ञ ने एक स्थान पर लिखा है—"भूमंडल पर ज्योत्स्ना के प्रभाव की ओर उद्यान-विद्या-विशारदों का ध्यान गंभीरता-पूर्वक आकर्षित हो रहा है। वन के वृक्षों पर ज्योत्स्ना का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है, यह बात अब अधिकाँश विशेषज्ञ मानने लगे हैं। इंगलैंड के वृद्ध कृषकों की मान्यता है कि पौधों को पूरी तरह से जमने और ठीक तरह से वृद्धि पाने के लिए शुक्ल-पक्ष में ही स्थानान्तरित किया जाना चाहिए।

कमांडर ए-बी-कैम्पबेल एक सुविख्यात पर्यटक हैं। उन्होंने अपने एक बी-बी-सी-ब्रॉडकास्ट में कहा है, "कैबिन के बाहर का दृश्य अति ही मनोहारी था। थर्मामीटर ६१ अंश से भी नीचे उतर आया था और पूर्ण चंद्र अपनी सोलहों कलाओं से प्रभा फैला रहा था। खुले स्थान पर रखे हुए बालसम आदि के पौधे पिस्तौल के शब्द करते हुए फटाफट फटते जा रहे थे"।

यह निश्चित रूप से सही है कि, ज्यों ज्यों चन्द्रमा बढ़ता जाता है, पौधों में रस ( Sap ) भी बढ़ता जाता है और उसी के साथ क्रमशः घटता भी जाता है। पौर्णिमा को बालसम की ग्रंथियाँ ( blisters ) रस से परिपूर्ण हो जाती हैं। यदि इस समय ताप-क्रम घट जाय, तो इन ग्रंथियों में का रस जमने लगता है और पिस्तौल की-सी आवाज करते हुए ग्रंथियां फटाफट फटने लगती हैं तथा पौधा मुरझा जाता है।

ब्राजील देश के एक प्रमुख रेलवे के डिस्ट्रिक्ट इंजनियर मिस्टर हरबर्ट टी-वेट का कथन है कि इंजीनियरों का अनुभव है कि चन्द्र की वृद्धि और क्षय के दिनों में रस बढ़ता और घटता है। ज्योत्स्ना का यह प्रभाव रेलवे के स्लीपर्स पर स्पष्ट दिखाई देता है। स्लीपर्स बल खाकर फटते और अति शीघ्र खराब हो जाते हैं। अतएव ठेका देते समय यह शर्त रखी जाती है कि शुक्ल-पक्ष में काटी गई लकड़ी के स्लीपर्स ही लगाने पड़ेंगे और इससे कम्पनी को काफी बचत हुई है।

मिस्टर ए-व्ही-गुईज अपनी 'बोलिविया में छह वर्ष' नामक पुस्तक में लिखते हैं, "यहां के निवासी इमारत में लगाई जाने वाले लकड़ी शुक्ल-पक्ष के प्रथम सप्ताह में काटने का विशेष ध्यान रखते हैं। इसके बाद काटी गई लकड़ी में छेद करने वाले कीड़े बहुत जल्दी लग जाते हैं। 'पोली लिओ' नामक कीड़ा जल्द ही इस लकड़ी को बेकार कर देता है।

संसार के सभी देशों में यह बात निस्सन्देह स्वीकार करली गई है कि बनस्पति की वृद्धि पर चन्द्र-ज्योत्स्ना का प्रभाव निश्चित रूप से पड़ता है।

आसाम के चाय की खेती करने वालों का अनुभव है कि ज्यों ज्यों चन्द्र-कलाएं बढ़ती जाती हैं, चाय के पत्ते अधिकाधिक बड़े होते जाते हैं, अतएव पूर्ण चन्द्र का उदय होने के बादही चाय के पत्ते तोड़े जाते है। कैनरी द्वीप का अनुभव है कि देशांश-अक्षांश और ताप-मान का प्रभाव केले पर स्पष्ट दिखाई देता है। किन्तु चाँद का भी काफ़ी असर पड़ता है। अनुभव से पाया गया है कि मार्च, एप्रिल और मई में नव चन्द्र का प्रभाव फलों के आकार आदि पर स्पष्ट दिखाई देता है। मार्च महीने में केले का फल लम्बा, सीधा, और जल्द टूटने वाला होता है, और फल गाय के सींग के आकार का होता है एवं नीचे का सिरा ऊपर की ओर उठा रहता है। मई में फल अधिक मीठे होते हैं किन्तु फलों का आकार अच्छा नहीं होता है।

पूर्ण चन्द्र उदय होने से पहले स्थायी स्थान पर पौधे लगाना लाभदायक माना जाता है और नवीन चंद्र उदय होने से पहले लगाये गए पौधे उतने अच्छे नहीं जमते हैं। बरसों जाँच-पड़ताल करने से पाया गया है कि वृद्ध कृषकों और अनुभवी मालियों के कथन में बहुत कुछ सत्य निहित है। [ इलस्ट्रेटेड वीकली से ]

---

# भारत की खाद्य स्थिति तथा कृषि सुधार

( भारत सारकार के सूचना विभाग के सौहार्द्र से )

[ आज देश की जनता व देश की सरकार के सामने सब से महत्वपूर्ण प्रश्न है कि भारत में खाद्य के सम्बन्ध में आत्म-निर्भरता हो जाय। लोगों में बढ़ता हुआ असन्तोष और उससे भी अधिक बिगड़ी हुई अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों ने समस्या को गुरुतर बना दिया है, सरकारी आंकड़े जनता को रोटी देने में कहाँ तक सहायक होंगे इसका अनुमान पाठकों को प्रस्तुत लेख में मिलेगा ? ]

### खाद्य के सम्बन्ध में आत्मनिर्भरता

प्रधान मंत्री ने २६ जून १६४६ को राष्ट्र के नाम एक भाषण प्रसारित करते हुए कहा था कि "सरकार १६५१ तक देश को खाद्य के सम्बन्ध में आत्म-निर्भरता बनाने का प्रयत्न करेगी और उसके बाद विदेशों से खाद्यान्न मंगाना बंद कर देगी"। यह महत्वपूर्ण घोषणा हुए एक वर्ष से अधिक समय हो गया, इसलिये अब यह जान लेना आवश्यक है कि हम ने इस दिशा में कितनी प्रगति की।

### लक्ष्य-पूर्ति

सरकार के १६५१ के बाद खाद्य-आयात बन्द करने के निर्णय से, १६४७-४८ में आरम्भ किये गये पंचवर्षीय "अधिक अन्न उपजाओ" आन्दोलन को विशेष प्रोत्साहन मिला। १६४७ के खाद्य उत्पादन के आधार पर यह अनुमान लगाया गया था कि मार्च १६५२ के अन्त में कुल ४६ लाख २० हजार टन अन्न की कमी रहेगी। निश्चित अवधि के भीतर इस कमी को पूरा करने के लिये राज्यों से परामर्श कर के एक योजना बनायी गयी और प्रत्येक वर्ष के लिये अतिरिक्त उत्पादन की न्यूनतम मात्रा निर्धारित कर दी गयी। पिछले ३ वर्षों के लिये निर्धारित लक्ष्य इस प्रकार थे :—

वर्ष　　　लक्ष्य (लाख) टनों में

| | |
|---|---|
| १९४७-४८ | ९.०६ |
| १९४८-४९ | ८.८६ |
| १९४९-५० | ९.८५ |

इन लक्ष्य की पूर्ति इस प्रकार हुई :

| वर्ष | लक्ष्य-पूर्ति ( लाख टनों में ) |
|---|---|
| १९४७-४८ | ६.८६ |
| १९४८-४९ | ७.७१ |
| १९४९-५० ( जून तक ) | ९.३५ |

इस से विदित होता है कि गत ३ वर्षों में उत्पादन में लगभग २४ लाख टन की वृद्धि हुई।

गत वर्ष के आंकडे

१९४९-५० में ९ लाख ३५ हजार टन अतिरिक्त अन्न पैदा हुआ, जो निर्धारित लक्ष्य का ९५ प्रतिशत है। इस वृद्धि के मुख्य कारण भरपूर खेती, सिंचन-सुविधा, और भूमि-सुधार आदि है। १९४९-५० में किये गये कार्यों के कुछ आंकड़े नीचे दिये जाते हैं।

| कार्य | आंकड़े |
|---|---|
| कुएं, जो बनाये गये अथवा सुधारे गये | ६७, १२४ |
| छोटी सीचन योजनायें-बांध, नालियां, नलदार कुएं आदि-जो पूरी की गयीं | १३,५८१ |
| पानी के ऊपर उठाने वाले यंत्र-रहट, पम्प आदि—जो लगाये गये | १७,३८० |
| तालाब, जो बनाये गये अथवा सुधारे गये | ३,८६३ |
| बंजर भूमि, जो राज्यों द्वारा सुधारी गयी | ५,७३,०१९ एकड़ |
| बंजर भूमि, जो केन्द्रीय, टैक्टरसंगठन द्वारा सुधारी गयी | ७१,७७१, एकड़ |
| भूमि, जिसमें राज्यों द्वारा मशीनों से खेती की गयी | ३,४४,८३० एकड |
| रासायनिक उर्वरक, उली, हरी खाद आदि, जो किसानों को दी गयी | ३,०६,१०३ टन |
| शहरी कूड़ा-कर्कट से बनी खाद, जो किसानों में बांटी गयी | ८,७६,००० टन |
| सुधरे बीज, जो किसानों में बांटे गये | ५४,४४६ टन |

नीचे दिये हुये आंकड़े से पता चलता है कि पहले दो वर्षों की अपेक्षा १९४९-५० में लक्ष्यपूर्ति में अधिक सफलता मिली :

| वर्ष | लक्ष्य | पूर्ति | प्रतिशत |
|---|---|---|---|
| १९४७-४८ | ९.०६ | ६.८६ | ७५ |
| १९४८-४९ | ८.८३ | ७.७१ | ८७ |
| १९४९-५० | ९.८५ | ९.३५ | ९५ |

गत वर्ष के आत्म-निर्भरता आन्दोलन के परिणामों का सिंहावलोकन करते हुए, भारत सरकार के खाद्य उत्पादन-आयुक्त श्री आर० के० पाटिल ने कहा कि यदि मौसम अच्छा अथवा औसत दर्जे का भी रहा तो भारत मार्च १९५२ तक आत्मनिर्भर बन सकता है। खेती का मौसम से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जब तक भारत की तीन चौथाई कृषि-भूमि के सीचने का कोई प्रबन्ध न होगा, ऋतु-वैषम्य, वर्षा की कमी, अथवा कुसमय वर्षा से खेती को हानि होना स्वाभाविक है।

स्थाई योजनाएं

'अधिक अन्न उपजाओ' 'आन्दोलन के लिये कुएं-तालाब बनाने और भूमि सुधारने आदि की स्थाई योजनाओं का विशेष महत्व है। आरम्भ में, सुधरे बीज, खाद और उर्वरक वितरण आदि की अस्थायी योजनाओं का प्राधान्य था। १९४७-४८ में अस्थायी और स्थायी योजनाओं का प्रतिशत क्रमशः ८६ और १४ था, परन्तु अब स्थायी योजनाओं पर अधिक बल दिया जा रहा है, और १९५१-५२ तक यह प्रतिशत क्रमशः २३ और ६७ हो जायगा। नीति में इस मौलिक परिवर्तन से उत्पादन में केवल १९५१-५२ तक ही नहीं, चिरकाल तक वृद्धि होती रहेगी।

१९४९-५० में, सीचन-योजनाओं से उत्पादन में ४,३१,७९६ टन की वृद्धि होने का अनुमान है, जो १९४८-४९ के अतिरिक्त उत्पादन से १६३ प्रतिशत अधिक है। आंकड़े इस प्रकार हैं :

| | |
|---|---|
| १९४७-४८ | ९४,१८५ टन |
| १९४८-४९ | १,६४,४५१ „ |

१६४६-५० ४,३१,७६६ „

बंजर भूमि में कृषि करने पर भी प्रर्याप्त बल दिया गया है। १६४६-५० में ५,७३,०१६ एकड बंजर भूमि राज्यों द्वारा और ७१,७७१ एकड केन्द्रीय ट्रैक्टर संगठन द्वारा सुधारी गयी।

### सार्वजनिक सहयोग

इस आन्दोलन के साथ जनता के सहयोग की विशेष आवश्यकता है। केन्द्र से ग्राम पंचायतों तक प्रत्येक स्थल पर सार्वजनिक सहयोग माना जा रहा है। ग्रामों, तहसीलों, और जिलों में प्रगतिशीत किसानों और गैर-सरकारी व्यक्तियों की समितियां बना दी गयी हैं।

किसानों को प्रोत्साहित करने के लिये उत्तरप्रदेश और पश्चिमी बंगाल में खाद्य उत्पादन सम्बन्धी प्रतियोगिताएं आयोजित की गयीं। इन प्रतियोगिताओं के परिणाम बहुत अच्छे निकले, और जिन क्षेत्रों ने प्रतियोयिताओं में भाग लिया उनकी अधिकतम और औसत उपज बहुत अच्छी रही। अन्य राज्यों से भी ऐसी ही प्रतियोगितायें आरम्भ करने के लिये कहा गया है।

### संचालन प्रणाली

आन्दोलन चलाने के लिये केन्द्र में और राज्यों में विशेष व्यवस्था कर दी गयी है। जिलों में डिप्टी कमिश्नरों या जिलाधीशों की और राज्यों में खाद्य उत्पादन-आयुक्तो या निर्देशकों खाद्य उत्पादन-वृद्धि का भार सौंपा गया है।

राज्यों ने केन्द्र द्वारा सुझाये गये कुछ अन्य उपाय भी किये हैं, जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं :—

(क) - शिल्पियो की कमी को पूरा करने के लिये अधिक से अधिक इंजीनियर "अधिक अन्न उपजाओ" आन्दोलन में लगाये जायें, चाहे इससे सड़क उन्नति और भवन-निर्माण आदि की योजनाओं की गति मन्द ही क्यों न पड़ जाय। राज्यीय सरकारें विश्वविद्यालयों से सम्पर्क स्थापित कर ऐसा प्रबन्ध कर लें, जिससे इंजीनिरिंग कालेजों और स्कूलों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों को कर्माभ्यास के लिये छोटी सिंचन-योजनाओं पर काम करना अवाश्यक हो जाय। मद्रास, बिहार बम्बई, मध्यप्रदेश और पंजाब की सरकारों ने इन सुझावों को क्रियान्वित करना आरम्भ कर दिया है।

(स) तकाबी बांटने की प्रणाली में सुधार किया जाय जिससे किसानों को तकाबी का रुपया शीघ्र मिल सके। सब राज्यीय सरकारों ने यह सुझाव स्वीकार कर लिया है।

(ग) जंगली जानवरों से फसलों की रक्षा करने के लिये, किसानों को उदारता से आग्नेय अस्त्रों (बन्दूक आदि) के लाइसेंस दिये जायें। आग्नेय अस्त्र क्रयमूल्य पर या रियायती दर पर दिये जायें और किसानों द्वरा फसल - रक्षा - समितियों के निर्माण को प्रोत्साहन दिया जाय। लगभग सभी सरकारों ने इस सुझाव को क्रियान्वित करना आरम्भ कर दिया है।

(प) सहकारिता के आधार पर कृषि व्यवस्था आरम्भ करने के लिये भूमि की आर्थिक दृष्टि से लाभ जनक इकाइयां बनायी जायें और सहकारी समितियों के निर्माण को प्रोत्साहन दिया जाय। उत्पादन-वृद्धि के लिये सबसे पहले इन्हीं समितियों को सहायता दी जाय और एक निश्चित अवधि के लिये इनका भूमि कर भी माफ कर दियाजाय। ब बई, सौराष्ट्र, उड़ीसा और उत्तर प्रदेश की सरकारें सहकारी कृषि-समितियों के निमाण की व्यवस्था कर रही हैं।

(ङ) नगरों और गावों में कूड़ा-कर्कट से खाद बनाने के कार्य को प्रोत्साहन दिया जाय। पंजाब सरकार ने एक विधि बना कर कतिपय क्षेत्रों में कूड़ा - कर्कट से खाद बनाना अनिवार्य कर दिया है।

### कृषि-यंत्र

कृषि-यंत्रों के अभाव को दूर करने लिये लोहा इस्पात, सीमेंट और कोयला अधिक मात्रा में दिया गया। नीचे तुलनात्मक आंकड़े दिये जाते है:

वस्तु अवधि कृषि-कार्य के लिये मात्रा

| | | |
|---|---|---|
| लोहा और इस्पात | १६४८ | ४१,६३८ टन |
| | १६४६ | १,०१, २६२ टन |
| | १६५० जून तक | ७१, २६० टन |
| सीमेंट | अक्टूबर-दिसम्बर (१६४६) | ७४, ६२३ टन |
| | जनवरी-मार्च (१६५०) | १,२५,७२० टन |
| | अप्रैल-जून (१६५०) | १,०२,१३० टन |
| कोयला | जुलाई-सितम्बर (१६४६) | ६३,६६० टन |
| | अक्टूबर-दिसम्बर (१६४६) | १,०५,६४५ टन |
| | जनवरी-मार्च (१६५०) | १,०३, २२३टन |

### खाद की किस्में

प्रायः लोग यह प्रश्न करते हैं, "क्या रासायनिक खादों, से भूमि विषाक्त हो जाती है ?" उसका उत्तर है, "नहीं, यदि इनका ठीक ढंग से उपयोग किया गया है"। रासायनिक खादों के उपयोग से पौधे को खुराक पहुँचाई जाती है। जब कभी पौधे लगाये जांय तो भूमि में रासायनिक खाद अवश्य मिलाना चाहिए, किन्तु साथ ही पौधे की आवश्यकता तथा उन परिस्थितियों का, जिनमें वह बढता है, ध्यान रखना चाहिए। पर्याप्त नमी की हालत में ही पौधा रासायनिक खाद का उपयोग करता है। इस महत्वपूर्ण बात को स्मरण रखना चाहिये।

केवल रासायनिक खाद पर ही निर्भर रहना उतना ही बुरा है जितना कि केवल बनस्पति खाद पर आश्रित रहना। रासायनिक खाद से पौधों को आवश्यक पौष्टिक तत्व मिलते हैं। अच्छी भूमि में वे भौतिक तत्व अवश्य विद्यमान होने चाहिए जिनसे पौधे की जड़ों का विकास होता है। पौधा अपनी जड़ों द्वारा ही भूमि से व जल और पौष्टिक तत्व ग्रहण करता है। पौधे के सभी भागों को जल और पौष्टिक तत्व पहुँचने चाहिएं। कम पैदावार का बहुधा यह कारण होता है कि पौधों की जड़ें अच्छी प्रकार विकसित नहीं होतीं और फलतः भूमि से आवश्यक मात्रा में जल और पौष्टिक तत्व नहीं प्राप्त कर सकतीं। भूमि में जब उपयुक्त भौतिक तत्व विद्यमान नहीं होते तो जड़ें ठीक ढंग से काम नहीं करती हैं।

जड़ें ठीक ढंग से काम करें, इसके लिए यह आवश्यक है कि भूमि ऐसी हो जिसमें पानी सुगमता से इकट्ठा न हो सके और जड़ों को हवा तथा नमी मिलती रहे। भूमि यदि फोकी हो तो तेजी से कार्बन डायक्साइड बाहर निकलती रहती है और आक्सीजन अन्दर प्रवेश करती रहती है। भूमि को इस प्रकार की बनावट को कायम रखने के लिए भूमि-सुधार फसलों से बनस्पति-खाद बदलते रहना चाहिए। फोकी भूमि पर लगे पौधों को रासायनिक खाद से अत्यधिक लाभ पहुँचता है।

बनस्पति खाद, पौधों के सूखे पत्तों आदि के सड़ने से बनता है और इससे सब पौधों को बढने में बहुत सहायता मिलती है। भूमि-सुधार में रासायनिक खाद और बनस्पति खाद एक दूसरे के पूरक सिद्ध हो सकते हैं। इनके तत्वों की मात्राओं पर सावधानी से ध्यान देने के पश्चात् इन दोनों खादों का ऐसे अनुपात से उपयोग करना चाहिए जिससे वे भूमि के लिए अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हों।

खेतों में फूस—पत्ते आदि पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं जिन्हें सुगमता से बनस्पति खाद में परिवर्तित किया जा सकता है। बनस्पति और रासायनिक खादों से भूमि की उर्वरता तथा उपज में बहुत कुछ वृद्धि की जा सकती है।

भारत की गिनती संसार के सर्वाधिक पशु-धन वाले देशों में की जाती है। लोग नहीं जानते कि हमारे देश में १३ करोड ६० लाख गाय-बैल और ४ करोड़ से अधिक भैंसें हैं। इस प्रकार सारे संसार के बैल व भैंसा जाति के पशुओं की एक-चौथाई संख्या अकेले भारत में ही मौजूद है। इसके अतिरिक्त, भारत में ३ करोड ७७ लाख भेड़ें, ४ करोड ६५ लाख बकरे-बकरियां और ३२ लाख घोड़े, खच्चर, गधे, और ऊँट अलग हैं, जो सभी, देश की कृषि व्यवस्था में काम आते हैं। प्रति व्यक्ति, और खेती की प्रति एकड भूमि, दोनों के ही हिसाब से, भारत की पशुसंख्या संसार के अधिकतर देशों से ऊंची है।

किन्तु यह सब होते हुए भी हमारे पशु बहुत ही अविकसित दशा में हैं और हमारा प्रति पशु पीछे उत्पादन भी संसार में सब देशों से नीचा है। भारतीय पशुओं में अधिक उत्पादन की सामर्थ्य निहित अवश्य है, पर उसे प्रकट रूप में लाना ही मुख्य समस्या है। इतने बड़े देश के समस्त साधनों को किस प्रकार जुटाया जाय कि उनकी यह सामर्थ्य विकसित हो सके? इतने विशाल देश में परिस्थिति मूलक विभिन्नताएँ भी इतनी हैं, कि समस्त प्रदेश के लिए विकास सम्बन्धी एक ही योजना बनाना और फिर एक ही रूप में उसे कार्यान्वित करना, टेढ़ी खीर है। तो भी, जन-समुदाय के आर्थिक एवं सामाजिक कल्याण के लिए देश के समस्त विशिष्ट ज्ञान एवं संगठन बुद्धि को एक साथ जुटा कर उक्त उत्पादन बढ़ाने का उद्योग करना होगा।

पशु-धन के सुधार के लिए एक ही साथ कई बातों का ध्यान रखना होता है। इनमें से मुख्य हैं, पशुओं का प्रजनन उनकी खिलायी, उनके रोगों की रोकथाम और उनका प्रबन्ध। प्रजनन द्वारा पशु को, एक निश्चित मात्रा में अपने जनक की उत्पादन सामर्थ्य प्राप्त होती है। और खिलाई, रोगों के रोकथाम तथा प्रबन्ध द्वारा, पशु वास्तविक उत्पादन में अपनी इस जन्मजात सामर्थ्य को प्रकट करने के योग्य बनता है। आप किसी पशु को कितना भी खिलाएँ और उसके रोगों की रोकथाम रखें किन्तु उसका उत्पादन वही रहेगा, जो उसके वंश के हिसाब से होता है। इसलिए सबसे पहली आवश्यकता यह है कि देश को अच्छी जाति के सांड पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हों, ताकि प्रजनन द्वारा उनकी उत्पादन शक्ति उनके वंशजों में लायी जा सके। किन्तु दुर्भाग्यवश, देश में ऐसे सांडों की संख्या बहुत ही कम है। सारे देश के लिए ऐसे १० लाख सांड चाहिएं पर वस्तुतः हमारे पास ५००० से अधिक ऐसे सांड नहीं हैं। अतएव, प्रजनन की सबसे बड़ी समस्या यही है कि इतने सांड कैसे पैदा किये जायें और देश भर को वे कैसे बांटे जायं, ताकि उनका अधिक से अधिक उपयोग किया जा सके।

### चारे का प्रश्न

खिलायी के बारे में स्थिति यह है कि इस समय देश में जितने पशु मौजूद हैं, उन सबको खिला सकने में देश असमर्थ है किन्तु पशुओं के चारे का उत्पादन अभी बढ़ाया जा सकता है। चारे में दो मुख्य चीजों का होना जरूरी है —(१) कार्बो-हाइड्रेट और (२) प्रोटीन। चारे में 'प्रोटीन' की पूर्ति खली, तेलहन और चना खिला कर की जा सकती है, पर देश में इन चीजों की बहुत कमी है। मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि भारत में कुल जितने पशु हैं, उनके केवल २८ प्रतिशत के लिए ही ये चीजें पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो सकती हैं। हरा चारा, सुखायी, घास भूसा आदि अन्य वस्तुएं हैं; जिनसे पशुओं को कार्बोहाइडेट प्राप्त होता है, पर सारे पशुओं के लिए अपर्याप्त है। अनुमान है कि यह चारा कुल पशुओं के ७५ प्रतिशत के लिए ही पर्याप्त है। इसलिए दूसरी भारी समस्या यह है कि पशुओं के चारे का उत्पादन किस प्रकार से बढ़ाया जाय

### रोगों की रोकथाम

सभी को मालूम है कि भारत में अनेक प्रकार के संक्रामक तथा अन्य रोगों से पशुओं की भारी हानि होती है; बहुतेरे पशु मर जाते हैं और बहुतेरे कमजोर पड़ जाते हैं। राज्यों के पशु-चिकित्सा विभाग इतने विशाल नहीं हैं कि सारा काम चला सकें। खयाल है कि लगभग २५,००० पशुओं के पीछे कम से कम एक पशु-चिकित्सक तो रहना ही चाहिए। राज्यों की सरकारें इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए यत्नशील हैं। साथ ही व्यापक प्रचार की भी आवश्यकता है, ताकि पशुओं के गरीब और अपढ़ मालिकों को पशु-धन के सुधार से संबंध रखने वाली बातें समझायी जा सकें और राज्यों के पशु-चिकित्सा विभागों द्वारा बतायी गयी बातों पर वे पूरी तरह से अमल कर सकें।

### प्रबन्ध

अब रही पशुओं के प्रबन्ध की बात। इस प्रबन्ध व्यवस्था में उन सभी बातों की व्यवस्था सम्मिलित है, जो पशुओं के आराम और साधारण कल्याण के लिए आवश्यक हों, इस क्षेत्र में भी लोगों में फैले हुए अज्ञान एवं अजानकारी को दूर करने की जरूरत है। लोगों को समझाना होगा कि वे विज्ञान द्वारा सिद्ध उपायों को अपनायें और उनसे काम लें।

इन सबके अतिरिक्त हाट-व्यवस्था की ओर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है। जब तक कि मालिक को उसके पशु का अच्छा खासा दाम न मिलेगा, तब तक उसे अपने पशुओं की दशा सुधारने का उत्साह ही न होगा। इसलिए पशु वर्गी-करण, पशु-जन्य पदार्थों में मिलावट की रोकथाम, रोगों की रोकथाम, कुंठित नस्ल के पशुओं को बधिया करने आदि बातों के लिए उपयुक्त विधान की आवश्यकता है।

किन्तु भारत जैसे विविध दशाओं वाले विशाल देश में, कोई भी उपाय तब तक सफल नहीं हो सकते, जब तक कि उनकी योजनाएं सावधानी के साथ नहीं बनायी जातीं और उनका प्रयोग व्यवस्थित रूप में नहीं होता।

### गन्ने की खेती में उन्नति

उत्पादन बढ़ाने के लिए वैज्ञानिक गवेषणा हो रही है।

दीमक तथा अन्य कीटों से गन्ने को पहुँचने वाली क्षति की रोकथाम के उपाय, गन्ने की उपज बढ़ाने के लिए रासायनिक खादों का समुचित उपयोग और विभिन्न प्रकार के जलवायु एवं भूमि के लिए विभिन्न प्रकार के गन्नों की उपयुक्तता, आदि वे विषय हैं, जिनके सम्बन्ध में, भारतीय केन्द्रीय गन्ना समिति के तत्वावधान में गवेषणा का कार्य चल रहा है।

### कीटों की रोकथाम

दीमक की रोकथाम के लिए 'गमेक्सीन' का प्रयोग उत्तर प्रदेश और बिहार, दोनों ही स्थानों में बहुत कारगर सिद्ध हुआ है। गन्ने की डंडी और जड़ों को छेदने वाले विशेष कीटों की रोकथाम के लिए भी प्रयोग किये गये हैं, जिनके परिणामस्वरूप यह निष्कर्ष निकला है कि इन कीटों का विनाश 'ट्राइचोग्रामा' नामक कीट-भक्षी कीड़े द्वारा किया जा सकता है, क्योंकि यह कीड़ा उक्त कीटों के अंडों को खा जाता है। इसीलिए सरकारी प्रयोगशालाओं के अतिरिक्त 'बालचंद नगर इंडस्ट्रीज लिमिटेड' और 'ईस्ट इन्डियन डिस्टलरीज एन्डशूगर फैक्टरीज, लिमिटेड, नल्लीकुप्पम' मद्रास में इन कीड़ों को बहुत बड़ी संख्या में पैदा किया जा रहा है।

'रेडराट' (एक प्रकार की गेरूई) से भी गन्ने की फसल को भारी क्षति पहुँचती है, और इसकी रोकथाम के लिए फसल पर पिसे गन्धक का छिड़काव लाभदायक सिद्ध हुआ है।

यह भी देखा गया है कि गन्ने की उपज बढ़ाने के लिए रेंड़ी की खली और अमोनियम सल्फेट तथा अमोनियम नाइट्रेट नामक रासायनिक खादें बहुत अच्छी हैं। किन्तु रासायनिक खादों का मिश्रण तैयार करने में, स्थानिक दशाओं का ध्यान रखना चाहिए, और आवश्यकतानुसार ही विभिन्न खादों की मात्रा मिलानी चाहिए। किस प्रकार की भूमि और जलवायु में किस प्रकार के गन्ने की खेती अच्छी होगी, इसकी जानकारी के लिए सूचियाँ तैयार कर ली गयी हैं।

### उपज प्रतियोगिताएं

गन्ने की खेती की उन्नति के लिए राज्यों में अनेक योजनाएं चालू हैं उत्तर प्रदेश की उन्नति परिषद ने हाल में ही उपज-वृद्धिप्रतियोगिता योजना चालू की थी। इसका बहुत अच्छा फल निकला है। उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों में कई जगह गन्ने की उपज १८०० मन प्रति एकड़ तक पहुँची है, जब कि औसत उपज केवल ४०० मन प्रति एकड़ ही बैठती है। पूर्वीय जिलों में

भी कहीं कहीं ४३० मन प्रति एकड़ की जगह १२०० मन प्रति एकड़ गन्ना पैदा हुआ है।

कानपुर के 'इन्डियन इस्टिटीयूट आफ शुगर टेक्नोलाजीने एक ऐसा सरल ढंग निकाला है, जिसके द्वारा उत्पादन के समय मिलों में नष्ट हो जाने वाली चीनी की मात्रा बहुत घट जायगी और इस प्रकार देश को लगभग ५० लाख रुपये का वार्षिक लाभ होगा।

खांडसारी चीनी तैयार करने की देसी प्रणाली मेंभी सुधार किया गया है और नये ढंग का प्रदर्शन खांडसारी चीनी के मुख्य केन्द्रों में किया जा रहा है। यह भी पता लगा है कि मिलों से निकलने वाले गन्ने की खोई में शीरा मिला कर पशुओं के लिए चारा तैयार किया जा सकता है।

--:०:--

# रेडियो इंन्जीनियरिंग की शब्दावली

लेखक—श्री रमेश चन्द्र चड्ढा

[ हिन्दी के साहित्यिकों के लिए वैज्ञानिक शब्दावली की समस्या भारत की राष्ट्र भाषा के प्रश्न के कारण, आज अपना एक विशेष महत्व रखती है। प्रस्तुत लेख में इस समस्या के अतिगत दृष्टिकोण को छोड़कर मध्यवर्ती मार्ग को अपनाते हुए रेडियोइन्जीनियरिंग में प्रयोग किए जाने वाले शब्दों का संकलित अनुवाद है, प्रयोग साफल्य भविष्य के हाथ है ? ]

हिन्दी के भारत की राष्ट्र भाषा बन जाने के साथ हिन्दी वालों का कर्तव्य हो गया है, इसे सर्वांग संपूर्ण बनाना, इसके लिये आयश्यक है कि हम प्रत्येक विषय की चर्चा के लिये हिन्दी शब्दावाली को संपूर्ण बनाएँ। इसी उद्देश्य की आंशिक पूर्ति के लिये इस लेख में रेडियो एंजिनियरिंग की शब्दावली का संकलन किया गया है।

विषय—विशेषतया वैज्ञानिक विषय-परस्पर संवद्ध होते हैं। रेडियो एंजिनियरिंग का भी आधार रसायन, भौतिक आदिक अनेक विज्ञान हैं। वैसे तो हमने इस शब्दावली को स्वावलम्ब बनाने का प्रयास किया है पर इसकी सफलता उस सिद्धान्त के कारण ससीम है। विषय के गुढ़तम स्थलों की विवेचना के लिये प्राय: समस्त भौतिक तथा रसायन विज्ञान की शब्दावली का का समावेश करना पड़ता ; पर इसे उपयुक्त न जान कर हमने इन विषयों के बहु प्रयोग्य शब्दों के पर्यायी देकर ही संतोष कर लिया है।

उचित है कि प्रारम्भ में ही हम प्रकट कर दें कि इस शब्दावली के आधारभूत नियम क्या हैं। इस सम्बन्ध में हम श्री कुलदीप चन्द्र चड्ढा जी के उस लेख की ओर संकेत करते हैं जोअप्रैल-मई, १९४९ के विज्ञान में प्रकाशित हुआ है। उसमें शब्दावली के विषय पर गंभीर और विश्लेषणात्मक विवेचन किया गया है। प्रस्तावित शब्दावली उसी में प्रवाहित नियमों का अनुकरण करती है। यहां पर यह प्रकट करना भी असंगत न होगा कि प्रस्तावित कार्य स्वयम् कुलदीप चडढ़ा जी ने ही किया था। बाद में व्यावसायिक व्यस्तता के कारण इसका भार इन पंक्तियों के लेखक पर पड़ा। अतएव हमने यथा सम्भव शब्दों को सुचारु, सरल, अंग्रेजी शब्दों

के समरूपक लेकिन पूर्णतया भारतीय तथा संस्कृत निष्ठ बनाने का प्रयास किया है। शब्दावली में इन सब नियमों को पूरी तरह पालना कठिन अवश्य है, किन्ही स्थलों पर समझौता भी अनिवार्य हो जाता है।

हाँ, शब्दों को क्लिष्ट न बनने देने के प्रयास में कहीं कहीं संस्कृत के प्रमाणित व्याकरणीय नियमों की अवहेलना भी करनी पड़ी है।

इस संकलन के लिये हमने अनेक शब्दावलियों से सहायता ली है। यही नहीं, प्रत्युत हमने तो यही उचित समझा कि शब्द निर्धारण से पूर्व यथा सम्भव सभी उपलब्ध स्रोतों से उपयुक्त शब्द ढूढ़े जायें। इस प्रकार हमने नागरी प्रचारिणी सभा के दशाब्दियों पुराने संग्रह से लेकर, पत्र पत्रिकाओं में यदा कदा प्रकाशित होने वाले लेखों तक यथा सम्भव मन्थन किया है। इस संकलन को पाठकों के सम्मुख रखते हुए उन ज्ञात-अज्ञात पूर्व पंथियों के प्रति आभार प्रदर्शन करना हमारा मुख्य कर्तव्य है।

शब्दावली को नियम बद्ध करने के लिये उसका वर्गीकरण किया गया है। शब्दावली के लगभग साढ़े पाँच सौ शब्दों को, सात विभागों में विभाजित किया गया है यह लेख विषयानुसार हैं। विभाग "क" में सामान्य प्रयोग के शब्द दिये गये है; विभाग "ख" में *Radio* Valve की परिचर्या में प्रयुक्त शब्द; विभाग "ग" में इलैक्ट्रिकल टैकनालोजी के शब्द; विभाव "घ" मे Circuital use के शब्द; विभाग "ङ" में *Reception* तथा Transmission की चर्या के प्रयोग्य शब्द विभाग "च" में Acoustis तथा "छ" में मिले जुले फुटकर शब्द।

प्रस्तावित शब्दावली पर कार्य लगभग दो ढाई वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ था। काम को मन्थर गति से करने में हमारी धारणा यह रही है कि शब्द निर्धारण के बाद उन पर आलोचनात्मक दृष्टिपात भी एक आवश्यक बात है। इसी आघात को कुछ कमजोर शब्द सहन न कर सके अत: उन्हें स्थानान्तरित कर दिया गया। अतएव हमें विश्वास है कि इस समय जो शब्द हम पाठकों की सेवा में रख रहे हैं, वे मूलत: अधिक उपयोगी सिद्ध होंगे।

विभाग "क"

1. Matter — प्रकृति, पदार्थ
2. Fundamental Particles — मूल कण
3. Molecule — मौलिकण

Atomic Physics के शब्दों के पर्यायी पत्र पत्रिकाओं में प्राय: प्रयुक्त होते रहते हैं। Molecule के लिए भी अनेक शब्द प्रयुक्त किए जा चुके हैं। पर उन सब से भिन्न "मौलिकण" को मान्यता देने में हमारे सामने विशेष कारण थे। अंग्रेजी शब्द का शाब्दिक अर्थ हैं "पदार्थ का सूक्ष्म अंश" इसी शाब्दिक भाव के इस शब्द के प्रायोगिक अर्थ के साथ समन्वय के रूप में हमने उक्त शब्द को प्रमाणता दी। साथ में अंग्रेजी शब्द का समरूपक होने से यह अधिक उपयुक्त है।)

4. Atom — अणु
5. Nucleus — नाभिक
6. Electron — ऋणाणु
7. Proton — परमाणु

(अंग्रेजी शब्द का आधार 'Protos' अर्थात् Original or chief; इससे पर्यायी का नामकरण स्पष्ट है।)

8. Positron — धनाणु
9. Ion — याणु

( अंग्रेजी शब्द का आधार यूनानी भाषा की धातु cimi और संस्कृत धातु 'या' से 'याणु'-समरूपक भी है )

10. Neutron निर्याणु

( अवैद्युतिक स्वभाव के कारण, याणु न होने से )

11. Photon प्रभाणु
12. Electrostatic स्थिर विद्युत्, विद्युत्स्थ
13, Electromagnetic विद्युच्चुम्बकीय
14. Wireless Waves बेतार तरंगें
15. Communication संसर्ग
16. Vibration कम्पन
17. Oscillation उद्दोलन, दोलन*
I8. Frequency आवृति
19. Radio-frequency विकिरणावृति
20. Audio-frcqueney श्रवणावृति
21. Low-frequency निम्नावृति
22. Medium-frequency मध्यमावृति
23. High-frequency उच्चावृति, तुंगवृति
24. Very-high-frequency (V. H. F.) अतितुंगावृति (अ तु आ)
25. Ultra-high. frequency (V. H. F.) परातुंगावृति (प तु आ)
26. Super-high frequency (S. H. F.) उत्ततुंगावृति (उ तु आ)
27. Energy शक्ति
28. Kinetic Energy गति शक्ति
29. Potential Energy स्थिति शक्ति
30. Solid ठोस
31. Liquid तरल
32. Gas वायव
33. Gaseous वायवीय
34. Vapour वाष्प
35. Vapourization वाष्पन
36. Evaporation वाष्पीकरण
37. Motion चलन
38. Speed गति
39. Velocity वेग
40. Accelaration प्रवेग
41. Retardation विवेग
42. Force बल
43. Power संशक्ति, सामर्थ्य
44. Random Motion निर्बन्ध (स्वेच्छ) चलन
45. Thermal Agitation तापज क्षोभण
46. Incident Wave घटित तरंग, आपात तरंग
47. Reflected Wave प्रतिफलित तरंग
48. Rebounded Electrons परावर्तित ऋणाणु
49. Polar Molecule सध्रुव मौलिकण
50. Non—Polar Molecule अध्रुव मौलिकण
51. Vertical Motion अद्गत चलन, उत्तान चलन
52. Horizontal Motion क्षितिगत चलन
53. Hydrogen नीरजन, उदजन

---

* अनेक स्थलों पर सामयिक तौर पर दो पर्यायी दिए गए हैं। बाद में संयुक्त अक्षरों में, उनमें से एक का प्रयोग हमारी विशेष रुचि को प्रकट नहीं करता; ऐसा प्रयोग केवल संक्षेप की दृष्टि से किया गया है।

54. Oxygen अ.लजन, ओक्जन
55. Mercury पारद
56. Copper ताम्र
57. Carbon काजल
58. Iron लौह
59. Glass कांच
60. Crystal स्फटिक
61. Focus संकेन्द्र
62. Focusing Action संकेन्द्रण
63. Symmetry सम्मिति
64. Assymetry असम्मित
65. Dissymetry विसम्मित
66. Telephony दूरवाणी
67. Telegraphy दूरलेखन
68. Television दूरदर्शन
69. Tele-photogram दूरप्रभालेख
70. Component अंशाक
71. Equivalent तुल्य
72. Kilocycles (Kcs.)सहस्रचक्र (सच)
73. Conduction संचालन
74. Convection संवाहन
75. Radiation विकिरण
76. Signal संकेत
77. Code इंगित
78. Radio (Rcceiver) रश्मीक

( Radio शब्द के उचित पर्यायी के निर्धारण में प्राय: मतभेद है। अनेक विद्वान तो इस अंग्रेजी शब्द को इसी रूप में अपना लेने को प्रस्तुत हैं। पर जैसा विज्ञान के अप्रैल-मई १९४९के अंक में स्पष्ट किया जा चुका है [ पृष्ट १४ ] यह चुनाव भ्रममूलक और अनुचित है।

हिन्दी अनुवाद के लिए हमें इस शब्द के मूल में जाना होगा। यह शब्द लेटिन की धातु Radiave पर आधारित है, जिसका अर्थ है–to radiate–अर्थात् रश्मिरूपेण फैलना। इसी के आधार पर हमने Radio, Radio active, Radiation, Radio meter आदि—इस शब्द-सन्तान के अनुवाद का निश्चय किया है। शब्द सारल्य और सौन्दर्य की दृष्टि से हमने Radio प्रत्यप को तो "रश्मि" में परिणत किया है :

Radioactive रश्मिकर
Radioactivity रश्मिकरण
Radiometer रश्मिभापक
Radiograph रश्मिलेखन

और "radiaticn" की क्रिया, और तत्संबन्धी समासों को "विकिरण" से संयुत किया है। जिसे साधारण भाषा में RADIO कहा जाता है उसका हमने "रश्मीक" में रूपान्तर किया है। )

79. Pulse स्पन्द
80. Diffraction विवर्तन
81. Refraction आवर्तन
82. Expansion प्रसार
53. Deflction विचलन
84. Scattering प्रकिरण
85. Diffusion प्रस्रवण
86. Interference व्यतिकरण
87. Distribution वितरण
88. Emission विश्लेषण, विसर्जन
89. Tube नालक
90. Valve प्रदीप

( Valve का शाब्दिक अर्थ—लेटिन भाषा में—है, leaf of folding door इस अभिप्राय से "कपाट" इत्यादि कुछ पर्यायी चुने जा चुके हैं। Mechanics में जिस अभिप्राय से यह शब्द प्रयुक्त होता है, उसके लिए तो उक्त हिन्दी शब्द

अनुपयुक्त नहीं। पर Radio Valve के अर्थ में इसका प्रयोग अजीब सा लगता है। अन्यथा भी सर्व प्रथम Valve केवल Rectifier या Detector के तौर पर प्रयुक्त हुआ था; तब तो इसका अंग्रेजी नाम भी सार्थक था। पर आज के बहुगुणी Valve को केवल एक अभिप्राय से संबद्ध रखना उचित नहीं। अतएव हमने Valves की मूल क्रिया को दृष्टि में रखते हुए इसे 'प्रदीप' का सरल, स्वतंत्र और सुन्दर नाम दिया है)

विभाग "ख"

91. Vacuum Tube शून्यनालक
92. Partial Vacuum आंशिक शून्य
93. Filament सूत्रक
94. Thermions तापाणु
95. Emitter विक्षेपक
96. Radiator विकिरक
97. Grid विवरी
98. Plate पट्टक
99. Screen प्राचीर
100. Cathode ऋणोद
101. Anode धनोद
102. Free Electron मुक्त ऋणानु
103. Bound Electron बद्ध ऋणनु
104. Control Gird नियमक-विवरी (नियन्त्रक-विवरी)
105. Suppression सुदमन विवरी
106. Shielding अभित्राण
107. Electrode विद्युद्
108. Support Wire आश्रय तार
109. Positive Ion धनयाणु
110. Negativelon ऋणयाणु
111. Alloy मिश्रधातु-मिश्रातु
112. Multistrand Filament बहुगुणसत्रक
113. Electron Flow ऋणानु प्रवाह
114. Secondary Emission गौण विक्षेपण (विसर्जन)
115. Ionisation याणवन, याणुकरण
116. Space Current अन्तर्धारा, विकाशधारा
117. Virtual Cathode आभास ऋणोद
118. Back Heating प्रतितापन
119. Residual Gas अवष्टि वायव
120. Bias वृत्ति
121. Cut off Bisa मिवरा तीव्र
122. Sharp Cutout तीव्र विराम
I23. Transconductance पार सञ्चालिता
124. Interelectrode capacity अन्तर्विद्युद् गाहिता,
125. Amplification factor संवर्धनांक
126. Characteristic Curves लक्षण चक्र
127. Static Characteristics स्थिर लक्षण
128. Dynamic Characteristics कर्म लक्षण
129. Maximum allowable resistance अधिकतम अनुज्ञान रोधन
130. Plate Efficiency पट्टक नि ुणता
131. Diode द्वयोद
132. Triode त्रयोद
133. Tetrode चतुरोद
134. Pentode पंचोद
135. Sexode षडोद

136. Thyratron त्रागोन
137. Magnetron चुंबकोग
138. Pentagrid converter पंचविवरी परिवर्तक
139. Beam Tube पुंज नालक
140. Sharp Cutoff Tube तीव्र विराम नालक
141. Mixer Tube मिश्रक नालक
142. Inverted Tube विलोम नालक
143. Lighthouse Tube ज्योतिस्तम्भ नालक
144. Rectifier Tube ऋजुकर नालक
145. Cold Cathode Rectifier शीत ऋणोद ऋजुकर
146. Mercury Arc Rectifier हारद दीप्ति ऋजुकर
147. Diode Rectifier द्वयोद ऋजुकर
148. Photoelectric Cell प्रभाविद्युत कोष्ठक
149. Cathode Ray Tube ऋणोद रश्मिनालक
150. Contact Potential संपर्क शक्यता
151. Excitation Potential उत्तेजन शक्यता
152. Ionization Potential यागावन शाक्यता
153. Potential Barrier शक्यता बन्ध
154. Work Function प्रकर्ष राशि, कार्य राशि
155. Activated सचेष्टित
156. Equipotential Surface समशक्यता तल
157. Transit Time पार्य काल
158. Grid Structure विवरी संघट्टन
159. Tube Noise नालक रव
160. Back fire प्रति प्रज्वाल
161. Electron Bunching ऋणानु समूहन
162. A. C. Hum द्विगरव
163. Thermal Agitation Noise तापज क्षोभण रव
164. Shott Effect वेध प्रभाव
165. Partition Noise विच्छेदन रव
166. Induced Grid Noise उपपादित विवरी रव
167. Flicker Effect प्रकंप प्रभाव, प्रस्पन्द प्रभाव

विभाग "ग"

168. Electricity विद्युत्
169. Current धारा
170. Flow of current धारा प्रवाह
171. Direct Current ऋजु धारा
172. Alternating Current द्विग धारा
173. Charge आवेश
174. Charged आविष्ट
175. Discharged निरावेश
176. Potential शक्यता
177. Volt वोल्ट
178. Ampere अम्पियर (एम्पियर)
179. Voltage वोल्टता
180. Amperage अम्पियरता
181. Magnetism चुम्बकत्व
182, Magnetic Flux चुम्बकीय स्राव
183. Resistance रोधन
184. Reactance प्रतिकृति
185. Conductor संचालक

186. Conductance संचालत्व
187. Conductivity सञ्चालिता
189. Resistor रोधक
190. Insulator अचालक, पृथक्कर
191. Insulation अचालन, पृथक्करण
192. Impedence अवरोधन
193. Inductor उपपादक
194. Inductance उपपादन
195. Capacity धारिता
196. Capacitance धारत्व
197. Capacitor धारक
198. Condenser घनीकर
199. Dielectric अवैद्युतिक, विवैद्युतिक
200. Semi Conductor अर्ध संञ्चालक
201. Series Resistance क्रम रोधन
202. Parallel Resistance समानान्तर रोधन, सम रोधन
203. Shunt Resistance समार्थ रोधन
204. Peramebility संचार्यता, समावेश्यता
205. Hysterisis संशोषण
206. Skin effect चर्म प्रभाव
207. Generator जनित्र
208. Transformor परिरूपक
209. Step-up Transformer उत्पद परिरूपक
210. Step-down Trans former अधः पद
211. Alternator द्विगत्र

Alternator = Alternating Current + CTeneratoy. इस समास के अनुरूप हिन्दी में भी हम यन्त्र को दत्त शब्द से प्रकट कर सकते हैं, क्योंकि द्विग रा + जनित्र = द्विगत्र )

212. Air Gap वायु रिति, वायु रिक्ति
213. Power factor संशक्ति अंक
214. Electrical connection वैद्युतिक श्लेष
215. Disconnected अश्लिष्ट
216. Transformer winding परिरूपक वेष्टन
217. Multilayer winding बहुपरतीय वेष्टन
218. Terminals अन्तिकाएं
219. Ammeter एम्मापक (=Ampere + meter) (=एम्पियर + मापक)
220. Votmeter वोल्ट मापक
221. Galvanometer धारा मापक
222. Electrometer विद्युतमापक
223. Turns ratio वर्तन अनुपात
224. Leading current अग्रेग धारा
925. Lagging current अनुग धारा
226. Leakage current संश्र धारा
227. Core loss अयस हानि, लोह हानि हृत् हानि
228. Copper lose ताम्र हानि
229. Potentiometer शक्यमापक
230. Microammeter क्षुद्रैम्मापक
231. Three phase current त्रिगम धारा

विभाग "ब"

232. Circuit परिपथ
233. Coupling युग्मता
234. Close coupling घन युग्मता
235. Lose coupling विरल युग्मता
236. Linkage सम्बन्धन

237. Filter छन्ना
238. Efficiency निःगुणता
239. Blocking condenser अवग्रह घनीकर
240. Leakage resistance संस्र रोधन, स्रवण रोधन
241. Distributed capacitance वितरित धारत्व
242. Self capacitance स्व धारत्व
243. Trimmer condenser मार्जक घनीकर
244. Padder उपधानक
245. Leads नेतिकाएं
246. Load धुर, भार
247. Loaded circuit सधुर परिपथ
248. Unloaded circuit अधुर परिपथ
249. Network न्यास
250. Circuit design परिपथ निरूपण
251. Helix कुंडली
252. Transformer coupling परिरूपक युग्मता
253. Interstage transformer अन्तर्स्थिति परिरूपक
254. Push-pull circuit विकर्षाकर्ष परिपथ
255. Series feed क्रम पोष
256. Parallel feed सम पोष
257. Input trans former प्रवेश परिरूपक
258. Transit angle पार्य कोण
259. Delay time विलम्ब काल
260. Distortion विरूपण
261. Non linear distoriton अनार्जव विरूपण
262. Constant current generator अचल धारा जनित्र, अविरत धारा जनित्र
263. Constant voltage generator अचल ( अविरत ) वोल्टता जनित्र
264. Loa l impedence धुर अवरोधन
265. Voltage drop resistance वोल्टता पात रोधन
266. Input voltage प्रवेश वोल्टता
267. Output voltage उत्पन्न वोल्टता
268. Impedence matching अवरोधन मेलन
269. Admittance स्वीकार्यता
270. Characteristic impedence लाक्षणिक अवरोधन, स्वाभाविक अवरोधन
271. Terminating resistance अन्तक रोधन
272. Wave shape तरंग रूप
273. Harmonics सुलय-अनुरणन
274. Fundamental frequency मूलावृत्ति
275. Regeneration पुनर्जनन
276. Earth connection भूश्लेष
277. Neutral point निरपेक्ष बिन्दु
278. Phase inverter पक्ष गतिवर्तक
279. Cathode follower ऋणोद वृत
280. Off-chance selectivity पार सरणी चयनता
281. Envelope delay आवरण विलम्ब
282. Critical coupling चरम युग्मता

283. Under coupling हीन युग्मता
284. Over coupling अति युग्मता
285. Stage gain स्थिति लाभ
286. Coil कुंच
287. Iron cored coil लोहान्तर कुंच
288. Air cored coil वायवांतर कुंच
289. Dust cored coil रजान्तर कुंच
290. Re-enterent type cavity पुनर्प्रवेश त्रिल
291. Balance coil तुलन कुंच
292. Converter परिवर्तक
293. Convertion-trans conductance परिवर्तन पर संचालत्व
294. Detector विगोपक
295. Power Detector संशक्ति विगोपक
296. Weak signal detector क्षीण संकेत विगोपक
297. Square Low detector वर्ग नियम विगोपक
298. Linear detcctor अर्जवविगोपक, रेखीय विगोपक
299. Diode detector द्वयोद विगोपक
300. Grid leak detector विवरीस्रवणविगोपक
301. Vacuum tube volt.meter (V.T.M. शून्य नालक वोल्टता मापक शून्नावोमा
302. Residual Current अवशिष्टधारा
303. Electron Coupling ऋणानु युग्मता
304. Instantaneous Conductance सद्य संचालत्व
305. Side-bond उप पट्ट
306. Side-bond noise उप पट्ट रव
307. Percentage ripple प्रतिशत ऊर्मिता
308. Eddy Currents भंवर धारायें
309. Lowest ripple frequency न्यूनतम ऊर्मता आवृति
310. Input Inductance प्रवेश उपपादन
311. Incremental Inductance वर्धमान उपपाद
312. Primary winding प्रमुख वेष्टन
313. Secondary winding गौण वेष्टन
314. Voltage Regulation वोल्टता नियन्त्रण
315. Decoupling वियुग्मता
316. Amplification संवर्धन
317. Amplifier संवर्धक
318. Amplitude आपान
319. Phase Shift पक्षभेद, पक्ष अन्तर
320. Frequency Response आवृति प्रतिवाद
321. Flat Response सम्यक प्रतिवाद
322. Resistance. Coupled Amplifier रोधन सवंर्धक योजित संवर्धक
323. Neutralization निरपेक्षण, निराकरण
324. Feed Back प्रति योप
325. Tuned Amplifier ध्वनित संवर्धक (संनादित संवर्धक)

326. Oscillations उद्वेलन
327. Oscillator उद्वेलक
328. Resonance अनुनादन
329. Resonant Circuit अनुनादित परिपथ
330- Period of Oscillation उद्वेलन मितकाल (अवधि)
331. Periodic Oscillations आवधिक उद्वेलन
332. Universal Resonance Cure वैश्व (सामान्य) अनुनादन वक्र
333. Angle of flow प्रवाह कोण
334. Tank circuit कोष परिपथ
335. Harmonic Generator सुलय उत्पादक
336. Resonant Line Oscillator अनुनादित सूत्र उद्वेलक
337. Parasitic Oscillations पराश्रित उद्वेलन
338. Sliding Contact सर्पण संपर्क
339. Automatic Amplitude control स्वतः आयाम नियमन
340. Beat Frequency oscillator तालावृत्ति उद्वेलन
341. Tuned-plate Tuned-grid oscillator ध्वनित पट्टक ध्वनित विवरी उद्वेलक
342. Master oscillator मुख्य उद्वेलक
343. Crystal oscillator स्फटिक उद्वेलक
344. Optic Axis आलोकाक्ष
345. Electrical Axis विद्युत् अक्ष
346: Mechanical Axis यांत्रिक अक्ष
347. Fundamental Mode of Vibration मूल कंपन पद्धति
348. Longitudinal mode लम्बान्तर पद्धति
349. Extentional mode प्रसार पद्धति
350. Face shear mode विकार पद्धति, आकार भेद पद्धति
351. Nodal points ग्रन्थि बिन्दु
352. Multivibrator विविध कम्पक, बहु कम्पक
353. Clipper circuit कर्तक परिपथ
354. Rectifier ऋजुकर
355. Rectification ऋजुकरण
356. Voltage doubling Circuit वोल्टता द्विकर परिपथ
357. Interphase reactor अन्तर्पक्ष प्रतिकर
358. Ripple Voltage ऊर्मि वोल्टता
359. Metal Rectifier धातु ऋजुकर

विभाग "ङ"

360. Reception संग्रहण
361. Receiver संग्राहक
392. Selectivity चयनता
363. Sensitivity संग्राहकता (संग्रहण सूक्ष्मता)
364. Fidelity शुचिता
365. Volume control नाद नियमक
366. Automatic Volume Control स्वतः नाद नियमक (नियमन)

(=A.V.C.) ( = स्वनानि )
367. Delayed A.V.C. विलम्बित स्वनानि
368. External Volume Control वाह्य नाद नियमन
369. Tone Control स्वर नियमक
370. Tracking अनुपादन
371. Alignment सुश्रृंखलन
372. Permeability Tuning संचार्यता संह्रादन ( ध्वनिता )
373. Triple-Detection Receiver त्रिगुण विगोपन संग्राहक
374. Automatic frequency control (=A.F.C.) स्वतः आवृति नियमन ( =स्व आनि )
375. Noise Suppression रवदमन
376. Diversity Reception विविध संग्रहण
377. Froquency Diversity आवृति विविध
378. Adjacent channel interferenee सन्निकट सरणी व्यतिकरण
379. Frequency doubler आवृति द्विकर ( द्विगुणकर )
380. Pen-ultimate stage पूर्वान्त्य स्थिति
381. High level modulation उच्चस्तर भितलयन
382. Tone-compensated volume control स्वरक्षतिपूरित नाद नियमक
383- Frequency monitoring आवृति विगमन
384. Frequency deviation आवृति निरीक्षण
385. Heterodyne भेदताल
386. Superheterodyne Receiver सुभेदताल संग्रहक
387. Superhet सुताल
388. Frequency stability आवृति स्थायित्व
389. Discriminator प्रभेदक
390. Local oscillator स्थानीय उद्वेलक
391. Limiter सीमाकर
392. Propagation प्रचलन
393. Sky wave आकाश तरंग
394. Direct Wave सामान्य तरंग
395. Space wave विकाश तरंग
396. Polarisation ध्रुवता
397. Plane of Polarisation ध्रुवता तल
398. Ionosphere यानु मण्डल
399. Absorption शोषण
400. Fading लोपन
401. Fade out बिलुप्ति
402. Refractive index आवर्तनांक
403. Anomolous Propagation उत्क्रान्त प्रचलन
404. Duct Propagation विल्व प्रचलन
405. Diurnal variation दैन्य विचरण
406. Virtual Height आभास उच्चता
407. Critical frequency चरम आवृति

408. Sunspots सूर्य कलंक
409. Collision संघात
410. Interference व्यति करण
411. Cross-modulation पार मितलयन
4I2. Stratosphere स्तर मण्डल
413. Inter modulation अन्त-मितलयन
414. Attenuation अकुलन आहति
4I5. Oblique incidence तिर्यक-घटन ( आपात )
416. Skip distance उल्लंघन अन्तर
412. Maximum Usable Frequency ( M.U.F. ) अधिकतम प्रयोग्य आवृति (अ प्र आ )
418. Penetration प्रच्छेदन
419. Scattered Radio-wave प्रकीर्ण विकिरण तरंग
420. Ordinary Wave साधारण तरंग
421. Extra-ordinary Wave असाधारण तरंग
422. Primary Service area प्रमुख सेवन क्षेत्र
423. Selective fading विशिष्ट लोपन
424. Low angle Beam निम्नकोण पुंज
425. Static स्थरव
426. Atmospheric वातरव
427. Over lapping उल्लेपन
428. Morse code मोर्स इंगित
429. Morse interference मोर्सक व्यतिकरण
430. Transmission संप्रेषण
431. Transmitter संप्रेषक
432. Radiator विकिरक
433. Aerial वातार (=वायु+तार )
434. Antenna संस्पर्शी
435. Side band उप पट्ट
436. Standing wave Mation उस्थित तरंग अनुपात
437. Wave train तरंग माला
438. Wave front तरंगाग्र
439. Transmission line संप्रेषण सूत्र
440. Concentric line समकेन्द्रिक सूत्र
441. Stub Line अकाण्ड सूत्र, स्थाणु सूत्र
442. Parabolic reflecor परवलयक प्रतिफलक
443. Beam width पुंजप्रसार
444. Induction field उपपादन क्षेत्र
445. Radiation field विकिरण क्षेत्र
446. Radiation lobes विकिरण कर्ण
447. Polar diagram ध्रुवीय चित्र ( अंकन )
448. Directivity दिग्विशेषता
449. Directional Pattern दिग्विशेष प्ररूप
450. Radiator Array विकिरक व्यूह
451. End fire array अन्त विद्ध व्यूह
452. Array factor व्यूहांक
453. Radiation Resis tance विकिरण रोधन
454. Isotropic radiator सर्वदिग विकिरक
455. Corona discharge किरीट विसर्जन
456. Apex angle शीर्ष कोण
457. Dipole aerial द्विध्रुवबवातार

458. Doublet aerial द्विकरीय वातार, द्विवाहुय वातार
459. Rhombic antenna चतुभुर्ज संस्पर्शी
460. Diamond aerial रत्न वातार
461. Indoor aerial अन्तर्द्वार वातार
462. Out door aerial वाह्यद्वार वातार
463. Aerial mast वातार स्तंभक
464. Carrier wave वाहक तरंग
465. Carrier suppression system वाहक दमन पद्धति
466. Single sideband generation एक उपपट्ट जनन
467. Carrier current communi-cation वाहक धारा संसर्ग
468. Pinch matching निपीड मेलन
469. Stub matching स्थाणु मेलन

विभाग "च"

470. Sound ध्वनि
471. Acoustics ध्वनिकी
472. Studio कलागार
473. Modulation मितलयन, प्ररंजन
474. Pitch तिक्ष्णता
475. Volume (=loudness) नाद
476. Tone स्वर
477. Decibel दशम बैल
478. Microphone क्षुद्रवाणी
479. Carbon microphone काजल कण, क्षुद्र वाणी
480. Condenser microphone घनीकर क्षुद्रवाणी
481. Ribbon " पट्टिका "
482. Crystal " स्फटिक "
483. Moving coil microphone चल-कुंच "
484. Velocity " वेग "
485. Pressure " नोदन "
486. Omnidirec-tonal " सर्वदिग "
437. Unidirectional micaophone एक दिग, एक मुखी क्षुद्रवाणी
488. Bidirectional द्विमुखी, द्विदिग
489. Piezo.electricity पीड विद्युत
490. Audibilitv श्रव्यता
491. Threshold of audibility श्रव्यता पदार्पण
492. Reverberation अभिखरण
493. Recording अनुलेखन
494. Reproduction पुनर्वादन
495. Recorder अनुलेखक
496. Intermodu-lation distortion अन्तर्मितलयन, विरूपण
497. Sum and Difference frequencies योगान्तर आवृतियाँ
498. Overtones उवर-तुंगस्वर
499. Automatic volume expansion स्वतः नाद प्रसार
500. Articulation उच्चार्यता
501. Loud-speaker नाद वर्धक
502. Deflecting vanes विचालक कर
503. Directional

baffles दिगंकुश
504. Voice coil वाद् कुंच
505. Sound dissipation ध्वनि क्षय
506. Cross talk पार भाषण
507. Modulator मितलयक
508. Modulated मितलयित
509. Plate modulation पट्टक मितलयन
510. Grid modulation विवरी मितलयन
511. Highlevel Modulatlon उच्चस्तर मितलयन
512. Degree of modulation मितलयनांश
513, Demodulation विमितलयन

विभाग "छ"

514. Electrolysis विद्यु विश्लेषण
515. Superimposed उपरिन्यस्त
516. Empirical अनुभवीय
517. Transoceanic service पार सिन्धु-सेवन
518. Synchronising समकालन
519. Coefficient गुणक
520. Jump उल्लंघन
521. Reversibiblity विपर्ययता
522. Brittle भंजनशील, भंजनीय
523. Image प्रतिबिम्ब
524. Porosity रंध्रता
525. Meter मापक
526. Pointer निदर्शक
527. Indicator निदर्शक
528. Sequence अनुक्रम
529. Accumulator संचयक
530. Tuning संनादन
531. Signal Generator संकेत जनित्र
532. Octal Base अष्टिक आधार
533. Bridging impedence सेतुकी अवरोधन
634. Wheatstone Bridge वीटस्टोन सेतु
535. Blue glow नील द्युति
536. Broadcasting विश्व घोषण
537. Chain Broadcasting शृंखला विश्वघोषण
528. Autodyne स्वताल
439. Paramagnetic सुचुम्बकीय
540. Ferromangetic लोहचुम्बकीय
541. Diamagnetic विचुम्बकीय
542. Headphone शिरोवाणी, शिरोभाष

# परमाणुओं का आकार और प्रकार

लेखक—श्री जगपति चतुर्वेदी

[ पिछले अंक में प्रकाशित चतुर्वेदी जी के परमाणु-परिचय शीर्षक लेख की पृष्ठभूमि में प्रस्तुत लेख पाठकों को परमाणुओं के बारे में और मनोरंजक ज्ञान दे सकेगा, ऐसी आशा है ]

सोना सब धातुओं में श्रेष्ठ माना गया है। इसका नाम 'कांचन' ही कितना आकर्षक है। इसकी दमक और स्थिर आभा इसका मूल्य अत्यधिक कर देती है। यह मूल्यवान धातु सूम के घर के अतिरिक्त बैज्ञानिक खोजशाला में भी स्थान पाकर हमारे ज्ञान की वृद्धि कर अपना महत्व और बढ़ाता है। बिजली की धारा निर्देश करने में इसके बारीक पत्तों का सूक्ष्म यंत्र बनता है जिसका वर्णन अन्यत्र मिल सकता है। यहाँ पर हम परमाणुओं की सूक्ष्मता अनुमानित करने के लिए इसी श्रेष्ठ धातु का उपयोग करेंगे।

सुनार सोने के कितने मनोहर आभूषण बनाता है। उसकी छोटी हथौड़ी की चोट से सोने की पतली से पतली पत्ती बन कर तैयार हो जाती है, यह सोने की एक विशेषता है कि उसकी बहुत ही पतली पत्ती बनाना सुगम होता है। यदि हम कुछ मात्रा में सोना लेकर किसी निश्चित नाप की पत्ती तैयार करें तो उस पत्ती की मुटाई जानना कठिन न होगा। हिसाब जोड़कर उसकी मुटाई बताई जा सकती है। मान लीजिए कि एक घन इंच सोने की डली को पीट कर ६ इंच लम्बी और ६ इंच चौड़ी पत्ती तैयार करवाया। इस पत्ती की मुटाई गणना से बताई जा सकती है जो वैसी ही कई पत्तियों के एक साथ नापने पर स्थूल रूप से सत्य देखी जा सकती है। इस प्रकार सोने का एक ग्रेन का नन्हा टुकड़ा लेकर इतनी पतली पत्ती बनाई जा सकी है जो ७५ इंच चौड़ी और ७५ इंच लम्बी हो। अब हिसाब लगाकर सुगमतया बताया जा सकता है कि ऐसी पत्ती की चौड़ाई १/३६७०० इंच होगी अर्थात वह कागज की चौड़ाई से भी हजार गुना पतली होगी।

सोने की इतनी पतली पत्ती में भी कितनी ही अणुओं की तहें होंगी। अतएव यह पतली पत्ती यथार्थ रूप में एक अणु के आकार का परिचय न देकर भी हमको उसकी सूक्ष्मता का एक मोटा अटकल लगाने में सहायता करती है।

सोने की पत्ती अवश्य ही अपनी बारीकी से हमें विस्मय में डालती है कि अणु इतने सूक्ष्म, हमारी कल्पना से परे, छोटे आकार के होते हैं कि हम उनके रूप को वास्तविक रूप में नहीं देख सकते। किन्तु प्रकृति हमको इनका निकटतम रूप देखने में सहायता करती है। पानी या भीगे कपड़े पर बनता हुआ साबुन का बुलबुला हम सब ने देखा होगा, पर यह तुच्छ वस्तु अणुओं के आकार की सूक्ष्मता समझने में पूरी सहायता देती है। वैज्ञानिकों ने सूक्ष्म-दर्शक यंत्र से निरीक्षण कर पता लगाया है कि उन बुलबुलों में कुछ गहरे रंग के धब्बे या चिन्ह दिखाई पड़ते हैं जो इसके सबसे पतले भाग होते हैं। इन स्थानों के पतले होने की परीक्षा बिजली व रोशनी फेंककर की गई है। वे स्थान नापने पर १/३० लाख इंच मोटे ज्ञात हुए हैं। किंतु इनमें या ऊपर बताई हुई सोने की पतली पत्ती में भी अणुओं की कितनी ही तहें मिलकर उतनी सूक्ष्म पतली परत बनाती हैं। साबुन के बुलबुले की छतरी में

२० या ३० अणुओं की तह होने से उतनी पतली परत बनती है।

इन प्रयोगों के अतिरिक्त एक वैज्ञानिक ने पानी के ऊपरी तल पर तेल की पतली तह फैला कर उसको दूर से दूर फैला कर यह परीक्षण किया है कि उसकी तेल की पतली परत १ इंच का पाँच करोड़वाँ भाग बन सकी है। किन्तु इस सूक्ष्म तह में भी अणुओं की तह अवश्य होगी। अतएव एक अणु की मुटाई इस की भी आधी अर्थात एक इंच का दस करोड़वाँ भाग (१/१०,००,००,००० इंच) होगी। फिर परमाणु का आकार तो कहीं इससे भी छोटा होगा।

यदि हम एक घन इंच की एक डब्बी या संदूकची लें जो एक इंच लंबी, एक इंच चौड़ी और एक इंच ऊँची हो तो उसमें वायु के अणुओं की संख्या २७,००,००,००,००,००,००,००० अर्थात लगभग २७ नील होगी। इतना भी स्थान इतनी अधिक संख्या में तीव्र गति से नाचते हुए अणुओं के लिए यथेष्ठ होगा, जिसमें अणुओं का जितना आकार है उससे दस गुनी अधिक जगह उसके अंदर खाली ही होगी। इससे अणुओं के आकार का कुछ अनुमान किया जा सकता है।

यदि एक अणु को किसी प्रकार हाथ के अंगूठे के जोड़ के बराबर बड़ा किया जाय तो उस के अनुसार उस जोड़ को १५० मील लम्बा बनाना पड़ेगा। यदि कागज पर बनाए एक बिन्दु की मुटाई में उस के इस पार से उस पार एक सीध में अणु रक्खे जायँ तो उनकी संख्या उतने ही स्थान में ५० लाख होगी।

अणुओं की सूक्ष्मता का दिग्दर्शन कुछ और उदाहरणों से कराया जा सकता है। यदि एक रत्ती नील पानी में डाला जाया तो वह ५०,६० मन पानी को रंगीन बना सकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि उस एक रत्ती में असंख्य अणु हैं जो इतने अधिक पानी में फैल कर उसे रंगीन कर सकते हैं। कस्तूरी का एक रत्ती दाना एक कमरे को कितने ही वर्षों तक सुगंधित रखता रहेगा और कमरे के प्रत्येक भाग में अपने अणु फेंकता रहेगा, किन्तु असंख्य अणु फेंक चुकने पर भी एक वर्ष में उसकी मात्रा का लाखवाँ, करोड़वाँ भाग भी कम नहीं हुआ रहेगा।

पानी के एक बूंद को लीजिए। इस का कितना छोटा आकार होता है। यदि इस छोटे बूंद को भूमंडल के बराबर बड़ा किया जाय तो उसमें के अणुओं का आकार नारंगी के बराबर होगा। ऐसे कितने अणुओं से एक बूंद की रचना हुई होगी। यह कल्पना की जा सकती है।

आज के विज्ञान ने सतत उद्योग कर संसार के प्रायः सभी तत्वों अर्थात मूल पदार्थों के सूक्ष्म परमाणुओं की खोज कर ली है। और उन के अदृश्य होते हुए भी उनका भेद प्रभेद ज्ञात कर लिया है। किसी भी पदार्थ को लेकर आज का विज्ञान रसायन विज्ञान की सहायता से उस की रचना करने वाले तत्वों का भेद प्रभेद और निश्चित मात्रा बतला सकता है। इतनी भारी सफलता मिलने में न तो थोड़ा समय लगा है और न यह किसी एक या दो वैज्ञानिक की प्रतिभा या परिश्रम का परिणाम है। इन खोजों में संसार के समस्त उन्नत देशों के वैज्ञानिकों ने भाग लेकर ज्ञान की एक एक गुत्थी सुलझा कर सैकड़ों वर्ष के निरंतर प्रयत्न और सफलताओं के बाद सफलता वा इसके विपरीत यह भी कह सकते हैं कि असफलताओं के पश्चात् असफलता उठाते हुए भी हतोत्साह न होकर यह ज्ञान-कोष वृद्ध करते जाने का उद्योग कर हमारी ज्ञान-राशि इतनी प्रचुर कर दी है।

तत्वों का भेद करने का मुख्य आधार रसायन विज्ञान के आचार्यों ने उनके परमाणुओं का भार या बोझ रक्खा है जिसे 'परमाणविक भार' कहते हैं। दो या अधिक प्रकार के परमाणुओं के ऐसे संयोग को जिसमें परमाणु परस्पर मिलकर एक अणु बन कर उस पदार्थ को उन अणुओं से निर्मित करते हैं, यौगिक कहा जाता है। रेत में आटा मिलाकर हम रेत और आटे का मिश्रण बनाते हैं क्योंकि मिली वस्तु में रेत या आटे के अणु पृथक पृथक प्रकार के

होंगे अतएव इसे यौगिक नहीं कहा जा सकता। यौगिक पदार्थों के तत्वों में से किसी एक तत्व के परमाणु उस वस्तु से सर्वथा पृथक कर उतनी ही संख्या में दूसरे तत्व के परमाणु उस यौगिक में मिला सकना रसायन विज्ञान के बाएं हाथ का खेल है। अतएव किसी यौगिक पदार्थ का ठीक तौल और मात्रा ज्ञात कर उसके किसी एक तत्व के परमाणु निकाल कर दूसरे तत्व के परमाणु उतनी संख्या में मिलाने से उस यौगिक पदार्थ के भार में अंतर ज्ञात कर किसी एक तत्व के निश्चित संख्या के परमाणुओं का भार बताया जा सकता है। इस प्रकार सभी तत्वों को इन्हीं विधियों से परीक्षा कर उनके परमाणुओं का भार ज्ञात किया जा सकता है। इस प्रकार परमाणुओं को उनके परमाणविक भार के अनुसार एक क्रम में कर उनकी सूची बना ली गई है। इस प्रकार की सूची में उदजन नामक वायव्य का प्रथम स्थान है क्योंकि वह सब से हल्की है और उस की क्रम संख्या एक तथा उस का परमाणविक भार भी १ माना जाता है। कृत्रिम रूप से वैज्ञानिकों की नई सृष्टि रची हुई तत्व—माला को छोड़ कर अंतिम तत्व पिनाकम (यूरेनियम) ९२ वीं संख्या-क्रम का है जिसका परमाणविक भार २३८ माना गया है क्योंकि इसका एक परमाणु उदजन नामक पहले तत्व के परमाणु से २३८ गुना अधिक भारी होता है।

मध्य के कुछ मुख्य तत्वों के नाम और उनकी विशेषता जानना मनोरंजक हो सकता है किन्तु उन का परिचय पाने के पहले इस संबंध की वैज्ञानिकों की एक दूसरी बड़ी खोज की चर्चा करना उचित है। रसायन विज्ञान के खोजियों ने अपनी खोजों में लग्न रहते हुए एक विशेष बात देखी। यदि तत्वों की सूची में पहली और दूसरी क्रम संख्या के बाद के तत्वों के गुणों पर ध्यान दिया जाय तो ज्ञात होगा कि तत्वों का गुण क्रम बीच के सात तत्वों को छोड़ कर प्रत्येक आठवें तत्व से मिलता जुलता है और आगे तथा पीछे की निकट की क्रम संख्या वाले तत्व से नहीं मिलता। उदाहरणार्थ तीसरी क्रम संख्या का तत्व ११ वें और १९ वें क्रम के तत्वों से अधिक मिलेंगे। ग्यारवीं संख्या का तत्व सैन्धकम् (सोडियम) नाम से प्रसिद्ध है जो हमारे नित्य के भोजन को स्वादिष्ट बनाने वाला पदार्थ नमक को बनाने में सहायक एक तत्व है, किन्तु जब तक यह नमक के यौगिक में नहीं मिला रहता तब तक शुद्ध तत्व के रूप में पृथक रहने पर यदि किसी भीगे कपड़े या किसी भीगी वस्तु के ऊपर रक्खा जाय तो तुरन्त इसमें से आग निकलने लगती है। इसी प्रकार पांशुजम (पोटैशियम) तत्व भी है जो पृथक तत्व रूप में अकेले रहने पर पानी में डालते ही जल उठ कर विचित्र दृश्य उपस्थित करता है। ये दोनों तत्व समान गुण वाले हैं जिनका स्थान तत्वों की सूची में एक की क्रम संख्या के बाद उसके आगे की आठवीं क्रम संख्या पर है।

इस प्रकार तत्वों के क्रम में विशेषता देखकर वैज्ञानिकों ने पता लगाया कि आठ संख्या के तत्वों के बाद वैसे ही गुण वाले दूसरे आठ तत्व दिखाई पड़ते हैं। यही क्रम देखकर इस प्रकार के विभाजन को दुबारा आने वाला क्रम या आवर्त्त संविभाग, आवर्त्त चक्र नाम दिया गया। आवर्त्त का अर्थ दुबारा या बार बार आना होता है। साधारण व्यक्ति के लिए यह एक दुरूह शब्द है किन्तु इस कठिन शब्द में प्रकट की जाने वाली खोज ने तत्वों और उनके भेद की खोज के कठिन कार्य को कितना सुगम बना दिया, यह रसायन विज्ञान वेत्ता ही अनुभव कर सकते हैं।

थोड़े में हम इतना कह सकते हैं कि जब प्रारम्भ के खोजियों को तत्वों के अधिक भेद प्रभेदों का पता नहीं था तो वे एक प्रकार से घोर अंधकार में ही भटकते थे और यह उनके घोर परिश्रम और संयोग का फल था कि दूसरी दूसरी दिशाओं में विज्ञान के गहन रहस्यों की खोज करते हुए उनको एक के बाद दूसरे तत्वों का पता लगता गया किन्तु फिर भी बहुत से तत्व रह गए जो लुप्त थे। उस का कारण यह था कि भूतल पर वे विशेष कारणों से पृथक रूप में दिखाई नहीं पड़ते थे और वैज्ञानिकों की खोजों में वे चकमा देकर दूसरे तत्वों में दबे रह कर निकल जाते थे। जब प्रतिभा

शाली वैज्ञानिकों ने अष्ट वर्ग सा आठ प्रकार के क्रमानुसार किन्तु भिन्न भिन्न गुणों वाले तत्वों को फिर अपने गुण उसी क्रम से दूसरे अष्ट वर्ग में दुहराते देखा तो उन्होंने बीच की टूटी शृंखला के अज्ञात तत्वों का गुण उसके बाद आठवें क्रम पर आने वाले ज्ञात तत्वों के गुण के अनुसार खोज करना प्रारम्भ किया और इस प्रकार खोज की टूटी शृंखला पूरी करते जाने में उन्हें इस आवर्त्त संविभाग की खोज ने भरपूर सहायता की।

कुछ और खोज करने पर यह भी ज्ञात हो सका था कि आगे की शृंखला तत्वों में गुण की समानता का सिलसिला टूट कर अठारहवें क्रम पर तत्वों में समान गुण दिखलाता है। इस प्रकार १८ तत्वों के गुण की आवृत्ति दूसरे १८ तत्वों में देखी जाती है।

यह क्रम अठारहवीं क्रम संख्या के बाद के तत्व से प्रारम्भ होता है। इस प्रकार उन्नीसवीं क्रम संख्या से ३६ वीं क्रम संख्या के तत्वों में क्रमशः जैसी विशेषता होगी वही ३७ वीं से लेकर ५४ वीं क्रम संख्या के तत्वों में दुहराई जाती देखी जायगी। परन्तु इसके बाद यह क्रम टूट जाता है और इसके बाद ३२ तत्वों का एक वर्ग आता है। वैज्ञानिकों का यह विश्वास है कि ५५ वें क्रम से प्रारम्भ होने वाला यह वर्ग (५४+३२=८६) वर्ग के अंतिम तत्व ८६ वें तत्व के बाद फिर आगे के बत्तीस तत्वों में दुहराया जाता किन्तु प्रकृति में इस के बाद केवल छः ही तत्व मिल कर तत्वों की शृंखला बन्द कर देते हैं। ये छः तत्व विचित्र गुण वाले पाए जाते हैं। ये स्वयं भगवान शंकर की तरह औढ दानी बन कर सतत अपने अंगों को क्षीण कर उसके परमाणुओं की वायुमंडल में वर्षा कर विचित्र परिणाम उपस्थित करते दिखाई पड़ते हैं। अंग भंग कर ये परमाणु अपनी महत्ता न्यून कर नीचे की शृखंला के तत्वों के परमाणु बनते जाते हैं। इन छः तत्वों को वैज्ञानिकों ने स्वयं अपनी शक्ति और आकार का दास कर अपूर्व शक्ति का संचार करते देखा है जो आज के जगत में उथल पुथल कर देने वाली शक्ति समझी जा रही है। रेडियम या रश्मिन इन्हीं में से एक है जिसकी खोज बड़े ही परिश्रम से संसार-प्रसिद्ध वैज्ञानिक महिला श्रीमती क्यूरी ने फ्रांस देश में की थी। यूरेनियम या पिनाकम इसी वर्ग की और तत्वों की शृंखला का अंतिम मनिया या समूह है। इस प्रकार के तत्व रश्मि शक्ति बरसाने वाले अथवा रश्मि शाक्तिक पदार्थ कहे जाते हैं और इनकी शक्ति रश्मि शक्तित्व या रश्मिशक्ति कही जाती है।

प्रकृति की रहस्यमय गर्भस्थली में ऐसे तत्व छिपे हो सकते हैं जो आज की ९२ तत्वों की पूर्ण शृंखला के परे स्थान के हों, परन्तु या तो उनका अस्तित्व भूतल पर कहीं न हो अथवा ऊपर वर्णित इस शृंखला के अंतिम छः तत्वों की क्रमावली के होने के कारण रश्मिशक्ति प्रसार करने वाले हों जिस कारण उस स्थिति में स्थिर रह सकना संभव न हो सकने से वे रश्मिशक्ति का प्रसार करते जाकर आज नीचे की शृंखला के स्थानों वाले तत्व बन चुके हों या आज भी कहीं उनका सृजन और संहार कार्य मनुष्यों की दृष्टि के लोप में हो रहा हो। आज के विज्ञान-जगत ने अपने अध्यवसाय और प्रयोगों के आधार पर ९२ तत्वों की शृंखला के परे भी कृत्रिम रूप से ५ नए तत्वों का निर्माण करने में सफलता प्राप्त की है जो रश्मिशक्ति-मय ही हैं और रश्मिशक्ति प्रसार कर शीघ्र ही अपना कृत्रिम रूप से प्राप्त इतना ऊँचा पद त्याग कर प्रकृति प्रदत्त निम्न स्थानों को पहुँच जाते हैं मानों मनुष्य-प्रदत्त मान वा प्रतिष्ठा उन्हें सह्य वा मान्य न हो। कौन जानता है कि मनुष्यों की प्रबल खोज शक्ति उनकी अल्पकालीन जीवन-यात्रा का रूप बदल कर स्थायी मान वाला पद उन्हें दे सकती हो वा अपनी खोज प्रगति जारी रख कर तत्वों की शृंखला कृत्रिम रूप से आगे ढकेल कर कोई ऐसा भी तत्व हस्तगत कर सके जो स्वभावतः स्थायी प्रतिष्ठा प्राप्त कर अपने रूप में अधिक काल तक स्थिर रह कर मनुष्य की निरंतर चाकरी कर अपनी अद्भुत शक्ति का प्रसार करने में लग्न रहे।

# प्राणि-प्रणय

लेखक—श्री प्रेम दुलारे श्रीवास्तव एम० एस० सी०

[ प्रजनन और काम में कार्य-कारण का सम्बन्ध एक स्वयं सिद्धि है। प्रणय की प्रणाली मानव-जगत में हमारे जीवन को सरस बनाने में कितना महत्व रखती है, यह बताने की आवश्यकता नहीं। मनोरंजक बात तो यह है कि पशु-जगत में भी मानवों का अनुकरण इस सम्बन्ध में दृष्टिगोचर होता है या यूँ कहा जाय कि पशु जगत में पाई जाने वाली प्रणय-प्रणालों का ही विकसित रूप मानव जगत में पाया जाता है ? विश्व विख्यात वैज्ञानिक जूलियन हक्सले के एक मूल लेख के आधार पर लिखे गये प्रस्तुत लेख में प्राणि-प्रणय का एक मनोरंजक एव शिक्षाप्रद विवेचन है। ]

हम प्राणियों के प्रेम का अवलोकन कर आनन्द से विभोर हो उठते हैं। उनको मानवता का इस प्रकार अनुकरण करते देख कर हमें आनन्द होता है और ये उनके मूक तथा गुप्त जीवन पर कुछ ऐसे रसिक तथा परिचित प्रकाश डालते हैं जो साधारणतया हमसे गुप्त रहते हैं। "प्रकृति का एक छुआव प्राणि मात्र को संबंधी बना देता है," हम ऐसा कह उठते हैं और इन प्राचीन शब्दों में नवीन आनन्द का अनुभव करते हैं। वे वस्तव में पूर्णतया अभिप्रायानुसार नहीं हैं; फिर भी जिनके लिये हम अपने हृदय में अनुभव करना चाहते हैं वह मानव प्रकृति के छुआव हैं। मनुष्य एक अहंकारी जीव है और उसे दर्पणों से घिरा रहना भाता है—सम्भव हो तो विशाल दर्पणों से-कुछ भी हो पर हों वे दर्पण ही। और इसलिये हम अपने विचारों का अध्ययन पशुओं में करते हैं और विश्वास के साथ विवाहिता व विजय की जाने वाली लजीली दुलहिनों और ईर्ष्या करने वाले प्रतिरोधियों की चर्चा करते हैं मानों पक्षी, मकड़ी या न्यूट्स (nuets) निस्संदेह सजे सजाये आवरण में छोटे मानव हों परन्तु विचार हों उनके बीसवीं शताब्दी के लन्दन या न्यूयार्क के रहने वालों के से।

अधिक विचारात्मक लोगों में से कुछ सम्भवतः अचरज करें कि प्राणि—प्रेम के अर्थ व ध्येय के संबन्ध में हमारी कल्पनायें कहां तक न्यायसंगत हैं; और दूसरे जो सम्भवतः कुछ जीव शास्त्र के ज्ञान के आधार पर इस विषय को मनुष्य तथा अन्य प्राणियों के बीच की खाई के दूसरी ओर से देखें कि हमारा स्वंय का प्रेम एक वाह्य तथा निष्पक्ष बुद्धिमत्ता को कैसा लगेगा, ऐसा विचारें; क्या ही अच्छा हो यदि प्राणियों के व्यवहार मनुष्यों द्वारा व्यक्त किये जाने के स्थान पर, अधिकतर मानव व्यवहार अन्य प्राणियों द्वारा व्यक्त हों, वे इस पर अचम्भित हों। और हम अपने जैवकीय पैत्रिक देन (Biological heritage) से कहाँ तक घिरे हुए हैं, ऐसा विचारें।

आजकल, प्राणि प्रणय जीवशास्त्रियों में एक अरुचिकर विषय हो रहा है और इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं कि यह वह विषय है जिस पर अज्ञान व पक्षपात दोनों ही फैले हैं। प्राणि—प्रणय में हक्सले की वास्तविक रुचि एक वसंत को वेल्स में प्रारम्भ हुई जब उन्होंने रेडशैंक (redshank) नामक समुद्र तट के एक साधारण पक्षी का सुन्दर प्रणय देखा। जब लौटकर वे पुस्तकालय को गये तो वहाँ पर उसका कोई भी समुचित विवरण और वास्तव में साधारण पक्षी प्रणय का भी विवरण न

पा सके। वे निरंतर यह जानने का प्रयत्न करते रहे कि साधारण पक्षियों में वास्तव में क्या होता है। डारविन का लैंगिक निर्वाचन का सिद्धांत यद्यपि बहुतेरे ब्योरों में त्रुटियुक्त है फिर भी मौलिक रूप से सही हैं और उन समस्त लक्षणों की बनावट जो प्रदर्शन (display) से संबंधित हैं, विभिन्न लिंग के मस्तिष्क से संबंधित होने के अतिरिक्त और कोई व्याख्या नहीं है चाहे वे गाने हों अथवा स्वांग, रंग, विशेष पर या अन्य बनावटें हों। इस प्रकार मस्तिष्क एक छलनी है जिससे प्रणय की विभिन्नतायें—उन्हें जीवित रहना है तो—अवश्य ही छन जानी चाहिये।

प्राणि मात्र के अतिरिक्त वर्ग में प्रणय नहीं मिलता। जेली मछलियां (gell fish) छिद्रिष्ठ (shayes) या समुद्री साही (sea cerlnes) उत्पादक कोष्टों को जल में केवल गिरा भर देते हैं और यह विश्वास करते हैं कि भाग्य से निषेचन हो जायगा। प्रणय की आशा तभी की जा सकती है जबकि निषेचन के लिये नर मादा दोनों का वास्तविक संयोग आवश्यक हो और इतना होने पर भी यह तब तक नहीं होगा जब तक कि पर्याप्त विकसित मस्तिष्क व स्नायु प्रणाली न हो।

संभवतः प्रणय की प्राथमिक क्रिया कुछ समुद्री रोयेंदार कीड़ों (Bristle worms) में मिलती है। ये वर्ष की कुछ ऋतुओं व चन्द्रमा के कुछ रूपों में अपने चट्टानों के निवास स्थानों से तैर कर बाहर आते व समूह में एकत्र हो जाते हैं। उत्तेजित नर, मादा के संमुख नाचते हैं। यह संभव है कि नाचते हुए नरों की उपस्थिति किसी भांति मादाओं को अंडे देने के लिये प्रभावित करती हों। इन अंडों पर नर तत्व दूधिक बादलों के रूप में नर द्वारा गिराया जाता है। घोंघों (Snails) में भी आदि प्रणय मिलता है जो कि इस बात से उलझ जाता है कि वे द्विलैंगिक होते हैं और हर एक नर के रूप में दूसरे को मादा के रूप में प्रभावित करता है।

परन्तु प्रथम प्रणय का नाम केवल निषेचन के प्रभाव को ही दिया जाना चाहिये जो कि कुछ केकड़ों व अधिकतर मकड़ियों की क्रिया है। कठिनिनः (Crustaceans) में फिडिल केकड़ों (Fiddel crab) में नर के एक अति विकसित पंजा होता है जिसका भार उतना ही होता है जितना कि शेष शरीर का। उसका विशेष पंजे का रंग प्रायः चटकीला होता है ऐसा विचार किया जाता था कि इससे नर अपने बिल को बन्द करता है अथवा दूसरे नर से युद्ध करता है अथवा मादा को पकड़ कर ले जाता है। कुछ भी हो, डाक्टर पियर्स का अध्ययन यह बताता है कि इसका मुख्य कार्य प्रदर्शन है। प्रसावन ऋतु में जब एक मादा आती है तब नर अपने को पंजे व पैर की उंगलियों के बल के ढंग पर रखता है और बड़ा पंजा हल्के तौर पर लगा रहता है। यदि मादा आकर्षित नहीं होती तो जहाँ पर मादा देख सके वह वहाँ पर जाकर आकर्षण के ढंग पर रखता है। यदि वह बहुत दूर चली जाती है तो नर अपने बिल को लौट आता है। निरीक्षक ने अपने विचार संक्षेप में यों व्यक्त किये हैं "कोई केवल यही कह सकता है कि नर अपने नरपने का दिखावा करते हुए प्रतीत होते हैं"

प्रणय की उत्पत्ति का यह संक्षिप्त पता है। एक बार जब मस्तिष्क एक उलझाव पर पहुँच जाता है तो यह व्यवहारों को नियंत्रित करता है। केकड़ा विभिन्न स्थितियों को प्राप्त कर सकता है जैसे भोजन की स्थिति, भूख की स्थिति, भय की स्थिति अथवा लैंगिक स्थिति। उत्तेजित नर जिसके उठा हुआ पंजा होता है, लैंगिक स्थिति का लक्षण है जैसे कि मनुष्य या दूसरे बड़े पशुओं का आगमन शत्रु स्थिति का परिचायक है। निस्संदेह बिना ऐसे नरपने के प्रचार के भी अन्त में लैंगिक संयोग होगा ही, पर जैसा कि डारविन ने इतना स्पष्ट देखा कि इसका लाभ नर को हो सकता है, समस्त जाति को नहीं। उस नर में जो अपने को नहीं प्रदर्शित करेगा, लैंगिक संयोग

न होगा और वह अपने परचात कोई भी संतान नहीं छोड़ेगा।

मकड़ियों में शिकारी और जाला तनने वाली में अत्यंत मनोरंजक अन्तर मिलता है। शिकारियों में जो शिकार को देखकर पकड़ती हैं, नर-मादा के सम्मुख विचित्र प्रदर्शन नृत्य करता है और जिस भाग का वह प्रदर्शन करता है वह प्रायः चटकीले रंग का होता है। जाला तनने वाली लगभग अन्धी होती है और उनमें किसी प्रकार का नृत्य नहीं होता, परन्तु नर, मादा के जाल के पास आकर एक धागे को विशेष ढंग से आवेष्ठित करता है, जो कि फँसे हुए शिकार के आन्दोलन से पूर्णतया भिन्न होता है। दोनों ही में यह स्पष्ट है कि प्रणय लीला का प्रथम मन्तव्य लैंगिक स्थिति की उपस्थिति दिखाना है। पर यहाँ पर ऐसा करना एक अच्छा सौदा है और केकड़े से अधिक आवश्यक है क्योंकि सारे प्रमाण यह सिद्ध करते हैं कि यदि यह संकेत नहीं किया जाता तो मादा, नर के साथ केवल किसी भी दूसरे छोटे जीव के समान व्यवहार करती और उसे खा जाती। कुछ जातियों (species) में लैंगिक संयोग के उपरांत वह ऐसा करती भी है। बिच्छुओं में भी ऐसा होता है। कुछ दूसरों में प्रारम्भ में मादा निश्चित रूप से वैमनस्यकारी रहती है और नर जो साधारणतः मादा से बहुत छोटा होता है, सदा ही प्रणय के आरम्भिक रूपों में भाग जाने को प्रस्तुत रहता है।

शिकारी मकड़ी में नर, मादा को स्वच्छतापूर्वक सिल्क में लिपटी हुई एक अच्छी मक्खी भेंट करता है। यदि बक्स में वह अकेला ही मक्खी के साथ रख दिया जाय तो वह उसे खा जायगा पर यदि मक्खी व मादा दोनों के साथ रखा जाय तो वह मक्खी को लपेट कर मादा को भेंट करेगा। ऐसे बक्स में जिसमें से मादा अभी अभी हटाई गई हो और उसकी गंध संभवतः अभी शेष हो वह फिर भी लपेटेगा और अपने साथी को भेंट करने को ढूंढ़ेगा। एम्पीडी वंश (Empidqae) की मांसहारी मकड़ियों में प्रेमोपहार के विचित्र ढंग विकसित हुए हैं; कुछ जातियों में नर बिना सजाया हुआ मृतक का ढांचा मादा को भेंट करता है पर औरों में शिकार, चमकदार गुब्बारे में जिन्हें नर एक गाढ़े द्रव को निकाल कर उसके बुलबुलों से बनाता है और जो उसके शरीर से भी बड़ा होता है, अगले सिरे पर चिपका दिया जाता है और इसे नर, अपने पैरों में लेकर आगे पीछे उड़ता है, निसंदेह इससे लैंगिक स्थिति दूर से ही स्पष्ट हो जाती है। अन्त में कुछ सुधार हुआ है। गुब्बारा तो है पर उसमें शिकार नहीं ले जाया जाता। उसके स्थान पर नर, पत्ती या फूल की पंखड़ी चिपका देता है और वास्तव में वह कोई भी छोटी सी ऐसी वस्तु जो पूर्णतया स्पष्ट हो, लगा देगा, जैसे कागज के छोटे टुकड़े जो हाल ही में फेंके गये हों और जो जल के धरातल पर पड़े रहते है जिस पर वह विचरता रहता है। यहाँ पर उद्विकसन रेखा के बिलकुल विपरीत, हम निश्चित रूप से नर द्वारा मादा को निरुपयोगी भेंट का प्रयोग करते देखते हैं।

रीढ़ वाले प्राणियों की प्रणय लीला अधिक मनो-रंजक है, क्योंकि उन्हीं में विशेषतः पक्षियों में प्रणय और प्रदर्शन चरम सीमा पर पहुँचता है। केवल कुछ ही मछलियों में प्रणय सी वस्तु होती है जैसी कि आशा की जा सकती है, क्योंकि अधिकतर मछलियों की जातियाँ अत्यधिक संख्या में अंडे देती हैं जो कि दिये जाने के उपरांत ही निषेचित होते हैं। मेढ़क पृथ्वी के गर्म भागों में अपने स्वर का प्रयोग करते हैं, जिसप्रकार टिड्डे (Gasshopper) अपने पैर व पत्तों का प्रयोग संतानोत्पत्ति के पक्ष में करते हैं। यदि टिड्डे प्राणि मात्र के प्रथम वाद्य सांगीतज्ञ हैं तो मेढक प्राणिमात्र के प्रथम स्वर सांगीतज्ञ हैं।

नरमेढक स्वर द्वारा केवल अपनी उपस्थिति का प्रचार करता है। दुमदार जलथालियों में वास्तविक प्रदर्शन पाया जाता है। साधारण न्यूट्स प्रसावन ऋतु में जल में चले जाते हैं और सम्पूर्ण पीठ व पूँछ पर ऊँचे सफनों (Pigs) की उत्पत्ति होती है। वह सफने नर में अधिक बड़े होते हैं जो इनके

अतिरिक्त अपने शरद ऋतु के आवरण को एक दूसरे चमकदार आवरण द्वारा बदलता है। वह प्रणय करते हुए भी देखा जा सकता है—फुर्ती से मादा के संमुख विचरते हुए मादा को खुरचते हुए तथा निरंतर मुड़ी हुई पूंछ को हिलाते हुए—इसके संबध में विचित्र बात यह है कि यह अपना निषेचन तत्व गिराये बिना प्रदर्शन आरम्भ नहीं करता। ये पोखरे या जलगृह में नीचे एक विशेष पुड़िया में जिसे शुक्रभंडार ( Spermotopave ) कहते हैं, रख कर गिराते हैं जिसका कि मादा को निषेचन के लिए अवश्य ज्ञान हो जाना चाहिये और प्रणाय उस निक्षेपण के उपरांत आरंभ होता है। यहाँ पर प्रदर्शन का महत्व केवल सफल निषेचन के लिये एक क्रिया है और यह प्रतिद्वन्दी नरों का मामला नहीं है। क्योंकि कठिन से कठिन डारविनिजम( dorwinism ) भी सरलता से यह नहीं मानेगा कि यदि दो नर साथ-साथ शुक्रभंडार जमाकर के मादा के संमुख अपना प्रदर्शन आरम्भ करें तो मादा यह स्मरण रख सकेगी कि किस नर ने कौन शुक्रभंडार जमा किया था ( यदि वह एक के दिखावे से दूसरे से अधिक प्रसन्न व उत्तेजित हो )और जब तक कि निर्वाचित नर को सन्तान का पिता न होना हो उसका मादा को प्रसन्न करने का कोई भी उद्विकसित प्रभाव नहीं हो सकता। यही यह स्पष्ट विदित होता है कि प्रदर्शन क्रिया को फिर लैंगिक स्थित में निपटना है। अन्तर केवल इतना है कि यह केवल नर की उपस्थिति और महत्व का प्रचार ही नहीं, बल्कि मादा के मस्तिष्क में एक लैंगिक स्थिति उत्पन्न करना भी है। वास्तव में फिन्कलर ने प्रयोग द्वारा दिखा दिया है कि नर के दिखावे की अनुपस्थिति में मादा शुक्र-भंडार नहीं चुनती इसलिये प्रणय के इस धारणा का कार्य मस्तिष्क को ठीक दशा में उत्तेजित करके निषेचन को सरल करना उचित प्रतीत होता है।

पक्षियों की एक जाति जिसमें डारविन का मूल सिद्धान्त निस्संदेह सत्य होता दृष्टिगोचर होता है, यह सर्वविदित पर्वतीय पक्षी रफ़ ( *Ruff* ) है। शरद ऋतु में लिंगभेद केवल डील-डौल से ज्ञात होता है पर प्रसावन ऋतु में नर के एक सुन्दर रफ़ गाल व गले के चारों ओर सुन्दर कान के रफ़ होते हैं। और एक समान दो नर कठिनाई से ही मिलेंगे। न केवल उनके पंखों के रंग भिन्न होते हैं बल्कि गले और कान के बाल, एक या दोनों ही किसी विशेष रंग या चिन्ह के होते हैं, काला, उज्जवल, नमक मिर्च के रंग का, मीन, बालू के रंग इत्यादि। प्रसावन के स्थान पर पहुँच कर नर प्रायः एक निश्चित स्थान पर एकत्र होते हैं जिसे "पहाड़" कहते हैं भले ही वह दल दल या एक सूखा क्षेत्र ही हो। मादा समय समय पर "पहाड़" का भ्रमण किया करती है, पर नर दलदल मे घोंसले पर कभी नहीं जाते और वे सन्तति पालन में भी कोई भाग नहीं लेते" "पहाड़, पर हर नर का साधारणतः एक अपना क्षेत्र होता है। जब कोई भी मादा पक्षी नहीं होते तो नर पक्षी नाचते, चक्कर लगाते और एक दूसरे के साथ खेलते कूदते रहते हैं। मादा के आगमन पर दृष्य बिलकुल बदल जाता है। नर सिकुड़ कर बैठ जाते हैं। अचल पत्तों को फैलाकर बिलकुल चुपके से—मादा केवल घूम घाम कर फिर उड़ जा सकती है जिस पर नर अपने पड़े रहने की स्थिति से चुप-चाप ऐसा बहाना कर के उठते हैं जैसे कुछ होता ही न रहा हो। या वह एक के पास पहुँच कर उसके गर्दन पर चोंच लगा सकती है जिस पर दोनों का लैंगिक संयोग हो जाता है।

एडमंड सिलन्स ने हालैंड में रफ़ के एक "पहाड़" को सप्ताहों तक अपने छिपने के स्थान पर सूर्योदय के समय या उससे पहले पहुँच कर देखा। "पहाड़" पर हर नर अपनी सूरत द्वारा अलगाया जा सकता है इस लये सिलन्स को यह पता लगा कि कुछ नर औरों से अधिक सफल होते हैं।

यहाँ डारविन का सिद्धान्त हर ब्योरे में कार्य रूप में है। सजावट प्रसावन ऋतु में केवल नर में ही होती है और केवल लैंगिक युद्ध व प्रदर्शन के लिए ही प्रयुक्त होती है। नर अपनी इच्छा को लादने की

कोई शक्ति नहीं रखता और मादा निषेचन की पूर्ण अधिकारिणी होती है और अन्त में इसका प्रमाण मिलता है कि निषेचन होता है। असमंजस का विषय केवल नरों की अत्यधिक विभिन्नता है जो सम्भवतः भविष्य के अन्वेषणों द्वारा समझाई जा सकें। भिन्न-भिन्न जीवशास्त्रियों ने यह पता लगाया है कि प्रदर्शन, युद्ध व धमकी का सीधा भीतरी प्रभाव नर मादा दोनों ही प्रकार के पंक्षियों पर पड़ता है और लैंगिक संयोग में वास्तविक सहायता करता है। फ्रेजर, डारलिंग और औरों ने बिल्कुल दिखा दिया है कि एकत्रित प्रभाव होता है। कुछ प्रभाव औरों को प्रणय युद्ध में लीन देखकर भी होता है। निरंतर दिखावे की भूमि का पाया जाना तुरंत यह प्रमाणित करता है कि यह उत्पत्ति की कुशलता को उच्चतम बनाने का एक ढंग है। पर यह रफ की विभिन्नता को भी समझाता है। यदि, जैसा कि युक्तिसंगत प्रतीत होता है, अपरिचित, परिचित से अधिक उत्तेजनात्मक होता है तो विभिन्नता का एकत्रित उत्तेजक प्रभाव समानता से अधिक होगा इससे भिन्नता की ओर झुकाव प्रतीत होता है जो विभिन्नता को प्रोत्साहन देगा।

यह सरल उदाहरण महत्वपूर्ण है क्योंकि उससे हम और समान स्थानों पर निश्चित निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं। काला मुर्गा ( Black cock ) जो कि ग्राउज( grouse ) जाति का एक सुन्दर सदस्य है, उसमें इसी प्रकार प्रसावन के लिये एकत्रित होने के स्थान हैं। विनस (vernes) के सुन्दर मन्दिर-इनमें नर अलग अलग नही पहचाने जा सकते पर हर एक का अपना अपना निश्चित स्वर व खड़े रहने का ढंग प्रतीत होता है। सीधे सीधे देखने और रफ से तुलना करने, दोनों ही ढंगों से ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ पर भी वास्तविक निर्वाचन होता है। अन्त में कुछ स्वर्ग के पक्षियों ( Brids of Paradise ) में प्रसावन के स्थान पेड़ो में हैं, यहाँ पर नर नाचते व अपने सुन्दर बदनों का प्रदर्शन करते हैं।

यह एक मनोरंजक बात है कि ऐसे प्रसावन के स्थानों का उद्विकसन नरों के एकत्रित होने तथ मादाओंके साथ रहने का उत्कर्ष पक्षियों में कमसे कम तीन बार अवश्य हुआ है। वाड़रस (wodrs) में शिकार के पक्षियों और स्वर्ग के पक्षियों में प्रणय पर रहन के ढंगों का प्रभाव भी एक दूसरा विषय है जिसे पक्षियों में अनुसरण किया जा सकता है जिनमें बहुपति प्रथा है और जिनमें केवल मादा अंडों को देता और सन्तान की देख रेख करती है, उनमें हम रंगों व प्रणय के ढंगों, दोनों ही में सर्वाधिक अन्तर पाते हैं ? मादा साधारणतः बचाव के ढंग पर रंगीन होती हैं। नर ठीक इसके विपरीत चमकदार होते व अकेले ही प्रदर्शन में भाग लते हैं। चूंकि उनमें बहुपति प्रज्ञ हैं, नर अपने लक्षणों की अपनी पीढ़ीकी अधिक संख्या पर छाप डालेगा और एक बार निषेचन हो जाने पर नर का कोई जैविक महत्व नहीं रह जाता और बचाव के रंगों की कम आवश्यकता रहती है क्यों कि उसके मर जाने या न मारे जाने से कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता।

पर अधिकतर पक्षी एक पति गामी हैं। कम से कम एक ऋतु के लिये या एक समातक के लिये जैसे कि अमेरिकन की रेन ( wren ) जिसमें पक्षी चिन्ह प्रयोगों (branding experiments) ने सिद्ध कर दिया है कि वह एक ही वर्ष के प्रथम व द्वितीय संजातव के लिये साथी बदलती है। एक पति-गामी पक्षियों के बड़े समूह में अधिकतर मुख्य गाने वाले पक्षियों के लैंगिक जीवन का आधार प्रादेशिक प्रणाली होती है। उनके बच्चे अंडों से नंगे व असहाय निकलते हैं, जिन्हें बाढ़ के लिये अत्यधिक भोजन की आवश्यकता होती है, यदि इनके अंडे बहुत दिनों तक बिना सेये रहें तो इनके मर जाने की संभावना रहती है, इसलिए पहले तो, माता-पिता दोनों के लिए बच्चों को खिलाना, दूसरे, घोंसले के आस-पास एक ऐसे क्षेत्र का होना जो बच्चों की आवश्यकता पूर्ति के लिए प्रयाप्त हो, तीसरे और क्षेत्र का उल्लंघन उसी जाति के दूसरे माता-पिता द्वारा

न होना आवश्यक है। पक्षियों में वर्तमान या भविष्य के घोंसले के स्थान पर आने-जाने को बुरा मानने की भावना के होने से उपर्युक्त आवश्यकताओं की पूर्ति निश्चित हो जाती है।

इरगेट (erget) और गुलीमाट्स (Guillemots) जैसे औपनिवेशिक पक्षियों में भी सुरक्षित क्षेत्र होता है, भले ही वह केवल दो ही फिट का हो। उन पक्षियों में जिन्हें कि हम वास्तविक प्रादेशिक पक्षी कह सकते हैं, या उन पक्षियों में जिनमें घोंसले बनाने या भोजन के प्रदेश होते हैं, घटनाओं का चक्र इस प्रकार होता है। इलियट हावर्ड के घटनाचक्र के गौरव युक्त वर्णन को योरोपियन वारबलर (warbler) या सिलविडी (sylviidae) में बताया गया है। प्रसावन भूमि पर प्रथम केवल नर रहते हैं। यदि जाति बसंत में देश परिवर्तन करने वाली है तो नर मादा से लगभग एक सप्ताह पूर्व उत्तर को चले जाते हैं। वहाँ पहुँच कर वे एक क्षेत्र पर अधिकार कर लेते हैं। कभी-कभी बिना युद्ध के, कभी कभी साथ ही साथ दूसरे पहुँचने वाले पक्षी के, जिसका पहले से अधिकार होता है, उससे युद्ध करके तदुपरांत वे अपना गायन प्रारंभ करते हैं। साधारण विश्वास के विपरित अधिकतर गायक पक्षियों का गायन उनके साथी के आगमन के पूर्व ही होता है जैसा कि हावर्ड ने निर्णयात्मक रूप से प्रदर्शित किया है। गायन का मुख्य कार्य प्रचार है। यहाँ पर पूर्णतया अधिकृत क्षेत्र का प्रचार है जिससे कि मादा को आकर्षण हो तथा दूसरे नरों को चेतावनी। नरों को इसी प्रकार के बहुत से मुख्य प्रदर्शन के आचरण दूसरे नरों के विरुद्ध धमकी प्रदर्शन और मादा के लिये प्रणय के प्रदर्शन में प्रयोग होते हैं। जब स्थान पर मादा का आगमन होता है तो नर की ओर से तुरंत ही कोई भी प्रणय क्रिया नहीं होती। यदि मादा अकेली है, तो वह प्रदेश में केवल अपना स्थान भर लेती है और ऋतु के लिये वे द्वय होते हैं। प्रकृति को शून्यक से घृणा है, यह विशेष शून्यक अर्थात प्रदेश से एक मादा की शून्यता कम से कम सम्भव हलचल के बिना पूरी की जाती है। यदि दो प्रतिद्वंद्वी मादाओं का साथ ही साथ आगमन होता है तो वे स्वयं प्रदेश के नर पर अधिकार करने के लिये युद्ध करती हैं और नर आस पास केवल फुदकता, और स्वार्थी तथा उत्तेजित तमाशबीन की तरह कोई भाग नहीं लेता। तदुपरांत एक विचत्र बात होती है जो कि डारविनिज़्म की गाड़ी को प्रथम दृष्टि पर ही उलट देती है, अर्थात प्रणय और दिखावा अब वेग से आरम्भ होता है—केवल अब जबकि दोनों पक्षी ऋतु भर के लिये द्वय हो चुके—नर अपने पक्षों को आवेष्टित करता, अपनी दुम को फैलाता, अपने पत्तों को फुलाता तथा झुकता है और प्रायः एक पत्ती या एक टहनी या घोंसला बनाने का कोई दूसरा सामान अपनी चोंच में लिये हुए अपने साथी के सन्मुख दौड़ता है। उसके इतने अतिव्ययी हो सकते हैं कि सर्वाधिक भीतरी उत्तेजना के परिचायक हों। और कहाँ डारविन के यह विचार कि स्वांग व प्रदर्शन अधिकतर साथी के निर्वाचन के लिये बने हैं? यह आवश्यक नहीं है कि प्रणय व प्रदर्शन का मुख्य ध्येय सदा साथी का निर्वाचन ही हो। वे लैंगिक संयोग और निषेचन में सहायक हो सकते हैं और साधारण स्थिति में ऐसे प्रतीत भी होते हैं। पक्षी का मस्तिष्क उलझा हुआ होता है और लैंगिक ऐसा ही होता है उसका जीवन। पक्षी में सदा लैंगिक स्थिति नहीं लायी जा सकती, जैसा कि आगे विदित होगा। यह निश्चित करने के लिये कि लैंगिक स्थिति सदा नहीं लायी जा सकतीं, सब से सरल उपाय यह है कि वे अत्यधिक लैंगिक संयोग करते दिखाई देते हैं और फिर भी यह निश्चित करना कि दोनों ही साथी, साथ ही साथ लैंगिक संयोग के लिये प्रायः पर्याप्त रूप से प्रस्तुत रहेंगे, आवश्यक हैं कि एक साथी—नर—अधिकतर लैंगिक परिस्थित में रहेगा और अपने प्रदर्शन से इस बात का प्रचार तथा मादा को उचित भावुक धरातल पर लाने के लिये प्रभावित भी करेगा।

अन्त में, जैसा कि कहा जा चुका है, प्रदर्शन से

और भी अधिक जैविक लाभ हैं। ऐसा प्रतीत होता कि उन ऋतुओं में अंडा देने के समय या उससे पूर्व अंडों की संख्या प्रायः घट जाती है और प्रतिशत वैघत्व बढ़ जाता है। यह भी विदित है कि पक्षियों की सभी उत्पादक क्रियायें अधिक अंशों में मस्तिष्क के उच्चभावुक केन्द्रों के वश में रहती हैं। उदाहरणार्थ एक मादा पेंडुकी जो कि बचपन से ही एकांत में पाली पोसी गई हो, साधारणतः अंडे नहीं देगी। पर पास के पिंजड़े में नर की उपस्थिति या मनुष्य की उँगली द्वारा उसकी गर्दन का सहलाया जाना भी, उसी ढंग पर जैसे कि नर द्वारा उसकी गर्दन नोची जाती है, लगभग सदा अंडे दिला देगी। यह अब प्रदर्शित किया जा चुका है कि प्रदर्शन और धमकी, लैंगिक इंद्रियों को बढ़ने का प्रोत्साहन देते हैं। इससे विशेषकर बुरी ऋतुओं में लाभ होगा क्यों कि पक्षियों की भावनायें बहुत कुछ ऋतु (weather) की दया पर निर्भर रहती हैं।

इस प्रसंग में इस विचित्र बात का भी उल्लेख कर देना आवश्यक है कि सब वर्ष भर साथ रहने वाले पक्षियों में, जो कि प्रदेश वाले पक्षी हैं, वसंत एक मंगली का समय रहता है। जाड़े के प्रदेश पर अधिकार होने के कुछ सप्ताह बाद तक निवेचन नहीं होता। इसका सीधा सा जैविक कारण है। पक्षी के लिये अपने प्रदेश में पहले से पहुँच जाना लाभप्रद है, नहीं तो सम्भव है, उसे कोई प्रदेश न मिले परन्तु उसे समय तक प्रस्तावना करना चाहिये जब तक कि इस बात का निश्चय न हो जाय कि सन्तान के लिये भोजन बहुतायत से है। केवल कुछ ऋतुओं ही में मादाओं के अंडाशय में अंडे बीज से बढ़ना शुरू होते हैं (यहसम्भवतः एक तापक्रम पर निर्भर है) और तभी उसकी पूर्ण लिंग की भावना जागृति होती है।

ऐसे पक्षी भी हैं जिनमें नर व मादा दोनों ही न केवल सन्तान की देख रेख में सहायता करते हैं, बल्कि घोंसले बनाने व अंडे सेने में भी हाथ बटाते हैं। हिरोन, पेलिकन, ग्रेब व डाइवर और बहुत से और ऐसे हैं। उनमें द्वय में से कोई भी एक दूसरे से अधिक मूल्यवान नहीं होता। अतएव बचाव की आवश्यकता यदि है तो दोनों ही को है। इससे भी अधिक, घोंसले, अंडे व सन्तान के बारे में उनकी भावना समान होनी आवश्यक है और ऐसा आभास मिलता है कि समानता उनके प्रणय के स्वभावों तक फैल गई है। क्योंकि कुछ भी हो, यह सत्य है कि इस समूह की अधिक संख्या के पक्षियों में, और दूसरे कहीं भी नहीं, हमें परस्पर प्रणय मिलता है, दोनों ही लिंग के पक्षियों में प्रसावन ऋतु में चटकीले रंग व विशेष बनावटें होती हैं और दोनों ही साथ ही साथ उनका प्रयोग परस्पर दिखावे के लिये करते हैं।

कोई भी, जिसने ऐसे पक्षियों का निरंतर एक के बाद दूसरे दिन घंटो निरीक्षण किया हो, उनके प्रणय की परम्पराओं के आनन्द से स्तम्भित रह जायगा और दूसरी बात यह है कि ये परम्परायें प्रायः जैविक रूप से स्वयं पूर्ण होती हैं, इस अर्थ में कि पक्षी का भावुक तनाव उत्तेजित होने व वास्तविक लैंगिक संयोग का नेतृत्व करने के स्थान पर उनके द्वारा स्वतः होते हैं। ऐसा लगता है मानों ये विचित्र व रसिक प्रदर्शन सिर का हिलाना, धारा के लिये डुबकी लगाना, छाती से छाती मिला कर नृत्य करना, या घोंसले की रखवाली से परेड करते हुए मुक्ति करना या एक टहनी से पक्षों का तरकस सा बनाना-मानों ये द्वय पक्षी के बंधन थे और उस समय तक जब कि प्रसावन की ऋतु थी उनकी भावुक कड़ियों द्वारा बँधे थे। और फिर क्यों न हो ? क्या मानव समाज में कुछ इसी से मिलता जुलता नहीं होता ? और क्या वहाँ पर उसका एक आवश्यक कर्त्तव्य वंश तक जाति की आवश्यकता को प्रेम व सुख द्वारा बाँधने में नहीं होता ? और यदि मनुष्य में उसका यह महत्व है तो इन पक्षियों में क्यों न हो क्योंकि इनमें भी जाति वर्ग के मेल के लिये माता पिता दोनों का परस्पर मेल आवश्यक है।

तब हमें यहाँ पर ज्ञात होता है कि दिखावा केवल एक नर का दूसरे नर के विरुद्ध ही नहीं, न केवल निषेचन को सरल बनाने के ही लिये बल्कि जातिवर्ग की सेवा के लिये पर्याप्त होता है।

कुछ औरों में हम देखते हैं कि प्रदर्शन समाजिक क्रिया का रूप धारण कर लेता है और प्रणय अपने आदि आचरण व्यक्तिगत आकर्षण से हट कर (जैसा कि कभी कभी मनुष्य में देखने में आता है) नृत्य के जन तत्व की ओर आता है। पक्षियों में हक्सलेने पता लगाया है कि ओयस्टर पकड़ने वालों में किनारे के लाल चोंच के पक्षी जिसे कभी कभी समुद्री पाई भी कहते हैं, सबसे अच्छा दिखाई पड़ता है। बसंत में इस प्रकार के ८-१० पक्षियों का बटोर देखा जा सकता है। सभी साथ-साथ अपने कठिन प्रणय के ढंग में गर्दन को बाहर निकाले हुये और लंबी चोंच समकोण बनाती हुई नीचे की ओर रंगी हुई और उनके गले से एक विकट शोर निकलते हुए देखने से यह विदित होता है कि यह प्रदर्शन केवल सब से मामूली ढंग हैं बल्कि उनके भूमि पर रहने पर केवल यही प्रयोग होता है। यह केवल नर द्वारा ही, या नर मादा दोनों द्वारा परस्पर प्रयोग किया जा सकता है। और इसके प्रणय की क्रिया के अतिरिक्त यह दूसरे उलंघन करने वाले पक्षियों की ईर्षा व वैमनस्य को प्रदर्शित करता है चाहे वह प्रादेशिक अधिकार के लिये हो या लैंगिक अधिकार के लिये। जब प्रारम्भिक बसंत में एक समूह में प्रणय आरम्भ होता है, दूसरे पक्षी भी उत्तेजना में भाग ले सकते हैं वैमनस्य फिर से प्रेम लाद देता है और जल्द ही सारी संख्या एक मादक उत्तेजना में लीन हो जाती है जो कि ऐसा प्रतीत होता है कि न तो लैंगिक है न वैरोधिक बल्कि समाजिक होता है। यहाँ पर सामाजिक नृत्य थोड़ा या कुछ भी विशेष क्रिया करता हुआ नहीं प्रतीत होता यह केवल जीव सम्बन्धी आकस्मिक घटना मात्र है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पक्षी प्रणय एक मनोरंजक क्रिया है जिसमें पक्षी निरन्तर प्रदर्शन के लिये अपनी चोंच में वह सामान जिससे कि घोंसला बनता है, उसे लिये फिरते हैं। यह एडिलीं पेन्गुन (adelie Penguin) में भी होता है जिसका डाक्टर लेविक ने वर्णन किया है। यहाँ पर घोंसला केवल एक दबे भाग के चारों ओर पत्थर का किनारा है इस लिये नर प्रणय के भाग के रूप में अपने साथी को पत्थर भेंट करता है। इससे भी अधिक मनोरंजक यह है कि यह क्रिया कभी-कभी दूसरे प्रकार की भावनाओं की ओर मुड़ जाती है जिससे हम अचरज में पड़ जाते हैं क्योंकि पक्षी कुत्ते व मनुष्यों को भी पत्थर भेंट करते हैं। डाक्टर लेविक ने पत्थर को भिन्न भिन्न रंगों से रंगा और घोंसल बनाने के क्षेत्र के एक किनारे पर रक्खा। इसके बाद उन्होंने उपनिवेष में प्रगति की गति देखी तब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि लाल पत्थर के प्रति औरों से अधिक अनुराग था, इसका बड़ा सैद्धांतिक महत्व है। क्यों कि लाल वह रंग है जो सभी कार्यों के लिये पेनगविन के वातावरण में शून्य हैं। फिर भी वे इसे और दूसरों से अधिक पसन्द करते हैं। यदि एक नर पेन्गविन एक लाल चकत्ती बना सके तो सम्भवतः उसे साथी पाने में अति शीघ्र सफलता प्राप्त होगी यह कला और वैचित्र का सम्मिश्रण है। साधारणतः यह टहनियों की एक सुरंग होती है जिसमें एक ओर हड्डियाँ और खोलों का बटोर होता है। एक जाति (species) में भूमि का एक भाग साफ कर लिया जाता है। और उनपर बड़ी बड़ी पत्तियाँ रख दी जाती हैं जिनकी चाँदी के समान चमकीले धरातल ऊपर की ओर रहते हैं। ज्यों ज्यों वे सड़ती जाती हैं, उनके स्थान पर दूसरी रख दी जाती हैं।

स्तनी (mammals) में सभी बातों को ध्यान में रखते हुए नर द्वारा प्रणय या प्रदर्शन कम है परन्तु युद्ध अधिक। यह सम्भवतः इस पर निर्भर है कि मादा स्तनी की लैंगिक भावनायें और अधिक एक मनोवैज्ञानिक नियंत्रण में हैं और उच्च भावुक केन्द्रों के अंतर्गत हैं नर, हिरण या आधीसील को केवल उसके

घर की देख भाल करनी पड़ती है और वे उसे स्वंय ही उचित समय में ग्रहण कर लेते हैं। फिर एक पत्नी गामी स्तनी में अभी बहुत कुछ अन्वेषण शेष है। यह एक कठिन समस्या है क्योंकि बहुतेरे रात्रिगामी हैं या माद खोदने वाले हैं। कुछ बुद्धिमान स्तनी में जसे कि हाथी में सूड़ों का परस्पर सुहावना मिलाप देखा गया है। और अधिक तर ऊपर ओर की मनुष्य बन्दर व लंगूरों के नरों में प्रदर्शन धमकी के आचरण में मिलते हैं। इनमें से कुछ हमें नहीं भाते जैसे कि मैंड्रिल के नंगे लाल गोल दाग, ओरंग की मूछें या सलन बन्दर की सुंदर दाढ़ी। प्रणियों में प्रणय के उद्विकास चार मुख्य युगों का फल है। (१) लिंगी उत्कर्ष (२) विलगाव (३) भीतरी निषेचन या कम से कम नर मादा का एक दूसरे से परस्पर मिलाप और (४) उच्च कोटि के संवेदांग (sesneorgans) का उत्कर्ष इनमें से किसी एक के भी अभाव में जीवन की वे विचित्र प्रिय वस्तुएं जो संक्षेप में प्रणय के अंतर्गत हैं कभी कभी नहीं होतीं। ये रुप को सुन्दर बनाती हैं तथा कितने ही उच्च कोटि के पशुओं के अस्तित्व को विभिन्नता प्रदान करती हैं जिसमें कि हम भी सम्मिलित हैं।

—:*:—

# अद्‌भुत खनिज-अबरक

अबरक के उत्पादन में, भारत, संसार का सब से बड़ा देश है। सारे संसार को जो अबरक प्राप्त होता है, उसका ८० प्रतिशत भारत तैयार करता है। इस प्रकार अबरक की सप्लाई के लिए, प्रायः समस्त संसार ही हमारे देश पर आश्रित हैं। भारत के बाद अबरक उत्पादन का दूसरा सब से बड़ा देश है, ब्राजिल। रूस, मडागास्कर, कनाडा और अर्जेन्टाइना में भी थोड़ा–बहुत अबरक पैदा होता है।

## बहु-उपयोगी खनिज

अनेक उद्योग धंन्धो में प्रयोग में आने के कारण अबरक को हम एक बहु-उपयोगी खनिज पदार्थ कह सकते हैं। उसकी इस व्यापक उपयोगिता के कारण ही, संसार के अनेक देशों में उसकी सारी मांग रहती है। विद्युत-वाहकन होने के कारण, अबरक का उपयोग बिजली की अनेक मशीनों वा यत्रों में शक्ति अवरोधन के लिये बहुतायत से किया जाता है। इसके अतिरिक्त, ऊँची शक्ति के मोटरों, रेडियो, टेलीविजन, आदि के लिए भी उसका उपयोग किया जाता है। कहते हैं कि अबरक का प्रयोग ३० से अधिक प्रकार से होता है। युद्ध काल के लिए टैंक, ट्रकें, युद्धक विमान, रेडार, आदि के निर्माण तक में उसकी अवश्यकता पड़ती है। और उसकी यह व्यापक उपयोगिता उसकी अनेक विशिष्टताओं के ही कारण सम्भव है। पारदर्शकता, नमनीयता, पतले से पतले परत में निकाले जा सकने की सामर्थ्य आदि उसके ऐसे गुण हैं जो किसी अन्य पदार्थ में एक साथ ही उपलब्ध नहीं होते।

भारत का अधिकांश अबरक बिहार राज्य में पैदा होता है, जहाँ के हजारीबाग, गया और मुंगेर जिलों में उसकी बड़ी-बड़ी खानें हैं। कुछ अबरक राजस्थान और मद्रास के नेल्लोर जिले से भी प्राप्त होता है। किन्तु स्वयं इस देश में कोई ऐसे उद्योग

नहीं हैं, जिनमें उसका उपयोग किया जा सके। इसलिए प्रायः सारा का सारा अबरक, विशेषकर उसके खंड, विदेशों को भेज दिये जाते हैं। यह निर्यात उत्तरोत्तर बढ़ता गया है, और पिछले १० वर्षों में ही उसमें लगभग ४०० प्रतिशत वृद्धि हुई है। १९४९-५० में ६६९ लाख रु० का अबरक विदेश भेजा गया।

डालर-प्राप्ति का
साधन

इस प्रकार अबरक भारत के लिए डालर प्राप्त करने का एक अच्छा साधन है, क्योंकि देश का अधिकांश अबरक अमेरिका को ही जाता है। भारतीय अबरक लेने वाला दूसरा सब से बड़ा देश ब्रिटेन है। १९४९-५० में ६६९ लाख रुपये का जो अबरक विदेश भेजा गया, उसमें से ४९३ लाख रु० का अमेरिका ने और १०२ लाख रु० का ब्रिटेन ने लिया था। शेष अबरक जापान, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, स्वीडन, फ्रांस, इटली, मिस्र, ईराक, चीन, आदि देशों को जाता है।

बिहार की खानों से निकाला जाने वाला अबरक बहुत ही उच्च कोटि का होता है। खानों से निकलने वाले खंडों को छांटने व फाड़ने के काम में भारतीय श्रमिक बहुत निपुण हो गये हैं। भले ही आप सच न मानें, किन्तु १९४८ से पहले कुछ विदेशी अबरक बाहर से भी भारत आया था, और यहाँ के कुशल कारीगरों द्वारा उसकी सफाई हो जाने के बाद वह फिर विदेश भेज दिया जाता था। यहाँ के अबरक शिल्पियों की कार्य-कुशलता का इससे अच्छा प्रमाण और क्या मिल सकता है? किन्तु १९४८ से देश में अबरक का यह आयात बंद कर दिया गया है।

अब अबरक का उपयोग देश में भी किया जाने लगा है, यद्यपि बहुत ही स्वल्प रूप में, माइकेनाइटीन' बनाने का एक छोटा सा कारखाना कलकत्ते में खुला है और दूसरा मद्रास के निकट खुलने वाला है।

[भा० स० के पत्र सूचना विभाग से]

—:*:—

# हमारे नये प्रकाशन

**फोटोग्राफी**—लेखक श्री डा० गोरख प्रसाद, डी० एस० सी० (एडिन०), फोटोग्राफी सिद्धांत और प्रयोग का संक्षिप्त संस्करण, फोटोग्राफी के नवीनतम उपयोगी आविष्कारों का समावेश तथा अनुभवी फोटोग्राफरों के लिये अनेक नुसखे आदि दिये गये है। २६८ पृष्ठ और ९४ चित्र सजिल्द मूल्य ४)

**साबुन विज्ञान**—विद्यार्थियों और व्यावसायियों के लिये एक सरल और सुबोध पुस्तक, जिससे साबुन तैयार करने की विभिन्न विधियाँ और नाना प्रकार के साबुन तैयार करने की रीतियाँ हैं विवरण के साथ-साथ सैकड़ों अनुभूत और प्रमाणित नुसखे भी दिये गये, हैं। लेखक श्री श्याम नारायण कपूर बी० एस० सी० ए० एच० बी० टी० आई०, फेलो आयल टेकनीलोजिस्ट एसोसियेशन आफ इन्डिया, २९० पृष्ठ जिसमें स्थान-स्थान पर आवश्यक चित्र दिये गये हैं। [illegible] मूल्य ६)

**सिसु पाळन**—लेखक श्री मुरलीधर बौडाइ, बी० एस० सी० प्रभाकर, गृहस्थ का उच्च आदर्श गर्भवती स्त्री की प्रसवपूर्व व्यवस्था तथा शिशु की देखभाल, शिशु के स्वास्थ्य तथा माता के आहार बिहार आदि की समुचित और वैज्ञानिक व्यवस्था का क्रम चित्रों द्वारा समझाया गया है। पृष्ठ संख्या १५० मूल्य ४)

# विज्ञान-परिषद् की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकों की सम्पूर्ण सूची

१ — चुम्बक—हाई स्कूल में पढ़ाने योग्य पुस्तक —ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम०एस-सी सजि०;।।।=)

२—सूर्य-सिद्धान्त—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखने का सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१४ : १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल०टी०, विशारद; सजिल्द; दो भाग में, मूल्य ८)। इस भाष्य पर लेखक को हिन्दी साहित्य सम्मेलन का १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है।

३—वैज्ञानिक परिमाण—विज्ञान की विविध शाखाओं की इकाइयों की सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहाल-करण सेठी डी० एस-सी०, १)

४—समीकरण मीमांसा—गणित के एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।) द्वितीय भाग ।।=),

५—निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)—गणित के एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमतीप्रसाद अग्निहोत्री बी० एस-सी० ; ।।।),

६—बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित—इन्टर-मीडियेट के गणित के विद्यार्थियों के लिये —ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी , १।),

७—[illegible]व के साथ यात्रा—डाक्टर जे० सी० बोस की यात्राओं का लोकप्रिय वर्णन ; ।=)

८—केदार-बद्री यात्रा—केदारनाथ और बद्रीनाथ के यात्रियों के लिये उपयोगी; ।=)

९—वर्षा और बनस्पति—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शंकरराव जोशी; ।=)

१०—विज्ञान का रजत-जयन्ती अंक—विज्ञान परिषद के २५ वर्ष का इतिहास तथा विशेष लेखों का संग्रह; १)

११—फल-संरक्षण—दूसरा परिवर्धित संस्करण-फल की डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनाने की अपूर्व पुस्तक: २१२ पृष्ठ, २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्र नारायण सिंह एम० एस-सी०: २।।)

१२—व्यङ्ग-चित्रण—(कार्टून बनाने की विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट: अनुवादिका श्री रत्नकुमारी एम० ए०; १७५ पृष्ठ; सैकड़ों चित्र, सजिल्द: २)

१३—मिट्टी के बरतन—चीनी मिट्टी के बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा: १७५ पृष्ठ; ११ चित्र; सजिल्द; २)

१४—वायुमंडल—ऊपरी वायुमंडल का सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र सजिल्द; २)

१५—लकड़ी पर पालिश—पालिश करने के नवीन और पुराने सभी ढंगों का व्योरेवार वर्णन। इससे कोई भी पालिश करना सीख सकता है—ले डा० गोरखप्रसाद और श्रीरामरतन भटनागर, एम०, ए ; २१८ पृष्ठ; ३१ चित्र, सजिल्द; २)

१६—उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर—सम्पादक, डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश, आकार बड़ा विज्ञान के बराबर २६० पृष्ठ, २००० नुसखे १०० चित्र; एक-एक नुसखे से सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हजारों रुपये कमाये जा सकते हैं प्रत्येक गृहस्थ के लिये उपयोगी; मूल्य अजिल्द २।।)

१७—कलम-पेबंद—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ५० चित्र; मालियों, मालिकों और कृषकों के लिये उपयोगी; सजिल्द; २)

१८—जिल्दसाजी—क्रियात्मक और व्योरेवार। इससे सभी जिल्दसाजी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०; १८० पृष्ठ, ६२ चित्र;सजिल्द २),

१९—त्रिफला —दूसरा परिवर्धित संस्करण-प्रत्येक वैद्य और गृहस्थ के लिये—ले० श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ; ३ चित्र, एक रंगीन; सजिल्द २।।=)

यह पुस्तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय, की १३ श्रेणी के लिए द्रव्यगुण के स्वाध्याय पुस्तक के रूप में शिक्षापटल में स्वीकृत हो चुकी है।

२०—तैरना—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगों को बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद, पृष्ठ १०४ मूल्य १),

२१—अंजीर—लेखक श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार, अंजीर का विशद वर्णन और उपयोग करने की रीति। पृष्ठ ४२, दो चित्र, मूल्य ।।=)

यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय के शिक्षापटल में स्वीकृत हो चुकी है।

२२—सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओं के विचित्र संसार, पेड़ पौधों की अचरज भरी दुनियां, सूर्य, चन्द्र और तारों की जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिष के संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञान के आकार के ४५० पृष्ठ और २३० चित्रों से सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द मूल्य ६)।

२३—वायुमण्डल की सूक्ष्म हवाएँ—ले० डा० सन्तप्रसाद टंडन, डी० फिल० मूल्य ।।।)

२४—खाद्य और स्वास्थ्य—ले० श्री डा० ओंकारनाथ परती, एम० एस-सी, डी० फिल० मूल्य ।।।)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती है :—

२५—विज्ञान-हस्तामलक—ले० स्व० रामदास गौड़ एम० ए०। भारतीय भाषाओं में अपने ढंग का यह निराला ग्रंथ है। इसमें सीधी सादी भाषा में अठारह वैज्ञानिकों की रोचक कहनी है। सुन्दर सादे और रंगीन पौने दो सौ चित्रों से सुसज्जित है, आज तक की अद्भुत बातों का मनोमोहक वर्णन है, विश्व- विद्यालयों में भी पढ़ाये जाने वाले विषयों का समा-वेश है, अकेली यह एक पुस्तक विज्ञान की एक समूची लैब्रेरी है। मूल्य ६)

२६—भारतीय वैज्ञानिक—१२ भारतीय वैज्ञानिकों की जीवनियां; ले० श्री श्यामनरायण कपूर, ३८० पृष्ठ; सजिल्द, मूल्य ३।।) अजिल्द ३)

२७—वैक्युम-ब्रेक—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवे में काम करने वाले फिटरों, इंजन-डराइवरों, फोरमैनों और कैरेज-एग्जामिनरों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ; ३१ चित्र जिनमें कई रंगीन है, २),

## विज्ञान-परिषद् बेली रोड, इलाहाबाद

भाग ७१
संख्या १०,११,१२,
वार्षिक मूल्य ३) ]

संवत् २००७,
जुलाई-अगस्त-सितम्बर १९५०
[ एक संख्या का मूल्य ।)

मुद्रक बाल किशोर नायर, विक्रम मुद्रणालय प्रयाग,
प्रकाशक—विज्ञान-परिषद्, बेलीरोड, इलाहाबाद